

GOVERNMENT OF INDIA  
DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY  
CENTRAL ARCHAEOLOGICAL  
LIBRARY

---

CLASS 286 ho

CALL No. Sa4V Var-Sad

D G.A. 79.

## →\* समर्पणम् \*←

श्रीमतामशेषविद्यापगासङ्गमसङ्केतमहासागराणाम् विविध-  
दर्शन-विमर्शन-विशदीकृताऽनितरसाधारणप्रातिभगौरवा-  
णाम् , वैयाकरणकुलकमलकदम्बकमलिनीश्वराणाम्  
लवपुरीयप्राच्यसंस्कृतमहाविद्यालयप्रधानाध्यापक-  
पदमभिमूषयतां श्रद्धेयचरणानां गुरुवर्षाणां  
श्रीमन्महामहोपाध्याय-श्रीमाधवराशि-  
भाण्डारी-महानुभावानाम्-  
करसरसीरुदसम्पुटे—

श्रीमन् ! असीमगुणराजिसुधासमुद्र !

श्रीमाधवाभिष ! सुधीन्द्र ! भवत्कराब्जे ॥

सैषा 'सुधा' विनिहिताऽद्य सदाशिवेन

स्वीकृत्य नः सफलयेः सपदि प्रवासम् ॥ १ ॥

वसुधासुधारानगुरोः कराब्जयो-

निहिता सुधा यदि बुधा इयं मया ॥

सफलाऽधुना भवति किं फलाय नो

पठतः कुमारककुलस्य सन्ततम् ॥ १ ॥

संवत् १९९०  
ज्येष्ठ शु० एकादशी

समर्पकः  
सदाशिवशास्त्री जोशी



## किञ्चित्प्रास्ताविकम् ।

विदितमेव तत्र भवताम्भक्तं समेषां गीर्वाणवाणीप्रीतिजुषं विदुषाम् । यत्किल शब्दसामुत्त्वज्ञानाय परमकारुणिकेन श्रीमता भगवता मुनिवरेण पाणिनिना अष्टाध्यायी नाम ग्रन्थो व्यरचि । तस्य परमकारुण्यत् व्याख्यानसापेक्षत्वाच्च न ततो लघुबुद्धिमतामाधुनिकानां शब्दसामुत्त्वप्रतिपत्तिरतो वैयाकरणधुरन्धरेण श्रीमद्भट्टोजिदीक्षितेन 'वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी' निर्माय सञ्चस्करे । बहुविस्तीर्णोऽयं वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीग्रन्थः परिणतबुद्धीनामपि प्रवासगम्य इति दयापाराधनेन श्रीमता करदराजमहाचार्येण 'लघुसिद्धान्तकौमुदीनाम' ग्रन्थस्तत एवोद्भूत इत्युच्यते ।

यद्यप्यस्याः सन्ति बहुचष्टीकाष्टिग्रन्थाः, तथापि सर्वजनसाधारण्यपरममुक्त्यारमतेः संस्कृतभाषाज्ञानवतो गुरुमन्तरापि सूत्रार्थस्य रूपसाधनस्य चानायासबोधलाभाय, छात्राणां परीक्षामहार्णवतरणाय च परमसरल 'सुधा' नाम टीका सरलभाषया मया विरचय्य भेषिक्स्महोदया श्रीहरिदासात्मजश्रीजयकृष्णदासाय प्रकाशनार्थं प्रदायि ।

अस्यां किल प्रत्येकसूत्रार्थः, प्रत्येकरूपस्य साधनिका, तत्तच्छब्दानां तत्तद्भातृनाञ्च रूपाणि, तत्तदर्थान्च सम्यक् प्रदर्शिताः सन्ति ।

अथ च ग्रन्थादौ प्रत्याहारकोष्ठकम्, स्वराणामष्टादशभेदज्ञापकम्, आन्तर्याम्यप्रबन्धज्ञापककोष्ठकम्, वर्णस्थानज्ञापककोष्ठकम्, ग्रन्थान्ते च भाषिणीवशिष्टा, सूत्राणां वार्तिकानां परिभाषाणां भातृनाञ्च अकारादिकमसुचिका, गणपाठः, यावत्प्रयोगाणां भाषार्थश्च सम्यक् प्रदर्शितो वरीवर्ति ।

मन्ये सर्वसंस्करणोत्तरावभाषमिदं संस्करणं विनुषानां कौतुकाय परीक्षादित्सूनां परमसोदाय भवितेति निश्चयम् ।

यद्यप्यस्य लेखने संशोधने वा मम दृष्टिदोषात् प्रतिभ्रंशान्, सीधका-सरविन्वासाद्वा काञ्चन अशुद्धयः सुखं परिमार्जयन्तु दयावन्तो धीमन्तः इति साञ्जिबुद्धिः सम्प्रार्थयते—

विर्जहन्कादशी ।

सदाचिवशास्त्री जोशी



| क्र० सं० | विषयः                  | पृ० सं० | क्र० सं० | विषयः                      | पृ० सं० |
|----------|------------------------|---------|----------|----------------------------|---------|
| १        | संज्ञाप्रकरणम्         | १       | ३१       | तिङन्ते कर्मकर्तृप्रक्रिया | ३५६     |
| २        | अन्तर्निधिप्रकरणम्     | ७       | ३२       | लकारार्थप्रक्रिया          | ३५८     |
| ३        | इच्छन्निधिप्रकरणम्     | १६      | ३३       | कृत्वप्रक्रिया             | ३५९     |
| ४        | निसर्गसन्धिप्रकरणम्    | २५      | ३४       | पूर्वकृदन्तम्              | ३६३     |
| ५        | अजन्तपुल्लिङ्गप्रकरणम् | २९      | ३५       | उखादयः                     | ३६२     |
| ६        | खीलिङ्गप्रकरणम्        | ६०      | ३६       | उत्तरकृदन्तम्              | ३८३     |
| ७        | नपुंसकलिङ्गप्रकरणम्    | ६७      | ३७       | विभक्त्यर्थाः              | ३९३     |
| ८        | इलन्तपुल्लिङ्गप्रकरणम् | ७४      | ३८       | समासे केवलसमासः            | ३९७     |
| ९        | खीलिङ्गप्रकरणम्        | १०८     | ३९       | अभ्युदीभावसमासः            | ३९९     |
| १०       | नपुंसकलिङ्गप्रकरणम्    | ११४     | ४०       | तत्पुरुषसमासः              | ४०३     |
| ११       | अन्वयप्रकरणम्          | १२१     | ४१       | बहुमीहितसमासः              | ४१५     |
| १२       | तिङन्ते भ्वादिप्रकरणम् | १२४     | ४२       | इन्द्रसमासः                | ४२०     |
| १३       | भ्वादिप्रकरणम्         | २०३     | ४३       | समासान्ताः                 | ४२२     |
| १४       | जुहोत्यादिप्रकरणम्     | ३३४     | ४४       | तद्धिते अपत्यधिकारः        | ४२५     |
| १५       | दिवादिप्रकरणम्         | २४९     | ४५       | रक्षाधिकारः                | ४३०     |
| १६       | स्वादिप्रकरणम्         | २६२     | ४६       | चातुरधिकारः                | ४३५     |
| १७       | तुदादिप्रकरणम्         | २६५     | ४७       | शेषाधिकारः                 | ४३७     |
| १८       | रभादिप्रकरणम्          | २८१     | ४८       | विकारार्थकाः               | ४४५     |
| १९       | तनादिप्रकरणम्          | २८४     | ४९       | ठगधिकारः                   | ४४६     |
| २०       | कयादिप्रकरणम्          | ३०४     | ५०       | यदधिकारः                   | ४४८     |
| २१       | चुरादिप्रकरणम्         | ३२१     | ५१       | छबतोरधिकारः                | ४४९     |
| २२       | अयन्तप्रक्रिया         | ३२४     | ५२       | ठगधिकारः                   | ४५१     |
| २३       | सञ्जन्तप्रक्रिया       | ३२६     | ५३       | नघ्स्ननधिकारः              | ४५२     |
| २४       | यञन्तप्रक्रिया         | ३२८     | ५४       | भवनार्थकाः                 | ४५४     |
| २५       | वञ्जुगन्तप्रक्रिया     | ३३२     | ५५       | मत्वर्थाः                  | ४५८     |
| २६       | नामधातवः               | ३३७     | ५६       | प्राग्निधीयाः              | ४६१     |
| २७       | कण्ठवादयः              | ३४२     | ५७       | प्राग्विधीयाः              | ४६४     |
| २८       | असनेपदप्रक्रिया        | "       | ५८       | तद्भावाः                   | ४६८     |
| २९       | परस्मैपदप्रक्रिया      | ३४५     | ५९       | स्त्रीप्रत्ययाः            | ४७१     |
| ३०       | भावकर्मप्रक्रिया       | ३४६     |          |                            |         |

परिशिष्टे

|                |     |                            |     |
|----------------|-----|----------------------------|-----|
| १ टीकाः परिचयः | ४८१ | ५ परिभाषासामकारादिप्रकरणम् | ५०१ |
| २ भाषाविशेषः   | ४८२ | ६ गणपाठः ५०३               | ५०१ |
| ३ भाषाविशेषः   | ४८३ | ७ चातुसूची                 | ५०१ |
| ४ भाषाविशेषः   | ५०० | ८ सार्वप्रयोगाणां सूची     | ५०१ |
|                |     | ९ भाषाविशेषः               | ५०१ |

| वाक्याः    | विचार<br>श्रास<br>अघोष<br>अल्पप्राण  | विचार<br>श्रास<br>अघोष<br>महाप्राण | संवार, नाद, घोष, अल्पप्राण |  |       |                                       |                  | संवार<br>नाद<br>घोष<br>महाप्राण |
|------------|--|------------------------------------|----------------------------|--|-------|---------------------------------------|------------------|---------------------------------|
|            | उदात्त, अनुदात्त<br>स्वरित   |                                    |                            |  |       |                                       |                  |                                 |
| अक्षराणि   | क<br>ख<br>ग<br>घ<br>ङ<br>च<br>ट<br>ठ<br>ड<br>ण<br>त<br>थ<br>द<br>ध<br>न<br>प | ख<br>छ<br>ज<br>झ<br>ञ<br>ष<br>स    | श<br>ष<br>स                | ग<br>ह<br>ज<br>झ<br>ञ<br>ण<br>द<br>ध<br>न<br>प | अ     | इ<br>ए<br>उ<br>ओ<br>ऋ<br>ऐ<br>लृ<br>औ | य<br>र<br>ल<br>व | व<br>म<br>द<br>ध<br>म<br>ह      |
| वर्णसंज्ञा | सृष्ट  |                                    | ईषद्विभूत                  | सृष्ट  | संभूत | लृष्ट                                 | ईषद्विभूत        | सृष्ट                           |

वर्णस्थानानि ।

|    |               |               |
|----|---------------|---------------|
| अ  | क ख ग घ ङ ह   | कण्ठः         |
| इ  | च छ ज झ ञ य श | तालुः         |
| ऊ  | ट ठ ड ढ ण र ष | मूर्धाः       |
| लृ | त थ द ध न ल स | दन्ताः        |
| व  | प फ ब भ म ऋ ए | ओष्ठौ         |
|    | अ म ङ ण न     | नासिकाः       |
| ए  | ऐ             | कण्ठतालुः     |
| ओ  | औ             | फण्योष्ठम्    |
| व  |               | दन्त्योष्ठम्  |
| ऋ  |               | निहाम्युष्ठम् |
| ॠ  |               | नासिकाः       |

वर्तमानाचार्यस्य विरचितं कथं च ज्ञानमध्यमं विद्वत्तया

नाम्यथाहास्यां कोटिकानि ।

|       |        |        |        |        |        |
|-------|--------|--------|--------|--------|--------|
| १ अक् | ८ अक्  | १५ ऐक् | २२ जश् | २९ मक् | ३६ रक् |
| अक्   | ९ इक्  | १६ ङक् | २३ मक् | ३० मक् | ३७ वल् |
| ३ अक् | १० इक् | १७ खर् | २४ म्  | ३१ म्  | ३८ म्  |
| ४ अक् | ११ इक् | १८ क्  | २५ म्  | ३२ म्  | ३९ म्  |
| ५ अक् | १२ उक् | १९ क्  | २६ म्  | ३३ म्  | ४० म्  |
| ६ अक् | १३ एक् | २० चर् | २७ म्  | ३४ म्  | ४१ म्  |
| ७ अक् | १४ एक् | २१ छक् | २८ म्  | ३५ म्  | ४२ म्  |

स्वरस्योच्चरितानि विद्वत्तया ।

| अ इ उ ऋ ए ओ         | अ इ उ ऋ ए ओ ऐ औ          | अ इ उ ऋ ए ओ ऐ औ     |
|---------------------|--------------------------|---------------------|
| १ उच्चरितानुनासिकः  | २ दीर्घोच्चरितानुनासिकः  | ३ उच्चरितानुनासिकः  |
| ४ उच्चरितानुनासिकः  | ५ दीर्घोच्चरितानुनासिकः  | ६ उच्चरितानुनासिकः  |
| ७ उच्चरितानुनासिकः  | ८ दीर्घोच्चरितानुनासिकः  | ९ उच्चरितानुनासिकः  |
| १० उच्चरितानुनासिकः | ११ दीर्घोच्चरितानुनासिकः | १२ उच्चरितानुनासिकः |
| १३ उच्चरितानुनासिकः | १४ दीर्घोच्चरितानुनासिकः | १५ उच्चरितानुनासिकः |
| १६ उच्चरितानुनासिकः | १७ दीर्घोच्चरितानुनासिकः | १८ उच्चरितानुनासिकः |
| १९ उच्चरितानुनासिकः | २० दीर्घोच्चरितानुनासिकः | २१ उच्चरितानुनासिकः |
| २२ उच्चरितानुनासिकः | २३ दीर्घोच्चरितानुनासिकः | २४ उच्चरितानुनासिकः |

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

# लघुसिद्धान्तकौमुदी ।

नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम् ।  
पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ॥ १ ॥

॥ अथ संज्ञाप्रकरणम् ॥

अइउण् १ ऋलृक् २ एओङ् ३ ऐऔच् ४ ह्यवरट् ५ लष् ६ अम-

जयति गणेशो देवो हर्ता विघ्नस्थ सकलभक्तानाम् ।

अबुर्त्तनां लोके सिद्धिप्रद एष विख्यातः ॥ १ ॥

पित्रोः पादयुगं मत्वा दयासागरसद्गुरुम् ।

वन्दे गणपतिस्थितं शब्दागमविस्तारदम् ॥ २ ॥

कर्पूरपूरोज्ज्वलकायकान्ति गौरीपतिं चिन्तयता मयेधम् ।

जोषीस्थुपाद्देन सदाशिवेन टीका सुधाख्या रचिता श्रमेण ॥ ३ ॥

नत्वेति । अञ्जलिशिरःसंयोगादिव्यापारेण तोषयित्वेत्यर्थः । सरस्वतीमिति । सरो  
विष्णुस्थानमस्त्यस्याः इति सरस्वतीः ताम् वाग्देवतामित्यर्थः । देवीमिति । दीव्यति  
प्रलये सर्वान् स्वस्यां निवेश्य ऋडतीति देवी ताम् । पंचादिषु देवदशब्दपाठात् ततो  
डीपि रूपम् । शुद्धामिति । शुद्धस्वरूपाम् दोषरहितामित्यर्थः । गुण्यामिति । प्रशस्ता गुण्या  
वस्थाः सा ताम् । गुणत्रयमध्ये प्रशस्त- ( सत्त्व ) गुणवतीमित्यर्थः । निरुक्तविशेषणद्वयं  
ग्रन्थपक्षेऽपि योज्यम् । तथाहि—शुद्धास-काठिन्यादिदोषरहितामित्यर्थः । गुण्यां शब्द-  
न्युत्पत्तिज्ञानादिप्रशस्तबहुगुणवतीमित्यर्थः । करोमीति । हुकृञ् करणे अस्मात्कर्तारि  
लटि रूपम् । उत्पत्त्यनुकूलव्यापारो हि कृधात्वर्थः । पाणिनीयप्रवेशावेति । पाणिनिना  
श्लोके “तदधीते तद्वेद” इत्यर्थे “शुद्धाञ्छः” इति छः, पाणिनीयं महाव्याकरणम् ;  
तस्मिन् बुद्धेः प्रवेशार्थमित्यर्थः । लघुसिद्धान्तेति । मोदत इति मुदः कौमुदः कुमुदग्रन्थः  
तस्येयं “तस्येदम्” इत्यणि कौमुदी ज्योत्स्ना, लघ्वी चासौ सिद्धान्तकौमुदी चेति तौ ।  
अत्यल्पम् ( संक्षिप्तम् ) अप्यनेकशब्दसिद्धान्तार्थप्रकाशजनिकमिति यावत् ॥

अ इ उ ण् इति । संहिताया अविवक्षया नात्र सन्धिकार्यम् । सौप्रधान्यैतेभ्यो  
विभक्त्युत्पत्तिः । कारप्रत्ययोऽपि न “कारात्कार” इत्यत्र बहुलमित्यनुवर्तनात् । ह्यव-  
रदिति । अङ् अङ् इङ् इङ् प्रत्याहारेषु हकारग्रहणार्थाञ्च हकारोपदेश आदेशकः ।

ऊणानम् ७ भूमम् ८ घटघष ९ जवगडदश १० खफछुथचटतव ११  
कपय १२ शषस्त्र १३ हल् १४ ॥ इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि ।  
एषामन्त्या इतः । हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः । लण्मध्ये त्वित्संज्ञकः ॥ हल्-  
न्त्यम् । १।३।३। उपदेशोऽन्त्यं हलित्यात् । उपदेश आद्योच्चारणम् । सूत्रे-

अटि हकारोपदेशप्रयोजनं तु—अहंण इत्यत्र अहन्त्यवायेऽपि णत्वार्थम् । अशि हकार-  
प्रयोजनम्—दैवा हसन्ति इत्यत्र “भो भगो” इति अशनिमित्तकं रोयत्वार्थम् । हशि  
हकारप्रयोजनम्—दैवो हसति इत्यत्र “हशि च” इत्युत्त्वार्थम् । इणि हकारप्रयोजनम्—  
लिलिहिद्वे-लिलिहिद्वे इत्यत्र “विभाषेतः” इत्यनेन वैकल्पिकद्वयार्थम् ॥ लणिति ।  
ननु “अइउण्” इत्यत्र णकारानुबन्धेनैवाणादिप्रत्याहारसिद्धौ पुनरिह णकारानुबन्ध-  
ग्रहणं व्यर्थमिति चेद ; न । व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम् इति  
परिभाषाज्ञापकत्वेन तस्य साफल्यत्वात् ॥ हलिति । “हयवरट्” इत्यत्र हकारोपदेशेनैव  
सिद्धौ पुनरिह हकारोपदेशो व्यर्थ इति न च शङ्क्यम् । वल्, रल्, शल्, शल्,  
प्रत्याहारेषु हकारोपदेशत्वेन तत्र हकारग्रहणस्य सार्थक्यात् । तथाहि—वलि हकारोपदे-  
शप्रयोजनम्—रदिहि स्वपिहि अत्र “रुदादिभ्यः सार्वधातुके” इति वलादिलक्षणेडागमा-  
र्थम् । रलि हकारोपदेशप्रयोजनम्—स्निहित्वा-स्नेहित्वा इत्यत्र “रलो व्युपधात्” इति  
कित्त्वार्थम् । शलि-अदागधाम् इत्यत्र घस्यासिद्धत्वेन हकारस्य शल्त्वात् “शलोशलि” इति  
सकारलोपार्थम् । शलि-अलिषत् इत्यत्र “शलङ्गुपधादिनटः क्सः” इति श्लेः क्सादेशार्थम् ॥  
ननु इमानि सूत्राणि मुनित्रयग्रन्थबहिर्भूतत्वादप्रमाणमित्यत आह—इति माहेश्वराणि  
सूत्राणीति । महेश्वरादागतानि माहेश्वराणि “तत आगतः” इत्यण् । महेश्वरा-  
व्याप्तानीति यावत् । ननु महेश्वरप्रणीतसूत्राणामेषां वैयाकरणसिद्धान्तप्रकाशने उप-  
योगमात्रादिह तदुपन्यासो व्यर्थ इत्यत आह—अणादिसंज्ञार्थानीति । अण् आदिर्यासां  
ताः अणादयः ; अणादयश्च ताः संज्ञाश्च अणादिसंज्ञाः ताः अर्थः प्रयोजनं येषां तानि  
अणादिसंज्ञार्थानि । एषां सूत्राणाम् अणादिसंज्ञाद्वारा व्याकरणशास्त्रे उपयोगज्ञानार्थ-  
क्यमिति भावः । एषामन्त्या इत इति । एषां उदाहृतसूत्राणां अन्त्याः—अन्ते भवाः  
णकारादिवर्णाः इत्संज्ञकाः प्रयेतक्या इत्यर्थः । हकारादिष्विति । हकारादीनां सुखोच्चार-  
णार्थं पुनः पुनरुच्चारणपाठ इत्यर्थः । अन्यथा ‘ह य व र’ इत्येवं क्लिष्टोच्चारणापत्तिरिति  
भावः । लण्मध्ये त्विति । लण्सूत्रघटकोऽकार इत्संज्ञकः, रप्रत्याहारसिद्धयर्थमिति भावः ॥  
तेन “उरण् रपरः” इति सूत्रस्थरप्रत्याहारेण रलयोर्ग्रहणमिति यावत् । उपदेशोऽन्त्य-  
मिति । आद्योच्चारणविषयीभूतो यः शब्दस्तस्यान्त्यं हल् इत्संज्ञकः स्यादिति फलि-  
तोऽर्थः । आद्योच्चारणमिति । आद्यानां शिवपाणिनिप्रभृतीनामाद्यमुच्चारणमुपदेशः ।  
यद्वा आद्यञ्च तदुच्चारणञ्चेत्याद्योच्चारणम्, प्रथममुच्चारणमित्यर्थः । शिवपाणिनिप्रभृ-  
तीनामाद्यमुच्चारणमुपदेशः । केचित्तु—“धातुसूत्रेणोणाविवाक्यलिङ्गानुशासनम् ।

षट्ष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र ॥ अदर्शनं लोपः । १।१।६०। प्रसक्त-  
स्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात् ॥ तस्य लोपः । १।३।६। तस्येति लोपः स्यात् । णाद-  
योऽणाद्यर्थः ॥ आदिरन्त्येन सहेता । १।१।७१। अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्य-  
गानां स्वस्य च संज्ञा स्यात् । यथा—अणिति अइउवर्णानां संज्ञा । एवमक् अच् इल्  
अलित्यादयः ॥ ऊकालोऽज्जम्भस्वदीर्घप्लुतः । १।२।२७। उश्च ऊश्च ऊर्श्च वः ।  
वां काल इव कालो यस्य सोऽच क्रमाद्ध्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात् । स प्रत्येकमु-  
दात्तादिभेदेन त्रिधा ॥ उच्चैरुदात्तः । १।२।२६। तात्वादिषु समागेषु स्थानेषु-

आगमप्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः ॥ इत्याहुः । प्रसक्तत्वेति । शास्त्रतोऽर्थतश्च  
प्रसक्तस्य प्राप्तोच्चारणस्येत्यर्थः । दृशोर्ज्ञानसोमान्यार्थकत्वात्तस्य च निषेधाऽसम्भवादु-  
च्चारणसत्ताया एव निषेध इति भावः ॥ णादयोऽणाद्यर्थः इति । अण् आदियेषां तेऽणा-  
द्यस्तेऽर्थाः प्रयोजनं येषान्तेऽणाद्यर्थाः । णादयः—ण् क इ च प्रभृतयः इत्संज्ञावर्णाः  
अणादिप्रत्याहारप्रयोजनकाः इति यावत् ॥ आदिरन्त्येन सहेतेति । अन्ते भवः अन्त्यः ।  
तेन इता सहोच्चार्यमाणः आदिः अण् अच् इत्यादिरूपः संज्ञेत्यर्थः । यस्मात्पूर्वं नास्ति  
परञ्चास्ति स आदिः । यस्मात्परं नास्ति पूर्वञ्चास्ति सोऽन्तः । इह्यन्ताभ्यामवयवत्वेन  
बोधकाभ्यां शब्दाभ्यां मध्यगा आक्षिप्यन्ते । अतस्तेषां संज्ञेति लभ्यते । स्वं रूप-  
मिति पूर्वसूत्रात्स्वमित्यनुवर्तते । तच्च षष्ठ्यन्ततया विपरिणम्यते तदेतदाह—अन्त्ये-  
नेतेत्यादि । स्वस्य चेति । अत्र च स्वशब्देन संज्ञाकोटिप्रविष्ट आदिरेव परामृश्यते इति  
भावः । ऊकाल इति । ह्रस्वदीर्घप्लुतः इति समाहारद्वन्द्वः सौत्रं पुंस्त्वम् । एकद्वित्रि-  
मात्रिकोकारणामुच्चारणकालसदृशोच्चारणकालविशिष्टोऽच क्रमशो ह्रस्वदीर्घप्लुत-  
संज्ञको भवतीति सूत्रार्थः । प्राथम्यादकारोच्चारणमेव युक्तमिति न च शङ्क्यम् । कुक्कु-  
रुस्ते उकारे एकद्वित्रिमात्रत्वप्रसिद्धेरकारस्थानुक्तेः । वां काल इति । वः इति उग्रह्रस्वस्य  
प्रथमाबहुवचनम् । वमिति षष्ठीबहुवचनम् । वां काल इव कालो यस्येति फलितार्थ-  
कथनमिति यावत् । एकमात्रात्मकं उसदृशोच्चारणकालिको योऽच स ह्रस्वसंज्ञको  
भवति । एवं द्विमात्रात्मकोकारोच्चारणकालसदृशः कालो यस्याचः स दीर्घसंज्ञको भव-  
ति । एवं त्रिमात्रात्मकोकारोच्चारणकालसदृशो योऽच सः प्लुतसंज्ञको भवति । स प्रत्येक-  
मिति । सः ( लब्धह्रस्वादिसंज्ञकः ) ह्रस्वः, दीर्घः, प्लुतश्च अच् प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन-  
उदात्तत्वेन, अनुदात्तत्वेन, स्वरितत्वेन च धर्मविशेषेण त्रिधा त्रिभिः प्रकारैर्वर्तते इत्यर्थः ।  
उदात्तसंज्ञमाह—उच्चैरुदात्त इति । नाद्धर्मविशेषः, उच्चैस्त्वन्निवह न विवक्षितम् ।  
उपांशुच्चार्यमाणे अव्याप्तेः । किन्तु उच्चैः शब्दः अधिकरणशक्तिप्रधानः उद्धर्माणो  
इत्यर्थं वर्तते । “ऊकालोऽच” इत्यत अच् इत्यनुवर्तते, तदेतदाह—तात्वादिष्वित्या-  
दिना । समागेष्विति । तात्वादीनां सावयवत्वकथनं उद्धर्माणो इत्यस्योपपादनार्थम् ।  
तेषामखण्डत्वे उद्धर्माणो इत्यनुपपत्तेः ॥ नीचैः शब्दः अधिकरणशक्तिप्रधानः, अघो-

वर्धभागे निष्पन्नोऽनुदात्तसंज्ञः स्यात् । नीचैरनुदात्तः । १।२।३० तात्त्वादिषु  
समागेषु स्थानेष्वधो भागे निष्पन्नोऽनुदात्तसंज्ञः स्यात् । समाहारः स्वरितः । १।  
२।३१ उदात्तत्वानुदात्तत्वे वर्णधर्मो समाहियेते यस्मिन् सोऽच् स्वरितसंज्ञः स्यात् ।  
स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकत्वाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ॥ मुखनासिकावच-  
नोऽनुनासिकः । १।१।८ मुखसहितनासिकयोर्ध्वार्माणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्या-  
त् । तद्वित्थम्—अइउऊ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः । लृवर्णस्य द्वादश ।  
तस्य दीर्घाभावात् । एचामपि द्वादश । तेषां ह्रस्वाभावात् ॥ तुल्यास्यप्रयत्नं सव-  
र्णम् । १।१।९ तात्त्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चैतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सव-

भागे इत्यर्थे वर्तते, तदाह—नीचैरिति । समाहारः स्वरित इति । पूर्वसूत्राभ्यां उदात्ता-  
नुदात्तपदे अनुवृत्ते व्याख्यानात् धर्मप्रधाने षष्ठ्यान्ततया च विपरिणम्येते । यस्मिन्  
समाहरणं स समाहारः । अधिकरणे घञ् । ततश्च उदात्तत्वानुदात्तत्वयोर्धर्मयोर्धर्मिप्रत्ययि  
मेलनं सोऽच् स्वरितसंज्ञक इत्यर्थः । तदेतत्कलितमाह—उदात्तत्वानुदात्तत्वे इति ।  
स नवविधोऽपीति । १ उदात्तह्रस्वः, २ अनुदात्तह्रस्वः, ३ स्वरितह्रस्वः, ४ उदात्तदीर्घः,  
५ अनुदात्तदीर्घः, ६ स्वरितदीर्घः, ७ उदात्तप्लुतः, ८ अनुदात्तप्लुतः, ९ स्वरितप्लुतः,  
इति रीत्या न एकैकः अच् नवविधः स्थितः स प्रत्येकमनुनासिकत्वेन अननुनासिकत्वेन  
च द्विधा द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां वर्तते इत्यर्थः । मुखनासिकेति । मुखद्वितीया नासिका मुख-  
नासिकेति शक्यार्थिवादित्वादुत्तरपदलोपः । उच्यतेऽथौ वचनः ‘कर्मणि ल्युट्’ । मुख-  
नासिकया वचनः मुखनासिकावचन इति । ननु अष्टादशभेदाः किं सर्वेषामचामवि-  
शिष्टाः, नेत्याह—तद्वित्थमिति । अष्टादशभेदा इति । अष्टादशप्रकारा इत्यर्थः । दीर्घाभावा-  
दिति । तथाच उदात्तलृकारदीर्घः, अनुदात्तलृकारदीर्घः, स्वरितलृकारदीर्घः । ते च अनु-  
नासिकाक्षयः अननुनासिकाक्षय इति षड्भेदानामभावे सति ह्रस्वप्रपञ्चः षड्विधः प्लुत-  
प्रपञ्चश्च षड्विध इति लृकारस्य द्वादशविधित्वमेवेति भावः । लृकारस्य दीर्घाभावे—  
होतृ लृकार इत्यत्र सवर्णदीर्घे कृते होतृकारः इति ऋकारस्यैव “तुल्यास्य” सूत्रे “अक-  
सवर्णे” इति सूत्रे च भाष्योदाहरणमेव प्रमाणम् । ह्रस्वाभावादिति । यदि एचो ह्रस्वा-  
स्युस्तिर्हि वर्णसमाम्नाये त एव लाघवात् अ इ उ इत्यादिवत् पठ्येरन् । न तु दीर्घा-  
गौरवात् । अतः एचो ह्रस्वाः न सन्तीति विज्ञायते । एवञ्च ह्रस्वप्रपञ्चषड्भेदाभावात्  
द्वादशविधत्वमेवैवाम् इति भावः । तुल्यास्येति । आस्ये—मुखे भवम् आस्यं तात्त्वादि-  
स्थानम् “शरीरावयवाद्यत्” इति भवार्थे यद्यप्ययः । प्रकृष्टो वलः प्रयत्नः । आस्यं च  
प्रयत्नश्च आस्यप्रयत्नौ, तुल्यास्यप्रयत्नौ यस्य वर्णजालस्य तत् तुल्यास्यप्रयत्नं परस्परं  
सवर्णसंज्ञकं स्यादिति भावस्तदाह—तत्त्वादीति । मिथ इति । परस्परमित्यर्थः । कस्य  
किं स्थानमित्याकाशकायां लघुवत्स्वभावकाणि पणिम्यादिसिवावयवानि अर्जतः लघुव-

र्णसंज्ञः स्यात् । ( अतुल्यार्थयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम् ) ऋहृनिसर्जनीयानां कण्ठः । इचुयशानां तालु । ऋदुरषणां मूर्धा । लृतुलसानां दन्ताः । तपृषणा-  
नीयानामोष्ठौ । अमढण्मनानां नासिका च । एदैतोः कण्ठतालु । ओदौतोः  
कण्ठोष्ठम् । ककारस्य दन्तोष्ठम् । जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् । नासिकाशु-  
स्वारस्य ॥ यत्नो द्विवा-आभ्यन्तरो बाह्यश्च । आद्यः पञ्चधा, स्पृष्टेष्वत्स्पृष्टेष्विद्वत्-  
विवृतसंवृतमेदात् । तत्र स्पृष्टं प्रयतनं स्पर्शानाम् । ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम् । ईष-  
द्विवृतमूष्मणाम् । विवृतं स्वराणाम् । ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम् । प्रक्रिया-

इति—अकुहेत्यादिना । 'अ' इत्यष्टादशमेदा गृह्यन्ते । 'कु' इति काविपञ्चकात्मकाः कवर्गाः ।  
अश्च कुश्च हश्च विसर्जनीयश्चेति विग्रहः । विसर्जनीयशब्दोऽपि विसर्गपर्यायः ।  
इचुयशेति । 'इ' इत्यष्टादश भेदाः । 'चु' इति चवर्गाः । इश्च चुश्च यश्च शश्चेति विग्रहः ।  
ऋदुरषेति । 'ऋ' इत्यष्टादश भेदाः । 'दु' इति टवर्गाः । आ च टुश्च रश्च षश्चेति विग्रहः ।  
'ऋ' शब्दस्य आ इति प्रथमैकवचनान्तम् , घाता इतिवत् । लृतुलसेति । 'लृ'  
इत्यस्य द्वादश भेदाः । 'तु' इति तवर्गाः । आ च तुश्च लश्च सश्चेति विग्रहः । लृ-  
ऋदस्यापि आ इत्येव प्रथमैकवचनान्तत्वम् आ, अलौ अलः इति । दन्तशब्देन  
दन्तमूलप्रदेशो विवक्षितः । अन्यथा भ्रमदन्तस्य तदुच्चारणानुपपत्तेः । उपपेति ।  
'उ' इत्यष्टादशभेदाः । 'पु' इति पवर्गाः । उश्च पुश्च उपध्मनीयश्चेति विग्रहः । उपध्मा-  
नीयशब्दस्य व्याख्यानमनुपदमेव मूले स्पष्टं भविष्यति । अमढणनेति । अश्च मश्च  
उश्च णश्च नश्चेति विग्रहः । चकारेण स्वस्ववर्गीयस्थानसमुच्चयः । एदैतोरिति ।  
एचव ऐच्च एदैतौ । तपरकरणमसन्देहायम् । ओदैतोरिति । औच्च औच्च ओदैतौ ।  
तपरकरणं पूर्ववदसन्देहायमेव । जिह्वामूलीयस्येति । × क × ख इति कखभ्यां  
प्रागर्ध्वविसर्गसदृशो जिह्वामूलीय इति अग्रे मूले एव उक्तम् । अनुस्वारस्येति । स्थानमिति  
शेषः । अनुस्वारस्य नासिकास्थानमस्तीति भावः । यत्नो द्विषेति । यत्नानामाभ्यन्तरस्य  
बाह्यत्वं च वर्णोत्पत्तेः प्रागूर्ध्वभाववित्त्वमिति पाणिन्यादिशिवासु स्पष्टम् । यत्न इति ।  
वत्तनशब्दोऽत्र प्रयत्नपरः । आद्य इति । आभ्यन्तरप्रयत्न इत्यर्थः । कथं पञ्चधा  
इत्यत आह—स्पृष्टेत्यादिना । तत्रेति । स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत, संवृत एषु मध्ये  
इत्यर्थः । प्रयतनमिति । प्रयत्न इत्यर्थः । स्पर्शानामिति । स्पर्शवर्णानामित्यर्थः । के ते  
वर्णाः इति मूले स्फुटीभविव्यन्ति । तथापि निर्दिश्यन्ते अत्रापि—क ख ग घ ङ, च छ  
ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, कवर्णादारभ्य भवर्णपर्यन्तम् ।  
अन्तःस्थानामिति । वरलघ्वानामित्यर्थः । कृष्णामिति । श ष स ह इत्येतेषामित्यर्थः ।  
स्वराणामिति । अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ इत्येतेषामित्यर्थः । प्रयोगे इति । साम्नीय-  
प्रक्रियाभिः परिनिष्ठितानां रामः कृष्णः इत्यादिकव्यानां प्रयोगे क्रियमात्रे एव इत्य-  
व्यावर्त्यं संवृतत्वमित्यर्थः । प्रतिवेति । साम्नीयकार्यप्रवृत्तिसमये दन्त-बाह्य



दशायां तु विवृतमेव ॥ बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा । विवारः संवारः श्वासो नादोऽ-  
घोषो घोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति । खरो विवाराः श्वासा-  
अघोषाश्च । हश्च संवारा नादा घोषाश्च । वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्वा-  
ल्पप्राणाः । वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः । कादयो मावसानाः स्पृशाः ।  
यणोऽन्तःस्थाः । शल ऊष्माणः । अचः स्वराः । ५क ५ख इति कक्षाभ्यां प्रागर्ध-  
विसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः । ५प ५फ इति पक्षाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मा-  
नीयः । अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ ॥ अणुदित्सवर्णस्य चा-  
प्रत्ययः । १।१।६१ प्रतीयते विधीयत इति प्रत्ययः । अविधीयमानोऽणुदित्सवर्णस्य  
संज्ञा स्यात् । अत्रैवाण् परेण णकारेण । कुचुडतुपु एते उदितः । तदेकम्—अ इत्य-  
ष्टादशानां संज्ञा । तथैकारोकारौ । ऋकारस्त्रिंशतः । एवं लृकारोऽपि । एचो द्वादशा-

इत्यादौ सवर्णदीर्घादिकर्तव्ये तु विवृतत्वमेव । तेन सन्धिकार्यं निर्वाधमेव । एतत्सर्वं  
“पूर्वत्रासिद्धम्” इत्यनेन ज्ञापितमिति सिद्धान्तकौमुद्यां स्पष्टम् । बाह्येति । वर्णोत्प-  
त्त्यनन्तरजातो यतो बाह्यप्रयत्न इत्युच्यते । खर इति । ख फ छ ठ थ च ट त क प  
श ष स इति वर्णाः । विवारा इति । विवारादिप्रयत्नवन्तः इत्यर्थः । हश्च इति । ह य  
च र ल ज म ङ न न श भ घ ढ ध ज व ग ङ द इति वर्णा इत्यर्थः । संवारा इति ।  
संवारादिप्रयत्नवन्तः इत्यर्थः । अल्पप्राणा इति । कण्ठ, चञ्ज, टण्ण, तदन, पवम,  
यरलव इत्येतेषां वर्णानाम् अल्पप्राणः इति भावः । खच, छञ्ज, ठङ्, थध, फभ शफसह  
इत्येतेषां महाप्राणः इत्यपि ज्ञेयम् । कादय इति । कख इत्यादिमपर्यन्तमिति पूर्व-  
मुक्ताः वर्णाः इत्यर्थः । क आदियेषां ते कादयः म अवसाने येषान्ते मावसाना इति ।  
यण इति । यण् प्रत्याहारान्तर्गतवर्णाः ‘यरलवाः’ इत्यर्थः । शल इति । शलप्रत्याहार-  
न्तर्गतवर्णाः ‘श ष स ह’ इत्येते । स्वरा इति । स्वेन सजत इति स्वराः ‘अ इ उ ऋ  
लृ ए ओ ऐ औ’ इति वर्णा इत्यर्थः । अणुदिति । अणु अविधीयमानः सवर्णबोधकः  
उदित् विधीयमानोऽपि सवर्णबोधको भवतीत्यर्थः । तेन “ऋत उत्” इत्यादौ विधी-  
यमाने उति न सवर्णग्रहणम् । “कुहोरनुः” “चोःकुः” इत्यादौ विधीयमानेऽपि सवर्ण-  
ग्रहणमिति भावः । अत्रैवेति । अस्मिन्नेव सूत्रे इत्यर्थः । अन्यत्र तु “अणोऽप्रगृह्य” इत्यादौ ।  
पूर्वणकारेण सह प्रत्याहारः । अत्र व्याख्यानमेव शरणम् । पूर्वणैवाण् ग्रहाः सर्वे परेणैवेण्-  
ग्रहा मताः । ऋतेऽणुदित्सवर्णस्येत्येतदेकं परेण तु ॥ इति भाष्यकारेणोक्तम् । उदित इति ।  
उदित्वेन रूपेण बोधकाः । तदेकमिति । तत् “अणुदित्” सूत्रम्, एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण  
फलतीत्यर्थः । अष्टादशानामिति । (१) ह्रस्वोदात्तानुनासिकः (२) ह्रस्व, उदा० अननु० ।  
(३) ह० अनुदा० अनु० । (४) ह० अनु० अननु० । (५) ह० स्व० अ० । (६) ह० स्व०  
अननु० ॥ (७) दीर्घ, उ० अ० । (८) दी० उ० अननु० । (९) दी० अ० अननु० । (१०) दी०

नाम् । अनुनासिकाऽनुनासिकभेदेन यवला द्विधा । तेनाऽनुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः  
संज्ञा ॥ परः सन्निकर्षः संहिता । १।४।१०६। वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहिता-  
संज्ञः स्यात् । हलोऽनन्तराः संयोगः । १।१।७। अग्निभरव्यवहिता हलः संयो-  
गसंज्ञाः स्युः ॥ सुप्तिङन्तं पदम् । १।४।१४। सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात् ॥

इति संज्ञाप्रकरणम् ॥

## ॥ अथाचमन्विप्रकरणम् ॥

इको यणचि । ३।१।७। इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये ।  
सुधी उपास्य इति स्थिते ॥ तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य । १।१।६६। सप्तमी-  
निर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाध्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम् ॥ स्थानेऽ-

अ०अन० । (११) दी०स्व०अ० । (१२) दी०स्व०अन० ॥ (१३) प्लुतउ०अ० । (१४) प्लु०  
उ०अन० । (१५) प्लु०अ०अ० । (१६) प्लु०अ०अन० ॥ (१७) प्लु०स्व०अ० । (१८) प्लु०  
स्व०अननु० ॥ इत्येतेषामित्यर्थः ॥ तथेति । अनया रीत्या इकार-उकारयोरपि बोध्यम् ।  
ऋकार इति । अनेन प्रकारेण । ऋकारस्य अष्टादश । लकारस्य दीर्घाभावात्, लकारदीर्घ-  
षट्कं विहाय द्वादश । ऋकारलकारयोः सावर्ण्यात् मिलित्वा त्रिंशत् इति भावः ॥ एव-  
मिति । पूर्वोक्तप्रकारेणैव । एच इति । द्वादशानां बोधकाः । तदेवम्-ए, ओ, ऐ, औ, इति  
प्रत्येकं द्वादश इति भावः । ननु स्थानप्रयत्नयोस्तुल्यत्वात् सावर्ण्येन ए ऐकारस्य, ओ  
औकारस्य बोधकस्तेन चतुर्विंशतेः सञ्ज्ञकः एकारः, एवमोकारः स्यादिति चेद्, न ।  
“ऐऔच्” इति पृथक् सूत्रत्वेन तयोः सावर्ण्याभावज्ञापकत्वात् ॥ तेनेति । यवलायां  
प्रकारद्वयेन । परः सन्निकर्ष इति ॥ परः अतिशयितः, सन्निकर्षः सामीप्यं अर्धमात्रा-  
धिककालव्यवधानाभावः । अर्धमात्राकालव्यवधानस्य अवर्जनीयत्वात् । तदेतदभि-  
प्रेत्याह—अतिशयित इत्यादिना । संहितेति । स्वभावसिद्धार्धमात्रातिरिक्तकालव्यवायशून्यः  
संहिता इति भावः । संयोग इति । स्वरसंज्ञकवर्णैर्व्यवधानशून्या हलवर्णाः संयोगसंज्ञका  
इत्यर्थः । सुप्तिङिति । ‘स्वौजसमौट्’ इति सूत्रे सुइत्यारभ्य सुपः पकारेण प्रत्याहारः ।  
ननु सप्तमीबहुवचनस्यैवात्र ग्रहणम्, व्याख्यानात् ॥ “तिसस् क्षि०” इति सूत्रे ति  
इत्यारभ्य महिङो ङकारेण प्रत्याहारः । सुप् च तिङ् च सुप्तिङौ तावन्ते यस्य तत्  
सुप्तिङन्तं शब्दस्वरूपम् इति शब्दशास्त्रप्रस्तावाद्ब्रूम्यते । अन्तशब्दश्च प्रत्येकं सम्बध्यते  
तदेतदभिप्रेत्याह—उबन्तमित्यादिना । इति संज्ञाप्रकरणम् ।

इकः स्थान इति । इकः इति षष्ठी “षष्ठी स्थाने योगा” इति सूत्रेण स्थान इति  
लभ्यते । स्थानञ्च प्रसङ्गः । तथाहि—इकामुच्चारणप्रसङ्गे यणामुच्चारणं कर्तव्य-  
मित्यर्थः ॥ सुधी इति । यै चिन्तायामिति धातोः “ध्यायतेः सम्प्रसारणञ्च” इति क्विपि  
यकारस्य सम्प्रसारणे इकारे पूर्वरूपे “हलश्च” इति दीर्घे धीशब्दो निष्पन्नः । शोभना

न्तरतमः । १११५० । प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात् । सुध् व् उपास्य  
इति जाते ॥ अनचि च । १११५१ । अचः परस्य यरो हे वा स्तो न त्वचि ॥  
भलां जश् भशि । १११५२ । स्पष्टम् । इति धकारस्य दकारः ॥ संयोगान्त-  
स्य लोपः । १११५३ । संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात् ॥ अस्य-  
स्य । १११५४ । षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्याल आदेशः स्यात् । इति यलोपे प्राप्ते । ( यणः  
प्रतिषेधो वाच्यः ) । सुद्युपास्यः, मध्वरिः, धात्रंशः, लाकृतिः ॥ एचो-  
ऽयवायावः । १११५५ । एचः क्रमादय् अच् आय् आच् एते स्युरचि ॥ यथा-  
संख्यमनुदेशः समानाम् । ११३१० । समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात् । हरये,

धीषणान्ते सुधियः । सुधीभिः उपास्यः सुद्युपास्यः ॥ अत्र सुधी उपास्य इति स्थिते  
“इको यणचि” इति सूत्रेण अज्जन्यवहितपूर्वइक्-धकारोत्तरवर्ति ई, तस्य स्थाने “स्थाने-  
ऽन्तरतमः” इति सूत्रेण ‘य’ न तु “वरलाः” आन्तरतम्याभावात् । ‘सुधय् उपास्य’ इति  
जाते “अनचि च” इति सूत्रेण धकारस्य द्वित्वे “भलां जश् भशि” इति सूत्रेण प्रथम-  
धकारस्य दकारे सुधय् उपास्य इत्यवस्थायां “संयोगान्तस्य लोपः” इति सूत्रेण  
यकारस्य लोपे प्राप्ते “यणः प्रतिषेधो वाच्यः” इति वार्तिकेन यलोपनिषेधे सति सुद-  
युपास्यः इति रूपं सिद्धम् ॥ मध्वरिः इति ॥ मधोः अरिः मध्वरिः । मधुनामकदैत्यस्य  
अरिः शत्रुः श्रीकृष्ण इत्यर्थः ॥ अत्र साध्यते-मधु-अरिः इति स्थिते “इको यणचि” इति  
सूत्रेण अज्जन्यवहितपूर्वत्वविशिष्ट इक् धकारोत्तरवर्त्ति ‘उ’ तस्य स्थाने “स्थानेऽन्त-  
रतमः” इति परिभाषया (वकारस्य दन्तोष्ठम्-उपूपध्मानीयानामोष्ठौ उभयोः  
उकारवकारयोः स्थानसाम्यात्) ‘व’ जाते ‘मध्व् अरिः इत्यवस्थायाम् “अनचि च”  
इत्यनेन द्वित्वे “भलां जश् भशि” इत्यनेन धकारस्य दकारे “संयोगान्तस्य लोपः”  
इति सूत्रेण लोपे प्राप्ते “यणः प्रतिषेधो वाच्यः” इत्यनेन निषिद्धे सति मध्वरिः इति  
रूपं सिद्धम् । धात्रंशः इति । धातुः अंशः धात्रंशः । धातु अंशः इति स्थिते “इको  
यणचि” इत्यनेन ऋ स्थाने स्थानेऽन्तरतमपरिभाषया र् कृतः । अत्रापि “संयोगान्तस्य  
लोपः” इति लोपे प्राप्ते “यणः प्रतिषेधो वाच्यः” इत्यनेन निषिद्धे “धात्रंशः” इति  
सिद्धम्भवति ॥ लाकृतिरिति । लुरिव आकृतिः यस्य सः इति विग्रहः इति भावः । ल-  
आकृतिः इत्यत्र “इको यणचि” इत्यनेन स्थानत आन्तर्यात् ल् इत्यस्य स्थाने ल् इति,  
अत्रापि लोपे प्राप्ते निषिद्धे सति अज्जीनं परेण संयोज्यं लाकृतिः इति रूपं सिद्धम् ॥  
समसम्बन्धीति ॥ समानामिति यदि कर्मणि षष्ठी तर्हि स्थान्यादिभिः समसंख्यानां यत्र  
विधानं तत्रैव यथासंख्यमित्यस्य प्रवृत्तिः, यथा-“एचो ऽयवायावः” इत्यत्र ननु “सम्-  
लङ्घितजीवेषु हन् कृम् ग्रहः” इत्यत्र । तत्र विधेयस्य ‘णमुल्’ इत्यस्य एकत्वात् । अतः  
समानामिति सम्बन्धे षष्ठी इति भावः ॥ हरये इति ॥ हरे-ए इति स्थिते “एचो ऽयवा-  
यावः” इत्यनेन एच्-प्रत्याहारवृत्तः हरे इत्यत्र रेफोत्तरवर्त्ती एकारः तस्य स्थाने अच्

विष्णवे, भायकः, पावकः ॥ वान्तो वि प्रत्यये । ६।१।७६। मकारादौ प्रत्यये  
परे ओदैतोरवावौ स्तः । गव्यम्, नाव्यम् । ( अध्वपरिमाणे च ) । गव्यूतिः ॥  
अदेङ् गुणः । १।१।११। अदेङ् च गुणसंज्ञः स्यात् ॥ तपरस्तत्कालस्य । १।१।६७।  
तः परो यस्मात्स च तात्पर्योच्चार्यमाणः समकालस्यैव संज्ञा स्यात् । आद्गुणः  
६।१।७७। अवर्गादवि परे पूर्वपरयोरेको गुणदेशः स्यात् । उपेन्द्रः । गङ्गोदकम् ॥  
उपदेशेऽजनुनासिक इत् । १।१।१२। उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात् । प्रति-  
जानुनासिक्याः पाणिनीयाः । लणसूत्रस्थावर्णोऽसहोच्चार्यमाणो रेको रलयोः संज्ञा ॥

आदेशो जातः । अच्प्रत्याहारघटक एकारे परे । तेन 'हरय् ए' इति जाते । अज्जीनं  
परेण संयोज्यम्, हरये इति सिद्धम् ॥ विष्णवे इति । विष्णो ए इति स्थिते "एचो-  
ज्यवायावः" इत्यनेन अचि एकारे परे "विष्णो" अत्रस्थो य ओकारः तस्य स्थाने अव्  
आदेशः कृतः ॥ विष्णव् ए इति जाते मिलित्वा विष्णवे इति रूपं सिद्धम् ॥ नायक  
इति । नै-अकः अत्र आय् आदेशः, पौ-अकः अत्र आव् आदेशः "एचोऽज्यवायावः"  
इत्यनेन इति भावः ॥ यकारादाविति ॥ "यस्मिन्विचिस्तदादावल्लग्रहणे" इति परिभाषया  
तदादिलभेन यकारादौ इत्यर्थस्य लाभः इति भावः ॥ गव्यमिति ॥ गोक्षब्दात् "गोपय-  
सोर्यत्" इत्यनेन विकारायै यति प्रत्यये रूपम् ॥ अत्र गो-यम् इति स्थितौ ओकारस्य  
अध्वपरकत्वाभावात् "एचोऽज्यवायावः" इत्यनेन आवादेशप्राप्तौ "वान्तो वि प्रत्यये"  
इत्यनेन यादिप्रत्ययः-य इति, तस्मिन् परे 'अव्' आदेशे कृते गव्यम् इति रूपं सिद्धम् ॥  
नाव्यमिति । 'नौ-यम्' इति स्थिते "वान्तो वि प्रत्यये" इत्यनेन यकारादौ प्रत्यये परे  
आव् आदेशे कृते 'नाव्यम्' इति भवति । नावा ताय् नाव्यमित्यर्थः ॥ अध्वपरिमाणे  
चेति ॥ मार्गपरिमाणे अथै गम्यमाने ओकारस्य स्थाने अव् आदेशो भवति यूति षष्ठे  
परे । यथा-गो-यूतिः इत्यत्र "अध्वपरिमाणे च" इत्यनेन आवादेशे गव्यूतिः इति  
रूपं सिद्धम् ॥ "गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुगम्" इत्यमरः । क्रोशयुगस्य संज्ञैषेति भावः ।  
तः परः इति । तपरपदे बहुव्रीहितत्पुरुषसमासद्वयं व्याख्यानादतो घृत्तावाह- ॥ ३ ॥ परो  
यस्मात्तात्पर्येति ॥ आद्गुण इति । "इको यणचि" इत्यतो अचि इति "एकः पूर्वपरयोः"  
इति सम्पूर्णं सूत्रमनुवर्तते अत आह-प्रचि परे पूर्वपरयोरिति ॥ उपेन्द्र इति । उप-इन्द्रः  
इति स्थिते अत्र "आद्गुणः" इति सूत्रेण पूर्वपरयोः अकार-इकारयोः स्थाने गुणसंज्ञकः  
कण्ठतालुस्थानकः एकारो जातः । तेन 'उपेन्द्रः' इति रूपं सिद्धम् ॥ गङ्गोदकमिति । गङ्ग-  
उदकम् इति स्थिते "आद्गुणः" इत्यनेन सूत्रेण पूर्वपरयोः आकार-उकारयोः स्थाने  
ओकारे कृते गङ्गोदकमिति सिद्धम् ॥ प्रतिज्ञेति । प्रतिज्ञायते इति प्रतिज्ञा । अनुनासिकस्य  
भावः आनुनासिक्यम् । प्रतिज्ञा आनुनासिक्यं येषान्ते प्रतिज्ञानुनासिक्याः । लणसूत्र-  
स्थेति । 'लण्' सूत्रेति श्रुतीति लणसूत्रस्थः स चासौ अवर्णश्च लणसूत्रस्थावर्णः तत्र सूत्रे-

उरण् रपरः । १।१।५१। ऋ इति त्रिशतः संज्ञेत्युक्तं तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते । कृष्णर्द्धिः, तवल्कारः ॥ लोपः शाकल्यस्य । ८।३।१६। अवर्ण-पूर्वयोः पदान्तयोर्व्योर्लोपो वाऽशि परे ॥ पूर्वत्रासिद्धम् । ८।२।१। तेन सपादस-प्ताध्यायी प्रतिः त्रिपाद्यसिद्धा त्रिपाद्यमपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम् । हर इह-हर-यिह, विष्ण इह-विष्णविह ॥ वृद्धिरादैच् । १।१।१। आदैच् वृद्धिसंज्ञः स्यात् ॥ वृद्धिरेचि । ६।१।८। आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । गुणापवादः । कृष्णै-

कार्यमाणो रेफः 'र' इत्येवं रूपः रेफलकारयोस्संज्ञेत्यर्थः । उरणिति । उः इति 'ऋ' इत्यस्य षष्ठ्येकवचनम् । त्रिशत इति । "अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः" इत्यनेनेति भावः । त-स्थाने इति । "स्थानेऽन्तरतमः" इत्यतः स्थानेग्रहणमनुवर्तते । "विधौ परिभाषोपति-ष्ठते नानुवादे" इति परिभाषया "उरण् रपरः" इत्यत्र "वृद्धीस्थानेयोगा" इति परिभा-षा नोपतिष्ठते इति भावः । रपरः सन्नेवेति । अत्र 'र' इति प्रत्याहारो ग्राह्यः । तेन रेफ-शिरस्कः लकारशिरस्कश्च प्रवर्तते । कृष्णर्द्धिरिति । कृष्ण-ऋद्धिः इति स्थिते अत्र "आ-दूगुणः" इति सूत्रेण कृष्ण इत्यस्य णकारोत्तरवर्तिः अकारः तस्मात् अचि परे, नाम ऋ-कारे परे पूर्वपरयोः-अकारऋकारयोः स्थाने गुणे प्राप्ते-गुणसंज्ञकाश्च "अदेङ्गुणः" इति सूत्रेण अ ए ओ इति । एषां त्रयाणां मध्ये कः कर्तव्यः ? एकारस्य तु कण्ठतालुस्थानं ओकारस्य कण्ठोष्ठस्थानं एतौ ए ओ इति न भवतः । आन्तरतम्याभावात् । किन्तु परि-क्षेपात् अ एव भवति । स च "उरण् रपरः" इति सूत्रेण रपरः (रेफशिरस्कः) सन् भ-वति । तेन कृष्णर्द्धिः इति रूपम् ॥ तवल्कार इति । 'तव-ल्कारः' इति स्थिते अत्र "आदूगुणः" इति सूत्रेण वकारोत्तरवर्तिः अकारः तस्य लकारस्य च उभयोः स्थाने अ-रूपगुणे "उरण् रपरः" इति सूत्रेण लपरे च कृते तवल्कारः इति रूपमभवति ॥ लोपः शाकल्यस्येति । "भोभगो" इत्यतः अपूर्वस्येति अशीति चानुवर्तते । "व्योर्लघुप्रयत्न" इत्य-तः व्योरित्यनुवर्तते अत आह-अवर्णेति । "पूर्वत्रासिद्धमिति । पाणिनिप्रणीता अष्टाध्यायी, तत्र अष्टमाध्याये द्वितीयपादस्येदमादिमं सूत्रम् । इतः प्राक्तनं कृत्स्नं सूत्रजालं सपादसप्ताध्यायीति व्यवहियते । उपरितनं तु कृत्स्नं सूत्रजालं त्रिपादीनि व्यवहि-यते इति भावः ॥ हर इह इति । हरे इह इति स्थिते "एचोऽयवायावः" इत्यनेन अयादेशे कृते 'हरय् इह' इति दशायाम् "लोपः शाकल्यस्य" इत्यनेन अवर्णपूर्वकप-दान्ते वर्तमानस्य 'य' इत्यस्य विकल्पेन-लोपः अचि 'इ' इति परे । तेन हर इह इति जाते । अत्र शङ्कते-लोपानन्तरम् 'हर इह' इत्यत्र "आदूगुणः" इत्यनेन गुणः कथं न भवति ? उत्तरम्-"पूर्वत्रासिद्धम्" इत्यनेन सूत्रेण सपादसप्ताध्यायीसूत्रदृष्ट्या-  
"आदूगुणः" इति सूत्रदृष्ट्या, त्रैपादिको "लोपः शाकल्यस्य" इति लोपोऽसिद्धः । तत्र बलोपे जातेऽपि यकारोऽस्तीति भावनया "आदूगुणः" इति सूत्रार्थो न घटते इति भावः । लोपाभावपक्षे-"हरयिह" इति । एवमेव 'विष्ण इह, विष्णविह' इत्यत्रापि

कत्वम्, गङ्गौघः, देवैश्वर्यम्, कृष्णौत्कण्ड्यम् ॥ एत्येधत्यूठ्सु ६।१।८६। अवर्णा-  
देजाद्योरेत्येधत्योरुठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । उपैति, उपैधते, प्रौहः ।  
एजायोः किम् । उपेतः, माभवान्प्रेदिधत् ॥ ( अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम् ) ।  
अक्षौहिणी सेना । ( प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु ) प्रौहः, प्रौढः, प्रौढिः, प्रैषः, प्रैष्यः ।

बोध्यम् । कृष्णैकत्वमिति । 'कृष्ण—एकत्वम्' इति स्थिते अत्र "वृद्धिरेचि" इत्यनेन  
अवर्णात्—कृष्णघटकणकारोत्तरवर्ति—अवर्णात्, एचि—एचप्रत्याहारघटक—एकारे—  
'एकत्वम्' इति रूपस्थाधैकारे परे पूर्वपरयोः—'अ—ए' इत्यत्र वृद्धिसंज्ञकः—'वृद्धि-  
रादैच' इति सूत्रेण—वृद्धिसंज्ञकेषु 'आ ऐ औ' इत्येतेषु "स्थानेऽन्तरतमः"  
इत्यनेन कण्ठस्थानिकाकारस्य कण्ठतालुस्थानीयैकारस्य च स्थाने कण्ठतालुसंज्ञकः  
आन्तरतम्य—ऐ आदेशो जातः, तेन कृष्णैकत्वमिति सिद्धम् । अनेनैव प्रकारेण  
गङ्गौघः, देवैश्वर्यम्, कृष्णौत्कण्ड्यम् इति बोध्यम् । सङ्क्षेपस्तु गङ्गा—ओघः इति  
स्थिते अत्र "वृद्धिरादैच" इति सूत्रेण पूर्वपरयोः आकारस्य ओकारस्य च स्थाने वृद्धि-  
संज्ञकः, आन्तरतम्यः औ आदेशः । तेन गङ्गौघः इति जायते । 'देव—ऐश्वर्यम्' इत्यत्र  
पूर्वपरयोः स्थाने ऐ आदेशे 'देवैश्वर्यम्' इति । कृष्ण—औत्कण्ड्यम् इति स्थिते तत्र पूर्व-  
परयोः स्थाने औ आदेशे 'कृष्णौत्कण्ड्यम्' इति सिद्धमभवति ॥ उपैतीति । उप—एति  
इति स्थिते अत्र "एत्येधत्यूठ्सु" इत्यनेन अवर्णादेजादि इण्—धातु एध—धातु ऊठ्सु  
परेषु पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धिरूपैकादेशो भवतीत्यर्थकेन, अवर्णात्—उप इत्यत्र पकारो-  
त्तरवर्ति—अवर्णात्, एजादि—इण् धातु—एति इति, परे पूर्वपरयोः—'अ—ए' इत्यत्र वृद्धि-  
संज्ञक आन्तरतम्य ऐ आदेशो जातः, तेन उपैति इति भवति । अत्र "एण्डि पररूपम्"  
इत्यनेन पररूपस्य प्राप्तिरासीत्, परं तत्सुत्रमपवादत्वात् "एत्येधत्यूठ्सु" इत्यनेन  
बाध्यते । एवम्—उप एधते इति स्थितौ "एत्येधत्यूठ्सु" इत्यनेन वृद्धौ सत्वाम् 'उपै-  
धते' इति रूपम् । 'प्रष्ठ—ऊहः' इति स्थिते अत्र "आद्गुणः" इत्यनेन गुणे प्राप्ते  
"एत्येधत्यूठ्सु" इत्यनेन प्रबाध्य वृद्धौ सत्यां रूपम् । 'उप—इतः, मा भवान् प्र इदि-  
धत्' इत्यत्र एजादिपरत्वाभावाच्च वृद्धिः, किन्तु "आद्गुणः" इत्यनेन गुणे रूपम्—  
उपेतः इति, प्रेदिधत् इति च । अक्षौहिणीति । अत्र अच—ऊहिनीति दशायाम् "आद्-  
गुणः" इत्यनेन गुणे प्राप्ते "अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्" अक्षशब्दादूहिनीशब्दे परे  
वृद्धिः स्यात् इत्यर्थकवार्तिकेन वृद्धौ—'अक्षौहिणी' इति । प्रादूहोदेति । प्रशब्दात् ऊह-  
ऊह—ऊढि—एष—एष्यशब्दे परे पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धिरूपैकादेशो भवति । तथाहि—प्र-  
ऊहः, प्र—ऊहः, प्र—ऊढिः, इत्यत्र पूर्वपरयोः स्थाने आन्तरतमो वृद्धिसंज्ञकः औकारो जात-  
स्तेन प्रौहः, प्रौढः, प्रौढिः, इति । प्र—एषः, प्र—एष्यः, इत्यत्र वृद्धिसंज्ञक आन्तरतम्य ऐ  
आदेशः । तेन प्रैषः, प्रैष्यः इति रूपम् । अत्र पूर्वोक्तरूपत्रये "आद्गुणः" इत्यस्य प्र-  
एषः, प्र—एष्यः इत्यत्र च "एण्डि पररूपम्" इत्यस्य प्राप्तिरासीत्, तस्य बाधनात्

( ऋते च तृतीयासमासे ) । सुखेन ऋतः सुखार्तः । तृतीयेति किम् । पर-  
मर्तः । ( प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे ) प्रार्णम्, वत्सतरार्णमित्यादि ॥  
उपसर्गाः क्रियायोगे । १।४।५६। प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः । प्र परा  
अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि आभि अति सु उत् अभि  
प्रति परि उप । एते प्रादयः ॥ भूवादयो धातवः । १।३।१। क्रियावाचिनो भ्वादीयो  
धातुसंज्ञाः स्युः ॥ उपसर्गादिति धातौ । ६।१।६१। अवर्णान्तादुपसर्गादकारादौ  
धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । प्राच्छति ॥ एङि पररूपम् । १।१।६४। आदुपस-  
र्गादेकादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात् । प्रेजते, उपोषति ॥ अचोऽन्त्यादि  
टि । १।१।६४। अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तद्विसंज्ञं स्यात् । ( शकन्धादिषु  
पररूपं वाच्यम् ) । तच्च टेः । शकन्धुः, कर्कन्धुः, मनीषा । आकृतिगणोऽयम् ।  
मार्तण्डः ॥ ओमाङोश्च । ६।१।६५। ओमि आङि चात्परे पररूपमेकादेशः स्यात् ।

“प्रादूहोड” इति वार्तिकमिति भावः । ऋते चेति । तृतीयासमासघटकावर्णात् ऋतश-  
ब्दे परे पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धिरित्यर्थः । ‘सुख-ऋतः’ इति स्थिते अत्रावर्णात्-सुख इत्यत्र  
स्कारोत्तरवर्ति-अवर्णात्, ऋतशब्दे परे पूर्वपरयोः ‘अ ऋ’ इत्यत्र वृद्धिसंज्ञक आकारे  
“उरण् रपरः” इत्यनेन रपरे सति प्रवृत्ते ‘सुखार्तः’ इति सिद्धम् । परमर्त इति । ‘परम-  
ऋतः’ इति स्थितेऽत्र तृतीयासमासाभावात् न वृद्धिः किन्तु “आदुगुणः” इति गुणे रपरे  
च रूपम् । प्रवत्सतरेति । प्र-वत्सतर-कम्बल-वसन-ऋण-दशान्धादुपसर्गाकारात् ऋण-  
शब्दे परे पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धिरूपैकादेशो भवतीत्यर्थः । प्र-ऋणं, वत्सतर-ऋणं,  
कम्बल-ऋणं, वसन-ऋणं, ऋण-ऋणं, मिति स्थिते पूर्वपरयोः स्थाने आकाररूपवृद्धौ  
रपरे च प्रार्णम्, वत्सतरार्णम्, कम्बलार्णम्, वसनार्णम्, ऋणार्णम् इति भवतीत्यर्थः ।  
प्राच्छतीति । ‘प्र-ऋच्छति’ इति स्थितेऽत्र ऋच्छतीत्यस्य क्रियावाचकत्वात् “भूवाद्भवो  
धातवः” इत्यनेन धातुसंज्ञायाम् ‘प्र’ इत्यस्य क्रियायोगात् “उपसर्गाः क्रियायोगे”  
इत्यनेन उपसर्गसंज्ञायाम् “उपसर्गादिति धातौ” इत्यनेन पूर्वपरयोः स्थाने आरूपवृद्धौ  
रपरे च प्राच्छतीति सिद्ध्यति । प्रेजते इति । ‘प्र-प्रेजते’ इति स्थिते अत्र “वृद्धिरादैच्”  
इत्यनेन वृद्धौ प्राप्तायां तां प्रबाध्य “एङि पररूपम्” इत्यनेन पूर्वपरयोः स्थाने पररू-  
पैकादेशे ‘ए’ इत्याकारे कृते ‘प्रेजते’ इति रूपम् । एवम् ‘उप-ओषति’ इत्यत्रापि पूर्वप-  
रयोः स्थाने पररूपे सति ‘उपोषति’ इति रूपं सिद्धमभवति । शकन्धुरिति । ‘शक-अन्धुः’  
इति स्थिते अत्र “अकः सवर्णे दीर्घः” इत्यनेन दीर्घे प्राप्ते तं बाधित्वा “शकन्धादिषु  
पररूपं वाच्यम्” इत्यनेन पररूपे प्राप्ते तच्च पररूपं टेः-दिसंज्ञकस्य भवति । दिसंज्ञा  
च “अचोऽन्त्यादि टि” इत्यनेन ककारोत्तरवर्ति-अकारस्य भवति । एवञ्च “शक-  
अन्धुः” इत्यत्र पूर्वपरयोः स्थाने पररूपे सति ‘शकन्धुः’ इति भवतीति भावः । एवमेव

शिवायोनमः, शिव एहि, अन्तादिवच्च । ६।१।८५। योऽयमेकादेशः स पूर्वस्यान्त्यत्प-  
रस्यादिवत् । शिवेहि ॥ अकः सवर्णे दीर्घः । ६।१।१०१। अकः सवर्णेऽपि परे पूर्व-  
परयोर्दीर्घे एकादेशः स्यात् । दैत्यारिः, श्रीशः, विष्णूदयः, होतृकारः ॥ एङः पदा-  
न्तादिति । ६।१।१०६। पदान्तादेङोऽपि परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । हरेऽव, विष्णो-  
ऽव ॥ सर्वत्र विभाषा गोः । ६।१।१२२। लोके वेदे चैदन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः  
पदान्ते । गोऽग्रम्—गोऽग्रम् । एङन्तस्य किम् ? चित्रगवम् । पदान्ते किम् ?  
गोः ॥ अनेकालं शित्सर्वस्य । १।१।५५। इति प्राप्ते ॥ डिच्च । १।१।५३। द्विद-  
नेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात् ॥ अवङ्स्फोटायनस्य । ६।१।१२३। पदान्ते एङन्तस्य

‘कर्क-अन्धुः’ इत्यत्र “अचोऽन्त्यादि टि” इत्यनेन टिसंज्ञायाम् “अचो-  
वाच्यम्” इत्यनेन पररूपे ‘कर्कन्धुः’ इति भवति । ‘मनस्-ईषा’ इति स्थितेऽत्र “अचो-  
न्त्यादि टि” इत्यनेन सूत्रेण ‘अस’ इत्यस्य टिसंज्ञायाम् पररूपे च ‘मनीषा’ इति  
सिद्ध्यति । मार्त-अण्डः’ इति स्थिते प्रकृतवार्तिकेन पररूपे ‘मार्तण्डः’ इति जायते ।  
शिवायो नम इति । ‘शिवाय-ओं नमः’ अत्र “ओमाङोश्च” इत्यनेन अवर्णात् ओमि परे  
पूर्वपरयोः स्थाने पररूपे ‘शिवायो नमः’ इति भवति । शिवेहीति । ‘शिव-आ-इहि’  
इति स्थिते अत्र “धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गम्” इति परिभाषया पूर्वम् ‘आ-इहि’  
इत्यत्र “आद्गुणः” इत्यनेन गुणे एहीति जाते तत्र “अन्तादिवच्च” इत्यनेन सूत्रेण  
अन्तवद्भावमादाय “ओमाङोश्च” इत्यनेन पररूपे कृते सति ‘शिवेहि’ इति रूपसिद्धि-  
र्बोधा । दैत्यारिरिति । दैत्यानामसुराणाम् अरिः शत्रुरिति विग्रहः । सिद्धिप्रकारस्तु—  
‘दैत्य-अरिः’ इतिस्थिते अत्र “अकः सवर्णे दीर्घः” इत्यनेन सूत्रेण सवर्णेऽपि-अकारे परे  
पूर्वपरयोः स्थाने सवर्णेदीर्घादेशे कृते सति ‘दैत्यारिः’ इति भवति । ‘श्री-ईशः’ अत्रापि  
“अकः सवर्णे दीर्घः” इत्यनेन पूर्वपरयोः-‘ई-ई’ इति स्थाने, सवर्णेदीर्घादेशे ‘श्रीशः’  
इति भवति । एवमेव ‘विष्णु-उदयः’ इति स्थिते प्रकृतसूत्रेण सवर्णेदीर्घादेशे ‘विष्णू-  
दयः’ इति रूपम् । हरेऽवेति । ‘हरे-अव’ इति स्थिते, अत्र “एङः पदान्तादिति” को  
वात्र पदान्ते एङ् ? रेफान्तःपात्येकारः पदान्ते एङ्, ततः परः को वा अकारः ? अवे-  
त्यस्याकारः, अत्र पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूपादेशः प्राप्तः । को वा पूर्वः ? एकारः, तस्मिन्  
जाते सति ‘हरेऽव’ इति रूपम्भवति । एवमेव, ‘विष्णो-अव’ इति स्थिते अत्र “एङ-  
पदान्तादिति” इत्यनेन सूत्रेण पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूपैकादेशे सति ‘विष्णोऽव’ इति  
रूपम् । गो अग्रमिति । ‘गो-अग्रम्’ इति स्थिते अत्र “सर्वत्र विभाषा गोः” इत्यनेन  
पदान्ते विद्यमानस्य एङन्तस्य गोशब्दस्य अति परे विकल्पेन प्रकृतिभावे सति ‘गो-  
अग्रम्’ इति रूपम् । विभाषाग्रहणात्पक्षे “एङः पदान्तादिति” इत्यनेन पूर्वरूपैकादेशे  
कृते ‘गोऽग्रम्’ इति रूपम् । चित्रगु अग्रम् इति दत्तायां तत्र एङन्त-  
त्वाभावात् न पूर्वरूपः । नापि प्रकृतिभावः । किन्तु “इको यणचि” इत्यनेन यणि



गोरवद् वाऽचि । गवाग्रम्—गोऽग्रम् । पदान्ते किम् ? गवि ॥ इन्द्रे च । ६।१।१२४।  
 गोरवद् स्यादिन्द्रे । गवेन्द्रः ॥ दूराद्धूते च । ६।१।१२५। दूरात्सम्बोधने वाक्यस्य  
 टेः प्लुतो वा ॥ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् । ६।१।१२५। एतेऽचि प्रकृत्या स्युः ।  
 आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्वरति ॥ ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम् । १।१।११। ईदूदेदन्तं  
 द्विवचनं प्रगृह्यसंज्ञं स्यात् । हरी एतौ, विष्णू इमौ, गङ्गे अमु ॥ अदसोमात्  
 १।१।१२। अस्मात्परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः । अमी ईशाः, रामकृष्णावमू आसाते ।  
 मात्किम् ? अमुकेऽत्र ॥ चादयोऽसत्त्वे । १।४।५७। अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः

रूपम् । पदान्ते किमिति । गोशब्दात् ङसि प्रत्यये कृते ङकारेकारयोर्लोपे 'गो-अस्' इति  
 दशायां पदान्तत्वाभावात् न प्रकृतिभाव इति भावः । सूत्रे पदान्तत्वानाश्रयणे तु प्रकृते  
 प्रकृतिभाव आपद्येतेति भावः । प्रकृते "गो-अस्" इत्यत्र "ङसिङसोश्च" इत्यनेन पूर्व-  
 रूपादेशे सति 'गोः' इति रूपम् । गवाग्रमिति । 'गो-अग्रम्' इति दशायाम् "अवङ्-  
 स्फोटादनस्य" इत्यनेन पदान्ते विद्यमानस्य एङन्तस्य 'गो' इत्यस्य अवङादेशः प्राप्तः  
 अचि-अग्रमेतद्वटकाकारे परे । स अवङादेशः कुत्र स्यात् ? अवङि अनेकालत्वात् "अने-  
 कालक्षित् सर्वस्य" इत्यनेन सर्वादेशे प्राप्ते "ङिच्च" इत्यनेन ङिदादेशस्याऽनेकालत्वे-  
 ऽपि अन्त्यादेश इति गोशब्दस्य गकारोत्तरवर्ति-ओकारस्य अनुबन्धलोपपूर्वके अवङा-  
 देशे 'गव-अग्रम्' इति जाते "अकः सवर्णे दीर्घः" इत्यनेन दीर्घं 'गवाग्रम्' इत्यपि  
 रूपम्भवति । अत्रायं विचारः—“सर्वत्र विभाषा गोः” इत्यनेन प्रकृतिभावो विकल्पेन  
 भवति । तदभावे अवङादेशो विकल्पेन । तदभावे च पूर्वरूपमिति गो अग्रम्, गवा-  
 ग्रम्, गोऽग्रम्, इति रूपत्रयम् । गवेन्द्र इति । 'गो-इन्द्र' इति स्थितेऽत्र "इन्द्रे च"  
 इत्यनेन गोशब्दस्य गकारोत्तरवर्त्योकारस्य अवङादेशे सवर्णदीर्घे च सति रूपम् ।  
 आगच्छ कृष्णेति । 'आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्वरति' इति वाक्ये 'कृष्ण-अत्र' इत्यत्र  
 "दूराद्धूते च" इत्यनेन सूत्रेण टिसंज्ञकस्य णकारोत्तरवर्त्यकारस्य प्लुतत्वं विधाय "प्लु-  
 तप्रगृह्या अचि नित्यम्" इत्यनेन प्रकृतिभावे 'आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्वरति' इति  
 सिद्ध्यति । हरी एताविति । 'हरी-एतौ' इत्यत्र "ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्" इत्यनेन  
 सूत्रेण प्रगृह्यसंज्ञायाम् "प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्" इत्यनेन प्रकृतिभावे 'हरी एतौ' इति  
 निष्पन्नम् । एवमेव 'विष्णू-इमौ' 'गङ्गे-अमु' इत्यत्र क्रमेण ऊकारान्तैकारान्तद्विवचन-  
 त्वात् "ईदूदेद् द्विवचनम्" इत्यनेन प्रगृह्यसंज्ञायां प्रकृतिभावे च 'विष्णू इमौ' 'गङ्गे अमु'  
 इति भवति । अदसो मादिति । अदसः इत्यवयवषष्ठी, तेन अदशशब्दावयवमकारात्परा-  
 वीदूतौ प्रगृह्यसंज्ञौ स्तः । 'अमी-ईशाः' इत्यत्र अदशशब्दावयवमकारात्परस्येकारस्य  
 सत्त्वात्प्रगृह्यसंज्ञायाम् "प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्" इत्यनेन प्रकृतिभावे 'अमी ईशाः'  
 इति रूपम् । एवमेव 'रामकृष्णावमू-आसाते' इत्यत्रापि प्रगृह्यसंज्ञां कृत्वा प्रकृतिभावो  
 विधेयः । मात् किमिति । अस्ति माद्ग्रहणे एकारोऽप्यनुवर्तते । तेन च 'अमुकेऽत्र'

स्युः ॥ प्रादयः । ११११५८ एतेऽपि तथा ॥ निपात एकाजनाङ् ११११५९  
एकोऽज् निपात आङ्त्वर्जः प्रगृह्यः स्यात् । इ इन्द्रः, उ उमेशः । वाक्यस्मरणयोर-  
ङित् । आ एवं नु मन्यसे, आ एवं किल तत् । अन्यत्र ङित् । ईषदुष्णम् ओष्णम् ॥  
ओम् ११११२५ ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः । अहो ईशाः ॥ सम्बुद्धौ शाकल्य-  
स्येतावनार्षे ॥ ११११२६ सम्बुद्धिनिमित्तक ओंकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे ।  
विष्णो इति-विष्ण इति-विष्णविति ॥ मय उजो वो वा । १८३३३ मयः परस्य  
उजो वो वाऽङि । किम्बुक्तम्-किमुक्तम् ॥ इकोऽसवर्णो शाकल्यस्य ह्रस्वश्च  
॥ १११२७ पदान्ता इको ह्रस्वा वा स्युरसवर्णोऽङि । ह्रस्वविधिसामर्थ्याच्च स्वर-  
सन्धिः । चकि अत्र-चक्षुत्र । पदान्ता इति किम् ? ॥ अचो रहाभ्यां द्वे । १८४

अत्र प्रगृह्यसंज्ञापूर्वकप्रकृतिभाव आपद्येत इति भावः । अद्रव्यार्थाश्चेति । लिङ्गसंख्याका-  
रकान्वितं द्रव्यम्, तद्विभक्तद्रव्यमित्यर्थः । इ इन्द्र इति । 'इ इन्द्र' इत्यत्र इकारस्य  
“चादयोऽसत्वे” इत्यनेन निपातसंज्ञायाम् “निपात एकाजनाङ्” इत्यनेन प्रगृह्यसंज्ञा-  
शायाम् “प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्” इत्यनेन प्रकृतिभावे ‘इ इन्द्र’ इति भवति । स  
एव प्रकारो ‘उ-उमेशः’ इत्यत्र विज्ञेयः । आ एवमिति । ‘ईषदर्थे क्रियायोगो मर्यादाभि-  
विधौ च यः । एतमातं ङितं विद्याद्वाक्यस्मरणयोरङित्’ इति । प्रकृते ‘आ एवं नु  
मन्यसे’ इत्यस्य वाक्यार्थत्वात् ‘आ एवं किल तत्’ इत्यस्य स्मरणार्थकत्वाच्च अङित्वेन  
“निपात एकाजनाङ्” इत्यनेन आ इत्यस्य प्रगृह्यत्वे “प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्” इत्य-  
नेन प्रकृतिभावे सति रूपम् । अन्यत्रेति-वाक्यस्मरणार्थकमिच्छे इत्यर्थः । तेन ईषदर्थक-  
‘आ’ इत्यस्य ङित्वात् प्रगृह्यसंज्ञाभावे प्रकृतिभावाभावेन “आद्गुणः” इत्यनेन गुणे ‘आ-  
ईषद्, उष्णम्’ ओष्णमिति जायते । अहो ईशा इति । अत्र “ओत्” इति सूत्रेण प्रगृह्य-  
संज्ञायां “प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्” इत्यनेन प्रकृतिभावे च सति ‘अहो ईशाः’ इति  
भवति । विष्णो इतीति । ‘विष्णो-इति’ इति स्थितावत्र “सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे”  
इत्यनेन सम्बुद्धिनिमित्तकस्य ओंकारस्य अवैदिके इतौ परे प्रगृह्यसंज्ञायां “प्लुतप्रगृह्या  
अचि नित्यम्” इत्यनेन प्रकृतिभावे च सति ‘विष्णो इति’ इति रूपं सिद्ध्यति । स च  
प्रकृतिभावो विकल्पेन भवति । तदभावे “एचोऽप्यवायावः” इत्यनेन अवादेशे “लोपः  
शाकल्यस्य” इत्यनेन विकल्पेन लोपे ‘विष्ण इति’ इति रूपम् । वलोपामावे च ‘विष्ण-  
विति’ इति रूपम् । किम्बुक्तमिति । ‘किम् उ उक्तम्’ इत्यवस्थायाम् “मय उजो वो वा”  
इत्यनेन सूत्रेण मयः परस्य उजः-‘उ’ इत्यस्य ‘व्’ आदेशो भवति; अचि-‘उक्तम्’ घट-  
कोकारे परे; तेन ‘किम् व् उक्तम्’ इति जाति ‘अङ्गिनं परेण संयोज्यम्’ ‘किम्बुक्तम्’  
इति निष्पन्नम् । व् आदेशो विकल्पेन भवति तदभावे च “निपात एकाजनाङ्” इत्य-  
नेन प्रगृह्यसंज्ञायां प्रकृतिभावे च ‘किमु उक्तम्’ इति जायते । चकि अत्रेति । ‘चक्षु-अत्र’

॥४६॥ अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः । गौर्ध्वौ । (न समासे)  
वाप्यश्वः ॥ ऋत्यकः ॥ १६॥ १२८॥ ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद्वा । ब्रह्मऋषिः—  
ब्रह्मर्षिः । पदान्ताः किम् ? आच्छत् ॥ इत्यच्सन्धिः ॥

## ॥ अथ हल्सन्धिप्रकरणम् ॥

स्तोः ध्रुना अः ॥ १८॥ ४७॥ सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकार-  
चवर्गौ स्तः । रामश्चेते, रामश्चिनोति, सञ्चित्, शार्ङ्गिजय ॥ शात् ॥ १८॥ ४८॥  
शात्परस्य तवर्गस्य ध्रुत्वं न स्यात् । विरनः, प्रश्नः ॥ ध्रुना ध्रुः ॥ १८॥ ४९॥ स्तोः ध्रुना

इत्यत्र “इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च” इत्यनेन विकल्पेन ह्रस्वे कृते ‘चकि अत्र’ इति  
भक्तिः । तदभावे च “इको यणचि” इत्यनेन यणि “चक्रयत्र” इति जायते । पदान्ता  
इति किमिति । पदान्ता इति यदाचार्या नापठिष्यन् तदा ‘गौरी-औ’ इत्यत्रापि “इकोऽ-  
सवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च” इत्यनेन ह्रस्वसमुच्चितप्रकृतिभावोऽभविष्यत्, तन्निवार-  
णाय ‘पदान्ता’ इत्युक्तम् । अत्र पदान्ताभावात् न ह्रस्वं; किन्तु “इको यणचि” इत्य-  
नेन यणि “अचोरहभ्यां द्वे” इत्यनेन विकल्पेन यद्वित्वे ‘गौर्ध्वौ’ इति । पचे-द्वित्वा-  
भावे ‘गौर्ध्वौ’ इति । वाप्यश्व इति । वाप्यामश्वः वाप्यश्वः, ‘वापी-अश्व’ इति वृत्तायां  
“इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च” इत्यनेन ह्रस्वे प्राप्ते “न समासे” इति वार्तिकेन  
निषिध्यते । अतोऽत्र न प्रकृतिभावः, किन्तु “इको यणचि” इत्यनेन यणि ‘वाप्यश्वः’  
इति रूपम् । ब्रह्म ऋषिरिति । ‘ब्रह्मा ऋषिः’ इति स्थितौ “ऋत्यकः” इत्यनेन पदान्तस्य  
अकप्रत्याहारान्तर्गतमकारोत्तरवर्तिन आकारस्य ह्रस्वत्वे कृते ब्रह्म ऋषिरिति जायते ।  
पचे “आदुगुणः” इति पूर्वपरयोः स्थाने गुणे रपरे च कृते ‘ब्रह्मर्षि’ रिति रूपम्भवति ।  
पदान्ताः किमिति । अत्र ‘पदान्ताः’ इत्यस्याग्रहणे तु ‘आ ऋच्छत्’ इत्यत्र ह्रस्वत्वमाश-  
येत । तस्मा भूदेतदर्थं ‘पदान्ताः’ इति । तेनात्र “आटश्च” इत्यनेन वृद्धौ सत्याम् ‘आ-  
च्छत्’ इति सिच्यतीति दिक् ॥ इत्यच्सन्धिः ॥

सकारतवर्गयोरिति ॥ अत्र स्थान्यादेशयोर्ध्वशसंख्यम्, निमित्तकार्यिणोस्तु न ।  
“शात्” इति ज्ञापकात् । रामश्चेते इति । ‘रामस्’ शेते इति स्थितौ “स्तोः ध्रुना ध्रुः”  
इत्यनेन सूत्रेण सकारस्य शकारेण सहात्र योगे सति सकारस्य शकारादेशे ‘रामश्चेते’ इति  
रूपम्भवति । एवं ‘रामस्-चिनोति’ इत्यत्र चयोगे सकारस्य शकारादेशे ‘रामश्चिनोति’  
इति जायते । ‘सत्-चित्’ इत्यवस्थायां प्रकृतसूत्रेण ‘त्’ इत्यस्य ‘च्’ इत्यादेशे ‘सञ्चित्’  
इति रूपम् । ‘शार्ङ्गिन् जय’ इत्यत्र “स्तोः ध्रुना ध्रुः” इत्यनेन ‘न्’ इत्यस्य स्यादे ‘अ-  
न्’ इत्यादेशे ‘शार्ङ्गिजय’ इति रूपम् । विरन इति । ‘विस्-नः’ ‘प्रस्-नः’ इत्यत्र पूर्वसूत्रेण  
नकारस्य ध्रुत्वे प्राप्ते “शात्” इत्यनेन शात्परस्य तवर्गस्य ‘न’ इत्यस्य ध्रुत्वं भिन्नि-

योगे ष्टुः स्यात् । रामष्पष्टः, रामष्टीकते, पेष्टा, तट्टीका चक्रिण्डौकसे ॥ न पदान्ता-  
ट्टोरनाम् । ॥ १४४२ ॥ पदान्ताद्वर्गात्स्वस्यानामः स्तोः ष्टुर्न स्यात् । षट्सन्तः,  
षट्ते । पदान्तात्किम् ? ईट्टे । योः किम् ? सर्पिष्टमम् । ( अनाम्नवतिनगरीणा-  
मिति वाच्यम् ) । षण्णाम्, षण्णवतिः, षण्णगर्ग्यः ॥ तोः षि । ॥ १४४३ ॥ न ष्टुत्वम् ।  
सन्वष्टः ॥ मलां जशोऽन्ते । ॥ १४४४ ॥ पदान्ते मलां जशः एयुः । वामीशः ॥  
यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा । ॥ १४४५ ॥ यरः पदान्तस्यानुनासिके परेऽनु-

प्यते । तेनात्र 'नृ' इत्यस्य न 'अ' इत्यादेश इति भावः । ष्टुना ष्टुरिति । अत्र 'स्तोः'  
इत्यनुवर्तते । पूर्ववदपि कार्त्तिकनिमित्तयोर्यथासंख्यं न भवति । "तोः षि" इति ज्ञाप-  
कात् । 'रामस्-षष्टः' अत्र "ष्टुना ष्टुः" इत्यनेन सकारस्य षकारयोगेन सकारस्य षका-  
रादेशे 'रामष्पष्टः' इति रूपम् । एवं 'रामस् टीकते' इत्यत्र टकारेण योगे सकारस्य षका-  
रादेशे 'रामष्टीकते' इति रूपम् । 'पेष्-ता' इत्यत्र "ष्टुना ष्टुः" इत्यनेन तकारस्य ष्टुत्वे  
'पेष्टा' इति जायते । 'तट्ट-टीका' इति दशायां प्रकृतसूत्रेण 'ट्ट' इत्यस्य 'ट्ट' इत्यादेशे  
'तट्टीका' इति रूपम् । 'चक्रिण्डौकसे' इत्यत्र "ष्टुना ष्टुः" इत्यनेन 'नृ' इत्यस्य 'अ'  
इत्यादेशे 'चक्रिण्डौकसे' इति रूपम्भवति । न पदान्तादिति । 'षट्सन्तः' 'षट्-ते'  
इत्यत्र टवर्गस्य पदान्ते वर्तमानत्वाच्च ष्टुत्वम् । पदान्तादित्यस्यास्वीकारे 'ईट्ट-ते'  
इत्यत्रापि निषेध आपद्येत । अतः सूत्रे तद्विवेक आवश्यकः । योः किमिति । गडु  
'सर्पिष्-तमम्' इत्यत्र "स्वादिष्वसर्वनामस्थाने" इत्यनेन पदसंज्ञायामत्र "मलां  
जशोऽन्ते" इत्यनेन जश्त्वं स्यादिति चेन्न "ह्रस्वात्तादौ तद्धिते" इत्यनेन कृतस्य  
षत्वस्य जश्त्वदृष्ट्याऽसिद्धत्वात् । टोर्ग्रहणाभावे षकारोऽप्यनुवर्तते । तेन प्रकृते-  
ऽपि निषेधः स्यात्तस्मा भूदिति टोर्ग्रहणम् । षण्णामिति । 'षष्-नाम्' इत्यवस्थायाम्  
"मलां जशोऽन्ते" इत्यनेन जश्त्वे 'षट् नाम्' इति स्थितौ "अनाम्नवतिनगरीणामिति  
वाच्यम्" इत्यनेन पर्युदासात् ( निषेधस्य निषेधात् ) ष्टुत्वे 'षट्-णाम्' इति जाते  
"प्रत्यये भाषायां नित्यम्" इति वार्तिकेन 'ट्ट' इत्यस्य नित्यानुनासिके सति 'षण्णाम्'  
इति रूपम्बोध्यम् । षण्णवतिरिति । षडधिका नवतिरिति विग्रहः । 'षट्-नवतिः' इत्यत्र  
"न पदान्तात्" इति निषेधे प्राप्ते "अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्" इत्यनेन पर्युदा-  
सात् ष्टुत्वे जाते "यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा" इत्यनेन पूर्वस्य 'ट्ट' इत्यस्यानुनासिके  
'षण्णवतिः' इति रूपम् । एवमेव 'षण्णगर्ग्यः' इत्यत्रापि बोध्यम् । तोः षीति । तवर्गस्य  
षकारे परे न ष्टुत्वम् । तेन 'सन्-षष्टः' इत्यत्र तवर्गान्तःपातिनो नकारस्य षकारे परे  
न ष्टुत्वम् । वामीश इति । 'वाक्-ईशः' अत्र "मलां जशोऽन्ते" इत्यनेन 'कृ' इत्यस्य  
स्थाने "स्थानेऽन्तस्तमः" इत्यनेन सूत्रेण कण्ठस्थानीयो गङ्गारादेशो जायतेः तेन  
'वामीशः' इति रूपम्भवति । यरोऽनुनासिक इति । "न पदान्ताट्टोरनाम्" इत्यत्रः  
पदान्तादित्यनुवर्तते । तस्य षड्वन्तत्वा विपरिणम्यते तदह—यः पदान्तत्वेति ।

नासिको वा स्यात् । एतन्मुरारिः-एतदमुरारिः । ( प्रत्यये भाषायां नित्यम् ) ।  
तन्मात्रम्, चिन्मयम् ॥ तोलिं ८१६०१ तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः ।  
तल्लयः, विद्वांल्लिखति । नस्यानुनासिको लः ॥ उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८१६१  
६१ । उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः । तस्मादित्युत्तरस्य १११६१ पञ्चमी-  
निर्देशेन क्रियमाण कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम् ॥ आदेः परस्य ११  
११५४ परस्य यद्विहितं तत्तस्यादेर्बोध्यम् । इति सस्य थः ॥ भरो भरि सवर्णे

‘एतद्-मुरारिः’ इति स्थितौ “यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा” इति सूत्रेण समेष्वनुना-  
सिकेषु प्राप्तेषु सत्सु “स्थानेन्तरतमः” इत्यनेन दस्य दन्त्यत्वात् दन्त्येषु चानुनासिक-  
न्तः-पातिनो नस्यैव विद्यमानत्वात्कारे विकल्पेन जाते ‘एतन्मुरारिः’ इति सिद्धम् ।  
पञ्चे-‘एतद्मुरारिः’ इति । एष चासौ मुरारिः इति कर्मधारयसमासोऽत्र बोध्यः ।  
प्रत्यये भाषायामिति । प्रत्यये अनुनासिकात्मके परे लोके नित्यमनुनासिकः स्यादित्यर्थः ।  
तन्मात्रमिति । तत्प्रमाणमस्येति तन्मात्रम्; “प्रमाणे द्वयसज्जघ्नजन्मात्रचः” इत्यनेन  
मात्रचप्रत्ययः । ‘तद्-मात्रम्’ इत्यवस्थायाम् “प्रत्यये भाषायां नित्यम्” इत्यनेन स्थानत  
आन्तर्यमाश्रित्य दकारस्य स्थाने नकारे जाते ‘तन्मात्रम्’ इति निष्पन्नम् । चिन्मयमिति ।  
चिदेव ‘चिन्मात्रम्’ अत्र “नित्यं वृद्धशरादिभ्यः” इत्यत्र नित्यमिति योगविभागात्तादृच्ये  
मयट् । प्रक्रिया तु पूर्ववद्बोद्ध्या । तोलीति । “अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः” इत्यतः  
परसवर्ण इत्यनुवर्तते तदाह-परसवर्ण इति । ‘तद्-लयः’ इत्यत्र “तोलिं” इत्यनेन  
तवर्गान्तःपातिनो दस्य स्थाने परसवर्णः-परनिमित्तभूतलकारसवर्णो ल एव जातः ।  
तेन ‘तल्लयः’ इति सिद्धम् । तस्य लयः तल्लय इति विग्रहोऽत्र बोध्यः । विद्वांल्लिख-  
तीति । ‘विद्वांन्-लिखति’ इति स्थिते नकारस्य स्थानिनोऽनुनासिकस्य परसवर्णो  
लकारो भवन् आन्तर्यादनुनासिक एव लकारो जातस्तेन ‘विद्वांल्लिखति’ इति सिद्धम् ।  
उदः स्थास्तम्भोरिति । एकदेशे स्वरितत्वप्रतिज्ञानात् “अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः” इत्यत्र-  
स्थं समासनिर्दिष्टमपि सवर्णग्रहणमिह निष्कृष्य सम्बध्यते । उद इति पञ्चमी । अतः  
“तस्मादित्युत्तरस्य” इति परिभाषया उदः परयोरिति लभ्यते । तदाह-उदः परयोरिति ।  
‘उद्-स्थानम्’ उद्-स्तम्भनम् इति स्थिते । अत्र उदः परयोः ‘स्थाः’ इत्यस्य ‘स्तम्भ’  
इत्यस्य च पूर्वसवर्णः-दकारसवर्णः प्राप्तः । तत्र “आदेः परस्य” इति परिभाषया स्थास्त-  
म्भोराध्यवयवस्य सकारस्यैव भवति । तत्र पूर्वदकारसवर्णाश्च-त थ द ध नाः पञ्चैव ।  
दन्तस्थानसाम्यात्, स्पृष्टप्रयत्नसाम्याच्च । न तु लृकारः सकारश्च । तयोः स्थानसाम्येऽपि  
विधृतप्रयत्नत्वात् । नापि लकारः ईषत्स्पृष्टत्वात् । एतदतिरिक्ताश्च सर्वे वर्णाः मित्रस्था-  
निकत्वाच्च दकारसवर्णाः । एवञ्च पूर्वनिमित्तभूतदकारसवर्णाः ‘त थ द ध नाः’ पञ्चापि  
सकारस्य प्राप्ताः । तत्र सकारस्य विवारश्वासाघोषमहाप्राणवतः सादृश्यात् तत्स्थाने  
तादृक विवारश्वासाघोषमहाप्राणवान् ‘थ’ एव लभ्यते । तेन सस्य थकारादेशे ‘उद्’ च

।।८४।६५। हलः परस्य झरो वा लोपः सवर्णं झरि ॥ खरि च ।।८४।६५। खरि  
झलां चरः स्युः । इत्युदो दस्य तः । उत्थानम्, उत्तम्भनम् ॥ झयो होऽन्यतर-  
स्याम् ।।८४।६२। झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः । नादस्य घोषस्य संवारस्य  
महाप्राणस्य तादृशो वर्गचतुर्थः । वाग्घरिः ॥ शश्छोऽटि ।।८४।६३। झयः परस्य  
शस्य छो वाऽटि । तदृशिव इत्यत्र दस्य श्चुत्वेन जकारे कृते खरि चेति जकारस्य  
चकारः । तच्शिवः, तच्छिवः । (कृत्वममीति वाच्यम्) । तच्छ्लोकेन ॥ मोऽनु-  
स्वारः ।।८३।२३। मोन्तस्य पदस्यानुस्वारो हलि । हरिं वन्दे ॥ नश्चापदान्तस्य  
झलि ।।८३।२४। नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः । यशांसि, आक्रांत्यते ।

थानम् 'उद् थ् तम्भनमि'ति जाते "झरो झरि सवर्णं" इत्यनेन दकारोत्तरवर्तिनः थकार-  
स्य विकल्पेन लोपे "खरि च" इत्यनेन दकारस्य चत्वं 'उत्थानम्' 'उत्तम्भनम्' इति भव-  
तः । पक्षे 'उत्थानम्' 'उत्थत्तम्भनम्' इत्येव न तु थकारस्य चत्वंम् । चत्वं प्रति थकार-  
स्यासिद्धत्वात् । झयो ह इति । झयः इति पञ्चमी । परस्येत्यध्याहार्यम् । ह इति षष्ठी । "उदः  
स्थास्तम्भोः पूर्वस्य" इत्यतः पूर्वस्येति, "अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः" इत्यतः सवर्णं इति  
चानुवर्तते, तदेवाह-झयः परस्येत्यादिना । वाग्घरिरिति । 'वाक् हरिः' इति स्थिते, अत्र "झलां  
जशोऽन्ते" इत्यनेन जश्त्वे गकारे कृते झयप्रत्याहारान्तःपातिनो गकारात् परस्य हका-  
रस्य पूर्वसवर्णः-गकारसवर्णाः, क ख ग घ ङ इति प्राप्ताः । तत्र हकारेण संवारनाद-  
घोषमहाप्राणवता तुल्यः-संवारनादघोषमहाप्राणवान् घकारो विकल्पेन हकारस्य स्थाने  
जातः । तेन वाग्घरिरिति रूपं जायते । पक्षे वाग्घरिरिति भवति । शश्छोऽटि । "झयो  
होऽन्यतरस्याम्" इत्यतो झयः इति पञ्चम्यन्तमनुवर्तते । शः इति षष्ठ्येकवचनम् ।  
तदाह-झयः परस्येत्यादिना । 'तद्-शिवः' इति स्थितेऽत्र दकारस्य "स्तोः श्रुना श्रुः"  
इत्यनेन ध्रुवेण श्चुत्वे-जकारे कृते तस्य जकारस्य "खरि च" इत्यनेन चकारे कृते  
'तच्-शिवः' इति जाते तदनन्तरम् "शश्छोऽटि" इत्यनेन झयन्तःपातिनश्चकारात्परस्य  
झस्य अट्प्रत्याहारान्तःपातिनि शकारोत्तरवर्तिनीकारे परे कृत्वे च विहिते-तच्छिवः इति  
निष्पन्नम् । कृत्वाभावे 'तच्शिवः' इति भवति । कृत्वममीति । "शश्छोऽटि" इति सूत्रे  
अटीति विहाय अमीति वक्तव्यमित्यर्थः । 'शश्छोऽमि' इति सूत्रं पठनीयमिति यावत् ।  
तच्छ्लोकेनेति । 'तद्-श्लोकेन' इत्यत्र "स्तोः श्रुना श्रुः" इत्यनेन दकारस्य जकारे कृते  
"खरि च" इत्यनेन चकारे 'तच्-श्लोकेन' इत्यवस्थायां "कृत्वममीति वाच्यम्" इति  
वार्तिकेन शस्य कृत्वे च कृते 'तच्छ्लोकेन' इति सिद्धयति । पक्षे-तच्छ्लोकेनेति । मोऽनु-  
स्वार इति । "पदस्य" इत्यधिकारात् पदस्येत्यनुवर्तते । म इति षष्ठ्यन्तम् । पदस्य वि-  
शेषणं तदन्तविधिः । "हलि सवेषाम्" इत्यतो हलीत्यनुवर्तते । तदेतदाह-मान्तस्येत्या-  
दिना । 'हरिम्-वन्दे' इत्यत्र मान्तं पदं 'हरिम्' इति तस्यानुस्वारो, "मोऽनुस्वारः" इत्य-  
नेन प्राप्तः, "अलोऽन्त्यस्य" इति परिभाषया अन्त्यस्य 'म्' इत्यस्य स्थाने जातः । तेन

मलि किम् ? मन्यते ॥ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः । ८८१५८ स्पष्टम् । शान्तः ॥ वा पदान्तस्य । ८८१५९ । त्वङ्करोषि-त्वं करोषि ॥ मो राजि समः कौ । ८८१६० । किबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात् । सम्राट् ॥ हे मपरे वा । ८८१६१ । मपरे हकारे परे मस्य मो वा । किम् हललयति-किं हललयति । ( यवलपरे यवला वा ) । किं हलः-किं हलः, किम् हललयति-किं हललयति, किं हलः-

‘हरिं वन्दे’ इति जायते । नश्चापदान्तस्येति । चकारान्मस्येत्यनुकृष्यते अनुस्वार इति च । यशांसीति । ‘यशान्-सि’ इत्यत्र “नश्चापदान्तस्य झलि” इत्यनेन पदान्तरहितस्य नकारस्य शल्प्रत्याहारान्तःपातिनि सकारे परे नस्यानुस्वारे कृते ‘यशांसि’ इति । ‘आक्रमस्यते’ इत्यवस्थायां मकारस्य अपदान्तत्वात् “नश्चापदान्तस्य झलि” इत्यनेनैव झलि परे सत्यनुस्वारे विहिते-‘आक्रमस्यते’ इति जायते । स्पष्टमिति । अनुवर्त्यपदान्तराभावादिति भावः । अनुस्वारस्य परसवर्णो भवति ययि परे इत्यर्थः । शान्त इति । ‘शाम्-तः’ इति स्थिते अत्र “नश्चापदान्तस्य झलि” इत्यनेन ‘म्’ इत्यस्यानुस्वारे कृते ‘शां-तः’ इति जाते “अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः” इत्यनेन परसवर्णे नकारे विहिते ‘शान्तः’ इति सिद्धम् । एवमेव अङ्कितः, अञ्जितः, कुण्ठितः, गुम्फितः, इत्यत्रापि बोध्यम् । वा पदान्तस्येति । “अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः” इति सम्पूर्णं सूत्रमनुवर्तते । ‘त्वम्-करोषि’ इति स्थिते “मोऽनुस्वारः” इत्यनेन पदान्तस्य मस्यानुस्वारे विहिते सति तस्य स्थाने “वा पदान्तस्य” इत्यनेन विकल्पेन परस्य ककारस्य सवर्णे क ख ग घ ङ इति सर्वस्मिन् प्राप्ते “स्थानेऽन्तरतमः” इत्यनेन अनुस्वारस्य नासिकास्थानत्वात् तत्स्थानमुल्लोहकारो जातः । तेन ‘त्वङ्करोषि’ इति भवति । पक्षे-अनुस्वारात्मकम्-‘त्वं करोषि’ इति रूपम् । मो राजीति । म इति प्रथमान्तम् । “मोऽनुस्वारः” इत्यतो म इति स्थानपश्चान्तमनुवर्तते । समः इत्यवयवषष्ठी । प्रत्ययग्रहणपरिभाषया किमग्रहणेन किंप्रत्ययान्तलामः । तदाह—किबन्ते इत्यादिना । ‘सम्-राट्’ इति स्थितेऽत्र “मोऽनुस्वारः” इत्यनेन मकारस्य स्थाने अनुस्वारे प्राप्ते तं बाधित्वा “मो राजि समः कौ” इत्यनेन मकारस्य स्थाने म एव विधीयते । तेन ‘सम्राट्’ इति भवति । मकारस्य स्थाने मकारविधानमनुस्वारनिवृत्त्यर्थमिति भावः । हे मपर इति । “मोऽनुस्वारः” इत्यतः म इति षष्ठ्यन्तमनुवर्तते । “मो राजि समः कौ” इत्यतः म इति प्रथमान्तमनुवर्तते । मः परो यस्मादिति विग्रहस्तदाह—मपरे इत्यादिना । ‘किम्-हललयति’ इत्यत्र “मोऽनुस्वारः” इत्यनेनानुस्वारे प्राप्ते तं प्रबाध्य “हे मपरे वा” इत्यनेन मस्य मत्वे कृते । ‘किम् हललयति’ इति भवति । पक्षे—“मोऽनुस्वारः” इत्यनेनानुस्वारे ‘किं हललयति’ इति भवति । यवलपरे इति । यवलाः परे यस्मादिति विग्रहः । यवलपरके हकारे परे मस्य क्रमेण यवला एव वा स्युरित्यर्थः । किं हलः इति । ‘किम्-हलः’ इत्यत्र “यवलपरे यवला वा” इत्यनेन वार्तिकेन अपरके हकारे परे “मोऽनुस्वारः” इति

ह्लादयति-किंहादयति ॥ नपरे नः । ॥ १३२७ ॥ नपरे हकारे मस्य नो वा ।  
किन्हुते, किंहुते ॥ डः सि धुट् ॥ १३२८ ॥ डात्परस्य सस्य धुट् वा ॥ आद्यन्तौ  
टकितौ ॥ १३२९ ॥ टिकितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयौ स्तः । षट्सन्तः  
षट्सन्तः ॥ उगोः कुक् टक् शरि ॥ १३३० ॥ वा स्तः । प्राङ्बृष्टः-प्राङ्बृष्टः  
(चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्) । प्राङ्बृष्टः सुगण्ट्षः,

प्राप्तमनुस्वारं बाधित्वा मकारस्यानुनासिके यकारे विकल्पेन विहिते 'किं हाः' इति  
भवति । पचे-अनुस्वारे 'किं हाः' इति । एवमेव-किम्-ह्लयति' 'किम्-ह्लादयति'  
इत्यत्र वपरके व् इति; लपरके ल् इति चानुनासिके कृते 'किं व् ह्लयति' इति 'किं  
ह्लादयति' इति च भवतः । पचे-"मोऽनुस्वारः" इत्यनेनानुस्वारे 'किं ह्लयति' किं  
ह्लादयति' च जायेते । नपरे न इति । हे इति वेति म इति चानुवर्तते । नः परो यस्मा-  
दिति विप्रहस्तदाह-नपरे हकार इत्यादिना । किन्हुते इति । 'किम्-हुते' इत्यत्र "नपरे  
नः" इत्यनेन सूत्रेण नपरे हकारे परे मस्य नत्वे कृते 'किन्हुते' इति रूपम् । पचे-  
मस्यानुस्वारे 'किंहुते' इति । डः सीति । डः इति पञ्चमी । 'सि' इति सप्तमी । अत्र  
"तस्मादित्युत्तरस्य" इति "तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य" इति च परिभाषयोः प्राप्तयोः  
"उभयनिर्देशे पञ्चमो निर्देशो बलीयान् इति न्यायेन "तस्मादित्युत्तरस्य" इति  
परिभाषया सीति सप्तमी षष्ठी सम्पद्यते-डात्परस्य सस्येति । "हे मपरे वा" इत्यतो  
वेत्यनुवर्तते तदाह-डात्परस्येत्यादिना । षट्सन्त इति । 'षट्-सन्तः' इत्यत्र "डः सि  
धुट्" इत्यनेन डात् परस्य धुट्प्राप्तिः, स क स्यादित्याशङ्क्यामाह-"आद्यन्तौ टकितौ"  
इति टित्वात्सस्यादौ धुटि जाते 'षट् धुट् सन्तः' इति जातम् । अत्र अस्य "हलन्त्यम्"  
इत्यनेनेत्संज्ञायां धकारोत्तरवर्तिन उकारस्य च "उपदेशेऽजनुनासिक इत्" इत्यनेनेत्सं-  
ज्ञायां "तस्य लोपः" इत्यनेन लोपे च कृते 'षट् ध् सन्तः' इति भूतम् । अत्र "खरि च"  
इत्यनेन घस्य तकारे ङकारस्य टकारे च कृते 'षट्सन्तः' इति जातम् । धुडभावपदे-  
"खरि च" इति अस्य चत्वे टत्वे कृते 'षट्सन्तः' इति जायते । अत्र "ष्टुना धुः" इत्यनेन  
धुत्वं न शङ्क्यम् । "न पदान्ताद्वेरेनाम्" इति निषेधात् । उगोः कुगति । "हे मपरे  
वा" इत्यतो वेत्यनुवर्तते । कुक् च टक् चेति समाहारद्वन्द्वः । ङकारणकारयोः कुक्  
ट्कावागमौ वा स्तः शरि इत्यर्थः । उभयत्र ककार हल्संज्ञकः । उकार उच्चारणार्थः ।  
'प्राङ्-बृष्टः' इति स्थिते, अत्र "ङ्गोः कुवट्क् शरि" इत्यनेन ङकारस्य कुगागमे "आ-  
द्यन्तौ टकितौ" इत्यनेन ङकारस्यान्ते जाते 'प्राङ् कुक् बृष्टः' इति निष्पत्ते सति 'कु'  
इत्यस्य "हलन्त्यम्" इत्यनेनेत्संज्ञायां "तस्य लोपः" इत्यनेन लोपे च 'प्राङ्बृष्टः'  
इति जाते । तत्र विकल्पेन "चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्" इति वार्ति-  
केन खत्वे विहिते 'प्राङ्बृष्टः' इत्यभवत् । द्वितीयाचराभावे कृष्णयोगे 'प्राङ्बृष्टः' इति  
भवति । कुगामगामावे 'प्राङ्बृष्टः' इति । एवम् 'सुगण्ट्षः' इति दशायां "कुगोः



सगणद्वयः--सुगणद्वयः । नञ् ॥ ८३३० ॥ नान्तात्परस्य सस्य धुच् वा ।  
 सन्तः--सन्तः ॥ शि तुक् ॥ ८३३१ ॥ पदान्तस्य नस्य शे परे तुग्वा । सञ्छ-  
 म्भुः--सञ्छम्भुः--सञ्छम्भुः--सञ्छम्भुः ॥ ऊमो ह्रस्वादचि ऊमुणित्यम्  
 ॥ ८३३२ ॥ ह्रस्वात्परो या ऊम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याचो ऊमुट् । प्रत्यङ्मात्मा,

कुम्भुक् शरि" इत्यनेन णकारस्य दुगागमे "आद्यन्तौ टकितौ" इत्यनेन अन्तावयवे  
 जाते 'सुगण-ट्क् षष्ठः' इति जाते उकारे निवृत्ते ककारस्येत्संज्ञायां लोपे च 'सुगणट्-  
 षष्ठः' इति । तत्र "चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्" इत्यनेन द्वितीयाचरे  
 ठकारे विकल्पेन जाते 'सुगण् ठ् षष्ठः' इत्यभवत् । द्वितीयाचराभावे 'सुगणट्क् षष्ठः'  
 इति भवति । दुगागमाभावे 'सुगण् षष्ठः' इति रूपबोधम् । नञ्चेति । सि धुट् इति,  
 वेति चानुवर्तते । न इति पञ्चमी, "तस्मादित्युत्तरस्य" इति परिभाषया सीति षष्ठी  
 सम्पद्यते तदाह--नान्तात्परस्येत्यादिना । सन्तः इति । 'सन्--सः' इत्यवस्थायाम्  
 "नञ्" इति सूत्रेण धुटि विहिते क भवति इति शङ्कायाम् "आद्यन्तौ टकितौ" इत्य-  
 नेन सस्याद्यावयवे 'सन् धुट् स' इति जाते । तत्र उकारस्य निवृत्तिः । ठकारस्य "हृ-  
 ल्त्वम्" इत्यनेनेत्संज्ञायाम् "तस्य लोपः" इत्यनेन लोपे च 'सन् ध् स इति जाते ।  
 तत्र 'स्वरि च' इत्यनेन धकारस्य चत्वेन तकारे कृते सति 'सन्तः' इति जायते ।  
 दुगागमाभावे 'सन्तः' इति भवति । शि तुगिति । पूर्वसूत्रात् न इति पञ्चम्यन्तमनुवृत्त-  
 मिह षष्ठ्यन्तमाश्रीयते; शब्दाधिकाराभयणात् । 'पदस्य' इत्यधिकृतम् अवयवषष्ठ्य-  
 न्तमाश्रीयते । "हे मपरे वा" इत्यतो वेत्यनुवर्तते तदाह--पदान्तस्य नस्येत्यादिना । 'सन्-  
 सम्भुः' इत्यत्र कस्य सूत्रस्य प्राप्तिः ? "शि तुक्" इत्यस्य, तेन पदान्तनस्य तुकि कृते  
 "आद्यन्तौ टकितौ" इत्यनेन नस्यान्तावयवे कृते 'सन् तुक् सम्भुः' इति जाते अत्र  
 "हृल्वम्" इत्यनेन कस्येत्संज्ञायाम् "तस्य लोपः" इत्यनेन लोपे उकारनिवृत्तौ  
 सत्याम् 'सन् त् सम्भुः' इति जाते "शरद्धोऽटि" इत्यनेन सम्भुरित्यस्य शस्य कृत्वे  
 कृते 'सन् त् सम्भुः' इति जाते "स्तोः श्रुना श्रुः" इति तस्य क्त्वे पुनः "स्तोः श्रुना  
 श्रुः" इति नस्य क्त्वे च विहिते 'सञ्छम्भुः' इति जायते । यत्र "शरो शरि सक्क" इति  
 वैकल्पिकचलोपः, तत्र 'सञ्छम्भुः' इति । चलोपाभावे च 'सञ्छम्भुः' इति । "श-  
 रद्धोऽटि" इति कृत्वाभावे "स्तोः श्रुना श्रुः" इति तस्य क्त्वे पुनः "स्तोः श्रुना श्रुः"  
 इत्यनेन नस्य क्त्वे च विहिते 'सञ्छम्भुः' इति तुक्श्रमाभावे नस्य श्रुत्वे च कृते 'सञ्-  
 चम्भुः' इति रूपचतुष्टयमत्र बोध्यम् । तथाहि सङ्ग्रहः--"अक्षौ अचक्षा अचक्षा अक्षा-  
 विति चतुष्टयम् । रूपाणामिह तुक्कृत्वचलोपानां विकल्पनात्" । इति । ऊमो ह्रस्वा-  
 दिति । ऊम्--प्रत्याहारः । ऊमः इति पञ्चम्यन्तम् । तद्विशेषणत्वात्पदस्येति अधिकृतं पञ्च-  
 म्यन्ततया विपरिणम्यते । ऊम इति च ह्रस्वादिति विशेषणसम्बन्धमनुभूय पदविशेष-  
 णत्वं भवत् तदन्तपरम् । ऊम इति पञ्चमीबलात् अचीति सप्तमी षष्ठ्यर्थे । तदाह--  
 ह्रस्वात्पर इत्यादिना । ऊमुदागम इति । ठकार इत्, उकार उच्चारणार्थः । संज्ञायां कृते

सुगण्णीशः, सञ्च्युतः ॥ समः सुटि । ८३१५। समो रुः सुटि ॥ अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा । ८३१२। अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा ॥ अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः । ८३१४। अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्यात्परोऽनुस्वारागमः ॥ खरवसानयोर्विसर्जनीयः । ८३१५। खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः । ( सम्पुंकानां सो वक्तव्यः ) । संस्कर्ता-संस्कर्ता ॥ पुमः सञ्च्यम्परे । ८३१६। अम्परे ऋषि पुमो रुः । पुंस्कोकिलः-पुंस्कोकिलः ॥ नरः-

टित्वमानर्थक्यात्तदङ्गन्यायात् संज्ञिभिः सम्बध्यते । ततश्च कुट् पुट् नुट् इति त्रय आगमाः फलिताः इति भावः । प्रत्यङ्ङात्मेति । 'प्रत्यङ्-आत्मा' इत्यत्र "ङमो ह्रस्वादधि ङमुण् नित्यम्" इत्यनेन ह्रस्वात्परस्य ङमुप्रत्याहारान्तःपातिनो ङकारात्परस्याच्प्रत्याहारान्तर्वर्तिनं आकारस्य टित्वादादौ ङमुटि जाते प्रत्यङ् कुट् आत्मेति जातम्, उकारस्योच्चारणार्थत्वाच्चिदृशौ टकारस्येत्येत्संज्ञायां लोपे च 'प्रत्यङ् ङ आत्मा' इति तत्र सर्वस्मिन् संयुक्ते 'प्रत्यङ्ङात्मा' इति रूपम्भवति । एवं 'सुगण्-ईशः' इत्यत्र "ङमो ह्रस्वादधि ङमुण् नित्यम्" इत्यनेन, 'ई' इत्यस्य णुटागमे उकारस्यानुबन्धस्य च निष्कृती संयोगे च सति "सुगण्णीशः" इति भवति । एवमेव 'सन्-अच्युतः' इति ह्रस्वायां "ङमो ह्रस्वादधि०" इत्यनेन पूर्ववत् नुटि 'सञ्च्युतः' इति सिध्यति । समः सुटीति । सम इति षष्ठ्यन्तम् । "मनुवसो रु सम्बुद्धौ" इत्यतो रुप्रहणमनुवर्तते तदाह-समो रुः स्यात् सुटीति । संस्कर्तेति । 'सम्-कर्ता' इत्यत्र "सम्परिभ्यां करोतौ भूफणे" इति सूत्रेण सुडागमेऽनुबन्धलोपे सति, 'सम् स् कर्ता' इति जाते अत्र "समः सुटि" इति सुट्सम्बन्धिभिः सकारे परे सर्वस्य समो रुत्वे प्राप्ते "अलोऽन्त्यस्य" इति योगेनान्त्यस्य मत्स्य रुत्वे उकारलोपे च विहिते 'स र् स् कर्ता' इति भूते "अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा" इत्यनेन रोः पूर्वमनुनासिके जाते 'सं स् कर्ता' इति जाते, यस्मिन् पक्षे बाप्रहणादनुनासिको नामूत् तस्मिन् पक्षे "अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः" इति योगेनानुस्वारे कृते 'सं स् कर्ता' इति जाते अत्र "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" इत्यनेन खरप्रत्याहारान्तःपातिनि सकारे परे रेफस्य विसर्गे विहिते 'सं कर्ता, सं कर्ता' इति जाते अत्र "विसर्जनीयस्य सञ्च्युतः" इति विसर्जनीयस्य सत्वे प्राप्ते "वा शरि" इति विसर्जनीयस्य विसर्जनीयस्य च काले इहोभयवर्षाप्रयाज्य "सम्पुंकानां सो वक्तव्यः" इति वार्तिकेन विसर्गस्य सत्वे कृते 'संस्कर्ता' इति 'संस्कर्ता' इति च रूपद्वयं सिध्यति । पुमः सञ्च्यम्परे इति । "मनुवसो रु सम्बुद्धौ" इत्यतो रुप्रहणमनुवर्तते अम् परो यस्मादिति चिप्रहस्तदाह-अम्परे संज्ञीति । पुंस्कोकिल इति । पुमांश्चासौ कोकिलोति कर्मचारयसमासः । 'पुम-कोकिल' इत्यत्र 'पुमः सञ्च्यम्परे' इत्यनेन पुमो मत्स्य रुत्वे रेफोत्तरवर्जुकारलोपे 'पुंस्कोकिल' इति जाते "अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा" इत्यनुनासिके पुंस्कोकिलः, पक्षे-"अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः" इत्यनेनानुस्वारे 'पुंस्कोकिल' इति भूते अत्र "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" इति

व्यप्रशान् । ८।३।७। अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः ॥ विसर्जनीयस्य सः । ८।३।४। खरि । चक्रिश्चायस्व-चक्रिश्चायस्व । अप्रशान् किम् ? प्रशान्तनोति । पदान्तस्येति किम् ? हन्ति ॥ नून्पे । ८।३।१०। नून्तित्यस्य र्वा पे ॥ कुप्पोः ~~क~~ ~~पौ~~ च । ८।३।३। कवों पवों च विसर्गस्य ~~क~~ ~~पौ~~ स्तः । चादिसर्गः । नूँ ~~पाहि~~-नूँ ~~पाहि~~-नूँ ~~पाहि~~-नूँ ~~पाहि~~-नूँ ~~पाहि~~-नूँ ~~पाहि~~ ॥ तस्य परमाधेदितम् । ८।३।२। द्विरुक्तस्य परमाधेदितं स्यात् ॥ कानामधेदिते । ८।३।२। कानकारस्य रुः

रेफस्य विसर्गत्वे “कुप्पो ~~क~~ ~~पौ~~ च” इत्यनेन जिह्वामूलीये प्राप्ते तं बाधित्वा “सम्पुंकानां सो वक्तव्यः” इति विर्गस्य सत्वे कृते ‘पुँस्कोकिलः’ ‘पुँस्कोकिलः’ इति रूपद्वयं सिद्ध्यति । नश्छव्यप्रशानिति । न इति षष्ठ्यन्तं पदस्येत्यधिकृतस्य विशेषणम् । तदन्तर्विधिः । अम्परे इति रु इति चानुवर्तते तदाह-अम्पर इत्यादिना । चक्रिश्चायस्वेति । ‘चक्रिन्-त्रायस्व’ इति स्थिते “नश्छव्यप्रशान्” इत्यनेन नान्तस्य पदस्य चक्रिन् इत्यस्य रूपे प्राप्ते “अलोऽन्त्यस्य” इत्यनेन ‘नू’ इत्यस्य स्थाने रु कृते अम्परकछव्यप्रत्याहारान्तःपातिनि ककारे परे । तथा ‘चक्रिरु त्रायस्व’ इति जाते रेफोत्तरवर्त्युकारस्येत्यंश्यां लोपे च ‘चक्रिर् त्रायस्व’ इति जाते । अत्र “अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा” इति अनुनासिके, पक्षे-“अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः” इत्यनुस्वारे च ‘चक्रिर् त्रायस्व’ ‘चक्रिर् त्रायस्व’ इति जाते ‘खरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति उभयत्र रेफस्य विसर्गे कृते सति “विसर्जनीयस्य सः” इत्यनेन विसर्गस्य सत्वे ‘चक्रिश्चायस्व’ ‘चक्रिश्चायस्व’ इति रूपद्वयं बोध्यम् । अप्रशान् किमिति । ‘प्रशान्-तनोति’ इत्यत्र सूत्रार्थसमन्वयात् नकारस्य स्वं प्राप्तम्, तच्चेष्टमिति शास्त्रे ‘अप्रशान्’ इति पर्युदस्यते । नन् पे इति । नन् इति द्वितीयान्तं शब्दस्वरूपपरम्बोध्यम् । तच्च षष्ठ्यन्तम् । षष्ठ्याः सौत्रो लुक् । नलोपाभावोऽपि सौत्र एव । “मतुवसो रु” इत्यतो रु इत्यनुवर्तते । “उभयथञ्चु” इत्यत उभयथेत्यनुवर्तते । कदाचिद्वति, कदाचिच्च भवतीत्येवमुभयथा रुः प्रत्येतव्य इत्यर्थः । विकल्प इति यावत् । तदाह-नून्तित्येत्यादिना । नूँ ~~पाहि~~ति । ‘नून्-पाहि’ इत्यत्र “नून् पे” इत्यनेन नस्य रूपे उकारलोपे “अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा” इत्यनुनासिके, पक्षे-“अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः” इत्यनुस्वारे “खरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति विसर्गे-“कुप्पोः ~~क~~ ~~पौ~~ च” इत्युपध्मानीये च नूँ ~~पाहि~~, नूँ ~~पाहि~~, इति । उपध्मानीयाभावे सति विसर्गे ‘नूँ ~~पाहि~~’ ‘नूँ ~~पाहि~~’ इति । पक्षे-‘नून्पाहि’ इति पञ्च रूपाणि । सूत्रे पे इत्यत्राकार उच्चारणार्थः । तेन ‘नून् पुनाति’ इत्यादावपि पञ्च रूपाणि बोध्यानि । कानामधेदित इति । कानिति द्वितीयान्तं शब्दस्वरूपपरं षष्ठ्यन्तम् । षष्ठ्याश्च सौत्रो लुक् । नलोपाभावोऽपि सौत्र एव । “अलोऽन्त्यस्य” इति परिभाषया कान्शब्दान्तस्येति दृश्यते । रु इत्यनुवर्तते । तदाह-कानकारस्येत्यादिना । कान् इत्यस्य वीप्सायां द्विवचने ‘कान्-कान्’ इति स्थिते प्रथमनकारस्य “कानामधेदिते” इत्यनेन रूपे उकारलोपे

स्यादभेदिते । कांस्कान्-कांस्कान् ॥ छे च । ६।१।७३। ह्रस्वस्य छे तुगागमः । शिव-  
च्छाया ॥ पदान्ताद्वा । ६।१।७६। दीर्घात्पदान्ताच्छे तुग्वा । लक्ष्मीच्छाया-लक्ष्मी-  
च्छाया ॥ इति ह्रस्वसन्धिप्रकरणम् ॥

## ॥ अथ विसर्गसन्धिप्रकरणम् ॥

विसर्जनीयस्य सः । ८।३।३४। खरि । विष्णुस्त्राता ॥ वा शरि । ८।३।३६।  
शरि विसर्गस्य विसर्गो वा । हरिः शेते-हरिश्शेते ॥ ससजुषो रुः । ८।३।३६।

“अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा” इत्यनुनासिके ‘कां कान्’ इति जाते पक्षे-“अनुना-  
सिकात्परोऽनुस्वारः” इत्यनुस्वारे कां कान् इति भूते अत्र “स्वरवसानयोर्विसर्जनीयः”  
इति रेफस्य विसर्गे “कुप्वो × क × पौ च” इत्यनेन जिह्वामूलीये च प्राप्तोऽतं प्रवाच्य  
“सस्युकानां सो वक्तव्यः” इति वार्तिकेन सत्वे च कृते ‘कांस्कान्’ ‘कांस्कान्’ इति ।  
छे चेति । “ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्” इत्यतो ह्रस्वस्येति तुगिति चानुवर्तते । संहिता-  
यामित्यधि कृतम् । तदाह-ह्रस्वस्येत्यादिना । शिवच्छायेति । ‘शिव-च्छाया’ इत्यवस्थायां  
“छे च” इति सूत्रेण ह्रस्वस्य ‘शिव’ इत्यत्रस्थवकारोत्तरवर्त्यकारस्य तुक् प्रासः छे परे  
सति । स च कित्वाद् “आद्यन्तौ टकितौ” इत्यनेन अन्तावयवो जातः । तत्र “ह्रस्-  
वस्य” इत्यनेन ककारस्येत्संज्ञायाम् “तस्य लोपः” इत्यनेन लोपे उकारस्य निवृत्तौ  
‘शिव-च्छाया’ इति जाते । इह “स्तोः श्रुना श्रुः” इत्यनेन तकारस्य चत्वे विहिते  
‘शिवच्छाया’ इति सिद्धम् । एवमेव स्वच्छायेत्यत्र बोध्यम् । पदान्तादेति । तुक्, छे,  
दीर्घात्, इत्यनुवर्तते । तदाह-दीर्घात्पदान्तादिष्यादिना । अत्र दीर्घस्यैवायं तुक् बोध्यः ।  
न च “उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान्” इति परिभाषया छकारस्यान्ताक्ष-  
स्तुक् स्वादिति वाच्यम् । “सेनासुराच्छाया” इति पाणिनीयसूत्रनिर्देशेन तस्याः प्रवा-  
धनात् । लक्ष्मीच्छायेति । ‘लक्ष्मी-च्छाया’ इत्यवस्थायाम् “पदान्ताद्वा” इत्यनेन तुक्  
उको लोपे “स्तोः श्रुना श्रुः” इत्यनेन तस्य चत्वे ‘लक्ष्मीच्छाया’ इति निष्पन्नम् । तुग्-  
भावे च ‘लक्ष्मीच्छाया’ इति ॥ इति ह्रस्वसन्धिप्रकरणम् ॥

विष्णुस्त्रातेति । ‘विष्णुः-त्राता’ इति स्थिते “विसर्जनीयस्य सः” इति सूत्रेण स्वर-  
प्रत्याहारान्तःपातिनि तकारे परे विसर्गस्य सत्वे कृते ‘विष्णुस्त्राता’ इति रूपम् । वा  
क्षरीति । विसर्जनीयस्येति, विसर्जनीय इति चानुवर्तते । विसर्गस्य विसर्गविधानञ्च तस्य  
सत्त्वपरिसंख्यानार्थम् । वाग्रहणाच्च सत्त्वपरिसंख्यानं पादिकम् । तदाह-शरि परे इत्या-  
दिना । हरिः शेते इति । ‘हरिः शेते’ इत्यत्र “वा शरि” इति सूत्रेण शरप्रत्याहारान्तः-  
पातिनि शकारे परे सति विसर्गस्य विसर्गो विहिते ‘हरिः शेते’ इति रूपम् । पक्षे-  
“विसर्जनीयस्य सः” इत्यनेन विसर्गस्य सत्वे विहिते हरिस् शेते इति जाते, तत्र  
“स्तोः श्रुना श्रुः” इत्यनेन तकारस्य सकारे च कृते ‘हरिश्शेते’ इति रूपम् । ससजुष

पदान्तरस्य सस्य सजुषश्च रुः स्यात् ॥ अतो रोरप्लुतादप्लुते । ६।१।११३। अ-  
 तादतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति । शिवोऽर्च्यः ॥ हशि च । ६।१।११४। तथा ।  
 शिवो वन्यः ॥ भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि । ६।३।१७। एतत्पूर्वस्य रोर्वा-  
 देशोऽशि । देवा इह—देवायिह । भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाताः । तेषां  
 रोर्त्यत्वे कृते । हलि सर्वेषाम् । ६।३।२२। भो भगो अघो अपूर्वस्य यस्य लोपः  
 स्यादलि । भो देवाः भगो नमस्ते, अघो याहि ॥ रोऽसुपि । ६।३।६६। अहो

इति । पदस्येत्याधिकृतं सकारेण सजुषशब्देन च विशेष्यते । अतस्तदन्तविधिः । सका-  
 रान्तं सजुषशब्दान्तं च यत्पदं तस्य रुः स्यादिति । स च “अलोऽन्त्यस्य” इति परि-  
 भाषया अन्त्यस्य भवति । ततश्च फलितमाह—पदान्तस्य सस्येत्यादिना । अतो रोरिति ।  
 “ऋत उत्” इत्यतः उदित्यनुवर्तते । अतः इति पञ्चमी । “एङः पदान्तादति” इत्यतो-  
 ऽतीत्यनुवर्तते तदाह—अप्लुतादित्यादिना । शिवोऽर्च्य इति । “शिवस्-अर्च्यः” इत्यवस्थायां  
 “ससजुषो रुः” इति सस्य रूपे “अतो रोरप्लुतादप्लुते” इति सूत्रेण पूर्वपरयोः स्थाने  
 गुणे विहिते “शिवो अर्च्यः” इति जाते “एङः पदान्तादति” इति सूत्रेणार्च्य इत्यस्या-  
 कारस्य पूर्वरूपादेशे च विहिते “शिवोऽर्च्यः” इति सिद्धम् । हशि चेति । अतो रोरप्लु-  
 तादिति पदत्रयं पूर्वसूत्रादनुवर्तते । “ऋत उत्” इत्यतः उदिति च, तेन अप्लुतादतः  
 परस्य रोरुः स्यादशि इति सूत्रार्थः । शिवो वन्य इति । “शिवस्-वन्यः” इत्यत्र “सस-  
 जुषो रुः” इत्यनेन सस्य रूपे “हशि च” इत्यनेन हश्प्रत्याहारान्तःपातिनि वन्यवृत्त-  
 ककारे परे रोरूपे “आद्गुणः” इत्यनेन पूर्वपरयोः स्थाने गुणे च कृते “शिवो वन्यः”  
 इति रूपम् ॥ भो भगो इति । “रोऽसुपि” इत्यतो रोरित्यनुवर्तते । भो भगो अघो अ-  
 इत्येतेषां द्वन्द्वः । एते पूर्वं यस्मादिति बहुव्रीहिः । पूर्वशब्दश्च प्रत्येकं सम्बध्यते ।  
 ‘द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते’ इति नियमात् । तेन भोपूर्वकस्य, भगो-  
 पूर्वकस्य, अघोपूर्वकस्य, अवर्णपूर्वकस्य च रोर्वादेशः स्यादशि इति सूत्रार्थः । देवा इहेति ।  
 ‘देवास्-इह’ इति दशायां “ससजुषो रुः” इति सूत्रेण सस्य रूपे “भोभगोअघोअपूर्व-  
 स्य योऽशि” इति सूत्रेण रोर्वादेशे ‘देवास्-इह’ इति जाते तत्र “लोपः शाकल्यस्य”  
 इत्यनेन यलोपे ‘देवा इह’ इति जायते । शाकल्यग्रहणात्पक्षे ‘देवायिह’ इति । ‘भोस्-  
 देवाः’ इत्यत्र “ससजुषो रुः” इति सस्य रूपे “भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि” इत्यनेन  
 रोर्त्यत्वे “हलि सर्वेषाम्” इति यलोपे च ‘भो देवा’ इति रूपम् । ‘भगोस्-नमस्ते’ इति  
 दशायां “ससजुषो रुः” इति सस्य रूपे “भोभगो अघो” इति रोर्त्यत्वे “हलि सर्वे-  
 षाम्” इति यलोपे च ‘भगो नमस्ते’ इति जायते । ‘अघोस्-याहि’ इत्यत्र “ससजुषो  
 रुः” इति सस्य रूपे “भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि” इति रोर्वादेशे “हलि सर्वेषाम्”  
 इति यलोपे च कृते ‘अघो याहि’ इति रूपं सिद्धम् । रोऽसुपीति । रः असुपीति च्छेदः ।  
 ‘अहन’ इति सूत्रमनुवर्तते । तच्च लुसषष्ठीकं पदम् । तदाह—“अहो रेफादेश स्या-

रेफादेशो न तु सुपि । अहरहः, अहर्गणः ॥ रो रि । ॥ ३११४ ॥ रेफस्य रेफे परे लोपः ॥ द्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः । ॥ ३१११ ॥ ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः । पुना रमते, हरी रम्यः, शम्भू राजते । अणः किम् ? तृढः, वृढः । मनस् रथ इत्यत्र रुत्वे कृते “हशि च” इत्युत्वे “रो रि” इति लोपे च प्राप्ते ॥ विप्रतिषेधे परं कार्यम् । ॥ ३११४ ॥ तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात् । इति लोपे प्राप्ते ।

दिना । अहरह इति । “नित्यवीप्सयोः” इति द्विर्वचनम् । ‘अहन् अहन्’ इति स्थिते “रोऽसुपि” इत्यनेन सर्वस्याहन् शब्दस्य रेफादेशे प्राप्ते “अलोऽन्त्यस्य” इति परिभाषया उभयत्राऽन्त्यस्य नस्य जाते अहर्-अहर् इति जाते तत्र “खरवसानयोर्विसर्जनीयः” इत्यन्त्यस्य विसर्गं, कृते च संयोगे-‘अहरहः’ इति भवति । ‘अहन्-गणः’ अत्र “रोऽसुपि” इति सर्वस्य रेफादेशे प्राप्ते “अलोऽन्त्यस्य” इति परिभाषया अन्त्यस्य विहिते सयुक्ते च कृते ‘अहर्गणः’ इति रूपम् । रो रीति । रः इति षष्ठी । “ढो ढे लोपः” इत्यतो लोप इत्यनुवर्तते तदाह-रेफस्येति । द्रलोप इति । द् च रेफश्च ढौ तौ लोपयतीति द्रलोपः । ण्यन्तात्कर्मण्युपपदे अण्, उपपदसमासः । ढलोपनिमित्तं रेफलोपनिमित्तञ्च विवक्षितम् । तच्च ढकाररेफात्मकमेव । “ढो ढे लोपः” “रो रि” इति तयोरेव ढलोपनिमित्तत्वात् । तथा च ढलोपनिमित्ते ढकारे रेफलोपनिमित्ते रेफे च परतः पूर्वस्याणो दीर्घः इति फलति तदाह-ढरेफयोरित्यादिना । पुना रमते इति । ‘पुनर्-रमते’ इति स्थिते “रो रि” इत्यनेन रेफस्य लोपे ‘पुन रमते’ इति जाते, अत्र “द्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इति सूत्रेणात्र लोपनिमित्ते रेफे परे पूर्वाणरूपस्य नकारोत्तरवर्तिनोऽकारस्य दीर्घं च विहिते ‘पुना रमते’ इति सिद्धम् । ‘हरिस्-रम्यः’ इत्यत्र “ससजुषो रुः” इत्यनेन सस्य रुत्वे अनुबन्धलोपे ‘हरिर् रम्यः’ इति जाते; तत्र “रो रि” इत्यनेन रेफस्य लोपे “द्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इत्यनेन दीर्घं च कृते ‘हरी रम्यः’ इति सिद्धम् । ‘शम्भुस्-राजते’ अत्र “ससजुषो रुः” इत्यनेन रुत्वे उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च ‘शम्भुर् राजते’ इति जाते तत्र “रो रि” इत्यनेन रेफस्य लोपे “द्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इत्यनेनोकारस्य दीर्घं ‘शम्भू राजते’ इति भवति । तृह् हिंसायाम् वृह् उद्यमने । आभ्यां कप्रत्यये “ढो ढः” इति ढलोपे “क्षपस्तयोः” इति तकारस्य ऋत्वे तस्य ऋत्वेन ढकारे ‘तृढ ढ’ ‘वृढ ढ’ इति जाते अत्र “ढो ढे लोपः” इत्यनेन पूर्वढस्य लोपे सति “द्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इत्यस्मिन् सूत्रे अण्ग्रहणामावे ढलोपनिमित्ते ढकारे परे पूर्वस्य ऋकारस्य दीर्घं प्राप्ते तन्मा भूत् इति ‘अण् ग्रहणमत्र कृतम् । तेनात्र न दीर्घस्तदेवाह-अणः किम् ? तृढः वृढ इति । विप्रतिषेध इति । विप्रतिपूर्वात् सेधतेर्धञि उपसर्गवशात् परस्परविरोधे विप्रतिषेधशब्दः । विरोधश्च तुल्यबलयोरेव लोकसिद्धस्तदाह-तुल्यबलेति । द्वयोः साक्षयोः कचित्त्व्यावकाशयोरेकत्र रुष्ये पुनस्तस्मैवस्तुल्यबलविरोधः । कार्यस्य परत्वं परशास्त्रविहित-

“पूर्वत्रासिद्धम्” इति “रो रि” इत्यस्यासिद्धत्वादुत्वमेव । मनोरथः ॥ एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि । ६।१।१३२। अकारयोरेतत्तदोः सुस्तस्य लोपो- हलि, न तु नञ्समासे । एष विष्णुः, स शम्भुः । अकोः किम् ? एषको रुद्रः । अन- न्समासे किम् ? असश्शिवः । हलि किम् ? एषोऽत्र ॥ सोऽचि लोपे चेत्पाद-

त्वम् । मनोरथ इति । ‘मनस्-रथः’ इति स्थिते “ससञ्जुषो रुः” इति पदान्तस्य सस्य- रत्वे “हश्चि च” इति रोस्त्वे प्राप्ते “रो रि” इति रेफस्य लोपे च प्राप्ते तर्हि प्राक्- केन भाव्यमिति शङ्कायाम् “विप्रतिषेधे परं कार्यम्” इति सूत्रेण परं कर्तव्यम् । तत्र “हश्चि च” इति सूत्रं षष्ठाध्यायस्थं “रो रि” इति चाष्टमाध्यायस्थम् इति “हश्चि- च” इत्यपेक्षया “रो रि” इत्यस्य परत्वम्, इति “रो रि” इत्यनेन रेफस्य लोपे प्राप्ते । तत्र “पूर्वत्रासिद्धम्” इत्यधिकारसूत्रेण सपादसप्ताध्यायीस्थसूत्रद्वया त्रैपादिकस्य “रो रि”, इत्यस्यासिद्धत्वप्रतिपादनात् न “रो रि” इत्यनेन रेफस्य लोपः, किन्तु “हश्चि- च” इत्यनेन रोस्त्वे ‘मन उ रथः’ इति जाते । तत्र “आद्गुणः”, इत्यनेन पूर्वपरयोः- स्थाने ओकाररूपे गुणे कृते ‘मनोरथः’ इति सिद्धमिति । एतत्तदोरिति । एतत्तच्छब्दयो- रनुकरणत्वेन शब्दपरत्वम् । अतः सूत्रे नैकशेषः । सु इति लुसषष्ठीकं पदम् एतत्तदो- रित्यनेनान्वेति-एतत्तदोः सकारस्येति । अत एव ‘सोलोपः सुलोपः’ इति न षष्ठीसमासः, असामर्थ्यात् । अविद्यमानः ककारः ययोस्तौ अकौ तयोः अकोरिति बहुव्रीहस्तदाह— अकारयोरित्यादिना । एष विष्णुरिति । ‘एतद्-सु विष्णुः’ इति दशायां “त्यदादीनामः” इत्यनेन अकारान्तादेशे “अतो गुणे” इति पररूपे “तदो सः सावनन्त्ययोः” इत्यनेन- तस्य सत्वे सस्य च षत्वे “एष सु विष्णुः, इति जातेः अत्र एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्- समासे हलि” इति सूत्रेण सोलोपे विहिते सति “एष विष्णुः” इति सम्पद्यते । स शम्भु- रिति । ‘तद्-सु शम्भुः’ इत्यत्र “त्यदादीनामः” इत्यनेनाकारान्तादेशे “अतो गुणे” इत्यनेन पररूपत्वे “तदो सः सावनन्त्ययोः” इति तस्य सत्वे ‘स सु शम्भुः’ इति जातेः अत्र “एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि” इति सोलोपे च कृते ‘स शम्भुः’ इति रूपम् । अकोः किमिति । न च अकचि सति शब्दान्तरत्वात् प्रकृते प्राप्तिरेव ना- स्तीति वाच्यम् । ‘तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते’ इति परिभाषयात्र प्राप्तेः स- त्वात् प्रकृतपरिभाषायामिदमेव ज्ञापकं बोध्यम् । ‘एषकस्-रुद्रः’ अत्र एतच्छब्दस्य सककारत्वान्न सुलोपः; किन्तु “ससञ्जुषो रुः” इत्यनेन रत्वे “हश्चि च” इत्युत्वे “आद्- गुणः” इति गुणे ‘एषको रुद्रः’ इति रूपम् । अत्र ‘सको रुद्रः’ इत्यपि प्रत्युदाहरणम्बो- ध्यम् । अनञ्समासे किमिति । अनञ्समासे इति न पर्यदासः; किन्तु प्रसज्यप्रतिषेधः । प्रकृते ‘अस सु शिवः’ इत्यत्र नञ्समासत्वात् “एतत्तदोः” इति सूत्रस्याप्राप्तौ “सस- ज्जुषो रुः” इति सस्य रत्वे “खरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति रेफस्य विसर्गत्वे ‘असः- शिवः’ इति भवति । एषोऽत्रेति । ‘एष सु अत्र’ इत्यत्र इत्यपरत्वाभावात् “एतत्तदोः-

पूरणम् । ६।१।१३४। स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादवि पादध्वलोपे सत्येव पूर्येत । सेमा-  
मविद्धिद प्रभृतिम् । सैष दाशरथी रामः ॥ इति विसर्गसन्धिप्रकरणम् ॥

### ॥ अथाजन्तपुल्लिङ्गप्रकरणम् ॥

अथैवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् । १।२।४५। धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च  
वर्जयित्वाथर्वचङ्छन्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात् ॥ कृतद्धितसमासाश्च । १।२।  
४६। कृतद्धितान्तौ समासाश्च तथा स्युः ॥ स्वौजसमौट्ठष्ठाभ्यांभिसङ्भ्यां-  
भ्यस्ङ्सिभ्यांभ्यस्ङ्सोसाङ्ग्योस्सुप् । ४।१।२। सु औ जस् इति प्रथमा ।  
अम् औट् शस् इति द्वितीया । टा भ्यां भिस् इति तृतीया । ङे भ्याम् भ्यस् इति  
चतुर्थी । ङसि भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी । ङस् औस् आम् इति षष्ठी । ङि औस् सुप्  
इति सप्तमी ॥ ऊयाप्रातिपदिकात् । ४।१।१। प्रत्ययः । ३।१।१ परश्च । ३।१।

सुलोपोऽङ्कोरनञ्समासे हलि” इत्यस्याप्राप्तौ सस्य “ससजुषो रुः” इत्यनेन रुवे “अतो  
रोरप्लुतादप्लुते” इत्यनेन उत्वे “आद्गुणः” इत्यनेन गुणे “एङः पदान्तादति” इत्य-  
नेन पूर्वरूपे च कृते “एषोऽत्र” इति जायते । सोचि लोप इति । स इति प्रथमैकवचन-  
न्तं स्वरूपपरम् । ततः षष्ठ्या लुक् सस् शब्दस्येति लभ्यते । सुलोप इत्यनुवर्तते  
तदाह—स इत्यस्येत्यादिना । ‘सस् इमामविद्धिप्रभृतिम्’ इत्यत्र “सोचि लोपे चेत्पाद-  
पूरणम्” इति सकारलोपाभावे पादोऽत्र न पूर्यते अतोऽनेन सकारलोपे “आद्गुणः”  
इत्यनेन गुणे सति ‘सेमामविद्धिप्रभृतिम्’ इति सिद्धम् । एवम्—‘सस् एष दाश-  
रथी रामः’ इत्यत्र “सोचि लोपे चेत्पादपूरणम्” इत्यनेन पादपूरणार्थं सलोपे विहिते  
“वृद्धिरेचि” इत्यनेन वृद्धौ ‘सैष दाशरथी रामः’ इति पादपूरणसिद्धिः ।

इति विसर्गसन्धिप्रकरणम् ।

अथ “स्वौजस्” इत्यादिना स्वादिप्रत्ययान्वच्यति । तत्र ‘ऊयाप्रातिपदिकात्’  
इत्यधिकृतम् । किं त्वप्रातिपदिकमिति जिज्ञासायामाह—अथैवदधातुरिति । अर्थोऽस्मा-  
स्तीति अर्थवत् । नपुंसकलिङ्गनिर्देशानुसारात् शब्दस्वरूपमिति विशेष्यमध्याहार्यम् ।  
अधातुरिति, अप्रत्यय इति च तद्विशेषणम् । न धातुरधातुरिति नञत्सुरुषः । “परक-  
लिङ्गं द्वन्द्वतत्सुरुषयोः” इति पुंस्त्वम् । अप्रत्ययः इत्यावर्तते । प्रत्ययमिच्च प्रत्ययान्त-  
मिच्च च विवक्षितम् । न चात्र “संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं नास्ति” इति परि-  
भाषया तदन्तविध्यभाव इति शङ्क्यम् । प्रत्ययस्य यत्र संज्ञा तत्रैव तद्विषयात् । तदा-  
ह—धातुं प्रत्ययमित्यादिना । कृतद्धितेति । कृच्च तद्धितश्च समासश्चेति विग्रहः । पूर्वसूत्रात्  
प्रातिपदिकमित्यनुवर्तते, बहुवचनान्ततया विपरिणम्यते । ‘प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्या-  
इति परिभाषया कृतद्धितेति तदन्तग्रहणन्तदाह—कृतद्धितान्तावित्यादिना । ऊयाप्रातिप-



२। इत्यधिकृत्य । ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः ॥ सुपः । १।४।१०३। सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकश एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि स्युः ॥ द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने । १।४।२२। द्वित्वैकत्वयोरिते स्तः ॥ बहुषु बहुवचनम् । १।४।२१। बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात् ॥ विरामोऽवसानम् । १।४।११०। वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात् । रुत्वविसर्गौ । रामः ॥ सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ । १।२।६४। एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते ॥ प्रथमयोः पूर्वसवर्णः । ६।१।१०२। अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसर्गादीर्घ एकादेशः स्यात् । इति प्राप्ते ॥ नादिचि । ६।१।१०४। आदिचि न पूर्वसर्वादीर्घः । वृद्धिरेचि । रामौ ॥ बहुषु बहुवचनम् । १।४।२१। चुट्ट । १।३।७।

दिकादिति । डी च आप् च प्रातिपदिकञ्चेति समाहारद्वन्द्वः । डीइत्यनेन डीप्-डीष्-डीनां सामान्येन ग्रहणम् । आप् इत्यनेन टापडाप्चापां च सामान्येन ग्रहणम् । प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तदन्तग्रहणम् । तदेतदाह—ङ्यन्तादित्यादिना । सुप इति + सुपप्रत्याहारः, षष्ठ्येकवचनम् । “तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः” इति सूत्रं तानीति वर्जमनुवर्तते । “तिङ्स्त्रीणि त्रीणि” इत्यतः त्रीणीत्यनुवर्तते तदाह—सुपस्त्रीणीत्यादिना । द्व्येकयोरिति । द्व्येकयोरिति भावप्रधाननिर्देशः । अन्यथा द्व्येकेष्विति स्यादित्यभिप्रेत्याह—द्वित्वैकत्वयोरिति । विरामोऽवसानमिति । विरम्यते अस्मिञ्चिति विरामः सामीपिकेऽधिकरणे घञ् । विरमणम्—क्रियाया अभावः । स च शब्दशास्त्रप्रस्तावात् वर्णानामुच्चारणामावात्मक इति लभ्यते । तदेतदाह—वर्णानामभाव इत्यादिना । राम इति । ‘रमन्ते यौगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि । इतिरामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते’ ॥ इति श्रुतिः । अत्रैव यदि यौगिको रामशब्द आश्रीयते; तदा “कृतद्धितसमासाश्च” इत्यनेन प्रातिपदिकसंज्ञा । यदि च रूढो दशरथात्मजो रामशब्दस्तदा “अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्” इत्यनेन प्रातिपदिकसंज्ञा । तस्यां कृतायां “ङ्धापप्रातिपदिकात्” इति सूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञकरामशब्दात् ‘खले कपोतन्यायेन’ सर्वे स्वादयः प्राप्ताः, तत्र “सुपः” इत्यनेन प्रथमादिससम्यन्तत्रिके प्रत्येकम् एकद्विबहुवचनसंज्ञाः विहिताः । तेषु प्रथमायाः एकवचनविवक्षायां रामशब्दात् सुप्रत्यये ‘राम सु’ इति जाते सकारोत्तरवर्त्यकारस्य “उपदेशेऽजनुनासिक इत्” इतीत्संज्ञायाम् “तस्य लोपः” इति लोपे ‘रामस्’ अत्र “ससञ्जुषो रुः” इत्यनेन रुवे रेफोत्तरवर्तिन उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “खरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति विसर्गे ‘रामः’ इति रूपम् । रामशब्दात् द्विवचनविवक्षायां प्रथमाया द्विवचने औ समागते ‘राम राम औ’ अत्र “सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ” इति एकरामस्य शेषे सति “प्रथमयोः पूर्वसवर्णः” इति पूर्वसवर्णदीर्घे प्राप्ते “नादिचि” इत्यनेन तस्य निषेधे “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ—‘रामौ’ इति । चुट्ट इति । “आदिर्भिर्द्विवचनः”

प्रत्ययाद्यौ चुट् इतौ स्तः ॥ विभक्तिश्च ।१।४।१०४। सुप्तिबौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः ॥  
न विभक्तौ तुस्माः ।१।३।४। विभक्तिस्थास्तवर्गसमा नेतः । इति सस्य नेत्व-  
म् । रामाः ॥ एकवचनं सम्बुद्धिः ।२।३।४६। सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं  
सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात् ॥ यस्मात्प्रत्ययविधिसंस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् ।१।४।१३।  
यः प्रत्ययो यस्मात्क्रियते तदादि शब्दस्वरूपं तस्मिन्नङ्गं स्यात् । एङ्हस्वात्स-  
म्बुद्धः ।६।१।६६। एङन्ताद्भ्रस्वान्ताच्चाङ्गादल्लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत् । हे राम, हे रामौ,  
हे रामाः ॥ अस्मि पूर्वः ।६।१।१०७। अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः । रामम्,

इत्यतः आदिरिति, “षः प्रत्ययस्य” इत्यतः प्रत्ययस्येति चानुवर्तते, तदाह—प्रत्ययाद्या-  
विति । विभक्तिश्चेति । “सुपः” इति पूर्वसूत्रात् सुप, “तिङ्स्त्रीणि त्रीणि” इति सूत्रात्  
तिङ् इति चानुवर्तते; एकदेशे स्वरितत्वप्रतिज्ञानबलात् । तदाह—मुपतिङाविति । रामा  
इति । रामशब्दात् बहुवचनविवक्षायां प्रथमाबहुवचने जसि कृते ‘राम राम राम जस्’  
इति जाते तत्र “सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ” इति एकरामशब्देऽवशिष्टे ‘राम जस्’  
अत्र “चुट्” इत्यनेन प्रत्ययस्यादिभूतस्य चवर्गान्तःपातिनो जकारस्येत्संज्ञायाम् “तस्य  
लोपः” इत्यनेन लोपे ‘राम अस’ इति दशायाम् अकारोत्तरवर्तिसकारस्य “हलन्त्यम्”  
इत्यनेनेत्संज्ञा प्राप्ता, सा “विभक्तिश्च” इति विभक्तिसंज्ञायां “न विभक्तौ तुस्माः” इत्य-  
नेन निषिद्धा । अथ च “प्रथमयोः पूर्वसर्णः” इति पूर्वपरयोः पूर्वसवर्णदीर्घादेशे कृते  
‘रामास्’ इति भूते “ससञ्जुषोरुः” इति सस्य स्त्वे अनुबन्धलोपे “स्वरवसानयोर्विसर्ज-  
नीयः” इति रेफस्य विसर्गे ‘रामाः’ इति रूपम् । एकवचनमिति । “प्रातिपदिकार्थलिङ्ग-  
परिमाणवचनमात्रे प्रथमा” इत्यतः प्रथमा इत्यनुवृत्तं, तच्च षष्ठ्या विपरिणम्यते ।  
“सम्बोधने च” इत्यतः सम्बोधने इत्यनुवर्तते, तदाह—सम्बोधने इत्यादिना । यस्मात्प्र-  
त्यय इति । यस्मात्प्रत्ययो विधीयते धातोर्वा प्रातिपदिकाद्वा तदादि शब्दरूपं प्रत्यये  
परतोऽङ्गसंज्ञं भवति । तदादीति । तत्प्रकृतिरूपमादिर्यस्येत्यर्थः । प्रत्यासत्तिन्यायलब्धा-  
र्थमाह—तस्मिन्निति । ‘गुणः कृतात्मसंस्कारः प्रधानमनुरुध्यते’ इति न्यायेनात्रापि “तस्मि-  
न्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य” इति परिभाषाप्रवृत्तिर्बोध्या । एङ्हस्वादिति । “लोपो व्योर्वलि”  
इत्यतो लोप इति “हल्ङ्याबभ्यो” इत्यतो हल् इति चानुवर्तते । हे राम इति । रामश-  
ब्दात्संबोधनार्थकप्रथमैकवचनविवक्षायां सौ कृते ‘राम सु’ इति जाते “एकवचनं सम्बु-  
द्धिः” इति सोः सम्बुद्धिसंज्ञायां अनुबन्धलोपे सति “यस्मात्प्रत्ययविधिसंस्तदादि प्रत्ययेऽ-  
ङ्गम्” इत्यनेन रामशब्दस्याङ्गत्वे “एङ्हस्वात्सम्बुद्धेः” इत्यनेन सम्बुद्धिसम्बन्धिनि हल्-  
रूपे सकारे लुप्ते सम्बोधनघोतक हे इत्यस्य पूर्वयोगे कृते ‘हे राम’ इति सिद्धम् ।  
‘रामौ’ इत्यत्र तु पूर्ववत्प्रक्रिया । ‘रामाः’ इत्यत्र पूर्ववत् प्रक्रिया बोध्या । अस्मि पूर्व इति ।  
“अकः सवर्णे दीर्घः” इत्यतः अक इति पञ्चम्यन्तमनुवर्तते । “एकः पूर्वपरयोः” इत्य-  
चिकारः । “इको यणचि” इत्यतोऽचि इत्यनुवर्तते, तदाह—अकोऽम्यचीत्यादिना । राम-

रामौ ॥ लशक्तद्धिते । १।३।८ तद्धितकर्ज्यप्रत्ययाया लशक्त्वर्गा इतः स्युः ॥ तस्माच्छसो नः पुंसि । ६।१।१०३ पूर्वसवर्णादीर्घात्परो यः शसः सस्तस्य नः स्यात्पुंसि ॥ अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि । ८।४।२ अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, जुम्, एतैर्व्यस्तैर्यथासम्भवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः समानपदे । इति प्राप्ते ॥ पदान्तस्य । ८।४।३७ नस्य णो न । रामान् ॥ टाडसिङ्सामिनात्स्याः । ७।१।१२ अदन्तादिदीनामिनादयः स्युः । णत्वम् । रामेण ॥ सुपि च ।

मिति । रामशब्दात् द्वितीयैकवचनविवक्षायां अमि प्रत्यये समागते 'राम अम्' इति दशायाम् "अमि पूर्वः" इत्यनेन पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूपैकादेशे कृते 'रामम्' इति सिद्धम् । रामाविति । रामशब्दात् द्वितीयाया द्विवचनविवक्षायाम् 'औटि' कृते 'राम राम औ' अत्र "सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ" इति एकराम अवशिष्टे सति रेफस्येत्संज्ञायां लोपे च 'वृद्धिरेचि' इत्यनेन वृद्धौ प्राप्तायां ताम्बाधित्वा "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः" इत्यनेन पूर्वसवर्णदीर्घे प्राप्ते तस्य "नादिचि" इत्यनेन निषेधे कृते "वृद्धिरेचि" इत्यनेन वृद्धौ कृतायाम् 'रामौ' इति सिद्धयति । लशक्तेति । लश्च कुश्च अश्चेति समाहारद्वन्द्वः । "आदिर्जिटुडवः" इत्यत आदिरित्यनुवर्तते । "षः प्रत्ययस्य" इत्यतः प्रत्ययस्येत्यनुवर्तते तदाह—प्रत्ययाद्या इति । तस्माच्छस इति । तच्छब्देन सन्निहितः पूर्वसवर्णदीर्घः परास्मृश्यते । शस इत्यवयवषष्ठी । स चावयवः परत्वेन विशेष्यते । तदेतदाह—परो यः शसः स इति । अट्कुप्वाङिति । 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' इति सम्पूर्णं सूत्रमनुवर्तते । रषाभ्यामिति पञ्चमीनिर्देशाद्व्यवहितस्याप्राप्तौ वचनमिदम् । तत्र सर्वैर्व्यवायोऽसम्भवी । एकैकमात्रव्यवाय इत्यपि नार्थः, घुम्नादिषु घुञ्जशब्दपाठसामर्थ्यात्सरूपाणामित्यादिनिर्देशाच्चेत्यभिप्रेत्याह—व्यस्तैर्यथासम्भवेत्यादिना । पदान्तस्येति । "न भाभूपकमिगमिप्यायीवेपाम्" इत्यतो न इत्यनुवर्तते । रामानिति । रामशब्दाद् द्वितीयाबहुवचनविवक्षायां शसि समागते "लशक्तद्धिते" इति शस्येत्संज्ञायां लोपे च 'राम अस्' इत्यवशिष्टे, अत्र "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः" इति पूर्वसवर्णदीर्घादेशे विहिते 'रामास्' इति जाते "तस्माच्छसो नः पुंसि" इति सस्य नत्वे कृते 'रामान्' इति रूपम् । अत्र "अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि" इति नस्य णत्वे प्राप्ते "पदान्तस्य" इति निषिद्धे सति णत्वाभावेन 'रामान्' इति जायते । टाडसीति । अङ्गस्येत्यधिकृतं पञ्चम्या विपरिणतम् । "अतो भिंस ऐस्" इत्यतोऽस्त इति पञ्चम्यन्तमनुवृत्तम् अङ्गस्य विशेषणम्, तदन्तविधिः । अदन्तादिति । अकारान्तादङ्गादुत्तरेषां टाडसिङ्साम्—इन आत् स्य इत्येते आदेशा भवन्ति यथासंख्यमिति सूत्रार्थः । रामेणेति । रामशब्दात् तृतीयैकवचनविवक्षायाम् टासमागते 'राम टा' अत्र "टाडसिङ्सामिनात्स्याः" इति टास्थाने इनादेशे कृते "आद्गुणः" इति गुणे च विहिते "अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि" इति नस्य णत्वे 'रामेण' इति । सुपि चेति । "अतो दीर्घो षमि"

७।३।१०२। यत्तादौ सुपि अतोऽङ्गस्य दीर्घः । रामाभ्याम् ॥ अतो भिस ऐस् ७।  
१।६। अनेकाल् शित्सर्वस्य । रामैः ॥ डेर्यः ७।१।१३। अतोऽङ्गात्परस्य डंयदेशः ॥  
स्थानिवद्देशोऽनल्विधौ १।१।५६। आदेशः स्थानिवत्स्यान्न तु स्थान्यलाभ्य-  
विधौ । इति स्थानिवत्वासुपि चेति दीर्घः । रामाय । रामाभ्याम् ॥ बहुवचने  
भल्येत् ७।३।१०३। मलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यकारः । रामेभ्यः । सुपि किम् ?

इत्यनुवर्तते । यञीत्यनेन सुपीति विशेष्यते । “यस्मिन् विधिः” इति तदादिविधि-  
रित्याह—यजादावित्यादिना । रामाभ्यामिति । रामशब्दात् तृतीयाद्विवचनविवक्षायां  
भ्यामि प्रत्यये ‘राम भ्याम्’ इति दशायां “सुपि च” इति यजादिसुबन्तःपातिनि  
भ्यामि परे अदन्ताङ्गस्य राम इत्यस्य दीर्घं प्राप्ते “अलोऽन्त्यस्य” इत्यनेनाकारस्य  
दीर्घं ‘रामाभ्याम्’ इति । अतो भिस इति । अत इति पञ्चमी । अङ्गस्येत्यधिकृतं पञ्चम्या  
विपरिणम्यते । अत इति तस्य विशेषणम् । विशेषणत्वात्तदन्तविधिस्तेनाकारान्ताङ्गाङ्गिस्  
ऐस् इत्यर्थः । रामैरिति । रामशब्दात् तृतीयाबहुवचनविवक्षायां भिसि प्रत्यये ‘राम  
भिस्’ इति जाते अत्र “अतो भिस ऐस्” इति भिस ऐसादेशे प्राप्ते क स्यादिति जिज्ञा-  
सायाम् “अनेकाल् शित्सर्वस्य” इति परिभाषया अनेकाल्त्वात्सर्वादेशे ‘राम ऐस्’ इति  
भूते अत्र “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ सस्य स्त्वे विसर्गं च ‘रामैः’ इति । डेर्य इति । डेरि-  
त्येकारान्तात् षष्ठ्येकवचनम्, न तु डि इति सप्तम्येकवचनात् ; व्याख्यानात् ।  
“अतो भिस ऐस्” इत्यतः अत इति पञ्चम्यन्तमनुवर्तते । तेन च “अङ्गस्य” इत्यधि-  
कृतं पञ्चम्या विपरिणतं विशेष्यते तदाह—अतोऽङ्गादिति । अदन्ताङ्गादित्यर्थः । रामा-  
वेति । रामशब्दात् चतुर्थ्येकवचनविवक्षायां डे विहिते ‘राम डे’ इति जाते तत्र “डेर्यः”  
इत्यनेन डेइत्यस्य स्थाने यकारादेशे कृते ‘राम य’ इति । अत्र यकारे “स्थानिवद्दा-  
देशोऽनल्विधौ” इति स्थानिवद्भावेन सुप्त्वमानीय “सुपि च” इत्यनेनादन्ताङ्गस्य  
दीर्घं प्राप्ते “अलोऽन्त्यस्य” इत्यनेन अन्त्यस्यालो जाते ‘रामाय’ इति रूपं सिद्धम् ॥  
रामाभ्यामिति । रामशब्दात् चतुर्थ्याः द्विवचनविवक्षायां भ्यामि ‘राम भ्याम्’ अत्र “सुपि  
च” इति दीर्घं तृतीयाद्विवचनवत् ‘रामाभ्याम्’ इति रूपम् । बहुवचने इति । “अतो  
दीर्घो यञि” इत्यतोऽत इति “सुपि च” इत्यतः सुपि इति चानुवर्तते । झलीत्वमेव  
सुपीति विशेष्यते । “यस्मिन् विधिरिति तदादिविधिस्तदाह—यजादाविति । रामेभ्य  
इति । रामशब्दात् चतुर्थ्याबहुवचनविवक्षायां भ्यसि प्रत्यये विहिते ‘राम भ्यस्’ इति  
जाते, तत्र यजादित्वासुप्त्वाच्च “सुपि च” इत्यनेन दीर्घं प्राप्ते तम्बाधित्वा “बहु-  
वचने झल्येत्” इत्यनेन एकारे विहिते “अलोऽन्त्यस्य” इत्यनेनान्त्यस्य मकारोत्तरव-  
र्तिनोऽकारस्यैत्वे सस्य स्त्वे अनुबन्धलोपे रेफस्य विसर्गं च कृते ‘रामेभ्यः’ इति रूपम् ।  
सुपि किमिति । “बहुवचने झल्येत्” अस्मिन् सूत्रे पूर्वसूत्रतो यदि सुपीति नाववर्ति-  
ष्यत तदा ‘यञञ्यम्’ इत्यत्र झल्यदिवहुवचने भ्यमि परे अदन्ताङ्गस्य दीर्घोऽभविष्यत् ।

पचध्वम् ॥ वाऽवसाने णा३१५६। अवसाने फलां चरो वा । रामाद्-रामात् ।  
 रामाभ्याम् । रामेभ्यः । रामस्य ॥ ओसि च ७।३।१०४। अतोऽङ्गस्यैकारः ।  
 रामयोः ॥ ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।१४। ह्रस्वान्ताञ्जघन्तादाबन्ताच्चाङ्गात्परस्यामो  
 नुडागमः ॥ नामि ६।४।३। अजन्ताङ्गस्य दीर्घः । रामाणाम् । रामे । रामयोः । एत्वे  
 कृते ॥ आदेशप्रत्यययोः णा३।१५६। ङ्कुभ्यां परस्यापदान्तस्यादेशः प्रत्ययावयवश्च

तन्माभूदिति सुपीत्यनुवर्तनमावश्यकम् । वाऽवसाने इति । “झलां जश् झशि” इत्यतो  
 झलामिति “अभ्यासे चर्च” इत्यतश्चरिति चानुवर्तते । तदाह—अवसान इत्यादिना ।  
 रामादिति । रामशब्दात् पञ्चम्येकवचनविवक्षायां ङसौ समागते ‘राम ङसि’ इत्यत्र  
 “टाङ्सिङ्सामिनात्स्याः” इति ङसेरादादेशे कृते “अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घं “झलां  
 जज्ञोऽन्ते” इति तस्य दत्वे “वावसाने” इति दस्य विकल्पेन तत्वे “रामात्” इति ।  
 पचे—‘रामाद्’ इति । रामाभ्यामिति । ‘राम भ्याम्’ अत्र “सुपि च” इति दीर्घं ‘रामा-  
 भ्याम्’ इति । रामेभ्य इति । ‘राम भ्यस्’ अत्र “बहुवचने झल्येत्” इत्येवे ‘रामेभ्यः’  
 इति । रामस्येति । रामशब्दात् षष्ठ्येकवचनविवक्षायां ङसि ‘राम ङस्’ अत्र “टाङ-  
 सिङ्सामिनात्स्याः” इति ङसः स्यादेशे ‘रामस्य’ इति रूपम् । ओसि चेति । “अतो  
 दीर्घो यञि” इत्यतोऽत इत्यनुवर्तते । “अङ्गस्य” इत्यधिकृतम् । “बहुवचने झल्येत्”  
 इत्यत एदित्यनुवर्त्यते । रामयोरिति । रामशब्दात् षष्ठीद्विवचनविवक्षायाम् ओसि  
 ‘राम ओस्’ अत्र “ओसि च” इत्यनेन अदन्ताङ्गस्यैकारे प्राप्ते “अलोऽन्त्यस्व”  
 इत्यनेनाकारस्य जाते ‘रामे ओस्’ अत्र “एचोऽयवायावः” इत्यनेन अयादेशे  
 सस्य रुत्वे विसर्गे च ‘रामयोः’ इति । ह्रस्वनद्याप इति । ह्रस्वश्च नदी च आप् चेति समा-  
 हारद्वन्द्वद्विभोगे पञ्चमी । ‘परस्य’ इत्यध्याहार्यम् । ‘अङ्गस्य’ इत्यधिकृतं पञ्चम्या विप-  
 रिणम्य ह्रस्वादिभिर्विशेष्यते । अतस्तदन्तविधिः । “आमिसर्वनाम्नः” इत्यतः ‘आमि’  
 इत्यनुवर्तते । तच्च ‘उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान्’ इति न्यात्वात्  
 “तस्मादित्युत्तरस्य” इति षष्ठ्यन्ते सम्पद्यते । तदाह—ह्रस्वान्तादित्यादिना । नामीति ।  
 “ङ्रलोप” इत्यतो दीर्घं इत्यनुवर्तते । दीर्घश्रुत्या च “अच” इत्युपस्थितम् । तेन  
 चाङ्गं विशेष्यते । अतस्तदन्तविधिस्तदाह—अजन्ताङ्गस्येत्यादिना । रामाणामिति ।  
 रामशब्दात् षष्ठीबहुवचनविवक्षायाम् आमि ‘राम आम्’ अत्र “ह्रस्वनद्यापो  
 नुट्” इति नुटि टित्वादाद्यावयवे उकारटकारयोरित्संज्ञायां लोपे च ‘राम नाम्’ इति  
 जाते “नामि” इति दीर्घं “अट्कुप्वाङनुम्वयायेऽपि” इति णत्वे ‘रामाणाम्’ इति  
 सिद्धम् । रामे इति । रामशब्दात्सप्तम्येकवचनविवक्षायां ङौ कृते “लशक्तद्धिते” इति  
 उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च ‘राम इ’ इति जाते तत्र “आद्गुणः” इति गुणे ‘रामे’ इति  
 रूपम् । रामयोरिति । रामशब्दात् सप्तमीद्विवचनविवक्षायाम् ओसि प्रत्यये ‘राम ओस्’  
 अत्र “ओसि च” इत्यनेन एकारे तस्य अयादेशे च कृते परेण संयुक्ते ‘रामयोः’ इति

यः सस्तस्य मूर्धन्यादेशः । ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश एव षः । रामेषु । एवं कृष्णा-  
दयोऽयदैन्ताः ॥ सर्वादीनि सर्वनामानि १।१।२७। सर्व विश्व उभ उभय  
उतर इतम् अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम । पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापरा-  
धराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् । स्वमहातिथनाख्यायाम् । अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः ।  
त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम् ॥ जशः शी  
७।१।१७। अदन्तात्सर्वनाम्नो जसः शी स्यात् । अनेकाल्त्वाःसर्वादेशः । सर्वे ॥  
सर्वनाम्नः स्मै ७।१।१४। अतः सर्वनाम्नो ङेः स्मै । सर्वस्मै ॥ ङसिङयोः स्मा-

रूपम् । आदेशप्रत्यययोरिति । मूर्धन्य इति वर्तते स इति च । आदेशप्रत्यययोरिति षष्ठी  
भेदेन सम्बद्ध्यते । प्रत्ययशब्दः प्रत्ययावयवे लाक्षणिकस्तदेतदाह—आदेशस्य प्रत्ययाव-  
यवस्य चेति । रामेष्विति । रामशब्दात्सप्तमीबहुवचनविवक्षायां सुपि ‘राम सुप्’ इति तत्र  
पकारस्य “हलन्त्यम्” इतीत्संज्ञायाम् “तस्य लोपः” इति लोपे “बहुवचने श्लेषेत्”  
इत्येकारे ‘रामेसु’ इति जाते तत्र “आदेशप्रत्यययोः” इति सस्य षत्वे विहिते ‘रामेषु’  
इति सिद्धम् । एवं कृष्णादय इति । कृष्णः, कृष्णौ, कृष्णाः प्रथमा । हे कृष्ण, हे कृष्णौ,  
हे कृष्णाः, सम्बोधनम् । कृष्णं कृष्णौ कृष्णान् द्वितीया । कृष्णेन कृष्णाभ्यां कृष्णैः तृतीया ।  
कृष्णाय कृष्णाभ्यां कृष्णेभ्यः चतुर्थी । कृष्णात् कृष्णाभ्यां कृष्णेभ्यः पञ्चमी । कृष्णस्य  
कृष्णयोः कृष्णानाम् षष्ठी । कृष्णे कृष्णयोः कृष्णेषु सप्तमी । प्रक्रिया पूर्ववदूह्या ॥ अथ  
सर्वादिशब्देषु सर्वनामकार्यं विधास्यन् सर्वनामसंज्ञामाह—सर्वादीनीति । सर्वः । आदिः  
प्रथमावयवो येषां तानि सर्वादीनि । नपुंसकवशात् शब्दरूपाणीति विशेष्यमध्याहा-  
र्यम् । तेन सर्वादीनि शब्दस्वरूपाणि सर्वनामसंज्ञानि स्युरित्यर्थः । जसः शीति । “अतो  
मिस पेस्” इत्यस्मादत इत्यनुवर्तते । “सर्वनाम्नः स्मै” इत्यतः सर्वनाम्न इत्यनुवर्तते ।  
तदाह—अदन्तादित्यादिना । सर्वे इति । अत्र प्रथमाया एकवचनद्विवचने रामशब्दवत्  
‘सर्वः, सर्वौ’ इति ज्ञेयम् । सर्वशब्दात् प्रथमाबहुवचनविवक्षायां जसि समागते “सर्वा-  
दीनि सर्वनामानि” इति सर्वशब्दस्य सर्वनामसंज्ञायाम् “जसः शि” इति जसः स्थाने  
“अनेकाल्पित्सर्वस्य” इत्यनेकाल्त्वात्सर्वादेशे ‘सर्वं शि’ इति जाते “लक्षकतद्धिते”  
इतीत्संज्ञायां लोपे च “आद्गुणः” इति गुणे ‘सर्वं’ इति रूपम् । द्वितीयायाम्—रामवत्  
‘सर्वम्, सर्वौ, सर्वान्’ इति । तृतीयायाम्—रामवत् ‘सर्वेण सर्वाभ्यां सर्वैः’ इति ।  
सर्वनाम्नः स्मै इति । “अतो मिस पेस्” इत्यतोऽत इत्यनुवर्तते । “ङेर्यः” इत्यतो ङेरिति  
च तदाह—अतः सर्वेत्यादिना । सर्वस्मै इति । सर्वशब्दात् चतुर्थ्येकवचनविवक्षायां ङे-  
समागते “सर्वादीनि सर्वनामानि” इति सर्वनामसंज्ञायां “ङेर्यः” इति यादेशे प्राप्ते  
तस्मादित्वा “सर्वनाम्नः स्मै” इत्यनेन ‘ङे’ इत्यस्य स्थाने स्मै आदेशे ‘सर्वस्मै’ इति  
रूपम् ॥ रामशब्दवत् चतुर्थीद्विवचनं बहुवचनञ्च—सर्वाभ्यां सर्वेभ्यः इति बोध्यम् ।  
ङसिङयोरिति । ङसिङ्ङङिरेति द्वन्द्वः । “अतो मिस” इत्यस्मादत इति, “सर्वनाम्नः

स्मिनौ ७।१।१५। अतः सर्वनाम्नः एतयोरेतौ स्तः । सर्वस्मात् ॥ आमि सर्व-  
नाम्नः सुट् ७।१।१५२। अवर्णान्तात्परस्य सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुङ्गमः । एव-  
षत्वे । सर्वेषाम् । सर्वस्मिन् । शेषं रामवत् । एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः । उभशब्दो  
द्विवचनान्तः । उभौ २, उभाभ्याम् ३, उभयोः २ । तस्येह पाठोऽकजर्थः । इतरदन्तमौ  
प्रत्ययौ । प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमिति तदन्ता ग्राह्याः । नेम इत्यर्थः । समः सर्वप-

स्मै" इत्यतः सर्वनाम्नः इति चानुवर्तते तदाह—अतः सर्वेति । सर्वस्मादिति । सर्वशब्दा-  
त्पञ्चम्येकवचनविवक्षायां ङसौ विहिते 'सर्वं ङसि' अत्र "ङसिङयोः स्मात्स्मिनौ" इति  
ङसेः स्थाने 'स्मात्' आदेशे कृते 'सर्वस्मात्' इति रूपम् । द्विवचनबहुवचनान्तु राम-  
शब्दवत्-सर्वाभ्याम्, सर्वेभ्यः" इति बोध्यम् । षष्ठ्याः एकवचनं द्विवचनमपि रामशब्द-  
वत्-सर्वस्य, सर्वयोः" इति । आमि सर्वनाम्न इति । "आज्जसेरसुक्" इत्यत 'आत्'  
इति पञ्चम्यन्तमनुवर्तते । तदनुरोधेन 'अङ्गस्य' इत्यधिकृतं पञ्चम्या विपरिणतं विशे-  
ष्यते, तदन्तविधिः, परस्येत्यध्याहार्यम् । "उभयनिर्देशो पञ्चमीनिर्देशो बलीयान्"  
इति न्यायेन "तस्मादित्युत्तरस्य" इति परिभाषया आमि इति सप्तमीः आम् इति  
षष्ठ्यन्तमापद्यते । सर्वनाम्नः इति विहितविशेषणान्तदाह—अवर्णान्तादित्यादिना । सर्व-  
षामिति । सर्वशब्दात् षष्ठीबहुवचनविवक्षायां आमि, 'सर्व-आम्' इति स्थिते "आमि  
सर्वनाम्नः सुट्" इति सुटि उटो लोपे, टित्त्वादाद्यावयवे 'सर्वं स् आम्' इति जाते "बहु-  
वचने झल्येत्" इत्यनेन वकारोत्तरवर्तिनोऽकारस्यैत्वे "आदेशप्रत्यययोः" इति षत्वे च  
'सर्वेषाम्' इति रूपम् । सर्वस्मिन्निति । सर्वशब्दात् सप्तम्येकवचनविवक्षायां औ सति  
तस्य स्थाने "ङसिङयोः स्मात्स्मिनौ" इति स्मिनादेशे कृते सर्वस्मिन् इति रूपम् ।  
शेषं रामवदिति । सर्वयोः सर्वेषु । एवं विश्वादय इति । सर्वशब्दवत् विश्वशब्दः । तथाहि-  
विश्वः, विश्वौ विश्वे 'प्रथमा, विश्वं विश्वौ विश्वान्' द्वितीया । विश्वेन विश्वाभ्यां विश्वैः,  
तृतीया । विश्वस्मै विश्वाभ्यां विश्वेभ्यः" चतुर्थी । विश्वस्मात् विश्वाभ्याम् विश्वेभ्यः  
पञ्चमी । विश्वस्य विश्वयोः विश्वेषाम् षष्ठी । विश्वस्मिन् विश्वयोः विश्वेषु सप्तमी  
इति ॥ तस्येह पाठोऽकजर्थ इति । उभशब्दो द्वित्वविशिष्टस्य वाचकः । अत एव नित्यं  
द्विवचनान्तः । ननु एवं सति "जसः शी" "सर्वनाम्नः स्मै" "ङसिङयोः स्मात्स्मिनौ"  
"आमि सर्वनाम्नः सुट्" इत्युक्तानां सर्वनामप्रयुक्तकार्याणां द्विवचने अभावाद्भुशब्दस्य  
सर्वादिगणे पाठो व्यर्थ इति चेद्, न । "अव्ययसर्वनाम्नमकच्चाकटेः" इति अकजर्थ  
सर्वादिगणे तस्य पाठस्यावश्यकत्वात् । यद्यत्र पाठो न क्रियेतः तर्हि सर्वनामसंज्ञा न  
स्यात्, सर्वनामसंज्ञाभावे तु नाकच् । तेन 'उभकौ' इति न सिद्ध्येतेति भावः । इतर-  
दन्ताविति । अत्र "प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्याः" इति परिभाषया इतरान्तदन्तमान्तौ  
ग्राह्यौ । केवलयोः तयोः संज्ञायाः प्रयोजनाभावात् । प्रत्ययाविति । "किं वत्तदोर्निर्धारणे  
इत्येकस्य इतरच्" "वा बहुनां जातिपरिग्रहे इतमच्" "एकान्तं प्राचम्" इति

यीयः । तुल्यपर्यायस्तु न । यथासंख्यमनुदेशः समानामिति ज्ञापकात् । पूर्वपरावर-  
दक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् १।१।३४। एतेषां व्यवस्था-  
यामसंज्ञायां सर्वनामसंज्ञा गणसूत्रात्सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा स्यात् । पूर्वे-पूर्वाः ।  
असंज्ञायां किम् । उत्तराः कुरवः । स्वाभिधेयपेक्षावधिनियमो व्यवस्था । व्यवस्थायां  
किम् ? दक्षिणा गायकाः । कुशला इत्यर्थः । स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् १।१।३५।  
ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा । स्वे-स्वाः । आत्मीयाः

विहितौ । तदन्ता ग्राह्या इति । इतरग्रहणेन कतरादिसंज्ञानाम्, इतमग्रहणेन कतमादि-  
संज्ञानाम् ग्रहणमिति भावः । नेम इत्यर्थ इति । 'ग्र नेमस्मिन् दद्वे सोमो अन्तः'  
इत्युच्यते तथा दर्शनादिति भावः । समः सर्वपर्याय इति । सर्वशब्दसमानार्थक एव सम-  
शब्दः सर्वविधगणे पठित इत्यर्थः । तुल्यपर्यायस्त्विति । तुल्यशब्दसमानार्थक इत्यर्थः ।  
ज्ञापकादिति । अन्यथा तत्र समेषामिति निर्दिशेदिति भावः । पूर्वपर इति । "सर्वनाम्नानि"  
इति "विभाषा जसि" इति चानुवर्तते । तदाह—एतेषामिति । पूर्वादिसमानामिति  
वाक् । पूर्वे पूर्वा इति । पूर्वशब्दात्प्रथमाबहुवचने जसि समागते "सर्वादीनि सर्वना-  
मानि" इति सर्वनामसंज्ञा नित्या प्राप्ता; तां प्रवाच्य "पूर्वपरावर" इति सूत्रेण जसि  
विकल्पेन विधाय "जसः स्त्री" इति जसः स्थाने श्पादेशे शस्येत्संज्ञायां लोपे च 'पूर्व-ई'  
इति जाते "आदगुणः" इत्यनेन पूर्वपरयोः स्थाने गुणे कृते 'पूर्व' इति रूपम् । सर्व-  
नामसंज्ञाभावे तु पूर्वसर्वार्णदीर्घादेशे रूपे विसर्गे च 'पूर्वाः' इति रूपम् । असंज्ञायां  
किमिति । 'संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः' इति वक्ष्यमाणतया संज्ञायां सर्वनामत्व-  
स्याप्रसङ्गेति प्रश्नः । उत्तराः कुरव इति । कुरवशब्दो देशविशेषे नित्यं बहुवचनान्तः ।  
सुषेधमवधीकृत्य तत्रोत्तरशब्दो वर्तते इत्यस्तीह व्यवस्था, किन्तु संज्ञाशब्दत्वाच्चास्य  
सर्वनामत्वम् । पूर्वादिसंज्ञानां तु विष्णु अनादिसंज्ञेति इति न ते संज्ञाशब्दाः । कुरु  
उत्तरशब्दस्याधुनिकसंज्ञेति इति भवत्ययं संज्ञाशब्द इति । स्वाभिधेयेति । अपेक्ष्यत  
इत्यपेक्षः । स्वस्य-पूर्वादिसंज्ञस्य, अभिधेयम्-वाच्यम्, तेन अपेक्ष्यस्य-अपेक्ष्यमाणस्य  
अभिधेयत्वम्, व्यवस्थाशब्देन विवक्षित इत्यर्थः । ततश्च नियमेनावधिसापेक्षार्थं वर्तमा-  
नानां पूर्वादिसंज्ञानां जसि सर्वनामसंज्ञाविकल्प इति फलति । व्यवस्थायां किमिति ।  
पूर्वादिसंज्ञानां नियमेनावधिसापेक्ष एवार्थं विद्यमानत्वादिति प्रश्नः । दक्षिणा गायका  
इति । अत्र दक्षिणशब्दो नावध्यपेक्ष इति भावः । स्वमज्ञातीति । अत्रापि सर्वनाम्नानीति  
विभाषा जसि चानुवर्तते । ज्ञातिश्च धनञ्ज्ञातिधने तयोराख्या ज्ञातिधनाख्या, न  
ज्ञातिधनाख्या, अज्ञातिधनाख्या तस्याम् । स्वमित्यस्य शब्दस्वरूपापेक्षया स्त्रीवाच्यम् ।  
तदाह—ज्ञातिधनपेक्षादिना । स्वे स्वाः इति । स्वशब्दाजसि "स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्"  
इत्यनेन स्वशब्दस्य विकल्पेन सर्वनामसंज्ञायां "जसः स्त्री" इति श्पादेशोऽनुवचनलोपे  
गुणे च 'स्वे' इति । परे पूर्वसर्वार्णदीर्घादेशे 'स्वाः' इति । आत्मीया आत्मान इति वेति ।



आत्मान इति वा । ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः । ज्ञातयोऽर्था वा ॥ अन्तरं बहिर्योगो-  
पसंव्यानयोः १।१।३६। बाह्ये परिधानीये वाथेऽन्तरशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि  
वा । अन्तरे-अन्तरा वा गृहाः । बाह्या इत्यर्थः । अन्तरे-अन्तरा वा शाटकाः । परि-  
धानीया इत्यर्थः ॥ पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ७।१।१६। एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्स्मि-  
नौ वा स्तः । पूर्वास्मात्-पूर्वात्, पूर्वस्मिन्-पूर्वं । एवं परादीनाम् । शेषं सर्ववत् ॥  
प्रथमचरमतयाल्पाधकतिपयनेमाश्च १।१।३३। एते जसि उक्तसंज्ञा वा स्युः ।

आत्मा, आत्मीयं, ज्ञातिः, धनञ्चेति स्वशब्दस्य चत्वारोऽर्थाः । 'स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं  
त्रिष्वात्मीये स्वोऽस्त्रियां धने' इत्यमरः 'स्वः स्यात् पुंस्यात्मानि ज्ञातौ, त्रिष्वात्मीये स्वोऽ-  
स्त्रियां धने' इति मेदिनीकोशः । तत्र ज्ञातिधनयोः पयदासात् आत्मनि, आत्मीये च  
सर्वनामत्वं जसि विकल्प्यत इति भावः । ज्ञातिधनपयदासस्य प्रयोजनमाह—ज्ञातिध-  
नवाचिनस्विति । ज्ञातिवाचिनः धनवाचिनश्च सर्वनामत्वपयदासात् जसि 'स्वाः' इत्येव  
रूपमित्यर्थः । अन्तरमिति । अत्रापि सर्वनामानीति विभाषा जसीतिचानुवर्तते । बहिः-  
अनाद्युतप्रदेशः, तेन योगः-सम्बन्धो यस्य स बहिर्योगः, बहिर्विद्यमानोऽर्थः इति  
यावत् । उपसंवीयते-परिधीयते इति उपसंव्यानम् अन्तरीयं वक्ष्यम् । तदाह—बाह्य  
इत्यादिना । अन्तरे अन्तरा वेति । अन्तरशब्दाज्जसि "अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः"  
इत्यनेन सर्वनामसंज्ञायां "जसः शी" इति जसः स्थाने श्यादेशे "लशक्तद्धिते" इती-  
त्संज्ञायां लोपे च 'अन्तर-ई' इति स्थिते "आद्गुणः" इति गुणे 'अन्तरे' इति । सर्व-  
नामत्वाभावे 'अन्तरा' इति । पूर्वादिभ्य इति । "ङसिङ्योः स्मात्स्मिना" वित्यनुवर्तते  
इत्याह—एभ्य इति । पूर्वपरेत्यादित्रिसूत्रीनिर्दिष्टाः पूर्वादय इहै विवक्षिताः । पूर्वस्मा-  
दिति । पूर्वशब्दात्पञ्चमेकवचनविवक्षायां ङसौ समागते "पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा"  
इति वैकल्पिकेन ङसेः स्थाने स्मादित्यादेशे 'पूर्वस्मात्' इति, पञ्चे पूर्वात् इति । पूर्व-  
स्मिन्; पूर्व इति । पूर्वशब्दात्, सप्तम्येकवचनविवक्षायां ङौ समागते तस्य स्थाने  
"पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा" इति स्मिन्नादेशे कृते 'पूर्वस्मिन्' इति, पञ्चे-पूर्वं इति । एवं  
परादीनामिति । तथाहि-परस्मात्, परात्, परस्मिन्, परे । अवरस्मात्, अवरात्,  
अवरस्मिन्, अवरे । दक्षिणस्मात्, दक्षिणात्, दक्षिण स्मन्, दक्षिणे । उत्तरस्मात्,  
उत्तरात्, उत्तरस्मिन्, उत्तरे । अपरस्मात्, अपरात्, अपरस्मिन्, अपरे । अधरस्मात्,  
अधरात्, अधरस्मिन्, अधरे । स्वस्मात्, स्वात्, स्वस्मिन्, स्वे । अन्तरस्मात्,  
अन्तरात्, अन्तरस्मिन्, अन्तरे' इति । शेषं सर्ववदिति । एषां पूर्वादीनां नवानां सर्वा-  
दिगणपठित्वात् जसि, ङयि, आमि च सर्वनामकार्यत्वमिति विशेषः । प्रथमचरमेति ।  
विभाषा जसीत्यनुवर्तते, सर्वनामानीति च तदाह—एते इति । प्रथमादय इत्यर्थः । प्रथमे  
प्रथमा इति । प्रथमशब्दात् प्रथमात्पञ्चमवचनविवक्षायां जसि समागते "प्रथमचरम्"  
इति सूत्रेण जसि परे सर्वनामसंज्ञत्वे "जसः शी" इति जसः श्यादेशे ङस्य लोपे गुणे

प्रथमे-प्रथमाः । तयः प्रत्ययः । द्वितये-द्वितयाः । शेषं रामवत् । नेमे-नेमाः । शेषं सर्ववत् । (तीयस्य डित्सु वा) द्वितीयस्मै-द्वितीयायेत्यादि । एवं तृतीयः । निर्जरः ॥ जराया जरसन्यतरस्याम् ७।२।१०१। अजादौ विभक्तौ । पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च । निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति । एकदेशविकृतमनन्यवदिति जराश-

च कृते प्रथमे इति । पच्चे-प्रथमाः । तयशब्दो न प्रातिपदिकमित्याह—तयः प्रत्यय इति । “संख्याया अवयवे तयप्” इति विहितः इति शेषः । अत्र प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तदन्ताः-तयबन्ता ग्राह्या इत्यर्थः । द्वितये, द्वितया इति । द्वाववयवावस्येति विग्रहः । द्वितयशब्दात् जसि “प्रथमचरमतय”-इत्यनेन जसः स्थाने श्यादेशे अनुबन्धलोपे गुणे च ‘द्वितये’ इति । पच्चे-द्वितयाः । शेषं रामवदिति । तथाहि-नेमशब्दस्य जसि सर्वनामसंज्ञा गणे पठितत्वाच्चित्या प्राप्ता तद्विकल्पोऽत्र विधीयते । नेमशब्दव्यतिरिक्तानां प्रथमादिशब्दानान्तु गणे पाठाभावादप्राप्तैव सर्वनामसंज्ञा जसि विकल्पेन विधीयते । अतो नेमशब्दव्यतिरिक्तानां प्रथमादिशब्दानां जसोऽन्यत्र न सर्वनामकार्यमित्याह—शेषं रामवदिति । नेमे, नेमा इति । नेमशब्दात् जसि “सर्वादीनि” इति प्राप्तां सर्वनामसंज्ञां विकल्पेन प्रबाध्य “प्रथमचरमतय” इति विकल्पेन जातायां तस्यां “जसश्शी” इति श्यादेशेऽनुबन्धलोपे गुणे च ‘नेमे’ इति । पच्चे-नेमाः इति । शेषं सर्ववदिति । नेमशब्दस्य सर्वादिगणे पठितत्वादिति भावः । तीयस्येति । “विभाषा जसि” इत्यधिकारे तीयान्तस्य छे, छसि, छस्, छि इत्येतेषु डित्सु परेषु सर्वनामसंज्ञावचनं कर्तव्यमित्यर्थः । द्वितीयस्मै, द्वितीयायेति । द्वयोः पूरणो द्वितीयः । “द्वे स्तीयः” इति-पूरणे तीयप्रत्ययः । इत्यादीति । द्वितीयस्मात्, द्वितीयात्, द्वितीयस्मिन् द्वितीयेऽइत्यादिशब्दार्थः । एवं तृतीय इति । डित्सु उदाहार्य इति शेषः । त्रयाणां पूरणमिति विग्रहः । “त्रेः सम्प्रसारणञ्” इति पूरणेऽर्थे तीयप्रत्ययः । रेफस्य सम्प्रसारणम्-ऋकारः । “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपम् । निर्जर इति । जरायाः निष्कान्तो निर्जरः । “निरादयः क्रान्ताद्यर्थे” इति समासः । “गोक्षियोः” इति ह्रस्वत्वम् । निर्गता जरा यस्मादिति बहुव्रीहिर्वा । निर्जरशब्दस्य “कृत्तद्वितसमासाश्च” इति समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां प्रथमैकवचने सौ अनुबन्धलोपे सस्य ह्रस्वे रेफस्य विसर्गत्वे च रूपम् । जराया इति । “अष्टन आ विभक्तौ” इत्यतो विभक्तावित्यनुवृत्तम् । “अचिर ऋतः” इत्यतोऽचीत्यनुवर्तते, तदाहिविधिस्तदाह—अजादावित्यादिना । ननु जराशब्दस्य विधीयमानो जरसादेशः “कञ् निर्जरशब्दस्य भवेदित्यत आह—येति । पदाधिकारे अङ्गाधिकारे च यस्य यद्विहितम्, तत् तस्य तदन्तस्य च भवतीत्यर्थः । जरसादेशश्चायमङ्गाधिकारस्थत्वात् जराशब्दस्य तदन्तस्य च भवति । निर्दिश्यमानस्येति । प्रत्यङ्निर्दिश्यमानस्यैवेत्यर्थः । अनया परिभाषया जराशब्दस्यैव जरस् । जराशब्द एव ह्यत्र स्थानी प्रत्यङ्निर्दिष्टः । जराशब्दान्तस्य तु निर्देशस्तदन्तविधिष्यत्वाद् आनुमानिक इति भावः । अथ

ब्दस्य जरस् । निर्जरसौ; निर्जरस इत्यादि । पक्षे हलादौ च रामवत् । विश्वपाः ॥ दीर्घाञ्जसि च ६।१।१०५। विश्वपौ हे, विश्वपाः । विश्वपाम्, विश्वपौ ॥ सुडन-

निर्जरशब्दस्य जराशब्दान्तत्वाभावात् कथमिह जरसादेश इत्यत आह—एकदेशेति । 'छिन्नेऽपि पुच्छे श्वा श्वैव, न चाश्वो, न च गर्दभः' इति लौकिकन्यायादित्यर्थः । निर्जरसाविति । निर्जरशब्दात् प्रथमाद्विवचने औ समागते "जराया जरसन्यतरस्याम्" इति जरसादेशे लब्धे, सूत्रे जराशब्दस्य जरसादेशः प्रोक्तो न तु निर्जरशब्दस्य, इति कथमत्र जरसादेश इति शङ्कायां 'पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च' इति; अत्राङ्गाधिकारात् तदन्तस्यापि स्यादिति प्राप्ते "निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति" इति परिभाषया जराशब्दस्यैव जरसादेशः स्यात् इति कथमत्र 'जरशब्दस्य जरस्' इति शङ्क्याम् "एकदेशविकृतमनन्यवत्" इति जरसादेशे 'निर्जरसौ' इति । निर्जरस इति । निर्जरशब्दाञ्जसि अनुबन्धलोपे "जराया जरसन्यतरस्याम्" इति जरशब्दस्य जरसादेशे परेणाचा युक्ते स्त्वे विसर्गे च 'निर्जरसः' इति । इत्यादीति । अमि-निर्जरसम्, औटि-निर्जरसौ, शसि-निर्जरसः । टापरे-निर्जरसा, डेपरे-निर्जरसे, ङसिङसोः-निर्जरसः, ओसि-निर्जरसोः, ङौ-निर्जरसि; इति । पक्षे हलादौ च रामवदिति । अजादिविभक्तौ परे विकल्पेन जरसादेशे सति रूपाण्युक्तानि । जरसादेशाभावे रामशब्दवत् रूपाणि । हलादौ तु जरसादेशाभाव इति हलादौ विभक्तौ परे रामशब्दवत् रूपाणीति भावः । विश्वपा इति । विश्वं पाति रक्षतीत्यर्थे "आतोऽनुपसर्गे कः" इति प्राप्ते वासरूपन्यायेन "आतो मनिनूकनिब्वनिपश्च" इति चकारात् विच् । तस्य सर्वापहारे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां प्रथमैकवचनविवक्षायां सुप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे "ससञ्चो रुः" इति स्त्वे उकारस्थेत्संज्ञायाम् "स्वरवसानयोर्विसर्जनीयः" इति विसर्गे च कृते "विश्वपाः" इति रूपम् । दीर्घाञ्जसीति । "प्रथमयोः" इत्यतः पूर्वसवर्णः इति "नादिचि" इत्यतो नेति इचीति चानुवर्तते; इति भावः । विश्वपाविति । विश्वपाशब्दात्प्रथमाद्विवचनविवक्षायाम् औ समागते 'विश्वपा औ' इति स्थिते "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः" इति प्राप्ते "दीर्घाञ्जसि च" इति सूत्रेण पूर्वसवर्णदीर्घनिषेधे कृते "वृद्धिरेचि" इति वृद्धौ सत्यां 'विश्वपौ' इति रूपम् । विश्वपाः इति । विश्वपाशब्दाञ्जसि "चुट्" इति जसो जकारस्थेत्संज्ञायां "तस्य लोपः" इति लोपे च 'विश्वपा-अस्' इति दशायां "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः" इति पूर्वसवर्णदीर्घादेशे प्राप्ते "दीर्घाञ्जसि च" इति सूत्रेण पूर्वसवर्णदीर्घनिषेधे जाते "अकः सवर्णे दीर्घः" इति पूर्वपरयोः स्थाने दीर्घादेशे सति सस्य स्त्वे, रस्य विसर्गे च कृते 'विश्वपाः' इति रूपम् । हे विश्वपा इति । हे विश्वपाः, हे विश्वपौ, हे विश्वपाः, इति प्रथमावत् । विश्वपामिति । विश्वपाशब्दाद् द्वितीयैकवचनविवक्षायाम् अमि समागते सति 'विश्वपा अम्' अत्र "अमि पूर्वः" इत्यनेन पूर्वरूपैकादेशे सति 'विश्वपाम्' इति रूपम् । 'विश्वपौ' इति यथापूर्वमूलम् । सुडनपुंसकस्येति । "सि सर्वनामस्थानम्" इत्यतः सर्वनामस्थानमित्यनुवर्तते । सुट् इति-सु इत्यारभ्य औटस्य-

पुंसकस्य १।१।४३। स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थानमङ्गानि स्थिरक्रीबस्य ॥ स्वा-  
दिष्वसर्वनामस्थाने १।४।१७। कप्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु परतः पूर्वं  
पदं स्यात् ॥ यचि भम् १।४।१८। यादिष्वजादिषु च कप्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्व-  
नामस्थानेषु परतः पूर्वं भं स्यात् ॥ आकडारादेका संज्ञा १।४।१। इत ऊर्ध्वं  
कडाराः कर्मधारय इत्यतः प्रागेकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया, या पराऽनवकाशा च । आतो  
धातोः ६।४।१४०। आकारान्तो यो धातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः । अलोऽन्त्य-  
स्य । विश्वपः । विश्वपा । विश्वपाभ्यामित्यादि ॥ एवं शङ्खध्मादयः । धातोः किम् ?

रेण प्रत्याहारस्तदेतदाह—स्वादिपञ्चवचनानीत्यादिना । स्वादिष्विति । असर्वनामस्थान  
इति बहुत्वेऽप्येकवचनमार्थम् । यचि भमिति । यच्च अच्चेति समाहारद्वन्द्वः । स्वादिष्व-  
सर्वनामस्थाने इत्यनुवृत्तं यचीत्यनेन विशेष्यते । “यस्मिन् विधिस्तदादावलग्रहणे” इति  
तदादिविधिस्तदाह—यादिष्वित्यादिना । ननु भपदसंज्ञयोरिह समावेशः कुतो न स्यात् ।  
न च “विप्रतिषेधे परं कार्यम्” इति परैव भसंज्ञा भवतीति वाच्यम् । विरोधो हि  
विप्रतिषेधः । नह्यत्र द्वयोरपि संज्ञयोः समावेशे विरोधोऽस्ति तव्यत्तव्यानीयरादौ कृ-  
त्कृत्यप्रत्ययादिसंज्ञासमावेशदर्शनादित्यत आह—आकडारादिति । आतो धातोरिति । अ-  
ङ्गस्येति भस्येति चाधिकृतम् । धातोरित्यात् इति षष्ठ्यन्तेन विशेष्यते । तदन्तविधिः ।  
“अल्लोपोऽनः” इत्यतो लोप इत्यनुवर्तते । तदाह—आकारान्तो य इति । अलोऽन्त्य-  
स्येति । अन्त्यस्याकारस्य लोप इति शेषः । विश्वपाशब्दात् शसि समागते “लक्षकत-  
द्विते” इति शसः शकारस्येत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे च कृते “विश्वपा-असु”  
इति स्थितेऽत्र “सुडनपुंसकस्य” इत्यनेन ‘सु-औ-जस्-अम्-औट्’ इत्येतेषां सर्व-  
नामस्थानसंज्ञाविहितत्वात् शसो न सर्वनामस्थानसंज्ञा, तेन “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने”  
इत्यनेन सर्वनामस्थानभिन्नस्वादिषु भसादिषु परेषु पूर्वस्य विश्वपाशब्दस्य पदसंज्ञायां  
प्राप्तायां “यचि भम्” इत्यनेन च सर्वनामस्थानभिन्नयजादिषु स्वादिषु परेषु भसंज्ञा-  
यां प्राप्तायां किमत्र विधेयम् इति शङ्कायाम् “आकडारादेका संज्ञा” इत्यनेन एकैव  
संज्ञा भवतीति नियमात् परत्वादनवकाशत्वाच्च अत्र भसंज्ञैव जाता, तस्यां जाता-  
याम् “आतो धातोः” इति सूत्रेण विश्वपाशब्दस्य लोपे प्राप्ते “अलोऽन्त्यस्य” इत्य-  
नेन पकारोत्तरकर्त्याकारस्य लोपे कृते पकारस्याकारेण सह संयोगे स् इत्यस्य रूपे अनु-  
बन्धलोपे रेफस्य विसर्गे च ‘विश्वपः’ इति रूपम् । विश्वपा इति । विश्वपाशब्दात् तृती-  
यैकवचनविबक्षायां तसमागते “चुट्” इति टकारस्येत्संज्ञायां लोपे च ‘विश्वपा-आ’  
इति स्थितेऽत्र “यचि भम्” इति भसंज्ञायां “आतो धातोः” इत्याकारलोपे पकार-  
स्याऽऽकारेण सह संयोगे ‘विश्वपा’ इति रूपम् । विश्वपाभ्यामित्यादीति । विश्वपाशब्दात्  
भ्यामि विश्वपाभ्याम् । विश्वपाशब्दात् मिसि स् इत्यस्य रूपे विसर्गे च विश्वपाभिः ।  
विश्वपाशब्दात् पुंल्लोपेकवचनविबक्षायां द्वेविभक्तौ ककारस्य “लक्षकतद्विते” इतीत्य-

हाहान् । हरिः, हरी ॥ जसि च ७।३।१०६। ह्रस्वान्तस्याञ्जस्य गुणः । हरयः ॥  
ह्रस्वस्य गुणः ७।३।१०८। सम्बुद्धौ । हे हरे । हरिम्, हरी, हरीन् ॥ शेषो घ्य-

ज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे “यचि भम्” इति भसंज्ञायाम् “आतो घातोः” इत्या-  
कारस्य लोपे परेण संयोगे “विश्वपे” इति रूपम् । अत्रेदं ज्ञातव्यम्—अजादिविभक्तौ  
परे सर्वत्र भसंज्ञा आकारस्य लोपः, हलादौ तु न किमपि कार्यम् । विश्वपाभ्याम्,  
विश्वपाभ्यः चतुर्थी । विश्वपः, विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभ्यः पञ्चमी । विश्वपः, विश्वपोः,  
विश्वपाम् षष्ठी । विश्वपि, विश्वपोः, विश्वपासु सप्तमी । एवं शङ्खध्मादय इति । शङ्खं धम-  
तीति शङ्खध्मा । “ध्मा शब्दाभिसंयोगयोः” “किप् च” इति किप् । आदिना सोमं  
पिबतीति सोमपाः । मधु पिबतीति मधुपाः इत्यादयो ग्राह्याः । हाहानिति । हाहा  
इति गन्धर्वविशेषवाचकमन्युत्पन्नं प्रातिपदिकमेतत् । “हाहा हूहूश्चैवमाद्या गन्धर्वा-  
स्त्रिदिवौकसः” इत्यमरः । सुटि विश्वपावत् । हाहाशब्दात् शसि, अनुबन्धलोपे “प्रथ-  
मयोः पूर्वसवर्णः” इति पूर्वसवर्णदीर्घादेशे कृते “तस्माच्छसो नः पुंसि” इति सकारस्य  
नकारादेशे ‘हाहान्’ इति । टाविभक्तौ सर्वर्णदीर्घः हाहा । ऊयि वृद्धिः हाहै । ऊसिङ-  
सोर्दीर्घः हाहाः । ओसि वृद्धिः हाहौ । ऊौ आद्गुणः हाहे । हलादौ विश्वपावत् । हरिः ।  
हरिशब्दात् प्रथमैकवचनविवक्षायां सुप्रत्यये उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च ‘हरि स्’ इति  
जाते सस्य रूपे रेफस्य विसर्गं च ‘हरिः’ इति रूपम् । हरी । हरिशब्दात् ‘औ समागते’  
“प्रथमयोः पूर्वसवर्णः” इति पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वसवर्णदीर्घादेशे कृते सति ‘हरी’ इति  
रूपम् । जसि चेतीति । “ह्रस्वस्य गुणः” इत्यनुवर्तते । “अञ्जस्य” इत्यधिकृतं ह्रस्वेन  
विशेष्यते । तदन्तविधिस्तदाह—ह्रस्वान्तस्येत्यादिना । हरय इति । हरिशब्दाज्जसि समा-  
गतेऽनुबन्धलोपे ‘हरि-अस्’ इति स्थिते पूर्वसवर्णदीर्घे प्राप्ते तं प्रबाध्य “जसि च”  
इति गुणे प्राप्ते “अलोऽन्यस्य” इति परिभाषयाऽन्यस्य जाते ‘हरे-अस्’ इति भूते  
“एचोऽन्यवायावः” इति अयादेशे कृते सस्य रूपे विसर्गं च कृते ‘हरयः’ इति रूपम् ।  
ह्रस्वस्य गुण इति । “सम्बुद्धौ च” इत्यतः सम्बुद्धावित्यनुवर्तते, तेन ह्रस्वस्य गुणः  
सम्बुद्धावित्यर्थः । हे हरे इति । हरिशब्दात्सम्बोधनप्रथमैकवचनविवक्षायां सुसमा-  
गते अनुबन्धलोपे, तस्य “एकवचनं सम्बुद्धिः” इति सम्बुद्धिसंज्ञायां “ह्रस्वस्य गुणः”  
इति गुणे ‘हरे-स्’ इति जाते “एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः” इति स्लोपे ‘हे हरे’ इति  
रूपम् । औ परे-‘हे हरी’ इति । जसि-‘हे हरयः’ पूर्ववत् । हरिमिति । ‘हरि-अम्’ अत्र  
“अमि पूर्वः” इति पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूपादेशे ‘हरिम्’ इति सिद्धम् । औटि-  
‘हरी’ इति यथापूर्वम् । हरीन् इति । हरिशब्दात् शसि शसः शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च  
‘हरि-अस्’ इति स्थितेऽत्र “प्रथमयोः पूर्वसवर्णः” इति पूर्वसवर्णदीर्घादेशे कृते “तस्मा-  
च्छसो नः पुंसि” इति स् इत्यस्य नकारादेशे सति ‘हरीन्’ इति रूपम् । शेष इति ।  
“यूस्त्र्यास्यौ” इत्यतो यू इत्यनुवर्तते । “ङिति ह्रस्वश्च” इत्यतो ह्रस्व इति चायु-

सखि१।४।७। अनदीसंज्ञौ ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिर्वजं चिसंज्ञं स्यात् ॥ आङो नाऽस्त्रियाम् ७।३।१२०। घेः परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम् । आङिति टासंज्ञा प्राचाम् । हरिणा, हरिभ्याम्, हरिभिः ॥ घेङिति ७।३।१११। चिसंज्ञस्य ङिति सुषि गुणः । हरये ॥ ङसिङ्सोश्च ६।१।११०। एङो ङसिङ्सोरिति पूर्वरूपमेकादेशः । हरेः २, हर्योः, हरीणाम् ॥ अच्च घेः ७।३।११६। इदुभ्यामुत्तरस्य डेरौत्, घेरत् । हरी,

वर्तते; तदाह—ह्रस्वौ यावित्यादि । आङो नेति । “अच्च घेः” इत्यतो घिग्रहणानुवृत्तेर्घेः परस्य आङो ना स्यादस्त्रियामित्यर्थः । प्राचामिति—आचार्याणामिति शेषः । हरिणा । हरिशब्दात् तृतीयैकवचनविवक्षायां टासमागते “शेषो घ्यसखि” इत्यनेन हरिशब्दस्य चिसंज्ञायाम् “आङो नाऽस्त्रियाम्” इत्यनेन चिसंज्ञकात् हरिशब्दात् परस्य आङो—टाइत्यस्य नादेशे कृते ‘हरिना’ इति जाते “अटकुप्वाङनुम्यवायेऽपि” इत्यनेन णत्वे ‘हरिणा’ इति रूपम् । तृतीयाद्विवचनबहुवचने—हरिभ्याम्, हरिभिः इति । घेङीति । “सुषि च” इत्यतः सुषीति, “ह्रस्वस्य गुणः” इत्यतो गुण इत्यनुवर्तते, तदाह—चिसंज्ञा कस्येत्यादिना । हरये—हरिशब्दात् ङेकृते “लशक्तद्धिते” इति ङस्येत्संज्ञायां लोपे च “शेषो घ्यसखि” इति चिसंज्ञायां “घेङिति” इति गुणे “एचोऽयवायावः” इति अयादेशे ‘हरये’ इति । चतुर्थीद्विवचनबहुवचने—हरिभ्याम्, हरिभ्यः, इति । ङसिङ्सोश्चेति । “एङः पदान्तात्” इत्यत एङ इति, अतीति चानुवर्तते । “अमि पूर्वः” इत्यतः पूर्वं इत्यनुवर्तते । “एकः पूर्वपरयोः” इत्यधिकृतम् । तदाह—एङो ङसिङ्सोरित्यादिना । हरेः । हरिशब्दात्पञ्चम्येकवचनविवक्षायां ङसौ समागते ङकारस्येकारस्य चेत्संज्ञायां लोपे च ‘हरि अस्’ इति जाते “शेषो घ्यसखि” इति चिसंज्ञायां “घेङिति” इति गुणे कृते “ङसिङ्सोश्च” इति पूर्वरूपे सकारस्य रत्वे विसर्गे च ‘हरेः’ इति रूपम् । पञ्चमीद्विवचनबहुवचने—हरिभ्याम्, हरिभ्यः इति । हरेः । हरिशब्दात् षष्ठ्येकवचनविवक्षायां ङसि प्रत्यये कृते ङकारस्येत्संज्ञायां लोपे च ‘हरि-अस्’ इति स्थिते चिसंज्ञायाम् “घेङिति” इति गुणे “ङसिङ्सोश्च” इति पूर्वरूपे सकारस्य रत्वे विसर्गे च ‘हरेः’ इति रूपम् । हर्योः । हरिशब्दात्षष्ठीद्विवचनविवक्षायाम् ओसि कृते “इको यणचि” इति यणि सस्य रत्वे रस्य विसर्गे च ‘हर्योः’ इति रूपम् । हरीणाम् । ‘हरि-आम्’ इति स्थिते “ह्रस्वनद्यापो नुट्” इति नुटि “नामि” इति दीर्घादेशे “अटकुप्वाङनुम्यवायेऽपि” इति णत्वे ‘हरीणाम्’ इति । अच्च घेरिति । “ङेराम्” इत्यतो ङेरित्यनुवर्तते । “इदुङ्गथाम्” इति “औत्” इति च सूत्रमनुवर्तते । तदाह—इदुङ्गथामित्यादिना । हरी । हरिशब्दात् सप्तम्येकवचनविवक्षायां ङिसमागते ङस्येत्संज्ञायां लोपे च ‘हरि-इ’ इति स्थिते “शेषो घ्यसखि” इति चिसंज्ञायाम् “अच्च घेः” इत्यनेन ङे स्थाने औकारे, चिसंज्ञकस्य—‘हरि’ इत्यस्य स्थाने ङकारे प्राप्ते “अलोऽन्त्यस्य” इत्यनेन रेणोच्चारणं ङकारस्य स्थाने ङकारे च विहिते ‘हर-औ’ इति जाते “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ

हरिषु । एवं कव्यादयः ॥ अनङ् सौ ७।१।६३। सख्युरङ्गस्यानङ्गदेशोऽसम्बुद्धौ  
सौ ॥ अलोऽन्त्यात्पूर्वं उपधा १।१।६३। अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासङ्गः स्यात् ॥  
सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८। नान्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनाम-  
स्थाने ॥ अपृक्त एकाल् प्रत्ययः १।२।४१। एकाल्प्रत्ययो यः सोऽपृक्तसङ्गः स्यात् ॥  
हल्ङ्वाभ्यां दीर्घात्सुप्तिस्वपृक्तं हल् ६।१।६८। हलन्तात्परं दीर्घो यौ ङ्यापौ  
तदन्ताव परं सुप्तिसीरेतदपृक्तं हल्लुप्यते ॥ नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७।  
प्रातिपदिकसङ्गं यत्पदं तदन्तस्य नस्य लोपः । सखा ॥ सख्युरसम्बुद्धौ ७।१।६२।  
सख्युरङ्गात्परं सम्बुद्धिर्वज्रं सर्वनामस्थानं णिद्वत्स्यात् ॥ अचो ङिणिति ७।२।१११।  
अजन्ताङ्गस्य वृद्धिर्भिति णिति च परे । सखायौ, सखायः । हे सखे । सखायम् ।

‘हरि’ इति रूपम् । हयैः । षष्ठीद्विवचनबद्धोऽयम् । हरिषु । ‘हरि-सु’ इति दशायाम्  
“आदेशप्रत्यययोः” इति षष्ठे ‘हरिषु’ इति । अनङ् साविति । “सख्युरसम्बुद्धौ” इत्य-  
नुवर्तते । “अङ्गस्य” इत्यधिकृतम् । तदाह—सख्युरङ्गस्येत्यादिना । अलोऽन्त्यादिति ।  
अल इति षष्ठीमि अन्त्यादिति सामानाधिकरण्यात् । अल् प्रत्याहारः, वर्णपर्यायः । पूर्वो-  
ऽप्यलेव गृह्यते, साज्जात्यादित्याह—अन्त्यादल इत्यादिना । सर्वनामस्थाने इति । “नोप-  
धायाः” इति सूत्रमनुवर्तते । “दलोपे” इत्यतो दीर्घ इत्यनुवर्तते । तदाह—नान्तस्येत्या-  
दिना । तदन्तस्येति । षष्ठीतत्पुरुषोऽयम् । तस्य प्रातिपदिकसङ्गकपदस्य अन्तो यो नका-  
रस्तस्वेत्यर्थः । प्रातिपदिकेति किम् ? अहन् । पदमिति किम् ? राजानौ, राजानः ।  
सखा । सखिश्वादात् प्रथमैकवचनविवक्षायां सुसमागते उकारस्येत्यङ्गज्ञायां लोपे च  
‘सखि-स्’ इति स्थिते “अनङ् सौ इति अनङ्गदेशे प्राप्ते क स्यात् इति सङ्कायाम्  
“अनेकाळक्षित्सर्वस्य” इति परिभाषया सर्वस्य स्थाने प्राप्ते परं “ङिष्च” इत्यनेन  
तं प्रबाध्य अन्यस्य-स्कारोत्तरवर्तिन इकारस्य स्थानेऽनङ्गदेशे जाते उकारस्ये-  
त्यङ्गज्ञायां लोपे च ‘सखन् स्’ इति जाते “अलोऽन्त्यात्पूर्वं उपधा” इति उपधासङ्गत्वात्  
“सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ” इति नान्तस्य पदस्योपधाया दीर्घं विहिते ‘सखान् स्’  
इत्यवस्थायाम् “अपृक्त एकाल् प्रत्ययः” इति सस्यापृक्तसङ्गज्ञायां कृतायाम् “हल्ङ्वा-  
भ्यां दीर्घात् सुप्तिस्वपृक्तं हल्” इति सस्य लोपे ‘सखान्’ इत्यवशिष्टे “नलोपः प्राति-  
पदिकान्तस्य” इति नलोपे ‘सखा’ इति रूपम् । सख्युरसम्बुद्धाविति । इह “इतोऽङ्गसर्व-  
नामस्थाने” इत्यतः सर्वनामस्थाने इत्यनुवर्तते तदसम्बुद्धावित्यनेन विशेष्यते । “गोतो  
णित्” इति सूत्राणिदित्यनुवृत्तं तत्सामानाधिकरण्येन सप्तम्याः प्रथमा कल्प्यते,  
इत्याह—सम्बुद्धिर्वज्रमित्यादिना । अचो ङिणिति । “मुजेष्वृद्धिः” इत्यतो वृद्धिरित्यनुव-  
र्तते, “अङ्गस्य” इति चाधिकारः । सखायौ । ‘सखि औ’ अत्र “सख्युरसम्बुद्धौ” इति  
णिङ्गज्ञावे “अचो ङिणिति” इति वृद्धौ “एचोऽङ्गवायावः” इति आयादेशे परेण संयोगे  
वृद्धे ‘सखायौ’ इति । सखायः । सखिश्वादाजसि “बुद्ध” इति उकारस्येत्यङ्गज्ञायां

सखायौ, सखीन् । सख्या, सख्ये । ख्यत्यात्परस्य ६।१।११२। खितिशब्दाभ्यां  
खीतोशब्दाभ्यां कृतयमादेशाभ्यां परस्य ङसिङ्सोरत उः । सख्युः ॥ औत् अ३।  
११८। इतः परस्य ङेरौत् । सख्यौ । शेषं हरिवत् ॥ पतिः समास एव १।३।८।  
पतिशब्दः समास एव विसृज्यः स्यात् । पत्या । पत्ये । पत्युः २ । पत्यौ । शेषं हरिवत् ।

लोपे च “सख्युरसम्बुद्धौ” इति णिङ्गन्नावे “अचो ङ्णिति” इति वृद्धौ “एचोऽयवायावः”  
इत्यायादेशे सस्य स्त्वे विसर्गे च ‘सखायः’ इति । हे सखे । हरिशब्दवत् गुणे लोपे च  
हे सखे इति । औपरं जसि परे च पूर्ववत्-णिङ्गन्नावृद्धायादेशाः-हे सखायौ, हे  
सखायः । सखायम् । ‘सखि अस्’ अत्र “अभि पूर्वः” इति सूत्रं प्रबाध्य “सख्युरस-  
म्बुद्धौ” इति णिङ्गन्नावे, वृद्धौ आयादेशे च ‘सखायम्’ इति । औटि पूर्ववत्-सखायौ ।  
सखीन् । ‘सखि-दास्’ अत्र दासः शकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते “प्रथमयोः पूर्वसवर्णः”  
इति पूर्वपद्योः स्थाने पूर्वसवर्णादीर्घादेशे कृते “तस्माच्छसो नः पुंसि” इति शसः  
सकारस्य नकारादेशे ‘सखीन्’ इति । सख्या । ‘सखि आ’ अत्र “असखि” इति पर्युदा-  
सात् विसंज्ञा न, किन्तु “इको यणचि” इति यणि ‘सख्या’ इति । ‘सखिशब्दस्य तृती-  
याद्विवचनबहुवचने-सखिभ्याम्, सखिभिः, हरिशब्दवत् । सख्ये । सखिशब्दाच्चतुर्थ्यै-  
कवचनविवक्षायां ङयि समागते ङस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च ‘सखि-ए’ अत्र “इको यणचि”  
इति यणि सख्ये इति ॥ चतुर्थीद्विवचनबहुवचने-सखिभ्याम्, सखिभ्यः इति ॥ ख्यत्या-  
दिति । खिली इत्यनयोः, तिली इत्यनयोश्च कृतयणादेशयोः ख्य त्य इति निर्देशः । यका-  
रादकार उच्चारणार्थः । “एङ् पदान्तात्” इत्यतो अतीत्यनुवर्तते । तच्च षष्ठ्यन्तं  
विपरिणम्यते । “ङसिङ्सोश्च” इत्यतो ङसिङ्सोरित्यनुवर्तते । अवयवषष्ठ्येषा । ततश्च  
ङसिङ्सोरवयवस्य अत इति लभ्यते । “ऋत उत्” इत्यतः उदित्यनुवर्तते । तदाह—  
खितिशब्दाभ्यामित्यादिना । सख्युः । सखिशब्दात्पञ्चम्येकवचनविवक्षायां ङसौ समासो  
ङकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे । च ‘सखि अस्’ इति स्थिते “इको यणचि” इति यणादेशे  
‘सख्यु अस्’ इति जाते तत्र “ख्यत्यात्परस्य” इत्यनेन असोऽकारस्व उक्ते ‘सख्युस्’ इति,  
तत्र सस्य स्त्वे विसर्गे च कृते ‘सख्युः’ इति रूपम् । पञ्चमीद्विवचनबहुवचने तु-सखि-  
भ्याम्, सखिभ्यः इति । षष्ठ्येकवचनविवक्षायां ‘सखि-अस्’ इति स्थिते पूर्ववत् ङयि  
अस्त्वोक्ते स्त्वे विसर्गे च सख्युः इति । ओसि-सख्योः । अभि-सखीनाम् । औदिति ।  
अत्र “इदुङ्गयाम्” इति सूत्रमनुवर्तते । “ङेराम्” इत्यतो ङेरिति च । इदुङ्गयां परस्य  
ङेरौत्स्वादित्यर्थः । सख्यौ । सखिशब्दात्सप्तम्येकवचनविवक्षायां ङिसमागते ङकारस्ये-  
त्सञ्ज्ञायां लोपे च ‘सखि-इ’ इति जाते । तत्र ङेरिकारस्व स्थावे “औत्” इति औ-  
आदेशे “इको यणचि” इति यणि सख्यौ इति रूपम् । सप्तमीद्विवचनबहुवचने-  
सख्योः, सखिषु । पतिशब्दस्य द्वितीयाद्विवचनवर्ण्यं हरिशब्दवत् सामानिकं, स्यादिति  
च-पतिः, पती, पतयः प्रथमा । हे पते, हे पती, हे पतयः सम्बोधनम् । पतिः, पती,



समासे तु भूपतये । कतिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः ॥ बहुगणवतुडति संख्या  
१।१।२३।।डति च १।१।२५। डत्यन्ता संख्या षट्संज्ञा स्यात् । षड्भ्यो लुक् ७।  
१।२२। जश्शसोः ॥ प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः १।१।६१। लुक्श्लुलुपशब्दैः कृतं  
प्रत्ययादर्शनं क्रमात्तत्संज्ञं स्यात् ॥ प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् १।१।६२। प्रत्यये  
लुप्तेऽपि तदाश्रितं कार्यं स्यात् । इति जसि चेति गुरो प्राप्ते ॥ न लुमताङ्गस्य १।

पतीन् द्वितीया । पतिः समास इति । “शेषो ध्यसस्वि” इत्यतो धीत्यनुवर्तते । पत्या । पति-  
शब्दात् टासमागते “बुट्” इति टकारस्येत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे “इको यणचि”  
इति यणि ‘पत्या’ इति रूपम् । भ्यामि-पतिभ्याम्, भिसि-पतिभिः । पत्ये । पतिशब्दाच्च-  
तुर्थ्येकवचनविवक्षायां डेविभक्तौ समागतायां डकारस्येत्संज्ञायां लोपे च ‘पति-ए’  
इति जाते “इको यणचि” इति यणि ‘पत्ये’ इति रूपम् । द्विवचनबहुवचने-पतिभ्यां,  
पतिभ्यः इति । पत्युः । पतिशब्दात्पञ्चम्येकवचनविवक्षायां ‘डसौ’ कृतेऽनुबन्धलोपे  
‘पति-अस्’ इति स्थिते “इको यणचि” इति यणि “ख्यत्यात्परस्य” इति डसोऽका-  
रस्योत्वे ‘पत्युः’ इति रूपम् । पञ्चमीद्विवचनबहुवचने-पतिभ्याम्, पतिभ्यः । पत्युः ।  
पतिशब्दात्षष्ठ्येकवचनविवक्षायाम् डसि कृते डकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “इको य-  
णचि” इति यणि “ख्यत्यात्परस्य” इत्युत्वे रुत्वविसर्गौ ‘पत्युः’ इति । ओसि-पत्योः, आ-  
मि-पतीनाम् । पत्यौ । पतिशब्दात्सप्तम्येकवचनविवक्षायां डौ कृते “औट्” इति डे-  
रौत्वे यणि ‘पत्यौ’ इति । द्विवचनबहुवचने-पत्योः, पतिषु, इति । समासे तु भूपतये  
इति । पतिशब्दस्य समासे घिसंज्ञात्वात्-भूपतिना, भूपतये, भूपतेः २, भूपतौ, इत्यादि  
रूपाणि । कति शब्द इति । “किमः संख्यापरिमाणे” इत्यनेन किंशब्दात् बहुत्वसंख्याव-  
च्छिन्नसंख्येयविषयप्रश्न एव डतिरित्याकरे स्पष्टम् । बहुगण इति । बहुश्र, गणश्र, वतुश्र,  
डतिश्र, इति समाहारद्वन्द्वः । एतत्संख्यासंज्ञं स्यादित्यर्थः । डति चेति । डतीत्यविभ-  
क्तिको निर्देशः । प्रत्ययत्वात्तदन्तग्रहणम् । पूर्वसूत्रात् संख्येत्यनुवर्तते । “ष्णान्ता षट्”  
इत्यतः षडिति च, तदाह—डत्यन्तेति । षड्भ्यो लुगिति । अत्र ‘जश्शसोः’ इत्यनुवर्तते ।  
प्रत्ययस्य लुगिति । “अदर्शनं लोपः” इत्यतोऽदर्शनमित्यनुवर्तते । प्रत्ययस्यादर्शनं लु-  
क्श्लुलुपसंज्ञकं स्यादित्यर्थः प्रतीयते । अत्रानुवृत्तस्यादर्शनस्यानेकसंज्ञाकरणसामर्थ्या-  
त्तन्त्राद्याश्रित्य तद्भावितसंज्ञा इह विज्ञायते । तेन संज्ञासङ्करोऽत्र न भवति, तदेत-  
दाह—लुक्श्लुलुपशब्दैरित्यादिना । सति तु संज्ञासङ्करे हन्तीत्यत्र शब्दुकि “श्लौ” इति  
द्वित्वं स्यात् । जुहोःश्रित्यत्र श्लौ सति “उतो वृद्धिर्लुकि हलि” इति वृद्धिः स्यादिति  
भावः । प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमिति । प्रत्ययः लक्षणं यस्य तत् प्रत्ययलक्षणम् । प्रत्य-  
यस्य लोपे सति प्रत्ययनिमित्तकं कार्यं स्यादित्यर्थः । न लुमताङ्गस्येति । प्रत्ययलोपे  
प्रत्ययलक्षणमित्यनुवर्तते । लुइत्येकदेशोऽस्यास्तीति लुमान् । लुक्शब्दः, श्लुक्शब्दः,  
लुप्शब्दश्च । तेन शब्देन प्रत्ययलोपे विहिते प्रत्ययनिमित्तकमङ्गकार्यं न स्यादित्यङ्गः ।

१।६३। लुमता शब्देन लुप्ते तच्चिभित्तमङ्गकार्यं न स्यात् । कति २ । कतिभिः । कतिभ्यः २ । कतीनाम् । कतिषु । युष्मद्-अस्मद्-षट्संज्ञकाभिषु सरूपाः । त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । त्रयः । त्रीन् । त्रिभिः । त्रिभ्यः २ ॥ त्रेख्यः ७।१।५३ त्रिशब्दस्य त्रयादेशः स्यादामि । त्रयाणाम् । त्रिषु । गौणत्वेऽपि प्रियत्रयाणाम् ॥ त्यदादीनामः ७।२।१०२। एषामकारो विभक्तौ । द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः । द्वौ । द्वौ । द्वाभ्याम् ।

कति । कतिशब्दस्य बहुत्वविशिष्टवाचकत्वात् प्रथमाबहुवचने जसि कृते “बहुगणवतु-  
डतिसंख्या” इत्यनेन डत्यन्तत्वात् कतिशब्दस्य संख्यासंज्ञायां सत्याम् “डति च”  
इति षट्संज्ञा जाता । ‘कति जस्’ इत्यवस्थायां “षड्भ्यो लुक्” इति जसो लुकि सति  
“प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्” इत्यनेन प्रत्ययलक्षणं मत्वा “जसि च” इति कतिशब्द-  
स्येकारस्य गुणे प्राप्ते “न लुमताङ्गस्य” इत्यनेन अङ्गकार्यस्य गुणस्य निषेधे विहिते  
सति ‘कति’ इति रूपम् । कति । कतिशब्दात् द्वितीयाबहुवचने शसि कृते संख्या-  
संज्ञां विधाय षट्संज्ञा कृताऽनन्तरम् “षड्भ्यो लुक्” इति लुकि सति ‘कति’ इति  
रूपम् । त्रिभिवि । पुंस्त्रीनपुंसकेष्वित्यर्थः । सरूपा इति । समानानि रूपाणि येषामि-  
त्यर्थः । त्रयः । त्रिशब्दस्य बहुत्ववाचकत्वात् प्रथमाबहुवचने जसि कृते “लुट्” इति  
जसो जकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “त्रि-अस्” इति स्थिते “जसि च” इति गुणे “एचोऽज-  
वायावः” इत्यादेशे स्त्वे विसर्गे च “त्रयः” इति रूपम् । त्रीन् । त्रिशब्दात् शसि शसः  
शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “प्रथमयोः पूर्वसवर्णः” इति पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वसवर्ण-  
दीर्घादेशे कृते “तस्माच्छसो नः पुंसि” इति सकारस्य नकारादेशे कृते ‘त्रीन्’ इति  
रूपम् । त्रेख्य इति । “आमि सर्वनाम्नः” इत्यत आमीत्यनुवर्तते, तदाह—त्रिशब्द-  
स्येत्यादिना । त्रयाणाम् । त्रिशब्दात् षष्ठीबहुवचनविवक्षायां आमि कृते सति “त्रि-  
आम्” इति स्थिते “त्रेख्यः” इति त्रिशब्दस्य त्रयादेशे कृते “ह्रस्वन्घापो नुट्” इति  
नुटि “नामि” इति दीर्घे “अट्कुप्वाङ्नुम्वयायेऽपि” इति णत्वे ‘त्रयाणाम्’ इति  
रूपम् । गौणत्वेऽपि प्रियत्रयाणामिति । ननु अत्र “गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यं समप्रत्ययः”  
इति न्यायात् त्रिशब्दस्याऽन्यपदार्थे विशेषणत्वेन गौणत्वात् प्रियत्रयाणामित्यत्र “त्रे-  
ख्यः” इति त्रयादेशो न स्यादिति चेद्, न । तस्य पदकार्ये एव प्रवृत्तेः । अत एव  
उपसर्जनानां सर्वनामत्वप्रतिषेध आरब्धो वार्तिककृतेति सङ्गच्छत इति दिक् । त्यदा-  
दीनाम इति । “अष्टन आ विभक्तौ” इत्यतो विभक्त्यावित्यनुवर्तते । एषामिति । त्यदा-  
दीनामित्यर्थः । त्यद् आदिष्वेषामिति विग्रहः । द्विपर्यन्तानामिति । सर्वादिगणे ये त्यदा-  
दयः पठिताः तेषामिह द्विपर्यन्तानामेव ग्रहणे भाष्यकारस्येच्छेत्यर्थः । द्वौ । द्विशब्दस्य  
द्वित्वनियतत्वात् द्विशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः । अतो द्विशब्दात् प्रथमाद्विवचने औ-  
समानाते ‘द्वि औ’ इति स्थिते “त्यदादीनामः” इत्यकारान्तादेशे “प्रथमयोः पूर्वसवर्णः”  
इति पूर्वसवर्णदीर्घादेशे प्राप्ते “नादिचि” इति निषेधे “बुद्धिरेचि” इति कृत् दीर्घात्

भ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वयोः । द्वयोः । पाति लोकमिति पपीः सूर्यः ॥ दीर्घाञ्जसि  
च ६।१।१०५। दीर्घाञ्जसि इति च परे न पूर्वसवर्णः । पप्यौ, पप्यः । हे पपीः ।  
पपीम्, पपीन् । पप्या, पपीभ्याम्, पपीभिः । पप्ये, पपीभ्यः । पप्यः २ । पप्योः ।  
दीर्घत्वाच्च नुट्, पप्याम् । ङौ तु सवर्णदीर्घः । पपी, पप्योः, पपोषु । एवं वातप्रम्यादयः ।

सत्यां 'द्वा' इति रूपम् । द्वौ । द्वितीयाद्विवचने औटि "त्यदादीनामः" इति अत्वे ष्टद्वौ  
'द्वा' इति । द्वाभ्याम् । द्विशब्दात् भ्यामि त्यदाद्यत्वे "सुपि च" इति दीर्घे 'द्वाभ्याम्'  
इति । द्वयोः । द्विशब्दाद् ओसि "त्यदादीनामः" इत्यकारान्तादेशे 'द्वा ओस्' इति जाते  
"ओसि च" इति द्विशब्दगताऽकारस्य एत्वे "एचोऽयवायावः" इत्ययादेशे सस्य रुत्वे  
विसर्गे च 'द्वयोः' इति रूपम् । पपीः । पा रच्णे इति धातोः औणादिक "वापोः किङ्हे  
च" इति सूत्रेण ईप्रत्यये द्वित्वे अभ्यासकार्ये ईप्रत्ययस्य क्त्वात् "आतो लोप इटि च"  
इत्याकारलोपे निष्पन्नपपीशब्दस्य कृदन्तत्वात्पातिपदिकसंज्ञायां प्रथमैकवचनसुप्र-  
त्यये समागते 'पपी-सु' अत्र उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च "ससञ्जपो रुः" इति सस्य  
रुत्वे अनुबन्धलोपे रेफस्य "खरवसानयोर्विसर्जनीमः" इति विसर्गे सति रूपम् । पप्यौ ।  
'पपी-औ' इति स्थिते 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' इति पूर्वसवर्णदीर्घादेशे प्राप्ते "दीर्घा-  
ञ्जसि च" इति निषेधे "इको यणचि" इति यणि 'पप्यौ' इति रूपम् । पप्यः । पूर्व-  
वत्साधनिका । हे पपीः । ह्रस्वान्तत्वाभावाच्च सुलोपः । सम्बोधनद्विवचनबहुवचने-  
पप्यौ, पप्यः इति । अमि-पपीम् "अमि पूर्वः" । औटि-पप्यौ, साधनिकापूर्ववत् ।  
शसि-अनुबन्धलोपे पूर्वसवर्णदीर्घादेशे कृते "तस्माच्छसो नः पुंसि" इति शसः सका-  
रस्य नकारादेशे—'पपीन्' इति रूपम् । पप्या । 'पपी-आ' अत्र "इको यणचि" इति  
यणि रूपम् । पपीशब्दान्नयामि—'पपीभ्याम्' इति रूपम् । मिसि—पपीभिः । चतुर्थ्यै-  
कवचने 'हे परे' यणि रूपम्—पप्ये । भ्यसि रुत्वे विसर्गे च—पपीभ्यः । ङसि अनु-  
बन्धलोपे यणि—पप्यः । ओसि परे यणि—पप्योः । पप्याम् । अमि "इको यणचि"  
इति यणि रूपम् । सप्तम्येकवचने ङौ परे अनुबन्धलोपे "इको यणचि" इति यणि  
प्राप्ते तं प्रबाध्य "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घे कृते—'पपीः' इति रूपम् । सप्तमी-  
द्विवचने ओसि—पप्योः । सुपि परे षकारस्य "हलन्त्यम्" इतीत्संज्ञायां "तस्य लोपः"  
इति लोपे "आदेशप्रत्यययोः" इति सकारस्य मूर्धन्यादेशे ( आन्तरतम्यात् ) षकारे  
कृते सति 'पपीषु' इति रूपम् । वातप्रम्यादय इति । वातप्रमीः निःशङ्को मृगाकृतिः पशु-  
रिति "ईदूतौ च सप्तम्यर्थे" इति सूत्रे कौस्तुभे । आदिना यान्यनेनेति ययीमार्धः इति  
प्राह्यम् । रूपाणि—वातप्रमीः, वातप्रम्यौ, वातप्रम्यः, प्र० । हे वातप्रमीः, हे वातप्रम्यौ,  
हे वातप्रम्यः, सम्बो० । वातप्रमीम्, वातप्रम्यौ, वातप्रमीन्, द्वि० । वातप्रम्या, वातप्र-  
मीभ्याम्, वातप्रमीभिः, तृ० । वातप्रम्ये, वातप्रमीभ्याम्, वातप्रमीभ्यः, च० । वात-  
प्रम्यः, वातप्रमीभ्याम्, वातप्रमीभ्यः, पं० । वातप्रम्यः, वातप्रम्योः, वातप्रम्याम्, च० ।

बहुयः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी ॥ यू स्याख्या नदी १।४।३ इदन्तो नि-  
त्यलीलिङ्गौ नदीसंज्ञौ स्तः । “प्रथमलिङ्गग्रहणं च” पूर्वं स्यादस्योत्सर्जनस्वेष्टि  
नदीत्वं वक्तव्यमित्यर्थः ॥ अम्बार्थनद्यार्हस्वः ७।३।१०७। सम्बुद्धौ । हे बहुश्रे-  
यसि ॥ आप्ननद्याः ७।३।११२। नद्यन्तात्तरेषां ङितामाडागमः ॥ आटश्च ६।१।  
६०। आटोचि परे वृद्धिरेकादेशः ॥ बहुश्रेयस्यै । बहुश्रेयस्याः २ । बहुश्रेयसीनाम् ॥

वातप्रमी, वातप्रम्योः, वातप्रमीषु सप्तमी । क्बन्तवातप्रमीशब्दस्य तु अमि-वासि-ङ्गौ  
च-“एरनेकाच” इति यणि-वातप्रम्यस्य, वातप्रम्यः, वातप्रम्यि इति विशेषो ज्ञेयः ।  
बहुश्रेयसी । “ईयसो बहुवीहेर्न” इति निषेधादुपसर्जनह्रस्वो न । समासत्वात्प्रातिपदि-  
कसंज्ञायां प्रथमैकवचने सौ समागते उकारस्वेत्संज्ञायां लोपे च ‘बहुश्रेयसी-स’ इति  
स्थिते ङयन्तत्वात् “हल्ङ्याभ्यो दीर्घात्सुतिस्वपृक्तं हल्” इति सुसम्बन्धिअपृक्तसंज्ञ-  
कस् इत्यस्य लोपे ‘बहुश्रेयसी’ इति रूपम् । औपरे-बहुश्रेयस्यौ, जसि-बहुश्रेयस्यः ।  
अत्र दीर्घत्वात् पूर्वसवर्णदीर्घनिषेधे सति यणि कृते रूपम् । यू स्याख्याविति । ईश्व ऊभ  
यू । व्याख्यानादीर्घयोरेव ग्रहणम्, यू इति शब्दविशेषणम् । तदन्तविधिस्तदाह—  
इदन्ताविति । पूर्वमित्यादि । समासादिवृत्तिप्रवृत्तेः पूर्वं खिलिङ्गस्य सतः वृत्तिदशायां-  
सुपसर्जनतया खिलिङ्गत्वाभावेऽपि नदीत्वं वक्तव्यमिति वार्तिकार्थः । अम्बावेति ।  
“सम्बुद्धौ च” इत्यतः सम्बुद्धावित्यनुवर्तते । अम्बार्थानां नद्यन्तानां च ह्रस्वः  
स्वात्सम्बुद्धौ इत्यर्थः । हे बहुश्रेयसि । बहुश्रेयसीशब्दात् सम्बोधनप्रथमैकवचनवि-  
चक्षायां सुप्रत्यये उकारस्वेत्संज्ञायां लोपे च “यू स्याख्या नदी” इति नदी-  
संज्ञायां ‘बहुश्रेयसी स्’ इति स्थिते “अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः” इति ह्रस्वे “एकवचनं  
सम्बुद्धिः” इति सम्बुद्धिसंज्ञायां “एकह्रस्वात्सम्बुद्धेः” इति सलोपे सति ‘हे बहुश्रेयसि’  
इति रूपम् । द्विवचनबहुवचने-बहुश्रेयस्यौ, बहुश्रेयस्यः । द्वितीया-बहुश्रेयसीम्, बहु-  
श्रेयस्यौ, बहुश्रेयस्यः । तृतीया-बहुश्रेयस्या, बहुश्रेयसीभ्यां, बहुश्रेयसीभिः । आप्ननद्या  
इति । “अङ्गस्य” इत्यधिकृते पञ्चम्या विपरिणम्यते । ‘नद्याः’ इति पञ्चम्यन्तेन विपरि-  
णम्यते । तदन्तविधिः । “वेर्ङिति” इत्यतो ङितित्यनुवृत्तं पञ्चम्या विपरिणम्यते, तदाह—  
नद्यन्तादित्यादिना । आटश्चेति । “ट्को यणचि” इत्यतोऽचोति “वृद्धिरेचि” इत्यतो वृद्धि-  
रिति चानुवर्तते । “एकः पूर्वपरयोः” इति चाधिकृतस्य, तदाह—आटोऽचोत्यादिना ।  
बहुश्रेयस्यै । बहुश्रेयसीशब्दाच्चतुर्थैकवचनविचक्षायां हे समागते, “प्रथमलिङ्गग्रह-  
णं च” इति बहुश्रेयसीशब्दस्य नदीसंज्ञायाम् “आप्ननद्याः” इति हेः आडागमे उकार-  
स्वेत्संज्ञायां लोपे च “आद्यन्तो ट्कितौ” इत्याद्यावयवे भूते उकारस्वेत्संज्ञायां लोपे  
च ‘बहुश्रेयसी-आ ए’ इति स्थिते “आटश्च” इति पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धौ कृतायां “इको  
यणचि” इति यणि ‘बहुश्रेयस्यै’ इति रूपम् । बहुश्रेयसीभ्यां, बहुश्रेयसीभ्यः चतुर्थी ।  
बहुश्रेयसाः । बहुश्रेयसीशब्दात् पञ्चमैकवचनविचक्षायां कसौ समागते उकारस्वेत्सं-

डेराम्नद्याम्नीभ्यः ७३।११६। नथन्तादाबन्ताञीशब्दात्परस्य डेराम् । बहुश्रेय-  
स्याम् । शेषं पपीवत् । अड्यन्तत्वाच्च सुलोपः । अतिलक्ष्मीः । शेषं बहुश्रेयसीवत् ।  
प्रधीः ॥ अचि श्नुधातुभ्रुवां ख्योरियङुवडौ ६।४।७७। श्नुप्रत्ययान्तस्येवर्णो-  
र्णान्तस्य धातोर्भ्रु इत्यस्य चाङ्गश्रेयङुवडौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे । इति प्राप्ते ॥ एरने-

रस्य चेत्सञ्ज्ञायां लोपे च “प्रथमलिङ्गग्रहणञ्च” इति नदीसञ्ज्ञायाम् “आण्णद्याः”  
इत्याडागमे “आटश्च” इति वृद्धौ यणि रुवे विसर्गे च “बहुश्रेयस्याः” इति रूपम् । बहु-  
श्रेयसीभ्याम्, बहुश्रेयसीभ्यः, पञ्चमी । बहुश्रेयस्याः । बहुश्रेयसीशब्दात् षष्ठ्येकवचने  
ऊसि कृते पूर्ववत् साधनिका ज्ञेया । ओसि-बहुश्रेयस्योः । ‘बहुश्रेयसी-आम्’ इति  
स्थिते नदीसञ्ज्ञायाम् “ह्रस्वनद्यापो नुट्” इति नदीसञ्ज्ञाकात्परस्यामो नुडागमे टित्वा-  
दाद्यावयवे जाते उकारटकारयोरित्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते परेण संयोज्य—‘बहुश्रेयसी-  
नाम्’ इति रूपम् । डेरामिति । अङ्गत्वात् प्रत्ययग्रहणपरिभाषया च तदन्तविधिमभि-  
प्रेत्य आह—नथन्तादित्यादिना । बहुश्रेयस्याम् । बहुश्रेयसीशब्दात् सप्तम्येकवचने डौ  
समागते “डेराम्नद्याम्नीभ्यः” इति डेरामि कृते नदीसञ्ज्ञायां सत्यां स्थानिवद्भावेन  
ङित्वमानीय “आण्णद्याः” इत्याडागमे टित्वादाद्यावयवे ‘बहुश्रेयसी-आ आम्’ इति  
जाते “आटश्च” इति वृद्धौ “इको यणचि” इति यणि ‘बहुश्रेयस्याम्’ इति रूपम् ।  
सप्तमीद्विवचनबहुवचने—‘बहुश्रेयस्योः, बहुश्रेयसीषु’ इति । अड्यन्तत्वादिति । औणा-  
दिकप्रत्ययान्तत्वादिति भावः । तथाद्यत्र सङ्ग्रहः—‘अवी तन्त्री तरी लक्ष्मी धी ह्री श्री-  
णामुणादिषु’ । ‘सप्तस्त्रीलिङ्गशब्दानां न सुलोपः कदाचन’ । अतिलक्ष्मीः । लक्ष्मीमति-  
क्रान्त इति विग्रहे “अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे” इति समासः । अस्त्रीप्रत्ययान्तत्वाच्चोपसर्ज-  
नह्रस्वः । ‘अतिलक्ष्मी-सु’ अत्रानुबन्धलोपे सस्य रुवे विसर्गात्वे च रूपम् । शेषं बहु-  
श्रेयसीवदिति । ‘प्रथमलिङ्गग्रहणञ्च’ इति नदीत्वादिति भावः । प्रधीः । प्रध्यायतीति  
प्रधीः । “ध्यायते सम्प्रसारणञ्च” इति क्तिप् । यकारस्य सम्प्रसारणमिकारः । “सम्प्र-  
सारणाच्च” इति पूर्वरूपम् । “हलः” इति दीर्घः । कृदन्तत्वेन प्रातिपदिकत्वात् सुङु-  
त्पत्तिः । अड्यन्तत्वाच्च सुलोपः । रुवविसर्गौ ‘प्रधीः’ इति रूपम् । प्रधी-औ इति  
स्थिते “इको यणचि” इति यणपवादमियङ्माशङ्कितुमाह—अचि श्नुधात्विति । इश्च  
उश्च यू तयोः ख्योः इवर्णोवर्णयोरित्यर्थः । श्नुश्च धातुश्च अश्नोति इन्द्रः । प्रत्ययग्रहण-  
परिभाषया श्नुप्रत्ययान्तं विवक्षितम् । ख्योरिति धातोरेव विशेषणम् । तदन्तविधिः ।  
“अङ्गस्य” इत्यधिकृतम् । ततश्च ‘प्रत्ययः’ इति लभ्यते । अचीति तद्विशेषणम् । तदा-  
दिविधिस्तदाह—श्नुप्रत्ययान्तस्येत्यादिना । इति प्राप्ते इति । ‘प्रधी-औ’ इत्यादाविति  
शेषः । एरनेकाच इति । “इको यण्” इत्यतो यण् इति “अचि श्नुधातु” इत्यतो धातु-  
रित्यनुवर्तते, तच्चावर्तते । तस्मादेव सूत्रात् अचीति चानुवर्तते । अङ्गस्येत्यधिकृतम् ।  
ततश्च प्रत्यये परत इति लभ्यते । अचीति तद्विशेषणम् । तदादिविधिः । तदाह—

काचोऽसंयोगपूर्वस्य ६।४।२२। धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो  
यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादजादौ प्रत्यये । प्रथ्यौ, प्रथ्यः । प्रथ्यम् ;  
प्रथ्यौ; प्रथ्यः । प्रथ्यि । शेषं पपीवत् । एवं ग्रामणीः । डौ तु ग्रामण्याम् । अनेकाचः  
किम् ? नीः, नियौ, नियः । अमि शसि च परत्वादियङ् । नियम् । डेराम् ।

धात्ववयवेत्यादिना । प्रथ्यौ । 'प्रधी-औ' इति स्थिते, अत्र "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः" इति  
प्राप्ते "दीर्घाजसि च" इति निषिद्धे "इको यणचि" इति यणि प्राप्ते तं प्रबाध्य  
"अचि शनुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवडौ" इति प्राप्ते तं बाधित्वा "एरनेकाचोऽसंयोग-  
पूर्वस्य" इति यणि कृते 'प्रथ्यौ' इति जाते 'अज्जीनं परेण संयुक्ते' 'प्रथ्यौ' इति  
रूपम् । 'प्रधी-जस्' इति स्थिते, अत्र "जुट्" इत्यनेन जकारस्येत्सञ्ज्ञाय "तस्य लोपः"  
इति लोपे कृते सति "इको यणचि" इति यणि प्राप्ते तं बाधित्वा "अचि शनुधातुं"  
इतीयङि प्राप्ते तं प्रबाध्य "एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य" इति यणि कृते सकारस्य रुवे  
रेफस्य विसर्गं च 'प्रथ्यः' इति रूपम् । सम्बोधने-हे प्रधीः, हे प्रथ्यौ, हे प्रथ्यः, इति ।  
अत्र प्रक्रिया प्रथमाविभक्तिवज्ज्ञेया । प्रथ्यम् । 'प्रधी-अम्' अत्र "अमि पूर्वः" इति  
पूर्वरूपे प्राप्ते तं बाधित्वा "अचि शनुधातुं" इतीयङि-प्राप्ते तं प्रबाध्य "एरने-  
काचं" इति यणि कृते 'प्रथ्यम्' इति रूपम् । प्रथ्यौ । प्रथमाद्विवचनव्यक्रिया ।  
प्रथ्यः—प्रधीशब्दात् शसि, शकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः" इति  
पूर्वसवर्णदीर्घे प्राप्ते तं प्रबाध्य "अचिशनुधातुं" इतीयङि प्राप्ते तं बाधित्वा "एरने-  
काचं" इति यणि कृते 'प्रथ्यः' इति रूपम् । अत्र पूर्वसवर्णदीर्घाभावाच्च नत्वमिति  
भावः । प्रथ्या, प्रधीभ्याम्, प्रधीभिः, तृतीया । प्रथ्ये, प्रधीभ्यां, प्रधीभ्यः, चतुर्थी ।  
प्रथ्यः, प्रधीभ्याम्, प्रधीभ्यः, पञ्चमी । प्रथ्यः, प्रथ्योः, प्रथ्याम्, षष्ठी । प्रथ्यि । प्रधीश-  
ब्दस्यसम्येकवचनविवक्षायां डौ समागते अनुबन्धलोपे 'प्रधी-ई' इति जाते "अकः  
सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घे प्राप्ते तं बाधित्वा "अचिशनुधातुं" इतीयङि प्राप्ते तं  
प्रबाध्य "एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य" इति यणि कृते 'प्रथ्यि' इति रूपम् । एवं ग्रामणी-  
रिति । ग्रामं नयति-नियच्छतीति ग्रामणीः । "अग्रग्रामाभ्यां नयतेर्णो वाच्यः" इति  
वृत्त्वम् । ससम्येकवचनं विहाय एवमेव प्रधीशब्दवत् ग्रामणीशब्दस्य रूपाण्युहनी-  
यानि । प्रथमैकवचने—अड्यन्तत्वाच्च सुलोपः । अजादौ सर्वत्र "एरनेकाचः" इति  
बोधेव । अङ्गीत्वाच्चदीकार्यं न । हे ग्रामणीः, ग्रामण्यौ, ग्रामण्यः । ग्रामण्यम्, ग्रामण्यौ,  
ग्रामण्यः । ग्रामण्या । ग्रामण्ये । ग्रामण्योः । ग्रामण्यामिति । ससम्यां तु ग्रामणीश-  
ब्दात् डौ समागते "डेरान्नग्राम्नीभ्यः" इति डेः स्थाने आमि "एरनेकाच" इति यणि  
'ग्रामण्याम्' इति भवति । अनेकाचः किमिति । "एरनेकाचः" इत्यत्रेति शेषः । नीः ।  
नीशब्दात्समागते उकारस्येत्सञ्ज्ञायां च सस्य रुवे रस्य विसर्गत्वे च विहिते 'नीः'  
इति । नीशब्दात्प्रथमाद्विवचने औ समागते "अचि शनुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवडौ" इति-

नियाम् । असंयोगपूर्वस्य किम् ? सुश्रियौ । यवक्रियौ ॥ गतिश्च १।४।६०। प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः । “गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते” । शुद्धधियौ ॥ न भूसुधियोः ६।४।२५। एतयोरचि सुपि यण् । सुधियौ । सुधियः । इत्यादि । सुखमिच्छतीति सुखीः । सुतमिच्छतीति सुतीः । सुह्यौ । सुत्यौ । सुह्युः । सुह्युः ।

यङि कृते ‘नियौ’ इति रूपम् । एवमेव जसि ‘नियः’ इति । अमि शसि चिति । नीशब्दात् अमि कृते “अमि पूर्वः” इति इर्वरूपे प्राप्ते तं बाधित्वाऽनेनेयङि कृते ‘नियम्’ इति । औटि-नियौ, शसि-“प्रथमयोः पूर्वसवर्णः” इति प्रबाध्यानेनेयङि ‘नियः’ इति रूपम् । निया, नीभ्याम्, नीभिः, तृतीया । निये, नीभ्यां, नीभ्यः, चतुर्थी । नियः, नीभ्यां, नीभ्यः, पञ्चमी । नियः, नियोः, नियाम्, षष्ठी । नियामिति । नीशब्दात्सम्येकवचनविवक्षायां डौ समागते ङकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च सति “ङेरान्नद्याम्नीभ्यः” इति ङेरामि विहिते, विहिते चेयङि ‘नियाम्’ इति रूपम् । सुश्रीः । ‘श्रिञ् सेवाम्’ “क्विञ्चि” इत्यादिना क्तिप् प्रकृतेर्दोषश्च । सु श्रयतीति शोभमाना श्रीरस्येति वा सुश्रीः । सुश्रियाविति । “एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य” इति सूत्रे ‘असंयोगपूर्वस्य’ इत्युक्तत्वात् सुश्रीशब्दान्तर्गतेवर्णस्य धात्ववयवसंयोगपूर्वत्वात् न यण् ; किन्तु “अचि शनुधातुभ्रुवाम्” इति योगेनैव सर्वत्राजादौ प्रत्यये परे इयङादेशं विधाय नीशब्दवद्भाषिणो ज्ञेयानि । सप्तम्येकवचने तु अङ्यन्तत्वात् “ङेरान्नद्याम्नीभ्यः” इति सूत्रस्याप्राप्तौ ङस्येत्सञ्ज्ञालोपौ कृत्वा इयङि कृते ‘सुश्रियि’ इति रूपम्बोध्यम् । यवक्रियौ । यवान् क्रीणातीति यवक्रीः । क्रीञ्धातोः क्तिप् रूपम् । अत्रापि धात्ववयवसंयोगपूर्वकत्वाच्च यण्, किन्तु सर्वत्राजादौ प्रत्यये परे “अचिशनुधातु” इतीयङ् बोध्यः । गतिश्चेति । “प्रादयः” इति सम्पूर्णसूत्रमनुवर्तते । “उपसर्गाः क्रियायोगे” इत्यतः ‘क्रियायोग’ इत्यनुवर्तते तदाह—प्रादय इत्यादिना । क्रियायोग इति । क्रियया अन्वये सतीत्यर्थः । अत्र चकारबलात् “आकङारात्” इति नियमं प्रबाध्य गत्युपसर्गयोः समावेशः । “एरनेकाचः” इति सूत्रे “गतिकारकपूर्वस्यैवेष्यते” इति वार्तिकं पठितम्, तत्तात्पर्यतः संगृह्णाति—गतिकारकेतरेति । शुद्धधियौ । शुद्धा धीर्यस्येति विग्रहः । अत्र शुद्धशब्दस्य गतिकारकेतरत्वात् तत्पूर्वकस्य न यणिति भावः । शुद्धधीशब्दस्य रूपाणि सुश्रीशब्दवद्बोध्यानि । न भूसुधियोरिति । “इणो यण्” इत्यतो यण् इति “ओः सुपि” इत्यस्य सुपीति “इको यणचि” इत्यतोऽचीति चानुवर्तते, तदाह—एतयोरित्यादिना । एतयोरित्यनेन सूत्रोक्तभूसुधियोः परामर्शः । अचीति । अजादावित्यर्थः । सुधियाविति । ‘सुधी + औ’ इत्यत्र “गतिश्च” इति गतिसञ्ज्ञां कृत्वा “एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य” इति यणि प्राप्ते “न भूसुधियोः” इति यणादेशाभावे “अचि शनुधातुभ्रुवाम्” इतीयङि विहिते ‘सुधियौ’ । एवं ‘सुधियः’ इत्यादि बोध्यम् । सुखीः, सुतीः, इति । सुखीशब्दाच्च सुतीशब्दाच्च सावागते अङ्यन्तत्वात्सुखोपायावे ‘सुखी + सु’ ‘सुती + सु’ इति रिपते

शेषं प्रवीकृत । शम्भुर्हरिवत् । एवं भान्यादयः । तृज्वत्क्रोष्टुः ७।१।१५। असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे क्रोष्टुशब्दस्य स्थाने क्रोष्टृशब्दः प्रयोक्तव्य इत्यर्थः ॥ अतो डिस-  
र्वनामस्थानयोः ७।३।१२०। ऋतोऽङ्गस्य गुणो द्वौ सर्वनामस्थाने च । इति प्राप्ते ॥  
अदुशनस्युर्दसोऽनेहसां च ७।१।१४। ऋदन्तानामुशनसादीनां चानङ्स्याद-  
सम्बुद्धौ सौ ॥ असृन्तृचस्वसृन्तृनेष्टृत्वष्टृत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम् ६।४।११।  
अवादीनामुपधाया दीर्घोऽसंबुद्धौ सर्वनामस्थाने । क्रोष्टा, क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः । क्रोष्टून् ॥

उकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते सस्य स्त्वे विसर्गे च 'सुखीः' 'सुतीः' इति रूपे  
स्थितः । सुख्यौ, सुत्याविति । सुखीशब्दात् सुतीशब्दाच्च प्रथमाद्विवचने आवागते  
“एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य” इति यणि “सुख्यौ, सुत्यौ” इति भक्तः । सुख्युः, सुत्यु-  
रिति । सुखीशब्दात् सुतीशब्दाच्च पञ्चम्येकवचनविवक्षायां ङसि समागते उकारस्ये-  
कारस्य चेत्सञ्ज्ञायां लोपे च 'सुखी + अस्' 'सुती + अस्' इति स्थिते “एरनेकाचोऽ-  
संयोगपूर्वस्य” इति यणि “स्यत्यात्परस्य” इति ङसिसम्बन्धिनोऽकारस्योकारादेशे कृते  
सस्य स्त्वे विसर्गे च 'सुख्युः, सुत्युः' इति रूपे स्तः । 'सुखी + ङि' इत्यत्र ङस्येत्सञ्ज्ञायां  
लोपे च “एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य” इति यणि 'सुस्थि' इति रूपम् । शम्भुर्हरिवदिति ।  
तत्र पूर्वसवर्णदीर्घः-ऊकारः, गुणस्तु-ओकारः, अच् इत्यादयो विशेषाः, आन्तरतम्यात्  
बोध्या इति यावत् । शम्भुः शम्भू शम्भवः प्रथमा । हे शम्भो हे शम्भू हे शम्भवः  
सञ्चोचनम् । शम्भुं शम्भू शम्भून् द्वितीया । शम्भुना शम्भुभ्यां शम्भुभिः तृतीया ।  
शम्भवे शम्भुभ्यां शम्भुभ्यः, चतुर्थी । शम्भोः शम्भुभ्यां शम्भुभ्यः पञ्चमी । शम्भोः  
शम्भवोः शम्भूनाम् षष्ठी । शम्भौ शम्भवोः शम्भुषु सप्तमी । तृज्वत्क्रोष्टरिति । प्रत्यय-  
ग्रहणपरिभाषया तृच् इत्यनेन तृजन्तं गृह्यते । “तेन तुल्यम्” इति तृतीयान्तादिति ।  
“इतोत्सर्वनामस्थाने” इत्यतः सर्वनामस्थाने इति “सख्युरसम्बुद्धौ” इत्यतोऽसम्बुद्धा-  
विति चानुवर्तते । तदाह—असम्बुद्धावित्यादिना । ऋतो ङीति । “ह्रस्वस्य गुणः” इत्यतो  
गुण इत्यनुवर्तते । अङ्गस्येत्यधिकृतम् । अत इत्यनेन विक्षिप्यते । तदन्तर्विधिः ।  
तदाह—ऋतोऽङ्गस्येत्यादिना । अदुशनसिति । “सख्युरसम्बुद्धौ” इत्यतः असम्बुद्धाविति  
“अनङ् सौ” इत्यतोऽनङिति चानुवर्तते । अङ्गस्येत्यधिकृतम् अदादिभिर्विक्षिप्यते  
तदाह—ऋदन्तानामित्यादिना । उशना—शुक्राचार्यः, पुरुदसा-माज्जरः, अनेहा-काण्डः ।  
अप्तुमिति । “नोपधायाः” इत्यत उपधाया इत्यनुवर्तते । “सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ”  
इति चकारवजं सर्वमनुवर्तते । तदाह—अवादीनामिति । नप्ता-पौत्रो दौहित्रो वा,  
नेष्टा-अध्वर्युगणीय ऋत्विक् । पोता-ग्रहणणीय ऋत्विक्, होता-ऋग्वेदीय ऋत्विक्,  
अवास्ताऽपि-ऋत्विक्, इति बोध्यम् । क्रोष्टा । क्रोष्टुशब्दात्प्रथमैकवचने साधमागते  
तस्य सर्वनामस्थानत्वात् “तृज्वत्क्रोष्टुः” इति तृज्वत्त्वे निहिते “अतो डिसर्वनाम-  
स्थानयोः” इति सर्वनामस्थानपरत्वात् नुजे प्राप्ते परन्त्यत्र “विप्रतिषेधे परं कार्यम्”



विभाषा तृतीयादिष्वचि ७।१।६७। अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत् । क्रोष्टा, क्रोष्ट्रे ॥ ऋत उत् ६।१।१११। ऋतो ङसिङ्सोरिति उदेकादेशः । रपरः ॥ रात्स-  
स्य ८।१।२४। रेफात्संयोगान्तभ्य सस्यैव लोपो नान्यस्य । रस्य विसर्गः । क्रोष्टुः २ ।

इत्यस्मिन् सूत्रे 'इष्टवाची परशब्द' इति भाष्ये ध्वनितत्वात्पूर्वविप्रतिषेधं मत्वा "ऋदु-  
शनस्पुरुदंसोऽनेहसां च" इत्यनङि प्राप्ते "ङिच्च" इत्यन्तादेशे विहिते ङकारस्ये-  
त्सञ्ज्ञायां लोपे च 'क्रोष्टन् + सु' इति जाते "हलङ्याभ्यो दीर्घात्" इति सस्य लोपे  
'अप्तृनृत्च्' इति सम्बुद्धिभिन्नसर्वनामस्थानपरत्वादुपधादीर्घत्वे "नलोपः प्रातिपदि-  
कान्तस्य" इति नस्य लोपे च कृते 'क्रोष्टा' इति रूपम् । क्रोष्टारौ २ । 'क्रोष्टु + औ'  
इत्यत्र "तृज्वत्क्रोष्टुः" इति तृज्वद्भावे कृते "ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः" इति गुणेन  
अकारे, तस्य "उरण् रपरः" इति रपरत्वे च कृते 'क्रोष्टर् औ' इति जाते "अप्तृनृत्च्"  
इत्यनेनोपधाया दीर्घत्वे संयोगे च विहिते 'क्रोष्टारौ' इति रूपम् । एवमेव क्रोष्टारः  
इति । क्रोष्टारमिति । क्रोष्टुशब्दात् द्वितीयैकवचनविवक्षायां अमि समागते "तृज्व-  
त्क्रोष्टुः" इत्यनेन तृजन्तेन तुल्यत्वे कृते "अमि पूर्वः" इति पूर्वरूपे प्राप्ते तं प्रबाध्य  
"ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः" इति गुणे अकारे, कृते "उरण् रपरः" इति रपरे च क्रोष्ट-  
अर् अम् इति जाते "अप्तृनृत्च्" इत्यनेनोपधाया दीर्घत्वे संयोगे च विहिते 'क्रोष्टा-  
रम्' इति रूपम् । एवमेव 'क्रोष्टारौ' इति बोध्यम् । क्रोष्टन् इति । क्रोष्टुशब्दा-  
च्छसि समागते शसोऽसर्वनामस्थानत्वात् क्रोष्टुशब्दस्य तृज्वद्भावाभावे शसः  
शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः" इति पूर्वसवर्णदीर्घादेशे "तस्मा-  
च्छसो नः पुंसि" इति सस्य नत्वे 'क्रोष्टन्' इति रूपं सम्पन्नम् । विभाषा तृतीयादि-  
ष्विति । "तृज्वत्क्रोष्टुः" इत्यनुवर्तते । अचीति तृतीयादिविभक्तेर्विशेषणम् । तदादिवि-  
धिस्तदाह—अजादिष्वित्यादिना । क्रोष्टा । 'क्रोष्टु + टा' इत्यत्र "चुट्" इति टस्ये-  
त्सञ्ज्ञायां लोपे च "विभाषा तृतीयादिष्वचि" इति तृज्वद्भावे "इको यणचि" इति  
यणि विहिते 'क्रोष्टा' इति रूपम् । क्रोष्टना । तृज्वद्भावाभावे 'क्रोष्टु + टा' इत्यत्र 'वेषो  
ध्यससि' इति विसञ्ज्ञायाम् "आङो नाऽखियाम्" इति टा इत्यस्य स्थाने नादेशे कृते  
'क्रोष्टुना' इति रूपम् । क्रोष्ट्रे । क्रोष्टुशब्दाच्चतुर्थ्यैकवचनविवक्षायां ङेसमागते  
'क्रोष्टु + ङे' इति स्थिते, ङकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च 'क्रोष्टु + ए' इति जाते 'विभाषा  
तृतीयादिष्वचि' इति तृज्वद्भावे "इको यणचि" इति यणि 'क्रोष्ट्रे' इति रूपम् । पञ्चे  
विसञ्ज्ञायां 'घेर्ङिति' इति गुणे विहिते "एचोऽयवायावः" इत्यवादेशे 'क्रोष्टवे' इति  
रूपम् । ऋत उदिति । "एङः पदान्तादति" इत्यतः अतीति "ङसिङ्सोश्च" इत्यतो  
ङसिङ्सोरिति चानुवर्तते । ङसिङ्सोरित्यवयवषष्ठी अतीत्यत्रान्वेति । अङ्गस्येत्स्यधिकृतम्  
ऋत इत्यनेन विशिष्यते, तदन्तविधिस्तदाह—ऋतो ङसिङ्सोरित्यादिना । रपर इति ।  
ऋकारस्य अकारस्य च स्थाने प्राप्नुवतः उकारस्य ऋकारस्वानिकत्वानपायादिति

क्रोष्टोः २ । ( नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट पूर्वप्रतिषेधेन ) क्रोष्टूनाम् । क्रोष्टरि ।  
पक्षे हलादौ च शम्भुवत् । हूहः, हूहौ, हूहः । हूहम् इत्यादि । अतिचमूशब्दे तु नदी-

भावः । रात्सत्येति । “संयोगान्तस्य लोपः” इत्येव सिद्धे नियमार्थमिदमित्याह—स-  
त्येति । तेन ‘ऊक्’ इत्यादौ न संयोगान्तलोपः । रस्य विसर्ग इति । “खरवसानयोः”  
इत्यनेनेत्यर्थः । क्रोष्टुरिति । क्रोष्टुशब्दात् ङसि; अत्र सकारोत्तरवर्तिन इकारस्य तथा  
ङस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “विभाषा तृतीयादिष्वचि” इति तृज्वद्भावे कृते ‘क्रोष्टु + अस्’  
इत्यवस्थायाम् “ऋत उत्” इति पूर्वपरयोस्त्वे रपत्वे च क्रोष्टुर् स् इति भूते ‘रात्सस्य’  
इति सस्य लोपे “खरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति रस्य विसर्गत्वे च कृते ‘क्रोष्टुः’ इति  
रूपम् । तृज्वद्भावाभावपक्षे घिसञ्ज्ञायां “वेर्ङिति” इति गुणे ‘क्रोष्टो + अस्’ इति जाते  
“ङसिङसोश्च” इति पूर्वरूपे सस्य स्त्वे विसर्गे च ‘क्रोष्टोः’ इति । पञ्चमीद्विवचनबहुव-  
चने तु—क्रोष्टुभ्यां, क्रोष्टुभ्यः । षष्ठ्येकवचनं पञ्चम्येकवचनवद् बोध्यम् । क्रोष्टोः २  
क्रोष्टुशब्दादोसि “विभाषा तृतीयादिष्वचि” इति तृज्वद्भावे “इको यणचि” इति यणि  
स्त्वे विसर्गे च “क्रोष्टोः” इति रूपम् । तृज्वद्भावाभावपक्षे—‘क्रोष्टु + ओस्’ इति दशायाम्  
“इको यणचि” इति यणि सस्य स्त्वे विसर्गे च “क्रोष्ट्वोः” इति रूपम् । नुमचिरेति ।  
अचिरेत्यनुकरणम् । तेन “अचिर ऋतः” इति विहितो रेफो विवक्षितः । क्रोष्टूनामिति ।  
क्रोष्टुशब्दात् षष्ठीबहुवचनविवक्षायाम् आमि कृते ‘क्रोष्टु + आम्’ इति स्थिते अत्र  
“विभाषा तृतीयादिष्वचि” इति तृज्वद्भावे प्राप्ते तं बाधित्वा “ह्रस्वनद्यापो नुट्” इति  
नुटि उकारटकारयोरित्सञ्ज्ञायां लोपे च टित्त्वादाद्यावयवे जाते ‘क्रोष्टु + नाम्’ इति  
भूते “नामि” इति अजन्ताङ्गस्य दीर्घे ‘क्रोष्टूनाम्’ इति रूपम् । क्रोष्टरि । क्रोष्टुशब्दात्  
सप्तम्येकवचनविवक्षायां ङौ समागते ङस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “विभाषा तृतीयादि-  
ष्वचि” इति तृज्वद्भावे विहिते “ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः” इत्यनेन अकाररूपे गुणे  
विहिते “उरण् रपरः” इति रपरे च कृते सर्वस्मिन् संयुक्ते सति ‘क्रोष्टरि’ इति रूपम् ।  
तृज्वद्भावाभावपक्षे—‘क्रोष्टु + ङि’ इत्यवस्थायां घिसञ्ज्ञायाम् “अच्च वेः” इत्यनेन ङे-  
स्थाने औकारे घिसञ्ज्ञकस्य च स्थानेऽकारे जाते “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ ‘क्रोष्टौ’ इति  
रूपम् । ओसि पूर्ववद्—‘क्रोष्टोः, क्रोष्ट्वोः’ इति रूपम् । सप्तमीबहुवचने—‘क्रोष्टुषु’  
इति । पक्षे इति । तृतीयादिष्वजादिषु तृज्वत्त्वाभावपक्षे इत्यर्थः । हलादाविति । हला-  
दिषु विभक्तिषु परेष्वित्यर्थः । शम्भुवदिति । शम्भुशब्दवदूपाणि बोध्यानि । हूह-  
रिति । गन्धर्वविशेषवाचि अन्युत्पन्नं प्रातिपदिकमेतत् । हूहशब्दात्प्रथमैकवचने  
सावागते उकारनिवृत्तौ सत्यां सस्य स्त्वे विसर्गे च ‘हूहः’ इति रूपम् । हूहा-  
निति । हूहशब्दात्प्रथमाद्विवचने औ समागते “इको यणचि” इति यणि विहिते  
‘हूहौ’ इति रूपम् । एवमेव हूहशब्दस्याज्जादौ विभक्तौ कार्यं विज्ञेयम् । हूहम् इति ।  
अत्र “इको यणचि” इति यणं बाधित्वा “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपे ‘हूहमि’ति रूपम् ।

कार्य विशेषः । हे अतिचमु । अतिचम्बै । अतिचम्बाः । अतिचमूनाम् ॥ खलपूः ।  
ओः सुपि ६'४५२३ धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तदन्तो यो धातुस्त-

ससि—‘हृहूम्’ इति विज्ञेयम् । टायाम्—यणि ‘हृह्वा’ इत्यादि । अतिचमूशब्दे त्विति ।  
चमूमतिक्रान्तः, अतिचमूः । “अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया” इति समासः । स्त्री-  
प्रत्ययान्तस्वाभावात् “गोस्त्रियोः” इति ह्रस्वो न भवति । नदीकार्यमिति । “प्रथमलि-  
ङ्गग्रहणं च” इति वचनादिति भावः । अतिचमूः, अतिचम्बौ, अतिचम्बः प्रथमा । हे  
अतिचमु इति । अतिचमूशब्दाद् सम्बोधनैकवचने सौ; उगते “प्रथमलिङ्गग्रहणञ्च” इति  
नदीसञ्ज्ञायाम् “अम्बार्थनयोर्ह्रस्वः” इति ह्रस्वत्वे “एहह्रस्वात्सम्बुद्धेः” इति सस्य लोपे  
च कृते ‘हे अतिचमु’ इति रूपम् । ‘अतिचम्बै’ इति । अतिचमूशब्दात् चतुर्थ्येकवचने  
कृते ङकारस्येसञ्ज्ञायां लोपे च कृते नदीसञ्ज्ञायाम् “आण्णद्याः” इत्यनेन ङकारे-  
त्सञ्ज्ञकस्यैकारस्याडागमे टित्वादाद्यावयवे ङकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च ‘अतिचमू + आ  
ए’ इति जाते, अत्र “आटश्च” इत्यनेन वृद्धौ कृतायाम् “इको यणचि” इति यणि सति  
“अतिचम्बै” इति रूपम् । ‘अतिचम्बाः’ इति । अतिचमूशब्दात् ङसौ विहिते अनुबन्ध-  
लोपे च कृते नदीसञ्ज्ञायाम् “आण्णद्याः” इत्याडागमे “आटश्च” इति वृद्धौ “इको  
यणचि” इति यणि सति सस्य स्त्वे विसर्गे च विहिते ‘अतिचम्बाः’ इति रूपम् । एव-  
मेव षष्ठ्येकवचनमपि बोध्यम् । अतिचमूनामिति । अतिचमूशब्दात्पृथिवीवचनवि-  
चयाम् आमि समागते नदीसञ्ज्ञायाम् “ह्रस्वनद्यापो नुट्” इति नुडागमे क्तिवादा-  
द्यावयवे च जाते ‘अतिचमूनाम्’ इति रूपम् । सप्तम्येकवचने ङौ समागते ङकारस्ये-  
त्सञ्ज्ञायां लोपे च ‘अतिचमू + ह्र’ इति जाते अत्र नदीसञ्ज्ञायाम् “ङेराम्णद्याम्नीभ्यः”  
इति ङकारेत्सञ्ज्ञकेकारस्य स्थाने आमि विहिते स्थानिवद्भावेन सत्र क्तिवमानीय  
“आण्णद्याः” इत्याडागमे टित्वादाद्यावयवे जाते “आटश्च” इति वृद्धौ “इको यणचि”  
इति यणि ‘अतिचम्बाम्’ इति रूपम्बोध्यम् । खलपूरिति । खलं पुनातीति क्तिप् । कृद-  
न्ताद्याप्तिपदिकसञ्ज्ञायां सावागते उकारस्य लोपे सस्य स्त्वे विसर्गे च ‘खलपूः’  
इति । ओः सुपीति । “एरनेकाचः” इति सूत्रं एरितिवर्जमनुवर्तते । “अचि श्नुधातु”  
इत्यसौऽचीत्यनुवृत्तम् । तेन सुपीति विशिष्यते । तदादिविधिः । “इणो यण्” इत्यतो  
यणित्यनुवर्तते, तदाह—धात्ववयवैत्यादिना । खलप्वौ, खलप्वः इति । ‘खलपू + औ’  
‘खलपू + अस्’ इति स्थिते “अचि श्नुधातु” इति उवङि प्राप्ते तं बाधित्वा “ओः  
सुपि” इति यणादेशे कृते ‘खलप्वौ’ ‘खलप्वः’ इति रूपे भवतः । अत्र “गतिकारकेत-  
रपूर्वपदस्य यण् नेष्यते” इति वार्तिकप्रवृत्तिर्बोध्यः । प्रकृते कारकपूर्वकत्वादिह यणिति  
भावः । हे खलपूः, हे खलप्वौ, हे खलप्वः, सम्बोधनम् । खलप्वम्, खलप्वौ, खलप्वः ।  
खलप्वः, खलप्वे, खलप्वः, खलप्वः, खलप्वोः, खलप्वि । इह अजादौ “एरनेकाचः”  
इति ङगोऽसम्भवात् उवङि प्राप्ते अनेन सूत्रेण यणिति भावः । उवङोऽप्यजादौ यणिति

दन्तस्यानेकाचोऽज्ञस्य यण् स्यादचि सुपि । खल्वौ, खल्वः । एवं सुत्वादयः ।  
स्वभूः, स्वभुवौ, स्वभुवः । वर्षाभूः ॥ वर्षाभ्वश्च क्षाप्ठः, अस्य यण् स्यादचि  
सुपि । वर्षाभ्वावित्यादि । दन्भूः (दन्करपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः) दन्भवौ ।  
एवं करभूः । धाता । हे धातः, धातारौ, धातारः । (ऋदणान्नस्य णत्वं वाच्यम्) ।

फञ्जितम् । एवं सुत्वादय इति । सुष्टु लुनातीति सुरः । गतिपूर्वकत्वादिहापि यण् । आ-  
दिना केदारल्लरित्वादिसंग्रहः । स्वभूरिति । स्वस्मान्नवतीति क्तिप् । कृदन्तत्वात्प्रातिपदि-  
कसन्ज्ञायां सावागतेऽनुबन्धलोपे सस्य रुवे विसर्गे च 'स्वभूः' इति रूपम् । 'स्वभुवौ'  
'स्वभुवः' इति । 'स्वभू × औ' इति स्थिते "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः" इति पूर्वसवर्णदीर्घे  
प्राप्ते तं बाधित्वा "अचि रनुधातु०" इत्युवङि प्राप्ते तं प्रबाध्य "ओः सुपि" इति  
यणि प्राप्ते "न भूसुधियोः" इति निषिद्धे "अचि रनुधातु०" इत्युवङि विहिते  
"ङिच्च" इत्यन्तादेशे जाते उकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च 'स्वभुवौ' इति रूपम् । एव-  
मेव जसि परे 'स्वभुवः' इति बोध्यम् । अजादौ विभक्तौ परे सर्वत्र उवङ् भवतीति  
ज्ञेयम् । वर्षाभूरिति । वर्षासु भवतीति वर्षाभूः । वर्षर्तादुत्पन्न इत्यर्थः । 'वर्षाभूर्दुरे  
भुमान्' इति बाहुबः । वर्षाभ्वश्चेति । "ओः सुपि" इत्यनुवर्तते । "अचि रनुधातु०"  
इत्यतोऽचीति च "ङ्णो यण्" इत्यतो यणितिचानुवर्तते, तदाह—अस्येत्यादिना । वर्षा-  
भ्वौ—वर्षाभूश्चात्र प्रथमाद्विवचने औ समागते "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः" इति पूर्वसव-  
र्णदीर्घे प्राप्ते तं बाधित्वा "अचि रनुधातु०" इति उवङि प्राप्ते तं बाधित्वा "ओः  
सुपि" इति यणि प्राप्ते "न भूसुधियोः" इति निषिद्धे "वर्षाभ्वश्च" इति यणि कृते  
सति "वर्षाभ्वौ" इति रूपम्बोध्यम् । एवमेव सर्वत्राजादौ विभक्तौ परे बोध्यम् । दन्भू-  
रिति । दन्विति नान्तमप्यपं हिंसायां वर्तते । तस्मिन्नुपपदे भूधातोः क्विविति भावः ।  
दन्—हिंसं, भवते प्राप्नोतीति विग्रहः । तरुविशेषः, सर्पविशेषो वेत्यन्ये । स्वाभा-  
विक एवात्र नकारः । तस्य पदान्तत्वात् "नञ्चापदान्तस्य" इति नानुस्वारः । अत  
एव न परसवर्णः । एवम्भूतात् दन्भूश्चात्सावागते उकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च सस्य  
रुवे विसर्गे च 'दन्भूः' इति रूपम् । दन्भ्वाविति । दन्भूश्चात् औ समागते "ओः  
सुपि" इति यणि प्राप्ते "न भूसुधियोः" इति तस्य निषेधे कृते 'दन्करपुनःपूर्वस्य  
भुवो यण् वक्तव्यः' इति यणि कृते 'दन्भवौ' इति रूपम् । अमि—'दन्भवम्' । यथा  
पूर्वरूपं बाध्यते इति भावः । जसि—'दन्भवः' इति भवति, यथा पूर्वसवर्णदीर्घस्य बाधाय ।  
सर्वत्राजादौ विभक्तौ परे "दन्करपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः" इत्यनेन यण् विज्ञेयः ।  
यवम्—अनयैव रीत्या, दन्भूश्चादवत्—करभूरिति । करात् करे वा भवतीति 'करभूः'  
सप्तमी बोध्य इति शेषः । धातेति । धातुशब्दादयथैकवचने सावागते "ऋदणान्नस्य  
णत्वं वाच्यम्" इत्यत्रङि विहिते "ङिच्च" इत्यनेनान्तापचने कृते उकारस्येत्सञ्ज्ञायां  
लोपे च कृते 'धातारौ, धातारः' इत्युत्पत्त्याम् "अपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः" इत्यादिशेषावा  
दीर्घे कृते

धातूणाम् । एवं नप्त्रादयः ॥ नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम् । तेनेह न ।  
पिता, पितरौ, पितरः । पितरम् । शेषं धातुवत् । एवं जामात्रादयः । ना, नरौ ॥ नृ-

सकारोत्तरवर्तिन उकारस्येत्सञ्ज्ञत्वे लोपे च “हल्ङ्याभ्यो दीर्घात्०” इति सस्य लोपे  
“नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति नस्य लोपे च “धाता” इति रूपम् । हे धातः इति ।  
धातृशब्दात्सम्बोधनस्यैकवचनविवक्षायां सावागते सकारोत्तरवर्तिन उकारस्येत्सञ्ज्ञ-  
कत्वे लोपे च कृते ‘धातृ + स्’ इत्यवस्थायाम् “एकवचनं सम्बुद्धिः” इति सम्बुद्धि-  
सञ्ज्ञायां “ह्रस्वस्य गुणः” इति ऋकारस्य गुणे ‘अ’ इति जाते “उरण्परः” इति रपरे  
च ‘धातर् स्’ इति भूते “हल्ङ्याभ्यो०” इति सलोपे रेफस्य विसर्गे च ‘हे धातः’ इति  
रूपम् । धाताराविति । धातृ + शब्दात् औ समागते “सुडनपुंसकस्य” इति औ इत्यस्य  
सर्वनामस्थानसञ्ज्ञायाम् “ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः” इति गुणे रपरे च जाते “अ-  
प्तुन्तृच्०” इति उपधादीर्घत्वे च विहिते ‘धातारौ’ इति रूपम् । धातारः इति । धातृ-  
शब्दाज्जसि सर्वनामस्थानसञ्ज्ञायाम् “ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः” इति गुणे रपरे  
च “अप्तुन्तृच्०” इति उपधादीर्घत्वे जकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च सस्य ह्रस्वे विसर्गे च  
‘धातारः’ इति रूपम् । शसि—पूर्वसवर्णदीर्घः ऋकारः, नत्वम्, धातून् । टा यण्—  
धात्रा । डे यण्—धात्रे । ङसिङ्सोः । ऋत उत् रपरत्वम्, सलोपः, विसर्गः, धातुः ।  
धातुः । धात्रोः । धात्रोः । आमि—“ह्रस्वनद्यापो नुट्” इति नुट् । “नामि” इति दीर्घः ।  
नकारस्य रेफषकाराभ्यां परत्वाभावादप्राप्ते णत्वे “ऋवर्णाच्चस्य णत्वं वाच्यम्” इति  
वार्तिकेन णत्वे कृते ‘धातूणाम्’ इति । एवं नप्त्रादय इति । नप्तृनेष्टृत्वष्टृ चतृ होतृ पोतृ  
प्रशास्तृ शब्दाः धातृशब्दवदित्यर्थः । नप्त्रादिग्रहणमिति । व्युत्पत्तिपक्षे तृन्तृजन्तत्वादेव  
सिद्धे नप्त्रादिग्रहणं ‘सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिर्नियमार्थम्’ तृन्तृजन्तानां चेत्तर्हि  
नप्त्रादीनामेव । तेन पितृभ्रातृप्रभृतीनां नेति बोध्यम् । पितेति । पितृशब्दात्सौ “ऋदु-  
शनस्युरुदंस०” इत्यनङि विहिते ङित्वादाद्यावयवे अनुबन्धलोपे “सर्वनामस्थानेचास-  
म्बुद्धौ” इति दीर्घे सकारस्य “हल्ङ्याभ्यो” इति लोपे ‘पिता’ इति रूपम् । पितरा-  
विति । पितृशब्दात् औ समागते सर्वनामस्थानसञ्ज्ञायाम् “ऋतो ङि” इति गुणे रपरे  
च कृते ‘पितरौ’ इति रूपम् । अत्र व्युत्पत्तिपक्षे—नप्त्रादिग्रहणस्य नियमार्थत्वाच्च  
दीर्घः । अव्युत्पत्तिपक्षे तु ‘अप्तुन्तृजादिष्वनन्तर्भावात् दीर्घशङ्कैव नास्ति । एवमेव ‘पि-  
तरः’ इति । सम्बोधने - हे पितः, पितरौ, पितरः । पितरम्, पितरौ, पितृन्, इत्यादि  
धातुवत् । ना । नृशब्दो मनुष्यवाची । तस्मात् सुः । “ऋदुशनस्” इत्यनङ् । “अप्तु-  
न्” इति सूत्रे अनन्तर्भावात् “सर्वनामस्थाने च” इति नान्तत्वप्रयुक्तो दीर्घः । हल्ङ्या-  
दिलोपः । नलोपः । ‘ना’ इति रूपम् । नरौ । “ऋतो ङि” इति गुणो रपरः । अप्तृजा-  
नन्तर्भावात् नान्तत्वाभावाच्च न दीर्घः । एवं ‘नरः’ इति । हे नः—“ऋतो ङि” इति  
गुणो रपरः । हल्ङ्यादिलोपो विसर्गश्च । नरम्, नरौ । शसि—पूर्वसवर्णदीर्घः ऋकारः

च ६।४।६। अस्य नामि वा दीर्घः । नृणाम्-नृणाम् ॥ गोतो णित् ७।१।६०।  
ओकाराद्विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वत् । गौः, गावौ, गावः । औतोऽम्शसोः ६।१।६३।  
ओकारादम्शसोरचि आकार एकादेशः । गाम्, गावौ, गाः । गवा । गवे । गोः ।  
इत्यादि । रायो हलि ७।२।८५। अस्याकारादेशो हलि विभक्तौ । राः, रायौ, रायः ।  
राभ्यामित्यादि । ग्लौः, ग्लावौ, ग्लावः । ग्लौभ्यामित्यादि ॥ इत्यजन्ताः पुंलिङ्गाः ॥

नत्वम्, नृन् । टादावचि यणि रेफः त्रा । त्रे । ङसिङ्सोः “ऋत उत्” रपरः, सलोपः,  
विसर्गश्च । नुः । नुः । न्रोः । नृ चेति । नृ इति लुप्तषष्ठीकम् । “नामि” इत्यनुवर्तते,  
“दूलोपे” इत्यतो दीर्घ इत्यनुवर्तते । “छन्दस्युभयथा” इत्यत उभयथेत्यनुवर्तते, तदा-  
ह—अस्येत्यादिना । नृणांमिति । नृशब्दादामि, नुट्, “नामि” इति नित्यं दीर्घं प्राप्ते  
“नृ च” इति नामि वा दीर्घं ‘नृणाम्’ ‘नृणाम्’ इति भवतः । गोतो णिदिति । गोत इति  
तपरकरणम् । “इतोऽस्सर्वनामस्थाने” इत्यतः सर्वनामस्थाने इत्यनुवृत्तं प्रथमया विप-  
रिणम्यते । तदाह—ओकाराद्विहितमित्यादिना । गौरिति । गोशब्दात्सावागते “गोतो  
णित्” इति णिद्वद्भावे “अचो ङिति” इति वृद्धौ औकारे रुवे विसर्गे च ‘गौः’ इति ।  
गावौ गाव इति । णिद्वत्वे वृद्धिः, अवादेशश्चेति भावः । हे गौः । वृद्धौ एङः परत्वाभा-  
वात् न सम्बुद्धिलोपः । औतोऽम्शसोरिति । आ ओत इति च्छेदः, व्याख्यानादिति  
भावः । ओत इति तपरकरणम् । “इको यणचि” इत्यतोऽचीत्यनुवर्तते । “एकः पूर्वप-  
रयोः” इत्यधिकृतन्तदाह—ओकारादित्यादिना । गामिति । गोशब्दादमि समागते “औ-  
तोऽम्शसोः” इत्यनेन पूर्वपरयोः स्थाने आकारादेशे कृते ‘गाम्’ इति । गावाविति । गो-  
शब्दादौटि कृते “गोतो णित्” इति णिद्वद्भावे वृद्धावावादेशे च कृते ‘गावौ’ इति ।  
गाः इति । गोशब्दात् शसि समागते “लशक्तद्धिते” इति शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते  
“औतोऽम्शसोः” इति पूर्वपरयोः स्थाने आकारादेशे च विहिते सस्य रुवे विसर्गे च  
‘गाः’ इति रूपम् । टादावचि अवादेशं मत्वाह—गवा गवे इति । गोरिति । “ङसिङ्सो-  
श्च” इति पूर्वरूपमिति भावः । इत्यादीति । गवोः गवाम्, गवि इत्यादिशब्दार्थः । रायो  
हलीति । राय इति रैशब्दस्य षष्ठ्यन्तम् । “अष्टन आ विभक्तौ” इत्यतः आ इति विभ-  
क्ताविति चानुवर्तते । हलीत्यनेन विभक्ताविति विशिष्यते । तदादिविधिस्तदाह—अ-  
स्याकारादेश इत्यादिना । रैशब्दात्प्रथमैकवचने सावागते “रायो हलि” इति रैशब्दस्य  
सर्वस्य स्थाने आकारादेशे प्राप्ते “अलोऽन्त्यस्य” इत्यन्त्यस्यैकारस्याकारादेशे सस्य  
रुवे विसर्गे च कृते ‘राः’ इति रूपम् । रायाविति । रैशब्दादौकारे समागते “एचोऽयवा-  
बावः” इत्यायादेशे “रायौ” इति । रायः इति । एवमेव सर्वत्राजादौ विभक्तौ आयादेशः ।  
हलादौ विभक्तौ च “रायो हलि” इत्यात्वम्बोध्यम् । रायम्, रायौ, रायः । राया, रा-  
भ्याम्, रामिः । राये, राभ्यां राय्यः । रायः, राभ्यां, राय्यः । रायः, रायोः, रायाम् ।  
रामि रायोः रासु । ग्लोरिति । ग्लौशब्दश्चन्द्रवाची । “ग्लौर्मुगाङ्कः कलानिधिः” इत्य-

## ॥ अथाजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ॥

रमा ॥ औड आपः ७।३।१८। आबन्तादज्ञात्परस्यौडः शी स्यात् । औडि-  
त्यौकारविभक्तेः संज्ञा । रमे । रमाः ॥ सम्बुद्धौ च ७।३।१९६। आन एकारः  
स्यात्संबुद्धौ । “एङ्हस्वात्” इति संबुद्धिलोपः । हे रमे. हे रमे, हे रमाः । रमाम् रमे  
रमाः ॥ आडि चापः ७।३।१९५। आडि ओसि चान एकारः । रमया रमाभ्याम्

ममः । तस्य हलादौ न कश्चिद्विकारः । अचि तु आवादेशः इति मत्वाह—ग्लौः ग्लौवी  
ग्लौव इति । ग्लौवम्, ग्लौवी, ग्लौवः । ग्लौवा ग्लौभ्याम्, ग्लौभिः । ग्लौवे, ग्लौभ्यां  
ग्लौभ्यः । ग्लौवः ग्लौभ्यां ग्लौभ्यः । ग्लौवः ग्लौवोः ग्लौवाम् । ग्लौवि, ग्लौवोः, ग्लौवुः ।  
इत्यजन्ताः पुल्लिङ्गाः ।

रमेति । रमाशब्दोऽत्र वर्तते “ङथाप्रातिपदिकात्” इत्यनेन सर्वेऽपि स्वादयः  
प्राप्ताः । एषां मध्यादत्र प्रथमैकवचने सावागते “उपदेशेऽजनुनासिक इत्” इति  
शकारोत्तरवर्त्युकारस्येत्सञ्ज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे “हल्ङ्थाभ्यो” इत्यनेन सस्य  
लोपे च कृते ‘रमा’ इति रूपं सिद्ध्यति । औड आप इति । आपः इति पञ्चमी । प्रत्यय-  
ग्रहणपरिभाषया आबन्तं विवक्षितम् । “अङ्गस्य” इत्यधिकृतं पञ्चम्या विपरिणम्यते ।  
औडः इति षष्ठी । “जसः शी” इत्यतः शीत्यनुवर्तते, तदाह—आबन्तादित्यादिना ।  
औडशब्दस्याप्रसिद्धार्थवादाह—औडितीति । संज्ञेति । प्राचां शास्त्रे स्थितेति शेषः ।  
रमे इति । ‘रमा + औ’ इति स्थिते औकारस्य स्थाने “औडः आपः” इति ‘शी’ आदेशे  
कृते “लशक्तद्धिते” इति शकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च ‘रमा + ई’ इति जाते “आद्-  
गुणः” इति पूर्वपरयोः स्थाने गुणादेशे च विहिते ‘रमे’ इति रूपम् । रमाः इति । रमा-  
शब्दाज्जसि समागते “चुट्” इति जकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “प्रथमयोः पूर्वसवर्णः”  
इति पूर्वसवर्णदीर्घादेशे सस्य रूपे विसर्गे च विहिते ‘रमाः’ इति रूपम् । सम्बुद्धौ  
चेति । “बहुवचने श्रल्येत्” इत्यत एवेति “आडि चापः” इत्यतः आप इति चानुवर्तते,  
तदाह—आप एकार इत्यादिना । एङ्हस्वादिति । हल्ङ्थादिलोपस्तु न, परत्वात् प्रति-  
पदोक्तत्वाच्च एत्वे कृते हल्ङ्थादिलोपस्याप्राप्तेः, “एङ्हस्वात्” इति लोपस्यैव पर-  
त्वेन न्याय्यत्वाच्चेति भावः । हे रमे । रमाशब्दात्सावागते “सम्बुद्धौ च” इत्याबन्ताङ्ग-  
स्यैकारादेशे “एङ्हस्वात्सम्बुद्धेः” इति सलोपे ‘हे रमे’ इति रूपम् । हे रमे हे रमा  
इति । औस्थाने शीभावे गुणे च सति—‘हे रमे’ इति । पूर्वसवर्णदीर्घादेशे रूपे विसर्गे  
च कृते ‘रमाः’ इति । रमामिति । “अभि पूर्वः” इति पूर्वरूपम् । औडः शीभावे आद्-  
गुणं मत्वाह—रमे इति । रमाः—जसि ‘रमा + अस’ इति स्थिते पूर्वसवर्णदीर्घे सति  
कृतपूर्वसवर्णदीर्घात् परत्वेऽपि “तस्माच्चसः” इति नत्वं स्त्रीलिङ्गत्वाच्च भवतीत्यर्थः ।  
आडि चाप इति । ओसि च इत्यनुवर्तते आप इति षष्ठी । अङ्गस्येत्यधिकृतम् । अङ्गस्य-

रमाभिः ॥ याडापः ७।३।११३। आपो ङितो याड् । वृद्धिः । रमायै रमाभ्याम्  
रमाभ्यः । रमायाः रमयोः रमाणाम् । रमायाम् । रमासु । एवं दुर्गाभिकादयः ॥  
सर्वनाम्नः स्याड्ढस्वश्च ७।३।११४। आबन्तात्सर्वनाम्नो ङितः स्याट् स्या-  
दापश्च ह्रस्वः । सर्वस्यै सर्वस्याः सर्वासाम् । सर्वस्याम् । शेषं रमावत् । एवं विश्वादयः

विधिः । “बहुवचने झयेत्” इत्यंतः एदित्यनुवर्तते, तदाह—आङि ओसि चेत्यादिना ।  
रमया । ‘रमा + टा’ इत्यत्र “चुट्” इति टस्येत्सञ्ज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे—‘रमा  
आ’ इति जाते “आङि चापः” इत्याबन्ताङ्गस्यैकारादेशे “एचोऽयवायावः” इत्यादेशे  
च विहिते ‘रमया’ इति रूपम् । याडाप इति । आपः इति पञ्चमी । “वेङिति” इत्यतो  
ङितीत्यनुवृत्तं षष्ठ्या विपरिणम्यते, तदाह—आपः परस्येत्यादिना । रमायै इति । ‘रमा  
ङे’ इत्यत्र ङस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते ‘रमा + ए’ इति जाते “याडापः” इत्यनेन क्त  
एकारस्य याडागमे कृते टित्वादाद्यावयवे जाते टकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च विहिते ‘रमा  
या ए’ अत्र “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ ‘रमायै’ इति रूपम् । ङसिङसोस्तु ‘रमा + अस्’  
इति स्थिते याडागमे “अकः सवर्णे दीर्घः” इति सवर्णदीर्घे ‘रमायाः’ । रमयोरिति ।  
‘रमा + ओस्’ इति स्थिते “आङि चापः” इत्याबन्ताङ्गस्यैकारे जाते अयादेशे च कृते  
रुक्विसर्गयोः सत्योः ‘रमयोः’ इति रूपम् । रमाणामिति । ‘रमा + आम्’ अत्र “ह्रस्व-  
द्यापः” इत्यत्राभ्यङ्गहणाद्वाटि, पर्जन्यवह्मचणप्रवृत्त्या “नामि” इति दीर्घे “अट्कुप्वाङ्”  
इति णत्वे च सति रूपम् । रमायामिति । ‘रमा ङि’ इत्यत्र “ङेरान्नद्याङ्गीभ्यः” इति  
ङेरामि कृते ‘रमा + आम्’ इति जाते अत्र “याडापः” इति याटि टलोपे “अकः सवर्णे  
दीर्घः” इति दीर्घादेशे च कृते ‘रमायाम्’ इति रूपम् । सर्वनाम्न इति । “याडापः”  
इत्यत आप इति पञ्चम्यन्तमनुवृत्तम् । तेन सर्वनाम्न इत्येतद्विशिष्यते । तदन्तविधिः ।  
“वेङिति” इत्यतो ङितीत्यनुवृत्तं षष्ठ्या विपरिणम्यते; तदाह—आबन्तादित्यादिना ।  
सर्वस्यै । सर्वस्येदाद्यापि सर्वाशब्दः । सोऽपि प्रायेण रमावत् । ‘सर्वा + ङे’ इत्यत्र  
ङस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते “याडापः” इति प्राप्ते तं बाधित्वा “सर्वनाम्नः स्याड्ढ-  
स्वश्च” इति स्याटि आबन्तस्य च ह्रस्वे कृते सर्वं स्याट् ए इति जाते टस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे  
च “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ कृतायां ‘सर्वस्यै’ इति रूपम् । सर्वस्याः । ‘सर्वा ङसि’  
इत्यत्र ङकारस्येकारस्य चेत्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “सर्वनाम्नः स्याड्ढस्वश्च” इति स्याटि  
आबन्तस्य ह्रस्वत्वे च ‘सर्वं स्याट् अस्’ इति जाते टस्य लोपे “अकः सवर्णे दीर्घः”  
इति दीर्घादेशे च कृते सस्य रुक्वे विसर्गे च ‘सर्वस्याः’ इति रूपम् । सर्वासामिति ।  
‘सर्वा + आम्’ इत्यत्र “आमि सर्वनाम्नः सुट्” इति सुटि उटि मते सकारेण सह  
संयोगे च कृते ‘सर्वासाम्’ इति रूपम् । सर्वस्यामिति । ‘सर्वा + ङि’ इत्यत्र “ङेरा-  
न्नद्याङ्गीभ्यः” इति ङेरामि “सर्वनाम्नः स्याड्ढस्वश्च” इति स्याटि आबन्तस्य  
च ह्रस्वत्वे ‘सर्वं स्या आम्’ इति जाते “अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घत्वे ‘सर्वस्याम्’



आबन्ताः॥ विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ १।१।२८ सर्वनामता वा । उत्तर-  
पूर्वस्यै । उत्तरपूर्वायै । ( तीयस्य वा संज्ञा ) द्वितीयस्यै द्वितीयायै । एवं  
तृतीया । अम्बार्थेति ह्रस्वः । हे अम्ब । हे अक्क । हे अल्ल । जरा जरसौ जरे  
इत्यादि । पक्षे हलादौ च रमावत् । गोपा विश्वपावत् । मतिः । मत्या ॥

इति रूपम् । एवमिति । सर्वादिगणपठितविश्वाद्यः आबन्तत्वं प्राप्ताः सर्वाश्चब्द-  
वदित्यर्थः । उत्तरस्याः पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालम्—सा उत्तरपूर्वा । “दिङ्नामान्यन्त-  
राले” इति बहुव्रीहिविशेषोऽयम् । तत्र विशेषं दर्शयितुमाह—विभाषा दिक्समासे इति ।  
“सर्वादीनि” इत्यतः सर्वनामग्रहणमनुवर्तते, तदाह—सर्वनामतेति । उत्तरपूर्वस्यै—उ-  
त्तरपूर्वा + छे” इत्यत्र “विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ” इति सर्वनामत्वे “सर्वनाम्नः  
स्याड्ढस्वश्च” इति स्याटि आबन्तस्य च ह्रस्वत्वे “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ ‘उत्तरपूर्वस्यै’  
इति । पक्षे—सर्वनामसंज्ञाभावे “याडापः” इति याटि “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ कृता-  
याम् ‘उत्तरपूर्वायै’ इति । एवमग्रेऽपि प्रक्रिया बोध्या रूपाणि—उत्तरपूर्वस्याः—उत्तर-  
पूर्वायाः, उत्तरपूर्वासाम्—उत्तरपूर्वाणाम्, उत्तरपूर्वस्याम्—उत्तरपूर्वायाम्, इति । तीय-  
स्येति । विभाषाप्रकरणे तीयप्रत्ययान्तस्य ङित्सु सर्वनामत्वोपसंख्यानमिति तदर्थः ।  
द्वितीयस्यै इति । ‘द्वितीया + छे’ इत्यत्र “तीयस्य ङित्सु वा” इति वैकल्पिके सर्वनामत्वे  
“सर्वनाम्नः स्याड्ढस्वश्च” इति स्याटि ह्रस्वत्वे च विहिते वृद्धौ कृतायां ‘द्वितीयस्यै’  
इति । सर्वनामत्वाभावे तु “याडापः” इति याटि वृद्धौ विहितायां ‘द्वितीयायै’ इति  
रूपम् । ङसिङ्सोः—द्वितीयस्याः, द्वितीयायाः । ङौ—द्वितीयस्यां, द्वितीयायामिति । एवं  
तृतीयेति । तृतीयस्यै—तृतीयायै, तृतीयस्याः—तृतीयायाः, तृतीयस्यां—तृतीयायाम् इति ।  
हे अम्बेत्यादि । हे अम्बा सु इत्यत्र सकारोत्तरवर्तिन उकारस्येत्सञ्ज्ञात्वे लोपे च “अम्बा-  
र्थनघोर्ह्रस्वः” इति ह्रस्वत्वे “एङ्हस्वात्सम्बुद्धेः” इति सलोपे ‘हे अम्ब’ इति । एवमेव  
हे अक्क, हे अल्ल, इत्यादि । शेषं रमाशब्दवत् । जरेति । ‘जृष्-वयोहानौ, “षिद्धिदा-  
दिभ्यः” इत्यङ् । “ऋदृशोऽङि” इति गुणः, रपरत्वम् । अदन्तत्वात् टाप, सुः, हल्ङ्वा-  
दिना सुलोप इति भावः । जरसाविति । ‘जरा + औ’ अत्र “जराया जरसन्यतरस्याम्”  
इति अजादौ विभक्तौ परे जराशब्दस्य स्थाने जरस आदेशो मिलित्वा ‘जरसौ’ इति ।  
जरे इति । ‘जरा + औ’ अत्र जरसादेशाऽभावे “औङ आपः” इत्यौकारस्य श्यादेशो शस्ये-  
त्संज्ञायां लोपे च कृते “आद्गुणः” इति गुणे ‘जरे’ इति रूपम् । जरसः, जराः । जर-  
सम्, जरसौ, जरसः । टा—जरसा । छे—जरसे । ङसिङ्सोः—जरसः २ । ओसि—जरसोः ।  
आमि—जरसाम् । ङौ—जरसि । पक्षे हलादौ च रमावदिति । जरसादेशाभावपक्षे, हलादा-  
वपि च रमावदित्यर्थः । गोपा विश्वपावदिति । गोपाः, गोपौ, गोपाः । गोपाम्, गोपौ,  
गोपः । गोपा, गोपाभ्यां, गोपाभिः । छे—गोपे । ङसिङ्सोः—गोपः । ओसि—गोपोः ।  
आमि—गोपाम् । ङौ—गोपि । शसादावजादौ विभक्तौ भसंज्ञायाम्, “आतो घातोः”

ङिति ह्रस्वश्च १।४।६। इयङ्वङ्स्थानौ व्रीशब्दभिर्नौ नित्यव्रीलिङ्गावीदौ  
ह्रस्वौ च इवर्णवर्णौ क्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति । मत्यै, मतये । मत्याः २ ।  
मतेः २ । इदुङ्ग्रयाम् ७।३।११७। नदीसंज्ञकाभ्यामिदुङ्ग्रयां परस्य ङेराम् ।  
मत्याम्, मतौ । शेषं हरिवत् । एवं बुद्ध्यादयः ॥ त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृ-  
चतसृ ७।२।६६। व्रीलिङ्गयोरेतौ स्तो विभक्तौ ॥ अचि र ऋतः ७।२।१०७।  
तिसृचतसृ एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि । गुणदीर्घोत्वानामपवादः । तिस्रः ।

इति लोपः इति बोध्यम् । मतिशब्दः प्रायेण हरिवत् । मतिः, मती, मतयः । हे मते,  
हे मती, हे मतयः । मतिम्, मती । शसि-पूर्वसवर्णदीर्घादेशे कृते पुंस्त्वाभावात् “तस्मा-  
च्छसो नः पुंसि” इति न नत्वम्, किन्तु सस्य रूपे विसर्गे च ‘मतीः’ इति रूपम् ।  
मत्येति । ‘मति टा’ इत्यत्र “शेषोऽध्यसखि” इति विसंज्ञायां सत्यामपि “आङे ना-  
/ऽस्त्रियाम्” इत्यत्र ‘अस्त्रियाम्’ इति पर्युदासाच्चात्वं न किन्तु “इको यणचि” इति यणि  
कृते ‘मत्या’ इति रूपम् । ङिति ह्रस्वश्चेति । “यूस्त्र्याख्यौ नदी” इत्यनुवर्तते । “नेयङु-  
वङ्स्थानावक्षी” इति सूत्रं नन्ववर्जमनुवर्तते । “वामि” इत्यतो वेत्यनुवर्तते, तदाह—  
इयङ्वङ्स्थानावित्यादिना । मत्यै । ‘मति + ए’ अत्र “ङिति ह्रस्वश्च” इति नदीसंज्ञायाम्  
“आप्नद्याः” इत्याडागमे टित्वादाद्यावयवे ‘मति-आ ए’ इति जाते “आटश्च” इति वृद्धौ  
सत्याम् ‘ऐ’ इति भूते “इको यणचि” इति यणि कृते ‘मत्यै’ इति रूपम् । नदीसंज्ञा-  
भावे “शेषो ध्यसखि” इति विसंज्ञायां “वेङिति” इति गुणे कृते “एचोऽयवायावः”  
इत्यादादेशे ‘मतये’ इति रूपं सिद्धम् । ‘मत्याः’ । ‘मति ङसि’ इत्यत्र इकारस्य ङस्य  
स्वेत्संज्ञायां लोपे च “ङिति ह्रस्वश्च” इति नदीसंज्ञायाम् “आप्नद्याः” इत्याटि  
“आटश्च” इति वृद्धौ “इको यणचि” इति यणि च कृते सस्य रूपे विसर्गे च कृते  
‘मत्याः’ इति रूपम् । विसंज्ञायां हरिवत् । इदुङ्ग्रयामिति । “ङेराम्” इति सूत्राच्चदी-  
गृह्णं ङेरामिति चानुवर्तते, तदाह—इदुङ्ग्रयामित्यादिना । ‘मति + ङि’ इत्यत्र “ङिति  
ह्रस्वश्च” इति नदीसंज्ञायां “इदुङ्ग्रयाम्” इति ङेरामि विहिते सति तत्र स्थानिवद्भावेन  
ङित्वमानीय “आप्नद्याः” इत्याडागमे “आटश्च” इति वृद्धौ “इको यणचि” इति यणि  
‘मत्याम्’ इति रूपम् । नदीसंज्ञाभावे “शेषोऽध्यसखि” इति विसंज्ञायाम् “अच्च घेः”  
इति ङेरौत्वे घेरकारादेशे च कृते “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ च विहितायां ‘मतौ’ इति  
रूपम् । त्रिचतुरोरिति । “अष्टन आ विभक्तौ” इत्यतो विभक्तावित्यनुवर्तते, तदाह—  
विभक्ताविति । अचिर ऋत इति । पूर्वसूत्रात् तिसृचतसृ इत्यनुवर्तते । तच्चेह लुप्तपक्षी-  
कमाश्रीयते । तदाह—तिसृ इत्यादिना । गुणदीर्घोत्वानामिति । “ऋतो ङि” इति गुणस्य  
“प्रथमयोः” इति पूर्वसवर्णदीर्घस्य “ऋत उत्” इत्युत्त्वस्य च रत्वमपवादः इत्यर्थः ।  
तिस्र इति । ‘त्रि ङस्य’ इत्यत्र “त्रिचतुरोः क्रियां तिसृचतसृ” इति तिसृ इत्यादेशे  
जस्येत्संज्ञत्वे लोपे च ‘तिसृ + असृ’ इति जाते “ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः” इति

तिस्रः । तिसृभिः । तिसृभ्यः । तिसृभ्यः । आमि नुट् ॥ न तिसृचतसृ द्वाधाधा  
एतयोर्नामि दीर्घो न । तिसृणाम् । तिसृषु । द्वेस्त्वे सत्यात् । द्वे, द्वे, द्वाभ्याम्, द्वा-  
भ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः, द्वयोः । गौरी गौर्यौ गौर्यः । हे गौरि । गौर्यै इत्यादि । एवं  
नद्यादयः । लक्ष्मीः । शेषं गौरीवत् । एवं तरीतन्त्रयादयः । स्त्री । हे स्त्री । स्त्रियाः

गुणे प्राप्ते तं प्रबाध्य “अचि र ऋतः” इति रेफादेशे संयोगे सस्य रत्वे रस्य विसर्गत्वे  
च “तिस्रः” इति रूपम् । शसि तु “प्रथमयोः” इति प्रबाध्य “अचि र ऋतः” इति  
रेफादेशे संयोगे सस्य रत्वे रस्य विसर्गत्वे च कृते ‘तिस्रः’ इति रूपम् । भिसि-  
तिसृभिः । भ्यसि-तिसृभ्यः । न तिसृचतस्रिति । तिसृचतसृ इति लुप्तषष्ठीकं पदम् ।  
“द्वलोपे” इत्यतो दीर्घ इत्यनुवर्तते । “नामि” इति सूत्रं चानुवर्तते, तदाह—एतयोरि-  
त्यादिना । तिसृणामिति । ‘तिसृ + आम्’ इति स्थिते नुटं च बाधित्वा “अचि र ऋतः”  
इति रत्वे प्राप्ते “नुमचिरतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन” इति रत्वं बाधित्वा  
नुटि कृते ‘तिसृ + नाम्’ इति स्थिते “नामि” इत्यनेन दीर्घे प्राप्ते “न तिसृचतसृ”  
इति निषिद्धे “ऋवर्णाच्चस्य णत्वं वाच्यम्” इति वार्तिकेन णत्वे विहिते ‘तिसृणाम्’  
इति रूपम् । सुपि “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे ‘तिसृषु’ इति रूपम् । द्वे इति ।  
‘द्वि + औ’ अत्र “त्यदादीनामः” इति अकारान्तादेशे कृते “अजाद्यतष्टाप्” इति अकारा-  
न्तत्वादिहापि टापि “चुट्” इति टकारस्य “हलन्त्यम्” इति पकारस्य चेत्संज्ञायां लोपे  
च कृते ‘द्व आ औ’ इति जाते “अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घादेशे “औडः आषः”  
इत्यौकारस्य शीत्वे कृते शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “आद्गुण” इति गुणे ‘द्वे’ इति  
रूपम् । शसि-“द्वे” इति । द्वयोः । पूर्ववत् ‘द्वा’ इति कृते “आङि चापः” इति आव-  
न्ताङ्गैकारे अयादेशे च कृते सस्य रत्वे विसर्गं च जाते ‘द्वयोः’ इति रूपम् । गौरीति ।  
गौरशब्दात् गौरादिलक्ष्मणङीषि “यस्येति च” इत्यकारलोपे गौरीशब्दः । तस्मात्सु-  
तस्य हल्ङ्यादिना लोपे ‘गौरी’ इति रूपम् । गौर्यौ । ‘गौरी + औ’ अत्र “प्रथमयोः पूर्व-  
सवर्णः” इति पूर्वसवर्णदीर्घत्वे प्राप्ते “दीर्घाञ्सि च” इति पूर्वसवर्णदीर्घनिषेधे “इको  
यणञि” इति यणि “अचोरहाभ्यां द्वे” इति द्वित्वे संयोगे च कृते “गौर्य्यौ” इति  
रूपम् । गौर्य्यः । गौरीशब्दाञ्सि समागते ‘गौरी + अस्’ अत्र “दीर्घाञ्सि च” इति  
पूर्वसवर्णदीर्घनिषेधे सति यणि, रत्वे विसर्गं च ‘गौर्य्यः’ इति रूपम् । हे गौरि ।  
गौरी + सु अत्र “यूस्त्वाख्यां नदी” इति नदीमञ्जुशायाम् “अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः” इति  
ह्रस्वत्वे “एह्रस्वात्सम्बुद्धेः” इति सुलोपे ‘हे गौरि’ इति रूपम् । इत्यादीति । हे-  
गौर्य्यै, लसिद्धसो-गौर्य्याः । आमि-गौरीणाम् । हौ-गौर्य्याम् । अत्र क्रमेण—“आ-  
ण्णयाः” “ह्रस्वन्नापो नुट्” “डेरान्नघाप्नीम्यः” इति नदीकार्यं बोध्यम् । लक्ष्मीः ।  
“लघेर्नुट् च” इति लक्ष्म्यातोरीप्रत्यये मुडागमे लक्ष्मीशब्दः । तस्मात् सौ समागते  
उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “अङ्वन्तत्वाच्च सुलोपः, किन्तु सस्य रत्वे विसर्गं च ‘लक्ष्मी’

१।४।७५। अस्त्रेयश्च स्यादजादौ प्रत्यये परे । स्त्रियौ, स्त्रियः । वाम्शसोः १।  
४।८०। अमि शसि च स्त्रिया इयच् वा स्यात् । स्त्रियम्-स्त्रीम्, स्त्रियः-स्त्रीः, स्त्रिया ।  
स्त्रियै । स्त्रियाः । परत्वान्नुट् । स्त्रीणाम् । स्त्रीषु । श्रीः श्रियौ श्रियः ॥ नेयकुवङ्-  
स्थानावस्त्री १।४।४। इयङ्कुवङोः स्थितिर्योस्तावदूतौ नदीसंज्ञौ न स्तः स्त्रीमिधौ ।

इति रूपम् । गौरीवदिति । अन्वार्थेत्यादिनदीकार्यमित्यर्थः । हे लक्ष्मि, लक्ष्म्यै, लक्ष्म्याः,  
लक्ष्मीणाम्, लक्ष्म्याम् । स्त्री । स्यात्यतः संगते भवतः शुक्रशोणितेऽस्यामिति स्त्री,  
तस्मात्सौ हल्ङ्वादि लोपे 'स्त्री' इति रूपम् । हे स्त्री । अत्र नदीसंज्ञायाम् "अन्वार्थ-  
नघोर्हस्वः" इति हस्वे "एङ्हस्वात्" इति सुलोपे 'हे स्त्री' इति । स्त्रिया इति । "अचि  
श्नुधातुः" इत्यतोऽचीति इयङिति चानुवर्तते, तदाह—अस्त्रेयक्षित्यादिना । स्त्रियौ ।  
'स्त्री.औ' इति स्थिते "स्त्रियाः" इतीयङि कृते संयुक्ते च जाते 'स्त्रियौ' इति रूपम् ।  
एवं जसि-स्त्रियः" इति । वाम्शसोरिति । वा अम्शसोः इति च्छेदः । स्त्रिया इति इय-  
ङिति चानुवर्तते, तदाह—अमि शसि चेत्यादिना । स्त्रियम्, स्त्रीमिति । 'स्त्री + अम्' अत्र  
"वाम्शसोः" इतीयङि कृते 'स्त्रियम्' इति । पञ्चे "अमि पूर्वः" इति पूर्वरूपे 'स्त्रीम्'  
इति । स्त्रियः, स्त्रीरिति । 'स्त्री + शस्' अत्र शस्येत्संज्ञायां लोपे च "वाम्शसोः" इतीयङि  
सस्य रुत्वे तस्य विसर्गे च 'स्त्रियः' इति रूपम् । पञ्चे-स्त्री + अस्' अत्र "प्रथमयोः  
पूर्वसवर्णः" इति पूर्वसवर्णदीर्घादेशे रुत्वे विसर्गे च 'स्त्रीः' इति । स्त्रियै । 'स्त्री + ङे'  
इत्यत्र ङस्येत्संज्ञकरुत्वे लोपे च नदीसंज्ञायाम् "आणनद्याः" इत्यादि "आटश्च" इति  
वृद्धौ "स्त्रियाः" इत्यनेन इयङि च विहिते 'स्त्रियै' इति रूपम् । स्त्रियाः । स्त्रीशब्दात्  
लसिहसोः अनुबन्धलोपे नदीसंज्ञायाम् "आणनद्याः" इत्यादि "आटश्च" इति वृद्धौ  
"स्त्रियाः" इतीयङि च सञ्जाते रुत्वविसर्गयोः 'स्त्रियाः' २ इति रूपम् । परत्वान्नुडिति ।  
आमि "स्त्रियाः" इति इयङं बाधित्वा परत्वान्नुट् इत्यर्थः । स्त्रीणामिति । स्त्रीशब्दादामि  
'स्त्री + अम्' इति स्थिते अत्र "स्त्रियाः" इतीयङं परत्वात् बाधित्वा "हस्वनद्यापो नुट्"  
इति नुडागमे पर्जन्यवत्लक्षणप्रवृत्त्या दीर्घे कृते "अट्कुप्वाङ्नुम्यवायेऽपि" इति  
णत्वे विहिते 'स्त्रीणाम्' इति । स्त्री-स्त्रियाम् इति । ओसि-स्त्रियोः इति । श्रीरिति ।  
अयन्त्येतामिति श्रीः । श्रिज्सेवायामितिधातोः "किञ्चिप्रच्छिन्नश्चिन्नुप्रज्वां दीर्घोऽ-  
सम्प्रसारणश्च" इति किप्, प्रकृतेर्दीर्घश्चेति निष्पन्नात् श्रीशब्दात् सुः । अङ्यन्तत्वाच्च  
सुलोपः । श्रियाविति । श्रीशब्दात् औ समागते "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः" इति बाधित्वा  
"अचि श्नुधातुः" इतीयङि कृते मिलित्वा 'श्रियौ' इति । एवमेव 'श्रियः' इति ।  
नेयङ्कुवङ्स्थानाविति । "यूस्त्र्यास्थौ नदी" इत्यतो यू नदीत्यनुवर्तते । स्थानशब्दो भावे  
युद्धन्तः । इयङ्कुवङोः स्थानं स्थितिर्योरिति बहुव्रीहिः । इयङ्कुवङ्योभ्याविति बावत् ।  
तदाह—इयङ्कुवङोरित्यादिना । हे श्रीरिति । श्रीशब्दात्सम्बोधने सावागते "नेयङ्कुवङ्स्था-  
नावस्त्री" इति नदीत्वाभावे "अन्वार्थनघोर्हस्वः" इति हस्वाभावे सस्य रुत्वे रस्य विस-

हे श्रीः । श्रियै-श्रिये । श्रियाः-श्रियः ॥ वामि १।४।५। इयङ्वङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ  
यू वामि वा नदीसंज्ञौ स्तः, जीभिर्नौ । श्रीणाम्-श्रियाम् । श्रियि, श्रियाम् ।  
चेनुर्मतिवत् ॥ स्त्रियां च ७।१।१६। जीवाची कोट्टराब्जस्तृजन्तवद्रूपं सन्ति ॥  
ऋन्तेभ्यो ङीप् ४।१।५। ऋन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप् । क्रोष्टी गौरीवत् ।  
अः श्रीवत् । स्वयंभूः पुंवत् ॥ न षट्स्वस्त्रादिभ्यः ४।१।१०। ङीप्द्रापौ न स्तः ।

गोत्रे च 'हे श्रीः' इति रूपम् । श्रियै, श्रिये इति । 'श्री + डे' इत्यत्र "यू स्त्र्याख्यौ न-  
दी" इति नदीसंज्ञायां प्राप्तायां "नेयङ्वङ्स्थानावक्षी" इति निषेधे "ङिति इस्वश्च"  
इति ङिति विकल्पेन नदीसंज्ञायां कृतायाम् "आण्णद्याः" इत्यादि "आटश्च" इति पूर्व-  
परयोः स्थावे वृद्धौ कृतायाम् "अचि रनुधातु०" इतीयङि मिलित्वा "श्रियै" इति ।  
पठे—"ङिति इस्वश्च" इति नदीसंज्ञाभावे इयङि "श्रिये" इति रूपम् । श्रियाः, श्रियः  
इति । श्रीसंज्ञात् असिद्धोः परयोः सतोः नदीसंज्ञायाम् आदि वृद्धौ इयङि च कृते  
'श्रियाः' इति । नदीसंज्ञाभावे इयङेव 'श्रियः' इति । वामीति । यूस्त्र्याख्यौ नदीत्व-  
नुवर्तते । "नेयङ्वङ्स्थानावक्षी" इति नञ्वर्जमनुवर्तते । वा आमीति छेदः । अमि  
नदीकार्याभावस्त, तदाह—इयङ्वङ्स्थानावित्यादिना । 'श्री आम्' इति स्थिते अत्र "यू  
स्त्र्याख्यौ नदी" इति नदीसंज्ञायां प्राप्तायां "नेयङ्वङ्स्थानावक्षी" इति निषेधे "वा-  
मि" इति वा नदीसंज्ञायां "इस्वन्धातो नुट्" इति नुटि कर्णन्ववल्लक्षणन्यायेन दीर्घं  
"अट्कुन्वाङ्नुम्ववावेऽपि" इति अत्वे 'श्रीणाम्' इति । नदीत्वाभावपठे—इयङि 'श्रि-  
याम्' इति । श्रियि, श्रियामिति । 'श्री ङि' इत्यत्र "ङिति इस्वश्च" इति नदीत्वे "ङेराप्-  
क्षमनीभ्यः" इति ङेराप्ति "आण्णद्याः" इत्यादि "आटश्च" इति वृद्धौ "अचि रनुधातु०"  
इतीयङि 'श्रियाम्' इति । नदीत्वाभावपठे इयङि 'श्रियि' इति रूपम् । श्रियोः । श्रीषु ।  
चेनुर्मतिवदिति । उकारस्य ओकारो गुणः । अवादेश इत्यादिविरोधस्तु सुगम इति भावः ।  
स्त्रियां चेति । "तृत्वङ्कोट्टुः" इत्यनुवर्तते तदाह—जीवाचीत्यादिना । ऋन्तेभ्य इति ।  
ऋतश्च नादचेति द्वन्द्वः । स्त्रियामित्यधिकृतम् । कथाप्रातिपदिकात् इत्यतः प्रातिपदि-  
कग्रहणमनुवृत्तम्, ऋन्वकारैर्विशेष्यते । तदन्तर्धिधिः । तदाह—ऋन्तेभ्य इत्यादिना ।  
क्रोष्टीति । क्रोष्टसंज्ञास्त्रीत्वे घोस्वे "स्त्रियाश्च" इति तृज्वङ्गावे "क्रोष्ट" इति जाते ऋद-  
न्तात्वात् "ऋन्तेभ्यो ङीप्" इति ङीपि ककारपक्षात्पौरिसंज्ञकत्वे लोपे च "क्रोष्ट + ई"  
इति स्थिते यणि निष्वन्मः "क्रोष्टी" शब्दः । तस्मात्सौ समागते हलङ्यादिना लोपे  
कृते सति "क्रोष्टी" इति रूपम् । गौरीवदिति । क्रोष्ट्यौ, क्रोष्ट्यः । हे क्रोष्टि, क्रोष्ट्यौ,  
क्रोष्ट्यः । क्रोष्टीम्, क्रोष्ट्यौ, क्रोष्टीः । क्रोष्ट्या, क्रोष्ट्यै, क्रोष्ट्याः, क्रोष्टीणाम्, क्रो-  
ष्ट्याम् । "यू स्त्र्याख्यौ नदी" इति नदीसंज्ञायाम् तत्र तत्र नदीकार्यमूहम् । अस्ति ।  
उ सु इत्यत्र सत्स्य कश्चे रस्य विसर्गत्वे च 'अः' इति रूपम् । 'अ + औ' 'अचि रनु-  
धातु०' इत्युक्ति ऋयौ । असि-अवः । "नेयङ्वङ्स्थानावक्षी" इति अण्वङ्स्थानावक्षी

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च त्रयान्मा दुहिता तथा । याता मातेति सप्तैते स्वसादय उदाहृताः ॥  
स्वसा, स्वसारौ । माता पितृवत् । शसि मातृः ॥ यौगोवत् । राः पुंवत् ।  
नौग्लोवत् ॥ इत्यष्टान्ताः स्त्रीलिङ्गाः ॥

## ॥ अथाजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ॥

अतोऽम् ७।१।२४। अतोऽज्ञात् क्लीबात्स्वमोरम् । “अमि पूर्वः” ज्ञानम् ।

नदीर्त्वं न । तेन “अज्जार्थ” इत्यादिना नदीकार्यं न । हे अः, अवौ, अवुः । अवम्,  
अवौ, अवः । अवा, अव्याम्, अमिभिः । ‘अ हे’ अत्र “हिति ह्रस्वश्च” इति नदीत्वे  
आदि वृद्धौ, उवङि च—अवौ । पक्षे—उवङेव अवुः । कसिङ्गसोः—अवाः, अवः । अमि  
‘वामि’ इति वा नदीत्वे नुटि ‘अणाम्’ । पक्षे—अवाम् । ‘अ + ङि’ अत्र नदीसंज्ञायौ  
“कैराम्नघाग्नीम्यः” इति कैरामि, आढागमे वृद्धौ उवङि च अवाम् । नदीत्वाभाव-  
पक्षे—अवि इति । स्वयम्भूः पुंवदिति । स्वयम्भूशब्दस्य चतुरानने रूढत्वात् नित्य-  
स्त्रीत्वाभावेन न नदीत्वमिति भावः । न षडिति । षट्त्वनेन षट्संज्ञका गृह्यन्ते ।  
दीप्तापाविति । “अन्नेभ्यो ङीप्” इत्यतो ङीषिति, “टाङ्गि” इत्यतष्टावित्यस्य चानु-  
बुचेरिति भावः । स्वसादीन् षठिति—स्वसा तिस्र इत्यादिना । स्वसेति । ‘स्वसृ + सु’  
अत्र “अन्नेभ्यो ङीप्” इति ङीषि प्राप्ते “न षट्स्वादिभ्यः” इति ङीपो निषेधे  
“अहुशानसपुरुदंसोऽनेहसां च” इत्यनङि ङित्वादन्त्यावयवे जाते अनुबन्धलोपे ‘स्व-  
सन् + सृ’ इति स्थिते “अप्तृन्तृच्” इति दीर्घे “हलङ्वाभ्यो” इति सलोपे “नलोपः  
प्रातिपदिकान्तस्य” इति नस्य लोपे च कृते ‘स्वसा’ इति रूपम् । स्वसाराविति । ‘स्व-  
सृ + औ’ अत्र “अतो क्सिर्वनामस्थानयोः” इति गुणे अकारे “उरण् रपरः” इति  
रपरे च जाते “अप्तृन्तृच्” इत्युपधाया दीर्घत्वे ‘स्वसारौ’ इति रूपम् । जसि—  
स्वसारः । सम्बोधने “ह्रस्वस्य गुणः” इति गुणे रपरे च हलङ्वादिना लोपे सस्य वि-  
सर्गे च—हे स्वसा, स्वसारौ, स्वसारः । स्वसारम्, स्वसारौ । शसि—पूर्वसवर्णदीर्घा-  
देशे सस्य लक्षे रस्य विसर्गत्वे च ‘स्वसृ’ इति । टा-स्वसा । डे-स्वसे । कसिङ्गसोः—  
‘स्वसृ + अस्’ इति स्थिते । “अत उत” इति पूर्वपरयोः स्थाने उकारादेशे रपरत्वे च  
“रात्स्वस्य” इति सलोपे रेफस्य विसर्गे च कृते स्वसुः । अमि—स्वसृणाम् । औ—  
“अतो क्सिर्वनामस्थानयोः” इति गुणे रपरे च ‘स्वसारि’ इति ॥ यौगोवदिति । “ओतो  
मिप्” इति ङित्वातिदेशात् “अचो ङिति” इति वृद्धिः । राः पुंवदिति । “रायो  
हलि” इत्यात्त्वम् । नौग्लोवदिति । सर्वप्राजादौ विभक्तौ परे आवादेश इति भावः । इत्य-  
ष्टान्ताः स्त्रीलिङ्गाः ।

अतोऽमिति । अत इति पञ्चमी । अतस्त्वेत्यधिकृतं पञ्चम्या विपरिणम्यते । अत  
इत्यनेन विशेष्यते । तद्वन्त्यविधिः । “स्वसोर्वपुंसकम्” इत्यनुवर्तते । तद्वद्—अतोऽज्ञा-

“एङ्हस्वात्” इति ह्रस्वलोपः । हे ज्ञान । नपुंसकाच्च ७।१।१६। क्लीबादौः शी स्यात् । असंज्ञायाम् ॥ यस्येति च ६।४।१४८। ईकारे तद्धिते च परे भ्रमेवर्णा-  
वर्णयोलोपः । इत्यलोपे प्राप्ते । ( औडः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः ) । ज्ञाने ॥  
जशसोः शिः ७।१।२०। क्लीबादनयोः शिः स्यात् ॥ शि सर्वनामस्थानम्  
१।१।४२। शि इत्येतदुक्तसंज्ञं स्यात् ॥ नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२। झलन्त-  
स्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने ॥ मिदचोऽन्त्यात्परः १।१।४७।  
अत्रां मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवान्तावयवो मित्त्यात् । उपधादीर्घः । ज्ञानानि ।  
पुनस्तद्धित । शेषं पुंवत् । एवं धनवनफलादयः ॥ अद्ङितरादिभ्यः पञ्चभ्यः ७।

दिति । ज्ञानमिति । ज्ञानशब्दात्सावागते “अतोऽम्” इति सोरमि कृते “अमि पूर्वः”  
इति पूर्वरूपैकादेशे “ज्ञानम्” इति रूपम् । ह्रस्वलोप इति । पूर्वरूपे कृते सम्बुद्धेर्मकारमात्रं  
यत् परिशिष्टं तस्य “एङ्हस्वात्” इति लोप इत्यर्थः । हे ज्ञान इति । ‘ज्ञान-सु’ अत्र  
“अतोऽम्” इत्यमि “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपैकादेशे ज्ञानम् इति जाते “एङ्हस्वात्स-  
म्बुद्धेः” इति मलोपे ‘हे ज्ञान’ इति रूपम् । नपुंसकाच्चेति । “जसः शी” इत्यतः शीति  
“औड आपः” इत्यतः औड इति चानुवर्तते, तदाह—क्लीबादित्यादिना । यन्मेति चेति ।  
यस्य ईतीति छेदः । इत्थं अथ तयोः समाहारः यं तस्य इवर्णस्य अवर्णस्य चेत्यर्थः ।  
भ्रमेत्यधिकृतम् । “नस्तद्धिते” इत्यतः तद्धिते इत्यनुवर्तते, तदाह—ईकारे तद्धित इत्या-  
दिना । औडः श्यामिति । औडः यः शी आदेशः तस्मिन् परतः “यस्येति च” इति  
लोपस्य प्रतिषेधो वक्तव्य इत्यर्थः । ज्ञाने इति । ‘ज्ञान + औ’ इत्यत्र “नपुंसकाच्च”  
इत्यौकारस्य शीत्वे शस्येत्संज्ञायां लोपे च ‘ज्ञान ई’ इति जाते “यचि भम्” इति  
भ्रमसंज्ञायां “यस्येति च” इति अकारलोपे प्राप्ते “औडः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः” इति  
निषिद्धे “आद्गुणः” इति गुणे च कृते ‘ज्ञाने’ इति रूपम् । जशसोः शिरिति । “स्वमो-  
र्नपुंसकात्” इत्यतो नपुंसकादित्यनुवर्तते, तदाह—क्लीबादिति । उक्तसंज्ञमिति ।  
सर्वनामस्थानसंज्ञकमित्यर्थः । नपुंसकस्य झलच इति । झल् च अच्चेति समाहारद्वन्द्वः ।  
तेन च अङ्गस्येत्यधिकृतं विशेष्यते । तदन्तर्विधिः । “इदितो नुम् धातोः” इत्यतो नुमि-  
त्यनुवर्तते । “उगिदचाम्” इत्यतः सर्वनामस्थाने इत्यनुवर्तते । तदाह—झलन्तेति । मिद-  
च इति । मकारः इत् यस्य सः मित्, अन्त्यादच्चः परो भवतीत्यर्थः । ज्ञानानि । ‘ज्ञान +  
जस्’ इत्यत्र “जशसोः शिः” इत्यनेकाल्वाजसः स्थाने शित्वे कृते “शि सर्वनामस्था-  
नम्” इति ‘शि’ इत्यङ्गस्य सर्वनामस्थानसंज्ञायां “नपुंसकस्य झलचः” इति नुमि “मि-  
दचोऽन्त्यात्परः” इति योगेनान्त्याज् रूपस्य नस्यान्त्यावयवीभूते उकारमकारयोरि-  
त्संज्ञायां लोपे च ‘ज्ञानन् शि’ इति जाते शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते “सर्वनामस्था-  
ने चाऽसम्बुद्धौ” इतिनान्तोपधायाः दीर्घत्वे ‘ज्ञानानि’ इति । पुनस्तद्धिति ।  
अम्-औट-कस्सु-ज्ञानम्, ज्ञाने, ज्ञानानि, इति क्रमेण रूपाणीत्यर्थः । अद्ङितरादिभ्यः

१।२५। एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरद्वादेशः स्यात् ॥ टेः ६।४।१४३ । इति मस्य  
टेलोपः । कतरत्, कतरे, कतराणि । हे कतरत् । शेषं पुंवत् । एवं कतमत् इतरत् अन्यत्  
अन्यतरत् । अन्यतमस्य त्वन्यतममित्येव । (एकतरात्प्रतिषेधो वक्तव्यः) । एकतरम्  
ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य १।२।४७। अजन्तस्येत्येव । श्रीपम्, ज्ञानवत् । द्वे २ ।  
श्रीणि २ । स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३। लुक् स्यात् । वारि ॥ इकोऽचि विभक्तौ ७।

इति । अद्ङ् डतरादिभ्य इति छेदः । डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर इति डतरादयः  
सर्वादिगणपठिताः । “स्वमोर्नपुंसकात्” इति सूत्रमनुवर्तते, तदाह—एभ्य इत्यादिना ।  
येरिति । “अङ्गोपोऽनः” इत्यस्माङ्गोप इति “तिविंशतेर्दिति” इत्यतो द्वितीति चानुवर्त-  
ते । भस्येत्यधिकृतम् । तदाह—द्वितीत्यादिना । कतरत् कतरद् । ‘कतर सु’ अत्र “अद्ङ्ङ-  
तरादिभ्यः पञ्चभ्यः” इति ‘सु’ इत्यस्य स्थाने अद्ङि कृते ‘कतर + अद्ङ्’ इति जाते  
“हलन्त्यम्” इति ङस्येत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे च ‘कतर + अद्’ इति भूते  
“यचि भम्” इति भसंज्ञायां “टेः” इति टिसञ्ज्ञकस्य रेफोत्तरवर्त्यकारस्य लोपे मिळि-  
त्वा ‘कतरद्’ इति, अत्र “वाऽवसाने” इति विकल्पेन चत्वं ‘कतरत्’ इति च रूपम् ।  
औ-जसोः—कतरे, कतराणि, कतरशब्दात् अम्-औट्-शस्सु पूर्ववत् कतरत्-  
कतरद्, कतरे, कतराणि । हे कतरत् इति । ‘कतर + सु’ इति स्थिते “एकवचनं सम्बुद्धिः”  
इति सम्बुद्धिसंज्ञायाम् ‘अद्ङ्ङतरादिभ्यः पञ्चभ्यः’ इति सु-इत्यस्य स्थाने अद्ङादे-  
रे कृते ङकारस्येत्संज्ञायां लोपे च भसंज्ञायां टिलोपे च कृते ‘कतर-अत्’ अत्र अद्  
ह्रस्वान्तं तदङ्गं न, यच्चाङ्गं—‘कतर’ इति तद् ह्रस्वान्तं न । इति न “एङ्हस्वात्सम्बुद्धेः”  
इति तलोपे इति भावः । तदाह—हे कतरद् इति । शेषं पुंवदिति । सर्ववदित्यर्थः । एवं  
कतमदिति । अस्य डतमन्तत्वादिति भावः । अन्यतमस्येति । तस्याव्युत्पन्नप्रातिपदिकत्वेन  
कृतेमप्रत्ययान्तत्वामावेन तत्राद्वादेशो नेत्यर्थः । “एकाच्च प्राचाम्” इति डतरन्तादेक-  
तरशब्दात् स्वमोरद्वादेशे प्राप्ते आह—एकतरादित्यादिना । एकतरशब्दात्परयोः स्वमो-  
रद्वादेशप्रतिषेधो वक्तव्यः इत्यर्थः । ह्रस्वो नपुंसके । इह ह्रस्वभ्रुत्योपस्थितेन अर्च-  
इत्यनेन प्रातिपदिकविशेषणात्तदन्तविधिरित्याह—प्रजन्तस्येति । श्रीपमिति । “श्रीपा सु”  
अत्र “ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य” इति ह्रस्वत्वे “अतोऽम्” इति सोरमि “अग्निं  
पूर्वः” इति पूर्वरूपैकादेशे ‘श्रीपम्’ इति रूपम् । ज्ञानवदिति । ह्रस्वविधानात् दीर्घान्त-  
त्वप्रयुक्तो न कश्चिद्विशेष इति भावः । जश्शसोः शिकृते श्रीपाणीति रूपम् । श्रीपेणं,  
श्रीपाय, श्रीपात्, इत्यादि । द्वे । द्वि औ’ अत्र “त्यदादीनामः” इत्यकारान्तादेशे  
“नपुंसकाच्च” इति ‘औ’ इत्यस्य स्थाने श्यादेशे शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते “आद्-  
गुणः” इति गुणे कृते ‘ह्र’ इति रूपम् । त्रीणीति । त्रिशब्दात् जसि कृते “जश्शसोः  
क्षिः” इति जसः स्थाने श्यादेशे कृते “क्षि सर्वनामस्थानम्” इति सर्वनामस्थानसंज्ञा-  
यां शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते “नपुंसकस्य ङल्यचः” इति नुसानामे त्रिशब्दान्ता-



१।७३। इगन्तस्य क्लीबस्य नुमचि विभक्तौ । वारिणी वारीण । “न लुमता” इत्यस्यानित्यत्वात्पक्षे संबुद्धिनिमित्तो गुणः । हे वारे, हे वारि । “आडो ना” वारिणा । “वेडिति” इति गुणे प्राप्ते (वृद्धयौत्वतज्ज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन) । वारिणे, वारिभ्याम्, वारिणः, वारिणोः । नुमचिरेति नुट् । वारीणाम् । वारिणि । हलादौ

दचः परे जाते उमोलोपे “त्रिन् इ” इति जाते “सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ” इति नान्तोपधायाः दीर्घे कृते “अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि” इति णत्वे “त्रीणि” इति रूपम् । स्वमोर्नपुंसकादिति । अत्र “षड्भ्यो लुक्” इत्यतो लुगित्यनुवर्तते । वारि । ‘वारि + सु’ इत्यत्र “स्वमोर्नपुंसकात्” इति सोल्लोपे ‘वारि’ इति रूपम् । इकोऽञ्चोति । “इदितो नुम् धातोः” इत्यतो नुमित्यनुवर्तते, “नपुंसकस्य झलचः” इत्यतो नपुंसकस्येत्यनुवर्तते । अङ्गस्येत्यधिकृतम् इको विशेष्यते, तदन्तविधिस्तदाह—इगन्तस्येत्यादिना । ‘वारिणी’ । ‘वारि + औ’ इत्यत्र “नपुंसकाच्च” इत्यौकारस्य शीत्वे ञस्य लोपे च कृते ‘वारि ई’ इति जाते “इकोऽञ्चि विभक्तौ” इति नुमि कृते उमि गते ‘वारिन् ई’ इति जाते “अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि” इति नस्य णत्वे ‘वारिणी’ इति रूपम् । वारीणि । ‘वारि + जस्’ इत्यत्र “जश्शसोः शिः” इति जसः स्थाने शीत्वे “शि सर्वनामस्थानम्” इति शीत्त्वस्य सर्वनामस्थानत्वे “लशक्वतद्धिते” इति शस्येत्यसंज्ञकत्वे “तस्य लोपः” इति लोपे “इकोऽञ्चि विभक्तौ” इति नुमि उकारमकारयोरित्संज्ञकत्वे लोपे च “सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ” इति नान्तोपधाया दीर्घत्वे “अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि” इति णत्वे च कृते ‘वारीणि’ इति रूपम् । न । लुमतेत्यस्यानित्यत्वादिति । अत्र “इकोऽञ्चि विभक्तौ” इत्यत्राज्ग्रहणं ज्ञापकम् । तथाहि—हलादिषु भ्यामादिषु सत्यपि नुमि “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति तस्य लोपसम्भवात्, सम्बुद्धौ तु लुका लुसतया प्रत्ययलङ्घनाभावेन तत्र नुमः प्राप्तेरभावाच्च अचीति व्यवस्य सत् “न लुमताङ्गस्य” इत्यस्यानित्यतां ज्ञापयतीति भावः । हे वारे—हे वारि । ‘हे वारि सु’ इत्यत्र “स्वमोर्नपुंसकात्” इति सोल्लोपे ‘हे वारि’ इति । “न लुमताङ्गस्य” इत्यस्यानित्यत्वेन “प्रत्ययलोपे प्रत्ययलङ्घनम्” इत्यनेन प्रत्ययलङ्घनत्वात्पक्षे “इस्यस्य गुणः” इति गुणे “वृद्धस्वात्सम्बुद्धेः” इति सोल्लोपे ‘हे वारे’ इति । आडो नेति । रूपे विशेषाभावेऽपि नुमपेक्षया वरत्वेन ‘ना’भावस्यैव न्याय्यत्वादिति भावः । वारिणेति । ‘वारि + ट्’ अत्र “शेषो व्यसक्ति” इति धिसंज्ञायाम् “आडो नाऽस्मिनाम्” इति टास्थाने नादेहे णत्वे च विहिते ‘वारिणा’ इति रूपम् । वृद्धयौत्वेति । अतिसस्विनीत्यत्र “सक्युरसंबुद्धौ” इति निहङ्गावाङ्मुनिः प्राप्ता, वारिणीत्यत्र तु “अच्च घेः” इत्यौषम् । प्रियञ्छेऽनुनीत्वादौ वृज्वद्भावः प्राप्ता । वारिण इत्यत्र “वेडिति” इति गुणः प्राप्ता । तान् सर्वान् पूर्वविप्रतिषेधेन वारिण्यनुमित्यर्थः । वारिणे । ‘वारि + लो’ अत्र अनुबन्धलोपे चित्वात् “वेडिति” इति गुणे प्राप्ते “वृद्धयौत्वतज्ज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन” इति पूर्वविप्रतिषेधस्य व्यवहारः ।

हरिवत् ॥ अस्थिदधिसक्थ्यक्षामनकुदात्तः ७।१।७५। एषामनङ् स्यात्  
 दादावचि ॥ अहोपोऽनः ६।४।१३४। अज्ञावयवोऽसर्वनामस्थानयजदित्वा-  
 दिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपः । दध्ना । दध्ने । दध्नः । दध्नोः ॥ विभाषा  
 डिश्योः ६।४।१३६। अज्ञावयवोऽसर्वनामस्थानयजदित्वाद्विपरो योऽन् तस्याकारस्य  
 लोपो वा स्यात् डिश्योः परयोः । दध्नि-दधनि । शेषं वारिवत् । एवमस्थिसक्थ्य-  
 क्षि । सुधि, सुधिनी, सुधीनि । हे सुधे-हे सुधि । तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुं-

“इकोऽचि विभक्तौ” इति नुमि णत्वे च कृते ‘वारिणे’ इति रूपम् । वारिण इति ।  
 कसिक्तसोर्गुणं बाधित्वा नुमि णत्वे रूपम् । वारिणोः । ‘वारि + ओस्’ अत्र यणं बाधित्वा  
 नुमि णत्वे च रूपम् । वारीणामिति । ‘वारि + आम्’ अत्र परत्वान्नुटं बाधित्वा नुमि  
 प्राप्ते “नुमचिरवृज्वज्ञवेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन” इति पूर्वविप्रतिषेधेन नुटि “नामि”  
 इति दीर्घे णत्वे च कृते ‘वारीणाम्’ इति रूपम् । वारिणीति । ‘वारि + इ’ इति स्थिते  
 अत्र “अच्च वेः” इत्यौत्वं परमपि बाधित्वा “वृद्धौत्वं” इति पूर्वविप्रतिषेधान्नुमि  
 उकारभकारयोरित्सम्बन्धकत्वे लोपे नस्य णत्वे च कृते मिलित्वा ‘वारिणि’ इति रूपम् ।  
 अस्थिदधीति । तृतीयादिष्विति, अचीति चानुवर्तते । तदाह—एषामिति । अहोपो न  
 इति । ‘भस्य’ इत्यनेनाक्षिः प्रत्ययविशेषः, अङ्गश्लेति द्वयमनो विशेषणम् । अन् तु  
 अकारस्येयमिप्रेत्य व्याचष्टे—अज्ञावयव इत्यादिना । दध्नेति । अस्थि, दधि, सक्थि,  
 अक्षि, एतेषां प्रथमाद्वितीययोर्वारिवद्रूपाणि । तृतीयायान्तु—‘दधि + आ’ इति स्थिते  
 “अस्थिदधिसक्थ्यक्षामनकुदात्तः” इति दधिसक्थ्येकारस्यानङि कृते अनुबन्धलोपे  
 च ‘दधन् + आ’ इति जाते “यचि भस्” इति भसञ्ज्ञायाम् “अहोपोऽनः” इत्यनोऽ-  
 कारस्य लोपे कृते सर्वस्मिन् संयुक्ते च सति ‘दध्ना’ इति रूपम् । दध्ने । ‘दधि + ए’  
 अत्र “अस्थिदधिसक्थ्यक्षामनकुदात्तः” इत्यनङि क्त्वादन्त्यावयवे जाते अकोर्लोपे  
 “अहोपोऽनः” इति अनोऽकारस्य लोपे मिलित्वा ‘दध्ने’ इति रूपम् । अनयैव रीत्या  
 अज्ञादौ प्रत्यये परे अनङि अहोपो बोध्यः । विभाषा डिश्योरिति । “अहोपोऽनः” इत्य-  
 नुवर्तते । अङ्गस्येति भस्येति चाधिकृतम् । भस्येत्यनेन च असर्वनामस्थानयजदित्वा-  
 दिपरत्वं पूर्ववदनो लभ्यते । तदाह—अज्ञावयव इत्यादिना । डिश्योरिति । डिश्च शी चेति  
 विग्रहः । “नपुंसकाच्च” इति विहित एवात्र शी गृह्यते । न तु जरशसोरितः, तस्मिन्  
 परे भत्वास्तम्भत्वात् । दध्नि, दधनि । ‘दधि + डि’ अत्र “अस्थिदधि” इत्यनङि “विभाषा  
 डिश्योः” इत्यनेन अन्त्यम्भिनोऽङ्कारस्य लोपे ‘दध्नि’ इति । लोपाभावकत्वे ‘दधधि’  
 इति रूपम् । शेषं वारिवदिति । प्रथमाद्वितीययोः भ्यामादौ हलि च कारिवदित्यर्थः ।  
 सुधि । ‘सुधी + सु’ अत्र “इत्यो नपुंसके प्रातिपदिकस्य” इति इत्यत्वे “स्वमोर्नपुंस-  
 कस्य” इति लोकोपे ‘सुधि’ इति रूपम् । सुधिनी । ‘सुधी + औ’ अत्र “इत्यो नपुंसके  
 प्रातिपदिकस्य” इति इत्यत्वे “नपुंसकाच्च” इति लोकारस्य लोपे कस्येत्यङ्गात्

वद्गालवस्य ७१।७४। प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंसकमिगन्तं क्लीबं पुंवत् वा यदावचि । सुधिया, सुधिनेत्यादि । मधु, मधुनी । मधूनि । हे मधो, हे मधु, सुलु, सुलुनी, सुलूनि । सुल्वा सुलुनेत्यादि । धातृ, धातृणी, धातृणि । धातृणाम् । हे धातः

लोपे च 'सुधि ई' इति जाते "इकोऽचि विभक्तौ" इति नुमि च विहिते 'सुधिनी' इति रूपम् । सुधीनि । 'सुधी + जस्' अत्र क्लीबत्वाद्भ्रस्वे विहिते "जश्शसोः शिः" इति जसः स्थाने शित्वे "शि सर्वनामस्थानम्" इति शोः सर्वनामस्थानत्वे शस्य लोपे "इकोऽचि विभक्तौ" इति नुमि, उकारमकारयोरित्संज्ञकत्वे लोपे च "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ" इति नान्तोपधाया दीर्घत्वे संयोगे च कृते 'सुधीनि' इति रूपम् । तृतीयादिष्विति । भाषितः पुमान् येन प्रवृत्तिनिमित्तेन तत् भाषितपुंसकं तदस्यास्तीति अर्थ आद्यच् । शब्दस्वरूपम्, विशेष्यम् । पुंस्त्वे नपुंसकत्वे च एकप्रवृत्तिनिमित्तकमिति यावत् । "इकोऽचि विभक्तौ" इत्यतः इकोऽचीति "नपुंसकस्य झलचः" इत्यतो नपुंसकस्येति चानुवर्तते । षष्ठी च प्रथमया विपरिणम्यते । तदाह—प्रवृत्तिनिमित्तैक्य इत्यादिना । सुधिया, सुधिनेति । सुध्यातृत्वस्य शोभनज्ञानवत्त्वस्य वा प्रवृत्तिनिमित्तस्य पुंसि नपुंसके च एकत्वात् पुंवत्वविकल्पः । तेन पुंवद्भावपक्षे अजादौ विभक्तौ परे "अचि श्नुधातु" इतीयङि 'सुधिया' इति । पुंवद्भावभावपक्षे—नुमि 'सुधिना' इति । मधु । मधु + सु इत्यत्र "स्वमोर्नपुंसकात्" इति सोर्लोपे 'मधु' इति । मधुनी । 'मधु + औ' अत्र "नपुंसकाच्च" इत्यौकारस्य शीत्वे अनुबन्धलोपे "इकोऽचि विभक्तौ" इति नुमि; उमि गते संयोगे च कृते 'मधुनी' इति रूपम् । मधूनि । 'मधु + जस्' इत्यत्र "जश्शसोः शिः" इति जसः शीत्वे "शि सर्वनामस्थानम्" इति शोः सर्वनामस्थानत्वे "इकोऽचि विभक्तौ" इति नुमि उमि गते "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ" इति नान्तस्योपधायाः दीर्घत्वे कृते च संयोगे 'मधूनि' इति रूपम् । हे मधो—हे मधु । अत्र "न लुमन्ताङ्गस्य" इति निषेधस्यानित्यत्वात्पक्षे सम्बुद्धिनिमित्तको गुणः । तदभावे च द्वितीयं रूपमिति स्पष्टं वारिशब्दनिरूपणे उक्तम् । सुलु । सुलु लुनातीति क्तिप् । "ह्रस्वो नपुंसके" इति ह्रस्वः । 'सुलु + सु' अत्र "स्वमोर्नपुंसकात्" इति सोर्लोपे 'सुलु' इति । सुलुनी । 'सुलु + औ' अत्र "नपुंसकाच्च" इति औस्थाने स्यादेशे अनुबन्धलोपे "इकोऽचि विभक्तौ" इति नुमि उमि गते मिलित्वा 'सुलुनी' इति । सुलूनि । 'सुलु + जस्' अत्र "जश्शसोः शिः" इति जसः स्थाने 'शि' आदेशे "शि सर्वनामस्थानम्" इति सर्वनामस्थानसंज्ञकत्वे "नपुंसकस्य झलचः" इति नुमि मित्वादन्त्यादयः परे सति उमि गते "सर्वनामस्थाने" इति दीर्घे 'सुलूनि' इति । सुल्वा, सुलुनेत्यादि । शोभनलवनकर्तृत्वं प्रवृत्तिनिमित्तमेकमिति पुंवत्वविकल्पः । पुंवत्वे ह्रस्वाभावेनाधिवात् नामावो न, नुमभावश्च । "ओः सुपि" इति यण् सुल्वा । पुंवत्वाभावपक्षे तु यण् बाधित्वा नुम् । 'सुलुना' इति । केंप्रवृत्तिषु तु पुंवत्त्वाभावे "वृधौत्व" इति

हे धातु । एवं ज्ञात्रादयः ॥ एच इग्रस्वादेशे १।१।४८। आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु मध्ये एच इगेव स्यात् । प्रथु, प्रथुनी, प्रथूनि । प्रथुनेत्यादि । प्ररे, प्ररीणि, प्ररीणि, प्ररीणा । एकदेशविकृतमनन्यवत् । प्रारभ्याम् । प्रारभिः । प्ररीणाम् । सुनु, सुनुनी, सुनूनि । सुनुनेत्यादि । इत्यजन्ता नपुंसकलिङ्गाः ॥

पूर्वविप्रतिषेधेन नुमि सुलुने, पुंवत्वे तु सुल्वे, ङसिङ्सोः—सुलुनः, सुल्वः, ओसि—सुलुनोः, सुल्वोः । आभि—सुलुनाम्, सुल्वाम् । ङौ—सुलुनि, सुल्वि, इति बोध्यम् । धातु । ‘धातु + सु’ इत्यत्र “स्वमोर्नपुंसकात्” इति सोर्लोपि ‘धातु’ इति । धातृणी । ‘धातु + औ’ इत्यत्र “नपुंसकाच्च” इत्यौकारस्य शीत्वे अनुबन्धलोपे “इकोचि विभक्तौ” इति नुमि उमि गते णत्वे च कृते ‘धातृणी’ इति । धातृणि । ‘धातु + जेस्’ अत्र “जशः सोः शिः” इति जसः शित्वे “शि सर्वनामस्थानम्” इति शेः सर्वनामस्थानत्वे शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “नपुंसकस्य झलचः” इति नुमि उमि गते सति “सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ” इति नान्तस्योपधाया दीर्घत्वे “ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्” इति णत्वे ‘धातृणि’ इति रूपम् । हे धातः, हे धातु । हे ‘धातु + सु’ अत्र “स्वमोर्नपुंसकात्” इति सोर्लोपि “न लुमताङ्गस्य” इत्यस्यानित्यत्वात्प्रत्ययलक्षणे सम्बुद्धिनिमित्तकगुणे अकारे स्पर्धे च जाते रेफस्य विसर्गे ‘हे धातः’ इति । पच्चे—‘हे धातु’ इति । धारणकर्तृत्वरूपप्रवृत्तिनिमित्तक्यात् टादावचि पुंवत्त्वविकल्पः । तेन धात्रा-धातृणा । धात्रे-धातृणे । धातुः-धातृणः । धात्रोः-धातृणोः । “नुमचिर” इति नुट् । धातृणाम् । धातरि-धातृणि । एच इगिति । आदिश्यत इत्यादेशः, ह्रस्वश्चासावादेशश्च ह्रस्वादेशः, निर्धारणे सप्तमी । जातावेकवचनमतो व्याचष्टे—आदिश्यमानेष्वित्यादिना । एचां पूर्वभागोऽकारसदृशः, उत्तरस्तु इवर्णोऽवर्णसदृशस्तत्रोभयान्तरतमस्य ह्रस्वस्याभावात्पर्यायेण अकारः स्यादिकारोकारौ च स्वाताम्, तथा च मा कदाप्यकारो भूदिति नियमार्थेयं परिभाषेत्यभिप्रेत्याह—शेवेति । प्रथु । प्रकृष्टा द्यौः यस्येति बहुव्रीहौ प्रद्योशब्दस्य “ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य” इति ह्रस्वे “एच इग्रस्वादेशे” इति एजरूपस्यौकारस्योकारे कृते ‘प्रद्यु + सु’ इति स्थिते “स्वमोर्नपुंसकात्” इति सोर्लोपि ‘प्रद्यु’ इति रूपम् । प्रद्युनेत्यादि । प्रद्युस्तब्दस्तु उदन्तो नपुंसके । तथाच पुंसि प्रद्योशब्दस्य भाषितपुंस्कत्वेऽपि नपुंसके प्रद्युस्तब्दस्य तदपेक्षया भिन्नत्वेन भाषितपुंस्कत्वाभावाच्च पुंवत्वमिति बोध्यम् । शेषं मधुवत् । प्ररि । प्रकृष्टः राः घनं यस्य इति बहुव्रीहौ प्ररैशब्दः । तस्य नपुंसकह्रस्वत्वेन इकारः । सुटि हलादौ विभक्तौ च वारिवत् । सोर्लुप्तत्वात् “रायो हलि” इत्यात्वं न । हलादौ तु ‘एकदेशविकृतमनन्यवत्’ इति यथा छिन्नपुच्छे शुनि नाशो न गदंभः इति तथैव प्ररैशब्दस्य इग्रूपेण विकृतत्वेऽपि “रायो हलि” इत्याकारादेशे विहिते—प्रारभ्याम्, प्रारभिरित्यादि । सुनु । सु-शोभना, शौर्यस्येति विग्रहे बहुव्रीहौ “ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य” इति औकारस्य “एच इग्रस्वादेशे” इति परिभाषया उकारे विहिते ‘सुनु + सु’

## ॥ अथ हलन्तपुलिङ्गप्रकरणम् ॥

हो ढः ८।२।३१। हस्य ढः स्यात्फल पदान्ते च । लिट्-लिङ् लिहौ लिहः । लिङ्भ्याम् । लिट्सु लिट्सु ॥ दादेर्धातोर्घः ८।२।३२। उपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः फलि पदान्ते च ॥ एकाचो बशो भष् भषन्तस्य रध्वोः ८।२।३७। धात्ववयवस्यैकाचो भषन्तस्य बशो भष् से ध्वे पदान्ते च । धुक् धुग् दुहौ दुहः । धुग्भ्याम् । धुत्तु ॥ वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ८।२।३३। एषां हस्य वा घो फलि पदान्ते च ।

इति स्थिते “स्वमोनपुंसकात्” इति सोर्लोपे ‘सुनु’ इति रूपम् । शेषं मधुवत् ॥ इत्यजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ।

हो ढ इति । “झलो झलि” “पदस्य” “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इत्यतः क्रमेण झकीति, पदस्य, अन्ते, इति चानुवर्तते, तदाह—फल पदान्ते इति । झलि परतः पदान्ते वा विद्यमानस्य हस्येत्यर्थः । लिट् लिङ् । ‘लिह-आस्वादने’ क्तिप् । कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायाम् ‘लिङ् + सु’ इति स्थिते उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “हलङ्घाब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्वपृक्तं हल्” इति सूत्रेण “हो ढः” इति हस्य ढत्वे “झलां जशोऽन्ते” इति ढस्य ढत्वे “वाक्साने” इति चत्वे च कृते ‘लिट्’ इति । चर्त्वाभावपक्षे ‘लिङ्’ इति । लिङ्भ्यामिति । ‘लिङ् + भ्याम्’ अत्र “हो ढः” इति हस्य ढत्वे “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति पदत्वात् “झलां जशोऽन्ते” इति ढस्य ढत्वे ‘लिङ्भ्याम्’ इति । लिट्सु । ‘लिङ् + सुप्’ अत्र पकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “हो ढः” इति हस्य ढत्वे “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति पदसंज्ञायां “झलां जशोऽन्ते” इति ढस्य ढत्वे “ढः सि धुट्” इति सस्य धुडागमे वित्वादाद्यावयवे उकारटकारयोर्निघृत्तौ “स्वरि च” इति चत्वे पुनश्च उकारस्य “स्वरि च” इति चत्वे च ‘लिट्सु’ इति रूपम् । धुडागमामावे ‘लिट्सु’ इति । दादेर्धातोरिति । धातोरित्वावर्तते । तत्रैकमतिरिच्यमानमुपदेशकालं लक्ष्यतीत्याशयेनाह—उपदेश इति । एकाचो बश इति । “दादेर्धातोः” इत्यतो धातोरित्त्ववयवषष्ठ्यन्तमनुवर्तते । तच्च भषन्तस्येनाभ्येति । पदस्येत्पृक्तम् । “स्कोः संयोगाद्योः” इत्यतोऽन्ते चेत्यनुवर्तते । तदाह—धातोरवयव इत्यादिना । धुक्, धुग् । ‘दुह् + प्रपूरणे’ क्तिप् । क्तिवन्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सत्त्वां सावागते उकारलोपे ‘दुह् + सु’ अत्र “हलङ्घाब्भ्यो” इति सूत्रेण हस्य “हो ढः” इति ढत्वे प्राप्ते तं बाधित्वा “दादेर्धातोर्घः” इति ढत्वे “एकाचो बशो भष् भषन्तस्य रध्वोः” इति ढस्य ढत्वे “धुक्” इति जाते तत्र “झलां जशोऽन्ते” इति जरत्वेन गकारे “वाक्साने” इति विकल्पेन चत्वे “धुक्-धुग्” इति भक्तः । धुग्भ्यामिति । ‘दुह् + भ्याम्’ अत्र “दादेर्धातोर्घः” इति हस्य ढत्वे “एकाचो बशो भष्” इति भष्यावेन उकारस्य चकारे ‘धुक् + भ्याम्’ इति जाते “झलां जशोऽन्ते” इति चकारस्य चकारे ‘धुग्भ्याम्’ इति । धुत्तु । ‘दुह् + सुप्’ अत्र पकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “दादेर्धातोर्घः” इति ढत्वे भष्यावे जरत्वे च कृते ‘धुग् + सु’ इति जाते तत्र “स्वरि च” इति चत्वे

ध्रुक् ध्रुग् ध्रुट्, ध्रुह् ध्रुहौ ध्रुहः । ध्रुग्भ्याम् ध्रुह्भ्याम् । ध्रुक्षु ध्रुट्सु ध्रुट्सु । एवं  
मुह् ॥ धात्वादेः षः सः ६।१।६४। स्नुट् स्नुह् स्नुक् स्नुग् । एवं स्निह् ॥ इत्यर्थः  
संप्रसारणम् १।१।४५। यणः स्थाने प्रयुज्यमानो य इक् स संप्रसारणसंज्ञः स्यात् ॥

“आदेशप्रत्यययोः” इति सोः सस्य षत्वे कषसंयोगेन ‘ह’ इति जाते ‘धुह्’ इति रूपम् । वा  
द्रुहेति । ‘दादेः’ इत्यतो घ इत्यनुवर्तते । झलीति, पदस्येति, अन्ते इति पूर्ववदनुवर्तते, तदाह-  
एवमिति । ध्रुक्-ध्रुग्, ध्रुट्-ध्रुह् । ‘द्रुह जिघांसायाम्’ अस्मात् किपि तस्य सर्वापहारलोपे  
कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सावागते उकारलोपे ‘द्रुह् + स्’ इति स्थिते “हल्ङ्वा-  
ङ्म्यः०” इति सलोपे “हो ङः” इति ङत्वे प्राप्ते तं बाधित्वा “दादेर्जातोर्घः” इति षत्वे  
प्राप्ते तं बाधित्वा “वा द्रुहमुहण्युहणिहाम्” इत्यनेन विकल्पेन हस्य षत्वे “एकाचो  
वक्षो भष्०” इति भष्भावेन दकारस्य धकारे जाते षस्य च “झलां जशोऽन्ते” इति  
गत्वे “वावसाने” इति विकल्पेन चत्वे ‘ध्रक्’ इति । चत्वाभावपक्षे ‘ध्रुग्’ इति रूपम् ।  
वत्वाभावपक्षे—“हो ङः” इति ङत्वे भष्भावे हस्य जरत्वेन ङत्वे तस्य विकल्पेन चत्वे  
‘ध्रुट्’ इति, चत्वाभावपक्षे ध्रुह् इति रूपम् । ध्रुग्भ्याम्, ध्रुह्भ्याम् । ‘द्रुह-भ्याम्’  
अत्र “वा द्रुहमुहण्युहणिहाम्” इति षत्वे भष्भावे षस्य जरत्वे च कृते ‘ध्रुग्भ्याम्’  
इति । वत्वाभावे “हो ङः” इति हस्य ङत्वे भष्भावे हस्य जरत्वे च कृते ‘ध्रुह्भ्याम्’  
इति । ध्रुह् । ‘द्रुह् + सु’ अत्र “वा द्रुहमुह०” इति षत्वे भष्भावे “आदेशप्रत्यययोः”  
इति षत्वे “खरि च” इति चत्वे ‘ध्रुह्’ इति । ध्रुट्सु । वत्वाभावपक्षे “हो ङः” इति  
ङत्वे भष्भावे हस्य जरत्वे “ङः सि ध्रुट्” इति ध्रुटि चत्वे हस्य चत्वे च ‘ध्रुट्सु’  
इति रूपम् । ध्रुट्सु । ध्रुहभावपक्षे—हस्य ङः, भष्भावः, हस्य जरत्वेन ङः, तस्य चत्वेन  
ङः ‘ध्रुट्सु’ इति रूपम् । एवमिति । भष्भाववर्जमिति शेषः । मुह् इति । सौ-मुक्,  
मुग्, मुट् मुह् । मुग्भ्याम्, मुह्भ्याम् । मुक्षु, मुट्सु मुट्सु । धात्वादेरिति । धातुग्रहणं  
किम् ? षह् । आदेः किम् ? लषति । स्नुट् स्नुह् । ण्यह् + उग्निरणे, अस्मात्किपि ।  
कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सावागते “धात्वादेः षः सः” इति षस्य सत्वे “हल्-  
ङ्वाङ्म्यः०” इति सलोपे “वाद्रुहमुह०” इत्यादिना षत्वे तस्य जरत्वे “वावसाने” इति  
वा चत्वं ‘स्नुक्’ इति । चत्वाभावे ‘स्नुग्’ इति रूपम् । “वाद्रुहमुहस्नुहस्निहाम्”  
इति विकल्पाभावे “हो ङः” इति ङत्वे तस्य जरत्वे विकल्पेन चत्वे  
‘स्नुट्’ इति । चत्वाभावपक्षे—‘स्नुह्’ इति । शेषं पूर्ववत् । विरवं वृत्तीत्यर्थे  
“मज्जो णिः” इत्यतो णिरित्यनुवृत्तौ “वहन्न” इति णिः । जकारः इत् ।  
वेर्लोपः । “जस उपधायाः” इति वृद्धिः । उपपदसमासः—‘विरववाह्’ इति रूपम् ।  
ततस्तोर्हल्ङ्वाविति लोपे “हो ङः” इति ङत्वे “वावसाने” इति चत्वं विकल्पेन विरववा-  
ह्, विरववाह्, विरववाहौ, विरववाहः । विरववाहं, विरववाहौ, इति सुटि रूपमिति  
सुगमत्वाद्दुष्येव जसादौ णि संप्रसारणसंज्ञां दर्शयति—इत्यर्थः संप्रसारणमिति ।

वाह ऊठ् ६।१।३२। भस्य वाहः संप्रसारणमूठ् ॥ संप्रसारणाच्च ६।१।१०८।  
 संप्रसारणादचि पूर्वरूपमेकादेशः । वृद्धेः । विश्वौहः इत्यादि ॥ चतुरनडुहोरामु-  
 दात्तः ७।१।६८ । अनयोराभ्यात्सर्वनामस्थाने परे स चोदात्तः ॥ सावनडुहः  
 ७।१।८२। अस्य नुम्यात्सौ परे । अनड्वान् । अमसम्बुद्धौ ७।१ ६६। हे अन-

यणः स्थाने इति । व्याख्यानात् स्थानार्थलाभः । सम्प्रसारणसंज्ञ इति । ततश्च “वसोः  
 सम्प्रसारणम्” “वचिस्त्वपियजादीनाम्” इत्यादौ सम्प्रसारणश्रतौ यणस्थानिक  
 ह्युपस्थितो भवति । तत्रान्तरतम्याद्यस्य इकारः, वकारस्य उकारः, रेफस्य ऋकारः,  
 लस्य लृकारः इति बोध्यम् । वाह ऊठ् । “भस्य” इत्यधिकृतम् । “वसोः सम्प्रसारणम्”  
 इत्यतः सम्प्रसारणमित्यनुवर्तते । तच्च ऊठ् इत्यनैनाच्वेति । तदाह—भस्येत्यादिना ।  
 सम्प्रसारणाच्चेति । “इको यणचि” इत्यतः अचीति “अमि पूर्वः” इत्यतः पूर्व इति  
 चानुवर्तते । “एकः पूर्वपरयोः” इत्यधिकृतम् । तदाह—सम्प्रसारणादित्यादिना । विश्वौह  
 इति । विश्ववाह् शस् अत्र शस्येत्संज्ञायां लोपे च “यचि भम्” इति भसंज्ञायाम्  
 “वाह ऊठ्” इति सम्प्रसारणे प्राप्ते किं नाम सम्प्रसारणम् ? “ह्यणः सम्प्रसारणम्”  
 इत्यनेन वरूपस्य यणः स्थाने उकाररूपे सम्प्रसारणे कृते ‘विश्व ऊ आह् अस्’ इति  
 जाते “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपैकादेशे विहिते ‘विश्व + ऊह् अस्’ इत्यवशिष्टे  
 “एत्येचत्यठ्सु” इति पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धौ संयोगे सस्य रुवे रस्य विसर्गे च कृते  
 ‘विश्वौहः’ इति रूपम् । इत्यादीति । विश्वौहा, विश्ववाड्भ्याम्, विश्ववाड्भिः, विश्व-  
 वाड्भ्यः । विश्वौहे । विश्वौहः । विश्वौहः । विश्वौहोः । विश्वौहाम् । विश्ववाट्सु-  
 विश्ववाट्सु । चतुरनडुहोः । “इतोऽत्मर्वनामस्थाने” इत्यतः सर्वनामस्थाने इत्यनुवर्तते  
 तदाह—सर्वनामस्थान इति । सावनडुह इति । “आच्छीनघोर्नुम्” इत्यतो नुमित्वनुव-  
 र्त्वाह—नुम् स्यादिति । अनड्वान् । अनडुह् + सु’ इत्यत्र “चतुरनडुहोरामुदात्तः” इत्याम्  
 प्राप्तः स क स्यादित्याशङ्क्याम् “मिदचोऽन्त्यात्परः” इति मित्त्वात् उकारोत्तरवर्त्यु-  
 कारात् परो जातः । एव सति अनडु आम् ह् सु इति जाते मकारस्येत्संज्ञायां लोपे च  
 ‘अनडु आह् सु इति भूते “सावनडुहः” नुमि उमि गते ‘अनडु आ न् ह् सु’ इति जाते  
 सोष्कारे गते सस्य “हल्ङ्यभ्यो०” इति लोपे “संयोगान्तस्य लोपः” इति हलोपे  
 “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति नलोपे प्राप्ते “पूर्वत्रासिद्धम्” इत्यनेन संयोगान्त-  
 स्य लोपस्य असिद्धत्वात् लोपे न जाते सति ङकारोत्तरवर्तिन उकारस्य यणि मिलित्वा  
 ‘अनड्वान्’ इति भवति । अमसम्बुद्धाविति । “चतुरनडुहोः” इत्यनुवर्तते इति भावः ।  
 हे अनड्वन् । हे अनडुह् + सु अत्र “अमसंबुद्धौ” इत्यामि मित्त्वादन्त्यादचः परे कृते  
 सस्येत्संज्ञायां लोपे च “सावनडुहः” इति नुमि मित्त्वादन्त्यादचः परे जाते उमि गते  
 सोष्कारे गते सस्य “हल्ङ्या”दिना लोपे हस्य “संयोगान्तस्य लोपः” इति लोपे  
 ङकारोत्तरवर्तिन उकारस्य यणि कृते ‘अनड्वान्’ इति रूपम् । अनड्वाही, अनड्वाहः ।

इत्, हे अनङ्वाहौ, हे अनङ्वाहः । अनङ्हुहः । अनङ्हुहा ॥ वसुसंमुखंस्वनङ्हु-  
हां दः ८२।७२। सान्तस्य वस्वन्तस्य संसादेव दः स्यात्पदान्ते । अनङ्हुङ्गामित्यादि ।  
सान्तेति किम् ? विद्वान् । पदान्तेति किम् ? सस्तम् । ध्वस्तम् ॥ सहः साडः सः  
८२।५६। साडरूपस्य सहः सस्य मूर्धन्यादेशः । तुराषाट्-तुराषाड्, तुरासाहौ,  
तुरासाहः । तुराषाड्भ्यामित्यादि ॥ दिव औत् ७।१।८५। दिविति प्रातिपदिकस्यौ-  
त्स्यात्सौ । सुद्यौः । सुदिवौ ॥ दिव उत् ६।१।१३। दिवोऽन्तादेश उकारः स्यात्प-  
दान्ते । सुद्युभ्यामित्यादि । चत्वारः । चतुरः । चतुभिः । चतुर्भ्यः ॥ षट्चतुर्भ्यश्च  
७।१।५५। एभ्य आभो नुडागमः ॥ रषाभ्यां नो णः समानपदे ८।५।१। अचो

अनङ्हु + औ' इत्यत्र "चतुरनङ्हुहोरासुदात्तः" इत्यामि मलोपे मित्वादभ्यादचः परे  
"इको यणचि" इति यणि संयोगे च कृते 'अनङ्वाहौ' इति रूपम् । एवम् जसि परे आमि  
कृते अनङ्वाहः । अनङ्वाहम्, अनङ्वाहौ । 'अनङ्हु + शस्, साकारस्येत्संज्ञायां लोपे  
च कृते सस्य ऋवे विसर्गं च कृते 'अनङ्हुहः' इति । वसुसंस्विति । वस्विति प्रत्ययः, तेन  
तदन्तं प्राहम् । "ससजुजो" इति सूत्रात्सेत्थनुवर्तते, तच्च वसोरेव विशेषणन्तदाह-  
सन्तवस्वन्तस्येति । अनङ्हुङ्गामित्यादि । 'अनङ्हु + भ्याम्' अत्र "स्वादिष्वसर्वनामस्था-  
ने" इति पदसंज्ञायां "वसुसंमुखंस्वनङ्हुहां दः" इति हस्य ढत्वे 'अनङ्हुङ्गाम्' इति ।  
इत्यादीति । आदिना—'अनङ्हुसु' एवं बोध्यम् । तथाहि—'अनङ्हु + सुप्' अत्र पकार-  
स्येत्संज्ञायां लोपे च "स्वादिषु" इति पदसंज्ञायां "वसुसंमुखंस्वनङ्हुहां दः" इति हस्य ढत्वे  
"खरिच" इति चत्वे 'अनङ्हुसु' इति रूपम् । साड इति कृतढत्वढत्ववृद्धेरनुकरणम् । तदाह-सा-  
डरूपस्येति । तुराषाट्, तुराषाड् । 'तुरासाह् + स्' अत्र "हल्ङ्याभ्यो" इति सलोपे "हो  
ङः" इति हस्य ढत्वे तस्य पदान्तत्वात् जश्त्वेन ढत्वे कृते "सहः साडः सः" इति साड-  
रूपस्य सकारस्य षत्वे ढस्य च "वावसाने" इत्यनेन वा चत्वे 'तुराषाट्' इति । चत्वा-  
भावपक्षे 'तुराषाड्' इति रूपम् । तुरासाहौ । अपदान्तत्वाच्च मूर्धन्य इति भावः । तुरा-  
षाड्भ्यामिति । 'तुरासाह् + भ्याम्' अत्र "स्वादिषु" इति पदान्तत्वात् "हो ङः"  
इति हस्य ढत्वे तस्य जश्त्वेन ढत्वे "सहः साडः सः" इति सस्य मूर्धन्यादेशे 'तुराषाड्-  
भ्याम्' इति रूपम् । इत्यादीति । तुराषाड्भिः । तुराषाड्भ्यः । तुरासाहे । तुरासाहः ।  
तुरासाहः । तुरासाहोः तुराषाट्सु । दिव औदिति । "सावनङ्हुहः" इत्यतः सौ इत्यनु-  
वर्तते । दिव इति षष्ठ्यन्तम् । "दिवेर्दिविः" इत्यौणादिकम् वा प्रातिपदिकं गृह्यते, न  
सु 'दिवु क्रीडादौ' इति धातुः, "निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य" इति न्यायात् ।  
तदाह—दिविति प्रातिपदिकस्येति । सुद्यौरिति । 'सुदिव् + सु' इत्यत्र "दिव औत्" इति  
वकारस्यौत्वे "इको यणचि" इति यणि सस्य ऋवे सस्य विसर्गत्वे च कृते 'सुद्यौः' इति  
रूपम् । सुदिवाविति । अजादिषु सुदिव्शब्दः अविकृत एवेति भावः । सुचभ्यामिति ।



रहाभ्यां द्वे षष्ठाध्द। अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य करो द्वे वा स्तः ।  
 चतुर्णाम् ॥ रोः सुपि षष्ठाध्द। रोरेष विसर्गः सुपि । चत्वरम्, षस्य द्वित्वे प्राप्ते ॥  
 शरोऽचि षष्ठाध्द। अचि परे शरो न द्वे स्तः । चतुर्षु ॥ मो मो धातोः षष्ठाध्द।  
 धातोर्मस्य नः पदान्ते । प्रशान् ॥ किमः कः अशः १०३। किमः कः स्याद्वि-  
 भक्तौ । कः, कौ, के इत्यादि ॥ शेषं सर्ववत् । इदमो मः अशः १०४। त्यादाद्यत्वाप-

‘सुविष् + भ्याम्’ अत्र “दिव उत्” इति वकारस्वोकारादेशे “इको यणचि” इति यणि  
 ‘सुबुभ्याम्’ इति रूपम् । श्यादीति । सुविषे, सुविचोः, सुविदाम् । सुबुषु ॥ चत्वारः ।  
 ‘चतुर + जस्’ अत्र “सुडनपुंसकस्य” इति सर्वनामस्थानसंज्ञायां “चतुस्नहुहोरासु-  
 षात्तः” इति भित्वादान्त्यादचः परे आमिमस्येत्संज्ञायां लोपे च “इको यणचि” इति यणि  
 ‘चत्वार + जस्’ इति जाते जस्य “चुट्” इतीत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे सस्य  
 रुवे रेफस्य विसर्गत्वे च ‘चत्वारः’ इति रूपम् । चतुरः । शसादौ सर्वनामस्थानत्वा-  
 भावाच्चायम् । षट्चतुर्भ्यश्चेति । “आमि सर्वनाम्नः” इत्यत आमीत्यनुवृत्तं षष्ठ्या विप-  
 रिजम्यते । षडिति षट्संज्ञकं गृह्यते । न तु षट्शब्दः, ‘कृत्रिमाकृत्रिमयोः’ इति न्यायात् ।  
 चतुर्णामिति । ‘चतुर + आम्’ इत्यत्र “षट्चतुर्भ्यश्च” इत्यामो नुदागमे टिच्चादाच्चावयवे  
 उटि मते ‘चतुर न आम्’ इति जाते “रषाभ्यां नो णः सम्मनषदे” इति णत्वे “अचो  
 रहाभ्यां द्वे” इति णस्य च द्वित्वे विहिते ‘चतुर्णाम्’ इति रूपम् । रोः सुपीति । खरी-  
 त्वनुवृत्तेः ससमीषहुवचनमेवात्र सुप् । “खरवसानयोः” इत्येव सिद्धे नियमार्थम् एवैव  
 किञ्चित्त्वाह—तेरेवेति । शरोऽचीति । “अचो रहाभ्यां द्वे” इति, “नादिन्याकोरो”  
 इत्यन्ते नेति चानुवर्तते । तदाह—अचि पर इत्यादिना । चतुर्षु । ‘चतुर + सुप्’ इत्यत्र  
 “खरवसानयोः” इति रस्य विसर्गत्वे प्राप्ते “रोः सुपि” इति निषेधे ‘चतुर + सुप्’ इति  
 जाते “आदेशप्रत्यययोः” इति सस्य णत्वे “अचो रहाभ्यां द्वे” इति षस्य द्वित्वे प्राप्ते  
 “शरोऽचि” इति षस्य द्वित्वाभावे पत्येत्संज्ञायां लोपे च ‘चतुर्षु’ इति रूपम् । मो नो  
 धातोर्मिति । म इति षष्ठ्यन्तं धातोरेत्वस्य विशेषणम् । तदन्तविधिः । ‘पदस्य’ इत्य-  
 चकृतम् । “रकोः संबोगाद्योः” इत्यतः अन्ते इत्यनुवर्तते । तदाह—धातोर्मस्येत्यादिना ॥  
 प्रशान् । ‘प्रशास् + सु’ इत्यत्र सोऽकारलोपे “हल्ङ्याभ्यः” इत्यादिना सलोपे “सुप्ति-  
 क्तं षदम्” इति षट्संज्ञायां “मो नो धातोः” इति मस्य नत्वे कृते ‘प्रशान्’ इति  
 रूपम् । ‘प्रशास् + भ्याम्’ इत्यत्र “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति षट्त्वे “मो नो  
 धातोः” इति मस्य नत्वे प्रशान्भ्याम् । प्रशान्भिः । प्रशामे । प्रशान्भ्यः । प्रशास्यः ।  
 प्रशामः । प्रशामोः । प्रशामाम् । प्रशामि । प्रशान्सु, प्रशान्सु । किमः कः स्याद्विभक्त्य-  
 ति । “अष्टम आ विभक्तौ” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । कः, कौ, के । ‘किम् + सु’  
 इत्यत्र “किमः कः” इति किमः कादेशे सोऽकारे गते सस्य रुवे रेफस्य विसर्गे च  
 ‘कः’ इति रूपम् । ‘किम् + कौ’ इत्यत्र “किमः कः” इति कादेशे सुदौ च कृतम् ।

कारः ॥ इदोऽय् पुंसि अ२।१११। इदम् इदोऽन् स्यात्सौ पुंसि । अन्म् । त्वदा-  
यत्वे ॥ अतो गुणे ६।१।६७। अपदान्तादतो गुणे पररूप्येकादेशः ॥ दक्ष अ२।  
१०६। इदमो दस्य मः स्याद्विभक्तौ । इमौ, इमे । त्वदादेः संबोधनं नास्तीत्युत्सर्गः ॥  
अनाप्यकः अ२।११२। अकारस्य इदम् इदोऽन् स्यादापि विभक्तौ । अपिति  
प्रत्याहारः । अनेन ॥ हलि लोपः अ२।११३। अकारस्येदम् इदो लोप अपि हलादौ ।

‘कौ’ इति । ‘किम् + जस्’ अत्र “किमः कः” इति कादेशे “जसः झी” इति जसः  
झीत्वे सस्येत्संज्ञायां लोपे च “आवृणुजः” इति गुणे कृते ‘के’ इति रूपम् । इत्यादीति ।  
कम्, कौ, कान् । केव, काम्यां, कै । कस्मै, काम्यां, केभ्यः । कस्मात्, काम्याम्,  
केभ्यः । कस्य, कयोः, केषाम् । कस्मिन्, कयोः, केषु । सर्ववदिति । सर्वनामसंज्ञकत्वा-  
दिति भावः । इदमो म इति । “तदोः सः सौ” इत्यतः सौ इत्यनुवर्तते । इदमो मस्व  
मः स्यात्सौ परे इत्यर्थः । ननु मस्व मविधानं व्यर्थमित्यत आह—त्यदाद्यस्वापवाद  
इति । इदोऽय् पुंसीति । इदं इति स्थान्नाष्टी । इदम् इत्यनुवर्तते । अवयवचष्टेया ।  
“कः सौ” इत्यतः सावित्यनुवर्तते । तदाह—इदम् इत्यादिना । ‘इदम् + स्’ इति स्थिते  
“त्यदादीनामः” इत्यकारे प्राप्ते तं बाधित्वा “इदमो मः” इत्यपवादभूते मकारे कृते  
“इदोऽय् पुंसि” इतीदम् इजाभस्य अपादेशे कृते यकारस्याऽकारेण सह संयोगे सस्य  
“इच्छाया” इति लोपे “अयम्” इति रूपम् । अतो गुणे इति । “एङि पररूपम्”  
इत्यतः पररूपमित्यनुवर्तते । “उत्स्यपदान्तात्” इत्यतः अपदान्तादित्यनुवर्तते । “एकः  
पूर्वपरयोः” इत्यधिकृतम् । अत इति पञ्चमी । तदाह—अपदान्तादित्यादिना । दश्चेति ।  
“इदमो मः” इत्यनुवर्तते । “अष्टन आ विभक्तौ” इत्यतो मण्डकप्लुत्वा विभक्तावि-  
त्यनुवर्तते । द इति षष्ठी । इदमो वकारस्येति लभ्यते, तदाह—इदमो दस्येत्यादिना ।  
इमौ । ‘इदम् + औ’ इति स्थिते अत्र “त्यदादीनामः” इति मस्य अत्वे ‘इद व औ’  
इति जाते “अतो गुणे” इत्यनेन पररूपे ‘इद औ’ इति भूते “द्वञ्च” इत्यनेन दकार-  
स्य मकारे विहिते कृदौ कृतात्माम् ‘इमौ’ इति रूपं सिद्धम् । इमे । ‘इदम् + जस्’  
इत्यत्र “त्यदादीनामः” इत्यकारान्तादेशे ‘इद व जस्’ इति स्थिते “अतो गुणे”  
इति पररूपे “जसः झी” इति झीत्वे सस्येत्संज्ञायां लोपे च “आवृणुजः” इति गुणे  
“द्वञ्च” इति दकारस्य मकारे ‘इमे’ इति रूपम् । त्वदादेः सम्बोधनं नास्तीति । मञ्जु-  
प्रयोगादर्शनादिति भावः । अनाप्यक इति । “इदमो मः” इत्यतः इदम् इति “इदोऽय्  
पुंसि” इत्यतः इदं इति चानुवर्तते । “अष्टन आ विभक्तौ” इत्यतो विभक्ताविति ।  
तदाह—इदम् इद इत्यादिना । अनेन । ‘इदम् + आ’ इत्यत्र “त्यदादीनामः” इत्यकारा-  
न्तादेशे “अतो गुणे” इति पररूपे ‘इद + आ’ इति जाते ‘अनाप्यक’ इति इदोऽन्तादेशे  
कृते ‘अन आ’ इति भूते “आवृणुजसामिवात्स्याः” इति इवादेशे “आवृणुजः” इति  
गुणे ‘अनेन’ इति । इति लोप इति । आप्यक इति पूर्वसूत्रादनुवर्तते । “इदमो मः” इ-

“नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे” । आद्यन्तवदेकस्मिन् १।१।२१।  
 एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमादाविवान्त इव स्यात् । “सुपि च” इति दीर्घः । अभ्याम् ॥  
 नेदमदसोरकोः ७।१।११। अककारयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न । एभिः । अस्मै,  
 एभ्यः । अस्मात् । अस्य । अनयोः । एषाम् । अरिमन् । अनयोः । एषु ॥

त्यतः इदम् इति । “इदोऽय् पुंसि” इत्यत इद इति । “अष्टन आ विभक्तौ” इत्यतो वि-  
 भक्तादिति चानुवर्तते । हलीति विभक्तिविशेषणम् । तदादिबिधस्तदाह—अककारस्येति ।  
 नानर्थक इति । परिभाषेयमुप्रधासंज्ञासूत्रे भाष्ये स्थिता । इदमशब्दे इद् इत्यस्यानर्थ-  
 कत्वात् तदन्तस्येति न लभ्यते । ततश्च इद् इत्यस्य कृत्स्नस्यैव लोप इति भावः ।  
 आद्यन्तवदिति । ‘सत्यन्यस्मिन् यस्य पूर्वो नास्ति स आदिः, सत्यन्यस्मिन् यस्य परो  
 नास्ति सोऽन्तः’ इति लोके प्रसिद्धं, तदुभयमेकस्मिन्नसहाये न सम्भवतीति तत्राद्यन्त-  
 न्यपदिष्टानि कार्याणि न स्युरतोऽयमतिदेश आरम्यते । आदाविवान्त इव च स्यादिति ।  
 तदादितदन्तयोः क्रियमाणं कार्यं तदादौ तदन्त इव च असहायेऽपि स्यादित्यर्थः ।  
 अभ्यामिति । “इदम् + भ्याम्” इत्यत्र “त्यदादीनामः” इत्यकारान्तादेशे “अतो गुणे”  
 इति पररूपैकादेशे ‘इद भ्याम्’ इति जाते “हलि लोपः” इति इङ्गागस्य लोपे प्राप्ते  
 “अलोऽन्त्यस्य” इत्यनेनान्त्यस्य लोपे प्राप्ते “नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे”  
 इति परिभाषया अलोऽन्त्यविध्यभावे इङ्गागस्यैव लोपे ‘अ + भ्याम्’ इत्यवशिष्टे अत्र  
 “सुपि च” इति दीर्घत्वे प्राप्ते परमत्र विद्यमानस्याकारस्यादन्तत्वं वर्तते नवेति शङ्का-  
 याम् “आद्यन्तवदेकस्मिन्” इति एकस्मिन्नेवाकारे अन्तवद्भावेन अदन्तत्वं मत्वा दीर्घं  
 कृते ‘आभ्याम्’ इति रूपम् । नेदमदसोरकोरिति । “अतो भिस ऐस्” इत्यतो भिस ऐस्  
 इत्यनुवर्तते । अकोरिति षष्ठी । न विद्यते ककारो ययोरिति बहुव्रीहस्तदाह—  
 अककारयोरित्यादिना । एमरिति । ‘इदम् + भिस्’ इति स्थिते “त्यदादीनामः”  
 इत्यकारान्तादेशे “अतो गुणे” इति पररूपे कृते ‘इद + भिस्’ इति स्थिते “हलि  
 लोपः” इति इङ्गागस्य लोपे “अतो भिस ऐस्” इत्येत्वे प्राप्ते “नेदमदसोरकोः”  
 इत्यनेन निषिध्य “बहुवचने झल्येत्” इति एच्चे सस्य रुत्वे रस्य विसर्गे च  
 ‘एभिः’ इति रूपम् । अस्मै । ‘इदम् + ङे’ अत्र “त्यदादीनामः” इति अकारान्तादेशे  
 विहिते “अतो गुणे” इति पररूपे ‘इद + ङे’ इति स्थिते इदम् शब्दस्य सर्वनामत्वात्  
 “सर्वनामः स्मै” इति ङे स्थाने ‘स्मै’ आदेशे “हलि लोपः” इति इङ्गागस्य लोपे ‘अस्मै’  
 इति रूपम् । एभ्यः । ‘इदम् + भ्यस्’ इत्यत्र “त्यदादीनामः” इत्यकारान्तादेशे “अतो  
 गुणे” इति पररूपे “हलि लोपः” इति इङ्गागस्य लोपे ‘अ + भ्यस्’ इति जाते “आद्यन्त-  
 वदेकस्मिन्” इति अकारस्य अदन्तत्वे “बहुवचने झल्येत्” इति एकारान्तादेशे रुक्-  
 विसर्गयोः ‘एभ्य’ इति रूपम् । अस्मात् । ‘इदम् + क्सि’ इत्यत्र “त्यदादीनामः” इत्य-  
 कारान्तादेशे “अतो गुणे” इति पररूपे ‘इद + क्सि’ इति जाते “कसिङ्गोः स्मात्स्म-

द्वितीया टौस्त्वेनः राधाइधः इदमेतदोरेनादेशः स्यादन्वादेशे । किञ्चित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः । यथा अनेन व्याकरण-मधीतमेनं छन्दोऽध्यास्येति । अनयोः पवित्रं कुलम् एनयोः प्रभूतं धनमिति । एनम् । एनौ । एनान् । एनेन । एनयोः । एनयोः । राजा ॥ न डिसंबुद्धयोः ८२।८ नस्य लोपो न डौ संबुद्धौ च । हे राजन् । ( जाबुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः ) ।

नौ” इति ‘स्मात्’ आदेशे कृते “हलि लोपः” इति इद्भागस्य लोपे ‘अस्मात्’ इति रूपम् । अस्य इति । ‘इदम् + डस्’ इत्यत्र “त्यदादीनामः” इत्यकारान्तादेशे “अतो गुणे” इति पररूपे “टाडसिडस्सामिनात्स्याः” इति डसः स्थाने स्यादेशे “हलि लोपः” इति इद्भागस्य लोपे ‘अस्य’ इति रूपम् । अनयोः । ‘इदम् + ओस्’ इत्यत्र “त्यदादीनामः” इत्यकारान्तादेशे “अतो गुणे” इति पररूपे “अनाप्यकः” इति इद्भागस्याना-देशे कृते ‘अन + ओस्’ इति जाते “ओसि च” इति अनघटकनकारोत्तरवर्तिन अकार-स्यैकारे “एचोऽयवायावः” इति अयादेशे रुत्वे विसर्गे च मिलित्वा ‘अनयोः’ इति रूपम् । एषाम् । ‘इदम् + आम्’ अत्र “त्यदादीनामः” इत्यकारान्तादेशे “अतो गुणे” इति पररूपे “आमि सर्वेनामः सुट्” इति सुडागमे टिस्राद्याद्यावयवे उटि गते ‘इद + साम्’ इति जाते “हलि लोपः” इति इद्भागस्य लोपे ‘आसाम्’ इति जाते “आद्यन्त-वदेकस्मिन्” इति एकस्मिन् अकारे अदन्तत्वमानीय “बहुवचने श्लयेत्” इति एत्वे “आदे-क्षप्रत्यययोः” इति षत्वे ‘एषाम्’ इति रूपम् । अस्मिन् । ‘इदम् + डि’ इत्यत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते “डसिङ्योः स्मार्तिस्मिनौ” इति डेः स्थाने स्मिन् आदेशे कृते “हलि लोपः” इति इद्भागस्य लोपे च ‘अस्मिन्’ इति रूपम् । एषु । ‘इदम् + सुप्’ अत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च सुपः पकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “हलि लोपः” इति इद्भा-गस्य लोपे “बहुवचने श्लयेत्” इति एत्वे “अ-देक्षप्रत्यययोः” इति षत्वे ‘एषु’ इति रूपम् । द्वितीया टौस्त्वेन इति । “इदमोऽन्व-देशे” इत्यतः इदम् इति, अन्वादेश इति चानुवर्तते । “एतदन्नतसोः” इत्यतः एतद् इति चानुवर्तते, तदाह—द्वितीयायामित्या-दिना । एनमिति । ‘इदम् + अम्’ इत्यत्र “द्वितीयाटौस्त्वेनः” इति इदम् एनादेशे विहिते “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपादेशे च कृते ‘एनम्’ इति रूपम् । राजा । ‘राजन् + सु’ इत्यत्र सोरुकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते “सुडनपुंसकस्य” इति सर्वनामस्थानस-ञ्ज्ञायाम् “सर्वनामस्थाने चासंबुद्धौ” इति नान्तस्योपधाया दीर्घत्वे “हल्ङ्याभ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक् हल्” इति सलोपे “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति नलोपे ‘राजा’ इति रूपम् । न डिसंबुद्धयारिति । “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इत्यतो न लोप इत्य-नुवर्तते । तत्र नेति लुप्तषष्ठीकम् । तदाह—नस्य लोप इत्यादिना । हे राजन् । ‘हे राजन् + सु’ इत्यत्र सोरुकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च तस्य सर्वनामस्थानसंज्ञत्वाद् दीर्घ-भाप्ते “असंबुद्धौ” इत्युक्तत्वाच्च भवति । तदनन्तरम् “हल्ङ्याभ्यः” इति सलोपे

ब्रह्मनिष्ठः । राजानौ । राजानः । राज्ञः ॥ नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति  
 ॥२॥ सुबिधौ स्वरविधौ संज्ञविधौ कृति तुग्विधौ च नलोपोऽसिद्धो नान्यत्र राजा  
 इत्यादौ । इत्यसिद्धत्वादान्वमेवमैत्त्वं च न । राजभ्यामित्यादि । राज्ञि-राजनि । यज्वा ।  
 यज्जानौ । यज्जानः ॥ न संयोगाद्वमन्तात् ६।४।१३७ वमन्तसंयोगादनोऽका-  
 रस्य लोपो न । यज्जनः । यज्वना । यज्वभ्याम् । ब्रह्मणः । ब्रह्मणा ॥ इन्हन्पू-

“नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति नलोपे प्राप्ते परमत्र “न डिसम्बुद्धयोः” इति  
 निषेधे ‘हे राजन्’ इति रूपम् । डानुत्तरपदे इति । उत्तरपदे परतो यः डिः तस्मिन्  
 परे “न डिसम्बुद्धयोः” इति निषेधस्य प्रतिषेधो वक्तव्य इत्यर्थः । एवं च चर्मतिलः  
 इत्यत्र उत्तरपदे परतः “न डिसम्बुद्धयोः” इति प्रतिषेधाभावात् नकारस्य लोपो  
 निर्बाध इति भावः । राजानौ । ‘राजन् + औ’ इति स्थिते “सुडनपुसकस्य” इति सर्व-  
 नामस्थानसंज्ञायां “सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ” इति नान्तोपधाया दीर्घत्वे ‘राजानौ’  
 इति रूपम् । राजानः । ‘राजन् + अस्’ इति स्थिते पूर्ववत्सर्वनामस्थानसंज्ञायां  
 “सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ” इति नान्तोपधाया दीर्घत्वे सस्य स्वे रेफस्य विसर्गत्वे  
 च ‘राजानः’ इति रूपम् । राज्ञः । ‘राजन् + शस्’ इति स्थिते शस्येत्संज्ञायां लोपे च  
 कृते “यचि भम्” इति भसंज्ञायाम् “अलोपोऽनः” इति अनोऽकारस्य लोपे “स्तोः  
 रचुवा रचुः” इति नस्य नत्वे ‘जजोज्ञः’ ‘राज्ञः’ इति । नलोपः भुविति । नस्य लोपो  
 नलोपः । विधिशब्दो भावसाधनः । विधानं विधिः । सुप् च स्वरश्च संज्ञा च तुक्  
 च तेषां विधय इति सम्बन्धसामान्यषष्ठ्या समासः । कृतीति तु तुकैव सम्बन्धते ।  
 अन्यत्रासम्भवात् । तदाह—सुबिधावित्यादिना । राजाश्च इत्यादाविति । अत्र सवर्णदीर्घ-  
 यणादिविधीनां सुबिध्याद्यनन्तर्भावात् तेषु कर्तव्येषु नलोपस्यासिद्धत्वाभावे सति  
 नकारलोपस्य सत्त्वात् सवर्णदीर्घादिकं निर्बाधमिति भावः । राजभ्यामिति । ‘राजन् +  
 भ्याम्’ इत्यत्र “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति पदसंज्ञायां “नलोपः प्रातिपदिकान्त-  
 स्य” इति नलोपे “सुपि च” इति दीर्घत्वे प्राप्ते तर्हि “नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुक्-  
 विधिषु कृति” इति नलोपस्याऽसिद्धत्वात् दीर्घत्वाभावे ‘राजभ्याम्’ इति रूपम् । एवं  
 ‘राजभिः’ ‘राजभ्यः’ इति बोध्यम् । राज्ञि, राजनि । ‘राजन् + डि’ इत्यत्र “लक्षक-  
 तद्धिते” इति ङकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “यचि भम्” इति भसंज्ञायाम् “विभाषा  
 डिस्योः” इति विकल्पेन अनोऽकारस्य लोपे कृते रचुत्वे च जाते ‘राज्ञि’ इति रूपम् ।  
 लोपाभावे च ‘राजभि’ इति रूपम् । यज्वा । ‘यज्वन् + सु’ अत्र सोऽकारस्येत्संज्ञायां  
 लोपे च कृते “सुडनपुसकस्य” इति सर्वनामस्थानसंज्ञायां “सर्वनामस्थाने चास-  
 म्बुद्धौ” इति नान्तस्योपधाया दीर्घत्वे “हल्लुयाभ्यो” इति सूत्रेण “नलोपः प्रातिप-  
 दिकान्तस्य” इति नलोपे ‘यज्वा’ इति रूपम् । यज्जानौ । ‘यज्वन् + औ’ अत्र नान्तो-  
 पधाया दीर्घत्वे ‘यज्जानौ’ इति । एवं ‘यज्जानः’ इत्यत्रापि । न संयोगादिति । “अलो-

चार्यम्णां शौ ६।४।१२। एषां शबेवोपधाया दीर्घो नान्यत्र । इति निषेधे प्राप्ते ॥  
सौ च ६।४।१३। इन्नादीनामुपधाया दीर्घोऽसंबुद्धौ सौ । वृत्रहा । हे वृत्रहम् ॥  
एकाजुत्तरपदे शः ८।४।१२। एकाजुत्तरपदं यस्य तस्मिन्समासे पूर्वपदस्थानिमि-

पोऽनः” इत्यनुवर्तते, तदाह—इसन्तसंयोगादित्यादिना । यज्वनः । ‘यज्वन् + सस्’  
इत्यत्र शकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “यचि भम्” इति भसञ्ज्ञायाम् “अहोपोऽनः”  
इत्यनोऽकारस्य लोपे प्राप्ते “न संयोगाद्भमन्तात्” इति निषिद्धे सकारस्य ह्रस्वे विसर्गे  
च कृते ‘यज्वनः’ इति रूपम् । एवमेवाजादौ प्रत्यये परे यज्वन् शब्दस्य रूपाणि  
बोध्यानि । यज्वभ्याम् । ‘यज्वन् + भ्याम्’ इत्यत्र “स्वाद्विष्वसर्वनामस्थाने” इत्यनेन  
पदसञ्ज्ञायां “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति नलोपे ‘यज्वभ्याम्’ इति रूपम् ।  
अत्र नलोपस्यासिद्धत्वात् “सुपि च” इति न दीर्घत्वमिति भावः । ब्रह्मणः । ‘ब्रह्मन् +  
सस्’ इत्यत्र शकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “यचि भम्” इति भसञ्ज्ञायाम् “अहोपो-  
ऽनः” इत्यनोऽकारस्य लोपे प्राप्ते “न संयोगाद्भमन्तात्” इति मान्तसंयोगत्वात्  
अहोपनिषिद्धे सति “अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि” इति णत्वे सस्य ह्रस्वे तस्य विसर्गे  
च “ब्रह्मणः” इति रूपम् । ब्रह्मण्येति । ससादावचि नाहोपः शेषं राजवदिति भावः ।  
‘वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः’ इत्यमरः । इह न्निति । “ढ्रलोपे” इत्यतो  
दीर्घ इत्यनुवर्तते । “नोपधायाः” इत्यत ‘उपधाया’ इति । तदाह—यामिति । अह-  
निषेधणत्वेन तदन्तविधिः । “सर्वनामस्थाने च” इति सिद्धे नियमार्थमित्याह—  
नान्यत्रेति । शेरन्यत्रेत्यर्थः । इति निषेधे प्राप्त इति । वृत्रहन्शब्दे हन् इत्यस्यापि शबेव  
दीर्घ इति किञ्चम् सौ पदतः “सर्वनामस्थाने” इति दीर्घे अप्राप्ते सतीत्यर्थः । सौ  
नेति । पूर्वसूत्रमनुवर्तते । तत्र बद्धनुवृत्तं तदाह—इन्नादीनामित्यादिना । असम्बुद्धाविति ।  
“सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । वृत्रहा । वृत्रो नाम असुरः  
तं हतवाचित्यर्थे “ब्रह्मभूणवृत्रेषु किवप्” इति किवप् । कपावितौ । अपृक्तलोपः । उप-  
पदसमासः । इति निष्पन्नो वृत्रहन् शब्दः । तस्मात्सावागते सोऽकारस्येत्सञ्ज्ञायाम्  
लोपे च ‘वृत्रहन् + स्’ इति स्थिते “हल्ङ्याभ्याम्” इति सूत्रलोपे “इहन्पूर्वायम्णां शौ  
इति नियमादुपधाया दीर्घत्वाभावे प्राप्ते “सौ च” इत्युपधाया दीर्घत्वे “नलोपः  
प्रातिपदिकान्तस्य” इति नलोपे ‘वृत्रहा’ इति रूपम् । हे वृत्रहन् । अत्र सूत्रलोपे कृते  
“सौ च” इत्यत्र ‘असम्बुद्धौ’ इत्यनुवृत्तेर्नोपधादीर्घः । “न ङिसम्बुध्योः” इति  
निषेधाच्च नलोपः । एकाजुत्तरपदे श इति । समासस्य, चरमावयवे रूढेन उत्तरपद-  
शब्देन समास इति लभ्यते । एकः अच् यस्मिन् तत् एकाच् । तत् उत्तर-  
पदं यस्य स एकाजुत्तरपदः । तस्मिन् समासे इति बहुव्रीहिः । “रषाभ्यां नो णः”  
इत्यनुवर्तते । “पूर्वपदात्सञ्ज्ञायाम्” इत्यतः पूर्वपदादित्यनुवर्तते । “प्रातिप-  
दिकान्तपुत्रिभक्तम् च” इत्यनुवर्तते । तदाह—एकाजुत्तरपदमित्यादिना ।

तात्परस्य प्रातिपदिकान्तनुम्बिमक्तिस्त्यस्य नस्य णः । वृत्रहणौ ॥ हो हन्तेर्ङिण्नेषु  
 ७।३।५४। षिति णिति च ऋण्ये नकारे च परे हन्तेर्हकारस्य कुत्वम् । वृत्रध्नः  
 इत्यादि । एवं शार्ङ्गिन् यशस्विन् अर्यमन् पूषन् ॥ मघवा बहुलम् ६।४।१२८  
 मघवन्शब्दस्य वा तु इत्यन्तादेशः । ऋ इत् ॥ उगिदचां 'सर्वनामस्थानेऽधातोः'  
 ७।१।७०। अधातोः गितो नलोपिनोऽध्वदेश्च नुमस्यात्सर्वनामस्थाने परे । मघवान् ।  
 मघवन्तौ । मघवन्तः । हे मघवन् । मघवद्भ्याम् । तृत्वाभावे मघवा । सुटि राज-

वृत्रहणी । 'वृत्रहन् + औ' अत्र "इन्हन्०" इति नियमात् दीर्घाभावे "एकाजुत्तरपदे  
 णः" इति णत्वे 'वृत्रहणौ' इति रूपम् । एवं सुटि वृत्रहणः । वृत्रहणम् । वृत्र-  
 हणौ । इति बोध्यम् । हो हन्तेरिति । अङ्गाधिकांशप्रत्ययत्वं ञिणो लभ्यते । "चजोः  
 कुधिण्यतोः" इत्यतः कुग्रहणमनुवर्तते । तदाह — ञिति णितीत्यादिना । वृत्रध्नः । 'वृत्र-  
 हन् + शस्' अत्र शस्येरसञ्ज्ञायां लोपे च "यचि भम्" इति भसञ्ज्ञायाम् "अल्लो-  
 पोऽनः" इत्यनोऽकारस्य लोपे 'वृत्रहन् अस्' इति स्थिते "हो हन्तेर्ङिण्नेषु" इत्यनेन  
 नकारे परे हकारस्य कुत्वेन घकारे सस्य स्त्वे रेफस्य विसर्गात्वे च कृते मिलित्वा  
 'वृत्रध्नः' इति रूपम् । इत्यादीति । आदिना अजादौ प्रत्यये भसञ्ज्ञायाम् अनोऽका-  
 रस्य लोपः । हलादौ विभक्तौ परे नलोपश्च बोध्यः । वृत्रध्ना, वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभिः ।  
 वृत्रध्ने । वृत्रध्नः २ । वृत्रध्नोः । वृत्रध्नान् । वृत्रध्नि—वृत्रहनि । इति । एवमित्यादि ।  
 शार्ङ्गि, शार्ङ्गिणौ, शार्ङ्गिणः । हे शार्ङ्गिन् । शसि-शार्ङ्गिणः । भ्यामि-शार्ङ्गिभ्याम् ।  
 यशस्वी, यशस्विनौ, यशस्विनः । हे यशस्विन् । शसि-यशस्विनः । भ्यामि-यश-  
 स्विभ्यामित्यादि । अर्यमा, अर्यमणौ, अर्यमगः । हे अर्यमन् । शसि-अञ्जोपे णत्वे च  
 'अर्यमगः' । भ्यामि-अर्यमभ्यामित्यादि । पूषा, पूषणौ, पूषणः । हे पूषन् । शसि-अञ्जोपे  
 णत्वे च 'पूषणः' । भ्यामि-पूषभ्यामित्यादि । मघवा बहुलमिति । "अवर्णस्त्रसौ" इत्यतः  
 तु इत्यनुवर्तते । तच्च लुप्तप्रथमाकम् । मघवेति षष्ठ्यर्थे प्रथमा । तदाह—मघवन्शब्दस्ये-  
 त्यादिना । ऋ इदिनि । "उपदेशेऽजनुनासिक इत्" इति ऋकार इत्संज्ञक इत्यर्थः ।  
 उगिदचामिति । अत्र "इदितो नुम् धातोः" इत्यतो नुमित्यनुवर्तते । मघवान् । 'मघ-  
 वन् + सु' इत्यत्र "मघवा बहुलम्" इति तु इत्यन्तादेशे कृते 'मघवत् + सु' इति जाते  
 ऋकारस्येत्संज्ञत्वे लोपे च विहिते 'मघवत् + सु' इति जाते "उगिदचां सर्वनाम-  
 स्थाने धातोः" इति नुमि मित्वादन्यादचः परे उमि गते 'मघवन्त् + सु' इति स्थिते  
 सोऽकारस्येत्संज्ञायां लोपे च "हल्ङ्याब्भ्यो०" इति सलोपे त्कारस्य "संबो-  
 गान्तस्य लोपः" इति लोपे "मघवा बहुलम्" इति बहुलग्रहणात्संयोगान्तस्य लोप-  
 स्यासिद्धत्वाभावेन "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ" इति नान्तस्योपधाया दीर्घत्वे च कृते  
 'मघवान्' इति रूपम् । मघवन्तौ । 'मघवन् + औ' अत्र "मघवा बहुलम्" इति 'तृ-  
 इत्यन्तादेशे कृते ऋकारस्येत्संज्ञायां लोपे च "उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः" इति

चत् ॥ श्वयुवमघोनामतद्धिते ६।४।१३३। अन्नन्तानां भानामेषामतद्धिते संप्रसार-  
णम् । मघोनः । मघवभ्याम् । एवं श्वन् युवन् ॥ न संप्रसारणे संप्रसारणम् ६।  
१।३७। संप्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः संप्रसारणं न स्यात् । इति यकारस्य नेत्वम् ।  
अत एव शान्कादन्त्यस्य यणः पूर्वं संप्रसारणम् । यूनः । यूना । युवभ्यामित्यादि ।

नुमि मित्वादन्यादचः परे उमि गते संयोगे च कृते “मघवन्तौ” इति रूपम् । एवं  
‘मघवन्तः’ इति बोध्यम् । सुटि त्रादेशे नुमचेति भावः । शसादौ त्रादेशः, न तु नुम् ।  
असर्वनामस्थानत्वात् । हे मघवन् । ‘मघवन् + सु’ अत्र तृआदेशे ऋगते, नुमि, उमि गते  
सोरुकारे गते च ‘मघवन् त् स्’ इति स्थिते “हल्ङ्ङ्याब्भ्यो०” इति सलोपे  
तृह्रस्य संयोगान्तलोपे संयोगान्तलोपस्यासिद्धत्वाच्चलोपाभावे ‘हे मघवन्’ इति  
रूपम् । मघवद्भ्याम् । ‘मघवन् + भ्याम्’ अत्र “मघवा बहुलम्” इति तृ ह्रस्यन्तादेशे  
ऋगते “स्वादिषु०” इति पदसंज्ञायां “झलां जशोऽन्ते” इति जश्त्वे ‘मघवद्भ्याम्’  
इति रूपम् । तृत्वाभावे मघवेति । नान्तात्सौ राजवद्रूपमिति भावः । सुटि राजवदिति ।  
मघवा, मघवानौ, मघवानः । हे मघवन् । मघवानम्, मघवानौ । श्वयुवेति । “वसोः  
सम्प्रसारणम्” इत्यतः सम्प्रसारणमित्यनुवर्तते । “भस्य” इत्यधिकृतम् । “अल्लो-  
पोऽनः” इत्यतः अनः इत्यपकृष्यते । तच्च श्वयुवमघोनां प्रत्येकं विशेषणम्, तदन्त-  
विधिः, तदाह—अन्नन्तानामित्यादिना । मघोनः । ‘मघवन् अस्’ अत्र “यचि भम्”  
इति भसंज्ञायाम् “श्वयुवमघोनामतद्धिते” इति सम्प्रसारणे यणो—वकास्स्य, इक्-  
उकारे जाते “मघ उ अ न् अस्” इति स्थिते “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वपरयोः  
स्थाने पूर्वरूपैकादेशे “आद्गुणः” इति गुणे सस्य रुवे तस्य विसर्गत्वे च “मघोनः”  
इति रूपम् । टायाम्—मघोना इति । मघवभ्याम् । ‘मघवन् + भ्याम्’ अत्र “स्वादि-  
ष्वसर्वनामस्थाने” इति पदसंज्ञायाम् “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति नलोपे ‘मघ-  
वभ्याम्’ इति रूपम् । मघोने । मघोनः । मघोनोः । मघोनाम् । मघोनि । एवं श्वन्  
युवन् इति । श्वा, श्वानौ, श्वानः । हे श्वन् । श्वानम्, श्वानौ, शसादावचि “श्वयुव” इति  
सम्प्रसारण वकारस्य उकारः । ‘शु + अन्’ इति स्थिते “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्व-  
रूपे ‘शुनः’ इति । शुना, श्वभ्याम्, श्वभिः । शुने । शुनः, शुनोः, शुनाम् । शुनि ।  
इत्यादि । युवा, युवानौ, युवानः । हे युवन् । युवानम्, युवानौ । यूनः । ‘युवन् +  
अस्’ अत्र शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “यचि भम्” इति भसंज्ञायां “श्वयुवमघोनाम्”  
इति वकारस्य सम्प्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपैकादेशे ‘यु + उन् अस्’ इति  
जाते यकारस्यापि “श्वयुवमघोनाम्” इति सम्प्रसारणे प्राप्ते “न सम्प्रसारणे सम्प्रसार-  
णम्” इति निषेधे सवर्णदीर्घे च कृते रुवविसर्गयोश्च सतोः ‘यूनः’ इति रूपम् । एवं  
यूना इत्यादावपि बोध्यम् । युवभ्याम् । ‘युवन् + भ्याम्’ अत्र “स्वादिष्वसर्वनाम-  
स्थाने” इति पदसंज्ञायां “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति नलोपे ‘युवभ्याम्’ इति



अर्वा । हे अर्वन् ॥ अर्वणस्त्रसावनजः ६।४।१२७। नवा रहितस्यार्वाचित्यस्याऽ-  
 ङ्गस्य तु इत्यन्तादेशो न तु सौ । अर्वन्तौ । अर्वन्तः । अर्वद्भ्यामित्यादि ॥  
 पथिमथ्यृभुक्षामात् ७।१।८५। एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात्सौ परे ॥ इतोऽत्स-  
 र्वनामस्थाने ७।१।८६। पथ्यादेरिकारस्याऽकारः स्यात्सर्वनामस्थाने परे ॥ थोन्थः  
 ७।१।८७। पथिमथोरित्यस्य न्यादेशः सर्वनामस्थाने । पन्थाः । पन्थानौ । पन्थानः ॥  
 भस्य टेलोपः । ७।१।८८। भस्य पथ्यादेष्टेलोपः । पथः । पथा । पथिभ्याम् ।

रूपम् । इत्यादीति । यूने । यूनः । यूनोः । यूनाम् । यूनि । अर्वा । 'अर्वन् + सु' अत्र  
 सोरुकारे गते "हल्ङ्य्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्पर्कहल्" इति सलोपे "सर्वनामस्थाने चा-  
 सम्बुद्धौ" इति नान्तोपधायाः दीर्घत्वे "नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य" इति नलोपे  
 'अर्वा' इति रूपम् । हे अर्वन् । हे अर्वन् + सु' अत्र सोरुकारे गते "हल्ङ्य्याब्भ्यो०"  
 इति सलोपे जाते "नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य" इति नलोपे प्राप्ते "न डिसम्बुद्ध्योः"  
 इति निषिद्धे 'हे अर्वन्' इति रूपम् । अर्वणस्तु । "अङ्गस्य" इति वर्तते । तच्च अर्वणा  
 विशेष्यते, अनज इत्यनेनापि, तदाह—नवा रहितस्येत्यादिना । अर्वन्तौ । 'अर्वन् +  
 औ' अत्र "अर्वणस्त्रसावनजः" इति तु इत्यन्ता देशे ऋगते "उगिदच्चां सर्वनामस्थाने  
 ऽघातोः" इति नुमि मित्वादन्त्यादचः परे उमि गते संयोगे च कृते 'अर्वन्तौ' इति  
 रूपम् । एवम्—'अर्वन्तः' इत्यादावपि प्रक्रिया उज्झा । शसि सर्वनामस्थानत्वाभावान्न  
 नुम् । 'अर्वन्तः' इति । टायाम्—अर्वन्ता । अर्वद्भ्याम् । 'अर्वन् + भ्याम्' अत्र "अर्वणस्त्रसा-  
 वनजः" इति तु इत्यन्तादेशे ऋगते पदसंज्ञायां जरत्वे च कृते 'अर्वद्भ्याम्' इति रूप-  
 म् । इत्यादीति । अर्वद्भिः । अर्वन्ते । अर्वद्भ्यः, अर्वन्तः, अर्वन्तोः, अर्वन्ताम् । अर्वन्ति, अर्वन्तोः,  
 अर्वन्सु । पथिन्, मथिन्, ऋभुचिन्, एते नकारान्ताः । तेषु विशेषमाह—पथिमथ्यृ-  
 भुक्षामादिति । "सावनहुहः" इत्यतः सावित्यनुवर्तते, आदिति तपरकरणम् । आकार  
 एव विधेयः । तदाह—एषामित्यादिना । इतोऽदिति । "पथिमथ्यृभुक्षाम्" इत्यनु-  
 वर्तते । थोन्थ इति । थः इति षष्ठी । आदेशो अकार उच्चारणार्थः । पथिमथि-  
 ग्रहणमनुवर्तते । "इतोऽत्सर्वनामस्थाने" इत्यतः सर्वनामस्थानग्रहणमनुवर्तते ।  
 तदाह—पथिमथोरित्यादिना । पन्थाः । 'पथिन् + सु' इत्यत्र "पथिमथ्यृभुक्षामात्"  
 इत्याकारान्तादेशे विहिते 'पथि आ सु' इति जाते "इतोऽत्सर्वनामस्थाने" इति  
 यकारान्तःपातिनः इकारस्याकारादेशे विहिते 'पथ् अ आ सु' इति जाते "थो  
 न्थः" इति थस्य न्यादेशे विहिते "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घत्वे सस्य स्त्वे रेफस्य  
 विसर्गत्वे च 'पन्थाः' इति रूपम् । पन्थानौ । 'पथिन् + औ' इत्यत्र "इतोऽत्सर्वनाम-  
 स्थाने" इति अकारान्तःपातिन इकारस्याकारे कृते 'पथन् + औ' इति जाते "थो  
 न्थः" इति थकारस्य न्यादेशे "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ" इति दीर्घे 'पन्थानौ' इति  
 रूपम् । एवं पन्थानः । पन्थानम् । पन्थानौ । भस्य टेलोप इति । अत्र "पथिमथ्यृभु-

एवं मथिन् ऋमुक्षिन् ॥ घणान्ताः षट् १११२४। घान्ता नान्ता च संख्या षट्संज्ञा  
स्यात् । पञ्चनशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । पञ्च । पञ्च । पञ्चभिः । पञ्चभ्यः । पञ्चभ्यः ।  
नुद् ॥ नोपधायाः ६।४।७। नान्तस्योपधाया दीर्घो नामि । पञ्चानाम् । पञ्चसु ॥  
अष्टन आ विभक्तौ ७।२।८। हलादौ वा स्यात् ॥ अष्टाभ्य औश् ७।१।२।  
कृताकारादष्टनो जश्शसोरौश् । अष्टभ्य इति वक्तव्ये कृतात्वनिर्देशो जश्शसोर्विषये  
आत्वं ज्ञापयति । अष्टौ । अष्टौ । अष्टभिः । अष्टाभ्यः । अष्टाभ्यः । अष्टानाम् । अष्टासु ।

चामात्” इत्यतः पथिमथ्यभुक्षाम् इत्यनुवर्तते । पथः । ‘पथिन् + शस्’ अत्र शकारस्ये-  
त्संज्ञायां लोपे च “यचि भम्” इति भसंज्ञायाम् “अचोऽन्यादि टि” इति इन्  
इत्यस्य टिसंज्ञायां “भस्य टेलोपः” इत्यनेन टिसंज्ञकस्य इन् इत्यस्य लोपे, सृष्ट्यस्य  
रुत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च ‘पथः’ इति रूपम् । पथा । ‘पथिन् + आ’ अत्र इनो लोपे  
रूपम् । पथिभ्याम् । ‘पथिन् + भ्याम्’ अत्र पदसंज्ञायां नलोपे सति रूपम् ।  
पथिभिः । पथे । पथिभ्यः । पथः । पथोः । पथाम् । पथि । पथोः । पथिषु ।  
एवं मन्थाः ऋमुक्ताः इति । मन्थदण्डवाची मथिन् शब्दः । नस्य आत्वं,  
न्यादेशः, इकारस्याकारः रुत्वे विसर्गत्वे च मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः । मन्था-  
नम्, मन्थानौ, मथः । मथा, मथिभ्याम् । मथे । मथः । मथोः, मथाम् । मथि,  
मथिषु । ऋमुक्षिन् शब्दस्तु इन्द्रवाची । तत्र “थोन्यः” इति वर्जमात्वादिर्भवति ।  
घात्परत्वाण्णत्वञ्च । ऋमुक्ताः, ऋमुक्ताणौ इत्यादि । घणान्ता षडिति । अत्र “बहुगण-  
वतुदतिसंख्या” इत्यतः संख्येत्यनुवर्तते । पञ्च । ‘पञ्चन् + जस्’ अत्र “घणान्ता षट्”  
इति पञ्चन्शब्दस्य षट्संज्ञायां विहितायां “षड्भ्यो लुक्” इति जसो लुकि “नलोपः  
प्रातिपदिकान्तस्य” इति नस्य लोपे च ‘पञ्च’ इति रूपम् । एवमेव शसि पञ्च ।  
पञ्चभिः, पञ्चभ्यः । पदसंज्ञायां नलोपे सति रूपम् । नोपधाया इति । अत्र “दूलोपे”  
इत्यतो दीर्घ इत्यनुवर्तते । “नामि” इति सूत्रञ्च । पञ्चानाम् । ‘पञ्चन् + आम्’ इत्यत्र  
“षट्चतुर्भ्यश्च” इति आमो नुटि टित्वादाद्यावयवे जाते उटि गते ‘पञ्चन् न् आम्’ इति  
जाते नस्याकारेण सह संयोगे “नोपधायाः” इति नान्तोपधाया दीर्घत्वे “नलोपः  
प्रातिपदिकान्तस्य” इति नस्य लोपे च ‘पञ्चानाम्’ इति रूपम् । अष्टन आ विभक्ता-  
विति । अत्र “रायो हलि” इत्यतो हलीत्यनुवर्तते । तदादिविधिः । तदाह—लादाविति ।  
अष्टाभ्य औशिति । अत्र “जश्शसोः शिः” इत्यतो जश्शसोरित्यनुवर्तते । अष्टभ्य इति  
वक्तव्ये इति । भ्यसि अष्टभ्यः, अष्टाभ्यः इति रूपद्वये सत्यपि औश्विधौ लाघवात्  
अष्टभ्य इत्येव निर्देश उचितः, आकारनिर्देशात् जश्शसोरचि परतोऽप्यात्वं विज्ञायत  
इत्यर्थः । अष्टौ । ‘अष्टन् + जस्’ इत्यत्र “अष्टन आ विभक्तौ” इत्यनेनाकारान्तादेशे विहिते  
‘अष्ट आ जस्’ इति जाते “अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घत्वे “अष्टाभ्य औश्” इति  
जस औशि विहिते शस्येत्संज्ञायां लोपे च विहिते “बृद्धिरेचि” इति बृद्धौ ‘अष्टौ’

आत्वाभावे अष्ट पञ्चवत् ॥ ऋत्विग्दृक् ऋगदिगुणिगञ्चुयुजिकुञ्चां च ३।२।

५६। एभ्यः किन् । अष्टेः सुप्युपपदे दुजिक्कुञ्चोः केवलयोः कुञ्चेर्नलोपाभावश्च निपात्यते ।

कनाचितौ ॥ कृदतिङ् ३।१।६३ अत्र धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्संज्ञः

स्यात् ॥ वेरपृक्तस्य ६।१।६७ अपृक्तस्य वस्य लोपः ॥ क्विन्प्रत्ययस्य कुः

८।२।६२। किन्प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोऽन्तादेशः पदान्ते । तस्यासिद्धत्वात् “चोः

कुः” इति कुत्वम् । ऋत्विक्—ऋत्विग् । ऋत्विजौ । ऋत्विग्भ्याम् ॥ युजे रस-

मासे ७।१।७१। युजेः सर्वनामस्थाने नुम् स्यादसमासे । सुलोपः । संय गान्तलोपः ।

कुत्वेन नम्य ङः । रुङ् । अनुस्वारपरसवर्णौ । रुङौ । रुङ्जः । युग्भ्याम् ॥ चोः कुः

इति रूपम् । एवमेव शसि अष्टौ । अष्टाभिः । ‘अष्टन् + भिस्’ अत्र ‘अष्टन् आ विभक्तौ’

इति आत्वे सवर्णदीर्घत्वे च कृते ‘अष्टाभिः’ इति । अष्टाभ्यः । हलादौ आत्वे सवर्ण-

दीर्घः । अष्टानाम् । आदौ नुटि कृते सति हलादित्वादात्वम् । पञ्चवदिति । अष्ट । अष्ट ।

अष्टभिः । अष्टभ्यः । अष्टानाम् । अष्टसु । ऋत्विग्भृगिति । धातोरित्यधिकृतम् । “स्पृशो-

ऽनुदके किन्” इत्यतः किन् इत्यनुवर्तते । पञ्चम्यर्थे षष्ठी । तदाह—एभ्य इति । कना-

चिताविति । “लशक्वतद्धिते” इति “हलन्त्यम्” इति च सूत्राभ्यामिति शेषः । कृदति-

ङिनि । अत्र “धातोः” इत्यधिकृतम् , प्रत्यय इति च । वेरपृक्तस्येति । अत्र “लोपो

व्योर्वलि” इत्यतो लोप इत्यनुवर्तते । किन्प्रत्ययस्य कुरिति । “पदस्य” इत्यधिकृतम् ।

“झलां जशोऽन्ते” इत्यतोऽन्त इत्यनुवर्तते । किन् प्रत्ययो यस्मात् सः क्विन्प्रत्ययः

तस्येति बहुव्रीहिः । तदाह—किन्प्रत्ययो यस्मादित्यादिना । ऋत्विक् । ऋतौ उपपदे यज्-

धातोः “ऋत्विग्दृक् ऋगदिगुणिगञ्चुयुजिकुञ्चां च” इति क्विनि “वचिस्वपियजादी-

नाम्” इति सम्प्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूपैकादेशे “ऋतु

इज” इति जाते “इको यणचि” इति यणि “ऋत्विज् क्विन्” अत्र “लशक्वतद्धिते”

इति ककारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “हलन्त्यम्” इति नस्येत्सञ्ज्ञायाम् लोपे च इकार-

स्योच्चारणार्थत्वेन तस्मिन् गते व्कारस्य “अपृक्त एकाल् प्रत्ययः” इति अपृक्तसंज्ञायां

“वेरपृक्तस्य” इत्यपृक्तसञ्ज्ञकस्य वस्य लोपे “कृदतिङ्” इति क्विनः कृत्संज्ञायां कृद-

न्तत्वात्प्रातिपदिकसञ्ज्ञायां सावागते सौरुकारे गते “ऋत्विज् + स्” इति स्थिते “हल्-

ङ्याभ्यो” इति सुलोपे “क्विन्प्रत्ययस्य कुः” इति कवर्गान्तादेशे आन्तरतम्यात्

जकारस्य गकारे जाते “वावसाने” इति चत्वेन वा ककारे “ऋत्विक्” इति । चत्वाभावे

“ऋत्विग्” इति । ऋत्विग्भ्याम् । “ऋत्विज् + भ्याम्” अत्र “स्वादिषु०” इति पदस-

ञ्ज्ञायां “क्विन्प्रत्ययस्य कुः” इति कुत्वे “ऋत्विग्भ्याम्” इति । युजेरसमास इति ।

“उगिदचाम्” इत्यतः सर्वनामस्थान इत्यनुवर्तते । “इदितो नुम् धातोः” इत्यसौ

नुमिति च । तदाह—सर्वनामस्थान इत्यादिना । युङ् । ‘युज् + सु’ इत्यत्र सुबुत्पत्तेः

प्राक् “ऋत्विक्दृक्” इति किनि, किनो लोपे किनः कृत्संज्ञायां कृदन्तत्वात्प्राति-

दा२।३०। चवर्गस्य कवर्गः स्याज्मलि पदान्ते च । सुयुक्—सुयुग् । सुयुजौ । सुयु-  
भ्याम् । खन् । खजौ । खन्भ्याम् ॥ ब्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां  
षः दा२।३६। मलि पदान्ते च । जश्त्वचन्वै । राट्-राड् । राजौ । राजः । राड्-  
भ्याम् । एवं विभ्राट् देवेट् विश्वपुट् ( परौ ब्रजेः षः पदान्ते ) परावुपपदे ब्रजेः

पदिकसञ्ज्ञायां सावागते सोस्कारे गते “युजेरसमासे” इति नुमि उमि गते मित्वा-  
दन्त्यादचः परे ‘युन् ज् स्’ इति जाते “हल्ङ्याभ्यो०” इति सलोपे “संयोगान्तस्य  
लोपः” इति जलोपे “किन्प्रत्ययस्य कुः” इति नकारस्य कुत्वेन ङत्वे ‘युङ्’ इति  
रूपम् । युजौ । ‘युज् + औ’ इत्यत्र “युजेरसमासे” इति नुमि उमि गते मित्वादन्त्या-  
दचः परे “नश्चापदान्तस्य झलि” इत्यनुस्वारे “अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः” इति  
परसवर्णे जकारे च कृते संयोगे सति ‘युजौ’ इति रूपम् । एवमेव ‘युजः’ इति रूपम् ।  
‘युज् + शस्’ अत्र शकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च जस्य अकारेण सह संयोगे सस्य स्त्वे  
रस्य विसर्गत्वे च ‘युजः’ इति । टायाम्—युजा । युग्भ्याम् । ‘युज् + भ्याम्’ अत्र पद-  
सञ्ज्ञायाम् “किन्प्रत्ययस्य कुः” इति कवर्गादेशे विहिते “युग्भ्याम्” इति रूपम् ।  
युग्मः । युजे, युग्भ्याम्, युग्म्यः । युजः, युजोः, युजाम् । युजि । ‘युज् + सुप्’ इत्यत्र  
पकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति पदसञ्ज्ञायां “किन्प्रत्य-  
यस्य कुः” इति कुत्वेन गकारे “खरि च” इति चत्वन ककारे “आदेशप्रत्यययोः”  
इति सुपः सकारस्य मूर्धन्यादेशेन षकारे कृष्संयोगेन चकारे ‘युजु’ इति । चोः कुरिति ।  
“झलो झलि” इत्यतो झलीत्यनुवर्तते । पदस्येत्यधिकृतम् । “स्कोः संयोगाद्योः” इत्य-  
तोऽन्ते इत्यनुवर्तते । तदाह—चवर्गस्येति । सुयुक्, सुयुग् । ‘सुयुज् + सु’ इत्यत्र सुष्ठु  
युनतीति विग्रहे “सस्तुद्धिष०” इति क्पि क्पि लोपे सौ समागते सोलोपे “चोः कुः”  
इति जस्य गत्वे “वावसाने” इति गस्य कत्वे ‘सुयुक्’ इति, पत्वे ‘सुयुग्’ इति । खन् ।  
‘खन्ज् स्’ इत्यत्र सोलोपे “संयोगान्तस्य लोपः” इति जस्य लोपे ‘खन्’ इति रूपम् ।  
खजौ । ‘खन्ज् + औ’ इत्यत्र नस्य अनुस्वारे, अनुस्वारस्य परसवर्णे च कृते जकार-  
स्यौकारेण सह संयोगे ‘खजौ’ इति रूपम् । खन्भ्याम् । ‘खन् ज् भ्याम्’ इत्यत्र “संयो-  
गान्तस्य लोपः” इति जस्य लोपे ‘खन्भ्याम्’ इति रूपम् । ब्रश्चभ्र-जेति । अत्र “झलो  
झलि” इत्यतो झलीत्यनुवर्तते । “पदस्य” इत्यधिकृतम् । “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च”  
इत्यतोऽन्ते चेत्यनुवर्तते । तदाह—मलि पदान्ते चेति । राट्, राड् । ‘राज् + सु’ इत्यत्र  
सोलोपे “ब्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः” इति षकारान्तादेशे “झलां जज्ञो-  
ऽन्ते” इति षस्य ङत्वे “वावसाने” इति ङस्य टत्वे कृते ‘राट्’ इति रूपम् । पत्वे ‘राड्’  
इति । राज्भ्याम् । ‘राज् + भ्याम्’ इत्यत्र “स्वादिषु०” इति पदसञ्ज्ञायां “ब्रश्चभ्रस्ज०”  
इति षत्वे “झलां जज्ञोऽन्ते” इति ङत्वे ‘राड्भ्याम्’ इति रूपम् । ‘राज् + सु’ इत्यत्र  
“स्वादिषु” इति पदत्वात् षत्वं जरत्वं च । “ङः सिः धुट्” इति धुटि राट्सु । तदभावे

किप् स्यात् दीर्घश्च पदान्ते षत्वमपि । परिव्राट् । परिव्राजौ ॥ विश्वस्य वसुराटोः  
 ३।३।१२८। विश्वशब्दस्य दीर्घोऽन्तादेशः स्याद्वसौ राट्शब्दे च परे । विश्वाराट्-  
 विश्वाराड् । विश्वराजौ । विश्वाराड्भ्याम् ॥ स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ८।२।२६।  
 पदान्ते भलि च परे यः संयोगस्तदाद्योः स्कोलोपः । भृट्—भृङ् । सस्य श्चुत्वेन  
 शः । “भलां जश् भशि” इति शस्य जः । भृजौ । भृङ्भ्याम् । त्यदाद्यत्वं पररूप  
 त्वम् ॥ तदोः सः सावनन्त्ययोः ७।२।१०६। त्यदादीनां तकारदकारयोरनन्त्ययोः  
 सः स्यात्सौ । स्यः, त्यौ, त्ये । सः, तौ, ते । यः, यौ, ये । एषः, एतौ, एते ॥ अन्वा-

‘शट्सु’ । एवं विभ्राडिति । राजशब्दवत् षत्वादीत्यर्थः । परौ व्रजेरिति । औणादिकसूत्र-  
 मेतत् । “किञ्चिप्रच्छि” इत्यादिपूर्वसूत्रात् किञिति दीर्घ इति चानुवर्तते । पदान्त  
 इति ष इत्यनेनैव सम्बध्यते । तदाह—परानुपपदे इत्यादिना । परिव्राट् । परिपूर्वकव्रज-  
 धातुतः “परौ व्रजेः षः पदान्ते” इति किपि व्रजेश्च दीर्घत्वे कृते च षत्वे किपो लोपे  
 स्वावागते सोर्लोपे “झलां जशोऽन्ते” इति षस्य ङत्वे “वावसाने” इति ङस्य ङत्वे “परि-  
 व्राट्” । पक्षे—‘परिव्राड्’ । विश्वस्य वसुराटोरिति । अत्र “ढ्रलोपे” इत्यतो दीर्घ इत्यनु-  
 वर्तते । विश्वाराट् । विश्वराज् + सु इत्यत्र सोर्लोपे “व्रश्चभ्रस्ज” इति जस्य षत्वे  
 “झलां जशोऽन्ते” इति षस्य ङत्वे “वावसाने” इति ङस्य ङत्वे “विश्वस्य वसुराटोः”  
 इति दीर्घत्वे च विहिते विश्वाराट् इति । पक्षे—‘विश्वाराड्’ इति । स्कोः संयोगाद्योरिति ।  
 “पदस्य” इत्यधिकृतम् । चकारात् “झलो झलि” इत्यतो झलीत्यनुवर्तते । “संयोगा-  
 न्तस्य लोपः” इत्यतो ‘लोप’ इत्यनुवर्तते । तदाह—पदान्ते झलि क्त्वादिना । भृट् ।  
 ‘भ्रस्ज—पाके’ क्विप् । “ग्रहिज्या” इति सम्प्रसारणं रेफस्य ऋकारः । “सम्प्रसार-  
 णाच्च” इति पूर्वरूपम् । तस्मात्सौ ‘भृस्ज सु’ इत्यत्र सोर्लोपे “स्कोः संयोगाद्योरन्ते  
 च” इति संयोगाद्यस्य ‘सु’ इत्यस्य लोपे “व्रश्चभ्रस्ज” इत्यादिना जस्य षत्वे, षस्य  
 ङत्वे “वावसाने” इति ङत्वे ‘भृट्’ इति । पक्षे—‘भृङ्’ इति । भृजौ । ‘भृस्ज् + औ’ इत्यत्र  
 “स्तोः श्चुना श्चुः” इति सस्य शत्वे “झलां जश् भशि” इति शस्य जत्वे संयोगे च  
 ‘भृजौ’ इति रूपम् । एव सर्वत्राजादौ विभक्तौ बोध्यम् । भृङ्भ्याम् । ‘भृस्ज् + म्याम्’  
 इत्यत्र “स्वादिषु” इति पदसंज्ञायां “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति संयोगाद्यस्य  
 स इत्यस्य लोपे “व्रश्च” इति षत्वे, तस्य जश्त्वेन ङत्वे ‘भृङ्भ्याम्’ इति । एवं हलादौ  
 सर्वत्र । त्यदाद्यत्वं पररूपत्वमिति । सर्वत्र विभक्ताद्युत्पन्नायां “त्यदादीनामः” इत्यन्तस्य  
 अकारः, “अतो गुणे” इति पररूपञ्चेत्यर्थः । ततश्च अदन्तवद्गुणापीति तात्पर्यम् ।  
 तदोः स इति । अत्र “त्यदादीनामः” इत्यतः—‘त्यदादीनाम्’ इत्यनुवर्तते । स्यः ।  
 ‘त्यद् + सु’ इत्यत्र “त्यदादीनामः” इति ‘द्’ इत्यस्य स्थाने अकारादेशे “अतो गुणे”  
 इति पररूपे कृते ‘त्य सु’ इति जाते “तदोः सः सावनन्त्ययोः” इति अनन्त्यस्य तका-  
 रस्य सत्वे सोस्कारे गते रेफस्य विसर्गत्वे च ‘स्वः’ इति । त्यौ । ‘त्यद् + औ’ इत्यत्र

देशे-एवम्, एनौ, एनान्, एनेन, एनयोः २ ॥ हे प्रथमयोरम् ७।१।२८ युष्म-  
दस्मद्भ्यां, परस्य हे इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चामादेशः ॥ त्वाहौ सौ ७।२।१४।  
अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वहौ आदेशौ स्तः ॥ शेषे लोपः ७।२।१७। एतयोष्टिलोपः ।  
त्वम् । अहम् ॥ युवावौ द्विवचने ७।२।१२। द्वयोरुक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य युवावौ  
स्तो विभक्तौ ॥ प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ७।२।२८। औद्धत्ययोरान्त-  
लोके । युवाम् । आवाम् ॥ यूयवयौ जसि ७।२।१३। अनयोर्मपर्यन्तस्य यूयवयौ

त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ ‘त्यौ’ इति रूपम् । त्ये । ‘त्यद् +  
जस्’ इत्यत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च सर्वादिवात्सर्वनामसंज्ञायां “जसः शी” इति जसः  
स्थाने ‘शी’ आदेशे शङ्गते गुणे च ‘त्ये’ इति । त्यम्, त्यौ, त्यान् । त्येन, त्याभ्याम्,  
त्यैः । त्यस्मै, त्याभ्याम्, त्येभ्यः । त्यस्मात् । त्यस्य, त्ययोः, त्येषाम् । त्यस्मिन्, त्येषु ।  
सः । ‘तद् + सु’ अत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते “तदोः सः सावनन्त्ययोः” इति तस्य  
सत्वे सोरुकारे गते रेफस्य विसर्गत्वे च ‘सः’ इति रूपम् । तौ । अत्वे, पररूपत्वे । वृद्धौ  
च । ते । त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे, जसः शीत्वे गुणे च रूपम् । तम्, तौ, तान् । तेन,  
ताभ्यां, तैः । तस्मै, ताभ्याम्, तेभ्यः । तस्मात् । तस्य, तयोः, तेषाम् । तस्मिन्,  
तेषु । एवमेव यत् शब्दः । एषः । ‘एतद् + सु’ इत्यत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते  
“तदोः सः सावनन्त्ययोः” इति तकारस्य सकारे कृते “आदेशप्रत्यययोः” इति सस्य  
षत्वे च कृते ‘एष + सु’ इति जाते सोरुकारे गते रेफस्य विसर्गत्वे च ‘एषः’ इति  
रूपम् । एते । एतद्शब्दस्य त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च सर्ववदेव रूपाणि । अन्वादेशे इति ।  
“द्वितीयादौस्वेनः” इत्यस्य एतद्शब्देऽपि प्रवृत्तेरिति भावः । हे प्रथमयोरिति । अत्र  
“युष्मदस्मद्भ्यां ऊसोऽश्” इत्यतो युष्मदस्मद्भ्यामित्यनुवर्तते । त्वाहौ साविति ।  
अत्र “युष्मदस्मदोरनादेशे” इत्यतो युष्मदस्मदोरित्यनुवर्तते । शेषे लोप इति ।  
उक्तादन्यः शेषः, आत्वयत्वञ्च प्रागुक्तम्, तद्विषयादन्यविभक्तिरिति शेषशब्दार्थ-  
स्तदेतद्व्याचष्टे—आत्वयत्वनिमित्तेतरेति । त्वम्, अहम् । ‘युष्मद् + सु’ इत्यत्र “हेप्रथ-  
मयोरम्” इति सोरमादेशे विहिते ‘युष्मद् + अम्’ इति जाते “त्वाहौ सौ” इति युष्मदो-  
र्मपर्यन्तस्य त्वादेशे विहिते ‘त्व अद् अम्’ इति जाते “अतो गुणे” इति पररूपत्वे “शेषे  
लोपः” इति दस्य लोपे ‘त्व अम्’ इत्यवशिष्टे “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपत्वे कृते ‘त्वम्’  
इति रूपम् । ‘अस्मद् + सु’ इत्यत्र “हेप्रथमयोरम्” इति सोरमादेशे “त्वाहौ सौ”  
इत्यस्मदोर्मपर्यन्तस्य अहादेशे “अतो गुणे” इति पररूपे कृते ‘अहद् अम्’ इति जाते  
“शेषे लोपः” इति दस्य लोपे “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपे ‘अहम्’ इति । युवावौ  
द्विवचन इति । उक्तिर्वचनं, द्वयोर्वचनम्-द्विवचनम्, तत्र समर्थयोरित्यर्थः । द्वित्व-  
विधायिवाचिनोरिति यावत् । प्रथमायाश्चेति । “अष्टन आ०” इत्यत आ’ इति “युष्म-  
दस्मदोरनादेशे” इत्यतो युष्मदस्मदोरिति चात्रानुवर्तते । युवाम्, आवाम् । ‘युष्मद् +

स्तो जसि । यूयम्, वयम् ॥ त्वमावेकवचने ऽ।२।६७। एकस्योक्तान्वयोर्मपर्व  
न्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ ॥ द्वितीयायां च ऽ।२।८७। अनयोराऽस्यात् । त्वाम्,  
माम् ॥ शसो न ऽ।१।२ । आभ्यां शसो नः स्याद् । अमोऽपवादः । “आदेः पर-  
स्य” । “संयोगान्तस्य लोपः” । युष्मान्, अस्मान् ॥ योऽचि ऽ।२।८६। अनयोर्यका-  
रादेशः स्यादनादेशोऽजादौ परतः । त्वया, मया ॥ युष्मदस्मदोरनादेशे ऽ।२।-६।

औ’ ‘अस्मद् + औ’ इत्यत्र “ङेप्रथमयोरम्” इति औकारस्य स्थाने अमि “युवावौ  
द्विवचने” इति युष्मदो मपर्यन्तस्य युव आदेशे अस्मदो मपर्यन्तस्य आवादेशे च  
‘युव अद् अम्’ ‘आव अद् अम्’ अत्र “अतो गुणे” इति पररूपत्वे “प्रथमायाश्च  
द्विवचने भाषायाम्” इति आकारान्तादेशे ‘युव आ अम्’ ‘आव आ अम्’ इति भूते  
“अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घे “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपैकादेशे च कृते ‘युवाम्’ इति  
‘आवाम्’ इति च । यूयम् । वयम् । ‘युष्मद् + जस्’ ‘अस्मद् + जस्’ इत्यत्र “ङेप्रथ-  
मयोरम्” इति जसः स्थाने अमि कृते “यूयवयौ जसि” इति युष्मदो मपर्यन्तस्य  
यूयादेशे अस्मदो मपर्यन्तस्य वयादेशे च विहिते ‘यूय अद् अम्’ ‘वय् + अद् अम्’  
इति जाते “अतो गुणे” इति पररूपत्वे “शेषे लोपः” इति दकारस्य लोपे “अमि पूर्वः”  
इति पूर्वरूपैकादेशे ‘यूयम्’ इति, ‘वयम्’ इति । एकस्योक्ताविति । ‘त्वमावेकत्वे’ इति  
वक्तव्ये वचनप्रहणादयमर्थो लभ्यत इति भावः । द्वितीयायाञ्चेति । अत्र “युष्मदस्म-  
दोरनादेशे” इत्यतो युष्मदस्मदोः, “अष्टन आ विभक्तौ” इत्यतो ‘विभक्तौ’ इति ‘आ’  
इति चानुवर्तते । तथाच—द्वितीयाविभक्तौ परतः युष्मदस्मदोराकारः स्यादिति च  
फलति । “अलोऽन्त्यस्य” इति अन्त्यस्य भवति । त्वाम्, माम् । ‘युष्मद् + अम्’  
‘अस्मद् + अम्’ इत्यत्र “त्वमावेकवचने” इति युष्मदो मपर्यन्तस्य त्वादेशे अस्मदो  
मपर्यन्तस्य च मादेशे विहिते ‘त्व अद् अम्’ ‘म अद् अम्’ इति जाते “अतो गुणे”  
इति पररूपत्वे “द्वितीयायाञ्च” इत्यन्त्यस्य दस्यात्वे “अकः सवर्णे दीर्घः” इति सवर्ण-  
दीर्घत्वे “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपैकादेशे च कृते ‘त्वाम्’ इति, ‘माम्’ इति । शसो न  
इति । न इति लुप्तप्रथमाविभक्तिकमिति यावत् । युष्मान्, अस्मान् । ‘युष्मद् + शस्’  
‘अस्मद् + शस्’ इत्यत्र “लशक्वतद्धिते” इति शस्येत्संज्ञायां लोपे च “शसो न” इति  
नादेशे “तस्मादित्युत्तरस्य” इत्यनेनोत्तरस्य सर्वस्य प्राप्ते ‘आदेः परस्य’ इति आधा-  
कारस्य जाते ‘युष्मद् + न् स्’ ‘अस्मद् + न् स्’ इति भूते “संयोगान्तस्य लोपः” इति  
सूलोपे “द्वितीयायाञ्च” इत्यन्तस्य द्मात्रस्य आकारे “अकः सवर्णे दीर्घः” इति पूर्व-  
परयोः स्थाने दीर्घादेशे ‘युष्मान्’ ‘अस्मान्’ इति रूपम् । योऽचीति । “युष्मदस्मदो-  
रनादेशे” इत्यनुवर्तते । “अष्टन आ विभक्तौ” इत्यतो विभक्त्यावित्यनुवर्तते । अचीति  
विभक्तिविशेषणम् । तदादिविधिस्तदाह—अनयोरिति । त्वया, मया । ‘युष्मद् + दा’  
‘अस्मद् + दा’ इत्यत्र “त्वमावेकवचने” इति मपर्यन्तस्य युष्मदः त्वादेशे अस्मदश्च

अनयोरात्स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ । युवाभ्याम्, आवाभ्याम्, युष्माभिः, अस्माभिः ॥ तुभ्यमहौ ङयि ७।२।६५। अनयोर्मपर्यन्तस्य तुभ्यमहौ स्तो ङयि । टिलोपः । तुभ्यम्, मह्यम् ॥ भ्यसो भ्यम् ७।१।३७ आभ्यां परस्य भ्यसो भ्यम् स्यात् । युष्मभ्यम्, अस्मभ्यम् ॥ एकवचनस्य च ७।१।३२। आभ्यां ङसेत् । त्वत्, मत् ॥ पञ्चम्या अत् ७।१।३१। आभ्यां पञ्चम्या भ्यसोऽस्स्यात् । युष्मत्,

मादेशे सति 'त्व अद् टा' 'म अद् टा' इति । जाते "अतो गुणे" इति पररूपे टागतटकारस्येत्संज्ञायां लोपे च "योऽचि" इति योगेन सर्वस्य यकारादेशे प्राप्ते "अलोऽन्त्यस्य" इत्यन्तस्य दस्य जाते सति 'त्व य् आ' 'म य् आ' इति भूते संयोगे च कृते 'त्वया' 'मया' इति । युष्मदस्मदोरिति । "अष्टन आ विभक्तौ" इत्यतः 'आ' इति विभक्ताविति चानुवर्तते । "रायो हलि" इत्यतो हलीत्यनुवृत्तं विभक्तिविशेषणम् । तदादिविधिस्तदाह—अनयोरीत्यादिना । युवाभ्याम्, आवाभ्याम् । 'युष्मद् भ्याम्' 'अस्मद् + भ्याम्' इत्यत्र "युवावौ द्विवचने" इति मपर्यन्तस्य युवादेशे आवादेशे च विहिते 'युव अद् भ्याम्' 'आव अद् भ्याम्' इति जाते "अतो गुणे" इति पररूपत्वे "युष्मदस्मदोरनादेशे" इति दकारस्य 'आ' आदेशे विहिते "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घादेशे 'युवाभ्याम्' 'आवाभ्याम्' इति स्तः । युष्माभिः, अस्माभिः । 'युष्मद् + भिस्' 'अस्मद् + भिस्' इत्यत्र "युष्मदस्मदोरनादेशे" इति दस्य स्थाने आकारे विहिते "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घत्वे सस्य स्त्वे विसर्गत्वे च कृते 'युष्माभिः' 'अस्माभिः' इति । तुभ्यमहौ ङयीति । ङे इत्यस्य सप्तम्येकवचने ङयीति । "युष्मदस्मदोरनादेशे" इत्यतो युष्मदस्मदोरित्यनुवृत्तते । "मपर्यन्तस्य" इत्यधिकृतम् । तदाह—अनयोरीत्यादिना । तुभ्यम्, मह्यम् । 'युष्मद् + ङे' 'अस्मद् + ङे' इत्यत्र "तुभ्यमहौ ङयि" इति मपर्यन्तस्य युष्मदः तुभ्यादेशे, अस्मदो मद्यादेशे च कृते 'तुभ्य अद् ङे' 'मह्य अद् ङे' इति जाते "अतो गुणे" इति पररूपे "शेषे लोपः" इत्यन्त्यस्य दकारस्य लोपे "ङेप्रथमयो-रम्" इति डेरमादेशे "अभि पूर्वः" इति पूर्वरूपैकादेशे 'तुभ्यम्' इति, 'मह्यम्' इति च जायेते । भ्यामि-युवाभ्याम्, आवाभ्याम्, इति तृतीयाद्विवचनवदिति भावः । भ्यसो भ्यम् । आभ्यामिति । "युष्मदस्मद्भ्यां" इत्यतस्तेदनुवृत्तेरिति भावः । युष्मभ्यम्, अस्मभ्यम् । 'युष्मद् भ्यस्' 'अस्मद् + भ्यस्' इत्यत्र "भ्यसो भ्यम्" इति भ्यसः स्थाने भ्यमादेशे कृते "शेषे लोपः" इति ङलोपे कृते सति 'युष्मभ्यम्' 'अस्मभ्यम्' इति । एकवचनस्य चेति । "युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्" इत्यतो युष्मदस्मद्भ्यामित्यनुवर्तते, "पञ्चम्या अत्" इति च तदाह—आभ्यामिति । त्वत्, मत् । 'युष्मद् + ङसि' 'अस्मद् + ङसि' इत्यत्र "त्वमावेकवचने" इति युष्मदो मपर्यन्तस्य त्वादेशे अस्मदो मपर्यन्तस्य च मादेशे "अतो गुणे" इति पररूपे "एकवचनस्य च" इति ङसेरिति विहिते "शेषे लोपः" इति ङलोपे 'त्व + अद्' 'म + अद्' इति जाते "अतो गुणे" इति पररूपत्वे च 'त्वद्'



अस्मत् ॥ तवममौ ङसि ७।१।६६। अनयोर्मपर्यन्तस्य तवममौ स्तो ङसि ॥ युष्म-  
दस्मद्भ्यां ङसोऽश् ७।१।२७। तव, मम । युवयोः, आवयोः ॥ साम आकम् ७  
१।३३। आभ्यां परस्य साम आकम् स्यात् । युष्माकम्, अस्माकम् । त्वयि, मयि ।  
युवयोः, आवयोः । युष्मासु, अस्मासु ॥ युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थ-  
योर्वाच्चावौ ८।१।२०। पदात्परयोरपादादौ स्थितयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोर्युष्मदस्म-  
दोर्वाच्चावित्यादेशौ स्तः ॥ बहुवचनस्य वस्त्रसौ ८।१।२१। उक्तविधयोरनयोः

इति 'मत्' इति च भवतः । भ्यामि-पूर्ववत्—'युवाभ्याम्' 'आवाभ्याम्' इति स्तः ।  
पञ्चम्या अदिति । अत्र "युष्मदस्मद्भ्याम् ङसोऽश्" इत्यतो 'युष्मदस्मद्भ्याम्' इति  
"भ्यसो भ्यम्" इत्यतो 'भ्यस्' इति चानुवर्तते । युष्मत्, अस्मद् । 'युष्मद् + भ्यस्'  
'अस्मद् + भ्यस्' इत्यत्र "पञ्चम्या अत्" इति भ्यसोऽति "शेषे लोपः" इति दस्य लोपे  
"अतो गुणे" इति पररूपत्वे च कृते 'युष्मत्' इति 'अस्मत्' इति च भवतः । तवममा-  
विति । "युष्मदस्मदोरनादेशे" इत्यतो युष्मदस्मदोरित्यनुवर्तते । मपर्यन्तस्येत्यधिकृ-  
तम् । तदाह—अनयोरिति । तव, मम । 'युष्मद्-ङस्' 'अस्मद्-ङस्' इत्यत्र "तवममौ  
ङसि" इति युष्मदो मपर्यन्तस्य तवादेशे अस्मदो मपर्यन्तस्यममादेशे "अतो गुणे"  
इति पररूपत्वे "युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्" इति ङसोऽशि विहिते शस्येत्संज्ञायां लोपे  
च भूयोऽपि "अतो गुणे" इति पररूपत्वे च कृते 'तव, मम' इति रूपे स्तः । युवयोः,  
आवयोः । 'युष्मद् + ओस्' 'अस्मद् + ओस्' इति स्थिते "युवावौ द्विवचने" इति  
युष्मदो मपर्यन्तस्य युवादेशे अस्मदो मपर्यन्तस्य आवादेशे "अतो गुणे" इति पररूप-  
त्वे "योऽचि" इति दकारस्य यकारे विहिते संयोगे च कृते सस्य रक्षे रेफस्य विसर्गत्वे  
च कृते 'युवयोः' 'आवयोः' इति । आभ्यामिति । "युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्" इत्यतस्त-  
दनुवृत्तेरिति भावः । साम इति । 'सकारेण सहितः आम् साम् तस्येत्यर्थः । ससुट्कस्य  
आम् इति यावत् । युष्माकम्, अस्माकम् । 'युष्मद् + आम्' 'अस्मद् + आम्' इत्यत्र  
"सम आकम्" इति आमि साम्स्वमारोप्य आकमादेशे विहिते 'युष्मद् + आकम्'  
'अस्मद् + आकम्' इति जाते "शेषे लोपः" इति दलोपे "अकः सवर्णे दीर्घः" इति  
सवर्णदीर्घत्वे 'युष्माकम्' 'अस्माकम्' इति । त्वयि, मयि । 'युष्मद् + डि' 'अस्मद् + डि'  
इत्यत्र "त्वमावेकवचने" इति युष्मदो मपर्यन्तस्य त्वादेशे अस्मदो मपर्यन्तस्य च मादेशे  
कृते "अतो गुणे" इति पररूपत्वे च कृते 'त्वद् + डि' 'मद् + डि' इति जाते ङकारस्ये-  
त्संज्ञायां लोपे च "योऽचि" इति दकारस्य यकारादेशे 'त्वयि' 'मयि' इति  
भवतः । ओसि-युवयोः, आवयोः पूर्ववत् । युष्मासु, अस्मासु । 'युष्मद् + सुप्' 'अस्मद् +  
सुप्' इत्यत्र पकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते "युष्मदस्मदोरनादेशे" इति 'द्' इत्यस्या-  
त्वे "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घत्वे च जाते 'युष्मासु' 'अस्मासु' इति रूपे स्तः ।  
युष्मदस्मदोः षष्ठी । षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थि सह तिङ्गत् इति षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थौ

षष्ठादिषड्वचनान्तयोर्वस्नसौ स्तः ॥ तेमयावेकवचनस्य ८१२२। उक्तविधयो-  
रनयोः षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्तयोस्ते मे एतौ स्तः ॥ त्वामौ द्वितीयायाः ८१२३।  
द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वा मा इत्यादेशौ स्तः ॥ श्रीशस्त्वाऽवतु मापोह दत्ताते मेऽपि  
शर्म सः ॥ स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः ॥ १ ॥ सुखं वां नौ  
ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः ॥ सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वः स  
नः ॥ २ ॥ ( समानवाक्ये युष्मदस्मदेशा वक्तव्याः ) एकतिङ् वाक्यम् ।

तयोरिति विग्रहः । षष्ठादिविशिष्टयोरिति यावत् । उक्तविधयोरिति । षष्ठादिविशिष्ट-  
योर्युष्मदस्मदोरित्यर्थः । तेमयेति । तेश्च मेऽचेति विग्रहः । अयं वांनाकोरपवादः । अत्र  
द्वितीयाग्रहणं नानुवर्तते, तत्र त्वामादेशयोर्वक्ष्यमाणत्वात् । त्वामाविति । त्वाश्च माश्चेति  
विग्रहः । एकवचनस्येत्यनुवर्तते । तदाह—द्वितीयेत्यादिना । श्रीशस्त्वावतु मापोहिति ।  
श्रीशः—विष्णुः, त्वा—त्वाम्, मा अपि—मामपि, पातु—रक्षतु । अत्र त्वाम्, माम् इति  
द्वितीयैकवचनान्तयोः स्थाने “त्वामौ द्वितीयायाः” इति त्वामावादेशौ स्तः । दत्तात्ते मेऽपि  
शर्म सः । सः—श्रीशः, ते—तुभ्यम्, मे—मह्यम्, अपि शर्म—सुखम्, दत्तात्—ददातु ।  
अत्र चतुर्थ्येकवचनान्तयोः तुभ्यम् मह्यम्, अनयोः स्थाने “ते मयावेकवचनस्य” इति  
ते मे आदेशौ । स्वामौ ते मेऽपि स हरिः । सः हरिः ते—तव, मे—मम स्वामी—प्रभुरित्यर्थः ।  
अत्र तत्त्व मम इति षष्ठ्येकवचनान्तयोः स्थाने “तेमयावेकवचनस्य” इति ते मे आदेशः ।  
पातु वामपि नौ विभुः । विभुः—सर्वव्यापको हरिः, वाम्—युवाम्, नौ—आवाम्, अपि  
पातु—रक्षतु, इत्यर्थः । अत्र युवाम्, आवाम्, इति द्वितीयाद्विवचनयोः स्थाने “युष्मद-  
स्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वाञ्चौ” इति वां नौ आदेशौ भवतः । सुखं वां नौ  
ददात्वीशः । ईशः वां—युवाभ्याम्, नौ—आवाभ्याम्, सुखं ददातु इत्यर्थः । अत्र  
युवाभ्याम्, आवाभ्याम्, इति चतुर्थीद्विवचनान्तयोः स्थाने “युष्मदस्मदोः षष्ठीचतु-  
र्थीद्वितीयास्थयोर्वाञ्चौ” इति वां नौ इत्यादेशौ स्तः । पतिर्वामपि नौ हरिः । हरिः  
वाम्—युवयोः, वामपि—आवयोरपि, पतिः स्वामीत्यर्थः । अत्र युवयोः, आवयोः इति  
षष्ठीद्विवचनान्तयोः स्थाने “युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वाञ्चौ” इति “वां  
नावौ” इत्यादेशौ स्तः । सोऽव्याद्वो न इति । सः वः—युष्मान्, नः—अस्मान्, अव्यात्-  
रक्षत्वित्यर्थः । अत्र—युष्मान् अस्मान् इति बहुत्वविशिष्टद्वितीयान्तयोः स्थाने “बहुवच-  
नस्य वस्नसौ” इति ‘वस्नसौ’ स्तः । शिवं वो न इति । सः वः—युष्मभ्यम्, नः—अस्म-  
भ्यम्, शिवं—कल्याणं, दद्यात् । अत्र ‘युष्मभ्यम्, अस्मभ्यम्’ इति चतुर्थीबहुवचनान्तयोः  
स्थाने “बहुवचनस्य वस्नसौ” इति वस्नसौ स्तः । सेव्योऽत्र वः सचः इति । अत्र—संसारैः  
सः—हरिः, वः—युष्माकम्, नः—अस्माकम्, सेव्यः—भजनीयः । अत्र युष्माकम्, अस्माकम्,  
इति षष्ठीबहुवचनान्तयोः स्थाने “बहुवचनस्य वस्नसौ” इति वस्नसौ स्तः । एकवाक्ये इति ।  
निमित्तविनिमित्तनोरेकवाक्यस्येत्यर्थः । एकतिङिति । तिङिस्थाने तिङन्तं विनक्षितम् ।

तेनेह न-ओदनं पच, तव भविष्यति । इह तु स्यादेव । शालं नां ते ओदनं दास्यामि ।  
 ( एते वाञ्छावादय आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्याः ) । अनन्वादेशे तु  
 नित्यं स्युः ॥ धाता ते भक्तोऽस्ति । धाता तव भक्तोऽस्ति वा । तस्मै ते नमः इत्येव ।  
 सुपात्—सुपाद्, सुपादौ ॥ पादः पत् ६।४।१३०। पाञ्चदन्तं यदङ्गं भं तदवय-  
 वस्य पाञ्चदन्तस्य पदादेशः । सुपदः । सुपदा । सुपाङ्गयाम् । अग्निमत्-अग्निमद्,  
 अग्निमथौ, अग्निमथः ॥ अनदितां हल उपधायाः क्किति ६।४।२४। हलन्ताना-  
 मनिदितामज्ञानामुपधाया नस्य लोपः किति ङिति । नुम् । मयोगान्तस्य लोपः ।  
 नस्य कुत्वेन ङः । प्राङ्, प्राङ्घौ, प्राङ्घः ॥ अचः ६।४।१३८। लुप्तनकारस्याच्चतेर्भ-

एकः तिङ् यस्येति विग्रहः । धाता ते भक्तोऽस्तीति । अत्र “एकवाक्ये युष्मदस्मदादेशा  
 वक्तव्याः” इत्यनेन तव स्थाने ते आदेशो विहितः । यत्र ते आदेशो न भवति तत्र  
 धाता तव भक्तोऽस्तीति भवत्येव । तस्मै ते नमः इत्येवेति । अत्र अनन्वादेशत्वाच्चित्य  
 आदेशो जायते । सुपात्, सुपाद । शोभनौ पादौ यस्य इति विग्रहः । ‘सुपाद् + सु’  
 इत्यत्र अनुबन्धलोपे “हल्ङ्याभ्यो दीर्घात्सुतिस्पर्कं हल्” इति सस्य लोपे “वाव-  
 साने” इति दस्य तत्वे च कृते ‘सुपात्’ इति । चर्त्वाभावपच्चे-‘सुपाद्’ इति । पादः  
 पदिति । भस्य अङ्गस्येति चाधिकृतं पाद इत्यनेन विशेष्यते । तदन्तविधिः । तदाह—  
 पाञ्चदन्तमिति । सुपद इति । ‘सुपाद् + शस्’ अत्र शस्येत्संज्ञायां लोपे च भसंज्ञायां  
 “पादः पत्” इति पादशब्दस्य पदादेशे सस्य रुत्वे रस्य विसर्गत्वे च विहिते ‘सुपदः’  
 इति । अजादौ विभक्तौ परे सर्वत्र पदादेशः । सुपदे । सुपदः । सुपदः । सुपदोः । सुपदाम् ।  
 सुपदि । अग्निमत्, अग्निमद् । ‘अग्निमथ् + सु’ इत्यत्र सोर्लोपे “झलां जशोऽन्ते” इति  
 थस्य दत्वे “वावसाने” इति दस्य तत्वे च कृते ‘अग्निमत्’ इति, पच्चे ‘अग्निमद्’ इति ।  
 भ्यामादौ—‘अग्निमथ् + भ्याम्’ इत्यत्र “झलां जशोऽन्ते” इति थस्य दत्वे च कृते ‘अग्नि-  
 मद्गयाम्’ इति रूपम् । अनदितामिति । इद्-ङस्वेकार इत्संज्ञको येषां तानि इदिन्ति न  
 इदिन्ति-अनिदिन्ति, तेषामनिदिताम् । एतच्च अङ्गस्य विशेषणं, हल इत्यपि, तदाह—  
 हलन्तानामित्यादिना । नुमिति । “उगिदचाम्” इत्यनेनेति शेषः । मयो गन्तस्य लोप इति ।  
 हल्ङ्यादिना सुलोपे सतीति शेषः । कुत्वेन ङ इति । नासिकास्थानसाम्यादिति भावः ।  
 प्राङ् । ‘प्र + अन्च्’ इत्यवस्थायाम् “ऋत्विग्दृक्त्विग्दिगुष्णिगञ्जुयुजिक्कुञ्जां च” इति  
 क्किति तस्य सर्वापहारे— ( सर्वस्य लोपे ) प्रत्ययलक्षणेन “अनिदितां हल उपधायाः  
 क्किति” इति उपाधानकारलोपे ‘प्र अच्’ इति स्थिते “कृदतिङ्” इति क्कितः कृत्संज्ञकत्वात्  
 ‘प्र अच्’ इत्यस्य “कृतद्धितसमासाश्च” इति कृतन्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ समागते  
 तस्य “सुडनपुंसकस्य” इति सर्वनामस्थानसंज्ञायाम् “उगिदचां-सर्वनामस्थानेऽधातोः”  
 इति नुमि उमि गते भित्वादन्त्यादचः परे ‘प्र अच् च सु’ इति जाते सकारोत्तरवर्तिन-

स्याकारस्य लोपः ॥ चौ ६।३।१३८। लुप्ताकारनकारेऽध्वतौ परे पूर्वस्याणो दीर्घः ॥  
 प्राचः । प्राचा । प्राग्भ्याम् । प्रत्यङ्, प्रत्यञ्चौ, प्रतीचः । प्रत्यग्भ्याम् । उदङ्,  
 उदञ्चौ ॥ उद ईत् ६।४।१३९। उच्छब्दात्परस्य लुप्तनकारस्याध्वतेर्भस्याकारस्य  
 ईत् । उदीचः । उदीचा । उदग्भ्याम् ॥ समः समि ६।३।६३। वप्रत्ययान्तेऽध्वतौ ।

उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “हल्ङ्याभ्यो दीर्घात्” इति सलोपे “संयोगान्तस्य लोपः”  
 इति चलोपे “क्विप्रत्ययस्य कुः” इति नस्य नासिकास्थानसाम्यात् कुत्वेन ङकारे “अङः  
 सर्वणं दीर्घः” इति नस्यानुस्वारे “अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः” इति तस्य परसवर्णे ङकारे  
 ‘प्राञ्चौ’ इति रूपम् । एवं सर्वत्र सुटि बोध्यम् । अच इति । “अञ्चोपोऽनः” इत्यतोऽल्लोप  
 इत्यनुवर्तते, ‘भस्य’ इति च । ‘अच’ इति लुप्तनकारस्य अञ्चधातोः षष्ठ्यन्तस्यानुकरण-  
 म् । तदाह—लुप्तनकारस्येत्यादिना । चौ । “चजोः” इति निर्देशाच्चवर्गग्रहणं न भवती-  
 त्याह—लुप्ताकारनकारेऽञ्चताविति । “ङ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इति सूत्रात् ‘अणो दीर्घ’  
 इत्यनुवर्तते, तदाह—अणो दीर्घ इति । प्राचः । ‘प्र अच् शस्’ इति स्थिते अत्र शस्येत्सं-  
 ज्ञायां लोपे च “यचि भम्” इति भसञ्ज्ञायाम् “अचः” इति अच अकारस्य लोपे  
 “चौ” इति प्र-अकारस्य दीर्घत्वे संयोगे सस्य रुत्वे रस्य विसर्गत्वे च “प्राच” इति  
 रूपम् । सर्वत्राजादौ विभक्तौ परे एवं क्रमः । प्राग्भ्याम् । ‘प्राच् + भ्याम्’ अत्र पदस-  
 ञ्ज्ञायाम् “क्विप्रत्ययस्य कुः” इति कुत्वे प्राप्ते तस्यासिद्धत्वात् “चोः कुः” इति कुत्वेन  
 ङकारे “झर्ला जशोऽन्ते” इति ङकारे ‘प्राग्भ्याम्’ इति रूपम् । प्राग्भिः । प्राचे । प्राचः,  
 प्राचोः, प्राचु । प्रत्यङ् । ‘प्रति अन् च्’ इत्यवस्थायाम् “ऋत्विग्दष्टक्” इति किनि तस्य  
 सर्वस्य लोपे “इको यणचि” इति यणि “अनिदितां हल उपधायाः क्किति” इति नस्य  
 लोपे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सावागते “उगिदचाम्” इति नुमि उमि गते  
 भित्वादन्यादचः परे हल्ङ्यादिना सुलोपे चकारस्य संयोगान्तलोपे नुमो नकारस्य  
 “क्विप्रत्ययस्य कुः” इति कुत्वेन ङकारे ‘प्रत्यङ्’ इति रूपम् । प्रत्यञ्चौ । ‘प्रत्यच् + औ’  
 इति स्थिते “उगिदचाम्” इति नुमि, तच्चकारस्य अनुस्वारे तस्य परसवर्णे ङकारे  
 भित्त्वा ‘प्रत्यञ्चौ’ इति रूपम् । एवं प्रत्यञ्चः । प्रत्यञ्चम्, प्रत्यञ्चौ । प्रतीचः । ‘प्रति  
 अन् च् शस्’ इत्यवस्थायाम् “अनिदिताम्” इति नलोपे कृते ङकारस्येत्संज्ञायां लोपे  
 च “यचि भम्” इति भसञ्ज्ञायाम् “अचः” इत्यकारलोपे “चौ” इति पूर्वस्याणो  
 दीर्घत्वे सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च ‘प्रतीचः’ इति रूपम् । प्रत्यग्भ्याम् । ‘प्रति अन्  
 च् भ्याम्’ इत्यत्र “अनिदिताम्” इति नलोपे “इको यणचि” इति यणि “चोः कुः”  
 इति कुत्वे ‘प्रत्यग्भ्याम्’ इति रूपम् । एवं प्रत्यग्भिः । प्रतीचे, प्रतीचः । प्रतीचोः ।  
 प्रतीचाम् । प्रतीचि । प्रत्यञ्चु । उदङ् । ‘उद् अन् च् सु’ इति स्थिते, “अनिदिताम्”  
 इति नलोपे “उगिदचाम्” इति नुमि, हल्ङ्यादिना सुलोपे संयोगान्तलोपे कुत्वे च  
 ‘उदङ्’ इति रूपम् । उद ईत् । “अचः” इति सूत्रमनुवर्तते, अल्लोप इत्यस्यः अप् इति

सम्यङ्, सम्यञ्चौ, समीचः । सम्यग्भ्याम् ॥ सहस्य सध्निः ६।३।६५। तथा । सध्रयङ् ॥ तिरसस्तिर्यलोपे ६।३।६४। अलुप्ताकारेऽञ्चतौ वप्रत्ययान्ते तिरसस्तिर्यादेशः । तिर्यङ्, तिर्यञ्चौ, तिरश्चः तिर्यग्भ्याम् ॥ नाञ्चेः पूजायाम् ६।४।३०।

च । भस्येत्यधिकृतम् । तदाह—उच्छब्दादित्यादिना । उदीचः । ‘उद् अन् च् शस्’ इत्यत्र शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च नकारस्य “अनिदिताम्” इति लोपे “अचः” इति अकारस्य लोपे “उद् ईत्” इति अचोऽकारस्येत्वे संयोगे सस्य स्त्वे रेफस्य विसर्गत्वे च ‘उदीचः’ इति । एवमेव ‘उदीचा’ इत्यादिः । उदग्भ्याम् । ‘उद् अन् च् भ्याम्’ इत्यत्र ‘अनिदिताम्’ इति नलोपे कुत्वे जश्त्वे च रूपम् । समः समीति । समीत्यविभक्तिको ऽनिर्देशः । सम्यङ् । ‘सम् अन् च् क्तिन्’ इत्यत्र “समः समि” इति समःस्थाने सम्यादेशे विहिते, “इको यणचि” इति यणि ‘सम्यन् च् क्तिन्’ इति स्थिते क्तिनः सर्वस्यापहारे “अनिदिताम्” इति नलोपे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसञ्ज्ञायाम् सावागते नुमि, हलङ्गादिना सुलोपे संयोगान्तलोपे कुत्वे च ‘सम्यङ्’ इति । सम्यञ्चौ । ‘सम् अच् औ’ इति स्थिते “समः समि” इति सम्यादेशे, यणि, नुमि, अनुस्वारे, परसवर्णे च रूपम् । एवं सम्यञ्चः । सम्यञ्चम्, सम्यञ्चौ । समीचः । ‘सम् अन् च् शस्’ इति दशायां शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “अनिदिताम्” इति नलोपे “समः समि” इति सम्यादेशे ‘समि अच् अस्’ इति जाते भसञ्ज्ञायाम् “अचः” इत्यकारलोपे “चौ” इति पूर्वस्याणो दीर्घे संयोगे च कृते, स्त्वविसर्गयोः ‘समीचः’ इति । सम्यग्भ्याम् । ‘सम् अच् भ्याम्’ इत्यत्र “समः समि” इति सम्यादेशे यणि कृते जश्त्वे च “सम्यग्भ्याम्” इति । एवं सम्यग्भिः । समीचा, समीचे । समीचे । समीचोः । समीचाम् । समीचि । सम्यङ् । सहस्य सध्निः । तथेति । सहस्य सध्निः स्यादप्रत्ययान्ते अञ्चतौ परे इत्यर्थः । सध्रयङ् । ‘सह अन् च्’ इत्यत्र “ऋत्विग्दधृक्” इति क्तिनि “अनिदिताम्” इति नलोपे क्तिनः सर्वस्यापहारे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसञ्ज्ञायां सावागते “सहस्य सध्निः” इति सध्रयादेशे यणि, “उगिदचाम्” इति नुमि, हलङ्गादिना सुलोपे चकारस्य संयोगान्तलोपे नकारस्य “क्तिन्प्रत्ययस्य कुः” इति कुत्वेन ङकारे ‘सध्रयङ्’ इति । सध्रयञ्चौ, सध्रयञ्चः । सध्रयञ्चम्, सध्रयञ्चौ, सध्रीचः । सध्रीचा, सध्रयग्भ्याम्, सध्रयग्भिः । सध्रीचे । सध्रीचः । सध्रीचोः । सध्रीचाम् । सध्रीचि, सध्रयङ् । तिरसस्तिर्यलोप इति । अञ्चतावप्रत्यये इत्यनुवर्तते । न विद्यते ‘अचः’ इत्यञ्चोपो यस्य सः, अलोपः, तस्मिन्निति विग्रहः । तदाह—अलुप्तेत्यादिना । तिर्यङ् । ‘तिरस् अन् च्’ इत्यत्र “ऋत्विग्दधृक्” इत्यादिना क्तिनि तस्य सर्वस्यापहारे, “अनिदिताम्” इति नलोपे “तिरसस्तिर्यलोपे” इति तिरसस्तिर्यादेशे “इको यणचि” इति यणि कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसञ्ज्ञायां सावागते नुमि, हलङ्गादिना सुलोपे ‘सध्रयन् च्’ इति जाते चकारस्य संयोगान्तलोपे नकारस्य “क्तिन्प्रत्ययस्य कुः” इति कुत्वेन ङकारे ‘तिर्यङ्’ इति रूपम् । तिर्यञ्चौ । ‘तिरस् अच् औ’ इति

पूजार्थस्यावृतेरुपधाया नस्य लोपो न ॥ प्राङ्, प्राञ्चौ । नलोपामावादलोपो न ।  
प्राञ्चः । प्राङ्भ्याम् । प्राङ्चु । एवं पूजायं प्रत्यङ्ङादयः । क्रुङ्, क्रुञ्चौ, क्रुङ्भ्याम् ।  
पयोमुक्-पयोमुग्, पयोमुचौ, पयोमुग्भ्याम् । उगित्वानुम् ॥ सान्तमहतः संयो-

स्थिते “तिरसस्तिर्यलोपे” इति तिरसस्तिर्यादेशे यणि, नुमि, अनुस्वारे, परसवर्णे च  
रूपम् । तिरश्चः । ‘तिरस् अच् शस्’ इति दशायां शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च भसञ्ज्ञा-  
याम् “अचः” इत्यकारलोपे अञ्चोपसत्वात्तिर्यादेशाभावे “स्तोः श्चुना श्चुः” इति  
तिरसः सकारस्य शकारादेशे संयोगे स्त्वविसर्गयोः ‘तिरश्चः’ इति । तिर्यग्भ्यामिति ।  
‘तिरस् अच् भ्याम्’ अत्र “तिरसस्तिर्यलोपे” इति तिरि, आदेशे यणि कुत्वे जश्त्वे च  
रूपम् । एव तिर्यग्भिः । तिरश्चा, तिरश्चः, तिरश्चः, तिरश्चोः, तिरश्चाम्, तिरश्चि, तिर्यङ् ।  
नाञ्चेरिति । नुमैव सिद्धे प्राञ्चः प्राञ्चा इत्यादौ नुमोऽभावेऽपि नकारश्रवणार्थमारम्भः ।  
प्राङ् । ‘प्र अन् च’ इति स्थिते “ऋत्विग्दधक्” इति किनि, किनः सर्वापहारिलोपे  
“अनिदिताम्” इति नलोपे प्राप्ते “नाञ्चेः पूजायाम्” इति निषिद्धे, कृदन्तत्वात्प्राति-  
पदिकसञ्ज्ञायां सावागते तस्य हल्ङ्घ्यादिना लोपे चकारस्य संयोगान्तलोपे “क्विप्प्र-  
त्ययस्य कुः” इति नकारस्य ङकारे सवर्णदीर्घे “प्राङ्” इति रूपम् । प्राञ्चा । अत्र “अनि-  
दिताम्” इति नलोपो न । “नाञ्चेः पूजायाम्” इति निषेधात् । प्राञ्चः । ‘प्र अन् च  
शस्’ इत्यत्र “अनिदिताम्” इति नलोपे प्राप्ते “नाञ्चेः पूजायाम्” इत्यनेन निषिद्धे  
नस्थानुस्वारे, तस्य परसवर्णे च कृते शसः शकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च ‘प्र अञ्च् अस्’  
इति जाते तत्र सवर्णदीर्घे सस्य स्त्वे रेफस्य विसर्गत्वे च ‘प्राञ्चः’ इति रूपम् । प्राङ्-  
भ्याम् । ‘प्राङ् भ्याम्’ इत्यत्र पदसञ्ज्ञायां “संयोगान्तस्य लोपः” इति च लोपे “क्वि-  
प्प्रत्ययस्य कुः” इति नस्य कुत्वेन ङकारे ‘प्राङ्भ्याम्’ इति रूपम् । प्राङ्चु । ‘प्राङ्चु’  
इति पूर्ववत्प्रसाध्य “ङ्गोः कुवङ्ङक् शरि” इति वा कुकि “आद्यन्तौ टकितौ” इति  
क्त्वादन्यावयवे जाते ‘क् ष् संयोगेन चकारे “प्राङ्चु” इति । एवमिति । सुटि पूर्व-  
वदेव रूपाणि । शसादावचि प्रत्यञ्चः, प्रत्यञ्चा इति । प्रत्यङ्भ्याम् । इति पूर्ववत् ।  
क्रुङ् । ‘क्रुञ्च-कौटिल्यापीभावयोः’ अस्मात् धातोः “ऋत्विग्दधक्” इत्यादिना किनि  
तस्य सर्वस्य लोपे “अनिदिताम्” इति नलोपे प्राप्ते “ऋत्विग्दधक्” इत्यादिना  
निपातनाञ्चलोपाभावे कृते कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसञ्ज्ञायां सौ प्रत्यये तस्य हल्ङ्घ्या-  
दिना लोपे चकारस्य संयोगान्तलोपे “क्विप्प्रत्ययस्य कुः” इति नकारस्य कुत्वेन  
ङकारे ‘क्रुङ्’ इति । क्रुञ्चौ । ‘क्रन् च औ’ इत्यत्र नस्य अनुस्वारे तस्य परसवर्णे च कृते  
रूपम् । क्रुङ्भ्याम् । ‘क्रन् च भ्याम्’ अत्र पदसञ्ज्ञायां चकारस्य संयोगान्तलोपे नका-  
रस्य “क्विप्प्रत्ययस्य कुः” इति कुत्वेन ङकारे “क्रुङ्भ्याम्” इति रूपम् । पयोमुक्,  
पयोमुग् । ‘पयोमुक्+सु’ इत्यत्र सोलोपे “चोः कुः” इति चस्य कत्वे “स्रलां जशो-  
ऽन्ते” इति कस्य गत्वे “वावसाने” इति गस्य कत्वे ‘पयोमुक् । पद्ये—पयोमुग् ।

गस्थ ६।४।१०। सान्तसंयोगस्य महत्त्वयो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्व-  
नामस्थाने । महान्, महान्तौ, महान्तः । हे महन् । महद्भयाम् ॥ अत्वसन्तस्य  
चाधातोः ६।४।१४। अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो धातुभिन्नासन्तस्य चासम्बुद्धौ सौ  
परे । धीमान्, धीमन्तौ, धीमन्तः । हे धीमन् । शसादौ महद्वत् । भातेड्वतुः । ङत्व-  
सामर्थ्यादभस्यापि टेलोपः । भवान्, भवन्तौ । शत्रन्तस्य तु भवन् ॥ उमे अभ्यस्तम्

पयोमुग्भ्याम् । 'पयोमुच् भ्याम्' इत्यत्र "चोः कुः" इति चस्य क्त्वे "झलां जशोऽन्ते"  
इति कस्य गत्वे 'पयोमुग्भ्याम्' इति रूपम् । सान्तमहत इति । अत्र "नोपधायाः"  
"सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ" इत्यनुवर्तते । सान्तेति लुसषष्ठीकं संयोगान्तस्येत्यनेन  
समानाधिकरणमिति व्याचष्टे—सान्तसंयोगस्येत्यादिना । महान् । 'महत् सु' इत्यत्र  
सकारोत्तरवर्त्युकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च "हृल्लथाभ्यो" इति सस्य लोपे "उगिद-  
चाम्" इति नुमि उमो लोपे मित्वात् "मिदचोऽन्त्यात्परः" इत्यन्त्यादचः परे जाते  
'महन् त्' इति स्थिते "सान्तमहतः संयोगस्य" इत्युपधाया दीर्घत्वे "संयोगान्तस्य  
लोपः" इति तलोपे 'महान्' इति । महान्तौ । 'महत् औ' इत्यत्र नुमि, दीर्घे, अनुस्वारे,  
परसवर्णे च रूपम् । एवं 'महान्तः' इति । हे महन् । 'महत् + सु' इत्यत्र "उगिदचाम्"  
इति नुमि, सोर्लोपे "सान्तमहतः संयोगस्य" इत्यत्र 'असम्बुद्धौ' इत्यनुवृत्तेर्न दीर्घे  
संयोगान्तलोपे च कृते रूपम् । महद्भयम् । 'महत् + भ्याम्' इत्यत्र "स्वादिष्वसर्वना-  
मस्थाने" इति पदसञ्ज्ञायां "झलां जशोऽन्ते" इति तस्य दत्वे च 'महद्भ्याम्'  
इति । अत्वसन्तस्येति । 'ढ्रलोप' सूत्रादीर्घस्य "नोपधायाः" इति उपधाग्रहणस्य  
चानुवर्तनादाह—उपधाया दीर्घ इति । धीमान् । 'धीमत् + सु' अत्र "सुडनपुंस-  
कस्य" इति सर्वनामस्थानसञ्ज्ञायाम् "उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः" इति  
नुमि उमि गते मित्वादन्त्यादचः परे "अत्वसन्तस्य चाधातोः" इत्युपधायाः दीर्घत्वे  
हृल्लथादिना सोर्लोपे तकारस्य संयोगान्तलोपे 'धीमान्' इति । धीमन्तौ । 'धीमत् औ'  
इत्यत्र "उगिदचाम्" इति नुमि, उमि गते मित्वादन्त्यादचः परे अनुस्वारे, तस्य पर-  
सवर्णे च रूपम् । हे धीमन् । असम्बुद्धौ इत्युक्तेर्न दीर्घः, शेषे पूर्ववत् । शसादौ महद्व-  
दिति । धीमतः, धीमता, धीमद्भयाम्, इत्यादि । भवान् । 'भवत् + सु' अत्र हृल्लथा-  
दिना सुलोपे तस्य स्थानिवद्भावेन सर्वनामस्थानपरत्वात् "उगिदचाम्०" इति नुमि,  
उमि गते मित्वादन्त्यादचः परे "अत्वसन्तस्य चाधातोः" इति उपधायाः दीर्घत्वे तका-  
रस्य संयोगान्तलोपे कृते 'भवान्' इति । शत्रन्तस्य तु भवनिति । भूधातोः "वर्तमाने  
लट्" इति लटि, तस्य स्थाने "लटः शतृशानचौ" इति शत्रादेशे अनुबन्धलोपे 'भू +  
अत्' इति जाते "तिङ्शित्सार्वधातुकम्" इति सार्वधातुकसंज्ञायां "कर्तरि सप्" इति  
ज्ञापि शकारपकारयोरित्संज्ञायां लोपे च 'भू अ अत्' इति स्थिते तत्र 'भू' इत्यस्य "सा-  
र्वधातुकार्वाधातुकयोः" इति ओकाररूपे गुणे कृते "एचोऽयवावावः" इति अवादेशे

६।१।५। षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे स्तः ॥ नाभ्य-  
स्ताच्छ्रुतुः ७।१।७। अभ्यस्तात्परस्य शतुर्नुम्र । ददत्—ददद्, ददतौ, ददतः ॥  
जक्षित्यादयः षट् ६।१।६। षट् धातवोऽन्ये जक्षितिव सप्तम एते अभ्यस्तसंज्ञाः  
स्युः । जक्षत्, जक्षद्, जक्षतौ, जक्षतः । एवं जाग्रत् दरिद्रत् शासत् चकासत् ।  
गुप्—गुब्, गुपौ, गुपः । गुब्भ्याम् ॥ तदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ३।२।६०।  
त्यदादिषूपपदेशज्ञानार्थादृशोः कन् रयात् । चात्कन् ॥ आ सर्वनाम्नः ६।३।११।  
सर्वनाम्न आकाराऽन्तादेशः स्याद्दृग्दृशवतुषु । तादृक्—तादृग् । तादृशौ, तादृशः ।

‘भव् अ अत्’ इति भूते “अतो गुणे” इति अकारद्वयस्य स्थाने पररूपे संयोगे  
च कृते ‘भवत्’ इति निष्पन्नम् । तस्य कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सावागते  
तस्य हल्ङ्यादिना लोपे “उगिदचाम्” इति नुमि, उमि गते मित्वादन्त्यादयः परे  
अत्वन्तत्वाभावात् दीर्घाभावे तकारस्य संयोगान्तलोपे ‘भवन्’ इति । शेषं ‘भवन्तौ’  
इत्यादि तु पूर्ववत् । उभेऽभ्यस्तमिति । “एकाचो द्वे प्रथमस्य” इत्यतो द्वे इत्यनुवर्तते ।  
तेनैव सिद्धे उभे ग्रहणम्—“समुदायप्रतिपत्यर्थम्” । ‘द्वे’ इत्यनेन च षष्ठाध्यायविहित-  
मेव द्वित्वं विवक्षितम्, तदाह—षाष्ठद्वित्वेत्यादिना । नाभ्यस्तादिति । “इदितो नुम्  
धातोः” इत्यतो नुमित्यनुवर्तते । तदाह—अभ्यस्तादित्यादिना । ददत्—ददद् । ‘ददत् +  
सु’ इत्यत्र “उभे अभ्यस्तम्” इति अभ्यस्तसंज्ञायाम् “उगिदचाम्” इति नुमि प्राप्ते  
“नाभ्यस्ताच्छ्रुतुः” इति नुमो निषेधे हल्ङ्यादिना सुलोपे “सुसिद्धन्तं पदम्” इति  
पदसंज्ञायां “शलां जशोऽन्ते” इति तकारस्य दकारे “वावसाने” इति दकारस्य  
तकारे ‘ददत्’ इति । चर्त्तभावपक्षे—‘ददद्’ इति रूपम् । जक्षित्यादय इति । जक्षिति  
पृथक् पदम् । इति शब्देन जक्षिरेव परामृश्यते । तत्र जक्षितिः आदियेषामिति तद्गु-  
णसंविज्ञानबहुव्रीहस्तदेतदाह—षट् धातवोऽन्ये इति । जक्षत्—जक्षद् । ‘जक्षत् + सु’  
अत्र “उगिदचाम्” इति नुमागमे प्राप्ते “जक्षित्यादयः षट्” इति अभ्यस्तसंज्ञायाम्  
“नाभ्यस्ताच्छ्रुतुः” इति नुमो निषेधे हल्ङ्यादिना सुलोपे पदसंज्ञायाम् “शलां जशो-  
ऽन्ते” इति जश्त्वेन तकारस्य दकारे तस्य “वावसाने” इति चत्वेन ‘जक्षत्’ इति ।  
पक्षे—‘जक्षद्’ इति । एवमिति । जाग्रत्, दरिद्रत्, शासत्, चकासत्, दीध्यत्,  
वेच्यत्, शब्दानां “जक्षित्यादयः षट्” इत्यभ्यस्तसंज्ञायां जातायां “नाभ्यस्ता-  
च्छ्रुतुः” इति नुमोऽभावे ददद्ददद् रूपाणि ज्ञेयानि । गुप्—गुब् । ‘गुप् + सु’ इत्यत्र  
सोर्लोपे “शलां जशोऽन्ते” इति पस्य बत्वे “वावसाने” इति चत्वेन बस्य पक्षे ‘गुप्’  
इति । पक्षे—‘गुब्’ इति । गुब्भ्याम् । ‘गुप् + भ्याम्’ इत्यत्र पदसंज्ञायां “शलां जशो-  
ऽन्ते” इति पस्य बत्वे ‘गुब्भ्याम्’ इति । त्यदादिविवृतिः । चक्रारात् “स्पृशोऽनुदके  
किन्” इत्यतः किन् अनुकृष्यते । आ सर्वनाम्न इति । आ इत्यविभक्तिकनिर्देशः । “ह-  
श्शवतुषु” इति सूत्रमनुवर्तते । तदाह—उर्वनाम्न इत्यादिना । तादृक्—तादृग् । ‘तद् ह-



तादृग्भ्याम् । व्रश्चेति षः । जश्त्वचत्वे । विट्-विड्, विशौ, विशः । विड्भ्याम् ॥  
 नशेर्वा ८।२।६३। नशेः कवर्गोऽन्तादेशो वा पदान्ते । नक्-नग्, नट्-नड्,  
 नशौ, नशः । नग्भ्याम्, नड्भ्याम् ॥ स्पृशोऽनुदके किन् ३।२।५८ अनुदके  
 सुन्दुपपदे स्पृशेः किन् । घृतस्पृक्-घृतस्पृग्, घृतस्पृशौ, घृतस्पृशः । दधृक्-दधृग्,

श् इति स्थिते “त्यदादिषु दृशोऽनाञ्जने कञ्च” इति किन् तस्य सर्वस्य लोपे कृते  
 “आ सर्वनाम्नः” इति तद्देशबद्धस्याकारान्तादेशे सर्वान्दीर्घे च ‘तादृश्’ इति रूपम्,  
 तस्य “कृतद्वितसमासाश्च” इति प्रातिपदिकसंज्ञायां सावागते तस्य हल्ङ्या-  
 दिना लोपे “किन्प्रत्ययस्य कुः” इत्यस्यासिद्धत्वात् “व्रश्चभ्रस्जसृजमृ०” इत्यादिना  
 षत्वे तस्य “झलां जशोऽन्ते” इति ङत्वे, “किन्प्रत्ययस्य कुः” इति कुत्वेन गकारे “वा-  
 वसाने” इति चत्वेन पक्षे ककारे ‘तादृक्’ इति । तदभावे ‘तादृग्’ इति । तादृग्भ्याम् ।  
 ‘तादृश्+भ्याम्’ अत्र “व्रश्चभ्रस्ज” इत्यादिना षत्वे जश्त्वेन ङत्वे “किन्प्रत्ययस्य  
 कुः” इति इति गत्वे तादृग्भ्याम् इति रूपम् । विट्-विड् । ‘विश्-प्रवेशने’ घातोः  
 क्पिपि, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ हल्ङ्यादिना लोपे “व्रश्चभ्रस्ज” इत्यादिना  
 षत्वे “झलां जशोऽन्ते” इति जश्त्वेन ङत्वे “वावसाने” इति चत्वेन पक्षे ङत्वे ‘विट्’  
 इति, चत्वाभावे—‘विड्’ इति । विड्भ्याम् । ‘विश् भ्याम्’ अत्र पदसंज्ञायाम् “व्रश्च”  
 इति षत्वे तस्य जश्त्वेन ङत्वे सति रूपम् । नशेर्वेति । “किन्प्रत्ययस्य कुः” इत्यतः  
 कुरित्यनुवर्तते, “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इत्यत अन्ते इति च । “पदस्य”  
 इत्यधिकृतम् । तदाह—नशेः कवर्गोऽन्तादेश इत्यादिना । नक्-नग्, नट्-नड् । ‘ण-  
 श्-अदर्शने’ क्पि । नश् इति रूपम् । ततः सौ, हल्ङ्यादिना सोर्लोपि “व्रश्च” इति  
 षत्वे “झलां जशोऽन्ते” इति ङत्वे । तस्य “नशेर्वा” इति कुत्वेन गत्वे “वावसाने”  
 इति चत्वेन कत्वे ‘नक्’ इति । पक्षे ‘नग्’ इति । कुत्वाभावपक्षे—‘नट्-नड्’  
 इति । नग्भ्याम्—नड्भ्याम् । ‘नश्+भ्याम्’ अत्र “व्रश्च” इति षत्वे जश्त्वेन ङत्वे  
 “नशेर्वा” इति कुत्वेन गत्वे ‘नग्भ्याम्’ इति । कुत्वाभावपक्षे—‘नड्भ्याम्’ इति ।  
 स्पृशोऽनुदके । अनुदके सुपीति । उदकशब्दभिन्ने सुबन्ते इत्यर्थः । “सुपि स्थः” इत्यतः  
 सुपीत्यनुवर्तते इति भावः । घृतस्पृक्—घृतस्पृग् । घृतं स्पृशतीति विग्रहे “स्पृशोऽनुदके  
 किन्” इति किनि, तस्य सर्वस्य लोपे “उपपदमतिङ्” इति उपपदसमासे सुबु-  
 कि समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ कृते ‘घृतस्पृश्+सु’ इति स्थिते सोर्ह-  
 लङ्यादिना लोपे “किन्प्रत्ययस्य कुः” इति कुत्वस्यासिद्धत्वात् पूर्वं “व्रश्च०” इति  
 षः । तस्य जश्त्वेन ङः । तस्य “किन्प्रत्ययस्य कुः” इति गत्वे “वावसाने” इति  
 चत्वेन कत्वे ‘घृतस्पृक्’ इति । पक्षे ‘घृतस्पृग्’ इति । दधृक्-दधृग् । “अस्तिदृक्”  
 इति किनि, तस्य सर्वस्य लोपे निपातनाद्ङित्वे अभ्यासकार्ये निष्पन्नकृदन्तदधृक्  
 ङत्वात् सावागते, तस्य हल्ङ्यादिना लोपे अस्त्वे प्रति कुत्वस्यासिद्धत्वात्प्रथमं “झलां

दधृषौ, दधृग्भ्याम् । रत्नमुट्-रत्नमुड् । रत्नमुषौ । रत्नमुड्भ्याम् । षट्-षड् । षड्-भिः । षड्भ्यः । षण्णाम् । षट्सु-षट्सु । कृत्वं प्रति षत्वस्यासिद्धत्वात्, “ससजुषोरुः” इति कृत्वम् ॥ वीरुपधाया दीर्घ इकः ८।२।७६। रेफवान्तयोरुपधाया इको दीर्घः स्यात् पदान्ते । पिपठीः, पिपठिषौ । पिपठीभ्याम् ॥ नुम्प्रिसर्जनोयशर्व्यथायेऽपि ८।३।५८। एतैः प्रत्येकं व्यवधानेऽपि इणकुभ्यां परस्य सस्य मूर्धन्या-

जशोऽन्ते” इति जश्त्वेन ङकारे तस्य “किन्प्रत्ययस्य कुः” इति कुत्वेन गकारे “वाक्साने” इति वा चत्वेन ककारे ‘दधृक्’ इति । चत्वाभावपक्षे ‘दधृग’ इति । दधृग्भ्याम् । ‘दधृष्+भ्याम्’ अत्र पदसञ्ज्ञायां जश्त्वेन ङः, तस्य कुत्वेन गः, ‘दधृग्भ्याम्’ इति रूपम् । रत्नमुट्-रत्नमुड् । ‘रत्नमुष्+सु’ अत्र सोलौपे “क्षलां जशोऽन्ते इति” इत्वे “वाक्साने” इति ङकारे ‘रत्नमुट्’ इति । पक्षे-‘रत्नमुड्’ इति । अत्र किन्प्रत्ययाभावाच्च कुत्वम् । रत्नमुड्भ्याम् । ‘रत्नमुष्+भ्याम्’ इत्यत्र “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति पदसञ्ज्ञायां “क्षलां जशोऽन्ते” इति जश्त्वेन ङकारे कृते रूपम् । षट्-षड् । षषशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । तेन षषशब्दाज्जसि, ‘षष्+जस्’ इति स्थिते “ष्णान्ताः षट्” इति षट्सञ्ज्ञायां “षड्भ्यो लुक्” इति जसो लुकि, “क्षलां जशोऽन्ते” इति षकारस्य ङकारे तस्य चत्वे च ‘षट्’ इति, पक्षे-‘षड्’ इति । एवं शसि परेऽपि बोध्यम् । षण्णाम् । ‘षष्+आम्’ अत्र “ष्णान्ता षट्” इति षट्सञ्ज्ञायां “षट्चतुर्भ्यश्च” इति नुटि टित्वाद् आम आद्यावयवे जाते उटो लोपे पदसञ्ज्ञायां “क्षलां जशोऽन्ते” इति षकारस्य ङकारे “प्रत्यये भाषायां नित्यम्” इति ङकारस्यानुनासिके णकारे “ष्टुना ष्टुः” इति नामो नकारस्य ष्टुत्वे ‘षण्णाम्’ इति । न च “नपदान्तादोः” इति ष्टुत्वनिषेध इति वाच्यम् । “अनाम्वतितनगरीणामिति वाच्यम्” इति तत्र पर्युदासात् । षट्सु-षट्सु । ‘षष् सुप्’ अत्र षकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति पदसञ्ज्ञायां “क्षलां जशोऽन्ते” इति जश्त्वेन षकारस्य ङकारे ‘षड्+सु’ इति जाते “ङः सि धुट्” इति सकारस्य धुडागमे टित्वात् ‘आद्यन्तौ टकितौ’ इति आद्यावयवे जाते उटो लोपे “खरि च” इति धकारस्य तकारे पुनश्च “खरि च” इति ङकारस्य टकारे ‘षट्सु’ इति । धुटोऽभावे ‘षट्सु’ इति । वीरुपधाया इति । “सिपि धातो र्वा” इत्यतो धातोरित्यनुवर्तते । ‘वी’ इति तद्विशेषणम् । तदन्तविधिः । “पदस्य” इत्यधिकृतम् । “स्कोः संयोगाद्योः” इत्यतो अन्ते इत्यनुवर्तते तदाह- रेफवान्तयोक्त्यादिना । पिपठीः । ‘पिपठिष्+सु’ इत्यत्र सोलौपे; कृत्वे कर्तव्ये “पूर्वत्रासिद्धम्” इति षत्वस्यासिद्धत्वाद् “ससजुषोरुः” इति कृत्वे उकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च ‘पिपठिर्’ इति जाते “वीरुपधाया दीर्घ इकः” इति उपधाया इकारस्य दीर्घे “खरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति रेफस्य विसर्गत्वे ‘पिपठीः’ इति रूपम् । पिपठिषौ । ‘पिपठिस्+औ’ अत्र “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे संयोगे च कृते ‘पिपठिषौ’ इति । पिपठीभ्याम् । ‘पिपठिष्+भ्याम्’ अत्र “स्वादिष्वसर्व-

देशः स्यात् । द्रुत्वेन पूर्वस्य षः । पिपठीषु-पिपठीःषु । चिकीः । चिकीर्षौ ।  
चिकीर्ष्याम् । चिकीर्षु । विद्वान्, विद्वांसौ । हे विद्वन् ॥ वसोः सम्प्रसारणम्  
६।४।१३१। वस्वन्तस्य भस्य सम्प्रसारणं स्यात् । विदुषः । “वसुसंषु” इति दः ।

नामस्थाने” इति पदसंज्ञायां षत्वस्यासिद्धत्वात् “ससञ्जुषो रुः” इति रुत्वे उकारस्ये-  
त्सञ्ज्ञायां लोपे च “वोरूपधाया दीर्घ इकः” इति ठकारोत्तरवर्तिन इकारस्य दीर्घे  
‘पिपठीर्भ्याम्’ इति रूपम् । नुम्विसर्जनीयेति । “इष्कोः” इति, “मूर्धन्यः” इति चानु-  
वर्तते । तदाह—एतैः प्रत्येकमित्यादिना । पिपठीषु, पिपठीःषु । ‘पिपठिस्+सुप्’ अत्र  
“हृलन्त्यम्” इति पकारस्येत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने”  
इति पदसंज्ञायां “ससञ्जुषो रुः” इति सस्य रुत्वे उकारलोपे “वोरूपधाया दीर्घ इकः”  
इत्युपधाया दीर्घत्वे “खरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति रेफस्य विसर्गत्वे ‘पिपठीः सु’  
इति जाते “विसर्जनीयस्य सः” इति विसर्गस्य सत्वे “नुम्विसर्जनीयशब्दवायेऽपि”  
इति शब्दवायेऽपि सुप्प्रत्ययस्य षत्वे “ट्टुना ट्टुः” इति पूर्वस्य सकारस्य षत्वे ‘पिप-  
ठीषु’ इति । पक्षे—“वा शरि” इति विसर्गस्य विसर्गे “नुम्विसर्जनीय” इति विसर्ग-  
व्यवधानेऽपि षत्वे ‘पिपठीःषु’ इति । चिकीः । ‘चिकीर्ष+सु’ अत्र सोलोपे पकारस्य  
असिद्धत्वात्सकारबुद्ध्या “रात्सस्य” इति सलोपे रेफस्य विसर्गत्वे च रूपम् । चिकी-  
र्भ्याम् । ‘चिकीर्ष+भ्याम्’ अत्र पदसंज्ञायां षत्वस्यासिद्धत्वात् “रात्सस्य” इति सलोपे  
‘चिकीर्भ्याम्’ इति । चिकीर्षु । ‘चिकीर्ष+सुप्’ अत्र पकारस्येत्संज्ञायां लोपे च पद-  
संज्ञायां ‘रात्सस्य’ इति सलोपे ‘रोऽसुप्’ इति नियमात् विसर्गाभावे “आदेशप्रत्य-  
ययोः” इति सुपः सकारस्य मूर्धन्यादेशे ‘चिकीर्षु’ इति । विद्वान् । ‘विद्वस्+सु’ अत्र  
सोलोपे “प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्” इति प्रत्ययलक्षणे “उगिदच्चां सर्वनामस्थानेऽ-  
धातोः” इति नुमि उमो लोपे मित्वादन्त्यावयवे “सान्तमहतः संयोगस्य” इति उप-  
धाया दीर्घत्वे “संयोगान्तस्य लोपः” इति सलोपे ‘विद्वान्’ इति रूपम् । विद्वांसौ ।  
‘विद्वस्+औ’ अत्र “उगिदचाम्” इति नुमि उमि गते मित्वादन्त्यादचः परे “सान्त-  
महतः संयोगस्य” इत्युपधाया दीर्घत्वे “नश्चापदान्तस्य झलि” इति अनुस्वारे संयोगे  
च कृते ‘विद्वांसौ’ इति । हे विद्वन् । ‘विद्वस्+सु’ अत्र “एकवचनं सम्बुद्धिः” इति  
सम्बुद्धिसंज्ञायाम् “उगिदचाम्” इति नुमि उमि गते मित्वादन्त्यादचः परे जाते  
हल्ङादिना सोलोपे “सान्तमहतः संयोगस्य” इत्यत्र “असम्बुद्धौ” इत्युक्तत्वात् दीर्घा-  
भावे संयोगान्तलोपे “हे विद्वन्” इति । वसोः सम्प्रसारणमिति । प्रत्ययग्रहणपरिभाषया  
वसोरिति तदन्तग्रहणम् । “भस्य” इत्यधिकृतम् । तदाह—वस्वन्तस्येत्यादिना ।  
विदुषः । ‘विद्वस्+भस्य’ अत्र “लङ्गकतद्धिते” इति शकारस्येत्संज्ञायां “तस्य लोपः”  
इति लोपे “वचि भम्” इति असंज्ञायाम् “वसोः सम्प्रसारणम्” इति वस्य स्थाने  
उकारस्य सम्प्रसारणे कृते ‘विद् व भम् भम्’ इति जाते “सम्प्रसारणाच्चा” इति पूर्व-

विद्वद्भ्याम् ॥ पुंसोऽसुङ् ७।१।८६। सर्वनामस्थाने विवक्षिते पुंसोऽसुङ् स्यात् ।  
पुमान् । हे पुमन् । पुमांसौ । पुसः । पुम्भ्याम् । पुंसु । “ऋदुशन” इत्यबद् ।  
उशना । उशनसौ । ( अस्य सम्बुद्धौ वानङ् नलोपश्च वा वाच्यः ) हे उशन,  
हे उशनन्-हे उशनः, हे उशनसौ । उशनोभ्याम् । उशनस्सु । अनेहाः, अनेहसौ ।

रूपैकादेशे ‘विदुस्+अस्’ इति जाते “आदेशप्रत्यययोः” इति प्रत्ययावयवत्वात् सस्य  
फत्वे संयोगे च कृते विदुषस् इति भूते अन्त्यसकारस्य “ससजुषो रुः” इति रूवे उका-  
रस्येत्संज्ञायां लोपे च “खरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति रेफस्य विसर्गत्वे ‘विदुषः’ इति  
रूपम् । विद्वद्भ्याम् । ‘विद्वस्+भ्याम्’ अत्र “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति पदसंज्ञायां  
“वसुखंसुष्वस्वनडुहां दः” इति सस्य दत्वे ‘विद्वद्भ्याम्’ इति । ‘विद्वस्+सुप्’ इत्यत्र  
पकारस्येत्संज्ञायां लोपे च पदसंज्ञायां “वसुखंसुष्वस्वनडुहां दः” इति सस्य दत्वे  
तस्य “खरि च” इत्यनेन चत्वं ‘विद्वत्सु’ इति । पुंसोऽसुङ् । अत्र “इतोऽसर्वनाम-  
स्थाने” इत्यतः ‘सर्वनामस्थाने’ इत्यनुवर्तते । पुमान् । ‘पुंस्+सु’ इत्यत्र “पुंसोऽसुङ्”  
इत्यसुङि विहिते “ङिच्च” इति अन्तिमसकारस्य स्थाने जाते ‘पुमसुङ्+सु’ इति  
भूते “हलन्त्यम्” इति ङकारस्य “उपदेशेऽजनुनासिक इत्” इति उकारस्य चेतसंज्ञायां  
“तस्य लोपः” इति उभयोर्ङ्कारोकारयोर्लोपे ‘पुमस्+सु’ इति स्थिते सोर्हल्ङ्यादिकञ्च  
लोपे प्रत्ययलक्षणे “उगिदचाम्” इति नुमि उमि गते मित्वादन्त्यादचः परे “सान्त-  
महतः संयोगस्य” इति उपधायाः दीर्घत्वे “संयोगान्तस्य लोपः” इति स्रलोपे च  
‘पुमान्’ इति । हे पुमन् । ‘पुंस्+सु’ अत्र “पुंसोऽसुङ्” इत्यसुङि क्त्वादन्त्यावयवे  
जाते अनुबन्धलोपे सोर्लोपे च जाते नुमि, “सान्तमहतः संयोगस्य” इत्यत्र ‘असम्बुद्धौ’  
इत्युक्तत्वात् दीर्घाभावे संयोगान्तलोपे च रूपम् । पुमांसौ । ‘पुंस्+औ’ अत्र “पुंसोऽ-  
सुङ्” इत्यसुङि “ङिच्च” इत्यन्तावयवे जाते उङो लोपे “उगिदचाम्” इति नुमि  
मित्वादन्त्यादचः परे उमि गते ‘पुमन् स्र औ’ इति जाते “सुडनपुंसकस्य” इति सर्व-  
नामस्थानसंज्ञायां “सान्तमहतः संयोगस्य” इति सान्तसंयोगस्थोपधायाः दीर्घे “नञ्चा-  
पदान्तस्य झलि” इति अनुस्वारे ‘पुमांसौ’ इति रूपम् । पुसः । ‘पुंस्+शस्’ अत्र  
अकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते, कृते च संयोगे अन्तिमसकारस्य रूवे, तस्य विसर्गे  
च रूपम् । पुम्भ्याम् । ‘पुंस्+भ्याम्’ अत्र “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति पदसंज्ञायां  
“संयोगान्तस्य लोपः” इति स्रलोपे ‘पुम्भ्याम्’ इति । पुंसु । अत्र पदसंज्ञायां  
सस्य संयोगान्तलोपः । उशना । ‘उशनस्+सु’ अत्र “ऋदुशनस्पुस्दसोऽनेहसाञ्च”  
इति अनङि “ङिच्च” इत्यन्तस्य सः स्थाने कृते ङकारस्येत्संज्ञायां लोपे च अकार-  
स्योच्चारणार्थत्वात्तस्मिन् गते ‘उशनन् सु’ इति स्थिते “सुडनपुंसकस्य” इति सर्व-  
नामस्थानसंज्ञायां “सर्वनामस्थानेचाऽसम्बुद्धौ” इति नान्तोपधायाः दीर्घत्वे “हल्-  
ङ्यादिको दीर्घात्” इति सोर्लोपे “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति बलोपे “उशना”

हे अनेहः । वेधाः, वेधसौ । हे वेधः । वेधोभ्याम् ॥ अदस औ सुलोपश्च ७।२।  
१०७। अदस औस्यात्सौ परे सुलोपश्च । “तदोः” इति सः । असौ । त्यदाद्यत्वं  
पररूपत्वम् । वृद्धिः ॥ अदसोऽसेर्दादुदो मः ८।२।८०। अदसोऽसान्तस्य दात्प-  
रस्य उदूतौ स्तो दस्य मश्च । आन्तरतम्याद्भ्रस्वस्य उः दीर्घस्य ऊः । अनू । जसः  
शी । गुणः ॥ एत ईद्वहुवचने ८।२।८१। अदसो दात्परस्यैत ईद्वस्य च मो बहु-

इति रूपम् । हे उशन-हे उशनन्-हं उशनः । हे उशनस्+सु’ अत्र सोर्लोपे “अस्य  
सम्बुद्धौ वाऽनङ् नलोपश्च वा वाच्यः” इति वार्तिकेन अनङि कृते नलोपे च कृते  
‘हे उशन’ इति । वाग्रहणाच्चलोपाऽभावे ‘हे उशनन्’ इति । अनङादेशाभावे सस्य  
रूत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च कृते ‘हे उशनः’ इति । उशनोभ्याम् । ‘उशनस्+  
भ्याम्’ अत्र “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति पदसंज्ञायां “ससञ्चो रुः” इति सकारस्य  
रूत्वे “हशि च” इत्युत्वे “आद्गुणः” इति गुणे च कृते ‘उशनोभ्याम्’ इति रूपम् ।  
उशनस्सु । ‘उशनस्+सु’ अत्र पदसंज्ञायां “ससञ्चो रुः” इति रूत्वे उकारस्येत्यसंज्ञायां  
लोपे च “खरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति रेफस्य विसर्गत्वे “वा शरि” इति विसर्गस्य  
स्थाने विसर्गो विहिते ‘उशनःसु’ इति । पञ्चे “विसर्जनीयस्य सः” इति विसर्गस्य  
सत्वे ‘उशनस्सु’ इति । अनेहा । ‘अनेहस्+सु’ अत्र “अनुशनस्परुदंसोऽनेहसाञ्च”  
इत्यनङि ङित्वादन्त्यस्य स्थाने कृते अनुबन्धलोपे हल्ङ्यादिना सोर्लोपे “सर्वनामस्थाने  
चासम्बुद्धौ” इत्युपधाया दीर्घत्वे “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति नलोपे ‘अनेहा’  
इति रूपम् । हे अनेहः । ‘हे अनेहस्+सु’ अत्र सोर्लोपे सस्य रूत्वे कृते रेफस्य विसर्गः ।  
वेधाः । ‘वेधस्+सु’ अत्र “अत्वसन्तस्य चाधातोः” इत्यसन्तत्वादीर्घे सोर्लोपे च कृते  
रूत्विसर्गौ ‘वेधाः’ । हे वेधः । अत्र ‘असम्बुद्धौ’ इत्युक्तेर्न दीर्घः । वेधोभ्याम् । ‘वेधस्+  
भ्याम्’ अत्र “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति पदसंज्ञायां “ससञ्चो रुः” इति सकारस्य  
रूत्वे “हशि च” इति रोरूत्वे “आद्गुणः” इति गुणे ‘वेधोभ्याम्’ इति । अदस औ  
सुलोपश्चेति । अदसः इति षष्ठी । “तदोः सः सौ” इत्यतः सावित्यनुवर्तते, तदाह—  
अदसः औस्यात्सौ परे इति । असौ । ‘अदस्+सु’ इत्यत्र “अदस औ सुलोपश्च” इति  
सस्य स्थाने औत्वे सलोपे च विहिते, अद औ इति जाते “तदोः सः सावनन्त्ययोः”  
इति दस्य सत्वे “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ च कृतायाम् ‘असौ’ इति सिद्ध्यति । अदसोऽ-  
सेरिति । अदस इत्यवयवषष्ठ्यन्तम् । असेरिति तद्विशेषणम् । इकार उच्चारणार्थः ।  
दादिति दिग्योगे पञ्चमी । परस्येत्यध्याहार्यम् । तदाह—अदसोऽसान्तस्येति । अम् ।  
‘अदस्+औ’ अत्र “त्यदादीनामः” इत्यकारान्तादेशे “अतो गुणे” इतिपररूपे ‘अद+  
औ’ इति जाते “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ कृते ‘अदौ’ इति भूते “अदसोऽसेर्दादुदो मः”  
इति औकारस्य उकारे दस्य मत्वे च ‘अम्’ इति रूपं सिद्ध्यति । एत ईद्वहुवचने इति ।  
“अदसोऽसेर्दादुदो मः” इत्यस्मात् ‘अदसो दादिति, दो मः’ इति चानुवर्तते । तदाह—

थोक्तौ । अमी । “पूर्वत्रासिद्धम्” इति विभक्तिकार्यं प्राक् पश्चादुत्त्वमत्वे । अमुम्, अमू, अमून् । मुत्वे कृते विसंज्ञायां नाभावः ॥ न मु ने ऽऽऽऽ नाभावे कर्तव्ये कृते च मुभावो नासिद्धः स्यात् । अमुना, अमूभ्या, अमीभिः । अमुभ्यः, अमीभ्यः ।

अदसो दात्परस्येत्यादिना । अमी । ‘अदस्+जस्’ अत्र “त्यदादीनामः” इत्यकारान्तादेशे “अतो गुणे” इति पररूपे “अद+जस्” इति स्थिते “जसः शी” इति जसः स्थाने श्यादेशे शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “आद्गुणः” इति गुणे ‘अदे’ इति जाते “एत ईद् बहुवचने” इति एकारस्य ईकारे दस्य च मत्वे ‘अमी’ इति रूपम् । विभक्तिकार्यमिति । त्यदाद्यत्वादिकमित्यर्थः । अमुम् । ‘अदस्+अम्’ इत्यत्र “त्यदादीनामः” इत्यकारान्तादेशे “अतो गुणे” इति पररूपत्वे च कृते “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपकादेशे ‘अदम्’ इति जाते “अदसोऽसेर्दादुदोमः” इति दात्परस्य अस्य उत्वे दस्य मत्वे च ‘अमुम्’ इति रूपम् । अमू । ‘अदस्+औ’ इति स्थिते “त्यदादीनामः” इति अकारान्तादेशे “अतो गुणे” इति पररूपत्वे च कृते “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ सत्याम् ‘अदौ’ इति जाते “अदसोऽसेर्दादुदोमः” इति औकारस्य उत्वे दस्य मत्वे च ‘अमू’ इति रूपम् । अमून् । ‘अदस्+शस्’ इति स्थिते त्यदाद्यत्वे, पररूपत्वे च कृते शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “प्रथमयोः पूर्वसवर्णः” इति पूर्वसवर्णदीर्घादेशे “तस्माच्छसो नः पुंसि” इति सस्य नत्वे ‘अदान्’ इति भूते “अदसोऽसेर्दादु दो मः” इति आकारस्य उत्वे दस्य च मत्वे ‘अमून्’ इति रूपम् । न मु ने । ने इति विषयसप्तमीत्याह—नाभावे कर्तव्य इति । अन्यथा घेः परत्वाभावाच्चाभावो न स्यादिति भावः । नन्वेवमपि कृते नाभावे “सुपि च” इति दीर्घः स्यात्, दीर्घं प्रति मुत्वस्यासिद्धत्वादत आह—कृते चेति । एतच्च ने इत्यस्यावृत्त्या लभ्यते । अमुना । ‘अदस्+टा’ अत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च “अदसोऽसेर्दादु दो मः” इति अकारस्य उत्वे दस्य च मत्वे ‘अमु+टा’ इति जाते नाभावे कर्तव्ये “न मु ने” इत्यनेन मुत्वस्यासिद्धत्वाभावबोधनात् “शेषो ध्यसखि” इति विसंज्ञायाम् “आङो नाऽखियाम्” इति टा इत्यस्य नादेशे ‘अमुना’ इति रूपं सिद्धम् । न च मुत्वस्यासिद्धत्वात् “सुपि च” इति दीर्घः स्यादिति वाच्यम् । “न मु ने” इत्यनेन कृते च नाभावे नासिद्धत्वमित्यस्यापि बोधनात् । अमूभ्याम् । ‘अदस्+भ्याम्’ इत्यत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते “सुपि च” इति दीर्घे ‘अदाभ्याम्’ इति जाते “अदसोऽसेर्दादु दो मः” इति उत्वे मत्वे च रूपम् । अमीभिः । ‘अद्+भिस्’ इत्यत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते ‘अद्+भिस्’ इति जाते “अतो भिस ऐस्” इति भिसः स्थाने ऐसादेशप्राप्ते “नेदमदसोरकोः” इत्यनेन निषिद्धे “बहुवचने श्लथेत्” इत्येत्वे ‘अदे+भिस्’ इति निष्पन्ने “एत ईद्बहुवचने” इति एकारस्य ईत्वे दस्य च मत्वे कृते सस्य स्त्वे रेफस्य विसर्गत्वे च ‘अमीभिः’ इति रूपम् । अमुभ्यः । अदस्शब्दाच्चतुर्थ्येकवचनविचाराणां ङेविभक्तौ समागतायां त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते “सर्वनाम्नः स्मै” इति ङे

अमुष्मात् । अमुष्य, अमुयोः । अमीषाम् । अमुष्मिन्, अमीषु ।

इति हलन्ताः पुलिङ्गाः ॥

## ॥ अथ हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ॥

नहो घः ८।२।३४। नहो हस्य घः स्याज्भलि पदान्ते च ॥ नहिवृतिवृषि-  
व्यग्रिरुचिसहितनिषुक्कौ ६।३।११६। क्तिवन्तेषु पूर्वपदस्य दीर्घः स्यात् । उपा-  
नत्-उपानद् । उपानहौ । उपानत्सु । क्तिवन्तस्वात्कुत्वेन घः । उष्णिक्-उष्णिग् ।

स्थाने 'स्मै' आदेशे 'अदस्मै' इति जाते "अदसोऽसेर्दादु दो मः" इति अकारस्योत्वे  
दस्य मत्वे "आदेशप्रत्यययोः" इति षत्वे 'अमुष्मै' इति सिद्धम् । अमीभ्यः । 'अदस् +  
भ्यस्' इत्यत्र त्यदाद्यत्वे, पररूपत्वे च कृते "बहुवचने शल्येत्" इत्येत्वे कृते 'अदे +  
भ्यस्' इति जाते "एत ईद्बहुवचने" इति एकारस्य ईत्वे दस्य च मत्वे सकारस्य रुत्वे  
रेफस्य विसर्गत्वे च 'अमीभ्यः' इति रूपम् । अमुष्मात् । 'अदस् + ङसि' इत्यत्र त्यदा-  
द्यत्वे पररूपत्वे च कृते "ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ" इति ङसेः स्थाने स्मात् आदेशे  
उत्त्वमत्वयोः कृतयोः षत्वे च कृते 'अमुष्मात्' इति रूपम् । अमुष्य । 'अदस् + ङस्' इत्यत्र  
त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते "टाङसिङ्सामिनात्स्याः" इति ङसः स्थाने स्यादेशे 'अद-  
स्य' इति जाते "अदसोऽसेर्दादु दो मः" इत्यकारस्योत्वे दस्य च मत्वे कृते "आदेश-  
प्रत्यययोः" इति षत्वे, च जाते 'अमुष्य' इति रूपं सिद्धयति । अमुयोः । 'अदस् + ओस्'  
इत्यत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते "ओसि च" इत्येकारे कृते "एचोऽयवायावः" इत्य-  
च्चादेशे 'अदयोस्' इति जाते "अदसोऽसेर्दादु दो मः" इति दात्परस्योत्वे दस्य च मत्वे  
सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च 'अमुयोः' इति रूपम् । अमीषाम् । 'अदस् + आम्'  
इत्यत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते "आमि सर्वनान्नः सुट्" इति सुडागमे टित्वादा-  
द्यावयवे उटि गते "बहुवचने शल्येत्" इत्येत्वे 'अदेसाम्' इति जाते "आदेशप्रत्यययोः"  
इति षत्वे "एत ईद्बहुवचने" इति दात्परस्यैकारस्येत्वे दस्य च मत्वे 'अमीषाम्' इति ।  
अमुष्मिन् । 'अदस् + ङि' इत्यत्र "त्यदादीनामः" इत्यकारान्तादेशे "अतो गुणे" इति  
पररूपत्वे च कृते 'अद + ङि' इति जाते "ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ" इति ङेः स्थाने  
स्मिनादेशे "अदसोऽसेर्दादु दो मः" इति दात्परस्योत्वे दस्य च मत्वे "आदेशप्रत्य-  
ययोः" इति षत्वे 'अमुष्मिन्' इति रूपं सिद्धम् । इति हलन्तपुलिङ्गप्रकरणम् ।

नहो घ इति । "हो ङः" इत्यतो 'हः' इत्यनुवर्तते, 'पदस्य' इत्यधिकृतम् "स्कोः  
संयोगाद्योरन्ते च" इत्यतोऽन्ते इत्यनुवर्तते । "झलो झलि" इत्यतो झलि इत्यनुवर्तते ।  
तदाह—नहो इत्येत्यादिना । उपानत् । 'जह-बन्धने' "जो नः" इति नत्वे उपनहते  
इति निग्रहे उपपूर्वात् 'सम्पदादित्वात्' कर्मणि क्तिप् । "नहिवृति" इत्यादिना पूर्व-  
पदस्य दीर्घः । उपानह्-इत्यङ्गः स्त्रीलिङ्गः,—'पाहुका, पाहुस्यान्स्त्री' इत्यमरः । कृ-

उष्णिहौ । उष्णिग्भ्याम् । यौः, दिवौ, दिवः । युभ्याम् । गीः, गिरौ, गिरः । एवं  
पुः । चतस्रः २ । चतसृणाम् । का, के, काः । सर्वावत् ॥ यः सौ अ२।११०।

न्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सावागते 'उपानह्+सु' इति स्थिते सोरुकारे गते 'सु'  
इत्यस्य "हल्ङ्याभ्यो दीर्घात्" इति लोपे "नहो घः" इति हकारस्य घत्वे "शलां  
जशोऽन्ते" इति घकारस्य दत्वे "वावसाने" इति चत्वे 'उपानत्' इति । पक्षे—'उपा-  
नद्' इति । उपानत्सु । 'उपानह्+सुप्' इत्यत्र पकारस्येत्संज्ञायां लोपे च "नहो घः"  
इति हस्य घत्वे "शलां जशोऽन्ते" इति घस्य दत्वे "खरि च" इति चत्वे 'उपानत्सु'  
इति रूपं सिद्धम् । उष्णिक् । उत्पूर्वात् णिहधातोः "ऋत्विग्दृष्टक्" इत्यादिना किनि  
तस्य सर्वस्य लोपे निपातनादलोपघत्वे च निष्पन्नः—उष्णिह्शब्दः । कृदन्तत्वात्प्राति-  
पदिकसंज्ञायां सावागते तस्य हल्ङ्यादिना लोपे "किन्प्रत्ययस्य कुः" इति कुत्वेन  
हकारस्य घत्वे "शलां जशोऽन्ते" इति जरत्वेन गत्वे "वावसाने" इति चत्वेन वा कत्वे  
'उष्णिक्' इति । पक्षे—'उष्णिग्' इति । उष्णिग्भ्याम् । 'उष्णिह्+भ्याम्' इत्यत्र  
"किन्प्रत्ययस्य कुः" इति कुत्वेन घत्वे तस्य जशत्वे च कृते रूपम् । सुपि—'उष्णिह्'  
इति । यौः । 'दिव्+सु' इत्यत्र "दिव औत्" इति वकारस्य औकारे "इको यणचि"  
इति यणि सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च 'यौः' इति सिद्धम् । युभ्याम् । 'दिव्+भ्याम्'  
इत्यत्र "दिव उत्" इति वस्योत्वे "इको यणचि" इति यणि 'द्यभ्याम्' इति रूपं  
सिद्धम् । गीः । 'गृ-निगारणे' क्तिप् "ऋत इद्धातोः" इति इत्वम्, "उरण् रपरः" इति  
रपरत्वम् । गिरशब्दात्सुबुत्पत्तिः, सोर्लोपः, "वोरूपघाया दीर्घ इकः" इति दीर्घे, रेफस्य  
विसर्गः, इति भावः । एवं पूरिति । गीर्वदित्यर्थः । 'पू-पालनपूरणयोः' क्तिप् "उदोष्य-  
पूर्वस्य" इत्युत्वं रपरत्वम् । पुरशब्दात् सोर्लोपः "वोरूपघायाः" इति दीर्घः, रेफस्य  
विसर्ग इति भावः । चतस्रः । 'चतुर्+जस्' इत्यत्र "त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ"  
इति चतुरशब्दस्य चतस्रादेशे विहिते जसो जकारस्य "चुट्" इतीत्संज्ञायां "तस्य  
लोपः" इति लोपे च "अचिर ऋतः" इति ऋकारस्य रेफत्वे, सस्य रुत्वे रेफस्य विस-  
र्गत्वे च कृते 'चतस्रः' इति सिद्धम् । एवं शस्यपि—'चतस्रः' इति । चतसृणाम् ।  
'चतुर्+आम्' इति स्थिते "त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ" इति चतस्रादेशे 'चतसृ+  
आम्' इति जाते अत्र "अचिर ऋतः" इति ऋकारस्य रेफादेशे प्राप्ते "नुमचिर-  
त्तुज्जवाभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन" इति पूर्वविप्रतिषेधेन तं बाधित्वा "हस्वनघापो  
नुट्" इति नुटि, उटि गते टित्वादाद्यावयवे जाते 'चतसृ+नाम्' इति स्थिते "नासि"  
इति दीर्घे प्राप्ते "न तिसृचतसृ" इति निषिद्धे "ऋवर्णाञ्चस्य णत्वं वाच्यम्" इति णत्वे  
'चतसृणाम्' इति रूपं सिद्धम् । का । 'किम्+सु' अत्र "किमः कः" इति कादेशे  
"अनेकाल्शित्सर्वस्य" इति सर्वस्य स्थाने जाते "अजाघतष्टाप्" इति टापि "चुट्" इति  
उकारस्य "हलन्त्यम्" इति पकारस्य चेत्संज्ञायां "तस्य लोपः" इति लोपे



इदमो दस्य यः स्यात्सौ । इयम् । त्यदाद्यत्वं पररूपत्वम् । टाप् । “दश्च” इति मः । इमे, इमाः । इमाम् । अनया । हलि लोपः । आभ्याम्, आभिः । अत्यै । अस्याः,

“अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घादेशे ‘का सु’ इति भूते उकारस्य “उपदेशेऽजनुनासिक इत्” इति इत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे “हल्ङ्याभ्यो दीर्घात्” इति स्लोपे ‘का’ इति सिद्धम् । के । ‘किम् + औ’ इत्यत्र “किमः कः” इति कादेशे “अजाद्यतष्टाप्” इति टापि टकारपकारयोरित्संज्ञायां लोपे च “अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घे “औङ आपः” इति ‘शी’ आदेशे शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “आद्गुणः” इति गुणे ‘के’ इति रूपम् । काः । ‘किम् + जस्’ अत्र कादेशे टापि, सवर्णदीर्घे, स्त्वे विसर्गे च रूपम् । सर्वावदिति । सर्वाशब्दवादित्यर्थः । यः साविति । “इदमो मः” इत्यतः इदमः इत्यनुवर्तते, “दश्च” इत्यतो ‘दः’ इति च षष्ठ्यन्तमनुवर्तते । तदाह-इदमो दस्येति । इयम् । ‘इदम् + स्’ इति स्थिते “यः सौ” इति दस्य यकारादेशे ‘इयम् + स्’ इति जाते “त्यदादीनामः” इत्यकारादेशे प्राप्ते तं बाधित्वा “इदमो मः” इति मकारस्य मकारादेशे कृते “हल्ङ्याभ्यो दीर्घात्” इति स्लोपे ‘इयम्’ इति सिद्धम् । इमे । ‘इदम् + औ’ इत्यत्र “त्यदादीनामः” इत्यकारान्तादेशे “अतो गुणे” इति पररूपे ‘इद् औ’ इति जाते “अजाद्यतष्टाप्” इति टापि, टकारपकारयोरित्संज्ञायां लोपे च “अकः सवर्णे दीर्घः” इति सवर्णदीर्घे ‘इदा + औ’ इति भूते “औङ आपः” इति औ स्थाने श्यादेशे शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “आद्गुणः” इति गुणे ‘इदे’ इति जाते “दश्च” इति द्कारस्य मकारे कृते ‘इमे’ इति रूपम् । इमाः । ‘इदम् + जस्’ इत्यत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च, टापि अनुबन्धलोपे, सवर्णदीर्घे ‘इदा + जस्’ इति स्थिते जकारस्य “चुट्” इतीत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे च कृते “दश्च” इति दस्य मत्वे विहिते “अकः सवर्णे दीर्घः” इति सवर्णदीर्घे सकारस्य स्त्वे रेफस्य विसर्गत्वे च ‘इमाः’ इति रूपं सिद्धम् । इमाम् । ‘इदम् + अम्’ इत्यत्र त्यदाद्यत्वे पररूपे च कृते “अजाद्यतष्टाप्” इति टापि, टकारपकारयोरित्संज्ञायां लोपे च “अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घे ‘इदा + अम्’ इति जाते “दश्च” इति दस्य मत्वे “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपैकादेशे ‘इमाम्’ इति रूपम् । अनया । ‘इदम् + टा’ इत्यत्र त्यदाद्यत्वे, पररूपत्वे, टापि, ‘इदा + टा’ इति जाते “चुट्” इति टकारस्येत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे सवर्णदीर्घे ‘इदा + आ’ इति जाते “अनाप्यकः” इतीदम् इद्भागस्य अनादेशे ‘अना आ’ इति जाते “आङि चापः” इत्याबन्ताङ्गस्यैकारे कृते “एचोऽयवायावः” इत्ययादेशे संयोगे च कृते ‘अनया’ इति रूपम् । आभ्याम् । ‘इदम् + भ्याम्’ अत्र त्यदाद्यत्वे, पररूपत्वे, टापि अनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे ‘इदा + भ्याम्’ इति जाते “हलि लोपः” इति इद्भागस्य लोपे कृते ‘आभ्याम्’ इति । आभिः । ‘इदम् + भिस्’ इति स्थिते “त्यदादीनामः” इत्यस्त्वे “अतो गुणे” इति पररूपत्वे “अजाद्यतष्टाप्” इति टापि टकारपकारयोरित्संज्ञायां लोपे च “अकः सवर्णे दीर्घः” इति

अनयोः, आसाम् । अस्याम् । आसु । त्यदाद्यत्वम् । टा० । स्या, त्ये, त्याः । एवं दीर्घे 'इदा + भिस्' इति जाते "हलि लोपः" इतीद्भागस्य लोपे भिसः सकारस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च 'आभिः' इति रूपम् । अस्यै । 'इदम् + डे' इति स्थिते "त्यदादीनामः" इत्यत्वे "अतो गुणे" इति पररूपत्वे "अजाद्यतष्टाप्" इति टापि टकारपकारयोरित्संज्ञायां लोपे च "अकः सवर्णे दीर्घः" इति सवर्णदीर्घे 'इदा + डे' इति जाते "लशक्तद्धिते" इति ङकारस्येत्संज्ञायां "तस्य लोपः" इति लोपे च कृते "सर्वनाम्नः स्याङ्ङ्स्वश्च" इति ङेरेकारस्य स्याडागमे आपो ह्रस्वे च जाते टित्वादाद्यावयवे भूते टकारस्य "हलन्त्यम्" इतीत्संज्ञायां "तस्य लोपः" इति लोपे 'इदस्या + ए' इति स्थिते "वृद्धिरेचि" इति वृद्धौ 'इद + स्यै' इति जाते "हलि लोपः" इतीद्भागस्य लोपे "अस्यै" इति । अस्याः । 'इदम् ङसि' इत्यत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च "अजाद्यतष्टाप्" इति टापि अनुबन्धलोपे च "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घे ङकारेकारयोरित्संज्ञायां लोपे च 'इदा + अस्' इति जाते "सर्वनाम्नः स्याङ्ङ्स्वश्च" इति स्याटि, टित्वादाद्यावयवे आपो ह्रस्वे च टकारस्येत्संज्ञायां लोपे च 'इद + स्या अस्' इति भूते "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घे "हलि लोपः" इति इदमो इद्भागस्य लोपे सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च 'अस्याः' इति रूपम् । अनयोः । 'इदम् + ओस्' इत्यत्र त्यदाद्यत्वे, पररूपत्वे च कृते "अजाद्यतष्टाप्" इति टापि अनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे 'इदा + ओस्' इति स्थिते "अनाऽप्यकः" इति इद्भागस्य अनादेशे "आङि चापः" इति आबन्ताङ्गस्यैकारे "एचोऽयवायावः" इत्यादेशे सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च 'अनयोः' इति रूपम् । आसाम् । 'इदम् + आम्' इत्यत्र त्यदाद्यत्वे, पररूपत्वे च कृते टापि, सवर्णदीर्घे 'इदा + आम्' इति जाते, तत्र "आमि सर्वनाम्नः सुट्" इति सुटि, उटि गते, टित्वादाद्यावयवे जाते "हलि लोपः" इति इद्भागस्य लोपे 'आसाम्' इति रूपम् । अस्याम् । 'इदम् + ङि' इत्यत्र त्यदाद्यत्वे, पररूपत्वे, टापि, सवर्णदीर्घे, "ङेराम्नद्याम्नीभ्यः" इति ङेरामि "स्थानिवदादेशोऽनल्लिघौ" इति स्थानिवद्भावेन डित्वमादाय "सर्वनाम्नः स्याङ्ङ्स्वश्च" इति स्याटि, आपश्च ह्रस्वे, "हलि लोपः" इतीद्भागस्य लोपे 'अस्या + आम्' इति जाते "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घे 'अस्याम्' इति । आसु । 'इदम् + सुप्' त्यदाद्यत्वे, पररूपत्वे च कृते, टापि अनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे 'इदा + सुप्' इति भूते "हलन्त्यम्" इति पकारस्येत्संज्ञायां "तस्य लोपः" इति लोपे "हलि लोपः" इति इद्भागस्य लोपे 'आसु' इति रूपं सिद्धम् । स्या । 'त्यद् + सु' इत्यत्र त्यदाद्यत्वे, पररूपत्वे च कृते टापि, टकारपकारयोरित्संज्ञायां लोपे च सवर्णदीर्घे, "तदोः सः सावनन्ययोः" इति तस्य सत्वे "हल्ङादिना" सोर्लोपे 'स्या' इति रूपम् । त्ये । 'त्यद् + औ' इत्यत्र "त्यदादीनामः" इत्यत्वे "अतो गुणे" इति पररूपत्वे टापि, टकारपकारयोरित्संज्ञायां लोपे च "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घे 'त्या + औ' इति जाते "औङ आपः" इति औकारस्य षादेशे ञकारस्येत्संज्ञायां लोपे च "आद्गुणः" इति गुणे 'त्ये' इति रूपम् ।

तद्, यद्, एतद् । वाक्-वाग् । वाक्चै । वाग्भ्याम् । वाङ् । अप्रशब्दो नित्यं बहु-  
वचनान्तः । “असृन्” इति दीर्घः । आयः । अपः ॥ अपो मि ७४।४८। अप-  
स्तकारः स्याद् भादौ प्रत्यये । अङ्गिः, अङ्गयः, अगम् । अप्सु । दिक्-दिग्, दिशः ।  
दिग्भ्याम् । “त्यदादिषु” इति दृशेः किन्विधानादन्यत्रापि कुत्वम् । दक्-दग् ।  
दशौ, दग्भ्याम् । त्विट्-त्विङ् । त्विषौ । त्विङ्भ्याम् । “ससजुषोरुः” इति रुत्वम् ।

त्याः । ‘त्यद् + जस्’ इत्यत्र त्यदाद्यत्वे, पररूपत्वे टापि च, टकारपकारयोरित्संज्ञायां  
लोपे च ‘त्या + जस्’ इति स्थिते “जुट्” इति जकारस्येत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति  
लोपे “प्रथमयोः पूर्वसवर्णः” इति पूर्वसवर्णदीर्घादेशे प्राप्ते “नादिचि” इति निषिद्धे  
“अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घादेशे कृते सस्य “ससजुषोरुः” इति रुत्वे उकारस्येत्सं-  
ज्ञायां लोपे च रेफस्य विसर्गत्वे च ‘त्याः’ इति रूपम् । एवं तद्, यद्, एतदिति । तद्,  
यद् एतद् एतेभ्यो विभक्तौ परे अत्वपररूपटाप्सु सर्वावद्रूपाणि । तच्छब्दस्य तु तका-  
रस्य सत्वम् । एतच्छब्दस्य तु तकारस्य सत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वमिति  
विशेषः । वाग् । ‘वाच् + सु’ इत्यत्र सकारोत्तरवर्तिन उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते  
स् इत्यस्य “हल्ङ्यादिना” लोपे चकारस्य “चोः कुः” इति कुत्वेन कत्वे तस्य “झलां  
जशोऽन्ते” इति गत्वे “वावसाने” इति विकल्पेन कत्वे ‘वाक्’ इति । विकल्पाभाव-  
पक्षे ‘वाग्’ इति । वाग्भ्याम् । ‘वाच् + भ्याम्’ अत्र “चोः कुः” इति कत्वे “झलां जशो-  
ऽन्ते” इति गत्वे ‘वाग्भ्याम्’ इति । वाङ् । ‘वाच् + सुप्’ अत्र पकारस्येत्संज्ञायां लोपे  
च “चोः कुः” इति चकारस्य कुत्वेन कत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति सकारस्य कात्पर-  
कत्वात् मूर्धन्यादेशेन षत्वे कृष्णसंयोगेन चजाते ‘वाङ्’ इति । आपः । ‘अप् + जस्’  
इत्यत्र “अपृत्तृच्स्वप्नपृत्” इत्यादिना उपधादीर्घे कृते “जुट्” इति जकारस्ये-  
त्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे च कृते, कृते च संयोगे सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गत्वे  
च ‘आपः’ इति । अपोभिरिति । “अच उपसर्गात्तः” इत्यतः त इत्यनुवर्तते, तदाह—  
अपस्तकार इति । अङ्गिः । ‘अप् + भिस्’ इत्यत्र “अपो मि” इति पस्य तकारे “झलां  
जशोऽन्ते” इति तस्य दत्वे सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च कृते “अङ्गिः” इति । दिक्-  
दिग् । ‘दिश्-अतिसर्जने’ “ऋत्विक्” इत्यादिना किनि तस्य सर्वस्यापहारे कृदन्तत्वा-  
व्यातिपदिकसंज्ञायां सावागते लोपे कृते “हल्ङ्यादिना” सलोपे कृते ‘दिश्’ इति जाते  
तत्र “व्रश्चव्रस्जसृजसृज” इति षत्वे “झलां जशोऽन्ते” इति ङत्वे “किन्प्रत्ययस्य कुः”  
इति ङस्य कुत्वेन गत्वे “वावसाने” इति विकल्पेन कत्वे ‘दिक्’ इति । पक्षे-‘दिग्’  
इति । दिग्भ्याम् । ‘दिश् + भ्याम्’ इति स्थिते अत्र “व्रश्च” इति षत्वे “झलां जशोऽन्ते”  
इति ङत्वे “किन्प्रत्ययस्य कुः” इति कुत्वेन गत्वे ‘दिग्भ्याम्’ इति । दक्-दग् । ‘दश् +  
सु’ अत्र उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “हल्ङ्यादिभ्यो दीर्घात्” इति सूलोपे “व्रश्चव्रस्जसृज-  
सृज” इति षत्वे पस्य “झलां जशोऽन्ते” इति ङत्वे “किन्प्रत्ययस्य कुः” इति (किन्प्रत्यययो

सजूः, सजुषौ । सजूभ्याम् । आशीः, आशिषौ । आशीभ्याम् । असौ । उत्त्वमत्वे ।  
अमू । अमूः । अमुया । अमूभ्याम् । अमूभिः । अमुष्यै । अमूभ्यः । अमुभ्याः ।  
अमुयोः । अमूषाम् । अमुभ्याम् । अमूषु ॥ इति हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ॥

यस्माद्विहित इति बहुव्रीह्याश्रयणात्) कुत्वेन गकारे “वावसाने” इति गस्य कत्वे ‘हक्’ इति । पचे ‘हग्’ इति । इभ्याम् । ‘हश्+भ्याम्’ अत्र षडगाः प्राग्वत् । त्विट् । ‘त्विष्-दीप्तौ’ क्तिप् । सुलोपः । जश्त्वे चत्वे च रूपम् । त्विड्भ्याम् । ‘त्विष्+भ्याम्’ अत्र “झलां जशोऽन्ते” इति जश्त्वेन ङत्वे ‘त्विड्भ्याम्’ इति । सजूः । ‘सजुष्+सु’ अत्र सकारोत्तरवर्तिन उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च स् इत्यस्य “हल्ङ्यथाभ्यो दीर्घात्सुतिस्पर्शकं हल्” इति लोपे “ससजुषो रुः” इति षस्य रुत्वे उकारलोपे “वोरूपधाया दीर्घ इकः” इति जकारोत्तरवर्त्यकारस्य दीर्घत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च ‘सजूः’ इति रूपम् । सजूभ्याम् । ‘सजुष्+भ्याम्’ इत्यत्र “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति पदसंज्ञायां “ससजुषो रुः” इति षकारस्य रुत्वे उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते “वोरूपधाया दीर्घ इकः” इति जकारोत्तरवर्तिन उकारस्य दीर्घत्वे संयोगे च कृते ‘सजूभ्याम्’ इति । आशीः । ‘आशिष्+सु’ इत्यत्र उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च सकारस्य हल्ङ्यथादिना लोपे षत्वस्यासिद्धत्वात् “ससजुषो रुः” इति रुत्वे उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “वोरूपधाया दीर्घ इकः” इति शकारोत्तरवर्तिन इकारस्य दीर्घत्वे रेफस्य “खरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति विसर्गत्वे ‘आशीः’ इति रूपम् । आशीभ्याम् । ‘आशिष्+भ्याम्’ इत्यत्र “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति पदसंज्ञायां षत्वस्यासिद्धत्वात् “ससजुषोरुः” इति रुत्वे उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च जाते “वोरूपधाया दीर्घ इकः” इति उपधाभूतेकारस्य दीर्घत्वे ‘आशीभ्याम्’ इति रूपम् । असौ । ‘अदस्+सु’ इत्यत्र “अदस औ सुलोपश्च” इति सस्योत्वे सुलोपे च विहिते ‘अद+औ’ इति जाते “तदोः सः सावनन्त्ययोः” इति वकारस्य सकारे “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ च कृतायाम् ‘असौ’ इति । अमू । ‘अदस्+औ’ इति स्थिते “त्यदादीनामः” इत्यत्वे “अतो गुणे” इति पररूपे च कृते “अजाद्यतष्टाप्” इति टापि, टकारपकारयोरित्संज्ञायां लोपे च कृते “अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घे ‘अदा+औ’ इति जाते, अत्र “औड आपः” इति औस्थाने श्यादेशे “लशक्तद्धिते” इति शस्येत्संज्ञायां लोपे च “आद्गुणः” इति गुणे ‘अदे’ इति भूते अत्र “अदसोसेर्दादु दो मः” इति दात्परस्योत्वे दस्य च मत्वे ‘अमू’ इति रूपम् । अमूः । ‘अदस्+जस्’ अत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च टापि सवर्णदीर्घे जसो जकारस्य “जुद्” इतीत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे ‘अदा+अस्’ इति जाते, तत्र “अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घे च कृते ‘अदास्’ इति भूते “अदसोर्दादु दो मः” इति दात्परस्याकारस्योत्वे दस्य च मत्वे सो रुत्वे विसर्गत्वे च ‘अमूः’ इति रूपम् । द्वितीयायाम्—अमि, औटि, शसि च—अमुम्, अमू, अमूः इति । अमुया । ‘अदस्+टा’ इत्यत्र अत्वे पररूपत्वे टापि, सव-

## अथ हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ॥

स्वमोलुक् । दत्वम् । स्वनडुद् । स्वनडुही । “चतुरनडुहोः” इत्याम् । स्वन-

र्णदीर्घे टकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च ‘अदा+आ’ इति स्थिते “आङि चापः” इत्येत्वे अयादेशे संयोगे च कृते ‘अदया’ इति जाते तत्र “अदसोसेर्दादुदो मः” इति दात्परस्योत्वे दस्य च मत्वे ‘अमुया’ इति । अमृभ्याम् । ‘अदस्+भ्याम्’ अत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते टापि, अनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे ‘अदा+भ्याम्’ इति स्थिते “अदसोसेर्दादुदोमः” इति दात्परस्योत्वे दस्य च मत्वे ‘अमृभ्याम्’ इति । अमृभिः । अत्वपररूपटप्सु ऊत्वमत्वे, रुत्वविसर्गयोः सतोः रूपम् । अमुष्यै । ‘अदस्+ए’ अत्र अत्वपररूपटप्सु जातेषु ‘अदा+ए’ इति जाते तत्र “सर्वनाम्नः स्याड्ढस्वश्च” इति ङेः स्याडागसे आबन्ताङ्गस्य ह्रस्वे च कृते “वृद्धिरेचि” इति ष्टद्धौ उत्त्वमत्वे षत्वे च ‘अमुष्यै’ इति । अमृभ्यः । ‘अदस्+भ्यस्’ इत्यत्र अत्वपररूपटप्सु, ऊत्वमत्वे, रुत्वे, विसर्गे च रूपम् । अमुष्याः । ङसिङ्सोऽङ्वत्, रुत्वविसर्गौ तु विशेषः । अमुयोः । ‘अदस्+ओस्’ अत्र अत्वपररूपटप्सु, “आङि चापः” इत्येत्वे, अयादेशे च कृते ‘अदयोस्’ इति जाते “अदसोसेर्दादुदोमः” इत्युत्वे मत्वे च रुत्वविसर्गयोः ‘अमुयोः’ इति रूपम् । अमृषाम् । ‘अदस्+आम्’ अत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे टापि, सवर्णदीर्घे ‘अदा+आम्’ इति जाते तत्र “आमि सर्वनाम्नः सुट्” इति सुटि टित्वादाम आद्यावयवे जाते अनुबन्धलोपे ऊत्वमत्वे सस्य षत्वे च ‘अमृषाम्’ इति रूपम् । अमुष्याम् । ‘अदस्+ङि’ इति स्थिते, अत्वपररूपटप्सु, “ढेराग्न्याग्नीभ्यः” इति ङेरामि “सर्वनाम्नः स्याड्ढस्वश्च” इत्यामः स्याङि आपो ह्रस्वे च कृते ‘अदस्या+आम्’ इति जाते “अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घे “अदसोसेर्दादुदोमः” इति दात्परस्योत्वे दस्य च मत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे ‘अमुष्याम्’ इति । अमृषु । ‘अदस्+सुप्’ इत्यत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे टापि, सवर्णदीर्घत्वे ‘अदासु’ इति भूते “अदसोसेर्दादुदोमः” इति दात्परस्योत्वे दस्य च मत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति सस्य षत्वे ‘अमृषु’ इति रूपं सिद्धम् । इति हलन्तलीलिङ्गप्रकरणम् ।

स्वनडुद्, स्वनडुद् । सु-शोभनाः अनड्वाहः यस्य कुलस्येति बहुधीहौ, स्वनडु-ह्रस्वादात् नपुंसकलिङ्गात् सावागते ‘स्वनडुद्+सु’ इति स्थिते अत्र “स्वमोर्नपुंसकात्” इति सुलोपे “वसुक्षसुध्वंस्वनडुहां दः” इति हस्य दत्वे “वावसाने” इति दस्य तत्वे ‘स्वनडुद्’ इति । पठे—‘स्वनडुद्’ इति । स्वनडुही । ‘स्वनडुद्+औ’ इत्यत्र “नपुंसकाच्च” इति औस्थाने श्यादेशे शकारस्य “लशक्तद्धिते” इतीत्सञ्ज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे संयोगे च कृते ‘स्वनडुही’ इति । स्वनड्वांङि । ‘स्वनडुद्+जस्’ अत्र “जश्शसोः शिः” इति जसः स्थाने श्यादेशे शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “शि सर्वनामस्थानम्” इति सर्वनामस्थानसञ्ज्ञायाम् “चतुरनडुहोरामुदात्तः” इति आमि, मका-इत्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “इको यणचि” इति यणि ‘स्वनड्वाद्+इ’ इति जाते “नपुं-

इवांहि । पुनस्तद्वत् । शेषं पुंवत् । वाः, वारी, वारि । वाभ्याम् । चत्वारि । किम्, के, कानि । इदम्, इमे, इमानि । ( अन्वादेशे नपुंसके एनद्वक्तव्यः ) एनत्, एनद्, एने, एनानि । एनेच । एनयोः । अहः । “विभाषा द्विशयोः” । अह्नी-अहनी,

सकस्य झलचः” इति नुमि, उमि गते मित्वादन्त्यादचः परे “नश्चापदान्तस्य झलि” इत्यनुस्वारे ‘स्वनइवांहि’ इति रूपम् । पुनस्तद्वदिति । स्वनहुत्-स्वनहुद् । स्वन-हुही । स्वनइवांहि । शेषं पुंवदिति । स्वनहुहा, स्वनहुद्भ्याम्, स्वनहुद्भिः तृतीया । एवं सर्वत्र । वाः । ‘वार् + सु’ इत्यत्र “स्वमोर्नपुंसकात्” इति सुलोपे पदान्तत्वात् “खरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति रेफस्य विसर्गे ‘वाः’ इति रूपम् । वारी । ‘वार् + औ’ इत्यत्र ‘औ’ इत्यस्य स्थाने “नपुंसकाच्च” इति श्यादेशे शस्येत्संज्ञायां लोपे संयोगे च कृते ‘वारी’ इति । वारि । ‘वार् + जस्’ इत्यत्र “जश्शसोः शिः” इति जसः स्थाने श्यादेशे शस्येत्संज्ञायां लोपे च; कृते संयोगे ‘वारि’ इति । चत्वारि । ‘चतुर् + जस्’ इति स्थिते अत्र “जश्शसोः शिः” इति जसः स्थाने श्यादेशे कृते शस्येत्संज्ञायां लोपे च विहिते “शि सर्वनामस्थानम्” इति सर्वनामस्थानसंज्ञायां “चतुरनहुहोरासुदात्तः” इत्यामि, मकारस्येत्संज्ञायां लोपे च मित्वादन्त्यादचः परे जाते “इको यणचि” इति यणि संयोगे च कृते ‘चत्वारि’ इति रूपम् । किम् । “किम् + सु” अत्र “स्वमोर्नपुंसकात्” इति सोर्लुकि ‘किम्’ इति । क । ‘किम् + औ’ इति दशायां “किमः कः” इति ‘क’ आदेशे “नपुंसकाच्च” इति औइत्यस्य स्थाने शी आदेशे कृते शस्येत्संज्ञायां लोपे च “आद्गुणः” इति गुणे ‘के’ इति । कानि । ‘किम् + जस्’ अत्र “किमः कः” इति कादेशे “जश्शसोः शिः” इति श्यादेशे शस्येत्संज्ञायां लोपे च “शि सर्वनामस्थानम्” इति सर्वनामस्थानसंज्ञायां “नपुंसकस्य झलचः” इति नुमि उमि गते मित्वादन्त्यादचः परे “सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ” इति दीर्घत्वे संयोगे च कृते ‘कानि’ इति रूपम् । इदम् । ‘इदम् + सु’ अत्र “स्वमोर्नपुंसकात्” इति सोर्लुकि ‘इदम्’ इति । इमे । ‘इदम् + औ’ इत्यत्र “त्यदादिनामः” इत्यत्वे “अतो गुणे” इति पररूपत्वे “नपुंसकाच्च” इति ‘शी’ आदेशे शस्येत्संज्ञायां लोपे च “आद्गुणः” इति गुणे जाते “दश्च” इति दस्य मत्वे ‘इमे’ इति । इमानि । ‘इदम् + जस्’ अत्र “त्यदादीनामः” इत्यत्वे “अतो गुणे” इति पररूपत्वे “जश्शसोः शिः” इति शौ, शस्येत्संज्ञायां लोपे च “शि सर्वनामस्थानम्” इति सर्वनामस्थानसंज्ञायां “नपुंसकस्य झलचः” इति नुमि, उमि गते, मित्वात् “मिदचोऽन्त्यात्परः” इत्यन्त्यादचः परे जाते “सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ” इति नान्तोपधायाः दीर्घत्वे ‘इदानि’ इति जाते “दश्च” इति दस्य मत्वे ‘इमानि’ इति रूपम् । अन्वादेशे नपुंसके इति । इदमेतदोरिति शेषः । एनत्, एनद् । ‘इदम् अम्’ इति स्थिते “स्वमोर्नपुंसकात्” इत्यमो लुकि “अन्वादेशे नपुंसके एनत् वक्तव्यः” इतीदम् एनदादेशे “व्यवसाने” इति विकल्पेन कर्त्तव्यं ‘एनत्’ इति ।

अहानि ॥ अहन् ८।२।६८। अहन्नित्यस्य रुः स्यात् पदान्ते । अहोभ्याम् । दण्डि,  
दण्डिनी, दण्डीनि । “सम्बुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः” । हे दण्डिन्,  
हे दण्डि । दण्डिना । दण्डिभ्याम् । सुपथि । टेलोपः । सुपथी । सुपन्थानि । उक्-

पच्चे—‘एनद्’ इति । एने । ‘इदम् + औ’ अत्र “अन्वादेशे नपुंसके” इति एनदादेशे,  
त्यदाद्यत्वे, पररूपत्वे “नपुंसकाच्च” इति शी आदेशे शस्येत्संज्ञायां लोपे गुणे च कृते  
‘एने’ इति । एनानी । ‘इदम् + शस्’ अत्र एनदादेशे त्यदाद्यत्वे, पररूपत्वे, “जश्शसोः  
शिः” इति शौ सर्वनामस्थानसंज्ञायां नुमि, दीर्घे च ‘एनानि’ इति । एनेन । ‘इदम् +  
टा’ अत्र अन्वादेशे सति एनदादेशे त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते “टाडसिडसामिनात्स्याः”  
इति टास्थाने इनादेशे “आद्गुणः” इति गुणे ‘एनेन’ इति । एनयोः । ‘इदम् + ओस्’  
अत्र एनदादेशे त्यदाद्यत्वे, पररूपत्वे “ओसि च” इत्यदन्ताङ्गस्यैकारे अयादेशे स्त्वे  
विसर्गे च ‘एनयोः’ इति । अहः । ‘अहन् + सु’ इत्यत्र “स्वमोर्नपुंसकात्” इति सोर्लुकि “रो-  
ऽसुपि” इति नस्य रेफादेशे “खरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति विसर्गे च ‘अहः’ इति ।  
अह्नी—अहनी । ‘अहन् + औ’ अत्र ‘नपुंसकाच्च’ इति ‘शी’ आदेशे शस्येत्संज्ञायां  
लोपे च “यचि भम्” इति भसंज्ञायां “विभाषा डिश्योः” इति अनोऽकारस्य विक-  
ल्पेन लोपे ‘अन्ही’ इति । लोपाभावपच्चे—‘अहनी’ इति । अहानि । ‘अहन् + जस्’  
अत्र “जश्शसोः शिः” इति जसः स्थाने शौ कृते शस्येत्संज्ञायां लोपे च “शि सर्व-  
नामस्थानम्” इति सर्वनामस्थानसंज्ञायां “सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ” इति नान्त-  
स्योपधाया दीर्घत्वे ‘अहानि’ इति । भ्यामादौ हलि विशेषमाह—अहन्निति । “सस-  
जुषो रुः” इत्यतो रुरित्यनुवर्तते, “स्कोः संयोगाद्योः” इत्यतः अन्त इति च, पदस्य  
इत्यधिकृतम्, ‘अहन्’ इति लुसषष्ठीकम् । तदाह—अहन्नित्यस्येत्यादिना । अहोभ्याम् ।  
‘अहन् + भ्याम्’ इत्यत्र “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति पदसंज्ञायाम् “अहन्” इति  
नस्य स्त्वे “हशि च” इत्युत्वे “आद्गुणः” इति गुणे ‘अहोभ्याम्’ इति । दण्डि ।  
‘दण्डिन् + सु’ अत्र “स्वमोर्नपुंसकात्” इति सोर्लुकि नस्य “नलोपः प्रातिपदिकान्त-  
स्य” इति नलोपे ‘दण्डि’ इति । हे दण्डिन्—हे दण्डि । हे दण्डिन् + सु अत्र “स्वमो-  
र्लुक्” इति सोर्लुकि कृते नस्य पदान्तत्वात् “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति लोपे  
प्राप्ते “सम्बुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः” इति विकल्पेन निषिद्धे ‘हे दण्डिन्’  
इति । विकल्पाभावपच्चे ‘हे दण्डि’ इति । दण्डिनी । ‘दण्डिन् + औ’ अत्र “नपुंस-  
काच्च” इति श्यादेशे शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते, ‘दण्डिनी’ इति । दण्डीनि । ‘द-  
ण्डिन् + जस्’ अत्र “जश्शसोः शिः” इति जसः स्थाने शौ “शि सर्वनामस्थानम्”  
इति सर्वनामस्थानसंज्ञायां “सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ” इति नान्तोपधाया दीर्घत्वे  
संयोगे च कृते ‘दण्डीनि’ इति रूपम् । दण्डिना । ‘दण्डिन् + टा’ इत्यत्र “बुद्ध” इति  
टकारस्येत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे कृते संयोगे च कृते ‘दण्डिना’ इति ।

ऊर्ग, ऊर्जी, ऊर्ज्वी । नरजानां संयोगः । तत्, ते, तानि । यत्, ये, यानि । एतत्, एते, एतानि । गवाक्, गोची, गवाधि । पुनस्तद्वत् । गोचा । गवाभ्याम् । शकृत्,

दण्डिभ्याम् । 'दण्डिन् + भ्याम्' इत्यत्र "स्वादिषु०" इति पदत्वात् "नलोपः प्राति०" इति नलोपे 'दण्डिभ्याम्' इति । सुपथि । 'सुपथिन् + सु' अत्र "स्वमोर्नपुंसकात्" इति सोर्लुकि "नलोपः प्राति०" इति नलोपे 'सुपथि' इति । सुपथी । 'सुपथिन् + औ' इत्यत्र "नपुंसकाच्च" इति श्यादेशे शस्येत्संज्ञायाम् लोपे च "यचि भम्" इति भसंज्ञायाम् "भस्य टेलोपः" इति टिसंज्ञकस्य भस्य इच्चित्यस्य लोपे संयोगे च कृते 'सुपथी' इति । सुपन्थानि । 'सुपथिन् + जस्' अत्र "जश्शसोः शिः" इति जसः स्थाने शौ कृते शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते "शि सर्वनामस्थानम्" इति सर्वनामस्थानसंज्ञायाम् "इतोऽस्सर्वनामस्थाने" इति थकारान्तःपातिन इकारस्याकारे कृते 'सुपथिन् + इ' इति जाते "थोन्थः" इति थस्य न्थादेशे "सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ" इति नान्तोपधायाः दीर्घत्वे 'सुपन्थानि' इति । ऊर्क् । 'ऊर्ज् + सु' अत्र "स्वमोर्नपुंसकात्" इति सोर्लुकि "चोः कुः" इति जस्य कुत्वेन गत्वे "वाऽवसाने" इति विकल्पेन कत्वे 'ऊर्क्' इति । पच्चे—ऊर्ग् इति । ऊर्जी । 'ऊर्ज् + औ' अत्र "नपुंसकाच्च" इति श्यादेशे शस्येत्संज्ञायां लोपे च जाते संयोगे कृते 'ऊर्जी' इति । ऊर्ज्जि । 'ऊर्ज् + जस्' अत्र "जश्शसोः शिः" इति जसः स्थाने श्यादेशे "शि सर्वनामस्थानम्" इति सर्वनामस्थानसंज्ञायाम्, शसः शस्येत्संज्ञायां लोपे च "नपुंसकस्य झलचः" इति नुमि उमि गते मित्वादन्त्यादचः परे "नश्चापदान्तस्य झलि" इत्यनुस्वारे "अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः" इति परसवर्णे च कृते 'ऊर्ज्जि' इति रूपम् । तत् । 'तत् + सु' अत्र "स्वमोर्नपुंसकात्" इति सोर्लुकि 'तत्' इति । अत्र "त्यदादीनामः" इति अत्वं न शङ्क्यम् । विभक्तिपरत्वाभावात् । ते । 'तत् + औ' अत्र "त्यदादीनामः" इत्यत्वे "अलोऽन्त्यस्य" इत्यन्त्यस्य जाते 'त + अ + औ' इति स्थिते "अतो गुणे" इपि पररूपत्वे कृते "नपुंसकाच्च" इति श्यादेशे शस्येत्संज्ञायां लोपे च "आद्गुणः" इति गुणे कृते 'ते' इति । तानि । 'तत् + औ' अत्र त्यदाद्यत्वे, पररूपत्वे, जसः शौ, अनुबन्धलोपे, सर्वनामस्थानसंज्ञायाम्, "नपुंसकस्य झलचः" इति नुमि, उमि गते मित्वादन्त्यादचः परे "सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ" इति नान्तोपधाया दीर्घत्वे संयोगे च कृते 'तानि' इति रूपम् । यत् । 'यत् + सु' अत्र "स्वमोर्नपुंसकात्" इति सोर्लुकि कृते 'यत्' इति । ये । 'यत् + औ' अत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते औस्थाने श्यादेशे शस्येत्संज्ञायाम् लोपे च जाते "आद्गुणः" इति गुणे 'ये' इति । यानि । 'यत् + जस्' अत्र अत्वे, पररूपत्वे जसः शौ अनुबन्धलोपे, सर्वनामस्थानसंज्ञायाम् नुमि, उमि गते नान्तोपधायाः दीर्घत्वे च कृते 'यानि' इति रूपम् । एतत् । 'एतत् + सु' अत्र "स्वमोर्नपुंसकात्" इति सोर्लुकि 'एतत्' इति । एते । 'एतत् + औ' अत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे "न-



शकृती, शकृन्ति । ददत् । ददती । वा नपुंसकस्य अ१।७६। अभ्यस्तात्परो यः

पुंसकाच्च" इति श्यादेशे शस्येत्संज्ञायां लोपे च "आद्गुणः" इति गुणे 'एते इति । एतानि । 'एतत् + जस्' अत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे "जश्शसोः शिः" इति जसः शौ "शि सर्वनामस्थानम्" इति सर्वनामस्थानसंज्ञायां शस्येत्संज्ञायां लोपे च "नपुंसकस्य झलचः" इति नुमि उमि गते मित्वादन्यादचः परे "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ" इति नान्तोपधाया दीर्घत्वे संयोगे च कृते 'एतानि' इति । गवाक् । गामञ्चतीति विग्रहे किंनि उपपदसमासे सुब्लुकि, 'गो अन् च्' इति स्थिते कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सावागते 'गो अन् च् सु' इति "अनिदितां हल उपधाया विङिति" इति नलोपे 'गो अच सु' इत्यवशिष्टे "अवङ्स्फोटायनस्य" इत्यवङि ङस्येत्संज्ञायां लोपे च "ङिच्च" इत्यन्तादेशे "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घे "स्वमोर्नपुंसकात्" इति सोर्लुकि "क्विन्प्रत्ययस्य कुः" इति चस्य कत्वे "झलां जशोऽन्ते" इति गत्वे "वाऽवसाने" इति वा कत्वे 'गवाक्' इति । चत्वाभावपच्चे- 'गवाग्' इति । गोची । 'गो अन् च् औ' इत्यत्र "अनिदितां हल उपधायाः विङिति" इति नलोपे "नपुंसकाच्च" इति औस्थाने श्यादेशे शस्येत्संज्ञायां लोपे च "यचि भम्" इति भसञ्ज्ञायाम् "अचः" इति अचोऽकारस्य लोपे संयोगे च कृते 'गोची' इति रूपम् । गवाञ्चि । 'गो-अन् च् + जस्' इति स्थिते "अनिदितां हल उपधायाः विङिति" इति नलोपे "जश्शसोः शिः" इति जसः शौ कृते "शि सर्वनामस्थानम्" इति सर्वनामस्थानसंज्ञायां शस्येत्संज्ञायां लोपे च "नपुंसकस्य झलचः" इति नुमि, उमि गते मित्वादन्यादचः परे 'गो अन् च् इ' इति जाते "अवङ्स्फोटायनस्य" इत्यवङि ङस्येत्संज्ञायां लोपे च "ङिच्च" इत्यन्तादेशे "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घे 'गवान् च् इ' इति जाते "नश्चापदान्तस्य झलि" इत्यनुस्वारे "अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः" इति परसवर्णे संयोगे च कृते 'गवाञ्चि' इति भवति । पुनस्तद्वदिति । गवाक्-गवाग्, गोची, गवाञ्चि, इति यावत् । गोचा । 'गो अन् च् टा' इत्यत्र "चुट्" इति ङस्येत्संज्ञायां "तस्य लोपः" इति लोपे "अनिदिताम्" इति नलोपे "यचि भम्" इति भसञ्ज्ञायाम् "अचः" इति अचोऽकारस्य लोपे संयोगे च कृते 'गोचा' इति । गवाभ्याम् । 'गोअन् च् भ्याम्' इत्यत्र "अनिदिताम्" इति नलोपे "अवङ्स्फोटायनस्य" इत्यवङि ङस्येत्संज्ञायां लोपे च "ङिच्च" इत्यन्तादेशे सवर्णदीर्घे च 'गवाच् + भ्याम्' इति जाते "क्विन्प्रत्ययस्य कुः" इति कुत्वे "झलां जशोऽन्ते" इति गत्वे च 'गवाभ्याम्' इति रूपम् । एवं सर्वत्र बोध्यम् । शकृत् । 'शकृत् + सु' अत्र "स्वमोर्नपुंसकात्" इति सोर्लुकि सति 'शकृत्' इति । शकृती । "नपुंसकाच्च" इति श्यादेशोऽत्र बोध्यः । शकृन्ति । अत्र जसः "जश्शसोः शिः" इति श्यादेशो, अङ्गस्य च "नपुंसकस्य झलचः" इति नुमागमश्च बोध्यः । ददत् । शतृप्रत्ययान्तोऽयं ददत् शब्दः, तस्मात् स्वमोर्लुक् । ददती । 'ददत् + औ' अत्र "नपुंसकाच्च" इति श्यादेशे शस्येत्संज्ञायां

शेता तदन्तस्य क्रीबस्य वा नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने । ददन्ति-ददति । तुदत् ।  
आच्छीनघोर्नुम् ७।१।८०। अवर्णान्तादज्ञात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् वा  
स्यात् शीनयोः । तुदन्ती-तुदती । तुदन्ति । शप्श्यनोर्नित्यम् ७।१।८१। शप्श्य-  
नोरात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नित्यं नुम् शीनयोः । पचन्ती, पचन्ति । दीव्यत्,  
दीव्यन्ती, दीव्यन्ति । धनुः, धनुषी । “सान्त” इति दीर्घः । “नुम्वेसर्जनीय” इति

लोपे च संयोगे च कृते ‘ददती’ इति । वा नपुंसकस्येति । “नाभ्यस्ताच्छतुः” इत्यत  
‘अभ्यस्ताच्छतुः’ इत्यनुवर्तते, “इदितो नुम् धातोः” इत्यतो नुम् इति, “उगिदचाम्”  
इत्यतः सर्वनामस्थाने इति च अनुवर्तते । तदाह—अभ्यस्तादित्यादिना । ददन्ति, ददति ।  
‘ददत्+जस्’ अत्र “जश्शसोः शिः” इति जसः स्थाने शौ कृते शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे  
च “शि सर्वनामस्थानम्” इति सर्वनामस्थानसञ्ज्ञायां “नपुंसकस्य झलचः” इति  
नुमि प्राप्ते “नाभ्यस्ताच्छतुः” इति निषिद्धे “वा नपुंसकस्य” इति विकल्पेन नुमि  
उमि गते मित्वादन्त्यादचः परे “नश्चापदान्तस्य झलि” इति अनुस्वारे, “अनुस्वारस्य  
ययि परसवर्णः” इति परसवर्णे ‘ददन्ति’ इति । नुमभावे ‘ददति’ इति । तुदत् । ‘तुद-  
व्यथने’ अस्माच्छतृप्रत्यये “तुदादिभ्यश्शः” इति शः, शपोऽपवादः, “अतो गुणे” इति  
शतुरकारेण पररूपे तुदच्छब्दः, तस्मात्स्वमोर्लुक् इति भावः । आच्छीनघोर्नुमिति । अत्र  
“नाभ्यस्तात्” इत्यतः शतुरिति “वा नपुंसकस्य” इत्यतो वेति चानुवर्तते । तुदन्ती,  
तुदती । ‘तुदत्+औ’ इत्यत्र “नपुंसकाच्च” इति श्यादेशे शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च  
‘तुदत्+ई’ इति स्थिते अत्र “आच्छीनघोर्नुम्” इति नुमि उमि गते मित्वादन्त्यादचः  
परे जाते “नश्चापदान्तस्य झलि” इत्यनुस्वारे “अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः” इति  
परसवर्णे ‘तुदन्ती’ इति । नुमभावे ‘तुदती’ इति । तुदन्ति । ‘तुदत्+जस्’ अत्र  
“जश्शसोः शिः” इति जसः स्थाने शौ कृते शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च सर्वनामस्थान-  
सञ्ज्ञायाम् “नपुंसकस्य झलचः” इति नुमि, उमि गते मित्वादन्त्यादचः परे अनु-  
स्वारे परसवर्णे च कृते ‘तुदन्ति’ इति । शप्श्यनोर्नित्यमिति । “आच्छीनघोर्नुम्” इत्य-  
नुवर्तते, “नाभ्यस्ताच्छतुः” इत्यतः शतुरित्यनुवर्तते । अवयव इति चाध्याह्रियते ।  
तदाह—शप्श्यनोरादित्यादिना । पचन्ती । ‘पचत्+औ’ इत्यत्र “नपुंसकाच्च” इति  
औस्थाने श्यादेशे शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “शप्श्यनोर्नित्यम्” इति नुमि उमि गते  
मित्वादन्त्यादचः परे अनुस्वारे परसवर्णे च कृते ; कृते च संयोगे ‘पचन्ती’ इति ।  
पचन्ति । जश्शसोः शौ सर्वनामस्थानत्वान्नुमि रूपम् । दीव्यत् । दिवुधातोः लट्  
शतरि, शयन् “हलि च” इति दीर्घः । दीव्यच्छब्दात् स्वमोर्लुगिति भावः । दीव्यन्ती ।  
औळः श्याम्, “शप्श्यनोर्नित्यम्” इति नुमि रूपम् । दीव्यन्ति । जश्शसोः शौ सर्वना-  
मस्थानत्वात् नुमिति भावः । धनुः । ‘धनुष्+सु’ अत्र “स्वमोर्नपुंसकात्” इति  
सोर्लुकि, यस्य अस्तिदत्त्वात् “सप्तधुषी रुः” इति एवे अनुबन्धलोपे “सप्तधुषी” इति

षः । धनूषि । धनुषा, धनुर्भ्याम् । एवं चतुर्हविरादयः । पयः, पयसी, पयांसि । पयसा, पयोभ्याम् । सुपुम्, सपुंसी, सुपुमांसि । अदः । विभक्तिकार्यम्, उत्त्वमत्वे । अमू, अमूनि । शेषं पुंवत् ॥ इति हलन्ता नपुंसकलिङ्गाः ॥

जर्जनीयः” इति रेफस्य विसर्गत्वे च कृते ‘धनुः’ इति रूपम् । धनुषी । ‘धनुष् + औ’ अत्र “नपुंसकाच्च” इति औस्थाने श्यादेशे शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे संयोगे च कृते ‘धनुषी’ इति । धनूषि । ‘धनुष् + जस्’ अत्र “जश्शसोः शिः” इति जसः शौ कृते शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “शि सर्वनामस्थानम्” इति सर्वनामस्थानसञ्ज्ञायाम् “नपुंसकस्य झलचः” इति नुमि, उमि गते मित्वादन्यादचः परे जाते “सान्तमहतः संयोगस्य” इति सान्तसंयोगस्योपधायाः दीर्घत्वे “नश्चापदान्तस्य झलि” इत्यनुस्वारे “नुम्विसर्जनीयश्चार्वायेऽपि” इति सस्य षत्वे संयोगे च कृते ‘धनूषि’ इति रूपम् । धनुषा । ‘धनुष् + टा’ अत्र “चुट्” इति टकारस्येत्सञ्ज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे संयोगे च कृते ‘धनुषा’ इति । धनुर्भ्याम् । ‘धनुष् + भ्याम्’ अत्र षत्वस्यासिद्धत्वात् “ससञ्जुषो रुः” इति रुत्वे उकास्य “उपदेशेऽजनुनासिक इत्” इतीत्सञ्ज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे संयोगे च कृते “धनुर्भ्याम्” इति रूपम् । एवं चतुर्हविरादय इति । चक्षुः, चक्षुषी, चक्षंषि । चक्षुषा, चक्षुर्भ्याम् । इत्यादि । हविः, हविषी, हवींषि । हविषा, हविर्भ्याम् । इत्यादि । पयः । ‘पयस् + सु’ अत्र “स्वमोर्नपुंसकात्” इति सोर्लुकि, सस्य “ससञ्जुषो रुः” इति रुत्वे उकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते रेफस्य “स्वरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति विसर्गे ‘पयः’ इति । पयसी । ‘पयस् + औ’ अत्र “नपुंसकाच्च” इति औस्थाने श्यादेशे शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे संयोगे च कृते ‘पयसी’ इति । पयांसि । ‘पयस् + जस्’ अत्र “जश्शसोः शिः” इति जसः स्थाने शौ कृते शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “शि सर्वनामस्थानम्” इति सर्वनामस्थानसञ्ज्ञायां “नपुंसकस्य झलचः” इति नुमि उमि गते मित्वादन्यादचः परे “सान्तमहतः संयोगस्य” इति सान्तसंयोगस्योपधायाः दीर्घत्वे अनुस्वारे परसवर्णे च जाते संयोगे च कृते ‘पयांसि’ इति । पयसा । ‘पयस् + टा’ अत्र टकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते, कृते च संयोगे ‘पयसा’ इति । पयोभ्याम् । सस्य रुत्वे, “हशि च” इति रोरुत्वे, गुणे च रूपम् । सुपुम् । सु-शोभनः पुमान् यस्य गृहस्य इति बहुव्रीहौ, सुपुंसञ्ज्ञात् स्वमोर्लुक्, संयोगान्तलोपः । सुपुंसी । ‘सुपुंस् + औ’ अत्र “नपुंसकाच्च” इति औस्थाने श्यादेशे शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे संयोगे च कृते ‘सुपुंसी’ इति । सुपुमांसि । ‘सुपुंस् + जस्’ अत्र “जश्शसोः शिः” इति जसः स्थाने शौ कृते शस्येत्सञ्ज्ञायाम्, लोपे च “शि सर्वनामस्थानम्” इति सर्वनामस्थानसञ्ज्ञायां “पुंसोऽसुङ्” इति असुङि, ङस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च उकारे गते “अनेकालक्षित्सर्वस्य” इति सर्वस्यादेशे प्राप्ते “ङिच्च” इत्यन्तादेशे जाते ‘सुपुमस् + इ’ इति जाते “नपुंसकस्य झलचः” इति नुमि, उमि गते, मित्वादन्यादचः परे “सान्त-

## ॥ अथान्वयप्रकरणम् ॥

स्वरादिनिपातमव्ययम् १।१।३७। स्वरादयो निपाताश्चाव्ययसंज्ञाः स्युः ।

स्वर् अन्तर् प्रातर् पुनर् सनुतर् उच्चैस् नीचैस् शनैस् ऋधक् ऋते युगपत् आरात् पृथक् ह्यस् श्वस् दिवा रात्रौ सायं चिरम् मनाक् ईषत् जोषम् तूष्णीम् बहिस् अवस् समया निकषा स्वयम् वृथा नक्तम् नन् हेतौ इद्वा अद्वा सामि वत्—ब्राह्मणवत् क्षत्रि-

महत् संयोगस्य” इति सान्तसंयोगगतस्य नान्तस्योपधाया दीर्घत्वे नस्यानुस्वारे च कृते ‘सुपुमांसि’ इति रूपम् । अदः । अदसशब्दात् स्वमोलुक्, स्वविसर्गौ, सान्तत्वात् न सुत्वम्, लुका लुप्तत्वात् त्यदाद्यत्वं नेति भावः । औडादावाह—विभक्तिकार्यमिति । त्यदाद्यत्वादिकमित्यर्थः । उत्त्वमत्वे । “पूर्वत्रासिद्धम्” इति विभक्तिकार्योत्तरम् उत्त्वमत्वे इत्यर्थः । अमू । ‘अदस्+औ’ इति स्थिते अत्र “त्यदादीनामः” इत्यत्वे “अतो गुणे” इति पररूपत्वे “नपुसकाच्च” इति औस्थाने श्यादेशे शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “आद्गुणः” इति गुणे ‘अदे’ इति जाते “अदसोसेर्दादुदोमः” इति दात्परस्योत्वे दस्य च मत्वे ‘अमू’ इति । अमूनि । ‘अदस्+जस्’ अत्र त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे “जश्शसोः शिः” इति श्यादेशे शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “शि सर्वनामस्थानम्” इति सर्वनामस्थानसञ्ज्ञायां “नपुसकस्य झलचः” इति नुमि, उमि गते मित्वादन्त्यादचः परे “सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ” इति नान्तोपधाया दीर्घत्वे ‘अदानि’ इति जाते “अदसोसेर्दादुदोमः” इति दात्परस्याकारस्योत्वे दस्य च मत्वे ‘अमूनि’ इति रूपम् । शेषम् । अमुना, अमूभ्याम्, अमीभिः । इत्यादिः । पुंवदिति । पुंल्लिङ्गे यथोक्तं, तद्वदिति यावत् ।

इति हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ।

स्वरादिनिपातमव्ययमिति । स्वर आदियेषान्ते स्वरादयः, ते च ते निपाताश्चेति समाहारद्वन्द्वः । फलितमाह—स्वरादय इति । स्वरादीन् पठति—स्वरित्यादिना । स्वरादीनां चादीनां च पृथक्पाठस्तु “निपाता आद्युदात्ताः” इति स्वरभेदार्थः, चादीनामसत्त्ववाचिनामेवाव्ययत्वम्, स्वरादीनां तु सत्त्ववाचिनामसत्त्ववाचिनां च तदिति व्यक्त्यर्थश्च । स्वर—स्वर्ग—पारत्रिकसुखविशेषे, परलोके च । अन्तर्—मध्ये । प्रातर्—प्रत्युषे । पुनर्—अप्रथमे विशेषे च । सनुतर्—अन्तर्धाने । स्वराद्याः पञ्च रेफान्ताः । तेन स्वर्याति प्रातर्त्रेत्यादौ “हृशि च” इत्युत्वं न । तत्र ‘रो’ इत्युकारानुबन्धग्रहणात् । उच्चैस्—महति । नीचैस्—अल्पे । शनैस्—क्रियासामान्ये । ऋधक्—सत्ये । वियोगज्ञैर्व्यसामीप्यलाघवेष्वित्यन्ये । ऋते—वर्जने । युगपत्—एककाले । आरात्—दूरसमीपयोः । पृथक्—भिन्ने । ह्यस्—अतीतेऽहि । श्वस्—अनागतेऽहि । दिवा—दिवसे । रात्रौ—निशि । सायम्—निशासुखे । चिरम्—बहुकाले । मनाक्, ईषत्—इदं ह्यमल्पे । जोषम्—सुखे, मौने च । तूष्णीम्—मौने । बहिस्, अवस्—इदं ह्ययं बाह्ये । समया—समीपे, मध्ये च । निकषा—अन्तिके । स्वयम्—आत्मनेत्यर्थे । वृथा—व्यर्थे ।

यवत् सना सनत् सनात् उपधा तिरस् अन्तरा अन्तरेण ज्योक् कम् शम् सहसा  
 विना नाना स्वस्ति स्वधा अलम् वषट् श्रौषट् वौषट् अन्यत् अस्ति उपांशु क्षमा  
 विहायसा दोषा मृषा मिथ्या मुधा पुरा मिथो मिथस् प्रायस् मुहुस् प्रवाहुकम् प्रवाहिका  
 आर्यहलम् अभीक्ष्णम् साकं सार्धम् नमस् हिरूक् धिक् अथ अम् आम् प्रताम् प्रशान्  
 प्रताम् मा माङ् । आकृतिगणोऽयम् । च वा ह अह एव एवम् नूनम् शश्वत् युगपत्  
 मूयस् कूपत् सूपत् कुवित् नेत् चेत् चण् यत्र कञ्चित् नह हन्त माकिः माकिम् नकिः

नक्तम्—रात्रौ । नञ्—निषेधे । “तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता । अप्राशस्त्यं  
 विरोधश्च नञर्थः षट् प्रकीर्तिताः । इत्यन्ये । हेतौ—निमित्ते । इद्धा—प्राकाशये । अद्धा—  
 स्फुटावधारणयोः । सामि—अर्द्धे, जुगुप्सिते च । वत्—तुल्ये । सना, सनत्, सनात्—  
 एतत्त्रयं नित्ये । उपधा—भेदे । तिरस्—अन्तर्द्धौ, तिर्यगर्थे, पराभवे च । अन्तरा—मध्ये,  
 विनार्थे च । अन्तरेण—वर्जने । ज्योक्—कालभूयस्त्वे, प्रश्ने, शीघ्रार्थे, सम्प्रति इत्यर्थे  
 च । कम्—धारिमूर्द्धानिन्दासुखेषु । शम्—सुखे । सहसा—आकस्मिकाविमर्शयोः ।  
 विना—वर्जने । नाना—अनेकविनार्थयोः । स्वस्ति—मङ्गले । स्वधा—पितृहविर्दाने ।  
 अलम्—भूषणपर्यासिशक्तिवारणनिषेधेषु । वषट्, श्रौषट्, वौषट्—एतत्त्रयं देवह-  
 विर्दाने । अन्यत्—अन्यार्थे । अस्ति—सत्तायाम् । उपांशु—अप्रकाशोच्चारणे, रहस्ये  
 च । क्षमा—क्षान्तौ । विहायसा—आकाशे । दोषा—रात्रौ । मृषा, मिथ्या—इदं द्वयं  
 वितथे । मुधा—व्यर्थे । पुरा—अविरते, चिरातीते भविष्यदासन्ने च । मिथो, मिथस्—  
 इदं द्वयं रहसि, संहार्ये च । प्रायस्—बाहुल्ये । मुहुस्—पुनरर्थे । प्रवाहुकम्—समकाले,  
 ऊर्ध्वार्थे च । प्रवाहिका—इति पाठान्तरम् । आर्यहलम्—बलात्कारे । अभीक्ष्णम्—  
 पौनःपुन्ये । साकं, सार्धम्—इदं द्वयं संहार्ये । नमस्—नतौ । हिरूक् + वर्जने । धिक्—  
 निन्दाभर्त्सनयोः । अथ—आरम्भप्रश्नकात्स्न्यार्थिकारप्रतिज्ञासमुच्चयेषु । अम्—क्षौण्ये,  
 अल्पे च । आम्—अङ्गीकारे । प्रताम्—ग्लानौ । प्रशान्—समानार्थे । मा, माङ्—एतौ  
 निषेधे । आकृतिगणोऽयमिति । ततश्च अन्येऽप्येवं जातीयकाः—कामम्—स्वाच्छन्द्ये ।  
 प्रकामम्—अतिशये । भूयस्—पुनरर्थे, इत्यादयो ज्ञेयाः । अथ चादीनाह—च, वा ह  
 अह एव इत्यादिना । च—समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहारेषु । वा—विकल्पादिषु ।  
 ‘वास्याद्विकल्पोपमयोरिवार्थेऽपि समुच्चये । ह—प्रसिद्धौ । अह—अद्भुते,  
 खेदे च । एव—अवधारणे, अनवकलसौ च । एवम्—उक्तपरामर्शे । नूनम्—निश्चये,  
 तर्के च । शश्वत्—पौनःपुन्ये, नित्ये, संहार्ये च । युगपत्—एककाले । मूयस्—पुनरर्थे,  
 आधिक्ये च । कूपत्—प्रश्ने प्रशंसायाञ्च । कुवित्—भूयर्थे प्रशंसायाञ्च । नेत्—शङ्का-  
 र्थां प्रतिषेधविचारसमुच्चयेषु च । चेत्—यद्यर्थे । चण्—अयं चेदर्थे गित्, समुच्चया-  
 दिध्वननुबन्धकः । स्वरे भेदः फलम् । कञ्चित्—इष्टप्रश्ने । यत्र—अनवकलप्यमर्षग-  
 हृत्तिर्येषु । नह—प्रत्यारम्भे । हन्त—हर्षे, विषादेऽनुकम्पायां स्वभावप्रारम्भे च । माकिः,

नकिम् माङ् नञ् यावत् तावत् त्वं द्वै न्वै रै श्रौषट् वौषट् स्वाहा स्वधा वषट् तुम्  
तथाहि खलु किल अथो अथ सुष्ठु स्म आदह । उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूप-  
काश्च । अवदत्तम् अहयुः अस्तिक्षीरा अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ पशु शुक्म  
यथाकथाच पाट् प्याट् अङ्ग है हे भोः अये व विष् एकपदे युत् आतः । चादिर-  
प्याकृतिगणः । तसिलादयः प्राक् पाशपः । शस्प्रभृतयः प्राक्समासान्ते-  
भ्यः । अम् आम् कृत्वोऽर्थाः तसिवती नानाऔ एतदन्तमप्यव्ययम् । अत इत्यादि ॥  
कृन्मेजन्तः १।१।३६। कृयो मान्त एजन्तश्च तदन्तमव्ययं स्यात् । स्मारस्मारम् ।

माकिम्, नकिः—इदं त्रयं वर्जने । माङ्—नञौ—स्वरादिपूतौ । यावत्, तावत्—इदं  
द्वयं । साकल्यावधिमानावधारणेषु । त्वं—विशेषवितर्कयोः । ( न्वै—इति पाठा-  
न्तरम् ) । द्वै—वितर्के । रै—दाने अनादरे च । श्रौषट्, वौषट्, स्वाहा—इदं त्रयं  
देवहविदानि । स्वधा—पितृदाने । वषट् तुम्—तुङ्कारे । तथाहि—निदर्शने । खलु—निषे-  
धवाक्यालङ्कारनिश्चयेषु । किल—इवार्थे, वार्तायाम्, अलीके च । अथ—अयं मङ्गला-  
नन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्याधिकारप्रतिज्ञासमुच्चयेषु । सुष्ठु—स्वरभेदार्थः पुनः पाठः ।  
स्म—अतीते, पादपूरणे च । आदह—उपक्रमहिंसाकुत्सनेषु । उपसर्गविभक्तिस्वरेति ।  
चादिगणसूत्रमेतत् । उपसर्गप्रतिरूपकाः, विभक्त्यन्तप्रतिरूपकाः, अच्प्रतिरूपकाश्च,  
चादिगणे पाठ्या इत्यर्थः । अवदत्तम्—अत्र अवेत्युपसर्गरूपकं, नतूपसर्गः । तेन “अच  
उपसर्गात्तः” इति तो न । तस्मिन् सति ‘अवत्तम्’ स्यान्न तु ‘अवदत्तम्’ इति भावः ।  
अहयुः—अहमिति सुबन्तप्रतिरूपकम्, अहङ्कारे । अस्तिक्षीरा । अस्ति क्षीरं यस्याः इति  
बहुव्रीहिः । अत्र अस्तीति तिङन्तप्रतिरूपकमव्ययम्, न तु तिङन्तम् । स्वरप्रतिरूप-  
कानुदाहरति—अ इत्यादिना । ४—सम्बोधने । आ—वाक्यस्मरणयोः । इ—सम्बोध-  
नञ्जगुप्साविस्मयेषु । ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ—इति सप्तकं सम्बोधने । पशु—सम्य-  
गर्थ । शुक्म—शौघ्ये । यथाकथाच—सङ्घातोऽयमनादरे । पाट्, प्याट्, अङ्ग, है, हे,  
भोः, अये—एते सप्त सम्बोधने । ६—हिंसाप्रातिलोम्यपादपूरणेषु । विष्—नानार्थे ।  
एकपदे—अकस्मादित्यर्थे । युत्—कुत्सायाम् । आतः—इतोऽर्थे । चादिरप्याकृतिगण इति ।  
तेनाऽन्येऽपि—यत्, तत्—द्वयं हेतौ । आहोस्वित्—विकल्पे । सम्—सर्वतो भावे ।  
इत्यादयो बोध्याः । तसिलादय इति । “पञ्चम्यास्तसिल्” इत्यारभ्य “द्वित्र्योश्च धमुञ्”  
इत्यन्ताः । शस्प्रभृतय इति । “बङ्गल्पात्” इत्यारभ्य “अव्यक्तानुकरणात्” इति  
द्वानन्ता इत्यर्थः । अम्, आमिति । “अमु च च्छन्दसि” इत्यम्, “किमेत्तिङ्बन्ध”  
इत्याम् च गृह्यते । कृत्वोऽर्था इति । “संख्यायाः क्रियाभ्यामृत्तिगणने कृत्वमुच्” “हि-  
त्रिचतुर्भ्यस्सुच्” “विभाषा बहोर्धा” इति त्रय इत्यर्थः । तसिवती इति । “तेनैकदिक्,  
तसिश्च” इति तसिः “तेन तुल्यम्” इति वतिश्च गृह्यते । नानावाविति । “विनञ्या-  
नानाऔ न सह” इति विहितौ नानाऔ । कृन्मेजन्त इति । कृत् मेजन्त इति ऋभ्यः । अ

जीवसे । पिबध्यै । क्त्वातोसुनृकसुनः १११४० । एतदन्तमव्ययं स्यात् । कृत्वा । उदेतोः । विसृपः । अव्ययीभावश्च १११४१ । अधिहरि । अव्ययादाप्सुपः २।४।२२ । अव्ययाद्विहितस्यापः सुपश्च लुक् स्यात् । तत्र शालायाम् । सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु । वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥ वष्टि भागुरिरहोपमवाप्योरुपसर्गयोः । आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥ वगाहः, अवगाहः । पिधानम्-अपिधानम् । इत्यव्ययानि ।

## ॥ अथ तिङन्ते भ्वादिप्रकरणम् ॥

तत्र परस्मैपदिनः । लट् । लिट् । लुट् । लृट् । लेट् । लोट् । लङ् । लिङ् ।

च एच्च मेचौ तौ अन्ते यस्येति बहुव्रीहिः । तदाह—कृषो मान्त इति । स्मारस्मारमिति । “आभीक्ष्ण्ये णमुल् च” इति स्मृधातोर्णमुल्, “अचोऽङ्गिति” इति वृद्धिः, रपरत्वम् । “नित्यवीप्सयोः” इति द्वित्वं मान्तकृदन्तत्वादव्ययत्वम् । जीवसे इति । “तुमर्थे सेसेनसे” इत्यादिना असेप्रत्ययः । पिबध्यै इति । “तुमर्थे से” इत्यादिना शध्यैप्रत्ययः । क्त्वातोसुनृकसुनः । कृत्वा । “समानकर्तृकयोः” इति क्त्वा । उदेतोः । उत्पूर्वादिणः “भावलक्षणे” इत्यादिना तोसुन् । विसृप इति । सृपितृदोः कसुन् । अव्ययीभावश्चेति । अव्ययसंज्ञः स्यादिति शेषः । अधिहरीति । विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः, हरावित्यर्थः । अव्ययादाप्सुपः । आप् च सुप् च आप्सुप्, तस्य आप्सुपः । समाहारद्वन्द्वात् षष्ठी । “प्यच्चत्रियार्थ” इत्यतो लुगित्यनुवर्तते । तदाह—अव्ययाद्विहितस्येति । तत्र शालायामिति । तत्रेत्यस्याव्ययत्वात् आपो लुक् । स्त्रीत्वबोधनाय शालायामिति । तत्रेति । अत्र सुपो लुक् । ननु अव्ययानां लिङ्गाभावे ‘सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु’ इत्याथर्वणश्रुतिविरोध इत्याशङ्क्य परिहरति—सदृशमिति । त्रिषु लिङ्गेषु, सर्वासु च विभक्तिषु, सर्वेषु वचनेषु च यत् न व्येति विकारं न प्राप्नोति किन्तु सदृशम् एकप्रकारमेव भवति तदव्ययम् इति आथर्वणश्रुतियोजना । अथप्रसङ्गादाह—षष्ठीति । अव अपि इत्युपसर्गयोः अकारस्य लोपम्, हलन्तानाम् आपं च, भागुरिनामकआचार्यः, वष्टि-इच्छतीत्यर्थः । एव-शब्दस्तु पादपूरणः । अवेत्युपसर्गे आदेरेवाकारस्य लोपः नान्त्यस्य, अपिना साहचर्यात् । वाचा निशा दिशेति । एत्परिगणनमित्येके । अत एव हरिप्रभृतिषु न टाप् । अन्ये तु उदाहरणमात्रमिति वदन्ति । अत एव दिशा वाचा क्षुधा गिरा इति वर्धमानः, शरदेति श्रीपतिदत्तश्चोदाजहार । वगाह इति । एतदप्युदाहरणमात्रं न तु परिगणनम् । अत एव ‘वल्लो धवलोऽर्जुनः’ इत्यादिसिद्धमिति दिक् । इति अव्ययप्रकरणम् ।

आदौ दशलकाराः प्रदर्शयन्ते—लटलिट्यादिना । पञ्चम इति । लेडित्यर्थः । वृन्दो-मात्रेति । “लिङ्गर्थे लेट्” इत्यत्र “छन्दसि लुङ्लङ्लिटः” इति पूर्वसूत्रात् छन्दसीत्यनुवृत्तिरिति भावः । लः कमेणि चेति । चकारेण “कर्तरि कृत्” इत्यतः कर्तरीत्यनुवृत्त्यर्थः ।

लुङ् । लुङ् । एषु पञ्चमो लकारश्छन्दोमात्रगोचरः । लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः ३।४।६६। लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च । वर्तमाने लट् ३।२।१२। वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात् । अटावितौ । उच्चारणसामर्थ्याल्लस्य नेत्वम् । 'भू, सत्तायाम्' । कर्तृविवक्षायां भू ल् इति स्थिते । तित्तस्मिसिस्थस्थमिब्वस्मस्ताताऽभथासाथान्धमिड्वहिमहिङ् ३।४।७८। एतेऽष्टादश लादेशाः स्युः । लः परस्मैपदम् १।४।६६। लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः । तडानावात्मनेपदम् १।४।१००। तड्प्रत्याहारः शानच्चाकानचौ चैतत्संज्ञाः स्युः । पूर्वसंज्ञाऽपवादः । अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १।३।१२। अनुदात्तेतो ङितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् । स्वरितजितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १।३।७२। स्वरितेतो जितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले । शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् १।३।७८। आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात् । तिङ्स्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १।४।१०१। तिङ् उभयोः पदयोर्नयत्रिकाः क्रमा-

धातोरेत्यधिकृतम् । लकाराः कर्मणि कर्तरि च धातोः स्युरिति लभ्यते । सकर्मकधातुविषयकमेवेदम् । अकर्मकेषु कर्मणीत्यस्य बाधितत्वात् । तदाह—लकाराः सकर्मकेभ्य इत्यादिना । वर्तमाने लङिति । “धातोः” इति सूत्रमातृतीयाध्यायसमाप्तेरधिकृतम् । वर्तमाने इति तत्रान्वेति । वर्तमानेऽर्थे विद्यमानाद्धातोः लङिति लभ्यते । फलितमाह—वर्तमानक्रियावृत्तेरिति । अटाविताविति । अकारस्य, “उपदेशेऽजनुनासिक इत्” इत्यनेन, टकारस्य तु “हलन्त्यम्” इत्यनेनेति च भावः । तित्तस् । तिप्, तस्, ङि । सिप्, थस्, थ । मिप्, वस्, मस् । त, आताम्, झ । थास्, आथाम्, ध्वम् । इङ्, वहि, महिङ् । एषां समाहारद्वन्द्वात्प्रथमैकवचनम् । “लस्य इति स्थानषष्ठ्यन्तमधिकृतम् । तेन आदेश इति लभ्यते । फलितमाह—एत इति । लः परस्मैपदमिति । लः इति स्थानषष्ठी । आदेश इत्यध्याहार्यम् । तदाह—जदिशा इति । तडानौ । तड् च आनश्चेति द्वन्द्वः । प्रत्याहार इति । त आतामिति तशब्दमारभ्य महिङिति ङकारेणेति शेषः । पूर्वसंज्ञेति । परस्मैपदसंज्ञापवाद इत्यर्थः । अनुदात्तङित इति । अनुदात्तश्च ङ् च अनुदात्तङौ । तौ इतौ यस्य सः अनुदात्तङित् । तस्मात्—अनुदात्तङितः । द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणस्येच्छब्दस्य प्रत्येकमन्वयः । “भूवादयो धातवः” इत्यतो धातवः इत्यनुवर्तते । तस्य पञ्चम्यन्तेनान्वयः । स्वरितजित इति । स्वरितश्च ज् च स्वरितजौ तावितौ यस्य तस्मादिति विग्रहः । इतः प्रत्येकं सम्बन्धः । शेषादिति । उक्तादन्यः शेषः, तस्मात् । “अनुदात्तङित” इति “स्वरितजित” इति चोक्तादात्मनेपदविषयादन्य इत्यर्थः । तिङ्स्त्रीणि त्रीणीति । तिङ् षट् त्रिकाः, संज्ञाश्च तिस्र इति यथासंख्यसम्भवादाह—तिङ् उभयोरिति । “लः परस्मैपदम्” इत्यतः परस्मैपदमिति “तडानावात्मनेपदम्” इत्यत आत्मनेपदमिति चानुवृत्ते





स्यात् । “अतो गुणे” । भवन्ति । भवसि । भवथ । भवथ । अतो दीर्घो यञि

थासायां च्वमिड्वहिमहिङ् इत्येतेऽष्टादश लादेशाः प्राप्ताः । “लः परस्मैपदम्” इत्य-  
ष्टादशानामप्येषां परस्मैपदसंज्ञा संज्ञाता, “तडानावात्मनेपदम्” इति तदु-प्रत्याहारात्त-  
पातिनां नवानामात्मनेपदसंज्ञा संज्ञाता, एवं तिबादयः परस्मैपदसंज्ञाः, तादयश्चात्मने-  
पदसंज्ञाः, एषां मध्यादत्र परस्मैपदसञ्ज्ञिनः प्रत्ययाः स्युः, किमुतात्मनेपदसञ्ज्ञिनः ? ।  
इत्याकाङ्क्षायां “शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्” इत्यनेनास्य भूधातोरात्मनेपदनिमित्तहीनत्वा-  
त्कर्तरि परस्मैपदं प्राप्तम्, परस्मैपदसञ्ज्ञिनां नवानां मध्यात्कर्तमेन भाव्यमित्याका-  
ङ्क्षायाम् “तिङ्श्लो त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः” इत्यनेन क्रमात् त्रयाणां त्रिकाणां  
प्रथममध्यमोत्तमसञ्ज्ञासु जातासु च लब्धप्रथमादिसञ्ज्ञानां तिङ्श्लोणाणां वचनानां  
प्रत्येकमेकवचनद्विवचनबहुवचनसञ्ज्ञासु अत्र प्रथमेन भाव्यम्, उत मध्यमेन, उत  
उत्तमेन, इति शङ्कायाम् “शेषे प्रथमः” इति प्रथमपुरुषो भवितुं युक्तस्तथापि त्रीणि  
वचनानि, एषां मध्यात् कर्तमेन भाव्यमित्याकाङ्क्षायां “द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने”  
इत्यनेनात्रैकवचनस्य विवक्षायां प्रथमपुरुषे तिपि जाते पकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च  
“तिङ्श्लोत्सार्वधातुकम्” इति तिपः सार्वधातुकसञ्ज्ञायां भू ति इति दशायां “सार्व-  
धातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे प्राप्ते “भूसुबोस्तिङि” इति गुणनिषेधे “कर्तरि शप्”  
इति शपि शकारपकारयोरित्सञ्ज्ञायां लोपे च शित्वात् “तिङ्श्लोत्सार्वधातुकम्” इति  
सार्वधातुकसञ्ज्ञायां “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति भुव उकारस्य गुणे—ओकारे  
जाते “एचोऽयवायावः” इति अवादेशे संयोगे च कृते ‘भवति’ इति रूपम् । भवतः ।  
भूधातोर्लटि, अकारटकारयोरित्सञ्ज्ञायां लोपे च लः स्थाने प्रथमपुरुषद्विवचनविवक्षायां  
तसि कृते ‘भू+तस्’ इति जाते “तिङ्श्लोत्सार्वधातुकम्” इति तसः सार्वधातुकत्वे  
“कर्तरि शप्” इति शपि शकारपकारयोरित्सञ्ज्ञायां लोपे च ‘भू+अ+तस्’ इति जाते  
शित्वात् शपोऽकारस्य सार्वधातुकसञ्ज्ञायां “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे विहिते  
“एचोऽयवायावः” इत्यवादेशेः कृते च संयोगे ‘भव+तस्’ इति जाते “ससञ्जुषोरुः”  
इति सस्य स्त्वे उकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च रेफस्य “स्वरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति  
विसर्गे ‘भवतः’ इति रूपम् । भोऽन्त इति । आदेशे तकारे अकार उच्चारणार्थः । एक-  
देशे स्वरितत्वप्रतिज्ञानात् “आयनेयीनीयियः फढखच्छधां प्रत्ययादीनाम्” इत्यतोऽव-  
यवषष्ठ्यन्तं प्रत्ययग्रहणमनुवर्तत इति भावः । भवन्ति । भूधातोर्लटि तत्स्थाने प्रथम-  
पुरुषबहुवचनविवक्षायां शौ प्रत्यये कृते झः स्थाने “भोऽन्तः” इत्यन्तादेशे ‘भू+अन्ति’  
इति जाते “तिङ्श्लोत्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकसञ्ज्ञायां “कर्तरि शप्” इति शपि,  
शकारपकारयोरित्सञ्ज्ञायां लोपे च शित्वात्सार्वधातुकसञ्ज्ञायां “सार्वधातुकार्धधा-  
तुकयोः” इति भुव उकारस्य गुणे “एचोऽयवायावः” इत्यवादेशे ‘भव् अ-  
अन्ति’ इति जाते “अतो गुणे” इति पररूपत्वे संयोगे च कृते ‘भवन्ति’ इति  
सिद्धम् । भवसि । भूभातोः “वर्तमाने लट्” इति लटि, अकारटकारयोरित्स-

७।३।१०१। अदन्ताऽङ्गस्य दीर्घः स्यात् यञादौ सार्वधातुके परे । भवामि । भवावः । भवामः । स भवति । तौ भवतः । ते भवन्ति । त्वं भवसि । युवां भवथः । यूयं भवथ । अहं भवामि । आवां भवावः । वयं भवामः । परोक्षे लिट् ३।२।११५। भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात् । लस्य तिबादयः । परस्मैपदानां णलतु-  
सुस्थलथुसणल्वमाः ३।४।८२। लिट्स्तिबादीनां नवानां णलादयो नव स्युः । भू-  
अ इति स्थिते । भुवो वुग्लुङ्लिटोः ६।१।८८। भुवो वुगागमः स्यात् लुङ्लिटो-  
रवि । लिटि धातोर्नभ्यासस्य ६।१।८८। लिटि परे अनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः  
प्रथमस्य द्वे स्त आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य । भूव् भूव् अ इति स्थिते । पूर्वो-  
ऽभ्यासः ६।१।४। अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात् । हलादिः शेषः

ञ्ञायां लोपे च लः स्थाने मध्यमपुरुषैकवचनविवक्षायां सिपि पकारस्येत्संज्ञायां  
लोपे च “लिङ्शिस्तावर्वाधातुकम्” इति सार्वधातुकसंज्ञायां “सार्वधातुकार्धधातुकयोः”  
इति गुणे अवादेशे संयोगे च कृते ‘भवसि’ इति सिद्धम् । भवथः । भूधातोर्लिटि, लटो  
लःस्थाने थसि शपि गुणेऽवादेशे रुवे विसर्गे च तत्सिद्धिः । भवथ । मध्यमपुरुषबहु-  
वचने थादेशे शपि गुणे अवादेशे च रूपम् । अतो दीर्घ इति । “अङ्गस्य” इत्यधिक्रियते ।  
तस्य अत इति विशेषणम्, तदन्तविधिः । तदाह—अदन्ताङ्गस्येति । “तुस्तुशम्यमः  
सार्वधातुके” इत्यतः ‘सार्वधातुके’ इत्यनुवर्तते तस्य यजीति विशेषणम् । तदादिविधिः ।  
तदाह—यञादाविति । भवामि । भूधातोर्लिटि, तत्स्थाने मिपि, पकारस्येत्संज्ञायां लोपे  
च “लिङ्शिस्तावर्वाधातुकम्” इति सार्वधातुकसंज्ञायां “कर्तरि शप्” इति शपि, शकार-  
पकारयोरित्संज्ञायां लोपे च, शित्वात् शपोऽकारस्यापि सार्वधातुकसंज्ञायां “सार्वधातु-  
कार्धधातुकयोः” इति गुणे अवादेशे च कृते ‘भव+मि’ इति जाते तत्र “अतो दीर्घो  
यजि” इत्यदन्ताङ्गस्य दीर्घं ‘भवामि’ इति सिद्धम् । भवावः । भवामः । लः स्थाने वसि  
मसि वा, शप्, गुणे अवादेशे अतो दीर्घं रुवे विसर्गे च रूपे । अत्रोक्तां प्रथममध्यमो-  
त्तमपुरुषव्यवस्थां स्मारयितुमाह—स भवतीत्यादि । परोक्षे लिट् । “अनद्यतने लङ्” इत्य-  
स्मादनद्यतन इत्यनुवर्तते । “भूते” इत्यधिकृतम् । परोक्षत्वं धातोर्विशेषणम् । तदाह—  
भूतानद्यतनेत्यादिना । लस्य तिबादय इति । तिबादि नवकमित्यर्थः । परस्मैपदानामिति ।  
अत्र “लिट्स्तम्योरेशिरेच्” इत्यतो लिट् इत्यनुवर्तते । णलादय इति । णल्, अतुस्,  
उस्, थल्, अथुस्, अ, णल्, व, म इत्येते नव यथासंख्यं स्युरित्यर्थः । भुवो वुगिति ।  
“अचि रनुधातुभ्रवां खोरियङुवडौ” इत्यत अचीत्यनुवर्तते । लिटि धातोरिति । अत्र  
“एकाचो द्वे प्रथमस्य” “अज्ञादेर्द्वितीयस्य” इति सूत्रद्वयमधिक्रियते । पूर्वोऽभ्यासः ।  
अत्रेति । “एकाचो द्वे प्रथमस्य” इति षाष्ठद्वित्वप्रकरण इत्यर्थः । तेन “सर्वस्य द्वे”  
इत्यादिविहितस्य द्वित्वस्य न संकल्पः । हलादिः शेष इति । “अत्र लोपोऽभ्यासस्य”



विव । बभूविम । अनद्यतने लुट् ३।३।१५। भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातौर्लुट् स्यात् ।  
 स्यतासी ललुटोः ३।१।३३। धातोः स्यतासी एतौ प्रत्ययौ स्तो ललुटोः परतः ।  
 शबाद्यपवादः । लृ इति लृङ्लुटोर्ग्रहणम् । आर्धधातुकं शेषः ३।४।११४। तिङ्-  
 शिङ्गयोऽयो धातोरिति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञः स्यात् । इट् । लुटः प्रथमस्य  
 डारौरसः २।४।८५। डारौरस् एते क्रमात्सुः । डित्वसामर्थ्याद्भस्यापि टेलोपः ।  
 भविता । तासस्योर्लोपः ५।४।५०। तासेरस्तेष्व लोपः स्यात्सादौ प्रत्यये परे ।

“पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्याससंज्ञायां “ह्रस्वः” इति ह्रस्वे “भवतेरः” इत्यभ्यासोकार-  
 स्याकारे ‘अभ्यासे चर्च’ इति जश्त्वेन वकारे ‘बभूविथ’ इति रूपम् । बभूवथुः ।  
 लिटस्थस्य-अधुसादेशे वुगादि पूर्ववत् । भूव । ननु थस्य स्थाने ‘अ’ आदेशे प्राप्ते  
 “अलोन्यस्य” इत्यन्यस्य स्यादिति चेद् ? न, द्वयोरकारयोः पररूपेण अ इति  
 सूत्रे निर्देशादनेकाल्त्वात् । वुगादिपूर्ववत् । भूव । मिपो णलि वुगादि पूर्ववत् ।  
 बभूविव । वसो वादेशे वलादित्वादिडागमे वुगादि पूर्ववत् । नचात्र “श्रुकः किति”  
 इतीडागमनिषेधः शङ्क्यः । “कृष्टमृष्टुस्तुद्वन्मृष्टुवो लिटि” इति क्रादिनियमादित्सिद्धेः ।  
 बभूविम । मसो मादेशे इडागमे वुगादि पूर्ववत् । अनद्यतने लुट् । “धातोः” इत्यधि-  
 क्रियते । “भविष्यति गभ्यादयः” इत्यतो भविष्यतीत्यनुवर्तते । स्यतासी लृ । स्यश्च  
 तासिरचेति द्वन्द्वात् प्रथमाद्विवचनम् । तासेरिकार उच्चारणार्थः । लृ लुट् अनयोर्द्व-  
 न्द्वात् सप्तमीद्विवचनम् । ग्रहणमिति । लृस्वरूपस्योभयत्राविशिष्टत्वादिति भावः । आर्ध-  
 धातुकमिति । “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति पूर्वसूत्रोपात्तितिङ्शेत्तयोऽन्यः शेषः । तदाह-  
 तिङ्शित्तयोऽन्य इति । विहित इति । धातोरित्यधिकृतं विहितविशेषणमाश्रीयत इति  
 भावः । इडिति । तास्पृत्यस्योक्तसूत्रेणार्धधातुकत्वात् स्वतो वलादित्वाच्च “आर्ध-  
 धातुकस्येड्वलादेः” इतीडागम इत्यर्थः । लुटः प्रथमस्येति । डारौरस् एषां द्वन्द्वात्  
 प्रथमाबहुवचनम् । लुट इति स्थानषष्ठी लुडादेशस्य प्रथमपुरुषस्येत्यर्थः । भविता ।  
 भूधातोः “अनद्यतने लुट्” इति लुटि तस्य स्थाने प्रथमपुरुषस्यैकवचनविवक्षायां  
 तिप्रत्यये पकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकस-  
 न्ज्ञायां “कर्तरि शप्” इति शपि प्राप्ते तं प्रबाध्य “स्यतासी ललुटोः” इति तास्-  
 प्रत्यये कृते “आर्धधातुकं शेषः” इति तास आर्धधातुकसंज्ञायाम् “आर्धधातुकस्येड्व-  
 वलादेः” इति इडागमे अनुबन्धलोपे टित्वात्तास आद्यावयवे जाते ‘भू इ तास् ति’ इति  
 स्थिते “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे अवादेशे “लुटः प्रथमस्य डारौरसः” इति  
 तिपो वादेशेऽनुबन्धलोपे डित्वसामर्थ्याद्भस्यापि टेलोपे ‘भविता’ इति रूपम् । तास-  
 स्तेरिति । तास् च अस्तिरचेति द्वन्द्वात् षष्ठी । “सः स्यार्धधातुके” इत्यतः ‘सि’ इत्य-  
 नुवर्तते । “अङ्गस्य” इत्यधिकारादाचित्प्रत्ययस्य ‘सि’ इति विशेषणम् । तदादिविधिः

रिच ७।४।५१। रादौ प्रत्यये तथा । भवितारौ । भवितारः । भवितासि । भवितास्थः । भवितास्थ । भवितास्मि । भविताम्बः । भवितास्मः । लट् शेषे च ३।३।१३। भविष्यदर्थाद्भातोर्लुट् स्यात् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां च । स्यः । इट् । भवि-

तदाह—नासेरित्यादि । रि चेति । “तासस्त्योर्लोपः” इति सूत्रमस्तिवर्जमनुवर्तते । रि इत्यनेनाङ्गाच्चिसप्रत्ययस्य विशेषणात्तदादिविधिस्तदाह—रादाविति । भवितारौ । भूधातोः “अनद्यतने लुट्” इति लुटि, अनुबन्धलोपे लः स्थाने “तिप्तास्त्रिसिप्थस्थ” इत्यादिना प्रथमपुरुषद्विवचनविवक्षायां तसि प्रत्यये “तिङ् शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकसञ्ज्ञायां “कर्तरि शप्” इति प्राप्तं शपं बाधित्वा “स्यतासी ललुटोः” इति तासप्रत्यये तस्य “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकसञ्ज्ञायाम् “आर्धधातुकस्येड्वल्लदेः” इति तास इडागमेऽनुबन्धलोपे टित्वादाद्यावयवे जाते “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “एचोऽयवायावः” इत्यवादेशे “लुटः प्रथमस्य डारौरसः” इति तसः रौ आदेशे “रि च” इति तासः सलोपे “भवितारौ” इति रूपम् । भवितारः । भूधातोर्लुटि, अनुबन्धलोपे लः स्थाने प्रथमपुरुषबहुवचनविवक्षायां झौ कृते तत्स्थाने “लुटः प्रथमस्य डारौरसः” इति रसादेशे सार्वधातुकसञ्ज्ञायां शपं बाधित्वा तासि कृते तस्यार्धधातुकसञ्ज्ञायाम् इडागमे, गुणे, अवादेशे च “भवितास् + रस्” इति जाते “रि च” इति तासः सलोपे रसः सस्य रुवे विसर्गो च “भवितारः” इति रूपम् । भवितासि । भूधातोर्लुटि तस्य स्थाने सिपि, पस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च शपं बाधित्वा तासि कृते आर्धधातुकत्वे इडागमे गुणेऽवादेशे “तासस्त्योर्लोपः” इति तासः सस्य लोपे “भवितासि” इति । भवितास्थः । भूधातोर्मध्यमपुरुषद्विवचने लः स्थाने यसि तासि इडागमे गुणे अवादेशे यसः सस्य रुवविसर्गयोः रूपम् । भवितास्थ । बहुवचने ये तासि इटि गुणावादेशौ । भवितास्मि । उत्तमपुरुषैकवचने मिपि, तासि इटि गुणावादेशौ । भवितास्वः । वसि तसि इटि गुणे अवादेशे च रुवविसर्गौ । भवितास्मः । भूधातोर्लुटि तत्स्थाने मसि तासि इटि, गुणे अवादेशे रुवविसर्गयोः “भवितास्मः” इति रूपम् । लट् शेषे चेति । “धातोः” इत्यधिक्रियते । “भविष्यति गभ्यादयः” इत्यतो “भविष्यति” इत्यनुवर्तते । “तुमुन्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्” इति सूत्रोपात्तक्रियायां क्रियार्थायामित्यतो भिन्नः शेषः । क्रियायां क्रियार्थायाम् असत्यामिति लभ्यते । चकारात् क्रियायां क्रियार्थायां सत्यामित्यपि लभ्यते, तदाह—क्रियार्थायां क्रियायामसत्यां सत्याञ्जेति । भविष्यति । भूधातोः “लट् शेषे च” इति लुटि ऋकारटकारयोरित्सञ्ज्ञायां लोपे च लः स्थाने “तिसस्त्रि” इत्यादिना प्रथमपुरुषैकवचनविवक्षायां तिपि, पकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “तिङ् शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकसञ्ज्ञायां “कर्तरि शप्” इति प्राप्तं शपं बाधित्वा “स्यतासी ललुटोः” इति स्यप्रत्यये तस्य “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकसञ्ज्ञायाम् “आर्धधातुकस्येड्वल्लदेः” इतीडागमेऽनुबन्धलोपे टित्वादाद्यावयवे जाते

प्यति । भविष्यतः । भविष्यन्ति । भविष्यसि । भविष्यथः । भविष्यथ । भविष्यामि । भविष्यावः । भविष्यामः । लोट् च ३।३।१६२। विद्वद्याद्यर्थेषु धातोर्लोट् स्यात् । आशिषि लिङ्लोटौ ३।३।१७३। एरुः ३।४।८६। लोट इकारस्य उः स्यात् । भवतु । तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ७।१।३५। आशिषि तुह्योस्तातङ् वा

“सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इतीगन्ताङ्गस्य ‘भू’ इत्यस्य गुणे ‘एचोऽयवायावः’ इत्य-  
धादेशे ‘भव इ स्य ति’ इति जाते संयोगे च कृते “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे ‘भवि-  
ष्यति’ इति रूपम् । भविष्यतः । भूधातोर्लटि अनुबन्धलोपे तत्स्थाने प्रथमपुरुषद्विवचने  
तसि, सार्वधातुकसंज्ञायां शपं बाधित्वा “स्यतासी ललुटोः” इति स्ये, तस्यार्धधातुक-  
संज्ञायाम् इटि, अनुबन्धलोपे टित्वादाद्यावयवे जाते, गुणेऽवादेशे षत्वे तसः सकारस्य  
रुत्वे विसर्गं च ‘भविष्यतः’ इति रूपम् । भविष्यन्ति । भूधातोर्लटि, झौ, सार्वधातुक-  
संज्ञायां शपं बाधित्वा स्ये, आर्धधातुकसंज्ञायाम् इटि गुणेऽवादेशे षत्वे च कृते  
‘भविष्य सि’ इति स्थिते “झोऽन्तः” इति झः स्थानेऽन्तादेशे “अतो गुणे” इति पर-  
रूपे संयोगे च कृते ‘भविष्यन्ति’ इति रूपम् । भविष्यसि । भूधातोर्लटि, अनुबन्धलोपे  
मध्यमपुरुषैकवचने सिपि कृते शपं बाधित्वा स्ये, इटि, गुणेऽवादेशे षत्वे च रूपम् ।  
भविष्यथः । मध्यमपुरुषद्विवचने थसि, स्ये, इटि, गुणेऽवादेशे षत्वे चेति पूर्ववद्बोध्यम् ।  
भविष्यथ । लटि थे स्ये इटि गुणेऽवादेशे षत्वे च सति रूपम् । भविष्यामि । भूधातो-  
र्लटि अनुबन्धलोपे, तस्य स्थाने उत्तमपुरुषैकवचने मिपि, अनुबन्धलोपे, सार्वधातुक-  
संज्ञायां शपं बाधित्वा “स्यतासी ललुटोः” इति स्ये, तस्यार्धधातुकसंज्ञायामिडागमे  
टस्येत्संज्ञायां लोपे च गुणेऽवादेशे षत्वे च जाते ‘भविष्य मि’ इति स्थिते “अतो  
दीर्घा यजि” इत्यदन्ताङ्गस्य दीर्घे ‘भविष्यामि’ इति रूपम् । भविष्यावः । लटि, वासि,  
स्ये, इडागमे गुणेऽवादेशे षत्वे च जाते “अतो दीर्घा यजि” इत्यदन्ताङ्गस्य दीर्घे वसः  
सकारस्य रुत्वे विसर्गं च रूपम् । भविष्यामः । लटि, मसि, स्ये इडागमे गुणेऽवादेशे  
षत्वे, अदन्ताङ्गस्य दीर्घे रुत्वे विसर्गं चेति पूर्ववद्बोध्यम् । लोट् चेति । “धातोः” इत्य-  
धिक्रियते । “विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रशनप्रार्थनेषु लिङ्” इति सूत्रं लिङ्वर्ज-  
मनुवर्तते । तदाह—विध्याद्यर्थे विध्यादिना । विध्यादिशब्दा अनुपदमेव लिङ्विधौ  
व्याख्यास्यन्ते । आशिषि लिङिति । आशिष्यपीत्यर्थः । आशासनमाशी—इष्टप्राप्तीच्छा ।  
एरिति । एः उः इतिच्छेदः । एरिति षष्ठ्यन्तम् । इवर्णस्येति लभ्यते । “लोटो लङ्-  
वत्” इत्यतो लोट इत्यनुवर्तते । तदाह—लोट इकारस्येति । भवतु । सत्तार्थकभूधातोः  
“लोट च” इति “आशिषि लिङ्लोटौ” इति वा लोटि, अनुबन्धलोपे च लस्थाने  
प्रथमपुरुषैकवचने तिपि, पकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “तिङ्शित्सार्वधातुक”मिति सा-  
र्वधातुकसंज्ञायां “कर्तरि णप्” इति णपि, शकारपकारयोरित्संज्ञायां लोपे च, शित्वात्  
“तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति ण्योऽकारस्यापि सार्वधातुकसंज्ञायां “सार्वधातुकार्ध-

स्यात् । परत्वाद्नेकारत्वात्सर्वादेशः । भवतात् । लोटो लङ्वात् ३।४।८५। लोटो लङ् इव कार्यं स्यात् । लोटस्तामादयः सलोपश्च । तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः ३।४।१०१। क्तिञ्चतुर्णां तामादयः क्रमात्स्युः । भवताम् । भवन्तु । सेह्यपिच्च ३।४।८५। लोटः सेहिः स्यात् सोऽपिच्च । अतो हेः ६।४।१०५। अतः परस्य हेर्लुक् स्यात् । भव-भवतात् । भवतम् । भवत । मेनिः ३।४।८६। लोटो मेनिः स्यात् । आडुत्तमस्य पिच्च ३।४।६२। लोडुत्तमस्याट् स्यात् स पिच्च । हि-योरुत्वं न. 'इत्वोच्चारणसामर्थ्यात्' । भवानि । ते प्राग्धातोः १।४।८०। ते गत्युपसर्गसंज्ञका धातोः

धातुकयोः" इति गुणे "एचोऽयवायावः" इत्यवादेशे 'भवति' इति जाते "एरुः" इति तिप इकारस्य उत्वे 'भवतु' इति सिद्धम् । आशिपि तु "तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्" इति तुइत्यस्य सर्वस्य स्थाने पाक्षिकेऽनेकारत्वात्तातङ्ङदेशेऽनुबन्धलोपे 'भवतात्' इति भवति, तदभावे 'भवतु' इति च सिद्ध्यति । लोटो लङ्वादिनि । लङ् इव लङ्वात् । "तत्र तस्येव" इति षष्ठ्यन्तादितिः । तेन तामादयस्सलोपश्चैव, न तु अडागम इति भावः । तस्थस्थमिपामिति । "नित्यं क्तिञ्च" इत्यतो क्तिञ्च इत्यनुवर्तते । भवताम् । भूधातोः "लोट् च" इति लोटि, अनुबन्धलोपे तत्स्थाने प्रथमपुरुषद्विवचनविवक्षायां तसि, सार्वधातुकसंज्ञायां शपि, शकारपकारयोरित्संज्ञायां लोपे च शित्वात्सार्वधातुकत्वे गुणेऽवादेशे च 'भव तस्' इति जाते "लोडो लङ्वात्" इति लङ्कार्यातिदेशे सति तेन क्तिवात् तसः स्थाने "तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः" इति तामादेशे च सति 'भवताम्' इति रूपम् । भवन्तु । भूधातोर्लोडि, तत्स्थाने झौ, "झोऽन्तः" इत्यन्तादेशे शपि, गुणेऽवादेशे 'एरुः' इति इकारस्योकारे 'भवन्तु' इति । सेह्यपिच्चेति । हि इति लुप्तषष्ठ्यन्तम् । "लोडो लङ्वात्" इत्यतो लोट इत्यनुवर्तते । अतो हेरिति । अतः इति पञ्चमी, हेरिति षष्ठी । "चिणो लुक्" इत्यतो लुगित्यनुवर्तते । तदाह—अतः परस्येत्यादिना । भव, भवतात् । भूधातोर्लोडि, तत्स्थाने सिपि, सार्वधातुकसंज्ञायां शपि, अनुबन्धलोपे गुणेऽवादेशे 'भव सि' इति जाते तत्र "सेह्यपिच्च" इति सेः स्थाने हौ कृते "तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्" इति हेस्तातङ्ङादेशेऽनुबन्धलोपे 'भवतात्' इति । तातङ्ङोऽभावपक्षे "अतो हेः" इति हेर्लुकि 'भव' इति च रूपम् । भवतम् । भूधातोर्लोडि, मध्यमपुरुषद्विवचने थसि, शपि, गुणेऽवादेशे "लोडो लङ्वात्" इति लङ्कार्यातिदेशेन क्तिवात् थसः स्थाने "तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः" इति तमादेशे 'भवतम्' इति । भवत । भूधातोर्लोडि, थे शपि, गुणेऽवादेशे लङ्वात्तदभावे तादेशे च पूर्ववद्बोध्यम् । मेनिरिति । "लोडो लङ्वात्" इत्यतो लोट इत्यनुवर्तते । तदाह—लोट इति । आडुत्तमस्येति । "लोडो लङ्वात्" इत्यतो लोट इत्यनुवर्तते । तदाह—लोडुत्तमस्येति । स्तवानि, स्तवाव, इत्यादौ "सार्वधातुकमपित्" इति स्तवनिपुण्यं षिदिति वचनम् । भवानि । भूधातोः "लोट् च" इति लोटि तत्स्थाने



प्रागेव प्रयोक्तव्याः । आनि लोट् ८।४।१६। उपसर्गस्थानिमित्तात्परस्य लोडादेश-  
स्यानीत्यस्य नस्य णः स्यात् । प्रभवाणि । ( दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गात्प्रतिषेधो  
वक्तव्यः ) दुःस्थितिः । दुर्भवानि । ( अन्तः शब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गात्वं  
वाच्यम् ) अन्तर्भवानि । नित्यं डितः ३।४।६६। सकारान्तस्य डितुत्तमस्य नित्यं  
लोपः स्यात् । “अन्तेऽत्यस्य” इति सलोपः । भवाव । भवाम । अनद्यतने लङ्

“तिसस्त्रे” इत्यादिना उत्तमपुरुषैकवचने मिपि, अनुबन्धलोपे तस्य सार्वधातुकत्वे  
शपि, अनुबन्धलोपे शिच्वात्सार्वधातुकत्वे गुणेऽवादेशे ‘भव + मि’ इति जाते “लोटो  
लङ्वत्” इति लङ्कार्यातिदेशेन “तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः” इति मिपोऽमादेशे प्राप्ते  
तं बाधित्वा “मेनिः” इति मेन्यादेशे, इकारोच्चारणसामर्थ्यात् नेरिकारस्योत्वाभावे  
“आहुत्तमस्य पिचव” इत्याडागमेऽनुबन्धलोपे ‘भव आ नि’ इति जाते ‘अकः सवर्णं  
दीर्घः” इति पूर्वपरयोः स्थाने दीर्घे ‘भवानि’ इति रूपम् । ते प्राग्घातोरेति । “उपसर्गाः  
क्रियायोगे” “गतिश्च” इत्यनयोः प्रकृतत्वात्तेपदेन गत्युपसर्गयोः परामर्शः । तदाह—  
गत्युपसर्गसंज्ञा इति । आनि लोडिति । लोडिति आनीति च लुप्तपृष्ठीकं पदम् । “रषाभ्यां  
नो णः” इत्यनुवर्तते । “उपसर्गादसमासेऽपि” इत्यतः उपसर्गादिति च । तदाह—  
उपसर्गं यान्निमित्तादिति । प्रभवाणि । भूधातोर्लोडि, तत्स्थाने मिपि शपि गुणेऽवा-  
देशे मेन्यादेशे आडागमे दीर्घे “ते प्राग्घातोः” इति सूत्रबलात्प्राप्त्युपसर्गस्य पूर्व-  
मेव प्रयोगे “आनि लोट्” इति णत्वे च कृते तत्माधु । दुरः षत्वोत्ते । षत्वणत्वयोः  
कर्तव्ययोः दुर उपसर्गत्वप्रतिषेध इत्यर्थः । दुःस्थितिः । अत्र “उपसर्गात्सुनोति”  
इति षत्वं न भवति । दुर्भवानि । अत्र “आनि लोट्” इति णत्वं न भवति ।  
अन्तःशब्दयेति । अङ्किविधौ किंविधौ णत्वे च कर्तव्ये अन्तर इत्यस्य उपसर्गत्वमित्यर्थः ।  
प्रादित्वाभावादप्राप्ते वचनम् । अङ् उदाहरणम्—“अन्तर्धा” इति । “आतश्चोपसर्गो”  
इत्यङ् टाप् । किंविधेरुदाहरणम्—“अन्तर्धिः” इति । “उपसर्गो धोः किः” । अन्तर्भवानि ।  
अन्तरूपपदाद् भूधातोर्लोडि, तत्स्थाने मिपि, शपि, गुणेऽवादेशे आटि दीर्घे “मेनिः”  
इति मेन्यादेशे “अन्तःशब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गात्वं वाच्यम्” इति अन्तरित्यस्यो-  
पसर्गात्वे “आनि लोट्” इति णत्वे ‘अन्तर्भवानि’ इति रूपम् । नित्यं डित इति । “स  
उत्तमस्य” इति सूत्रमनुवर्तते । स इति षष्ठ्यन्तम्, उत्तमस्य विशेषणम् । तदन्तर्विधिः  
“इतश्च लोपः परस्मैपदेषु” इत्यतो लोप इत्यनुवर्तते । तदाह—सकारान्तस्य डितुत्तम-  
स्येति । भवाव । भूधातोर्लोडि, तत्स्थाने वसुप्रत्यये शपि गुणेऽवादेशे “आहुत्तमस्य  
पिचव” इत्याडागमेऽनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे “लोटो लङ्वत्” इति लङ्कार्यातिदेशेन  
डित्वात् “नित्यं डितः” इति सलोपे ‘भवाव’ इति रूपम् । भवाम । भूधातोर्लोडि, तत्स्थाने  
मसप्रत्यये शपि गुणेऽवादेशे मस आडागमेऽनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे लङ्वदतिदेशेन  
डित्वात् “नित्यं डितः” इति सलोपे ‘भवाम’ इति रूपम् । अनद्यतने लङिति । “धातोः”

३।२।१११। अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात् । लुङ्लङ्लुङ् डुदात्तः ६।४।  
७१। एवङ्गस्याट् स्यात्स चोदात्तः । इतश्च ३।४।१००। डितो लस्य परस्मैपदमिका-  
रान्तं यत्तदन्तस्य लोपः स्यात् । अभयत् । अभवताम् । अभवन् । अभवः । अभ-  
वतम् । अभवत् । अभवम् । अभवाव । अभवाम । विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधेष्ट-

इति “भूते”इति चाधिक्रियेते । ‘भूते’इति धात्वर्थेऽन्वेति । तदाह—प्रनद्यतनभूतार्थवृ-  
त्तेर्धातोर्लङिति । अतीताया रात्रेः पश्चाध्वेन आगामिन्याः पूर्वाध्वेन च सहितः कालोऽद्यतन-  
स्तद्भिन्नोऽनद्यतनः । लुङ्लङिति । अत्र “अङ्गस्य”इत्यधिकारः । इति श्वेति । “लस्य”  
इत्यधिकृतम् । “इतश्च लोपः परस्मैपदेषु” इत्यस्मात् लोप इति परस्मैपदेषु इति  
चानुवर्तते । परस्मैपदेषु इत्येतत् षष्ठ्या विपरिणम्यते । तदाह—ङितो लस्येत्यादिना ।  
अभवत् । भूधातोः “अनद्यतने लङ्”इति लङि, ङस्य “हलन्त्यम्”इति लकारोत्तरवर्ति-  
नोऽकारस्य च “उपदेशेऽजनुनासिक इत्” इतीत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे, लः  
स्थाने प्रथमपुरुषैकवचनविचक्षायां “तिप्स् शि” इति तिपि, पस्येत्संज्ञायां लोपे च  
“तिङ् शित्सार्वाधातुकम्”इति तिपः सार्वधातुकसंज्ञायां “कर्तारि शप्”इति शपि, शकां-  
रपकारयोरित्संज्ञायां लोपे च तस्य शित्वात् “तिङ् शित्सार्वाधातुकम्”इति सार्वधातुक-  
संज्ञायां “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति भूधातोरुकारस्य गुणे ओकारे जाते “एचोऽ-  
यवायावः”इत्यवादेशे ‘भवति’ इति जाते “लुङ्लङ्लृङ्श्चबहुदात्तः”इत्यङ्गस्याङागमे  
टस्येत्संज्ञायां लोपे च “आद्यन्तौ ट्कितौ” इति टित्वादाद्यावयवे जाते “इतश्च” इति  
तिप इकारस्य लोपे “अभवत्”इति रूपं सिद्धम् । अभवताम् । भूधातोर्लङि, तत्स्थाने  
प्रथमपुरुषद्विवचने तसि समागते “लुङ्लङ्लृङ्श्चबहुदात्तः”इत्यङ्गस्य अटि, शपि, सार्व-  
धातुकत्वे गुणेऽवादेशे च कृते “तस्यस्थमिपां तान्तन्तामः”इति तसः स्थाने तामि कृते  
‘अभवताम्’इति रूपम् । अभवन् । भूधातोर्लङि तस्य स्थाने झौ आदेशे झः स्थाने  
“झोऽन्तः”इत्यन्तादेशे तस्य “तिङ् शित्सार्वाधातुकम्”इति सार्वधातुकसंज्ञायां तस्मि-  
न्परे “कर्तारि शप्”इति शपि शप् इत्यनयोरित्संज्ञायां लोपे च शित्वात् सार्वधातुकसं-  
ज्ञायां “सार्वधातुकार्धधातुकयोः”इति गुणे “एचोऽयवायावः”इत्यवादेशे “अतो गुणे”  
इति पररूपे ‘भवन्ति’ इति जाते “लुङ्लङ्लृङ्श्चबहुदात्तः” इत्यङ्गस्याङागमे टस्येत्संज्ञायां  
लोपे च टित्वादाद्यावयवे जाते “इतश्च”इतीकारलोपे तकारस्य “संयोगान्तस्य लोपः” इति  
लोपे ‘अभवन्’ इति रूपम् । अभवः । लङि, तत्स्थाने मध्यमपुरुषैकवचने सिपि शपि,  
गुणेऽवादेशे अटि, इकारलोपे सस्य रत्वे विसर्गे च रूपम् । अभवतम् । लङि, वसि,  
तत्स्थाने तमि, शपि गुणेऽवादेशेऽटि च पूर्ववत् । अभवत् । भूधातोर्लङि मध्यमपुरुष-  
बहुवचने थे तत्स्थाने ते, शपि गुणेऽवादेशेऽटि च पूर्ववत् । अभवम् । भूधातोर्लङि,  
उत्तमपुरुषैकवचने मिपि, तत्स्थाने अमि, शपि गुणेऽवादेशेऽङागमे च ‘अभवम्’ इति ।  
अभवाव । अभवाम । लङ्गे वसि, मसि अतो दीर्घे “नित्यं ङितः” इति सलोपे श्वे

संज्ञप्रार्थनेषु लिङ् ३।३।१६१। एव्येषु धातोर्लिङ् स्यात् । यासुट् परस्मैप-  
 देश्वादात्तो ङिञ् ३।४।१०३। लिङः परस्मैपदानां यासुडागमो ङिञ् । लिङः  
 सलोपोऽनन्त्यस्य ७।२।७६। सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः स्यात् । इति  
 प्रप्ते । अतो येयः ७।२।८०। अतः परस्य सार्वधातुकाव्यवस्य यास् इत्यस्य इय्  
 स्यात् । गुणः । लोपो ज्योर्वलि ६।१।६६। वकारयकारयोर्लोपः स्याद्वलि । भवेत् ।  
 भवेताम् । भेर्जुस् ३।४।१०८। लिङो भेर्जुस् स्यात् । भवेयुः । भवेः । भवेताम् ।

पूर्ववत् । विधिनिमन्त्रणेत्यादि । “धातोः” इत्यधिक्रियते । विधिः, प्रेरणम्, भृत्यादेर्नि-  
 कृष्टस्य प्रवर्तनम् । निमन्त्रणम्-नियोगकरणम्, आवश्यकं श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः  
 प्रवर्तनम् । आमन्त्रणम्-कामचारानुज्ञा । अधीष्टः-सत्कारपूर्वको व्यापारः । इत्यादि ।  
 यासुडिति । “लिङः सीयुट्” इत्यतो लिङ इत्यनुवर्तते । लिङ इति पञ्चम्यर्थे षष्ठी ।  
 परस्मैपदेष्विति षष्ठ्यर्थे सप्तमी । तदाह-लिङः परस्मैपदानामिति । लिङः सलोप इति ।  
 स इति लुप्तषष्ठीकम् । “रुदादिभ्यः सार्वधातुके” इत्यतः सार्वधातुक इत्यनुवर्तते तस्य  
 षष्ठ्यन्तेन विपरिणामः । तदाह-सार्वधातुकलिङ इत्यादिना । अतो येय इति । “रुदा-  
 दिभ्यः सार्वधातुके” इत्यतः सार्वधातुके इत्यनुवर्त्य अवयवषष्ठ्यन्तेन विपरिणामः ।  
 अत इति पञ्चमी । परस्येत्यध्याह्रियते । यास इति लुप्तषष्ठीकम् । येय इत्यत्र यास्  
 इय् इत्यत्र सन्धिरार्थः । इय इत्यत्र-अकार उच्चारणार्थः । तदाह-अतः परस्येत्या-  
 दिना । लोपो व्योरिति । वकारयकारयोर्लोपो बलि परे इत्यर्थः । भवेत् । भूधातोः  
 “विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधी संप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ” इति लिङि इकारङकारयोरित्संज्ञायां  
 लोपे च लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तिपि, परस्येत्संज्ञायां लोपे च “तिङ्शित्सार्वधातु-  
 कम्” इति सार्वधातुकसंज्ञायां “कर्तरि शप्” इति शपि शकारपकारयोरित्संज्ञायां लोपे च  
 शित्वात् “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकसंज्ञायां “सार्वधातुकार्धधातुकयोः”  
 इति गुणे “एचोऽयवायावः” इत्यवादेशे “इतश्च” इतीकारलोपे “यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो-  
 ङिञ्च” इति यासुटि, अनुबन्धलोपे “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति यासः सस्य लोपे  
 प्राप्ते “अतो येयः” इति यासः स्थाने इयादेशे “आद्गुणः” इति गुणे “भवेय् त्” इति  
 जाते “लोपो ज्योर्वलि” इति यलोपे “भवेत्” इति रूपं सिद्धयति । भवेताम् । भूधातो-  
 र्लिङि तस्य स्थाने प्रथमपुरुषाद्विवचने तसि तत्स्थाने “तस्यस्थमिपां तान्तन्तामः” इति  
 तसस्तामादेशे शपि, अनुबन्धलोपे गुणेऽवादेशे यासुटि, सलोपं बाधित्वा यास इया-  
 देशे गुणे यलोपे “भवेताम्” इति रूपम् । भेर्जुसिति । अत्र “लिङः सीयुट्” इत्यतो लिङ  
 इत्यनुवर्तते । भवेयुः । भूधातोर्लिङि तत्स्थाने क्षिप्रत्यये शपि, गुणेऽवादेशे “क्षोऽन्तः”  
 इति क्षस्यान्तादेशे प्राप्ते तं बाधित्वा “भेर्जुस्” इति भेर्जुसादेशेऽनुबन्धलोपे “यासुट्  
 परस्मैपदेषूदात्तो ङिञ्च” इति यासुटि अनुबन्धलोपे “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति  
 प्राप्ते सलोपं बाधित्वा “अतो येयः” इति यास इयादेशे कृते “आद्गुणः” इति गुणे

भवेत् । भवेयम् । भवेव । भवेम । लिङाशिषि ३।४।११६। आशिषि लिङ्प्रतिभ-  
र्धधातुकसंज्ञः स्यात् । किदाशिषि ३।४।१०४। आशिषि लिङो यासुट् क्ति ।  
“स्कोः संयोगाद्योः” इति सलोपः । गङ्कति च १।१।१५। गित्कित्किञ्चिमिते इग्लक्षणे  
गुणवृद्धी न स्तः । भूयात् । भूयास्ताम् । भूयासुः । भूयाः । भूयास्तम् । भूयास्त ।  
भूयासम् । भूयास्व । भूयास्म । लुङ् ३।३।११०। भूतार्थे धातुर्लुङ् स्यात् । माङि  
लुङ् ३।३।१७५। सर्वलकाराभवादः । स्मोत्तरे लङ् च ३।३।१७६। स्मोत्तरे माङि

सप्त रुवेऽनुबन्धलोपे रेफस्य विसर्गे च ‘भवेयुः’ इति रूपम् । भवेः । सिपि, शपि,  
गुणः । अवादेशः । “इतश्च” इतीकारलोपः । यासुडागमः । “अतो वेयः” इति यासः  
स्थाने इयादेशे आद्गुणः, यलोपः । स्त्वविसर्गो । एवं थसः तमादेशे यस्य तादेशे च  
‘भवेतम्’ ‘भवेत’ इति च रूपे । भवेयम् । मिपि अमादेशः । शप्, गुणः अवादेशः ।  
यासुट्, इयादेशः, आद्गुणः । भवेव । वस्, शप्, गुणावादेशौ । ‘नित्यं ङितः’ इति  
सकारलोपः । यासुट् । इयादेशः, आद्गुणः । यलोपः । एवं मसि-‘भवेम’ इति रूपम् ।  
लिङाशिषि । अत्र लिङिति लुप्तषष्ठीकम् । “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इत्यतः तिङ् इति  
“आर्धधातुकं शेषः” इत्यत आर्धधातुकमिति चानुवर्तते । किदाशिषि । “लिङः सीयुट्”  
इत्यतो लिङ् इति “यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङित्च” इत्यतो यासुडिति चानुवर्तते ।  
गङ्कति चेति । गङ्कट् एषां समाहारइन्द्रः । तत् इत् यस्येति विग्रहः । “इको गुणवृद्धी”  
इति सूत्रमनुवर्तते । चकारः-इत्यर्थः । तेन इक् इति उच्चार्य विहिते इति लभ्यते ।  
“न धातुलोप आर्धधातुके” इत्यतो नेत्यनुवर्तते । तदाह—गित्कित्किञ्चिमित् इत्या-  
दिना । भूयात् । भूधातोः “आशिषि लिङ्लोटौ” इति लिङि, तत्स्थाने “तिसस्त्रि०”  
इत्यादिना तिपि “लिङाशिषि” इति तिप आर्धधातुकत्वात् शपोऽभावे “इतश्च” इती-  
कारलोपे यासुटि “सुट् तिथोः” इति सुटि, अनुबन्धलोपे “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च”  
इति सलोपे “क्ङिति च” इति गुणनिषेधे ‘भूयात्’ इति सिद्धम् । भूयास्ताम् । भूधातो-  
राशिषि लिङस्तसस्तामादेशे “लिङाशिषि” इत्यार्धधातुकत्वात् शवभावे यासुटि सुटि  
“स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति यासुटः सलोपे गुणनिषेधे च तत्सिद्धिः । भूयासुः । भूधा-  
तोराशिषि लिङ्, तत्स्थाने श्रौ आदेशे, तस्य स्थाने “झेजुस्” इति जुमि, शपोऽभावे,  
यासुटि, अनुबन्धलोपे स्त्वविसर्गयोः ‘भूयासुः’ इति रूपम् । भूयाः । भूधातोराशीर्लिङः  
सिपि “इतश्च” इतीकारलोपे यासुटि “स्कोः” इति सलोपे क्त्वात् गुणनिषेधे स्त्वे  
विसर्गे च तत्सिद्धिः । भूयास्तम् । यसस्तमादेशे यासुटि गुणनिषेधः । एवं थस्य तादे-  
शेऽपि ‘भूयास्त’ इति रूपम् । भूयासम् । मिपोऽमादेशे यासुटि गुणनिषेधः । भूयास्व ।  
लिङो वस् “नित्यं ङितः” इति सकारलोपः । यासुट् । गुणनिषेधः । एवं मसि—  
‘भूयास्म’ इति रूपम् । लुङिति । “धातोः” “भूते” इति चाधिक्रियते । ननु “लुङ्”  
इत्यनेनैव सिद्धेः किमर्थमिदमित्यत आह—सर्वलकाराभवाद इति । स्मोत्तरे लङ् च ।

लङ् स्याच्चाबुद्धः । च्लि लुङि ३।१।४३। शबाद्यपवादः । च्लेः सिच् ३।१।४४।  
इचावितौ । गातिस्थानुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु २।४।७७। एभ्यः सिचो  
लुक् स्यात् । गातिविहेणादेशविबती गृह्यते । भूसुवोस्तिङि ७।३।८८। भूसू एतयोः  
सार्वधातुके तिङि परे गुणो न स्यात् । अभूत् । अभूताम् । अभूवन् । अभूः । अभू-  
तम् । अभूत् । अभूवम् । अभूव । अभूम् । न माङ्योगे ६।४।७४। अडाटौ न  
स्तः । मा भवान् भूत् । माम् भवत् । माम् भूत् । लिङ्निमित्ते लङ् क्रियाति-

चकारात् “माङि लुङ्” इत्यनुकृष्यते । अयमपि सर्वलकारापवादो बोध्यः । शबाद्यपवाद  
इति । आदिना श्यनादिविकरणसङ्ग्रहः । च्लेः सिजिति । चित्वस्य चित्स्वरः प्रयो-  
जनम् । इदित्वस्य तु ‘अमस्त’ इत्यत्र “अनिदितां हल उपधायाः” इति उपधालो-  
पस्याप्रवृत्तिः प्रयोजनम् । गातिस्थेति । गाति स्था घु पा भू एषां इन्द्रः । तस्मात्प-  
ञ्चमीऽहुवचम् । परस्येत्यध्याह्रियते । सिच इति षष्ठी । गातीति शितपा निदेशात्  
गाधातोर्ग्रहणम् । ‘घु’ इत्यनेन “दाधाच्चदाप्” इति घुसञ्ज्ञकयोः दाधातोः धाधातोश्च  
ग्रहणम् । “प्यञ्चत्रियार्पञितौ यूनि लुगाणिजोः” इत्यतो लुगित्यनुवर्तते । गापात्रिहेति ।  
“ग.पोर्ग्रहणे इण्पिबत्योर्ग्रहणम्” इति भाष्यादित्यर्थः । भूसुवोस्तिङि । अत्र “मिदेर्गुणः”  
इत्यतो गुण इति “नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके” इत्यतो नेति सार्वधातुक इति  
चानुवर्तते । सू इत्यनेन षूङ् प्राणिगर्भविमोचने इत्यस्यैव ग्रहणन्तदाह—भूसू एतयोरि-  
त्यादिना । अभूत् । भूधातुतः “लुङ्” इति लुङि “लुङ्लङ्लुङ्क्वबुदात्तः” इत्यङागमे  
लुङ्स्तिपि “च्लि लुङि” इति च्लौ जाते “च्लेः सिच्” इति सिचि इचावित्सञ्ज्ञकौ  
विधाय तयोर्लोपे ‘अभू स् ति’ इति जाते “गातिस्थानुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु” इति  
सलोपे “इतश्च” इतीकारलोपे “भूसुवोस्तिङि” इति गुणाभावे च ‘अभूत्’ इति रूपम् ।  
अभूताम् । लुङ्स्तसि तामादेशः, च्लिः, सिच् । अट्, गुणनिषेधः । सिचो लुक् ।  
अभूवन् । भूधातोर्लुङि तस्य स्थाने क्षिप्रत्यये तस्मिन् परे च्लिप्रत्यये तस्य  
सिजादेशे तस्य लुकि अङागमे “सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च” इति झेर्जुसि प्राप्ते “आतः”  
इति सूत्रनियमात् तदभावे “झोऽन्तः” इति झस्यान्तादेशे “इतश्च” इतीकारलोपे  
तकारस्य संयोगान्तलोपे “भुवो दुःलुङ्लिदोः” इति वुगागमे अनुबन्धलोपे ‘अभूवन्’  
इत्यस्य सिद्धिः । अभूः । लुङः सिप्, च्लिः, सिच्, तस्य लुक्, अङागमः इकारलोपः,  
इस्वविसर्गौ च । अभूतम् । थसस्तम्, च्लिः, सिच्, लुक्, अट्, गुणनिषेधः । एवं  
यस्य तादेशे । ‘अभूत’ इति रूपम् । अभूवमिति । मिप्, अम्, च्लिः, सिच्, लुक्,  
अट्, लुक् । अभूव । वस्, च्लिः, सिच्, लुक्, अट्, “नित्यं ङितः” इति सकार-  
लोपः गुणनिषेधः । एवं मसि ‘अभूम्’ इति रूपम् । न माङ्योगे इति । “लुङ्लङ्लुङ्-  
क्वबुदात्तः” इत्यतोऽङ् इति “आङ्जादीनाम्” इत्यतश्चाङिति चानुवर्तते, तदाह—  
अडाटौ न स्त इति । मा भवान् भूदिति । अत्र “न माङ्योगे” इत्यङभावः । एवमेव ‘मा-

पत्तौ अ३।१३६। हेतुहेतुमद्भावादिलिङ्गनिमित्तं तत्र भविष्यत्यर्थं लृङ् स्यात् क्रियाया  
अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् । अभविष्यत् । अभविष्यताम् । अभविष्यन् । अभविष्यः ।  
अभविष्यतम् । अभविष्यत । अभविष्यम् । अभविष्याव । अभविष्याम । 'सुवृष्टिबेद-  
भविष्यतदा सुमिश्रमभविष्यत्' इत्यादि ज्ञेयम् । अतः सातत्यगमने ॥२॥ अतति ।  
अत आदेः ७।४।७०। अभ्यासस्यादेरतो दीर्घः स्यात् । आत । आततुः । आतुः ।

स्म भवत्' इत्यत्र 'मा स्म भूत्' इत्यत्र च अडागमो न । लिङ्गनिमित्त इति । "हेतुहेतु-  
मतोलिङ्" "इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ" इत्यादि लिङो निमित्तं तस्मिन् इति विग्रहः ।  
क्रियाया अतिपत्तिः—अनिष्पत्तिः, असिद्धिरिति फलितम् । तस्यामिति विग्रहः ।  
"भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन्" इत्यतो भविष्यतीत्यनुवर्तते । तदाह—हेतुहेतुम-  
द्भावादित्यादिना । अभविष्यत् । भूधातुतः "लिङ्गनिमित्ते लृङ्क्रियातिपत्तौ" इति लिङ्  
तत्स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे "इतश्च" इतीकारलोपे शपं बाधित्वा "स्यतासी लृलुटोः"  
इति स्यप्रत्यये "आर्धधातुकं शेषः" इत्यार्धधातुकत्वे "आर्धधातुकस्येड्वलदेः" इती-  
डागमे गुणेऽवादेशे अडागमे "आदेशप्रत्यययोः" इति षत्वे "अभविष्यत्" इति रूपं  
सिद्धम् । अभविष्यताम् । भूधातोर्लृङ्स्तामादेशे स्यप्रत्यये इडागमे गुणेऽवादेशे षत्वे  
अडागमे च तत्सिद्धिः । अभविष्यन् । भूधातोर्लृङ् तत्स्थाने शौ अडागमे स्ये इटि  
गुणेऽवादेशे "झोऽन्तः" इत्यन्तादेशे "इतश्च" इतीकारलोपे तकारस्य संयोगान्तलोपे  
षत्वे च तत्सिद्धिः । अभविष्यः । भूधातोर्लृङ् सिपि अटि स्ये इटि गुणेऽवादेशे  
"इतश्च" इतीकारलोपे षत्वे स्त्वे विसर्गे च तत्सिद्धिः । अभविष्यतम् । भूधातोर्लृङ्  
तत्स्थाने थसि तस्य तमादेशे स्ये अटि इटि गुणेऽवादेशे षत्वे च तत्सिद्धिः । एवं थस्य  
स्थाने तादेशे 'अभविष्यत' इति रूपम् । अभविष्यम् । लृङः स्थाने मिपि मिपोऽमादेशे  
"अभि पूर्वः" इति पूर्वरूपे षत्वे च तत्सिद्धिः । अभविष्याव । लृङः स्थाने वसि स्ये  
अटि इटि गुणेऽवादेशे "अतो दीर्घो यजि" इति दीर्घे "नित्यं ङितः" इति सलोपे  
"आदेशप्रत्यययोः" इति षत्वे च तत्सिद्धिः । एवं लृङो मसि 'अभविष्याम' इति  
बोध्यम् । सातत्यगमनम्—निरन्तरगमनम् । अतति । अत् धातोः "वर्तमाने लट्" इति  
लटि, प्रथमपुरषैकवचनविवक्षायां "तिसस्झि०" इति तिपि, "तिङ्शित्सार्वधातुकम्"  
इति सार्वधातुकसंज्ञायाम् "कर्तरि शप्" इति शपि 'शप्' इत्यनयोस्तिङ्ज्ञायां लोपे  
च शित्वात् शपः सार्वधातुकसंज्ञायां मिलित्वा 'अतति' इति रूपम् । अतति, अततः,  
अतन्ति । अतसि, अतथः, अतथ । अतामि, अतावः, अतामः । अत आदेरिति । अत्र "अत्र  
लोपोऽभ्यासस्य" इत्यतोऽभ्यासस्येति "दीर्घं हणः किति" इत्यतो दीर्घ इति चानु-  
वर्तते । आत । अत्-धातोर्लिङ् तस्य स्थाने तिपि "परस्मैपदानाम्" इत्यादिना तिपो  
ललादेशेऽनुबन्धलोपे "लिटि धातोरनभ्यासस्य" इति द्वित्वे "पूर्वोऽभ्यासः" इति  
अभ्याससंज्ञायाम् "हलादिः शेषः" इति लोपे 'अ अत् अ' इति जाते अभ्यासस्य-

आतिथ । आतयुः । आत । आत । आतिव । आतिम । अतिता । अतिष्यति ।  
 अततु । आडजादीनाम् ६।४।५२। अजादेरङ्गस्याट म्यात् लुङ्लङ्लृङ्क्ष । आतत् ।  
 अतेत् । अत्यात् । अत्यास्ताम् । लुङि सिचि इडागमे कृते । अस्तिसिचोऽपृक्ते

दीर्घे सवर्णदीर्घे च तत्सिद्धिः । आतंतुः । लिटि, तसि, अतुसि, द्वित्वे, अभ्यासकार्ये,  
 संवर्णदीर्घे, स्वविसर्गयोः रूपम् । एवं औ तत्स्थाने उसि 'आतुः' इति रूपमोध्यम् ।  
 आतिथ । अत्धातुतो लिटः सिचि 'परस्मैपदानाम्' इति सिपस्थलादेशे द्वित्वेऽभ्या-  
 सत्वे "हलादिः शेषः" इति लोपे पररूपं बाधित्वा "अत आदेः" इत्यभ्यासदीर्घे संवर्ण-  
 दीर्घे च "लिट् च" इत्यनेन थल आर्धधातुकसंज्ञायाम् "आर्धधातुकस्येड्वलदेः"  
 इति इडागमेऽनुबन्धलोपे 'आतिथ' इति रूपम् । एवम् आतयुः, आत । आत, आतिव,  
 आतिम । इत्यत्र बोध्यम् । अतिता । अत्धातोः "अनद्यतने लुट्" इति लुटि, तत्स्थाने  
 तिपि "स्यतासी लृटोः" इति तासि "आर्धधातुकं शेषः" इत्यार्धधातुकसंज्ञायाम्  
 "आर्धधातुकस्येड्वलदेः" इतीडागमे अनुबन्धलोपे "लुटः प्रथमस्य डारौरसः" इति  
 तिपो ङादेशेऽनुबन्धलोपे द्वित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपे च तत्सिद्धिः । एवम्-अति-  
 तारौ, अतितारः । अतितसि, अतितस्थः, अतितस्थ । अतितस्मि, अतितस्वः,  
 अतितस्मः । अतिष्यति । अत्धातोर्लृटि लुटस्तिपि, "स्यतासी लृटोः" इति स्ये  
 त्स्यार्धधातुकसंज्ञायाम् "आर्धधातुकस्येड्वलदेः" इति इडागमे सस्य षत्वे च कृते  
 'अतिष्यति' इति रूपम् । एवम्-अतिष्यतः, अतिष्यन्ति । अतिष्यसि, अतिष्यथः,  
 अतिष्यथ । अतिष्यासि, अतिष्यावः, अतिष्यामः । अततु । अत्धातोर्लोटि, लोटस्तिपि,  
 "कर्तरि शप्" इति शपि, अनुबन्धलोपे "एरुः" इति इकारस्योत्वे च कृते 'अततु'  
 इति रूपम् । एवम्-अततात्, अतताम्, अतन्तु, । अत-अततात्, अततम्,  
 अतत । अतानि, अताव, अताम् । आडजादीनामिति । "अङ्गस्य" इत्यधिक्रियते । "लुङ्  
 लङ् लृङ् ऋङ् इङ् दात्तः" इत्यतो 'लुङ्लङ्लृङ्' इत्यनुवर्तते । आतत् । अत्धातोर्लङि  
 तत्स्थाने तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे अटं बाधित्वा "आडजादीनाम्" इत्याडागमे  
 "आटश्च" इति वृद्धौ "इतश्च" इतीकारलोपे 'आतत्' इति सिद्धम् । एवम्-आतताम्,  
 आतन् । आतः, आततम्, आतत । आतम्, आताव, आताम् । अतेत् । अत् धातो-  
 लिङ्, लिङस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे यासुडागमे उटि गते यास इयादेशः, गुणे,  
 "लोपो व्योर्वलि" इति यलोपे तिप इकारस्य "इतश्च" इति लोपे 'अतेत्' इति रूपम् ।  
 एवम्-अतेताम्, अतेयुः । अतेः, अतेतम्, अतेत । अतेयम्, अतेव, अतेम । इत्यत्र  
 बोध्यम् । अत्यात् । अत्धातोराशिषि लिङि, लिङस्तिपि, "लिङाशिषि" इत्यार्धधातुकत्वे  
 शबभावे "यासुट् परस्मैपदेषु" इति यासुटि, उटि गते "इतश्च" इति तिप इकारस्य  
 लोपे "सुटतियोः" इति तकारस्य सुडागमे उटेलोपे 'अत्यास् स् त्' इति जाते "स्वो-  
 र्लोपो व्योर्वलि" इति लोपोपे "अत्यात्" इति रूपम् ।

७।३ ए६। विद्यमानात् सिचोऽस्तेष्व परस्यापृक्तस्य हल ईडागमः स्यात् । इट ईटि  
पा२।२८। इटः परस्य सस्य लोपः स्यादीटि परे । ( सिज्जलोप एकादेशे सिद्धो  
वाच्यः ) । आतीत् । आतिष्ठाम् । सिज्जभ्यस्तविदिभ्यश्च ३।४।१०६। सिचोऽ-  
भ्यस्ताद्विदेश परस्य डित्सम्बन्धिनो भेजुस् स्यात् । आतिष्ठुः । आतीः । आतिष्ठम् ।  
आतिष्ठ । आतिष्ठम्-आतिष्ठ । आतिष्ठम् । आतिष्ठत् । पिथ गत्याम् ॥ ३ ॥ ह्रस्व

एवम्—अत्यास्ताम्, अत्यासुः । अत्याः, अत्यास्तम्, अत्यास्त । अत्यासम्, अत्यास्व,  
अत्यास्म, इत्यत्र बोध्यम् । अस्तिसिचोऽपृक्ते । सिच्व असच्चेति समाहारद्वन्द्वः । सिच्व-  
न्दस्य सौत्रं भत्वम् । तेन पदत्वबाधात् कुत्वाभावः । ततो विद्यमानार्थकास्तीत्यव्ययेन  
कर्मधारयः । ततः पञ्चम्याः सौत्रो लुक् । “तस्मादित्युत्तरस्य” इति परिभाषया अस्तिसि-  
चसः इति पञ्चमी अपृक्ते इति सप्तम्याः षष्ठीं प्रकल्पयति । “उतो वृद्धिर्लुकि हलि” इत्य-  
तो हलीत्यनुवर्तते । तस्य षष्ठ्यन्तत्वेन विपरिणामः । “ब्रुव ईट” इत्यत ईडित्यनुवर्तते,  
तदाह—विद्यमानादित्यादिना । इट ईटीति । “संयोगान्तस्य लोपः” इत्यतो लोप इति  
“रात्सस्य” इत्यतः सस्येति चानुवर्तते । तदाह—सस्य लोप इति । आतीत् । अत्धातो-  
र्लुङि, लुङस्तिपि, “च्लि लुङि” इति च्लौ, “च्लेः सिच्व” इति सिचि इचि गते  
‘अत् + स् + ति’ इति जाते “आडजादीनाम्” इत्यादि “आटश्च” इति वृद्धौ, सिचः स  
आर्धधातुकसंज्ञायाम् “आर्धधातुकस्येड्वल्लदेः” इतीडागमे ‘आति + स् + ति’ इति  
जाते “इतश्च” इति तिप इकारस्य लोपे ‘तः’ इत्यस्य “अपृक्त एकाल् प्रत्ययः” इत्य-  
पृक्तसंज्ञायाम् “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति ईडागमे ‘आत् इ स् ई त्’ इति जाते “इट  
ईटि” इति सलोपे, सलोपस्य त्रैपादिकत्वात् “पूर्वत्रासिद्धम्” इत्यसिद्धत्वेन दीर्घवा-  
भावे प्राप्ते “सिज्जलोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः” इति सिज्जलोपस्यासिद्धत्वाभावेन सव-  
र्णदीर्घे ‘आतीत्’ इति रूपं सिद्धम् । आतिष्ठाम् । अत्धातोर्लुङि, प्रथमपुरुषद्विवचने  
तसि, तसस्तामि, आटि वृद्धौ, च्लौ, च्लेः सिचि, इचोलोपे इटि सस्य षत्वे । षट्त्वे च  
तत्सिद्धिः । सिज्जभ्यस्तेति । अत्र “भेजुस्” इति सूत्रम् “नित्यं डितः” इत्यतो डित इति  
चानुवर्तते । आतिष्ठुः । अत्धातोर्लुङो ङौ, च्लौ, तस्य सिचि, अनुबन्धलोपे इटि षत्वे  
“आडजादीनाम्” इत्यादि वृद्धौ “सिज्जभ्यस्तविदिभ्यश्च” इति भेजुसादेशेऽनुबन्धलोपे  
रुत्वे विसर्गे च तत्सिद्धिः । आतीः । लुङि, लः सिपि, च्लौ, सिचि, इटि, ईटि, सलोपे,  
सवर्णदीर्घे, आटि, वृद्धौ, “इतश्च” इति सिपि इकारस्य लोपे रुत्वे, विसर्गे च तत्सिद्धिः ।  
एवम्—आतिष्ठम्, आतिष्ठ । आतिष्ठम्, आतिष्ठ, आतिष्ठम्, इत्यत्र ज्ञेयम् । आतिष्ठत् ।  
अत्धातोर्लुङः प्रथमपुरुषैकवचने तिपि समागते, तस्य सार्वधातुकसंज्ञायाम् शपि  
प्राप्ते तम्बाधित्वा “स्यतासी लृलुटोः” इति स्ये; आर्धधातुकसंज्ञायां ईडागमे, अङ्गस्य  
आडागमे वृद्धौ च, इकारलोपे सस्य षत्वे च कृते ‘आतिष्ठत्’ इति रूपम् । एवमग्रे-  
ङि—आतिष्ठताम्, आतिष्ठन् । आतिष्ठः, आतिष्ठतम्, आतिष्ठत् । आतिष्ठम्,



लघु १।४।१०। संयोगे गुरु १।४।११। संयोगे परे ह्रस्वं गुरु स्यात् । दीर्घं च १।४।१२। गुरु स्यात् । पुगन्तलघूपधस्य च ७।३।८६। पुगन्तस्य लघूपधस्य चाङ्गस्त्रेको गुणः स्यात् सार्वधातुकार्धधातुकयोः । “धात्वादेः” इति सः । सेधति । षत्वन् । सिषेध । असंयोगाह्लिट् कित् १।२।१५। असंयोगात्तरोऽपिह्लिट् कित् स्यात् । सिषिधतुः । सिषिधुः । सिषेधिय । सिषिधयुः । सिषिध । सिषेध । सिषि-

आतिष्याव, आतिष्याम, इति बोध्यम् । विध-गत्याम् । अच्परकषकारादित्वात् षोपदेशोऽयम् । तथाहि-‘सेकस्त्पस्सृस्त्वृजस्तृस्त्यान्वे दन्त्याजन्तसादयः । एकाचः षोपदेशाः ष्वष्कस्विद्स्वद्स्वञ्स्वपस्मिङ् ॥ १ ॥ इति दत्याजन्तषादयः एकाचः’ षोपदेशाः स्युरित्यन्वयः । दन्त्यश्च अच्च दन्त्याचौ, तौ अन्तौ-अन्यवहितपरौ यस्य सः दन्त्याजन्तः, तथाविधः षः-षकारः आदिर्येषां ते दन्त्याजन्तषादयः । दन्त्यपरकः अच्परकश्च यः षकारः, तदादय एकाचो धातवः षोपदेशा इति यावत् । अतिव्यासिदोषं परिहर्तुम्-सेकादिसप्तभिन्नत्वं लक्षणे निविष्टम् । अव्यासिदोषं परिहर्तुं ष्वष्कादीनां परिगणनम् इति दिक् । ह्रस्व लघु । ह्रस्वं लघुसञ्ज्ञं स्यादित्यर्थः । संयोगे गुरु । अत्र ह्रस्वमित्यनुवर्तते । दीर्घं चेति । संयोगे इति नानुवर्तते । पुगन्तेति । “मिदेर्गुणः” इत्यतो गुण इत्यनुवर्तते । “अङ्गस्य” इत्यधिकृतमवयवषष्ठ्यन्तमाश्रीयते । पुक् अन्तो यस्य तत् । लघ्वी उपधा यस्य तत् । पुगन्तं च लघूपधं चेति समाहारद्वन्द्वात् षष्ठी । “इको गुणवृद्धी” इति परिभाषया इक इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते । तच्च स्थानषष्ठ्यन्तम् । तदाह-पुगन्तस्येत्यादिना । सेधति । पिध्धातोर्लिटि, लटः स्थाने तिपि, सार्वधातुकसञ्ज्ञायां शपि, अनुबन्धलोपे शित्वात्सार्वधातुकसञ्ज्ञायां “धात्वादेः षः सः” इति षस्य सत्वे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति लघूपधायाः गुणे मिलित्वा ‘सेधति’ इति रूपम् । एवम्-सेधतः, सेधन्ति । सेधसि, सेधथः, सेधथ । सेधामि, सेधावः, सेधामः । इत्यत्र बोध्यम् । सिषेध । पिध्धातोर्लिटि तत्स्थाने, तिपि, षस्य सत्वे, “लिट् च” इति तिपि सार्वधातुकत्वेन शपोऽभावे, तिपः स्थाने “परस्मैपदानाम्” इत्यादिना णलादेशेऽनुबन्धलोपे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे अभ्याससञ्ज्ञायाम् अभ्यासकार्यं च कृते “पुगन्तलघूपधस्य च” इति लघूतधगुणे “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे च ‘सिषेधः’ इति रूपम् । असंयोगादिति । “सार्वधातुकमपित्” इत्यतोऽपिदित्यनुवर्तते । सिषिधतुः । पिध्धातोर्लिटस्तसि, षस्य सत्वे, “परस्मैपदानाम्” इत्यादिना तसोऽनुसादेशे द्वित्वे, अभ्याससञ्ज्ञायाम् अभ्यासकार्यं च कृते “असंयोगाह्लिट् कित्” इति अनुसः कित्वे, “पुगन्तः” इति गुणे प्राप्ते “गिङ्कति च” इति निषिद्धे, सस्य रूपे विसर्गे च तस्मिन्निष्ठः । एवम् औ उसि “सिषिधुः” इति बोध्यम् । सिषेधिय । पिध्धातोर्लिटः सिपि, “धात्वादेः षः सः” इति षस्य सत्वे “परस्मैपदानाम्” इति सिपस्थालि द्वित्वेऽभ्यासकार्यं सस्य सत्वे “लिट् च” इत्यार्वधातुकत्वात् “आर्धधातुकस्येड्वलदेः” इति थल इडागमे

धिव । सिधिमि । सेधिता । सेधिष्यति । सेधतु । असेधत् । सेधेत् । सिध्यात् ।  
असेधीत् । असेधिष्यत् । एवं चिती संज्ञाने ॥ ४ ॥ चेतति । चिचेत । चेतिता ।

“पुगन्तलवूपधस्य च” इति गुणे ‘सिषेधिय’ इति रूपम् । एवम्—यसि; तत्स्याने  
अधुसि कृते ‘सिषेधयुः’ इति । एवं यस्य अ आदेशे ‘सिषिध’ इति च बोध्यम् ।  
सेधिता । षिध्धातुतो लुटस्तिपि “धात्वादेः षः सः” इति षस्य सत्वे “स्यतासी लुटोः”  
इति तासि “आर्धधातुकं शेषः” इति तासेरार्धधातुकत्वे लवूपधगुणे “आर्धधातुकस्ये-  
ड्वलादेः” इतीति “लुटः प्रथमस्य ढारौरसः” इति तेर्हात्वे ङस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च  
ङित्सवामर्थ्यादभस्यापि टेलोपे ‘सेधिता’ इति सिद्धम् । एवमग्रेऽपि—सेधितारौ, सेधि-  
तारः । सेधितासि, सेधितास्थः, सेधितास्थ । सेधितास्मि, सेधितास्वः, सेधितास्मः,  
इति पूर्ववद् बोध्यम् । सेधिष्यति । षिध्धातोर्लुटि, तिपि, सार्वधातुकसञ्ज्ञायां शपि  
प्राप्ते तम्बाधित्वा “स्यतासी लुटोः” इति स्ये आर्धधातुकसञ्ज्ञायाम् इति गुणे षत्वे  
च तत्सिद्धिः । अग्रे सेधिष्यतः, सेधिष्यन्ति । सेधिष्यासि, सेधिष्यथः, सेधिष्यथ । सेधि-  
ष्यामि, सेधिष्यावः, सेधिष्यामः । सेधतु । षिध्धातोर्लुटि, लोटस्तिपि, शपि, सार्वधा-  
तुकसञ्ज्ञायां गुणे षस्य सत्वे इकारस्योत्वे च तत्सिद्धिः । अग्र—सेधतात्, सेधताम्,  
सेधन्तु । सेध, सेधतात्, सेधतम्, सेधत । सेधानि, सेधाव, सेधाम । असधत् । षिध्-  
धातोर्लुङि, लङस्तिपि, अटि, शपि, गुणे, षस्य सत्वे, “इतश्च” इतीकारलोपे च कृते  
‘असेधत्’ इति सिद्धम् । अग्रे रूपाणि—असेधताम्, असेधन् । असेधः, असेधतम्,  
असेधत । असेधम्, असेधाव, असेधाम । सेधेत् । षिध्धातोर्लुङि, लिङस्तिपि, षस्य  
सत्वे शपि, अनुबन्धलोपे शित्वात्सार्वधातुकसञ्ज्ञायां गुणे “यासुट् परस्मैपदेषु दात्तो  
ङिच्च” इति यासुटि, उटि गते “अता येयः” इति यास इयादेशे गुणे “लोपो व्योर्वलि”  
इति यलोपे “इतश्च” इति तिप इकारस्य लोपे ‘सेधेत्’ इति रूपम् । सेधेताम्,  
सेधेयुः । सेधेः, सेधेतम्, सेधेत । सेधेयम्, सेधेव, सेधेम । सिध्यात् । षिध्धातोरा-  
शिषि लिङि, लिङस्तिपि, अनुबन्धलोपे “लिङाशिषि” इति तिप आर्धधातुकत्वेन  
शपोऽभावे “यासुट् परस्मैपदेषु दात्तो ङिच्च” इति यासुटि उटि गते “किदाशिषि”  
इति यासुटः कित्वे, कित्वाद् गुणाऽभावे “सुट् तिथोः” इति तकारस्य सुडागमे उटि  
गते “इतश्च” इतीकारलोपे “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति सकारद्वयस्य लोपे “धा-  
त्वादेः षः सः” इति षस्य सत्वे च विहिते ‘सिध्यात्’ इति रूपम् । द्विवचनादौ रूपा-  
णि—सिध्यास्ताम्, सिध्यासुः । सिध्याः, सिध्यास्तम्, सिध्यास्त । सिध्यासम्,  
सिध्यास्व, सिध्यास्म इति । असेधीत् । षिध्धातोर्लुङि, लुङस्तिपि, षस्य सत्वे अनुब-  
न्धलोपे सार्वधातुकसञ्ज्ञायां शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा च्लौ, च्लेः सिचि, इचोरित्सञ्ज्ञायां  
लोपे च, स आर्धधातुकसञ्ज्ञायाम् इति, गुणे “इतश्च” इति तिप इकारस्य लोपे अपृक्त-  
सञ्ज्ञायाम् “अस्ति सचोऽपृक्ते” इति ईटि, “इट ईटि” इति सलोपे तस्य “सिञ्जोष

चेतिष्यति । चेतु । अचेतत् । चेतत् । चित्यात् । अचेतीत् । अचेतिष्यत् । शुच  
शोके ॥५॥ शोचति । शुशोच । शोचिता । शोचिष्यति । शोचतु । अशोचत् । शोचेत् ।  
शुच्यात् । अशोचीत् । अशोचिष्यत् । गद् व्यक्तायां वाचि ॥६॥ गदति ॥ नेर्गदन-  
दपतपदधुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिष्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनो-  
तिदेग्धिषु च ८॥४॥१७॥ उपसर्गस्थानिमित्तात्तरस्य नेर्णः स्यात् गदादिषु परेषु ।

एकादेशे सिद्धो वाच्यः” इति सिद्धत्वेन सवर्णदीर्घे अङ्गस्याडागमे ‘असेधीत्’ इति  
रूपम् । द्विवचनादौ-असेधिष्टाम्, असेधिषुः । असेधीः, असेधिष्टम्, असेधिष्ट ।  
असेधिषम्, असेधिष्व, असेधिष्म । इति रूपाणि । असेधिष्यत् । षिध्धातोर्लुङि,  
लृङ्गस्तिपि, षस्य सत्वे, अनुबन्धलोपे तिपः सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते, तम्बाधित्वा  
“स्यतासी लृलुटोः” इति स्ये, तस्यार्धधातुकसंज्ञायाम्, इटि गुणे, अटि, षत्वे “इतश्च”  
इति तिप इकारस्य लोपे ‘असेधिष्यत्’ इति रूपम् सिद्धम् । एवम्-असेधिष्यताम्,  
असेधिष्यन् । असेधिष्यः, असेधिष्यतम्, असेधिष्यत । असेधिष्यम्, असेधिष्याव,  
असेधिष्याम । इति बोध्यम् । एवं चिती-संज्ञाने इति । चेतति, चेततः, चेतन्ति ।  
चेतसि, चेतथः, चेतय । चेतामि, चेतावः, चेतामः ॥ लोटि-चिचेत, चिचिततुः, चिचि-  
तुः । चिचेतिथ । चिचितथुः, चिचित । चिचेत, चिचितिव, चिचितिम । लुटि-  
चेतिता, चेतितारौ, चेतितारः । चेतितासि, चेतितास्थः, चेतितास्थ । चेतितास्मि, चेति-  
तास्वः, चेतितास्मः । लुटि-चेतिष्यति, चेतिष्यतः, चेतिष्यन्ति । चेतिष्यसि, चेति-  
ष्यथः, चेतिष्यथ । चेतिष्यामि, चेतिष्यावः, चेतिष्यामः । लोटि-चेततु, चेततात्,  
चेतताम्, चेतन्तु । चेत, चेततात्, चेततम्, चेतत, चेतानि, चेताव, चेताम । लङि-  
अचेतत्, अचेतताम्, अचेतन् । अचेतः, अचेततम्, अचेतत । अचेतम्, अचेताव,  
अचेताम । विधिलिङि-चेतेत्, चेतेताम्, चेतेयुः । चेतेः, चेतेतम्, चेतेत । चेतेयम्,  
चेतेव, चेतेम । आशीर्लिङि-चित्यात्, चित्यास्ताम्, चित्यासुः । चित्याः, चित्या-  
स्तम्, चित्यास्त, चित्यासम्, चित्यास्व, चित्यास्म । लुङि-अचेतीत्, अचेतिष्टाम्,  
अचेतिषुः । अचेतीः, अचेतिष्टम्, अचेतिष्ट । अचेतिषम्, अचेतिष्व, अचेतिष्म ।  
लुङि-अचेतिष्यत्, अचेतिष्यताम्, अचेतिष्यन् । अचेतिष्यः, अचेतिष्यतम्, अचे-  
तिष्यत । अचेतिष्यम्, अचेतिष्याव, अचेतिष्याम, अत्र सर्वत्र साधनन्तु पूर्ववत् ।  
शुच-शोके इति । लोटि-शोचति । लोटि-शुशोच, शुशुचतुः, शुशुचुः । शुशोचिय,  
इत्यादि । लुटि-शोचिता, लुटि-शोचिष्यति । लोटि-शोचतु । लङि-अशोचत् ।  
विधिलिङि-शोचेत् । आशीर्लिङि-शुच्यात् । लुङि-अशोचीत् । लुङि-अशोचि-  
ष्यत् । साधनं पूर्ववत् । गदति । गद्धातोर्लुटि, लृट्स्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे च  
तस्सिद्धिः । अत्धातुवत्साधनं रूपाणि च । नेर्गदनदेति । अत्र “रषाम्यान्नो णः समान-  
पदं” इति “उपसर्गादस्मासेऽपि णोऽपदेवस्व” इत्यत्र उपसर्गादिति चानुवर्तते ।

प्रणिगदति । कुहोश्चुः ७।१।२। अभ्यासकवर्गहकारयोश्चवर्गदेशः स्यात् ॥  
अत उपधायाः ७।२।१।६। उपधाया अतो वृद्धिः स्यात् जिति णिति च प्रत्यये  
परे । जगाद । जगदतुः । जगदुः । जगदिथ । जगदयुः । जगद ॥ णलुत्तमो वा  
७।२।७। उत्तमो णत्वा णित्स्यात् । जगाद-जगद । जगदिव । जगदिम । गदिता ।  
गदिष्यति । गदतु । अगदत् । गदेत् । गद्यात् ॥ अतो हलादेर्लघोः ७।१।६। हला-  
देर्लघोरकारस्य वृद्धिर्वा स्यादिडादौ परस्मैपदे सिचि । अगादीत्-अगदीत् । अगदि-

लङ्गण्या उपसर्गपदमत्र उपसर्गस्थपरम् । तदेतदाह—उपसर्गस्थादित्यादिना । प्रणि-  
गदति । अत्र “नेर्गदिनद” इत्यादिना प्रोपसर्गस्थरेफात्परस्य नेर्नकारस्य णत्वम् ।  
कुहोश्चुरिति । अत्र “अत्र लोपोऽभ्यासस्य” इत्यतोऽभ्यासस्येत्यनुवर्तते । अत उपधा-  
या इति । “मृजेवृद्धिः” इत्यतो वृद्धिः, “अचो ङिति” इत्यतो ङिति इति चानुव-  
र्तते । जगाद । गद्धातोर्लिट्तिपि, “परस्मैपदानां णलतुसुस्थल०” इति तिपो  
णलि, अनुबन्धलोपे, “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे “हलादिः  
शेषः” इति लोपे “कुहोश्चुः” इति अभ्यासगकारस्य चुत्वेन जकारे, जगद् अ इति  
स्थिते “अत उपधायाः” इति उपधाभूताकारस्य वृद्धौ “जगाद्” इति सिद्धम् । णलु-  
त्तमो वा । अत्र “गोतो णित्” इत्यतो णितित्यनुवर्तते । जगाद—जगद । गद्धातोर्लिटो  
मिपि “परस्मैपदानाम्” इति मिपो णलादेशेऽनुबन्धलोपे द्वित्वेऽभ्यासत्वे “हलादिः  
शेषः” इति लोपे “कुहोश्चुः” इति अभ्यासगकारस्य चुत्वेन जकारे “जगद् + अ” इति  
स्थिते “णलुत्तमो वा” इति णलः पाक्षिके णित्वे “अत उपधायाः” इति वृद्धौ “जगाद्”  
इति, णित्वाभावपक्षे “जगद्” इति च सिद्धम् । गदिता । गद्धातोर्लुट्तिपि “स्यतासी  
लुटोः” इति तासी “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वल्लादेः”  
इति इटि, अनुबन्धलोपे “लुटः प्रथमस्य द्वारौरसः” इति तिपो ङादेशे, ङस्येऽसंज्ञायां  
लोपे, च द्वित्वसामर्थ्यादिमस्यापि टेलोपे “गदिता” इति । अग्रे-“गदितारौ, गदितारः” इत्यादि,  
‘अतितासि’ इत्यादिवद्बोध्यम् । गदिष्यति । गद्धातोर्लुटि, तिपि, स्ये इटि षत्वे च  
तत्सिद्धिः । अग्रे-गदिष्यतः, इत्यादि, अतिष्यति इत्यादिवत् । गदतु । गद्धातोर्लोटि,  
लोट्तिपि, ऋपि “एरुः” इतीकारस्योत्वे च तत्सिद्धिः । अगदत् । गद्धातोर्लङि, लङ्-  
तिपि, शपि, अटि, “इतश्च” इतीकारलोपे च तत्सिद्धिः । गदेत् । गद्धातोर्लिङ्गतिपि,  
ऋपि, यासुट्, उटि गते “अतो येयः” इति यास इयादेशे गुणे “लोपो व्योर्वलि”  
इति यलोपे इकारलोपे च कृते तत्सिद्धिः । गद्यात् । गद्धातुत आशीर्लिङ्गतिपि “लिङ्ग-  
सिचि” इति तिङ् आर्धधातुकत्वेन शबभावे यासुटि, उटि गते “सुट्तिथोः” इति तिप्-  
स्तकारस्य सुटि उटि गते “इतश्च” इति तिप् इकारलोपे “स्कोः संयोगाधोरन्ते च”  
इति सकारद्वयस्य लोपे च तत्सिद्धिः । अतो हलादेरिति । अत्र “सिचि वृद्धिः परस्मैप-  
देषु” इति सूत्रम्, “नेटि” इत्यत इटीति “ऊर्णोतेर्विभाषा” इत्यतो विभाषेति चानुव-

षत् । शब्द अव्यक्ते शब्दे ॥ ७ ॥ शो नः ६।१।६५। धात्वादेर्णस्य नः स्यात् ।  
 णोपदेशास्त्वनर्दनाटिनाथनाधूनन्दनकननृतः ॥ उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेश-  
 स्य ८।४।१४। उपसर्गस्थानिमित्तात्परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः स्यात् । प्रणदति ।  
 प्रणिनदति । नदति । ननाद ॥ अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ६।४।१२०।  
 लिटिर्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं तदवयवस्यासंयुक्तहल्मध्येऽप्यस्य स्यात् एत्वं स्याद-

तर्ते । अगादीत्-अगदीत् । गद् धातोर्लङ्गस्तिपि “इतश्च” इतीकारलोपे अटि, शपं बाधित्वा-  
 च्छौ, च्लेः सिचि, इच इत्संज्ञायां लोपे च, सस्य आर्धधातुकसंज्ञायाम् इटि “अस्ति-  
 सिचोऽपृक्ते” इति तकारस्येडागमे अनुबन्धलोपे ‘अगद् इ स ई त्’ इति जाते “इट  
 ईटि” इति सलोपे “सिज्जलोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः” इति सिज्जलोपस्यासिद्धत्वाभावेन  
 सवर्णदीर्घं “अतो हलादेर्लघोः” इति पाञ्चिकवृद्धौ ‘अगादीत्’ इति, तदभावे ‘अगदीत्’  
 इति च सिद्धम् । अग्रे-अगादिष्टाम्-अगदिष्टाम्, अगादिषुः-अगदिषुः । अगादीः-अगदीः,  
 अगादिष्टम्-अगदिष्टम्, अगादिष्ट-अगदिष्ट । अगादिषम्-अगदिषम् । अगादिष्व-अग-  
 दिष्व, अगादिष्म-अगदिष्म । इति । अगदिध्यत् । गद् धातोर्लङ्गस्तिपि, स्ये आर्धधातुकत्वे,  
 इटि, अटि, सस्य षत्वे, तिप इकारलोपे च कृते तत्सिद्धिः । अव्यक्ते शब्दे-अमनुष्यप-  
 शुपत्यादिकृतशब्दे इत्यर्थः । शो नः । अत्र “धात्वादेः षः सः” इत्यतो धात्वादेरित्यनु-  
 वर्तते । ण इति षष्ठ्यन्तम् । तदाह—णस्येति । णोपदेशास्त्विति । नर्द-शब्दे, नट-  
 अवस्कन्दने, नाथ नाष्ट-याञ्चोपतापेश्वर्याशीःषु, टुनदि-समृद्धौ, नक्क-नाशने, नृ-नये,  
 नृती-गात्रविषेपे, एतेभ्योऽष्टाभ्यो भिन्ना णकारादिधातवो णोपदेशपदेनोच्यन्ते इति  
 चावत् । उपसर्गादसमासेऽपीति । “रषाभ्यां नो णः” इत्यनुवर्तते । अपिशब्दात्समासेऽपीत्य-  
 र्थः । प्रणदति । णद् धातोर्लिटि, “णो नः” इति णस्य नत्वे प्रथमपुरुषैकवचनविबक्षायां लट-  
 स्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे, ‘नदति’ इति रूपम् । तत्र प्रोपसर्गस्य योगे “उपसर्गादसमासे-  
 ऽपि णोपदेशस्य” इति प्रोपसर्गस्थरेकात्परस्य नद् धातोर्नस्य णत्वे च तत्सिद्धिः । प्र-  
 णिनदति । अत्र “नेर्गदनद” इति णत्वम् । ननाद । णद् धातोर्लिटिस्तिपि, “णो नः” इति  
 णस्य नत्वे “परस्मैपदानाम्” इति तिपो णलि, “लिटि धातोर्नभ्यासस्य” इति  
 द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इति अभ्याससंज्ञायां “हलादिः शेषः” इति द्वलोपे “अत उप-  
 धायाः” इत्युपधावृद्धौ च विहितायां ‘ननाद’ इति रूपम् । अत एकहल्मध्ये । लिटी-  
 त्यावर्तते । पूर्वत्र निमित्तसप्तमी । परत्र परसप्तमी । एकशब्दोऽसहायवाची । एकौ-  
 असंयुक्तलौ, एकलौ । तयोर्मध्ये इति विग्रहः । “अङ्गस्य” इत्यधिक्रियते । “ध्वसो-  
 रेद्धावभ्यासलोपश्च” इत्यत एदति; अभ्यासलोप इति च, “गमहनजनखनघसां लोप-  
 कडित्यनङि” इत्यतः किति ति चानुवर्तते, तदाह—लिङ्गिनिमित्तेत्यादिना । नेदतुः । णद्-  
 धातोर्लिटिस्तसि “णो नः” इति णस्य नत्वे, तस अतुसि, द्वित्वेऽभ्यासकार्ये च कृते  
 स्त्वं न नू अतु इति जाते, अत्र “अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि” इति एत्वेऽभ्यास-

भ्यासलोपश्च किति लिटि । नेदतुः । नेदुः । थलि च सेटि, ६।४।१२१। प्रागुक्तं  
स्यात् । नेदिथ । नेदथुः । नेद । ननाद-ननद । नेदिव । नेदिम । नदिता । नदि-  
ष्यति । नदतु । अनदत् । नदेत् । नयात् । अनादीत्-अनदीत् । अनदिष्यत् ।  
टुनदि समृद्धौ ॥८॥ आदिर्जिडुडवः १।३।५। उपदेशे धातोराधा एते इतः स्युः ॥  
इदितो नुप् धातोः ७।१।५७। नन्दति । ननन्द । नन्दिता । नन्दिष्यति । नन्दतु ।

लोपे रुवे रेफस्य विसर्गं च 'नेदतुः' इति रूपम् । नेदुः । एवम्—लिटो झौ, झेः  
उसि, द्वित्वेऽभ्यासकार्ये एत्वाभ्यासलोपे रुवे विसर्गं च 'नेदुः' इति रूपम् । थलि  
चेति । लिङ्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं तदवयवस्यासंयुक्तहल्मध्यस्थस्यात्  
एवं स्यादभ्यासलोपश्च सेटि थलि इत्यर्थः । नेदिथ । णद्धातोर्लिटः सिपि, णस्य नत्वे  
सिपस्थलादेशे द्वित्वेऽभ्यासकार्ये "आर्धधातुकस्येड्वल्लादेः" इति थल इडागमे "थलि च  
सेटि" इत्येत्वेऽभ्यासलोपे च कृते 'नेदिथ' इति रूपम् । ननाद-ननद । णद्धातुतो  
लिट उत्तमपुरुषैकवचने मिपि, मिपः स्थाने णलि, द्वित्वेऽभ्यासकार्ये च णलो "णलु-  
त्तमो वा" इति वैकल्पिकणित्वे "अत उपधायाः" इति उपधावृद्धौ 'ननाद' इति ।  
णित्वाभावपक्षे—'ननद' इति । नदिता । णद्धातोर्लुटस्तिपि "णो नः" इति णस्य  
नत्वे "स्यतासी लुलुटोः" इति तासि आर्धधातुकसंज्ञायाम् इटि, तिपो ङादेशे, द्वित्व-  
सामर्थ्यादभस्यापि टेलोपि च कृते तत्सिद्धिः । नदेत् । णद्धातोर्लिङ्गस्तिपि, णस्य  
नत्वे, शपि, अनुबन्धलोपे यासुटि, उटि गते, यास इयादेशे गुणे यलोपे तिप  
इकारलोपे च कृते 'नदेत्' इति रूपम् । अनादीत्-अनदीत् । णद्धातोर्लुङ्गस्तिपि, "णो  
नः" इति णस्य नत्वे, "लुङलङ्लुङ्क्वहुदात्तः" इत्यडागमे "ल्लि लुङि" इति  
ल्लौ, "ल्लेः सिच्" इति सिचि, इच् इत्संज्ञायाम् लोपे च, सस्य आर्धधातुकसं-  
ज्ञायां इडागमे "इतश्च" इति तिप इकारस्य लोपे "अस्तिसिचोऽपृक्ते" इतीडागमे  
"इट ईटि" इति सिचो लोपे "सिज्जलोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः" इति सिज्जलोपस्य  
सिद्धत्वात् "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घे 'अनद् ई त्' इति जाते "अतो हलादे-  
र्लघोः" इति वा वृद्धौ 'अनादीत्' इति रूपम् । पक्षे-वृद्धयभावे 'अनदीत्' इति ।  
आदिर्जिडुडव इति । "उपदेशेऽजनुनासिक इत्" इत्यत उपदेशे इति, इदिति  
चानुवर्तते, "भूवादयो धातवः" इत्यतोऽनुवृत्तधातव इति षष्ठ्या विपरिणम्यते,  
तदेतदाह—उपदेशे इत्यादिना । इदित इति । इत्-ह्रस्व इकारः, इत्-इत्संज्ञको यस्य  
सः इदित् तस्येति विग्रहः । इत्संज्ञकेदन्तधातोरित्यर्थः । चञ्चिडादौ न दाषः । वस्तु-  
तस्तु कर्मधारयोऽत्र, न तु बहुव्रीहिः । कर्मधरयाश्रयणे एव तदन्तविधिना अन्तेदित  
इत्यर्थलाभात् । नुमि मकार इत् । उकार उच्चारणार्थः । नन्दति । टुनदि इत्यत्र  
"उपदेशेऽजनुनासिक इत्" इति इकारस्य इत्संज्ञायां "तस्य लोपः" इति लोपे टुनद्  
इति जाते, तस्य "भूवादयो धातवः" इति धातुत्वे "आदिर्जिडुडवः" इति इत्संज्ञे-

अनन्दत् । नन्देत् । नन्धात् । अनन्दीत् । अनन्दिष्यत् । अर्चं पूजयाम् ॥ ९ ॥  
 अर्चति । तस्माच्छुद्धिहलः ७।४।७१। द्विहलो धातोर्दीर्घाभूतादकारात्परस्य नुट्  
 स्यात् । आनर्च । आनर्चतुः । अर्चिता । अर्चिष्यति । अर्चतु । आर्चत् । अर्चत् ।  
 अर्च्यत् । आर्चीत् । आर्चिष्यत् । व्रज गतौ ॥ १० ॥ व्रजति । वराज । व्रजिता ।

तस्मिन्नायां लोपे च ततो लटि, तत्स्थाने तिपि शपि। अनुबन्धलोपे “इदितो नुम् धातोः”  
 इति नुमि, उमि गते “मिदचोऽन्त्यात्परः” इति अन्त्याचः परे, अनुस्वारे परसवण च  
 कृते ‘नन्दति’ इति रूपम् । अग्रे-नन्दतः, नन्दन्ति । नन्दसि, नन्दथः, नन्दथ ।  
 नन्दामि, नन्दावः, नन्दामः इति । ननन्द । ननन्द, ननन्दतुः, ननन्दुः । ननन्दिथ,  
 ननन्दथुः, ननन्द । ननन्द, ननन्दिव, ननन्दिम । अनन्दीत् । अत्र लघुत्वाभावाच्च  
 वृद्धिः । अर्चति । अर्च्धातोर्लटि, लट्स्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे, सार्वधातुकसंज्ञायाम्  
 ‘अर्चति’ इति सिद्धं रूपम् भवति । अग्रे-अर्चतः, अर्चन्ति । अर्चसि, अर्चथः, अर्चथ ।  
 अर्चामि, अर्चावः, अर्चामः । इति । तस्मान्नुडिति । द्वौ हलौ यस्य तस्येति विग्रहः ।  
 तच्छब्देन “अत आदेः” इति कृतदीर्घ आकारः परामृश्यते । तदेतदाह-दीर्घाभूताद-  
 कारादिति । आनर्च । अर्चं धातोर्लटि, लट्स्तिपि, “परस्मैपदानां णलुतसुस्थल्” इति  
 तिपो णलि, द्वित्वेऽभ्यासत्वे, “हलादिः शेषः” इति लोपे “अत आदेः”-इत्यभ्यासा-  
 कारस्य दीर्घे “तस्मान्नुडिहलः” इति नुव्यनुबन्धलोपे च तत्सिद्धिः । आनर्चतुः ।  
 अर्चधातोर्लटि, लट्स्तिपि, “परस्मैपदानाम्” इति तसोऽनुसि “लिट् च” इत्यार्ध-  
 धातुकत्वे तेन शबभावे, द्वित्वेऽभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति लोपे “अत आदेः”  
 इत्यभ्यासाकारस्य दीर्घे “तस्मान्नुडिहलः” इति नुव्यनुबन्धलोपे च तत्सिद्धिः ।  
 अग्रे-आनर्चुः । आनर्चिथ, आनर्चथुः, आनर्च । आनर्च, आनर्चिव, आनर्चिम । अर्चिता ।  
 अर्चं धातोर्लुट्स्तिपि, सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा “स्यतासौ  
 लुलुटोः” इति तासौ इकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “आर्धधातुकं शेषः” इति तास आर्ध-  
 धातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वलदेः” इतीडागमे “लुटः प्रथमस्य डारौरसः” इति तिपो  
 ङात्वे द्वित्वसामर्थ्यादिभस्यापि टेलोपे इत्यासभागस्य लोपे च कृते च तत्सिद्धिः ।  
 अर्चिष्यति । लुट्स्तिपि, स्ये, इटि, षत्वे च । अर्चतु । लोटि, तिपि, शपि, “एरुः” इति  
 ङत्वे च । आर्चत् । लङि, तिपि, शपि, “आडजादीनाम्” इत्यादि “आटश्च” इति वृद्धौ  
 “इतश्च” इति तिपि इकारस्य लोपे च तत्सिद्धिः । अर्चत् । लङि, तिपि, शपि, यासुटि,  
 इयादेशे गुणे यलोपे इकारलोपे च । अर्च्यत् । आशिर्लिङि तिपि, आर्धधातुकत्वेन शब-  
 भावे यासुटि अनुबन्धलोपे तिपि इकारस्य लोपे च तत्सिद्धिः । आर्चीत् । अर्च् धातोर्ल-  
 ट्स्तिपि अनुबन्धलोपे “इतश्च” इतीकारलोपे “आडजादीनाम्” इत्यादि “आटश्च” इति  
 वृद्धौ, प्लौ, प्लेः सिच्यनुबन्धलोपे इटि ईटि च कृते “इट ईटि” इति सलोपे सिजलो-  
 पस्यासिद्धत्वाभावेन सर्वार्थदीर्घे च कृते ‘आर्चीत्’ इति रूपम् । अग्रे-आर्चिष्यम्,

व्रजिष्यति । व्रजतु । अव्रजत् । व्रजेत् । व्रज्यात् ॥ वदव्रजहलन्तस्याचः ७।२।३।  
वदेव्रजेर्हलन्तस्य चाङ्स्य वृद्धिः स्यात् सिचि परस्मैपदेषु । अव्राजीत् । अव्रजिष्यत् ।  
कटे वर्षावरणयोः ॥ ११ ॥ कटति । चकाट । चकटतुः । कटिता । कटिष्यति ।  
कटतु । अकटत् । कटेत् । कट्यात् । ह्यन्तक्षरणवसजागृणिश्च्येदिताम्

आर्चिषुः । आर्चोः, आर्चिष्टम्, आर्चिष्ट । आर्चिषम्, आर्चिष्व, आर्चिष्म । आर्चिष्यत् ।  
लृङि, तिपि, स्ये, इटि, आटि, वृद्धौ, षत्वे, “इतश्च” इति तिप इकारलोपे च तत्सिद्धिः ।  
व्रजति । व्रजधातोर्लृङि, लटस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे च तत्सिद्धिः । वव्राज । व्रधा-  
तोर्लृङस्तिपि, “लिट् च” इत्यार्धधातुकत्वेन शबोभावे तिपो णलादेशे द्वित्वेऽभ्यास-  
कायं “अत उपधायाः” इति उपधावृद्धौ च तत्सिद्धिः । अग्रे—वव्रजतुः, वव्रजुः । वव्र-  
जिय, वव्रजथुः, वव्रज । वव्राज—वव्रज, वव्रजिव, वव्रजिम । व्रजिता । लुटि, तिपि,  
तासि, इटि, तिपो ङादेशे द्वित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपे च तत्सिद्धिः । व्रजिष्यति ।  
लृटि, तिपि, स्ये, इटि षत्वे च तत्सिद्धम् । व्रजतु । लोटस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे  
“एङ्” इतीकारस्योत्वे च तत्सिद्धिः । अव्रजत् । लङस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे “लुङ्-  
लङ्लृङ्वडुदात्तः” इति अङ्गस्याङागमे “इतश्च” इति तिप इकारस्य लोपे च तत्सिद्धिः ।  
व्रजेत् । व्रजधातोर्लृङस्तिपि, शपि अनुबन्धलोपे “यासुट् परस्मैपदेषुदात्तो ङिच्च”  
इति यासुटि उटि गते “अतो येयः” इति यास इयादेशे गुणे यलोपे तिप इकारस्य  
लोपे च विहिते ‘व्रजेत्’ इति रूपम् । व्रज्यात् । आशिर्लिङि, तिपि, अनुबन्धलोपे  
“लिङाशिषि” इत्यार्धधातुकत्वेन शबोभावे यासुटि, उटि गते “इतश्च” इति तिप  
इकारस्य लोपे “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति सलोपे च तत्सिद्धिः । वदव्रजेति । “अङ्ग-  
स्य” इत्यधिक्रियते । “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति सूत्रमनुवर्तते । अव्राजीत् ।  
व्रजधातोर्लृङस्तिपि अनुबन्धलोपे “इतश्च” इति तिप इकारस्य लोपे अटि, ल्लौ, ल्लेः  
सिचि, इचि गते “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकसन्ज्ञायाम् “आर्धधातुकस्येड्व-  
लादेः” इतीटि, “अस्तिसिचोऽपुवक्ते” इति ईटि “वदव्रजहलन्तस्याचः” इति वृद्धौ  
“इट ईटि” इति सलोपे सिजलोपस्यासिद्धत्वाभावात्सवर्णदीर्घे “अव्राजीत्” इति रूपम् ।  
अग्रे तु—अव्राजिष्टम्, अव्राजिषुः । अव्राजीः, अव्राजिष्टम्, अव्राजिष्ट । अव्राजिषम्,  
अव्राजिष्व, अव्राजिष्म । इति । अव्रजिष्यत् । लृङि, तिपि, स्ये, इटि, अटि, “इतश्च”  
इतीकारलोपे षत्वे च तत्सिद्धिः । कटति । लटस्तिपि, शपि च तत्सिद्धिः । चकाट ।  
कटधातोर्लृङस्तिपो णलि द्वित्वेऽभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति लोपे “कुहोरचुः” इति  
कस्य चुत्वे च चकारे “अत उपधायाः” इति वृद्धौ “चकाट” इति रूपम् । एवम् । अतु-  
सि—चकटतुः” इति । एवम्—अग्रे कटधातोर्लिङाद्याशिर्लिङपर्यन्तम् व्रजधातुवत्सि-  
द्धिर्ज्ञेया । ह्यन्तक्षणेति । अत्र “सिचि वृद्धिः” इति “नेटि” इति चानुवर्तते । ह्यन्त-  
क्षरवस जागृणिश्च्येदिताम् एङित् एषां इन्द्रात्वाद्यी । इ म् य् इत्येते वर्णा येचामन्ते ते



७।२।१। हमयान्तस्य क्षणादेर्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्न स्यादिडादौ सिचि । अक-  
टीत् । अकटिष्वत् ॥ गुपृ० रक्षणे ॥ १२ ॥ गुपृ० धूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः  
३।१।२८। एभ्य आयः प्रत्ययः स्यात् स्वार्थे ॥ सनाद्यन्ता धातवः ३।१।३२।  
सनादयः कमेर्णिङन्ताः प्रत्यया अन्ते देशां ते धातुसञ्ज्ञकाः स्युः । धातुत्वाल्लडादयः ।  
गोपायति ॥ आयादय आर्धधातुके वा ३।१।३१। आर्धधातुकविवक्षायामायादयो  
वा स्युः । ( कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः ) लिटि आस्कासोराम् विधानान्मस्य  
नेत्वम् ॥ अतो लोपः ६।४।४८। आर्धधातुकोपदेशे यदन्तं तस्यातो लोपः स्यादा-  
र्धधातुके ॥ आमः २।१।८१। आमः परस्य लुक् स्यात् ॥ वृ० चानुप्रयुज्यते  
लिटि ३।१।४०। आमन्ताल्लिट्पराः कृभ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते । तेषां द्वित्वादि ॥  
उात् ७।४।६६। अभ्यासऋवर्णस्यात् स्यात् । वृद्धिः । गोपायाश्चकार । द्वित्वात्पर-

ह्ययन्ताः । तदाह—इ म् यान्तस्येति । अकटीत् । कटधातोल्ङ्गस्तिपि, अनुबन्धलोपे  
अटि, “इतश्च” इतीकारलोपे सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तन्वाधित्वा च्लौ, च्लेः  
सिचि, इचि गते, आर्धधातुकसंज्ञायाम् इटि, ईटि च जाते “अतो हलादेर्लघोः” इति  
बृद्धौ प्राप्तायां “ह्ययन्तच्छणश्चसजागृणिष्वेदिताम्” इति तन्निषेधे “इट ईटि” इति  
सुलोपे सिज्जलोपस्य सिद्धत्वात्सवर्णदीर्घे “अकटीत्” इति रूपम् । अग्रे अकटिष्टाम्,  
अकटिषुः । अकटीः, अकटिष्टम्, अकटिष्ट । अकटिषम्, अकटिष्व, अकटिष्म इति ।  
अकटिष्यन् । ब्रजधातुवत्सिद्धिर्बोध्या । गुपृ० धूपेति । एभ्य इति । गुपृ० रक्षणे, धूप-संतापे,  
‘विच्छ-गतौ, पण-व्यवहारे स्तुतौ च, पन-व्यवहारे, एभ्य इत्यर्थः । सनाद्यन्ता । सना-  
दय इति । सन् क्यच् काम्यच् क्यङ् क्यषोऽथाचारक्विप् णिज्यङौ तथा । यगायेयङ्णि-  
ङश्चेति द्वादशामी सनादयः । गोपायति । गुपृ० धातोः “गुपृ० धूपविच्छिपणिपनिभ्य  
आयः” इति आयप्रत्यये “आर्धधातुकं शेषः” इति तस्यार्धधातुकत्वेन “पुगन्तलघूप-  
घस्य च” इति गुणे “सनाद्यन्ता धातवः” इति गोपाय इत्यस्य धातुसंज्ञायां धातुत्वा-  
ल्लटि, लटस्तिपि, “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकसंज्ञायाम् “कर्तरि शप्”  
इति शपि, अनुबन्धलोपे “अतो गुणे” इति पररूपे ‘गोपायति’ इति रूपम् । अग्रे—  
गोपायतः, गोपायन्ति । गोपायसि, गोपायथः, गोपायथ । गोपायामि, गोपायावः,  
गोपायामः । आयादय इति । ‘आर्धधातुके’ इत्यत्र विषयसप्तमी । आय्, इयङ्, णिङ्  
एते त्रय आयादयः । अतो लोप इति । “आर्धधातुके” इत्यधिक्रियते । “अनुदात्तोप-  
देश” इत्यत उपदेश इत्यनुवर्तते । “आर्धधातुके” इत्यावर्तते । एकमुपदेशेऽन्वेति ।  
द्वितीयं तु लोपे परनिमित्तम् तदाह—आर्धधातुकोपदेश इति । आम इति । “ण्यञ्चित्रियार्ध-  
जितो यूनि लुगणिजोः” इत्यतो लुगित्वानुवर्तते । कुञ्चानुप्रयुज्यन् इति । “कास्यत्सवर्ण-  
दात्मन्त्रे लिटि” इत्यत आभित्वानुवृत्तं पञ्चम्या विपरिणम्यते । प्रत्ययब्रह्मपरिणामयो

त्वाद्यणि प्राप्ते ॥ द्विवचनेऽचि १।१।५६। द्वित्वनिमित्तेऽचि अत्र आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये । गोपायाञ्चक्रतुः ॥ एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ७।२।१०। उपदेशे यो धातुरेकाजनुदात्तश्च तत आर्धधातुकस्येण स्यात् । “ऊर्दन्तैर्यैतिरुद्धणुशीङ्स्नुनुधुभि-

तदन्तविधिः । ‘कृञ’ इत्यनेन ‘कृभ्वस्तीनां ग्रहणम्, व्याख्यानात् । उरदिति । उः अत् इति छेदः । “अत्र लोपोऽभ्यासस्य” इत्यतोऽभ्यासस्येत्यनुवर्तते । “अङ्गस्य” इत्यधिक्रियते । प्रत्यये परत एवाङ्गसंज्ञाविधानात् प्रत्यये परत इति लभ्यते । गोपायाञ्चकार । गुप्धातोः “परोक्षे लिट्” इति लिटि प्राप्ते, तस्माद्धात्वा “गुप्धूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः” इति नित्यम् आयप्रत्यये प्राप्ते “आयादय आर्धधातुके वा” इति विकल्पेन आयप्रत्यये कृते तस्य आर्धधातुकत्वात् “पुगन्तलवृपधस्य च” इति गुणे “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायां लिटि “कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः” इत्याम्प्रत्यये तस्य आर्धधातुकसंज्ञायाम् “अतो लोपः” इत्यङ्गोपे “आमः” इति लिटो लुकि, लिटः कृत्वा-त्प्रत्ययलङ्घनेन गोपायामित्यस्य कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुबुत्पत्तौ “कृन्मेजन्तः” इति अव्ययत्वात् “अन्ययादाप्सुपः” इति तस्यापि लुकि ‘गोपायाम्’ इत्यवशिष्टे, “कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्परकृञि अनुप्रयुज्यमाने ‘गोपायाम् कृ लिट्’ इति जाते अत्र लिट्स्तपि, तिपो णलादेशे अनुबन्धलोपे द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् “उरत्” इत्यभ्यासश्चवर्णस्य अकारे “उरण् रपरः” इति रपरे च जाते ‘गोपायाम् कर् कृञ्’ इति भूते “हलादिः शेषः” इति रलोपे “कुहोरचुः” इत्यभ्यासकस्य चत्वे मस्य पदान्तत्वादनुस्वारे “वा पदान्तस्य” इति पाक्षिकेऽनुस्वारस्य परसवर्णे अकारे “अचो ङ्गिति” इति वृद्धिं परत्वाद्वाधित्वा “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “उरण् रपरः” इति रपरे च जाते “अत उपधायाः” इति षट्ठौ “गोपायाञ्चकार” इति सिद्धम् । द्विवचनेऽचोति । “अचः परस्मिन्पूर्वविधौ” इत्यतो अचः इति, “स्थानिवदादेशोऽनन्विधौ” इत्यत आदेश इति, “न पदान्तद्विवचन” इत्यतो नेति चानुवर्तते । “द्विवचने” इत्यस्यावृत्तिं कृत्वा एकस्य द्वित्वनिमित्ते इत्यर्थः । अपरस्य तु द्वित्वे कर्तव्ये इत्यर्थः । गोपायाञ्चक्रतुः । गुप्धातोर्दित्यस्माद् आयप्रत्यये गुणे “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वान्निति “कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः” इत्याम्प्रत्यये “अतो लोपः” इत्यङ्गोपे लिटो लुकि, लिट्परकृञः प्रयोगे, लिट्स्तसोऽनुसि ‘गोपायाम् कृ अतुस्’ इति जाते द्वित्वापेक्षया परत्वाद् यणि प्राप्ते “द्विवचनेऽचि” इति तन्निषेधे कृते, द्वित्वेऽभ्यासत्वे “उरत्” इत्यात्वे रपरत्वे “हलादिः शेषः” इति रलोपे “कुहोरचुः” इति कस्य चत्वे अनुस्वारे, परसवर्णे यणि कृत्वे विसर्गे च “गोपायाञ्चक्रतुः” इति रूपम् । उसि-‘गोपायाञ्चक्रु’ इति । साधनिका पूर्ववत् । एकाच उपदेश इति । “ऋत इडातोः” इत्यतो धातोरिति “नेङ्क्विति कृति” इत्यतो नेदिति चानुवर्तते । पूर्वतोऽनुवृत्त्यसम्भवात् वलादेरार्धधातुकत्वमेति नु फलितार्थक्यनम्बोध्यम् । अनुदात्ताः के इत्याकाङ्क्षायामाह—ऊर्दन्तैरिति ।



मास । जुगोप । जुगुपतुः । जुगुपुः । स्वरतिसूतिसूयतिधूञ्दितो वा ७।२।४४।  
स्वरत्यादेरुदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात् । जुगोपिथ—जुगोपथ । गोपा-  
यिता—गोपिता—गोप्ता । गोपायिष्यति—गोपिष्यति—गोप्स्यति । गोपायतु । अगोपायात् ।

भूवुः । गोपायास्वभूविथ । गोपायास्वभूवथुः, गोपायास्वभूव । गोपायास्वभूव, गोपा-  
यास्वभूविव, गोपायास्वभूविम । इति बोध्यम् । गोपायामास । गुप्धातोरायप्रत्यये गुणे  
लिटि, आसि, अज्ञोपे, लिटो लुकि, “कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्परकअस्धातो-  
रनुप्रयोगे, लिट्स्तिपो णलि अनुबन्धलोपे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे  
“पूर्वाऽभ्यासः” इत्यभ्याससञ्ज्ञायाम् “हलादिः शेषः” इति सलोपे “अत आदेः”  
इति दीर्घे सवर्णदीर्घे च मिलित्वा ‘गोपायामास’ इति रूपम् । एवमग्रेऽपि—गोपाया-  
मासतुः, गोपायामासुः । गोपायामासिथ, गोपायामासथुः, गोपायामास । गोपायामास,  
गोपायामासिव, गोपायामासिम । जुगोप । गुप्धातोः “आयादय आर्धधातुके वा”  
इति आयप्रत्ययामावपचे लिटि तत्स्थाने तिपि, तिपः स्थाने “परस्मैपदानाम्” इति  
णलि, अनुबन्धलोपे द्वित्वेऽभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति हलादेः शेषे “कुहोश्चुः”  
इति चुत्वेन जत्वे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे ‘जुगोप’ इति सिद्धम् । जुगुपतुः ।  
गुप्धातोः पाङ्क्तिकायप्रत्ययाभावे लिटि, तत्स्थाने तसि, तत्स्थाने परस्मैपदानाम्” इत्य-  
नुसि, द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादेः शेषे, चुत्वे च ‘जुगुप् + अतुस्’ इति जाते “असंयोगाद्भिट्  
कित्” इति कित्वेन गुणाभावे रुत्वे विसर्गे च तत्सिद्धिः । एवम्—लिटो क्षेरुसि द्वित्वेऽ-  
भ्यासत्वे अभ्यासकार्ये कित्वे गुणाभावे रुत्वे विसर्गे च ‘जुगुपुः’ इति रूपम् । स्वरति-  
सूतीति । अत्र “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इत्यनुवर्त्तते । जुगोपिथ—जुगोपथ । आयप्रत्य-  
यामावे गुप्धातोर्लिटिः सिपस्थलि, अनुबन्धलोपे, द्वित्वेऽभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये च ‘जुगुप-  
थ’ इति स्थिते “लिट् च” इत्यार्धधातुकसञ्ज्ञायां “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे  
“आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति नित्यमिडागमे प्राप्ते तम्बाधित्वा “स्वरतिसूति-  
सूयतिधुञ्दितो वा” इति वा इडागमे अनुबन्धलोपे ‘जुगोपिथ’ इति रूपम् ।  
इडागमाभावपचे—जुगोपथ इति रूपम् । अग्रे—जुगुपथुः, जुगुप । जुगोप, जुगुपिव-  
जुगुप्व, जुगुपिम जुगुप्म । इति । गोपायिता । गुप्धातोः “आयादय आर्धधातुके वा”  
इत्यायप्रत्यये “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वाल्लुटि  
तत्स्थाने तिपि, सार्वधातुकसञ्ज्ञायां शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा “स्यतासी लृटोः”  
इति तासि, तस्य “आर्धधातुक शेषः” इत्यार्धधातुकत्वात् “आर्धधातुकस्येड्वलादेः”  
इति इडागमे “अतो लोपः” इत्यल्लोपे तिपो ङादेशेऽनुबन्धलोपे द्वित्वसामर्थ्यादभ-  
स्यापि ढेलोपि ‘गोपायिता’ इति रूपम् । अग्रेऽपि एवं साधनिका बोध्या । रूपाणि तु—  
गोपायितारो, गोपायितारः । गोपायितासि, गोपायितास्थः, गोपायितास्थ । गोपायि-  
तास्मि, गोपायितास्वः, गोपायितास्मः । इति । आयप्रत्ययामावपचे गुणो लुट्स्तिपि  
तासि, आर्धधातुकत्वे “स्वरतिसूतिसूयतिधूञ्दितो वा” इति पाङ्क्तिके इडागमेऽनुब-

गोपायेत् । गोपाय्यात्-गुप्यात् । अगोपायीत् । नेटि ७।२।४। इडादौ सिचि हल-  
 न्धलोपे, गुणे, तिपो ङादेशे, ङित्वात् ङिलोपे 'गोपिता' इति रूपम् । इडागमाभावपक्षे  
 'गोप्ता' इति रूपम् । अग्रेऽपि एवं साधनिका ज्ञेया । रूपाणि तु—गोपितारौ-गोप्तारौ,  
 गोपितारः-गोप्सारः । गोपितासि-गोप्तासि, गोपितास्थः-गोप्तास्थः, गोपितास्थ-  
 गोप्तास्थ । गोपितास्मि-गोप्तास्मि, गोपितास्वः-गोप्तास्वः, गोपितास्मः-गोप्तास्मः ।  
 इति । गोपायिष्यति । गुप्धातोः "आयादय आर्धधातुके वा" इत्यायप्रत्यये "पुगन्तल-  
 वृषधस्य च" इति गुणे "सनाद्यन्ता धातवः" इति धातुत्वाल्लुटि तत्स्थाने तिपि स्ये  
 प्रत्यये आर्धधातुकसंज्ञायाम् "आर्धधातुकस्येड्वल्लदेः" इति इडागमे "अतो  
 लोपः" इत्यल्लोपे षत्वे च तत्सिद्धिः । आयप्रत्ययाभावपक्षे—गुप्धातोर्लृटि,  
 तिपि, स्ये, "आर्धधातुकसंज्ञायां गुणे "स्वरतिसूतिसूयतिषुञ्जितो वा" इति  
 विकल्पेनेडागमे षत्वे च 'गोपिष्यति' इति । इडागमाभावपक्षे—गोप्यति । गोपा-  
 यतु । गुप्धातोः "गुप्भूषविच्छिपणिपनिभ्य आयः" इत्यायप्रत्यये कृते आर्धधातु-  
 कत्वे गुणे "सनाद्यन्ता धातवः" इति धातुत्वाल्लोटस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे "अतो  
 गुणे" इति पररूपे च कृते 'एरुः' इति तिपि इकारस्योत्वे तत्सिद्धिः । अग्रे रूपाणि-  
 गोपायतात्, गोपायताम्, गोपायन्तु । गोपाय-गोपायतात् । गोपायतम्, गोपा-  
 यत । गोपायानि, गोपायाव, गोपायाम् इति । अगोपायत् । गुप् धातोरायप्रत्यये  
 गुणे धातुसंज्ञायां लङि, तिपि शपि, अनुबन्धलोपे "अतो गुणे" इति पररूपे "लुङ्-  
 लुङ्लुङ्चवुदात्तः" इत्यङ्गस्याडागमे "इतश्च" इति तिपि इकारस्यलोपे च तत्सिद्धिः ।  
 गोपायेत् । गुप्धातोरायप्रत्यये गुणे धातुत्वाल्लिङस्तिपि, शपि अनुबन्धलोपे "अतो गुणे"  
 इति पररूपे यासुटि, उटि गते यास इयादेशे "आद्गुणः" इति गुणे "लोपो व्योर्वलि"  
 इति यलोपे "इतश्च", इति तिपि इकारलोपे च तत्सिद्धिः । गोपायेताम्, गोपायेयुः ।  
 गोपायेः, गोपायेतम्, गोपायेत । गोपायेयम्, गोपायेव, गोपायेम । गोपाय्यात् ।  
 गुप्धातोरायप्रत्यये तस्यार्धधातुकत्वात् "पुगन्तलवृषधस्य च" इति गुणे "सनाद्यन्ता  
 धातवः" इति धातुत्वादाल्लिङस्तिपि, "लिङाशिषि" इत्यार्धधातुकत्वात् शबभावे  
 यासुटि, उटि गते "अतो लोपः" इति आयप्रत्ययस्याकारस्य लोपे "इतश्च" इति तिपि  
 इकारस्य लोपे "स्कोः संयोगाद्योरन्ते च" इति सलोपे च तत्सिद्धिः । "आयादय आर्ध-  
 धातुके वा" इति आयप्रत्ययाभावे गुप्धातोराशिर्लिङस्तिपि अनुबन्धलोपे यासुटि,  
 उट इत्संज्ञायां लोपे च "क्रिदाशिषि" इति यासुटः क्त्वाद्गुणाभावे जाते "इतश्च"  
 इति तिपि इकारस्य लोपे "स्कोः संयोगाद्योरन्ते च" इति सलोपे गुप्यात् इति रूपम् ।  
 अग्रे—गोपाय्यास्ताम्, गोपाय्यासुः । गोपाय्याः, गोपाय्यास्तम्, गोपाय्यास्त । गोपा-  
 य्यासम्, गोपाय्यास्व, गोपाय्यास्म । इति । आयप्रत्ययाभावे गुप्यास्ताम्, गुप्यासुः  
 गुप्याः, गुप्यास्तम्, गुप्यास्त । गुप्यासम्, गुप्यास्व, गुप्यास्म । इति । अगोपायीत् ।  
 गुप्धातोः "आयादय आर्धधातुके वा" इति पाचिके आयप्रत्यये तस्यार्धधातुकत्वात्

न्तस्य वृद्धिर्न स्यात् । अगोपीत्-अगौप्सीत् । भ्रूलो भ्रूलि ८।२।२६। भ्रूतः परस्य  
सस्य लोपः स्याद्भ्रूलि । अगौप्ताम् । अगौप्सुः । अगौप्सीः । अगौप्सम् । अगौप्सि ।  
अगौप्सम् । अगौप्स्व । अगौप्सम् । अगोपायिष्यत्-अगोपिष्यत्-अगोप्स्यत् । द्वि

“पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायां “लुङ्”  
इति लुङि, “लुङ्लङ्लृङ्स्वद्बुदात्तः” इत्यङागमे, लुङः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे  
“तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा “ल्लि  
लुङि” इति ल्लौ, “ल्लेः सिच्” इति ल्लेः सिचि, इच इत्संज्ञायां लोपे च सिच  
आर्धधातुकत्वादिति “इतश्च” इति तिप इकारस्य लोपे, तस्य “अस्तिसिचोऽपृक्ते”  
इति ईङागमे “अतो लोपः” इत्यल्लोपे “इट ईटि” इति स्लोपे सिज्जलोपस्य सिद्ध-  
त्वात्सवर्णदीर्घे ‘अगोपायीत्’ इति रूपम् । एवम्-अगोपायिष्टाम्, अगोपायिषुः । अगो-  
पायीः, अगोपायिष्टम्, अगोपायिष्ट । अगोपायिषम्, अगोपायिष्व, अगोपायिष्म ।  
इत्यत्रापि बोध्यम् । नेटीति । “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति, “वदव्रजहलन्तस्याचः”  
इत्यतो हलन्तस्येति चानुवर्तते । अगोपीत्, अगौप्सीत् । “आयादय आर्धधातुके वा”  
इत्यायप्रत्ययाभावे गुप् धातोर्लुङ्स्तिपि, अटि, ल्लौ, ल्लेः सिचि, अनुबन्धलोपे आर्ध-  
धातुकसंज्ञायां गुणे “स्वरतिसृतिसृयतिधृजदितो वा” इति विकल्पात् इटि, “इतश्च”  
इति तिप इकारस्य लोपे ईटि, “इट ईटि” इति स्लोपे, सवर्णदीर्घे “वदव्र-  
जहलन्तस्याचः” इति वृद्धौ प्राप्तायां “नेटि” इति निषिद्धे ‘अगोपीत्’ इति रूपम् ।  
अगोपिष्टाम् । अगोपिषुः । अगोपीः, अगोपिष्टम्, अगोपिष्ट । अगोपिषम्,  
अगोपिष्व, अगोपिष्म । इति । इङागमाभावे ‘अगुप् स् ईत्’ इति स्थिते “वदव्रज-  
हलन्तस्याचः” इति वृद्धौ ‘अगौप्सीत्’ इतिरूपम् । झलो भ्रूलि । “रात्सस्य” इत्यतः  
सस्येति “संयोगान्तस्य लोपः” इत्यतो लोप इति चानुवर्तते । अगौप्ताम् । गुप्धातो-  
र्लुङ्स्तिपि अटि तसस्तामादेशे ल्लौ, ल्लेः सिचि, अनुबन्धलोपे “वदव्रजहलन्तस्याचः”  
इति वृद्धौ “झलो झलि” इति स्लोपे ‘अगौप्ताम्’ इति सिद्धम् । अगौप्सुः । गुप्धातोर्लुङि,  
झौ “सिज्जम्यस्तविदिम्यश्च” इति शेजुंसि, इङाभावे, जस्येत्संज्ञायां लोपे च सस्व  
रत्वे रस्य विसर्गत्वे च कृते ‘अगौप्सुः’ इति रूपम् । एवमग्रेऽप्युद्बुद्धम् । अगोपायि-  
ष्यत् । गुप्धातोः “गुप्भूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः” इत्यायप्रत्यये तस्यार्धधातुकसं-  
ज्ञायाम् “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे ‘गोपाय’ इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः”  
इति धातुसंज्ञायाम्, धातुत्वाच्च लुङि, तस्य स्थाने तिपि, “लुङ्लङ्लृङ्स्वद्बुदात्तः”  
इत्यटि, “स्यतासी लृलुटोः” इति स्ये, “आर्धधातुकं शेषः” इति स्यस्यार्धधातुकत्वे  
“आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इतीटि “अतो लोपः” इति यकारगताकारलोपे “इतश्च” इति  
तिप इकारलोपे, “आदेशप्रत्यययोः” इति सस्य षत्वे च कृते ‘अगोपायिष्यत्’ इति  
रूपम् । अग्रे—अगोपायिष्वताम्, अगोपायिष्वन् । अगोपायिष्या, अगोपायिष्वतम्,

क्षये ॥ १३ ॥ क्षयति । चिक्षाय । चिक्षियतुः । चिक्षियुः । “एकाच” इति निषेधे प्राप्ते । कृषभृवृस्तुद्रुक्षुश्रुवो लिटि ७।२।१३। ऋदिभ्य एव लिट् इण् स्वादन्य-स्मादिनिटोऽपि स्यात् । अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ७।२।६१। उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततस्थल इण् न स्यात् । उपदेशेऽस्त्वतः ७।२।६२। उपदेशेऽकारवत्तासौ नित्यानिटः परस्य थल इण् न स्यात् । ऋतो भारद्वाजस्य ७।२।६३। तासौ नित्यानिट् ऋदन्तादेव थलो नेङ् भारद्वाजस्य मते । तेन अन्यस्य स्यादेव । अयमत्र संग्रहः—“अजन्तोऽकारवान्वा यस्तास्यनिट् थलि वेङ्यम् । ऋन्दत

अगोपायिष्यत् । अगोपायिष्यम्, अगोपायिष्याव, अगोपायिष्याम । इति रूपाणि । अगोपिष्यत् । “आयादय आर्धधातुके वा” इत्यायप्रत्ययाभावे ‘अगोप्’ स्य त्’ इति स्थिते इटि च कृते पत्वे च ‘अगोपिष्यत्’, इति रूपम् । अगोप्यत् । आयप्रत्ययाभावे इडभावे च ‘अगोप्यत्’, इति रूपम् । चि क्षय इति । क्षयो-नाशः, अकर्मकः । अन्तर्भावितण्यर्थस्तु सकर्मकः, नाशनमिति तदत्यर्थः । क्षयति । चिधातोर्लिटि, तिपि, शपि गुणे अयादेशे च ‘क्षयति’ इति रूपम् । चिक्षाय । चिधातोर्लिटिस्तपि, तिपो णलादेशे अनुबन्धलोपे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इति, अभ्याससंज्ञायां ‘हलादिः शेषः’ इति षलोपे ‘किं चि अ’ इति जाते “कुहोश्चः” इति कस्य चत्वे “अचो ऋणिति” इति वृद्धौ कृतायाम् “एचोऽयवायावः” इत्यायादेशे च कृते ‘चिक्षाय’ इति रूपम् । चिचियतुः । “असंयोगाद्धिट् कित्” इति कित्त्वान्न गुणः, “अचि शनुधातुः” इति इयङ्, शेषं पूर्ववत् । एकाच इति निषेधे इति । चिधातोरेकाच्चाव, ऊदृन्तादिचतुर्दशभिश्चधातूनामनुदात्तत्वाभ्युपगमादिति भावः । कृषभृ । ‘कृ ष भृ वृ स्तु द्रु क्षु श्रु’ इत्यष्टानां समाहारद्वन्द्वत्पञ्चमी । लिटीति षष्ठ्यर्थे सप्तमी । “नेङ्वशि कृति” इत्यतो नेति इडिति चानुवर्तते । “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति “अगुक् किति” इति च सिद्धे नियमार्थमिदन्तदेतदाह—ऋदिभ्य एवेत्यादिना । अचस्तास्वादिति । अधातोस्थलोऽभावद्वातोरिति लभ्यते । अच इति तद्विशेषणम् । तदन्तविधिः । “उपदेशेऽजन्त” इत्युत्तरसूत्रादुपदेश इत्यपकृष्यते, भाष्यप्रामाण्यात् । “तासि च कलपः” इत्यतस्तासौत्यनुवर्तते । “गमेरिट् परस्मैपदेषु” इत्यत इडिति, “न वृद्धयश्चतुर्भ्यः” इत्यतो नेति चानुवर्तते । तास्वादिति सप्तम्यन्ताद्धिति, तदाह—उपदेशेऽजन्त इति । उपदेशेऽजन्त इति । अत्वत इति छेदः । अत्-ह्रस्वाकारः सः अस्य अस्तीति अत्वान्, “तसौ मत्वर्थे” इति भत्वाच्च जश्त्वम् । अच इति वर्जम् पूर्वसूत्रे तत्र यदनुवृत्तं तदप्यनुवर्तते । तदाह—उपदेशेऽकारवत् इति । ऋतो भारद्वाजस्य । तासौ नित्यमनिट् इति, यलीति, नेति, इडिति चानुवर्तते । भारद्वाजस्य मते ऋदन्ताद्धातोः परस्य नेडिति कलितम् । हज्जुआदौ “अचस्तास्वत्” इत्येव सिद्धम् । अतो नियमार्थमिदमित्याह—ऋदन्तादेव थलो नेडिति । अनुदन्तात्परस्व तु थल इट् स्यादेवेत्येवकारार्थः । तदाह—

ईदङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेट् भवेत् ॥ चिक्षयिथ-चिक्षेथ । चिक्षियथुः । चिक्षिय । चिक्षाय-चिक्षय । चिक्षियिव । चिक्षियिम । क्षेता । क्षेप्यति । क्षयतु । अक्षयत् । क्षयेत् । अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ७।४।२५ । अजन्ताङ्गस्य दीर्घः स्यात् यादौ प्रत्यये न तु कृत्सार्वधातुकयोः । क्षीयात् । सिचि वृद्धिः परस्मपदेषु

अन्यस्य स्यादेवेति । ऋदन्तमिच्चात्परस्य थल इट् स्यादेवेत्यर्थः । अयमत्रेति । कृस्मृष्टु-स्तुद्रुस्रश्रवो लिटीति, अचस्तास्वत्थल्यनियो नित्यमिति, उपदेशेऽज्ज्वल इति, ऋतो भारद्वाजस्येति च सूत्रचतुष्टय विषयाणां संग्रहो वक्ष्यत इत्यर्थः । अजन्त इति । यो धातुः ऋदन्तमिच्चोऽजन्तो, ह्रस्वाकारवान् वा तासौ नित्यानिट् सोऽयं थलि विकल्पितेदङ् इति पूर्वार्धस्यार्थः । अत्र 'ईदङ्' इत्यस्य तासौ नित्यानिडित्यर्थः । यः ऋदन्तस्तासौ नित्यानिट् सः थलि नित्यानिडित्यर्थः । "अचस्तास्वत्" इति पाणिनिमते "ऋतो भारद्वाजस्य" इति भारद्वाजमतेऽपि तस्य अनिट्कत्वादिति भावः । क्राद्यन्य इति । क्राद्यष्टभ्योऽन्यो धातुः लिटि नित्यं सेडित्यर्थः । क्राद्यष्टभ्य एव परस्य लिटि नेडिति "कृस्मृष्टु" इति सूत्रेण नियमितत्वादिति भावः ॥ एवञ्च प्रकृते चिधातोर्जन्तत्वात्तासौ नित्यानिट्त्वाच्च थल इडविकल्प इति सिद्धम् । तदाह—चिक्षयिथ, चिक्षेथ इति । चिक्षियथुः । अथुसि द्वित्वे, अभ्यासकार्ये "असंयोगात्" इति कित्वात् गुणाभावे "अचि रनुधातुः" इति इयङि च रूपम् । वमयोः क्रादिनियमाञ्जित्यमिति कृते इयङि च 'चिक्षियिव, चिक्षियिम । क्षेता । चिधातोर्लुट्स्तिपि, "स्यतासीः" इति तासि, "लुटः प्रथमस्य डारौरसः" इति तिपो डावे, डित्वसामर्थ्यादमस्यापि ढेलोपे, "एकाच्च उपदेशेऽनुदात्तात्" इतीडभावे गुणे च कृते रूपम् । क्षेप्यति । लुटि, तिपि, स्ये, इडभावे, गुणे च रूपम् । क्षयतु । लोटि, तिपि, शपि, गुणे, अयादेशे "एरुः" इति तिप इकारस्योत्वे च सति रूपम् । अक्षयत् । चिधातोर्लुट्स्तिपि, शपि, गुणे अयादेशे तिप इकारस्य लोपे अडागमे च कृते रूपम् । क्षयेत् । चिधातोर्विधिलिङि, तत्स्थाने तिपि, शपि, गुणे अयादेशे यासुटि, तस्य इयादेशे "आद्गुणः" इति गुणे यलोपे तिप इकारलोपे च कृते सति 'क्षयेत्' इति रूपम् । क्षयेताम्, क्षयेयुः । क्षयेः, क्षयेतम्, क्षयेत । क्षयेयम्, क्षयेव, क्षयेम । इति । अकृत्सार्वधातुकयोरिति । अङ्गस्येत्यधिकृतम् । "अयङ् चि विकृति" इत्यतो यीति सप्तम्यन्तमनुवृत्तमङ्गाचिसप्रत्ययविशेषणम् । तदन्तविधिः ।

तदाह—अजन्तस्येत्यादिना । क्षीयात् । चिधातोराशीर्लुट्स्तिपि यासुटि, "इतश्च" इति तिप इकारलोपे "स्कोः संयोगाघोरन्ते च" इति सलोपे "अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः" इति दीर्घत्वे च कृते 'क्षीयात्' इति रूपम् । सिचि वृद्धिरिति । वृद्धिं श्रुत्या इक इत्युपस्थितमङ्गस्येत्यधिकृतस्य विशेषणम्, तदन्तविधिरिति भावः । अक्षेयीत् । चिधातोः "लुङ्" इति लुङि, तस्य स्थाने तिपादेशे अङ्गस्याडागमे, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते, इडभावे, तिप इकारलोपे "अस्तिसिचोऽप्युक्ते" इति ईटि विहिते 'अचिस् ईत्'



७।२।१। इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् परस्मैपदे सिचि । अक्षैषीत् । अक्षेष्वात् । तप  
सन्तापे ॥ १४ ॥ तपति । तताप । तेषुतुः । तेषुः । तेषिथ-ततप्य । तप्ता । तप्स्यति ।  
तपतु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सीत् । अताप्ताम् । अतप्स्यत् । क्रमु पाद-  
विक्षेपे ॥ १५ ॥ वा आशम्भाशभ्रमुक्रमुङ्गमुत्रसिञ्जटिलपः ३।१।७०। एभ्यः  
श्यन्वा स्यात् कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे । पक्षे शप् । क्रमः परस्मैपदेषु ७।३।७६।

इति जाते “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति वृद्धौ, सस्य षत्वे च ‘अक्षैषीत्’ इति रूपम् ।  
अग्रे तु रूपाणि-अक्षैष्टाम्, अक्षैषुः । अक्षैषीः, अक्षैष्टम्, अक्षैष्ट । अक्षैषम्, अक्षैष्ट,  
अक्षैष्म । इति । ३।क्षेष्वात् । सिधातोर्लुङ्गस्तिपि, अटि, स्ये, इडभावे, गुणे, मूर्धन्यत्वे,  
तिप इकारलोपे च विहिते ‘अक्षेष्वात्’ इति रूपम् । तपति । तपधातोर्लुङ्गस्तिपि, शपि,  
अनुबन्धलोपे च तत्सिद्धिः । तताप । तपधातोर्लुङ्गि, तिपि, तिपो णलादेशे द्वित्वे, अभ्या-  
सत्वे, अभ्यासकार्ये, उपधावृद्धौ च तत्सिद्धिः । तपतुः । तपधातोर्लुङ्गः स्थाने प्रथमपु-  
रुषद्विवचने तसि, तसश्च तुसि, द्वित्वे अभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति प्लोपे ‘ततप-  
अनुस’ इति जाते “असंयोगाङ्गि क्त्” इति लिटः कित्वे “अत एकहलमध्येऽनादेशा-  
देर्लिटि” इत्यकारस्यैत्वेऽभ्यासलोपे च कृते ‘तेपतुः’ इति रूपम् । एवमुसि-‘तेपुः’ इति ।  
तेपिथ, ततप्य । तपधातोर्लुङ्गो मध्यमपुरुषैकवचने सिपि, सिपः स्थाने थलि, द्वित्वे,  
अभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति प्लोपे, भारद्वाजमते इडागमे “थलि च सेटि” इत्य-  
कारस्यैत्वेऽभ्यासलोपे च कृते ‘तेपिथ’ इति रूपम् । पाणिनिमते “उपदेशेऽजत्वतः” इती-  
मिन्पञ्चे ‘ततप्य’ इति रूपम् । तेपथुः । तेप । तताप-ततप, तेपिव, तेपिम । इति ।  
तप्ता । तपधातोर्लुङ्गस्तिपि, तिपो ङात्वे, तासि, टेलोपे च तत्सिद्धिः । तप्स्यति । लृट्-  
स्तिपि, स्ये, इडभावे च रूपम् । तपतु । लोटस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे “एरुः” इति  
उत्वे च तत्सिद्धिः । अतपत् । लङि, तिपि शपि, अटि, तिप इलोपे च तत्सिद्धिः । तपेत् ।  
तपधातोर्बिधिलिङ्गस्तिपि, शपि, यासुटि, सर्वत्रानुबन्धलोपे, “अतो येयः” इति यास  
इयादेशे, गुणे, तिप इलोपे च तत्सिद्धिः । तप्यात् । तपधातोराशिषि, लिङ्गस्तिपि,  
यासुटि, अनुबन्धलोपे, तिप इलोपे, सलोपे च तत्सिद्धिः । अताप्सीत् । तपधातोर्लुङ्ग-  
स्तिपि “न्लि लुङि” इति च्लौ, “च्लेः सिचि” इति सिचि, इचि गते आर्धधातुकत्वे  
“एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इग्निषेधे, अटि, तिप इकारलोपे “अस्तिसिचोऽ-  
पृक्ते” इति ईंटे, “वद्वज्रहलन्तस्याचः” इत्यचो वृद्धौ च कृतायाम् ‘अताप्सीत्’ इति  
रूपम् । अताप्सीत् । तपधातोर्लुङ्गस्तसि तसस्तामि, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते,  
आर्धधातुकत्वे “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इग्निषेधे ‘तप् स ताम्’ इति जाते  
“झलो झलि” इति सलोपे वृद्धौ अडागमे च ‘अताप्ताम्’ इति रूपम् । अग्रे-अताप्सुः ।  
अताप्सीः, अताप्सम्, अताप्स । अताप्सम्, अताप्स्व, अताप्सम्, इति । वा आशेति ।  
“दिवादिभ्यः श्यन्” इत्यतः श्यन्निति, “कर्तरि शप्” इत्यतः कर्तरीति “सर्वधातुके

क्रमो दीर्घः स्यात् परस्मैपदे परे शिति । क्राम्यति-क्रामति । चक्राम । क्रमिता ।  
क्रमिष्यति । क्राम्यतु क्रामतु । अक्राम्यत्-अक्रामत् । क्राम्येत्-क्रामेत् । क्रम्यात् ।  
अक्रमीत् । अक्रमिष्यत् । पा पाने ॥ १६ ॥ पात्राध्मास्थान्नादाण्डश्रयित्स-  
तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यच्छधौशीयसीदाः ७।३।७८ पा-  
दीनां पिबादयः स्युरित्संज्ञकशदौ प्रत्यये परे । पिबादेशोऽदन्तस्तेन न गुणः ।  
पिबति । आत औ णलः ७।१।३४। आदन्ताद्वातोर्णल औकारादेशः स्यात् । पपौ।

यक्” इत्यतः सार्वधातुक इति चानुवर्तते । तदाह—एभ्यः श्यन्वेति । क्रमः परस्मैपदेषु ।  
“शमामष्टानां दीर्घः श्यनि” इत्यतो दीर्घ इति, “ष्ठिङ्कुमुचमां शिति” इत्यतः शिति  
इति चानुवर्तत इति भावः । क्राम्यति । क्रमु-पादविचेपेऽर्थे धातुर्वर्तते, उकारस्येत्सं-  
ज्ञायां लोपे च तस्माद्धटस्तिपि, अनुबन्धलोपे “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्व-  
धातुकत्वे “कर्तरि शप्” इति शपि प्राप्ते तस्माद्धित्वा “वा आशभ्लाशभ्रमुकमुक्ल-  
मुत्रसिञ्जटिलषः” इति श्यनि जाते, शस्य नस्य चेत्संज्ञायां लोपे च ‘क्रम् य ति’  
इति स्थिते “क्रमः परस्मैपदेषु” इति क्रम उपधाया दीर्घत्वे च कृते ‘क्राम्यति’ इति रूप-  
म् । पक्षे शपि दीर्घत्वे च—‘क्रामति’ इति रूपम् । क्राम्यति, क्राम्यतः, क्राम्यन्ति ।  
क्राम्यसि, क्राम्यथः । क्राम्यथ । क्राम्यामि, क्राम्यावः, क्राम्यामः । पक्षे—क्रामति,  
क्रामतः, क्रामन्ति । इत्यादि । चक्राम । क्रमधातोर्लटस्तिपि, तिपो णलि, अनुबन्ध-  
लोपे, “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे, “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्याससंज्ञायां  
“हलादिः शेषः” इति लोपे “कुहोश्चुः” इति कस्य चत्वे “अत उपधायाः” इति वृद्धौ  
च सत्यां ‘चक्राम’ इति सिध्यति । अग्रे—चक्रमतुः, चक्रमुः । चक्रमिथ, चक्रमथुः,  
चक्रम । चक्राम, चक्रम, चक्रमिव, चक्रमिम ॥ इति ॥ क्रमधातोः सेट्कत्वादाह—क्रमि  
ता । क्रमिष्यति । इति । लोटस्तिपि, श्यनि, दीर्घे—क्राम्यति । शपि, दीर्घे च  
क्रामतु । अक्रमीत् ॥ क्रमधातोर्लुङस्तिपि, अटि, ल्लौ, ल्लेः सिचि, इचि गते, इटि,  
तिप इकारलोपे ईटि, स्लोपे, “अतो हलादेर्लघोः” इति वृद्धौ प्राप्तायाम् “इम्यन्तश्च-  
णश्वसजाणुणिश्वेदिताम्” इत्यनेन निषिद्धे ‘अक्रमीत्’ इति रूपम् । अक्रमीत्, अक्र-  
मिष्टाम्, अक्रमिषुः । अक्रमीः, अक्रमिष्टम्, अक्रामष्ट । अक्रमिषम्, अक्रमिष्व, अक्र-  
मिष्म । इति ॥ पात्राध्मांति । पात्राध्मास्थांन्नादाण्डश्रयित्सति शर्ति शद् सद् एषां  
इन्द्रात् प्रथमाबहुवचनम् । पिब जिघ्रधम तिष्ठ मन यच्छ पश्य ऋच्छ धौ शीय सीद  
एषा इन्द्रात् प्रथमाबहुवचनम् । यथासक्यमादेशाः । “ष्ठिङ्कुलमुचमां शिति” इत्यतः  
शित्तीत्यनुवर्तते । श्चासौ इच्चेति कर्मधारयः । अङ्गाक्षितप्रत्ययविशेषत्वात् तदा-  
दिविधित्तदाह—इत्संज्ञकेति । पिबति । पाधातोः “वर्तमाने लट्” इति लटि, लटस्ति-  
बादेशे सार्वधातुकसंज्ञायां “कर्तरि शप्” इति शपि, अनुबन्धलोपे शित्त्वात्सार्वधातुक-  
संज्ञायां “पात्राध्मास्थांन्ना” इत्यादिना पास्थाने पिबादेशे, पिबादेशस्यादन्तत्वाद्गुणा-

आतो लोप इटि च ६।४।६४। अजाद्योर्धधातुकयोः क्ङिदिटोः परयोरातो लोपः स्यात् । पपतुः । पपुः । पपिथ-पपाथ । पपथुः । पप । पपौ । पपिव । पपिम । पाता । पास्यति । पिबतु । अपिबत् । पिबेत् । एलिङि ६।४।६७। घुसंज्ञकानां मास्थादीनां च एत्वं स्यादार्धधातुके किति लिङि । पेयात् । “गातिस्था” इति सिचो लुक् । अपात् । अपाताम् । आतः ३।४।११०। सिजलुकि आदन्तादेव मेर्जुस् स्यात् ।

भावे ‘पिब अ ति’ इति स्थिते “अतो गुणे” इति पररूपे ‘पिबति’ इति रूपम् । पिबति, पिबतः, पिबन्ति । पिबसि, पिबथः, पिबथ । पिबाः, पिबावः, पिबामः । इति रूपाणि । आत औ णल इति । औ इति लुप्तप्रथमाकम् । अङ्गस्येत्यधिकृतं पञ्चम्या विपरिणम्यते । आत इति तद्विशेषणम् । तदन्तर्विधिस्तदाह—आदन्ताद्वातेरिति । पपौ । पाघातोर्लिट्स्तिपि, तिपो णलादेशे अनुबन्धलोपे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इति अभ्याससंज्ञायां “ह्रस्वः” इति ह्रस्वत्वे “प पा अ” इति जाते “आत औ णलः” इति णल औत्वे वृद्धौ च सत्यां “पपौ” इति रूपम् । आतो लोप इति । “आर्धधातुके” इत्यधिकृतम् । “दीङो युङ्” इत्यतोऽच क्ङिति इति चानुवर्तते । अचीत्यार्धधातुकविशेषणत्वात्तदादिविधिः । क्ङिति अजाद्योर्धधातुके, इटि च, आतो लोप इति लभ्यते । तत् फलितमाह—अजाद्योरिति । पपतुः । पाघातोर्लिट्स्तिपि, तसोऽनुसि, द्वित्वे, अभ्यासत्वे ह्रस्वत्वे च कृते, ‘प पा अनुस्’ इति जाते “असयोगाल्लिट् क्ति” इति अनुसः क्त्वे “आतो लोप इटि च” इति आकारलोपे सस्य रत्वे विसर्गत्वे च ‘पपतुः’ इति रूपम् । एवमुसि—पपुः । पाघातुरनिट् । भारद्वाजनियमात् थलि वेङित्वाह—पपिथ, पपाथ । इट्पच्चे आल्लोपः । पपिव, पपिम । वसि, मसि च क्रादिनियमादिति आल्लोप इति भावः । पाता । लुटि, डात्वे तासादि इति भावः । पिबतु । पाघातोर्लोर्लिट्स्तिपि, शपि “पाघ्राध्मा” इत्यादिना पिबादेशे अदन्तत्वाद् गुणाभावे पररूपत्वे “एङ्” इति तिप इकारस्योत्वे च कृते ‘पिबतु’ इति । अपिबत् । पाघातोर्लिङि, लङ्स्तिपि शपि, पिबादेशे, अटि, तिप इकारलोपे च रूपम् । पिबेत् । पाघातोर्लिङ्स्तिपि, शपि, पिबादेशे यासुटि यास इयादेशे गुणे यलोपे तिप इकारलोपे च रूपम् । एलिङीति । “आर्धधातुके” इत्यधिकृतम् । “घुमास्थागापाजहातिसाम्” इत्यनुवर्तते । “दीङो युङचि” इत्यतः कितीत्यनुवर्तते । ङितीति तु न । लिङार्धधातुकस्य ङित्वाभावात् । तदेतदाह—घुसंज्ञकानामित्यादिना । पेयात् । पाघातोराशीर्लिङ्स्तिपि, यासुटि उटि गत्वे सलोपे तिप इकारलोपे “एलिङि” इति पकाराकारस्योत्वे च कृते ‘पेयात्’ इति रूपम् । पेयास्ताम्, पेयासुः । पेयाः, पेयास्तम्, पेयास्त । पेयासम्, पेयास्व, पेयास्म । इति रूपाणि । अपात् । पाघातोर्लुङ्स्तिपि, ल्लौ, ल्लेः सिचि, “गातिस्थाघुपा०” इति सिचो लोपे, तिप इकारलोपे अङ्गास्याडागमे च कृते ‘अपात्’ इति रूपं सिद्धम् । एवम् ‘अपीताम्’ इति बोध्यम् । अत्रा इति । “मेर्जुस्” इति सूत्रमनुवर्तते । “आतः सिज्-

उत्स्यपदान्तात् ६।१।१६। अपदान्तादकारादुसि पररूपमेकादेशः स्यात् । अपुः ।  
अपास्यत् । ग्लै हर्षक्षये ॥ १७ ॥ ग्लायति । आदेच उपदेशेऽशिति ६।१।४५।  
उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्वं स्यात् न तु शिति । जग्लौ । ग्लता । ग्लायति ।  
ग्लायतु । अग्लायत् । ग्लायेत् । वाऽन्यस्य संयोगादेः ६।४।६८। घुमास्थादेर-  
न्यस्य संयोगादेर्धातोरात् एत्वं स्यात् वार्धधातुके किति लिङि । ग्लेयात्-ग्लयात् ।

गन्तादिति वक्तव्यम्” इति वार्तिकात् सिञ्जुकीति लभ्यते । “सिजभ्यस्त” इति  
पूर्वसूत्रेणैव सिद्धे नियमार्थमिदम् । तदाह—सिञ्जुकीत्यादिना । उच्येति । “एकः  
पूर्वपरयोः” इत्यधिकृतम् । “आद्गुणः” इत्यस्मादादित्यनुवर्तते । “एङि पररू-  
पम्” इत्यस्मात्पररूपमिति । तदाह—अपदान्तादिति । अपुः । पाधातोर्लुङः स्थाने  
अथमपुरुषबहुवचने धावागते अटि, च्लौ, च्लेः सिचि, “गातिस्थाघुपामभ्यः” इति सिचौ  
लोपे “आतः” इति श्नेर्जुसि जस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “उत्स्यपदान्तात्” इति पररूपत्वे  
सस्य स्त्वे विसर्गत्वे च “अपुः” इति रूपम् । अग्रे—अपाः, अपातम्, अपात । अपाम्,  
अपाव, अपाम । इति बोध्यम् । हर्षक्षये—धातुक्षये, बलक्षय इति यावत् । ग्लायति ।  
शपि आयादेशः । शिद्विषयत्वादात्वं न । आदेच इति । एजन्तस्य धातोरिति । “लिटि  
धातोरनभ्यासस्य” इत्यतो धातोरित्यनुवृत्तम् एचा विशेष्यते, तदन्तविधिरिति भावः ।  
जग्लौ । ग्लैधातोर्लिट्स्तिपि, तिपो णलादेशे “आदेच उपदेशेऽशिति” इत्यात्वे “लिटि  
धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे सति ‘ग्ल अ’ इति जाते “पूर्वाभ्यासः” इति अभ्या-  
सत्वे “ह्रस्वः” इति अभ्यासह्रस्वत्वे “हलादिः शेषः” इति ल्लोपे “कुहोरचुः” इति  
गस्य जत्वे “आत औ णलः” इत्यौत्वे “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ च सत्यां ‘जग्लौ’ इति  
रूपम् । अग्रे—जग्लुः, जग्लुः । भारद्वाजनियमात्थलि वेङ्—जग्लिथ-जग्लाय,  
जग्लथुः, जग्ल । जग्लौ, जग्लिव, जग्लिम । ग्लता । ग्लैधातोर्लिट्स्तिपि, तासि, तिपो  
ढात्वे, “आदेच उपदेशेऽशिति” इति ग्लैधातोरात्वे द्वित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपि  
‘ग्लता’ इति रूपम् । ग्लायति । “आदेच उपदेशेऽशिति” इत्यात्वम् । ग्लायतु । ग्लैधा-  
तोर्लिट्स्तिपि, शपि, आयादेशे “एङुः” इति तिप इकारस्योत्वे च कृते रूपम् । अग्लाय-  
त् । लङ्स्तिपि, शपि, आयादेशे, अङ्गस्याङागमे तिप इकारस्य लोपे च रूपम् ।  
ग्लायत् । ग्लैधातोर्लिङ्स्तिपि, शपि, “यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च” इति लिङो  
यासुङागमे उटि गते “अतो येयः” इति यास इयादेशे “लोपो व्योर्वलि” इति य्लोपे  
“एचोऽयवायावः” इत्ययादेशे “आद्गुणः” इति गुणे “इतश्च” इति तिप इकारलोपे च  
कृते ‘ग्लायेत्’ इति रूपम् । वाऽन्यस्येति । “आर्धधातुके” इत्यधिकृतम् । “एलिङि”  
इत्यनुवर्तते । एरिति प्रथमान्तम् । “आतो लोप इटि च” इत्यत आत इत्यनुवर्तते ।  
कस्मादन्यस्येत्यपेक्षायां “घुमास्थागापाजहातिसां हलि” इति प्रकृतत्वाच्चेभ्योऽन्यस्येति  
लभ्यते । “दीङो युञ्चि” इत्यतः कितीत्यनुवर्तते । तदाह—घुमास्थादेरन्यस्येति । ग्लेयात्,

अमरमनातां सकृच्च अ२।७३। एषां सकृत्स्यादेभ्यः सिच इट् स्यात्स्वस्व-  
 देशु । अग्लासीत् । अग्लास्यत् । हृत् कौटिह्ये ॥१८॥ हरति । ऋतश्च संयोगादे-  
 गुणः ७।४ १०। ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणः स्यात् लिटि । उपधाया वृद्धिः ।  
 जहार । जहारतुः । जह्वरुः । जह्वर्थ । जह्वरथुः । जह्वर । जहार, जह्वर । जह्वरिव ।

ग्लायत् । ग्लैघातोराशीर्लिङ्गस्तिपि, तस्य “लिङाशिषि” इत्यार्धधातुत्वे आर्धधातु-  
 क्त्वात् ऋवभावे यासुटि, “आदेच उपदेशेऽशिति” इत्यात्वे तिप इकारलोपे ‘ग्लायत्’  
 इति स्थिते “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति सलोपे “वान्यस्य संयोगादेः” इति ग्लायत्त्वस्य,  
 नैत्वे च कृते ‘ग्लेयात्’ इति रूपम् । पक्षे वाग्रहणादेत्वाभावे ‘ग्लायत्’ इति रूपम् । अग्रे  
 तु—ग्लेयास्ताम्, ग्लेयासुः । ग्लेयाः, ग्लेयास्तम्, ग्लेयास्त । ग्लेयासम्, ग्लेयास्व, ग्लेयास्म ।  
 ग्लायत्, ग्लायस्ताम्, ग्लायसुः । ग्लयाः, ग्लयास्तम्, ग्लयास्त । ग्लयासम्,  
 ग्लयास्व, ग्लयास्म । इति रूपाणि । अमरमनमेति । सकि ककार इत् अकार उच्चार-  
 णार्थः । किञ्चादन्तावयवः । चकारेण “हृदत्यसि” इत्यत इडिति “स्तुसुधृज्ज्”  
 इत्यतः परस्मैपदेष्विति चासुकृष्यते “अज्जेः सिचि” इत्यतः सिचीति च । तच्च वृद्ध्या  
 निषरिणम्यते । तदाह—एषां सकृत् स्यादित्यादिना । अग्लासीत् । ग्लैघातोर्लिङ्गस्तिपि, “लिङ्  
 लुङि” इति ल्लौ, “ल्लेः सिचि” इति सिचि, इचि गते, “लुङ्लुङ्लुङ्क्वहुदातः”  
 इत्यटि, ‘अग्लै स्त्’ इति जाते “आदेच उपदेशेऽशिति” इति ग्लैघातोरात्वे “यमर-  
 ममनातां सकृच्च” इति अङ्गस्य सगागमे सिचः सकारस्य इडागमे च कृते “अग्लास् इ  
 स् ति” इति जाते “इतश्च” इति तिप इकारस्य लोपे तस्याष्टकसंज्ञायाम् “अस्तिसिचोऽ-  
 युक्ते” इति अपृप्त इत्यस्य ईडागमे “इट ईटि” इति सिचः सकारस्य लोपे “सिजलोप  
 एकादेशे सिद्धो वाच्यः” इति सलोपस्य सिद्धत्वात्सर्वर्णदीर्घे “अग्लासीत्” इति रूपम् ।  
 अग्रे—अग्लासिष्टम्, अग्लासिषुः । अग्लासीः, अग्लासिष्टम्, अग्लासिष्ट । अग्लासि-  
 षम्, अग्लासिष्व, अग्लासिष्म । इति रूपाणि । अग्लास्यत् । लृङि, लृङस्तिपि, स्ये,  
 आत्वे, अटि च रूपम् । हरति । क्षपि, गुणे रपरत्वम् । ऋतश्च संयोगादेरिति । अत्र “द्व्यं-  
 तेर्दिङि लिटि” इत्यसी लिटीत्यनुवर्तत इति भावः । उपधाया वृद्धिरिति । “अत उप-  
 धायाः” इत्यनेनेति शेषः । जहार । हृघातोर्लिङ्गस्तिपि, तिपो णलि, “लिटि घातोर्न-  
 म्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे, “उरत्” इति अभ्यासश्चवर्णस्य  
 अत्वे “उरण् रपरः” इति रपरे च जाते ‘ह्व अ’ इति स्थिते “ह्लादिः शेषः” इति  
 वस्य रस्य च लोपे “कुहोरनुः” इति हस्य सत्वे, “अभ्यासे चर्व” इति शस्य अत्वे  
 ‘जह्व अ’ इति जाते “ऋतश्च संयोगादेर्गुणः” इति गुणे, अकारे रपरे च जाते “अत  
 उपधायाः” इति वृद्धौ च सत्याम् ‘जहार’ इति रूपम् । एकमेव जहारतुः, जह्वरुः, इति  
 बोध्यम् । जह्वर्थ । क्रादिनियमप्राप्तस्य इट्—“अचस्तास्वत्” इति “ऋते मारहाज्ज्व”  
 इति च निषेधात् इडागमाभाव इति भावः । जह्वरिव, जह्वरिव । क्रादिनियमादित् ।

अहरिम् । हर्ता । हृदयेः स्वे ७।५।७०। कृतो हन्तेष्वस्मिन् स्थात् । हरिष्यति ।  
हरतु । अहरत् । हरेत् । गुणोऽतिसंयोगाच्चोः ७।४।२६। अतः संयोगादेर्ह-  
न्तस्य च गुणः स्यात् यकि यादानार्धधातुके लिङि च । हर्मात् । अहर्षात् । अहरि-

हर्ता । हृधातोर्लुट्तिपि, तासि, तिपो ङात्वे, द्वित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपे 'हृत् आ' इति जाते तासस्तकारस्य "आर्धधातुक शेषः" इत्यार्धधातुकत्वे "आर्धधातुकत्वेङ्-  
वलादेः" इति इटि प्राप्ते "एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्" इति निषिद्धे; "सार्वधातुकार्ध-  
धातुकयोः" इति हृष्टइत्यस्य गुणे अकारे, "उरण् रपरः" इति रपरे च 'हर्ता' इति  
रूपम् । ऋद्धनोः स्य इति । ऋद्धनोः इति पञ्चम्यर्थे षष्ठी । स्ये इति षष्ठ्यर्थे सप्तमी  
"आर्धधातुकत्वेङ्गवलादेः" इत्यत इदित्यनुवर्तते, तदाह—कृतो हन्तेष्वेति । हरिष्यति ।  
हृधातालुटि, लुट्तिपि, "स्मतासी सुलुटोः" इति स्ये, "आर्धधातुक शेषः" इत्यार्ध-  
धातुकत्वे, "आर्धधातुकत्वेङ्गवलादेः" इति इडागमे कृते "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इति  
गुणे अकारे "उरण् रपरः" इति रपरे "आदेशप्रत्यययोः" इति षत्वे च कृते 'हरिष्यति'  
इति रूपम् । हरिष्यति, हरिष्यतः, हरिष्यन्ति । हरिष्यसि, हरिष्यथः, हरिष्यथ ।  
हरिष्यामि, हरिष्यावः, हरिष्यामः, इति रूपाणि । हरतु । लोटि, तिपि, शाप, गुणे,  
रपरे, उत्तमम् । अहरत् । अटि, तिपि इकारलोप इति लिङि विशेषः । हरेत् । हृधातोर्लि-  
ङ्गतिपि, शपि, गुणे स्पर्धे च 'हर अ ति' इति जाते "यासुट्प्रस्मैपदेषूदात्तो ऋच्" इति  
यासुटि, उटि मते, "अतो येयः" इति यास इयादेशे "लोपो व्योर्वलि" इति  
यलोपे "आद्गुणः" इति गुणे तिपि इकारस्य "इतश्च" इत्यनेन लोपे कृते रूपम् ।  
गुणोऽतीति । "अङ्गस्य" इत्यधिकृतम् । "रील्लङ्गः" इत्यतः अत इत्यनुवर्तते । "अङ्-  
स्तर्जधातुकयोः" इत्यतः अस्तर्जधातुकमङ्गमनुवर्तते । आर्धधातुके इति लभ्यते । "रिङ्-  
स्तर्जधातुकयोः" इत्यतः अकि लिङीति च लभ्यते । "अयङ्चि विवृति" इत्यतो यीति  
सप्तम्यन्तमनुवर्तते । आर्धधातुकविशेषणत्वात्तदादिबिधस्तदाह—अतीत्यादिना ।  
हर्षात् । हृधातोर्लुङ्गतिपि, यासुटि, उटि मते, यासुटः कित्वात् "त्रिवृति च"  
इति गुणनिषेधे "गुणोऽतिसंयोगाच्चोः" इति गुणे "इतश्च" इति तिपि इकारलोपे "प्रकोः  
संयोगाच्चोरन्ते च" इति सलोपे "अचो रहाभ्यां द्वे" इति द्वित्वे च 'हर्षात्' इति ।  
हर्षस्ताम्, हर्षासुः । हर्षाः, हर्षास्तम्, हर्षास्त । हर्षासम्, हर्षास्व, हर्षास्व ।  
अहर्षात् । हृधातोर्लुङ्गतिपि, "च्लि लुङि" इति च्लौ, "च्लेः सिच्" इति सिचि, इति  
जाते "लुङ्लङ्लुङ्चवदुदात्तः" इति अडागमे 'अ धृ स् ति' इति जाते सिचः सकारस्य  
आर्धधातुकत्वे इटि प्राप्ते "एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्" इति निषिद्धे "इतश्च" इति तिपि  
इकारलोपे अपृक्तसंज्ञायाम् "आस्तसिचोऽपृक्ते" इति तिपस्तकारस्य ईडागमे "सिचि  
वृद्धिः परस्मैपदेषु" इति वृद्धौ कृतायाम् 'अहर्षात्' इति रूपम् । अहर्षात्, अहर्षाम्,  
अहर्षाः । अहर्षाः, अहर्षम्, अहर्षम् । अहर्षम्, अहर्षम्, अहर्षम् । इति रूपाणि ।

प्यत् । श्रु श्रवणे ॥ १९ ॥ श्रुवः श्रु च ३।१।७४। श्रुवः श्रु इत्यादेशः स्यात् ,  
 श्रुप्रत्ययश्च । श्रुणोति । सार्वधातुकमपित् १।२।४। अपित्सार्वधातुकं द्वित्व  
 स्यात् । श्रुणुतः । हुश्रुवोः सार्वधातुके ६।४।८७। हुश्रुवोरनेकाचोऽसंयोगपूर्व-  
 स्योवर्णस्य यण् स्यादचि सार्वधातुके । श्रुष्वन्ति । श्रुणोषि । श्रुणुथः । श्रुणुथ ।  
 श्रुणोमि । लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ६।४।१०७। असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययोका-  
 रस्य लोपो वा स्यात् म्वोः परयोः । श्रुष्वः-श्रुणुवः । श्रुमः-श्रुणुमः । शुश्राव ।

अहरिष्यत् । ह्रुधातोर्लुङ्स्तिपि, स्ये, “ऋद्धनोः स्ये” इति स्यस्य इडागमे “सार्वधातु-  
 कार्धधातुकयोः” इति गुणे अङ्गस्याडागमे तिप इकारलोपे च कृते रूपम् । श्रुवः श्रु चेति ।  
 श्रु इति लुप्तप्रथमाकम् । चकारेण “स्वादिभ्यः श्रुः” इति सूत्रस्थः श्रुः समुच्चीयते ।  
 श्रुणोति । श्रु-श्रवणार्थकधातोर्लुङ्स्तिपि, अनुबन्धलोपे “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति  
 सार्वधातुकत्वे, “कर्तरि शप्” इति शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा “श्रुवः श्रु च” इति श्रुप्रत्यये  
 श्रुइत्यस्य स्थाने श्रु आदेशे च कृते “लशक्तद्धिते” इति शकारस्येत्संज्ञायाम् “तस्य  
 लोपः” इति शलोपे शित्वात्सार्वधातुकत्वे “सार्वधातुकमपित्” इति द्वित्वाद्गुणाभावे  
 “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति नोर्गुणे “श्रवर्णाच्चस्य णत्वं वाच्यम्” इति णत्वे च  
 “श्रुणोति” इति रूपम् । सार्वधातुकमिति । अत्र “गाङ्गादादिभ्योऽङ्गिङित्” इत्यतो ङिङित्य-  
 नुवर्तते । श्रुणुतः । “श्रुणुतस्” इति स्थिते “सार्वधातुकमपित्” इति तसादीनां द्वित्वाच्च  
 गुणः । हुश्रुवोरिति । श्रुनोः प्रत्ययत्वात्तदन्तग्रहणम् । “ङ्णो यण्” इत्यतो यण् इत्यनु-  
 वर्तते । “अचि श्रु” इत्यतोऽचीति, तस्य सार्वधातुकविशेषणत्वात्तदादिविधिः । “एर-  
 नेकाच” इति सूत्रम् एरिति वर्जमनुवर्तते । “ओः सुपि” इत्यत ओरिति च षष्ठ्यन्तम् ।  
 तदाह—हुश्रुवोरित्यारिना । श्रुष्वन्ति । “श्रुणु क्षि” इति स्थिते क्षस्य “क्षोऽन्तः” इत्यन्ता-  
 देशे “अचि श्रुधातु” इति सूत्रेणोवङि प्राप्ते तम्बाधित्वा “हुश्रुवोः सार्वधातुके” इत्य-  
 नेन यणि कृते “श्रुष्वन्ति” इति रूपम् । श्रुणोमि । मिपमाश्रित्य श्रुनोर्गुणः । लोपश्चेति ।  
 “उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्” इति पूर्वसूत्रोक्त उकार अस्येत्यनेन परामुश्यते । प्रत्यय-  
 शब्दः प्रत्ययसम्बन्धनि वर्तते । असंयोगपूर्वात् प्रत्ययादिति च उकारेऽन्वेति । स च  
 अङ्गस्य विशेषणम् । तदन्तविधिस्तदाह—असंयोगेति । श्रुष्वः-श्रुणुवः । श्रुधातोर्लुङो  
 वसि, “श्रुवः श्रु च” इति श्रुवः श्रु आदेशे शब्द्विषये श्रुप्रत्यये च कृते शकारस्येत्सं-  
 ज्ञायां लोपे च शित्वात्सार्वधातुकत्वे “सार्वधातुकमपित्” इति श्रुनोर्लुङ्त्वे “किङिति च”  
 इति गुणाभावे णत्वे च कृते “श्रु णु वस्” इति जाते “लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः” इति  
 वा उकारलोपे, रुत्वे विसर्गे च “श्रुष्वः” इति रूपम् । लोपाभावपक्षे “श्रुणुवः” इति ।  
 एवमेव मसि ज्ञेयम् । शुश्राव । श्रुधातोर्लुङ्स्तिपि, तिपो णलि, “लिटि धातोरनभ्या-  
 सस्य” इति द्वित्वे, “पूर्वोऽभ्यासः” इति अभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति आदिहलक्षे-  
 “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “एचोऽयवायावः” इत्यादेशे “अत उपधायाः”

शुश्रुवतुः । शुश्रुवुः । शुश्रोथ । शुश्रुवथुः । शुश्रुव । शुश्राव-शुश्रव । शुश्रुव, शुश्रुम । श्रोता । श्रोष्यति । शृणोतु—शृणुतात् । शृणुताम् । शृण्वन्तु । उतश्च प्रत्ययाद-संयोगपूर्वात् ६।४।१०६। असंयोगपूर्वात्प्रत्ययादुतो हेर्लुक् स्यात् । शृणु—शृणु-तात् । शृणुतम् । शृणुत । गुणावादेशौ । शृणवानि । शृणवाव । शृणवाम । अशृ-

इति उपधावृद्धौ 'शुश्राव'इति रूपम् । शुश्रुवतुः । अतुसि "अचि श्रुधातुभ्रवां खोरि-यडुवडौ"इति उवङि, सस्य रुत्वे, रस्य विसर्गात्वे च रूपम् । एवमुसि—शुश्रुवुः । थलि, वमयोश्च क्रादित्वान्नित्यमिण्निषेधः । तदाह—शुश्रोथ । शुश्रुवथुः । अथुसि अपित्वाद् "असंयोगादिलिट् कित्" इति किङ्कृतावे "किङ्कति च"इति गुणनिषेधे उवङि च कृते रूपम् । शुश्रुव । एवं मध्यमपुरुषवडुवचने—अपरे, गुणाभावे, उवङिति च बोध्यम् । शुश्राव-शुश्रव । उत्तमपुरुषैकवचने णलि, "णलुत्तमो वा" इति वा णिङ्कृतावे वृद्धौ आवादेशे च 'शुश्राव'इति, णिङ्कृतावाभावे "सार्वधातुकार्धधातुकयोः"इति गुणे आवादेशे च 'शुश्रव' इति रूपम् । शुश्रुव-शुश्रुम । वमयोस्तु क्रादित्वान्नित्यमिण्निषेधः । श्रोता । श्रुधातोर्लोट्तिपि, तसि, "एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्"इति इण्निषेधे तिपो ङात्वे, ङित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपे श्रुधातोगुणे च 'श्रोता' इति रूपम् । श्रोष्यति । श्रुधातो-र्लोट्तिपि, स्ये, इडागमाभावे, गुणे, णत्वे च रूपम् । शृणोतु । श्रुधातोर्लोट्तिपि, अनुबन्धलोपे "श्रुवः शृ च" इति श्रुवः शृ आदेशे श्रुप्रत्यये च कृते श्रुनोः शस्येत्सं-ज्ञायां लोपे च शित्वात्सार्वधातुकत्वे "सार्वधातुकमपित्"इति ङित्वात् "किङ्कति च"इति गुणाभावे "ऋवर्णाच्चस्य णत्वं वाच्यम्" इति णत्वे "सार्वधातुकार्धधातुकयोः"इति श्रुनोगुणे "एरुः"इति तिप इकारस्योत्वे "शृणोतु"इति रूपम् । शृणुतात् । 'शृणु तु'इति स्थिते "तुङोस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम्" इति तोः तातङि, ङित्वाद् गुणाभावे रूपम् । शृणुताम् । लोटि, तसि, शृ आदेशे श्रुप्रत्यये च उभयत्र ङित्वाद्गुणाभावे णत्वे "तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः" इति तसस्तामि च रूपम् । शृण्वन्तु । 'शृ णु ङि' इति स्थिते "ङोऽन्तः" इत्यन्तादेशे "ह्रश्रुवोः सार्वधातुके" इति यणि, "एरुः" इति तिप इकारस्योत्वे 'शृण्वन्तु' इति रूपम् । उतश्च प्रत्ययादिति । अत्र "चिणो लुक्" इत्यतो लुगिति, "अतो हेः" इत्यतो हेरिति चानुवर्तत इति भावः । शृणु । श्रुधातोर्लोट्तिपि, श्रुनौ, शृआदेशे च अनुबन्धलोपे णत्वे च कृते "सेङ्गपिच्च" इति सेङ्गि आदेशे 'शृ णु ङि' इति जाते "उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्" इति हेर्लुकि कृते रूपम् । हेः स्थाने वा तातङि—शृणुतात् । शृणुतम् । शृणुत । अत्र "तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः" इति विशेषो बोध्यः । शृणवानि । श्रुधातोर्लोट् उत्तमपुरुषैकवचने मिपि "मेर्निः" इति मेः स्थाने नि आदेशे जाते "श्रुवः शृ च" इति श्रुप्रत्यये शृआदेशे च कृते अनुबन्धलोपे 'शृ नु नि' इति भूते अत्र "ऋवर्णाच्चस्य णत्वं वाच्यम्" इति णत्वे, "आङुत्तमस्य पिच्च" इति उत्तमपुरुषस्य नेः आङागमे, ङित्वादाद्यावयवे "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इति



णोत् । अशृणुताम् । अशृण्वन् । अशृणोः । अशृणुताम् । अशृणुत् । अशृण्वन् ।  
 अशृणुव-अशृण्व । अशृणुम्—अशृण्वम् । शृणुयात् । शृणुयाताम् । शृणुयुः ।  
 शृणुयाः । शृणुयातम् । शृणुयात । शृणुयाम् । शृणुयाव । शृणुयाम ॥ श्रूयात् ।  
 अश्रोषीत् । अश्रोष्यत् । गम्लु गतौ ॥ २० ॥ इषुगमियमां लुः ७।१।७७। एषां

गुणे “एचोऽयवायावः” इत्यवादेशे ‘शृण्वानि’ इति रूपम् । एवं वमयोरपि बोध्यम् ।  
 अशृणोत् । अधातोर्लङ्गिस्तपि, ‘श्रुवः श्र च’ इति श्रौ श्र आदेशे च अनुबन्धलोपे  
 अडागमे णत्वे गुणे तिप् इकारस्य लोपे ‘अशृणोत्’ इति रूपम् । अशृणुताम् । तसस्ता-  
 मादेशो विशेषः । अशृण्वन् । अधातोर्लङ्गो ह्रौ “क्षोऽन्तः” इत्यन्तादेशे, अटि, ‘श्रुवः  
 श्र च’ इति श्रोः श्र आदेशे श्रौ प्रत्यये च कृते श्लोपे, नस्य णत्वे “दुश्नुवोः सार्व-  
 धातुके” इति यणि, अन्तेः “इतश्च” इति इकारलोपे “संयोगान्तस्य लोपः” इति तस्य  
 लोपे च कृते ‘अशृण्वन्’ इति रूपम् । अशृण्व-अशृणुव । अधातोर्लङ्गो वसि “श्रुवः श्र  
 च” इति आदेशे श्रुप्रत्यये च कृते, श्लोपे अटि णत्वे “नित्यं ङितः” इति सलोपे ‘अ  
 शृणु व’ इति ज्ञप्ते “लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः” इत्युकारलोपे ‘अशृण्व’ इति, उका-  
 रलोपाभावे ‘अशृणुव’ इति बोध्यम् । एवं मसि—‘अशृण्वम्—अशृणुम् इति । शृणुयात् ।  
 अधातोर्लङ्गिस्तपि, “श्रुवः श्र च” इति आदेशे श्रुप्रत्यये च कृते श्लोपे णत्वे “यासु-  
 ट्परस्मैपदेषूदातो ङिच्च” इति यासुटि, उटि गते “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति  
 सलोपे “इतश्च” इति तिप् इकारलोपे च कृते “शृणुयात्” इति रूपम् । शृणुयाताम् ।  
 अधातोर्लङ्गिस्तपि, तसस्तामि, ‘श्रुवः श्र’ इत्यादेशे, श्रुप्रत्यये अनुबन्धलोपे च कृते,  
 तामो यासुटि उटि गते, “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्व” इति सलोपे च तस्मिन्निङ्गिः ।  
 शृणुयुः । ‘शृणु या शि’ इति स्थिते “क्षौजंस्” इति जुसि, “चुट्” इति जस्येत्संज्ञायां  
 “तस्य लोपः” इति लोपे “उस्यपदान्तात्” इति पररूपत्वे च कृते रूवे विसर्गे च  
 ‘शृणुयुः’ इति रूपम् । शृणुयाः । ‘शृणु यास् सि’ इति स्थिते “लिङः सलोपोऽन-  
 न्त्यस्य” इति सलोपे “इतश्च” इति सिप् इकारलोपे सिप्ः सकारस्य रूवे विसर्गत्वे च  
 रूपम् । श्रूयात् । अधातोराशिषि लिङि, लिङ्गिस्तपि, यासुटि, उटि गते “इतश्च”  
 इति तिप् इकारलोपे “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति सलोपे “अकृत्सार्वधातुकयो-  
 र्दीर्घः” इति दीर्घे ‘श्रूयात्’ इति रूपम् । श्रूयात्, श्रूयास्ताम्, श्रूयासुः, श्रूयाः, श्रूया-  
 स्तम्, श्रूयास्त । श्रूयासम्, श्रूयास्व, श्रूयास्म । इति रूपाणि । अश्रोषीत् । अधातोः  
 “लुङ्” इति लुङि, “तिप्तसृञ्” इत्यादिना लुङ्गिस्तपि, “ल्लि लुङि” इति ल्लौ,  
 “ल्लेः सिच्” इति सिचि, इचि गते, अडागमे ‘अश्रुस् ति’ इति जाते “इतश्च” इति  
 तिप् इकारलोपे, अपृक्तसंज्ञायाम् “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति ईटि, सिचः सकारस्य  
 आर्वाधातुकत्वादिति प्राप्ते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इत्यनेन इटो निषेधे “सिचि  
 इतिः परस्मैपदेषु” इति इटौ “आदेशप्रत्यययोः” इति णत्वे ‘अश्रोषीत्’ इति रूपम् ।

छः स्यात् शिति । गच्छति । जगाम । गमहनजनजनघसां लोपः क्त्विनञि  
६।३।१८। एषामुपधाया लोपः स्यादजादौ क्ति न त्वङि । जग्मतुः । जग्मुः ।  
जगमिथ-जगन्थ । जग्मथुः । जग्म । जगाम-जगम । जग्मिव । जग्मिम । गन्ता ।

अश्रौषीत्, अश्रौष्टाम्, अश्रौषुः । अश्रौषीः, अश्रौष्टम्, अश्रौष्ट । अश्रौषम्, अश्रौष्व, अश्रौ-  
ष्य, इति रूपाणि । अश्रौष्यत् । अश्रातोर्लृङ्स्तिपि, अटि, “स्यतासी लुलुटोः” इति स्ये,  
“आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इटि प्राप्ते “एकाच  
उपदेशेऽनुदात्तात्” इति निषिद्धे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे, “आदेशप्रत्य-  
ययोः” इति षत्वे “इतश्च” इति तिपि इकारलोपे च कृते ‘अश्रौष्यत्’ इति रूपम् । इषु-  
गमियमामिति । अत्र “छिङ्ङुमुचमां शिति” इत्यतः शितीत्यनुवर्तते । गच्छति । गच्छ  
गतौ, तत्र “उपदेशेऽजनुनासिक इत्” इति लृकारस्येत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे,  
“भूवादयो धातवः” इति धातुसंज्ञायां “वर्तमाने लट्” इति लटि, “तिसस्” इत्या-  
दिना प्रथमपुरुषैकवचनविवक्षायां तिपि, पकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “तिङ्शित्सार्व-  
धातुकम्” इति सार्वधातुकसंज्ञायां “कर्तरि शप्” इति शपि, शकारस्य पकारस्य चेत्सं-  
ज्ञायां लोपे च शित्वात्सार्वधातुकत्वे ‘गम् अ ति’ इति स्थिते “इषुगमियमां छः”  
इति सर्वस्य गमः छादेशे प्राप्ते “अलोऽन्त्यस्य” इति अन्त्यस्य मकारस्य स्थाने जाते  
‘गङ्गात्’ इति मूते “छे च” इति तुगागमे, उकि गते, कित्वादन्त्यावयवे जाते “स्तोः  
श्चुना श्चुः” इति श्चुत्वे ‘गच्छति’ इति रूपम् । गच्छति, गच्छतः, गच्छन्ति  
गच्छसि, गच्छथः, गच्छथ । गच्छामि, गच्छावः, गच्छामः । इति रूपाणि । जगाम ।  
गमधातोः “परोच्चे लिट्” इति लिटि, प्रथमपुरुषैकवचनविवक्षायां “तिसस्” इत्या-  
दिना तिपि, “परस्मैपदानां णलुलुप्स्थल्” इत्यादिना तिपः स्थाने णलादेशे, “उट्”  
इति णकारस्येत्संज्ञायां “हलन्त्यम्” इति लृकारस्य चेत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति  
उभयोलोपे ‘गम् अ’ इति जाते “लिट् च” इत्यार्धधातुकत्वे “लिटि धातोरनभ्यासस्य”  
इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति गकारेऽवशिष्टे ‘गमम्  
अ’ इति मूते “ऊहोश्चुः” इति गकारस्य जत्वे “अत उपधायाः” इति वृद्धौ ‘जगाम’ इति  
रूपम् । गमहनजनेति । अत्र “ऊदुपधाया गोहः” इत्यत उपधाया इत्यनुवर्तते । “अधि  
श्नुधातु” इत्यत अचि इत्यनुवर्तते; तस्य अङ्गाच्चिप्तप्रत्ययविशेषणतया तदादि वेङ्-  
ळाम इति भावः । जग्मतुः । गमधातोर्लिट्स्तसि, तसोऽनुसादेशे, द्वित्वे अभ्यासकार्ये  
‘जगम् अनुस्’ इति जाते, अनुसः “अस्योगादिलिट् कित्” इति कित्वे “गमहनजन  
जनघसां लोपः क्त्विनञि” इत्युपधाभूताकारस्य लोपे, सस्व स्त्वे विसर्गत्वे च  
‘जग्मतुः’ इति रूपम् । एकम्—‘जग्मुः’ इति बोध्यम् । भारद्वाजनिबन्धमात्रलि वेट् ।  
तदाह—जगमिथ-जगन्थ । जगाम-जगम । “णलुत्तमो वा” इति विकल्पेन णिङ्ङावयवे  
“अत उपधायाः” इति वृद्धौ ‘जगाम’ इति । तद्व्यावयवे-‘जगाम’ इति । जग्मिव,

गमेरिट् परस्मैपदेषु ७।२।१८। गमेः परस्य सादेराधधातुकस्येड् स्यात् परस्मै-  
पदेषु । गमिष्यति । गच्छतु । अगच्छत् । गच्छेत् । गम्यात् । पुषादिधुताच्छ्र-  
दितः परस्मैपदेषु ३।१।१५। स्यन्विकरणपुषादेर्धुतादेर्लुदितश्च परस्य च्छेरङ्  
स्यात् परस्मैपदेषु । अगमत् । अगमिष्यत् । इति परस्मैपदिनः ॥

जागमम् । अत्र क्रादिनियमादित् । गन्ता । गम्धातोर्लोट्स्तिपि, “स्यतासी लृलुटोः”  
इति तासि, “आर्धधातुकं” शेषः” इत्यार्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वल्लादेः” इति  
इडागमे प्राप्ते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति निषिद्धे “लुटः प्रथमस्य डारौरसः”  
इति तिपो ङात्वे, डस्येत्संज्ञायां लोपे च, ङित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपि “गम् ता” इति  
जाते “नश्चापदान्तस्य क्षलि” इति मस्यानुस्वारे “अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः” इति  
परसवर्णे च कृते ‘गन्ता’ इति रूपम् । गन्ता, गन्तारौ, गन्तारः । गन्तासि, गन्तास्थः,  
गन्तास्थ । गन्तस्मि, गन्तास्वः । गन्तास्मः । इति रूपाणि । गमेरिङिति । गमेरिति  
पञ्चमी । “सेऽसिचि” इत्यतः से इत्यनुबृत्तेन आर्धधातुकस्येत्यनुबृत्तं विशेष्यते । तदा-  
दिविधिः । तदाह—गमेः परस्येत्यादिना । गमिष्यति । गम्धातोर्लोट्स्तिपि, “स्यतासी  
लृलुटोः” इति स्ये, तस्य आर्धधातुकत्वादिडागमे प्राप्ते, “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति  
निषिद्धे सति “गमेरिट् परस्मैपदेषु” इति इडागमे “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे च कृते  
‘गमिष्यति’ इति रूपम् । गच्छत् । गम्धातोर्लोट्स्तिपि, शपि अनुबन्धलोपे “इषुग-  
मियमां ङः” इति छादेशे “छे च” इति तुकागमे उकि गते “स्तोः श्चुना श्चुः” इति  
श्चुत्वे “परुः” इति तिप इकारस्योत्वे ‘गच्छतु’ इति रूपम् । अगच्छत् । गम्धातोर्ल-  
ङस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे “इतश्च” इति तिप इकारलोपे “इषुगमियमां ङः”  
इति छादेशे तुगागमे श्चुत्वे च कृते, “लुङ्लङ्लृङ्श्चङुदात्तः” इत्यडागमे ‘अगच्छत्’  
इति रूपम् । गच्छेत् । गम्धातोर्लङ्स्तिपि शपि अनुबन्धलोपे “इषुगमियमां ङः”  
इति छादेशे “छे च” इति तुकि, उकि गते, श्चुत्वे, “यासुट् परस्मैपदेषुदात्तो ङिञ्च”  
इति यासुटि, उटि गते “अतो येयः” इति यास इयादेशे “गच्छ इय् ति” इति जाते  
“लोपो न्योर्वलि” इति य्लोपे “इतश्च” इति तिप इकारलोपे “आद्गुणः” इति गुणे  
‘गच्छेत्’ इति रूपम् । गच्छेत्, गच्छेताम्, गच्छेयुः । गच्छेः, गच्छेतम्, गच्छेत ।  
गच्छेयम्, गच्छेव, गच्छेम । इति रूपाणि । गम्यात् । गम्धातोराशिषि लिङि, लिङ-  
स्तिपि, “लिङाशिषि” इत्यार्धधातुकत्वेन शबभावे “किदाशिषि” इति यासुटि, उटि  
गते “इतश्च” इति तिप इकारलोपे ‘गम्यास्व’ इति जाते “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च”  
इति स्लोपे ‘गम्यात्’ इति रूपम् । पुषादीति । अत्र “च्छेः सिच्” इत्यतः च्छेरिति  
“अस्यतिबक्लियातिभ्योऽङ्” इत्यतोऽङिति चानुवर्तते इति भावः । अगमत् । गम्-  
धातोर्लुङस्तिपि, अटि, “च्छि ङुकि” इति च्छौ, “च्छेः सिच्” इति सिचि प्राप्ते  
गम्यादित्वा “पुषादिधुताच्छ्रदितः परस्मैपदेषु” इति च्छेरङादेशे ङ्लोपे “इतश्च”

( अथात्मनेपदिनः )

एष वृद्धौ ॥ १ ॥ टित आत्मनेपदानां टेरे ३।४।७६। टितो लस्यात्मनेपदानां  
टेरेत्वम् । एधते । आतो डितः ७।२।८१। आतः परस्य डितामाकारस्य इष् स्यात् ।  
एधेते । एधन्ते । थासः से ३।४।८०। टितो लस्य थासः से स्यात् । एधसे । एधेथे ।

इति तिप् इकारलोपे च कृते 'अगमत्' इति रूपम् । अगमत्, अगमताम्, अगमन् ।  
अगमः, अगमतम्, अगमत । अगमम् । अगमाव, अगमाम । इति रूपाणि । अगमि-  
ष्यत् । गम्धातोर्लृङ्गस्तिप्, स्ये, स्यस्य "गमेरिट् परस्मैपदेषु" इत्यनेन इडागमे,  
अटि, तिप् इकारलोपे, सस्य षत्वे च 'अगमिष्यत्' इति रूपम् । इति श्रीपण्डित-  
प्रवरजोशीत्युपाङ्गसदाशिवशास्त्रिकृतसुधाख्यव्याख्यायां परस्मैपदम् ।

एष वृद्धाविति । जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपचीयते, विनश्यतीति  
षड्भावविकाराः । तत्र चतुर्थावस्था वृद्धिः—उपचयः । टित आत्मनेपदानामिति । टेः  
ए इति छेदः । 'लस्य' इत्यधिकृतम् । तदाह—टितो लस्येति । एधते । एधधातोः अकार  
उच्चारणार्थः, तस्मिन् गते "वर्तमाने लट्" इति लटि, टकारस्य "हलन्त्यम्" इती-  
त्संज्ञायां "तस्य लोपः" इति लोपे लकारोत्तरवर्तिन अकारस्य "उपदेशेऽजनुनासिक  
इत्" इतीत्संज्ञायां "तस्य लोपः" इति लोपे 'एध् ल्' इति भूते अत्र "तिप् तस् सि०"  
इत्यादिना सर्वे आदेशाः प्राप्ताः । तत्र "अनुदात्तङित आत्मनेपदम्" इति एधधातोर्-  
नुदात्तत्वात् "तङानावात्मनेपदम्" इति त आतां झ इत्येतेषामात्मनेपदसंज्ञत्वात्  
तेषां प्राप्तिर्जाता । तत्र प्रथमपुरुषैकवचनविवक्षायां तकृते "तिङ्शित्सार्वधातुकम्"  
इति सार्वधातुकत्वात् "कर्तरि शप्" इति शप्, शपयोरित्संज्ञायां लोपे च 'एध् अ त'  
इति जाते "अचोऽन्त्यादि टि" इति तकारोत्तरवर्तिन अकारस्य टिसंज्ञायां "टित आत्म-  
नेपदानां टेरे" इति टिसंज्ञकस्यैत्वे 'एधते' इति रूपम् । आतो डित इति । डित इत्य-  
वयवषष्ठी । "अतो येयः" इत्यस्मात् अत इति पञ्चम्यन्तम्, इय इति प्रथमान्तं  
चालुवर्तते । यकारादकार उच्चारणार्थः । तदाह—अतः परस्येति । एधेते । एधधातो-  
र्लटः स्थाने प्रथमपुरुषद्विवचनविवक्षायाम् आतामि कृते "तिङ्शित्सार्वधातुकम्" इति  
आतामः सार्वधातुकत्वे "सार्वधातुकमपित्" इति तस्य ङिङ्गत्वे "कर्तरि शप्" इति  
शप्, अनुबन्धलोपे "आतो डितः" इति शपोऽकारात् परस्य आताम आकारस्य इष्  
आदेशे कृते, "लोपो व्योर्वलि" इति यलोपे "एध् अ इ ताम्" इति जाते "आद्गुणः"  
इति गुणे, "टित आत्मनेपदानां टेरे" इति टिसंज्ञकस्य तकारोत्तरवर्तिन आम्भागस्य एत्वे  
च कृते 'एधेते' इति रूपं सिद्धम् । एधन्ते । एधधातोर्लटः प्रथमपुरुषबहुवचने झे समा-  
गते, "तिङ्शित्सार्वधातुकम्" इति तस्य सार्वधातुकत्वात् "कर्तरि शप्" इति शप्,  
शपयोरित्संज्ञायां लोपे च, "ओऽन्तः" इति झस्यान्तादेशे 'एध् अ अन्त' इति जाते  
'अ अन्त' इत्यत्र "अतो गुणे" इति पररूपे कृते "टित आत्मनेपदानां टेरे" इति

एष्वे । “अतो गुणे” । एषे । एषावहे । एषामहे । इजादेशश्च गुरुमतोऽनृच्छः  
३।१।३६। इजादियौ धातुर्गुणमावृच्छत्यन्यस्तत आन स्याद्विति ॥ आम्प्रत्ययवत्क-  
ञोऽनुप्रयोगस्य १।३।६३। आम्प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः ।  
आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमाणात् कृञोऽप्यतन्मने दं स्यात् । लिटस्तभ्योरे-

टेरेत्वे च कृते ‘एधन्ते’ इति रूपम् । यासः से । अत्र से इति लुप्तप्रथमाकम् । एषसे ।  
लटः यासि, शपि, यासः सेभावः । एषेवे । लटो मध्यमपुरुषद्विवचने आयामादेशो, शपि,  
आम एत्वे आकारस्य इयादेशो गुणे यलोप इति भावः । एषध्वे । लटो मध्यमपुरुषबहु-  
वचने ध्वमादेशो शपि टेरेत्वे च रूपम् । धे । लट उत्तमपुरुषैकवचने इडादेशे, एत्वे,  
शपि ‘एध ए’ इति स्थिते प्रक्रियां दर्शयति—अतो गुणे इति । “अतो गुणे” इति पर-  
रूपे वृद्धयपवादे कृते सति ‘एधे’ इति रूपम् । एषावहे । लट उत्तमपुरुषद्विवचने वहि  
इत्यादेशो शपि, अनुबन्धलोपे टेरेत्वे ‘एध वहे’ इति जाते तत्र “अतो दीर्घो ययि”  
इति अतो दीर्घं ‘एधावहे’ इति रूपम् । एषामहे । लट उत्तमपुरुषबहुवचने महि इत्या-  
देशे टेरेत्वे शपि, अतो दीर्घः । इजादेशेति । नजः ऋच्छ इत्यनेन समासे अनृच्छ  
इत्यस्मात् पञ्चमी । धातोरेकाच” इत्यतो धातो रित्यनुवर्तते । “कास्प्रत्ययादाममन्त्रे  
लिटि” इत्यतः आमिति लिटीति चानुवर्तते । तदाह—इजादिरित्यादिना । आम्प्रत्ययव-  
दिति । “अनुदात्तङित आत्मनेपदम्” इत्यत आत्मनेपदमित्यनुवर्तते । तत्राप्प्रत्यय-  
स्यात्मनेपदाभावादाह—आम् प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिरिति । तस्य—  
अन्यपदार्थस्य, गुणाः—विशेषणानि वतिपदार्थरूपाणि, तेषां संविज्ञानं क्रियान्वयितया  
ज्ञानं न विद्यते यस्य बहुव्रीहेः सः अतद्गुणसंविज्ञानः । यथा—चित्रगुमानयेति ।  
अत्र हि पुरुषस्यैवान्यपदार्थस्य क्रियायामन्वयः, न तु चित्राणां गवामपि । एवं  
प्रकृते—आम्प्रत्ययार्थानिर्मुक्तः—आम्प्रत्ययप्रकृतिभूतः, एधादिधातुरेव आम्प्रत्यय-  
शब्देन लभ्यत इति भावः । आम्प्रत्ययवदिति तृतीयान्तादिति । अनुप्रयुज्यत  
इत्यनुप्रयोगः । कर्मणि घञ् । एवमर्थं षष्ठी । तदाह—आम्प्रकृत्येत्यादिना ।  
लिटस्तभ्योरिति । स्पष्टम् । ननु ‘लिटस्तभ्योरिशिरिच्’ इत्येवास्तु । आदेशयोरैकारो-  
च्चारणं न्यर्थम् । “लिट आत्मनेपदानां टेरे” इत्येत्वेनैव सिद्धेरिति चेद् ? न । ‘तडा-  
देशानां टेरेत्वं न’ इति एकारोच्चारणस्य ज्ञापकत्वात् । तेन दारौरसाम् एवं नेति  
फलम् । एधाञ्चक्रे । एधधातोः “परोचे लिट्” इति लिटि, “इजादेशश्च गुरुमतोऽनृच्छः”  
इत्यामि, “आमः” इति लिटो लोपे, “कृञानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्प्रके कृञनु-  
प्रयोगे “एध् आम् कृ लिट्” इति जाते, लिटः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचनविवक्षायां तादेशे  
“लिट् च” इत्यार्थकानुवृत्ते “लिटस्तभ्योरिशिरिच्” इति तकारस्य स्थाने एजादेशे  
कृते लोपे च जाते “एध् आम् कृ ए” इति स्थिते अत्र “लिटि धातोर्नम्यासस्य”  
इति द्वित्वे प्रत्यये तं परस्मैह्रस्वित्वा “इको कर्मणि” इति धातो तस्य “द्विवचनेऽपि”

शिरिच् शिधादः । लिङदेशयोस्तभ्योरेशिरेचौ स्तः । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चक्रते ।  
एधाञ्चकिरे । एधाञ्चकृषे । एधाञ्चक्राथे । इणः षीध्वंलुङ्लिटां घोऽङ्गात् णञ् ।  
उण् । इण्णन्तादङ्गात्परेषं षीध्वंलुङ्लिटां घस्य ढ रयात् । एधाञ्चकृद्ध्वे । एधाञ्चके ।

इत्यनेन निषेधे कृते “पुनःप्रसङ्गविज्ञानात्” लिटि धातोरनभ्यासस्य इति द्वित्वे ‘एष्-  
आम् कृ कृ ए’ इति जाते ‘पूर्वोऽभ्यासः’ इत्यभ्यासत्वे “उरत्” इति अभ्यासञ्च-  
वर्णस्य अकारे जाते “उरण् रपरः” इति रपरे ‘एष्-आम् कर् कृ ए’ इति भूते “हलादिः  
शेषः” इति कअवशिष्टे “कुहोरचुः” इति कस्य चत्वे जाते “सार्वधातुकार्धधातुकयोः”  
इति गुणे प्राप्ते, परम् “असंयोगाल्लिट् कित्” इति लिटः कित्वात् “किति च” इति  
निषेधे जाते, “इको यणचि” इति यणि, सर्वस्मिन् संयुक्ते कृते एधाम् इत्येतद्गतस्य  
मस्य “मोऽनुस्वारः” इत्यनुस्वारे “अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः” इति नित्ये परसवर्णे  
प्राप्ते “वा पदान्तस्य” इति वा परसवर्णे ‘एधाञ्चक्रे’ इति रूपम् । एधाञ्चक्राते । एष्-  
धातोः “परोक्षे लिट्” इति लिटि, “इजादेश्च गुरुमतोऽच्छः” इत्यामि, “आमः” इति  
लिटो लोपे, “कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्परके कृञि कृते ‘एधाम् कृ लिट्’ इति  
जाते, लिट् इटो लोपे, लः स्थाने प्रथमपुरुषद्विवचने आतामि जाते “लिटि धातोरन-  
भ्यासस्य” इति द्वित्वे ‘कृ कृ’ इति जाते “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे “उरत्” इति  
अकारे, “उरण् रपरः” इति रपरे “हलादिः शेषः” इति आदिहल् अवशिष्टे “कुहोरचुः”  
इति कस्य चत्वे “इको यणचि” इति यणि ‘एधाम् चक्राताम्’ इति जाते “टित् आत्म-  
नेपदानां टेरे” इति टिसञ्ज्ञकस्य आम एत्वे, मस्यानुस्वारे वा परसवर्णे च कृते ‘एधा-  
ञ्चक्राते’ इति रूपम् । एधाञ्चकिरे । एष्धातोः लिटि, “इजादेश्च गुरुमतोऽच्छः”  
इत्यामि, “आमः” इति लिटो लुकि, “कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्परके कृञि विहिते  
लिटलकारस्य स्थाने प्रथमपुरुषबहुवचने इादेशे कृते “लिटस्तझयोरेशिरेच्” इति  
हरेचि, चलोपे, द्वित्वे, अभ्यासत्वे, अभ्यासकाय, मस्यानुस्वारे, वा परसवर्णे ‘एधाञ्चकृ-  
हरे’ इति जाते “इको यणचि” इति यणि, ‘एधाञ्चकिरे’ इति रूपम् । एधाञ्चकृषे ।  
‘एधाञ्चकृ थास्’ इति स्थिते “थासः से” इति थासः स्थाने से आदेशे जाते “लिट्  
च” इत्यार्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वल्लादेः” इतीटि प्राप्ते “एकाच्च उपदेशेऽनुदा-  
त्तात्” इति इटो निषेधे कृते “आदेशप्रत्यययोः” इति पत्वे ‘एधाञ्चकृषे’ इति रूपम् ।  
अत्र “असंयोगाल्लिट् कित्” इति कित्वात् “किञ्चि च” इति गुणनिषेधोऽपि शेषः ।  
एधाञ्चक्राथे । ‘एधाञ्चकृ + आयाम्’ इति पूर्ववत् साधनिकां कृत्वा “इको यणचि” इति  
यणि कृते “टित् आत्मनेपदानां टेरे” इति आयामः टिसञ्ज्ञकस्य आम एत्वे च कृते  
रूपम् । इणः षीध्वं लुङ्लिटामिति । षीध्वं लुङ् लिट् एषां इन्द्रः । घः इति षष्ठ्योक्त-  
चनम् । इण् इत्यङ्गविशेषणम्, तदन्तविधिः । “अपदान्तस्य मूर्धन्यः” इत्यङ्गिकृतम् ।  
अथाह—एण्णन्तादित्वादिना । एधाञ्चकृद्ध्वे । एष्धातोः “परोक्षे लिट्” इति लिटि “इजा-

एधाञ्चक्रवहे । एधाञ्चक्रमहे । एधाम्बभूव । एधामास । एधिता । एधितारी । एधि-

देश्च गुरुमतोऽनुच्छः” इत्यामि “आमः” इति लिटो लुकि, “कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्परके कृञि अनुप्रयुक्ते, लिटो लस्य स्थाने मध्यमपुरुषबहुवचने ध्वमि आदेशे जाते, ‘एध् आम ध्वम्’ इति भूते “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति कृञो द्वित्वे अभ्यासत्वे “उरत्” इति कृञ ऋवर्णस्याकारे जाते “उरण् रपरः” इति रपरे कर् इति जाते “हलादिः शेषः” इति कमात्रावशिष्टे “कुहोरश्चुः” इति कस्य चत्वे “इणः षीध्वं लुङ् लिटां धोऽङ्गात्” इति धस्य ढत्वे मस्यानुस्वारे, वा परसवर्णे च कृते “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति ध्वमोऽमष्टिसंज्ञकस्यत्वे ‘एधाञ्चकृढवे’ इति रूपम् । एधाञ्चक्रे । उत्तमपुरुषैकवचने इटि, एत्वे, पूर्ववत् द्वित्वादौ कृते रूपम् । एधाञ्चक्रवहे । लिटो बहिभावे, एत्वे, द्वित्वादि पूर्ववत् । एधाञ्चक्रमहे । एवं लिटो महिभावे द्वित्वादि पूर्ववद्बोध्यम् । एधाम्बभूव । एधधातोः “परोक्षे लिट्” इति लिटि, “इजादेश्च गुरुमतोऽनुच्छः” इत्यामि, “आम” इति लिटो लुकि सति “कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि” इत्यत्र कृञः प्रत्याहारः । तेन ‘कृ भू अस्’ इत्यस्य लामः । अत्र लिट्परके भूधातौ अनुप्रयुक्ते सति ‘एधाम् भू लिट्’ इति जाते, लिट इटि गते, लः स्थाने च भूधातोः परस्मैपदत्वात् प्रथमपुरुषैकवचने तिपादेशे, तिपः स्थाने-“परस्मैपदानां णलुतुसुस्थलम्” इत्यादिना णलि, णकारस्य लकारस्य चेत्संज्ञायां लोपे च, “भुवो वुङ्लुङ्लिटोः” इति भुवो वुगागमे, उकि गते, क्तिवादन्यावयवत्वे जाते, “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति भुवो द्वित्वे ‘एधाम् भूव् भूव अ’ इति जाते “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति भू अवशिष्टे “ह्रस्वः” इति ह्रस्वे “भवतेरः” इति भुवः उकारस्य अत्वे “अभ्यासे चर्च” इति भस्य ककारे जाते सर्वस्मिन् संयुक्ते ‘एधाम् बभूव’ इति जाते मस्यानुस्वारे वा परसवर्णे च कृते ‘एधाम्बभूव’ इति रूपम् । अग्रेऽप्येवमेव साधनिका । रूपाणि-एधाम्बभूव, एधाम्बभूवतुः, एधाम्बभूवुः । एधाम्बभूविथ । एधाम्बभूवथुः, एधाम्बभूव । एधाम्बभूव, एधाम्बभूविब, एधाम्बभूविम । इति । एधामास । एधधातोः “परोक्षे लिट्” इति लिटि, “इजादेश्च गुरुमतोऽनुच्छः” इत्यामि, “आमः” इति लिटो लुकि, “कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्परके अस् धातौ अनुप्रयुक्ते, लिट इटि गते, लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचनविवक्षायां असः परस्मैपदित्वात् तिपि, तिपो णलादेशे, णस्य लस्य चेत्संज्ञायां लोपे च ‘एधाम् अस् अ’ इति जाते “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे, “हलादिः शेषः” इति सलोपे “अत आदेः” इति अभ्यासाकारस्य दीर्घे ‘एधाम् आ अस् अ’ इति भूते “अकः सवर्णे दीर्घः” इति सवर्णदीर्घे सर्वस्मिन् संयुक्ते ‘एधामास’ इति रूपम् । अग्रेऽप्येव साधनिका । रूपाणि तु-एधामास, एधामासतुः, एधामासुः । एधामासिथ, एधामासथुः, एधामास । एधामास, एधामासिब, एधामासिम । इति । एधिता । एधधातोः “अनघत्तने लुट्” इति लुटि, ङकारटकारयोरेत्संज्ञायां लोपे च, एधधातोः अनुदात्तत्वात् “अनुदात्तकृत् आत्म-

तारः । एधितासे । एधितासाये । धि च ८।२।५२। धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः स्यात् । एधिताध्वे । ह एति ७।४।५२। तासस्त्योः सस्य हः म्यादेति परे । एधिताहे । एधितास्वहे । एधितास्महे । एधिष्यते । एधिष्येते । एधिष्यन्ते । एधिष्यसे ।

नेपदम्” इत्यात्मनेपदम्, तत्र “तडानावात्मनेपदम्” इति तड आत्मनेपदित्वात् लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तङ्क्ते “तिङ्शित्सार्वाधातुकम्” इति सार्वधातुकत्वे “कर्तरि शप्” इति शप् प्राप्ते, तम्बाधित्वा “स्यतासी लृलुटोः” इति तासि, तासः “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वलदेः” इति इडागमे कृते ‘एधितास् त’ इति जाते “लुटः प्रथमस्य डारौरसः” इति तस्य स्थाने डात्वे, ङस्येत्संज्ञायां लोपे च “ङित्सामर्थ्यादभस्यापि ढेलोपः” इति तासः टिसंज्ञकस्य आस् इत्यस्य लोपे मिलित्वा ‘एधिता’ इति रूपम् । एधितारौ । एधधातोः लुट आतामि, तस्मिन् परे तासि, आर्धधातुकत्वे, इडागमे च कृते ‘एधितास् आताम्’ इति जाते “लुटः प्रथमस्य डारौरसः” इति आतामः स्थाने रौ आदेशे ‘रि च’ इति सलोपे ‘एधितारौ’ इति रूपम् । एधितारः । ‘एधितास् श’ इति पूर्ववत् प्रसाध्य “लुटः प्रथमस्य डारौरसः” इति अस्थाने रसादेशे “रि च” इति सलोपे रूपम् । एधितासे । एधधातोः लुटि, उटि गते, लः स्थाने मध्यमपुरुषैकवचने थासि, “थासः से” इति थासः से आदेशे, तासि, इडागमे “एधितास् से” इति जाते “तासस्त्योलोपः” इति सलोपे च रूपम् । एधितासाये । आतामि “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति एत्वमिति विशेषः, शेषं पूर्ववत् । धि चेति । “सस्यार्धधातुके” इत्यतः स इत्यनुवर्तते । ‘तासस्त्योः’ इत्यतो लोप इति । अङ्गाक्षिप्रत्ययो धीत्यनेन विशेष्यते । तदादिविधिः । तदाह—धादाविति । एधिताध्वे । एधधातोर्लुटि, उटि गते, लः स्थाने मध्यमपुरुषबहुवचने ध्वमि कृते, तासि, तस्य आर्धधातुकत्वे, इडागमे च जाते ‘एधितास् ध्वम्’ इति भूते “धि च” इति सलोपे “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति ध्वमोऽमः टिसंज्ञकस्य एत्वे “एधिताध्वे” इति रूपम् । ह एतीति । ह इति प्रथमान्तम् । अकार उच्चारणार्थः । “सस्यार्धधातुके” इत्यतः स इति “तासस्त्योलोपः” इत्यतः तासस्त्योरिति चानुवर्तते । तदाह—तासस्त्योरिति । एधिताहे । एधधातोर्लुट उत्तमपुरुषैकवचने इटि, तासि, इडागमे ‘एधितास् इ’ इति स्थिते “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति इट इकारस्यैत्वे “ह एति” इति सस्य हत्वे ‘एधिताहे’ इति रूपम् । एवं वहौ, महिङि च परे साधनिका ज्ञेया । एधिष्यते । एधधातोः “लुट् शेषे च” इति लुटि, अनुबन्धलोपे प्रथमपुरुषैकवचने ते कृते, “स्यतासी लृलुटोः” इति स्ये, “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वलदेः” इति इडागमे “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे, “टित आत्मनेपदानां टेरे” इत्येत्वे ‘एधिष्यते’ इति रूपम् । एधिष्येते । ‘एधिष्य आताम्’ इति पूर्ववत् प्रसाध्य “आतो ङित्तः” इति आताम् घटकाऽऽकारस्य इयादेशे “लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे “आ-



एधिष्ये । एधिष्यध्वे । एधिष्ये । एधिष्यावहे । एधिष्यामहे ॥ आमेतः ३।४।६०।  
 लोट् एकारस्याम् स्यात् । एधताम् । एधेताम् । एधन्ताम् ॥ सवाभ्यां वामौ  
 ३।४।६१। सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद्वामौ स्तः । एधस्व । एधेयाम् । एध-  
 ध्वम् ॥ एत ए ३।४।६३। लोडुत्तमस्य एत ए स्यात् । एधै । एधावहै । एधामहै ।

इगुणः” इति गुणे “दित आत्मनेपदानां टेरे” इति एत्वे ‘एधिष्येते’ इति रूपम् ।  
 एधिष्यन्ते । इत्स्य टेरेत्वम् , झकारस्यान्तादेशः, स्यः, इट् , पररूपं षत्वम् । एधिष्यते ।  
 लोटः थासादेशे, “थासः से” इति थासः से आदेशे “स्यतासी लुलुटोः” इति शबप-  
 चादे स्ये, स्यस्य इडागमे, प्रत्ययावयवत्वात् षत्वे च कृते रूपम् । एधिष्येथे । एधि-  
 ष्येते इतिवदायामि, ‘एधिष्येथे’ इति रूपम् । एधिष्यध्वे । ध्वम एत्वे स्यः, इट्  
 षत्वम् । एधिष्ये । इट् एत्वे, स्यः, इडागमः, षत्वम् “अतो गुणे” इति पररूपम् ।  
 एधिष्यावहे । एधिष्यामहे । वहिसङ्गोष्टेरेत्वम् , स्यः, इट् ‘अतो दीर्घो ययि’ इत्यतो  
 दीर्घः । आमेतः । आम् एतः इति च्छेदः । “लोडो लङ्त्वत्” इत्यतो लोट् इत्थनुवर्तते,  
 तदाह—लोट् एकारस्येति । एधताम् । एधधातोः “लोड् च” इति लोटि, ओकारस्य टस्य  
 चेत्सञ्ज्ञायां लोपे च जाते, लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तादेशे कृते “तिङ्शित्सार्व-  
 धातुकम्” इति तस्य सार्वधातुकत्वे “कर्तरि शप्” इति शपि, शपथोरित्सञ्ज्ञकत्वे  
 लोपे च, सित्वाद्स्यापि सार्वधातुकत्वे “दित आत्मनेपदानां टेरे” इति तकाराकार-  
 स्येत्वे ‘एधते’ इति जाते “आमेतः” इति एकारस्यामादेशे ‘एधताम्’ इति रूपम् ।  
 एधेताम् । आताम् , टेरेत्वं शप् “सार्वधातुकमपित्” इति सित्वात् “आतो डितः” इति  
 आकारस्य इयादेशः, यलोपः, गुणः, “आमेतः” इति एकारस्याम् । एधन्ताम् । इत्स्य  
 टेरेत्वे शपि, झकारस्यान्तादेशे एकारस्य आम् । सवाभ्यामिति । सश्च वश्च सवौ, ताभ्या-  
 मिति विग्रहः । अकाराबुच्चारणार्थौ । वश्च अम्च वामौ “लोडो लङ्त्वत्” इत्यस्मात्  
 लोट् इति, “आमेतः” इत्यस्मादेत इति चानुवर्तते । तदाह—सवाभ्यामिति । एधस्व ।  
 एधधातोर्लोडो मध्यमपुरुषैकवचने थास्यागते शपि, अनुबन्धलोपे “थासः से” इति  
 थासः सेत्वे “सवाभ्यां वामौ” इति सकारात्परस्यैकारस्य वादेशे ‘एधस्व’ इति रूपम् ।  
 एधेयाम् । आथाम् टेरेत्वम् , शप् , “आतो डितः” इत्याकारस्य इय् , गुणः, यलोपः  
 “आमेतः” इत्याम् । एधध्वम् । ध्वमि, शप् , टेरेत्वे कृते “सवाभ्याम्” इति वकारा-  
 त्परत्वादेकारस्य अम् । एत ए । ए इति लुप्तप्रथमाकम् । “लोडो लङ्त्वत्” इत्यस्मा-  
 त् लोट् इति “आहुत्तमस्य पिच्च” इत्यस्मादुत्तमस्येति चानुवर्तते । तदाह—लोडुत्तम-  
 स्येति । एधै । एधधातोः “लोड् च” इति लोटि, ओटि गते, लः स्थाने उत्तमपुरुषैक-  
 वचने इटि समागते टस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इत्यनेन  
 सार्वधातुकत्वे “कर्तरि शप्” इत्यनेन शपि, झकारस्य एकारस्य चेत्सञ्ज्ञायां लोपे  
 च कृते ‘एध ज इ’ इति जाते “दित आत्मनेपदानां टेरे” इति इट् इकास्य षत्वे,

“आटश्च” ऐधत् । ऐधेताम् । ऐध्वत् । ऐधथाः । ऐधेयाम् । ऐध्वम् । ऐधे ।  
ऐधावहि । ऐधामहि ॥ लिङः सीयुट् ३।४।१०८ । लिङात्मनेपदस्य सीयुडा-  
गमः स्यात् । सलोपः । ऐधेत । ऐधेयाताम् । अस्य रन् ३।४।१०५ । लिङो  
भस्य रन् स्यात् । ऐधेरन् । ऐधेथाः । ऐधेयायाम् । ऐध्वम् । इटोऽत् ३।४।१०६ ।  
लिङादेशस्य इटोऽत् स्यात् । ऐधेय । ऐधेवहि । ऐधेमहि ॥ सुट्तिथोः ३।४।१०७ ।

एकारस्य “एत ऐ” इति ऐत्वे, आहुत्तमस्य पिप्च” इति उत्तमपुरुषस्य एङत्वस्य  
आडागमे टित्वादाद्यावयवे जाते, ‘एध आपे’ इति स्थिते “आटश्च” इति वृद्धौ ‘एध ऐ’  
इति सूते “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ ‘एधं’ इति रूपम् । ऐधावहि । ऐधामहि । वहिमहोऽष्टोत्वे  
शपि, एकारस्य ऐत्वे, आटि, सवर्णदीर्घः । ऐधत् । एधधातोः “अनद्यत्ने लङ्” इति  
लङि, ङकाराकारयोस्तिस्ञायां लोपे च, लः स्थाने “तित्सस्त्रि०” इत्यादिना तादेशे  
“तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकत्वे “कर्तरि शप्” शपयोरितिस्ञायां लोपे च  
“आडजादीनाम्” इत्याहामामे ‘आ एध् अ त’ इति जाते “आटश्च” इति वृद्धौ,  
मिलित्वा ‘ऐधत्’ इति रूपम् । ऐधेताम् । आत्तामि, शपि, आटि, वृद्धिः । “आतो द्वितः”  
इत्याकारस्य इय् आद्गुणः यलोपः । ऐधन्त । शेरन्तादेशः, शप्, आट्, वृद्धिः । ऐधथाः ।  
आसि शप् आट् वृद्धिः । ऐधेयाम् । आत्ताम्, शप्, आट्, वृद्धिः, इय्, आ-  
द्गुणः यलोपः । ऐध्वम् । ध्वम्, शप्, आट्, वृद्धिः । ऐधे । इट्, शप्, आ-  
द्गुणः, आट्, वृद्धिः । ऐधावहि । ऐधामहि । वहिमहोः शप्, आट्, वृद्धिः, अतो  
दीर्घः । लिङः सीयुट् । स्पष्टम् । ऐधेत । एधधातोः “विधिमन्त्राणामन्त्रणाधी-  
ष्टसंमनप्रार्थनेषु लिङ्” इति लिङि, इङि गते, लः स्थाने प्रथमपुरुषकत्वज्ञे  
तादेशे कृते “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकत्वे “कर्तरि शप्” इति शपि,  
शपयोरितिस्ञायां लोपे च, ‘एध् अ त’ इति जाते “लिङः सीयुट्” इति तकामस्त  
सीयुडागमे, उटि गते टित्वादाद्यावयवे “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे “लोपो  
ब्योर्वलि” इति यलोपे “आद्गुणः” इति गुणे ‘ऐधेत’ इति रूपम् । ऐधेयाताम् । आ-  
त्तामि, सीयुट्, शप्, सलोपः, आद्गुणः । अस्य रञिति । “लिङः सीयुट्” इत्यतो लिङ  
इत्यनुवर्तते । तदाह—लिङो झस्येति । लिङादेशस्य झस्येत्यर्थः । अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः ।  
ऐधेरन् । अस्य रन्, शप्, सीयुट्, सलोपः, आद्गुणः, यलोपः । ऐधेथाः । आसि,  
सीयुट्, शप् सीयुट्सस्य लोपः, आद्गुणः, यलोपः आसस्सस्य रुत्वविसर्गौ । ऐधेया-  
याम् । आत्ताम्, सीयुट्, सलोपः शप् आद्गुणः । ऐध्वम् । ध्वम्, सीयुट्, शप्,  
सीयुट्सस्य लोपः, आद्गुणः, यलोपः । इटोऽत् । इटः, अत् इति छेदः । “लिङः  
सीयुट्” इत्यतो लिङ इत्यनुवर्तते । तदाह—लिङादेशस्येति । ऐधेय । एधधातोर्लिङ  
इति, तस्य स्थाने “इटोऽत्” इति अकारादेशे सीयुटि, उटि गते, शपि, अनुबन्धलोपे,  
सीयुट्सस्य लोपे, “आद्गुणः” इति गुणे मिलित्वा ‘ऐधेय’ इति रूपम् । ऐधेवहि । ऐधे-

लिङ्गस्तकारयकारयोः सुट् स्यात् । यलोपः । आर्धधातुकत्वात् सलोपो न । एधिषीष्ट ।  
एधिषीयास्ताम् । एधिषीरन् । एधिषीष्ठाः । एधिषीयास्थाम् । एधिषीध्वम् । एधि-  
षीय । एधिषीवहि । एधिषीमहि । ऐधिष्ट । ऐधिषताम् । आत्मनेपदेष्वनतः  
७।१।५। अनकारात्परस्यात्मनेपदस्य ऋस्य अदित्यादेशः स्यात् । ऐधिषत् । ऐधिष्ठाः ।

महि । वहिमहोः सीयुट्, सलोपः, शप्, आद्गुणः, यलोपः, इति बोध्यम् । सुट् तिथोः ।  
“लिङ्गस्सीयुट्” इत्यतो लिङ्ग इत्यनुवर्तते । तिश्च य् चेति द्वन्द्वात् षष्ठीद्विवचनम् ।  
इकार उच्चारणार्थः । तदाह—लिङ्गस्तकारेति । एधिषीष्ट । एध् धातोः “आशिषि लिङ्-  
ग्लोटौ” इत्याशिषि लिङि, इङि गते लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने ते जाते “लिङ्गशिषि”  
इत्यार्धधातुकत्वे, “लिङ्गः सीयुट्” इति सीयुटि, उटि गते, टित्वादाद्यावयवे “एध् सीय्  
त” इति जाते “सुट् तिथोः” इति तकारस्य सुडागमे, उटि गते टित्वादाद्यावयवे यका-  
रस्य “लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे “आर्धधातुकस्येड्वल्लदेः” इति इडागमे “आदेश-  
प्रत्यययोः” इति उभयत्र क्त्वे, तकारस्य घृत्वे “एधिषीष्ट” इति रूपम् । एधिषीयास्ताम् ।  
आताम्, सीयुट् । आकारादुपरि तकारात्पाक् सुट् । सीयुटः प्राक् इट्, तत् उत्तरस्य  
सकारस्य क्त्वम् । एधिषीरन् । ऋस्य रन् । सीयुट् इडागमः यकारलोपः क्त्वम् । एधि-  
षीष्ठाः । थास्, सीयुट्, यकारस्य सुट्, सीयुटः प्रागिट्, सकारद्वयस्य क्त्वम् । यका-  
रस्य घृत्वेन ठकारः । स्त्वविसर्गौ । एधिषीयास्थाम् । आथाम् सीयुट् । आकारादुपरि  
यकारात् प्राक् सुट्, सीयुटः प्रागिट् । तत् उत्तरस्य सकारस्य क्त्वम् । एधिषीध्वम् ।  
ध्वम्, सीयुट्, यलोपः, सीयुटः, प्रागिट् क्त्वम् । इणः परत्वेऽपि इण्णन्तादङ्गात्परत्वं  
नास्ति । इटः प्रत्ययावयवत्वात् । एवञ्च “इणः षीध्वम्” इति ठत्वं न । एधिषीय ।  
इटः अत्, सीयुट्, इट्, क्त्वम् । एधिषीवहि । एधिषीमहि । वहिमहोस्सीयुट्, इट्,  
क्त्वम् । ऐधिष्ट । एध् धातोः “लुङ्” इति लुङि, उङि गते, लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने  
ते, तस्य सार्वधातुकत्वे, शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा “च्छि लुङि” इति छलौ, “छ्लेः सिच्”  
इति सिचि, इचि गते, “एध् स् त” इति स्थिते “आर्धधातुकं शेषः” इति सिच आर्धधा-  
तुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वल्लदेः” इति इडागमे “आदेशप्रत्यययोः” इति सस्य क्त्वे,  
तकारस्य “हुना घृः” इति घृत्वे, “आङ्जादीनाम्” इत्यङ्गस्याडागमे “आटश्च” इति  
बुद्धौ “ऐधिष्ट” इति रूपम् । ऐधिषताम् । आताम्, छ्लिः, सिच्, इट्, आट्, बुद्धिः,  
क्त्वम् । आत्मनेपदेष्वनत इति । “ह्योऽन्तः” इत्यतश्च इति षष्ठ्यन्तमनुवर्तते । आत्म-  
नेपदेष्विति षष्ठ्यर्थे सप्तमी । आत्मनेपदावयवस्य सकारस्येति लभ्यते । “अदभ्यस्तात्”  
इत्यतः अदित्यनुवर्तते । न अत् अनत् तस्मादिति विग्रहः । तदाह—अनकारादित्या-  
दिना । ऐधिषत् । एध् धातोर्लुङः प्रथमपुरुषैकवचने शे समागते “च्छि लुङि” इति  
छलौ, “छ्लेः सिच्” इति सिचि, इचि गते, सिचः सत्यार्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्व-  
ल्लदेः” इति इडागमे “आत्मनेपदेष्वनतः” इति सस्य अत् आदेशे “आङ्जादीनाम्”

ऐधिषायाम् । ऐधिद्वम् । ऐधिषि । ऐधिष्वहि । ऐधिष्महि । ऐधिष्यत । ऐधिष्येताम् ।  
ऐधिष्यन्त । ऐधिष्यथाः । ऐधिष्येयाम् । ऐधिष्यध्वम् । ऐधिष्ये । ऐधिष्यावहि ।  
ऐधिष्यामहि । कमु कान्तौ ॥ २ ॥ कमेरिण्ड ३।१।३०। कमेरिण्ड् स्यात् स्वार्ये ।  
ङित्वात् । कामयते ॥ अयामन्ताल्वाय्येत्विष्णुषु ६।४।५५। आम् अन्त

इत्यङ्गस्याडागमे “आटश्च” इति वृद्धौ, “आदेशप्रत्यययोः” इति सिचः सस्य षत्वे  
मिलित्वा ‘ऐधिषत’ इति रूपम् । ऐधिषाः । लुङः थास्, च्लिः, सिच्, इट्, आट्, वृद्धिः,  
षत्वम्, थकारस्य ध्रुत्वेन ठकारः, स्त्वविसर्गौ । ऐधिषायाम् । आथाम्, च्लिः, सिच्, इट्,  
आट्, वृद्धिः, षत्वम् । ऐधिद्वम् । एध्धातोर्लुङो मध्यमपुरुषबहुवचने ध्वमि कृते, च्लौ  
च्लेः सिचि, इचि गते, इडागमे, “आडजादीनाम्” इत्याडागमे “आटश्च” इति वृद्धौ,  
‘ऐधि स् ध्वम्’ इति जाते “धि च” इति सलोपे ‘ऐधिध्वम्’ इति रूपम् । ऐधिषि ।  
लुङः इडादेशः, च्लिः, सिच्, इडागमः आट्, वृद्धिः । ऐधिष्वहि । ऐधिष्महि । वहिम-  
होस्तु च्लेः सिचि, इडागमे, आटि, वृद्धौ ‘ऐधिष्वहि’ ‘ऐधिष्महि’ इति रूपे । ऐधि-  
ष्यत । एध्धातोः “लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ” इति लृङ्, अनुबन्धलोपे, लः  
स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने ते कृते “स्यतासीलुटोः” इति स्ये, स्यस्य “आर्धधातुकं शेषः”  
इत्यार्धधातुकत्वे, “आर्धधातुक्येङ्बलादेः” इति इडागमे “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे  
“आडजादीनाम्” इति आडागमे “आटश्च” इति वृद्धौ ‘ऐधिष्यत’ इति रूपम् । ऐधि-  
ष्येताम् । आताम्, स्यः, इट्, आकारस्य इय्, आद्गुणः, यलोपः, आट्, वृद्धिः,  
षत्वम् । ऐधिष्यन्त । श्रावयवक्षकारस्यान्तादेशः, स्यः, इट्, आट्, वृद्धिः, षत्वम् ।  
ऐधिष्यथाः । थास्, स्यः, इट्, आट्, वृद्धिः, षत्वम्, स्त्वविसर्गौ । ऐधिष्येयाम् ।  
आथाम्, स्यः, इट्, आकारस्य इय्, आद्गुणः, यलोपः, आट्, वृद्धिः, षत्वम् ।  
ऐधिष्यध्वम् । ध्वम्, स्यः, इट्, आट्, वृद्धिः, षत्वम् । ऐधिष्ये । इडादेशः, स्यः, इडा-  
गमः, षत्वम्, आद्गुणः । वहिमहोस्तु स्यः, इट्, अतो दीर्घः, आट्, वृद्धिः, षत्वम्-  
‘ऐधिष्यावहि । ऐधिष्यामहि’ । इति रूपम् । कमुकान्ताविनि । कान्तिरिच्छा, ‘स्वर्गकामः’  
इत्यादौ कमेरिण्डायां प्रयोगबाहुल्यदर्शनात् । ‘कामोऽभिलाषस्तर्षश्च’ इत्यमरः ।  
कमेरिण्ड् । शेषपूरणेन सूत्रं न्याचष्टे—स्वार्य इति । अर्थविशेषानिर्देशादिति भावः ।  
कामयते । कमुधातोः उकारस्य “उपदेशेऽजनुनासिक इत्” इतीत्सञ्ज्ञायां “तस्व  
लोपः” इति लोपे “कमेरिण्ड्” इति णिङि, “वुट्” इति णकारस्य “हलन्त्यम्” इति  
ठकारस्य चेत्सञ्ज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे “अत उपधायाः” इति वृद्धौ ‘कामि’  
इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसञ्ज्ञायां “वर्तमाने लट्” इति लटि, अका-  
रटकारयोरित्सञ्ज्ञायां लोपे च “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति कर्तर्यर्थे  
“अनुदात्तङित् आत्मनेपदम्” इति कामिधातोर्ङित्वात् आत्मनेपदस्य प्राप्तौ “तङाना-  
वात्मनेपदम्” इति तङ् आत्मनेपदसञ्ज्ञत्वात् लःस्थाने । सर्वस्मिन् प्राप्ते प्रथमपुरुषैक-

आलु आद्य इत्तु इष्णु एषु शेरयादेशः स्यात् । कामयाञ्चके । “आयादय” इति णिङ् वा । चकमे । चकमाते । चकमिरे । चकमिषे । चकमाथे । चकामिद्वे ।

वचने तादेशे ‘कामि त’ इति स्थिते, तत्र तकारस्य “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकत्वे “कर्तरि शप्” इति शपि शपयोरित्सञ्ज्ञायां लोपे च शित्वात्सार्वधातुकत्वे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “एचोऽयवायावः” इति अयादेशे “टित् आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे ‘कामयते’ इति रूपम् । कामयते, कामयेते, कामयन्ते । कामयसे, कामयेये, कामयध्वे । कामये, कामयावहे, कामयामहे । अयामन्तेति । अय् इति च्छेदः । “णेरनिटि” इत्यतो णेरित्यनुवर्तते । तदाह—णेरयादेशः स्यादिति । कामयाञ्चके । कम्धातोः “कमेर्णिङ्” इति णिङि, अनुबन्धलोपे “अत उपधायाः” इति वृद्धित्वे ‘कामि’ इति भूते “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वे “परोच्चे लिट्” इति लिटि “कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः” इत्यामि, “णेरनिटि” इति लोपे प्राप्ते तन्वाधित्वा “अयामन्तात्वाय्येत्विष्णुषु” इति णिङ् इकारस्य अयादेशे ‘कामय आम् लिट्’ इति जाते “आम्” इति लिटो लुकि, “कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिटपरके कृञोऽनुप्रयोगे कृते, लिटो लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तादेशे कृते, तस्य स्थाने “लिटस्तज्ञयोरेशिरेच्” इति एशि कृते शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति कृञो द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इति अभ्यासत्वे “उरत्” इति अभ्यासऋवर्णस्य अकारे “उरण् रपरः” इति रपरे च कृते ‘कामयाम् कर् कृ ए’ इति भूते “हलादिः शेषः” इति रलोपे “कुहोरचुः” इति कस्य चत्वे “इको यणचि” इति यणि, मस्यानुस्वारे वा परसवर्णे च कृते ‘कामयाञ्चके’ इति रूपम् । अग्रे एवमेव साधनिका ऊह्या । रूपाणि तु—कामयाञ्चके, कामयाञ्चक्राते, कामयाञ्चकिरे । कामयाञ्चकृषे, कामयाञ्चक्राथे, कामयाञ्चकृद्वे । कामयाञ्चके, कामयाञ्चकृवहे, कामयाञ्चकृमहे । एवं ‘कामयास्वभूव’ इत्यादि, ‘कामयामास’ इत्यादि च बोध्यम् । चकमे । “आयादय आर्धधातुके वा” इति आयादेशाभावपक्षे कम्धातोः “परोच्चे लिट्” इति लिटि, इटि गते, लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तादेशे, तस्य स्थाने “लिटस्तज्ञयोरेशिरेच्” इति एशि, अनेकाल्वात्सार्वदेशे शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च, “लिट् च” इत्यार्धधातुकत्वे, “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे ‘कम् कम् ए’ इति जाते “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति कअवशिष्टे “कुहोरचुः” इति कस्य चत्वे ‘चकमे’ इति । चकमाते । कम्धातोर्लिटि, लः स्थाने प्रथमपुरुषद्विवचने आतामि, द्वित्वे अभ्यासकार्ये च कृते “टित् आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे रूपम् । चकमिरे । कम् धातोर्लिटि, इटि गते, लः स्थाने प्रथमपुरुषबहुवचने श्वादेशे शस्य स्थाने “लिटस्तज्ञयोरेशिरेच्” इति इरेचि, च्गते “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये च कृते ‘चकमिरे’ इति । चकमिषे । लिटि, यासि, “थासः से” इति थासः स्थाने से आदेशे “लिट् च” इत्यार्ध-

चकमे । चकमिवहे । चकमिमहे । कामयिता । कामयितासे । कमिता । कामयिष्यते ।

धातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इडागमे द्वित्वे, अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये च कृते रूपम् । चकमाथे । कम्धातोर्लुटि, लुटो लः स्थाने मध्यमपुरुषैकवचने आथामि, द्वित्वे, अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये “टित् आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च ‘चकमाथे’ इति रूपम् । चकमिद्वे । लिटि, ध्वमि, द्वित्वे, अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये, ध्वम आर्धधातुकत्वे, इडागमे “टित् आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वम् । चकमे । लिटः स्थाने उत्तमपुरुषैकवचने इटि, द्वित्वे, अभ्यासकार्ये “टित् आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वम् । वहिमद्योस्तु द्वित्वे, अभ्यासकार्ये इडागमे “टित् आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे ‘चकमिवहे’ ‘चकमिमहे’ इति रूपे । कामयिता । कम्धातोः “कमेर्णिङ्” इति णिङि, अनुबन्धलोपे “अत उपधायाः” इति वृद्धौ “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायाम् “अनद्यतने लुट्” इति लुटि, उटि गते, लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तादेशे, “स्यतासी लृलुटोः” इति तासि, तासः “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इडागमे, ‘काम् इ इ तास् त’ इति स्थिते “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “एचोऽयवायावः” इत्यादेशे “लुटः प्रथमस्य डारौरसः” इति तस्य स्थाने डात्वे, डस्येत्संज्ञायां लोपे च, “ङित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपः” इति टिसंज्ञकस्य तासः आस् इत्येतस्य लोपे ‘कामयिता’ इति रूपम् । कामयितारौ, कामयितारः, इति पूर्ववत् साधनिका । कामयितासे । कम्धातोः “कमेर्णिङ्” इति णिङि, धातुसंज्ञायां लुटो लः स्थाने मध्यमपुरुषैकवचने यासि, “थासः से” इति थासः से आदेशे, “स्यतासी लृलुटोः” इति तासि, तास आर्धधातुकत्वे, इडागमे, गुणे, अयादेशे “तासस्त्योलोपः” इति तासः सकारस्य लोपे च कृते ‘कामयितासे’ इति रूपम् । अथे त्वेवम्—कामयितासाथे, कामयिताध्वे । कामयिताहे, कामयितास्वहे, कामयितास्महे । इति । कमिता । “आयादय आर्धधातुके वा” इति णिङ्भावे कम्धातोर्लुटो लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तादेशे तस्य स्थाने “लुटः प्रथमस्य डारौरसः” इति डात्वे, तासि, “ङित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपः” इति तास आसइत्यस्य लोपे, तास आर्धधातुकत्वे, “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इडागमे संयोगे च ‘कमिता’ इति रूपम् । कमिता, कमितारौ, कमितारः । कमितासे, कमितासाथे, कमिताध्वे । कमिताहे, कमितास्वहे, कमितास्महे । इति । कामयिष्यते । कम्धातोः “कमेर्णिङ्” इति णिङि, इङि गते, णगते च “अत उपधायाः” इति वृद्धौ ‘कामि’ इति जाते, तस्य “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वे “लुट् शेषे च” इति लुटि, लुटो लः स्थाने तादेशे, “स्यतासी लृलुटोः” इति स्ये, स्यस्य “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इडागमे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति कामित्यस्य गुणे “एचोऽयवायावः” इत्यादेशे ‘कामयि स्य त’ इति जाते “आदेशप्रत्यययोः” इति ष्वे “टित् आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे “कामयिष्यते” इति रूपम् ।

कमिष्यते । कामयताम् । अकामयत । कामयेत । कामयिषीष्ट ॥ विभाषेतः

अग्रे रूपाणि—कामयिष्येते, कामयिष्यन्ते । कामयिष्यसे, कामयिष्येथे, कामयिष्यध्वे । कामयिष्ये, कामयिष्यावहे, कामयिष्यामहे । कमिष्यते । “आयादय आर्धधातुके वा” इति णिङभावपक्षे कम्धातोर्लृटि, लृटो लः स्थाने तादेशे, स्ये, इटि, पत्वे, “दित् आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च रूपम् । कामयताम् । कम्धातोः “कमेर्णिङ्” इति णिङि, इङि गते णगते च “अत उपधायाः” इति वृद्धौ ‘कामि’ इति जाते तस्य “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वे “लोट् च” इति लोटि, ओटि गते, लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तादेशे, तस्य “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकत्वे “कर्तरि शप्” इति शपि, अनुबन्धलोपे अकारेऽवशिष्टे, तस्य शित्वात्सार्वधातुकत्वे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति कामेरिकारस्य गुणे, “एचोऽयवायावः” इति अयादेशे, ‘कामयत’ इति जाते “दित् आत्मनेपदानां टेरे” इति टिसंज्ञकस्य तकाराकारस्य एत्वे “आमेतः” इति एकारस्यामि, ‘कामयताम्’ इति । अग्रे रूपाणि तु—कामयेताम्, कामयन्ताम् । कामयस्व, कामयेथाम्, कामयध्वम् । कामये, कामयावहे, कामयामहे । इति । अकामयत । कम्धातोः “कमेर्णिङ्” इति णिङि, अनुबन्धलोपे “अत उपधायाः” इति कमेरुपधायाः वृद्धौ, ‘कामि’ इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः” इति कामेर्धातुत्वे “अनद्यतने लङ्” इति लङि, इङि गते, लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तादेशे “तिङ्शित् सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकत्वे “कर्तरि शप्” इति शपि, शपयोरित्संज्ञायां लोपे च कृते, शित्वात् शपोऽकारस्य सार्वधातुकत्वे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति कामेरिकारस्य गुणे “एचोऽयवायावः” इत्ययादेशे ‘कामयत’ इति जाते “लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वद्वात्तः” इत्यङ्गस्याडागमे ‘अकामयत’ इति रूपम् । अग्रे रूपाणि—अकामयेताम्, अकामयन्त । अकामयथाः, अकामयेथाम्, अकामयध्वम् । अकामये, अकामयावहि, अकामयामहि । इति । कामयेत । कम् धातोः “कमेर्णिङ्” इति णिङि, इङि गते णगते च, “अत उपधायाः” इति वृद्धौ ‘कामि’ इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वे “विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्” इति लिङि, इङि गते, लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तादेशे, तस्य “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकत्वे “कर्तरि शप्” इति शपि, अनुबन्धलोपे च, शित्वात्तस्यापि सार्वधातुकत्वे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति कामेरिकारस्य गुणे “एचोऽयवायावः” इत्ययादेशे ‘कामयत’ इति जाते “लिङः सीयुट्” इति सीयुटि, उटि गते टित्वादाद्यावयवे जाते “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इत्यनेन सलोपे “आद्गुणः” इति गुणे, “लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे ‘कामयेत’ इति । अग्रे रूपाणि त्वित्थम्—कामयेयाताम्, कामयेरन् । कामयेथाः, कामयेयाथाम्, कामयेध्वम् । कामयेय, कामयेवहि, कामयेमहि । कामयिषीष्ट । कम्धातोः “कमेर्णिङ्” इति नित्ये णिङि प्राप्ते, “आयादय आर्धधातुके वा” इति वा णिङि,

दा३।७६। इणः परो य इट् ततः परेषां षोऽध्वंलुङ्लिट्ठां धस्य वा ढः स्यात् । काम-  
यिषीढ्वम् । कामयिषीध्वम् । कमिषीष्ट । कमिषीध्वम् । णिश्चिद्रुस्रभ्यः कर्तरि  
चङ् ३।१।४८। एयन्ताच्छ्रयादिभ्यश्च च्लेश्वङ् स्यात् कर्त्रर्थे लुङि परे । कामि अ  
त इति स्थिते ॥ शेरनिटि ६।४।५१। अणिडादावार्धधातुके परे ऐर्लोपः स्यात् ॥  
शौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ७।४।१। चङि परे शौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः

अनुबन्धलोपे “अत उपधायाः” इति उपधायाः वृद्धौ, ‘कामि’ इति जाते “सनाद्यन्ता  
धातवः” इति कामेर्धातुत्वे, तस्मात् “आशिषि लिङ्लोटौ” इति लिङि, इङि गते, लः  
स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तादेशे “लिङाशिषि” इति तस्यार्धधातुकसंज्ञायां “लिङः  
सीयुट्” इति सीयुटि, उटि गते, टित्वादाद्यावयवे ‘कामि सीय त’ इति जाते, यदाग-  
मन्यायेन आगमस्य-सीयुटः सीयविशिष्टस्य आर्धधातुकत्वेन “आर्धधातुकस्येड्व-  
ल्लोपः” इति इडागमे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “एचोऽयवायावः”  
इत्यादेशे “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे “सुट्तिथोः” इति तकारस्य सुडागमे  
“लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे तकारस्य ण्डत्वे ‘काम-  
यिषीष्ट’ इति । कामयिषीयास्ताम्, कामयिषीरन् । कामयिषीष्ठाः, कामयि-  
षीयास्थाम् । विभाषेत इति । “इणः षीध्वं लुङ्लिट्ठां धोऽङ्गात्” इत्यतः ‘इणः  
षीध्वं लुङ्लिट्ठां धः’ इत्यनुवर्तते । “अपदान्तस्य मूर्धन्यः” इत्यतो मूर्धन्य इति ।  
तदाह—इणः परो य इडित्यादि । कामयिषीढ्वम् । कमधातोर्णिङि, इङि गते, धातु-  
संज्ञायाम् “आशिषि लिङ्लोटौ” इति लिङि, लिङो ध्वमि, सीयुटि उटि गते, इडा-  
गमे, ‘कामयिषीध्वम्’ इति भूते, सीयुटः सस्य षत्वे, “विभाषेतः” इति धस्य वा ढत्वे,  
‘कामयिषीढ्वम्’ इति रूपम् । ढत्वाभावे—‘कामयिषीध्वम्’ इति । कामयिषीय, कामयि-  
षीवहि, कामयिषीमहि । कमिषीष्ट । “आयादय आर्धधातुके वा” इति णिङभावे कम-  
धातोः “आशिषि लिङ्लोटौ” इति आशीर्वादरूपेऽर्थे लिङि, लिङो लः स्थाने प्रथम-  
पुरुषैकवचने तादेशे, तस्य “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकत्वे, “लिङः सीयुट्” इति  
लिङः स्थानिकतस्य सीयुटि, उटि गते, यदागमन्यायेन सीयुट आर्धधातुकत्वे, “आर्ध-  
धातुकस्येड्वल्लोपः” इति इडागमे, “सुट्तिथोः” इति तकारस्य सुडागमे “लोपो  
व्योर्वलि” इति यलोपे ‘कम् इ सी स त’ इति जाते ‘आदेशप्रत्यययोः’ इति उभयत्र  
सकारयोः षत्वे “ण्डुना ण्डुः” इति तस्य ण्डत्वे ‘कमिषीष्ट’ इति रूपम् । कमिषीयास्ताम्,  
कमिषीरन् । कमिषीष्ठाः, कमिषीयास्थाम्, कमिषीध्वम् । कमिषीय, कमिषीवहि, कमि-  
षीमहि । णिश्चिद्रुस्रभ्य इति । णिश्चिद्रुस्रभ्य इति । णिश्चिद्रुस्रभ्य इति । णिश्चिद्रुस्रभ्य इति ।  
तदन्तग्रहणम् । “च्लि लुङि” इत्यतो लुङीति, “च्लेः सिव्” इत्यतः च्लेरिति चानु-  
वर्तते । तदाह—एयन्तादित्यादिना । शेरनिटीति । “आर्धधातुके” इत्यधिकृतम् । “अतो  
लोपः” इत्यस्माद्धोप इत्यनुवर्तते । अनिटीत्यस्य आर्धधातुकविशेषणत्वात् तदादि-



स्यात् ॥ चङि ६।१।११ चङि परे अनभ्यासस्य धात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेद्वितीयस्य ॥ सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनगलोपे ७।४।१३ चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरः तस्य सजीव कार्यं स्याण्णावग्लोपेऽसति । सन्यतः ७।४।७६ अभ्यासस्यात इत् स्यात् सजि ॥ दीर्घो लघोः ७।४।१४ लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात् सन्वद्भाविष्ये । अचीकमत । णिङ्भावाच्चे ( कमेः लेशश्चङ्

विधिः । तदाह—प्रांनडाशावति । शौ चङीति । अङ्गाधिकारादाह—यदङ्गमिति । उपधायाः किम् ? अचकाङ्कत् । चङि किम् ? कारयति । चङीति । “एकाचो द्वे प्रथमस्य” “अजादेद्वितीयस्य” इति चाधिकृतम् । “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति सूत्रं लिटि इति वर्जमनुवर्तते । तदाह—चङि परे इत्यादिना । सन्वल्लघुर्निति । अनगलोप इति छेदः । चङ् परो यस्मात् इति विग्रहः । तेन णीत्यस्य लाभः । स च अङ्गस्येति द्वयमप्यावर्तते । तत्र णावित्यावृत्तौ एकं लघुनेत्यत्रान्वेति । तथाच चङ्परे णौ यल्लघु तस्मिन्परत इति लभ्यते । द्वितीयं तु अनगलोपे इत्यत्रान्वेति । तथाच णौ परतः यः अगलोपः, तस्याभावे सतीति लभ्यते । अङ्गस्येत्यावृत्तौ एकं चङ्परे इत्यत्रान्वेति । निमित्तनिमित्तभावे षष्ठी । तथाच अङ्गसंज्ञानिमित्तभूते चङ्परके वर्णं परे इति लभ्यते । चङ्परकश्च वर्णः अर्थात् णेरिकार एवेति भावः । सन्यत इति । सजि अत इति छेदः । “अत्र लोपोभ्यासस्य” इत्यनुवर्तते । “भृजामित्” इत्यस्मात् इदिति । तदाह—अभ्यासस्येति । दीर्घो लघोरिति । “अत्र लोपोऽभ्यासस्य” इत्यत अभ्यासस्येत्यनुवर्तते । तदाह—लघोरभ्यास येति । अभ्यासावयवस्य लघोरित्यर्थः । “सन्वल्लघुनि चङ्परे” इति सूत्रं सन्वच्छब्दवर्जमनुवर्तते । तच्च प्राग्वदेव द्वेधा व्याख्येयम् । तथाच फलितमाह—सन्वद्भावावधय इति । अचीकमत । कम्भातोः “कमेणिङ्” इति णिङि, इङि गते, णलोपे च “अत उपधायाः” इति उपधावृद्धौ ‘कामि’ इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वे, “लुङ्” इति लुङि, उङि गते, लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तादेशे “चि लुङि” इति च्लौ “णिश्चिदुसभ्यः कर्तरि चङ्” इति च्लेश्चङि चस्य डस्य चेत्संज्ञायां लोपे च कृते ‘काम् इ अ त’ इति जाते “णेरनिटि” इति णेलापे जाते ‘काम् अ त’ इति भूते “णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः” इति प्रत्ययलक्षणेन णेश्चङ्परत्वादुपधाया ह्रस्वत्वे ‘कम् अ त’ इति जाते “चङि” इति कम्पे द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इति अभ्याससंज्ञायां ‘हलादिः शेषः’ इति मलोपे “ककम् अ त” इति भूते “कुहोश्चु” इति कस्य चत्वे “सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनगलोपे” इति सन्वद्भावे कृते “सन्यतः” इत्यभ्यासाकारस्य इत्वे ‘चि कम् अ त’ इति जाते “दीर्घो लघोः” इत्यभ्यासेकारस्य ‘चि’ इत्यस्य दीर्घं कृते “लुङ्लङ्लृङ्च्च्वादात्” इत्यङ्गस्य अडागमे टित्वादाद्यावयवे जाते ‘अचीकमत’ इति रूपम् । एवमेवाग्रेऽपि साधनिका उह्या । रूपाणि त्वित्यम्—अचीकमत, अचीकमेताम्, अचीकमन्त । अचीकमथाः, अचीकमेथाम्, अचीकमध्वम् । अची-

वाच्यः ) अचकमत । अक्रामयिष्यत । अक्रमिष्यत । अय गतौ ॥ ३ ॥ अयते ॥  
उपसर्गस्यायतौ ८।२।१६। अयतिपरस्योपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लत्वं स्यात् ।  
प्लायते । पलायते ॥ दयायासश्च ३।१।३७। दय् अय् आस् एभ्य आम् स्याल्लिटि ।  
अयाञ्चक्र । अयिता । अयिष्यते । अयताम् । आयत । अयेत । अयिष्येष्ट । “विभा-

कमे, अचीकमावहि, अचीकमामहि । अचकमत । “आयादय आर्धधातुके वा” इति  
णिङभावे कम्धातोः “लुङ्” इति लुङि, लुङो लः स्थाने तादेशे “च्लि लुङि” इति  
च्लौ “कमेश्च्लेश्च लुक्त्वः” इति च्लेः स्थाने चडादेशे अनुबन्धलोपे “चङि” इति  
द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये “लुङ्लुङ्लुङ्चवडुदात्तः” इत्यङागमे ‘अचकमत’  
इति रूपम् । अचकमेताम्, अचकमन्त । अचकमथाः, अचकमेथाम्, अचकमध्वम् ।  
अचकमे, अचकमावहि, अचकमामहि । इति रूपाणि । अक्रामयिष्यत । कम्धातोः “आया-  
दय आर्धधातुके वा” इति वा णिङि, इङि गते णलोपे उपधावृद्धौ “सनाद्यन्ता धातवः”  
इति धातुत्वे “लिङ्निमित्ते लृङ्क्रियातिपत्तौ” इति लृङि, लृङो लः स्थाने प्रथमपुरुषैक-  
वचने तादेशे “स्यतासी लुलुटोः” इति स्ये स्यस्यार्धधातुत्वे इङागमे गुणे अयादेशे  
‘कामयि स्य त’ इति जाते अङ्गस्याङागमे षत्वे च ‘अक्रामयिष्यत’ इति रूपम् । णिङ-  
भावे-‘अक्रमिष्यत’ इति रूपम् । अयते । अयधातोर्लटः प्रथमपुरुषैकवचने ते “कर्तरि शप्”  
इति शपि, अनुबन्धलोपे “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे ‘अयते’ इति रूपम् ।  
उपसर्गस्यायताविति । अयताविति रितपा निर्देशः । “कृपो रो लः” इत्यत रो ल इत्यनु-  
वर्तते । तदाह—अयतिपरस्येत्यादिना । ग्रायते । प्रपूर्वकायधातोर्लटस्ते, शपि, टेरेत्वे च  
कृते “उपसर्गस्यायतौ” इति रेफस्य लत्वे कृते “प्लायते” इति रूपम् । एवमेव परापूर्व-  
कायधातोर्लटस्ते शपि, टेरेत्वे “उपसर्गस्यायतौ” इति रेफस्य लत्वे—‘प्लायते’ इति  
रूपम् । दयायासश्चेति । दय अय आस् एषां समाहारद्वन्द्वात्पञ्चम्येकवचनम् । “कास्प्र-  
त्ययादाममन्त्रे लिटि” इति सूत्रात् आम्, लिटि, इत्यनुवर्तते । तदाह—एभ्य आम्  
स्याल्लिटि । अयाञ्चक्रे । अयधातोः “परोच्चे लिट्” इति लिटि कृते “दयायासश्च” इत्यामि  
कृते ‘अय् आम् लिट्’ इति स्थिते “आमः” इति लिटो लुकि, “कृञानुप्रयुज्यते लिटि”  
इति लिट्परके कृञि प्रयुक्ते, लिटो लः स्थाने ते, तस्य स्थाने “लिटस्तप्तयोरेशिरेच्”  
इति एशि, शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते, “लिटि धातोर्नभ्यासस्य” इति द्वित्वे ‘आयाम्  
कृ कृ ए’ इति स्थिते “पूर्वाऽभ्यासः” इति अभ्यासत्वे “उरत्” इति अभ्यासकृवर्णस्या-  
कारे “उरण् रपरः” इति रपरे च जाते “हलादिः शेषः” इति कावशिष्टे “कुहोरचुः”  
इति कस्य चत्वे “इको यणचि” इति यणि, “मोऽनुस्वारः” इत्यनुस्वारे “वा पदान्तस्य”  
इति वा परसवर्णे कृते ‘अयाञ्चके’ इति रूपम् । अयाञ्चके, अयाञ्चक्राते, अयाञ्चकिरे ।  
अयाञ्चकृषे, अयाञ्चक्राथे, अयाञ्चकृढवे । अयाञ्चके, अयाञ्चकृवहे, अयाञ्चकृमहे । इति  
रूपाणि । अयिता । अयधातोर्लिटि, लुटो लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने ते समागते “स्य-

षेटः” । अयिषीध्वम्-अयिषीध्वम् । आयिष्ट । आयिध्वम् । आयिध्वम् । आयिष्यत । द्युतं दीप्तौ ॥ ४ ॥ द्योतते ॥ द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् ७३६६७

तासी लृटोः” इति तासि, तास आर्धधातुकत्वे, इडागमे च कृते, “लुटः प्रथमस्य डारौ-  
रसः” इति तस्य स्थाने डात्वे, ङस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते ङित्वसामर्थ्यादभस्यापि  
टेलोपि ‘अयिता’ इति रूपम् । अयिष्यते । अयधातोर्लृटि, लृटो लः स्थाने ते, स्ये स्यस्य  
इडागमे, षत्वे च जाते “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च ‘अयिष्यते’ इति  
रूपम् । अयताम् । अयधातोर्लोटस्तादेशे, शपि, “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे  
“आमेतः” इति एकारस्यामादेशे ‘अयताम्’ इति रूपम् । आयत । अयधातोर्लङ्स्ता-  
देशे शपि, अनुबन्धलोपे “आडजादीनाम्” इत्यङ्गस्याडागमे “आटश्च” इति वृद्धौ  
‘आयत’ इति रूपम् । अयेत् । अयधातोर्लङ्स्तादेशे शपि, शपयोरित्संज्ञायां लोपे च,  
“लिङः सीयुट्” इति सीयुटि, उटि गते, टित्वादाद्यावयवे “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य”  
इति सलोपे “सुट् तिथोः” इति सुडागमे, उटि गते टित्वादाद्यावयवे “लिङः सलोपोऽ-  
नन्त्यस्य” इत्यनेन अस्यापि सुटः सकारस्य लोपे “लोपो न्योर्वलि” इति यलोपे,  
“आद्गुणः” इति गुणे ‘अयेत’ इति रूपम् । अयिषीष्ट । अयधातोः “आशिषि लिङ्-  
लोटौ” इति लिङि, इङि गते, लः स्थाने तादेशे “लिङः सीयुट्” इति सीयुटि, उटि  
गते, टित्वादाद्यावयवे, “सुट् तिथोः” इति सुडागमे, उटि गते, टित्वादाद्यावयवे “लिङा-  
शिषि” इति तस्यार्धधातुकत्वे यदागमन्यायेन सीयुटोऽप्यार्धधातुकत्वात् “आर्धधातुक-  
स्येड्वलादैः” इति इडागमे सीयुटः सस्य षत्वे, “लोपो न्योर्वलि” इति यलोपे, सुटः  
सस्यापि “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे “ष्टुनाष्टुः” इति तकारस्य ष्ट्वे ‘अयिषीष्ट’ इति  
रूपम् । अयिषीष्ट, अयिषीयास्ताम्, अयिषीरन् । अयिषीष्ठाः, अयिषीयास्थाम् । अयि-  
षीध्वम् । अयधातोः आशीर्लिङो ध्वमः सीयुट्, यलोपः, आर्धधातुकत्वान्न सलोपः ।  
इट् । यकारिणः परो य इट् ततः परत्वात् धस्य मूर्धन्यो ङः । इटः परभक्तत्वाद्यकारा-  
न्तादङ्गात् परस्य इषीध्वमः इष्णन्तादङ्गात्परत्वाच्चित्ये प्राप्ते विकल्पोऽयमिति भावः ।  
अयिषीध्वम् । “विभाषेटः” इति ङत्वाभावे एतत् । अयिषीय, अयिषीवहि, अयिषीमहि ।  
इति रूपाणि । आयिष्ट । अयधातोर्लङ्स्तादेशे च्लौ, च्लेः सिजादेशे इचि गते, सिचः  
आर्धधातुकत्वादिडागमे षत्वे ष्ट्वे “लुङ्लङ्लृङ्च्वहुदातः” इत्यङ्गस्याडागमे “आटश्च”  
इति वृद्धौ ‘आयिष्ट’ इति रूपम् । आयिषाताम्, आयिषत । आयिष्ठाः, आयिषाथाम् ।  
आयिध्वम् । आयिध्वम् । लुङो ध्वमि, च्लेः सिचि, आटि, वृद्धौ, सिच इटि “धि च”  
इति सलोपः । ध्वमः इवर्णादङ्गात्परत्वात् “इणः षीध्वं लुङ्लिट् धोऽङ्गात्” इति नित्ये  
मूर्धन्यादेशे प्राप्ते “विभाषेटः” इति विकल्पेन मूर्धन्यादेशे ‘आयिध्वम्’ इति रूपम् ।  
तदभावे ‘आयिध्वम्’ इति । अग्रे-आयिषि, आयिष्वहि, आयिष्महि, इति । आयिष्यत ।  
अयधातोर्लङ्स्ते स्ये इटि, आटि, वृद्धौ सस्य षत्वे च कृते ‘आयिष्यत’ इति । द्योतते ।

अनयोरभ्यासस्य सम्प्रसारणम् स्यात् । दिद्युते ॥ द्युद्भयो लुङि १।३।६१। द्युता-  
दिभ्यो लुङः परस्मैपदं वा स्यात् । “पुषादि” इत्यङ् । अद्युतत् । अद्योतिष्ट । अद्यो-

द्युत्धातोः “वर्तमाने लट्” इति लटि, अटि गते, लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने ते तस्य  
“तिङ् शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकत्वे “कर्तरि शप्” इति शपि, शपयोरित्संज्ञायां  
लोपे च, शित्वात् शपोऽकारस्यापि सार्वधातुकत्वे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति द्युत  
उकारस्य गुणे ‘द्योतत’ इति जाते “टित आत्मनेपदानां ढरे” इति ढरेत्वे च कृते ‘द्योतते’  
इति रूपम् । द्योतेते, द्योतन्ते । द्योतसे, द्योतेथे, द्योतध्वे । द्योते, द्योतावहे, द्योतामहे ।  
द्युतिस्वाप्योरिति । “अत्र लोपोऽभ्यासस्य” इत्यतोऽभ्यासस्येत्यनुवर्तते । तदाह—अभ्या-  
सस्येति । दिद्युते । द्युत्धातोः “परोक्षे लिट्” इति लिटि, इटि गते, लः स्थाने प्रथमपुरुषै-  
कवचने तादेशे “लिट् च” इत्यार्धधातुकत्वे “लिट्स्तद्वयोरेशिरेच” इति तस्य स्थाने  
एशि कृते शस्येत्संज्ञायां लोपे च “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे ‘द्यत्, द्यत्  
ए’ इति स्थिते “पूर्वोऽभ्यासः” इति अभ्यासत्वे “द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्” इति  
अभ्यासयकारस्य इकाररूपे सम्प्रसारणे जाते “सम्प्रसारणाच्च” इति द्युत उकारस्य  
पूर्वरूपे ‘दिद्युत् ए’ इति जाते “हलादिः शेषः” इति तलोपे मिलित्वा ‘दिद्युते’ इति  
रूपम् । दिद्युते, दिद्युताते, दिद्युतिरे, दिद्युतिषे, दिद्युताथे, दिद्युतिध्वे । दिद्युते, दिद्युति-  
वहे, दिद्युतिमहे, इति रूपाणि । लुटि—द्योतिता । लुटि—द्योतिष्यते । लोटि—द्योतताम् ।  
लुङि—अद्योतत । विधिलिङि—द्योतेत । आशीर्लिङि—द्योतिषीष्ट । द्युद्भयो लुङीति । बहुव-  
चनात् द्युतादिभ्य इति गम्यते । दिग्योगे पञ्चमी । “तस्मादित्युत्तरस्य” इति परिभा-  
षया परस्येति लभ्यते । “शेषात्कर्तरि” इत्यतः परस्मैपदमित्यनुवर्तते तदाह—द्युतादि-  
भ्य इति । अद्युतत् । द्युत् धातोर्लुङि, उङि गते, लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचनविवक्षायां  
“द्युद्भयो लुङि” इत्यनेन परस्मैपदसंज्ञकतिपि, ‘द्यत् ति’ इति स्थिते “च्लि लुङि” इति  
च्लौ, च्लेः स्थाने “च्लेः सिच्” इति सिचि प्राप्ते तन्वाधित्वा “पुषादिद्युताद्यलुटितः पर-  
स्मैपदेषु” इति अडादेशे ङस्येत्संज्ञायां लोपे चङित्वाद्गुणाभावे “लुङ्लङ्लृङ्स्वङुदात्तः”  
इत्यङ्गस्याङागमे “इतश्च” इति तिप इकारस्य लोपे ‘अद्युतत्’ इति रूपम् । अद्युतत्,  
अद्यतताम्, अद्युतन् । अद्युतः, अद्यततम्, अद्युतत । अद्युतम्, अद्युताव, अद्युताम् । इति  
रूपाणि । अद्योतिष्ट । द्युत्धातोर्लुङि, लुङो लः स्थाने “द्युद्भयो लुङि” इति विकल्पेन पर-  
स्मैपदत्वाद्वा तदभावे आत्मनेपदे तादेशे, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते, सिचः सस्या-  
र्धधातुकत्वे इङागमे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति द्युत उकारस्य गुणे षत्वे ण्त्वे, अ-  
ङागमे ‘अद्योतिष्ट’ इति रूपम् । अद्योतिष्ट, अद्योतिषताम्, अद्योतिषत । अद्योतिष्ठाः ।  
अद्योतिषायाम्, अद्योतिष्वम् । अद्योतिषि, अद्योतिष्वहि, अद्योतिष्महि । इति रूपाणि ।  
अद्योतिष्यत । द्युत्धातोर्लुङस्ते समागते, “स्यतासी लृलुटोः” इति स्ये “आर्धधातुकं  
शेषः” इत्यार्धधातुकत्वे इङागमे “लुङ्लङ्लृङ्स्वङुदात्तः” इत्यङागमे “पुगन्तलघूप-

तिष्यत । एवं श्विता वर्णे ॥ ५ ॥ जिमिदा स्नेहने ॥ ६ ॥ जिष्विदा स्नेहन-  
मोचनयोः ॥ ७ ॥ मोहनयोरित्येके । जिच्चिदाचेत्येके । रुच दीप्तावभिप्रीतौ च ॥ ८ ॥  
घुट परिवर्तने ॥ ९ ॥ शुभ दीप्तौ ॥ १० ॥ लुभ सञ्चलने ॥ ११ ॥ णभ, तुभ  
हिंसायाम् ॥ १२ ॥ संसु भंसु ध्वंसु अवस्रसने ॥ १६ ॥ ध्वंसु गतौ ॥ १७ ॥  
स्रम्भु विश्वाने ॥ १८ ॥ वृत्तु वर्तने ॥ १९ ॥ वर्तते । वष्टते । वर्तिता । वृद्धयः

घस्य च" इति गुणे सस्य षत्वे च कृते 'अद्योतिष्यत' इति रूपम् । श्विता वर्णे इति ।  
श्वेतवर्णकरणे श्वेतीभवने वेत्यर्थः । लटि-श्वेतति । लिटि-श्विते । लुटि-श्वेतिता ।  
लुटि-श्वेतिष्यते । लोटि-श्वेतताम् । लङि-अश्वेतत । लिङि-श्वेतेत । आशीर्लिङि-  
श्वेतिषीष्ट । लुङि-अश्वितत्, अश्वेतिष्ट । लृङि-अश्वेतिष्यत । जिमिदा स्नेहने । रूपाणि-  
मेदते । मिमिदे । मेदिता । मेदिष्यते । मेदताम् । अमेदत । मेदेत । मेदिषीष्ट । अमि-  
दत्, अमेदिष्ट । अमेदिष्यत । इति । जिष्विदा । अत्र "आदिजुटुडवः" इति ञेरित्संज्ञा  
ज्ञेया । आकारस्यापीत्संज्ञा । षकारस्य "धात्वादेः षः सः" इति सत्वमपि बोध्यम् ।  
लटि-स्वेदते । लिटि-सिष्विदे । लुङि-अस्विदत्, अस्वेदिष्ट । जिच्चिदा । अस्य-च्चेदते ।  
चिच्चिदे । लुङि-अच्चिदत्, अच्चेदिष्ट । इति । रुच दीप्तावभिप्रीतौ चेति । अभिप्रीतिः-  
प्रीतिविषयीभवनम् । दीप्तौ-रोचते सूर्यः इत्युदाहरणम् । प्रकाशते इत्यर्थः । अभि-  
प्रीतौ-हरये रोचते भक्तिः इत्युदाहरणम् । लटि-रोचते । लिटि-रुच्ये । लुङि-अरुचत्,  
अरोचिष्ट । इति । घुट परिवर्तने । घोटते । जुष्टे । लुङि-अघुटत्, अघोटिष्ट । शुभ दीप्तौ ।  
शोभते । शुशुभे । लुङि-अशुभत्, अशोभिष्ट । णभ । लटि-नभते । लिटि-नेभे,  
नेभाते, नेभिरे । लुङि-अनभत्, अनभिष्ट । तुभ । तोभते । तुतुभे । लुङि-अतुभत्,  
अतोभिष्ट । संसु । लटि-संसते । लिटि-ससंसे । लुङि-अस्रसत् । अत्र घुतादिस्वात्परस्मै-  
पदे अङि-नलोप इति भावः । पञ्चे-असंसिष्ट । ध्वंसु । लटि-ध्वंसते । लिटि-दध्वंसे ।  
लुङि-अध्वसत्, अध्वंसिष्ट । भ्रंसु । भ्रंसते । बभ्रंसे । लुङि-अभ्रसत्, अभ्रसिष्ट ।  
स्रम्भु । लटि-स्रम्भते, लिटि-सस्रम्भे । लुङि-अस्रभत्, अस्रग्भिष्ट । वर्तते । वृत् धातोः  
"वर्तमाने लट्" इति लटि, लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने ते कृते, तस्य "तिङ्शित्सार्व-  
धातुकम्" इति सार्वधातुकत्वे "कर्तरि शप्" इति शपि, शपयोरित्संज्ञायां लोपे च,  
शित्वात्तस्यापि सार्वधातुकत्वे, "पुगान्तलघूपधस्य च" इति वृत् ऋकारस्य गुणे अकारे  
जाते "उरण् रपरः" इति रपरे च जाते "टित आत्मनेपदानां णेरे" इति णेरेत्वे च  
कृते मिलित्वा 'वर्तते' इति रूपम् । अग्रे-वर्तते, वर्तन्ते । वर्तसे, वर्तथे, वर्तध्वे । वर्ते,  
वर्तावहे । वर्तामहे । इति रूपाणि । वष्टते । वृत् धातोर्लिटस्ते कृते "लिटि धातोर्न-  
भ्यासस्य" इति द्वित्वे 'वृत् वृत् त' इति जाते "पूर्वाऽभ्यासः" इत्यभ्यासत्वे "उरत्"  
इत्यभ्यासऋवर्णस्याकारे "उरण् रपरः" इति रपरे 'वर्त् वृत् ते' इति जाते "हलादिः  
शेषः" इति 'व' अवशिष्टे "लिटस्तश्चोरेशिरेच्" इति एशि शस्येत्संज्ञायां लोपे च

स्यसनोः १।३।६२। वृतादिभ्यः पञ्चभ्यो वा परस्मैपदं स्यात्स्ये सनि च ॥ न वृ-  
द्ध्यश्चतुर्भ्यः ७।२।५६। वृत्वृधुश्रुधुस्यन्दूभ्यः सकारादेराधधातुकस्येण स्यात्  
तद्वानयोरभावे । वत्स्यति, वर्तिष्यते । वर्तताम् । अवर्तत । वर्तत । वर्तिषीष्ट ।  
अवृत्तत् । अवर्तिष्ट । अवर्त्यस्त । अवर्तिष्यत ॥ दद दाने ॥ २० ॥ ददते ॥ न

मिलित्वा 'ववृते' इति रूपम् । वर्तिता । वृत्धातोर्लुट्स्ते कृते "स्यतासी लृलुटोः" इति  
तासि, तास आर्धधातुकत्वे "आर्धधातुकस्येड्वलादेः" इति इडागमे "लुटः प्रथमस्य  
डारौरसः" इति तस्थाने डत्वे डलोपे डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपे 'वृत् इ त् आ'  
इति जाते "पुगन्तलघूपधस्य च" इत्यङ्गस्य गुणे संयुक्ते च जाते 'वर्तिता' इति रूपम् ।  
वृद्ध्यः स्यसनोरिति । बहुवचनाद् वृतादिभ्य इति गम्यते । "शेषात्कर्तरि" इत्यतः पर-  
स्मैपदमित्यनुवर्तते, "वा क्यषः" इत्यतो वेति च । तदाह—वृतादिभ्य इति । न वृद्ध्य  
इति । "सेऽसिचि" इति सूत्रात् से इति, "आर्धधातुकस्येड्वलादेः" इत्यत आर्धधा-  
तुकस्येड् इति चानुवर्तते । तदाह—सकारादेराधधातुकस्येति । वत्स्यति । वृत्धातोर्लुटि,  
अनुबन्धलोपे 'वृत् ल्' इति स्थिते "वृद्ध्यः स्यसनोः" इति वा परस्मैपदे प्रथमपुरुषैक-  
वचने तिपि, पृगते "स्यतासी लृलुटोः" इति स्ये स्यस्याधधातुकत्वे "आर्धधातुकस्ये-  
ड्वलादेः" इति इडागमे प्राप्ते "न वृद्ध्यश्चतुर्भ्यः" इति तस्य निषेधे कृते "पुगन्तल-  
घूपधस्य च" इति लघूपधगुणे "उरणरपरः" इति रपरे 'वत्स्यति' इति रूपम् ।  
वत्स्यति, वत्स्यतः, वत्स्यन्ति । वत्स्यसि, वत्स्यथः, वत्स्यथ । वत्स्यामि, वत्स्यावः,  
वत्स्यामः । इति पञ्चे रूपाणि । वर्तिष्यते । वृत्धातोर्लुटि, "वृद्ध्यः स्यसनोः" इति  
विकल्पेन परस्मैपदविधानात्तदभावे इटि "पुगन्तलघूपधस्य च" इति गुणे "टित  
आत्मनेपदानां टेरे" इति टेरेत्वे, स्यस्य षत्वे च 'वर्तिष्यते' इति रूपम् । वर्तताम् ।  
वृत्धातोर्लोडि, ते, शपि, लघूपधगुणे, टेरेत्वे "आमेतः" इति एकारस्यामादेशे 'वर्तताम्'  
इति रूपम् । अवर्तत । वृत्धातोर्लोडि, लङ्स्ते शपि, "पुगन्तलघूपधस्य च" इति गुणे  
अकारे जाते "उरणरपरः" इति रपरे "लुङ्लङ्लुङ्चवहुदात्तः" इति अडागमे 'अवर्तत'  
इति रूपम् । वर्तत । वृत्धातोर्लोडि, इङि गते, लःस्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तादेशे  
कृते शपि "पुगन्तलघूपधस्य च" इति गुणे रपरे च जाते 'वर्त् अ त्' इति स्थिते  
"लिङः सीयुट्" इति सीयुटागमे उटि गते टित्वादाद्यावयवे "लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य"  
इति स्लोपे "आद्गुणः" इति गुणे "लोपो व्योर्वलि" इति यलोपे 'वर्तत' इति रूपम् ।  
वर्तिषीष्ट । वृत्धातोराशिषि लिङ्स्ते सीयुटि, उटि गते टित्वादाद्यावयवे आर्धधातुकत्वा-  
दिडागमे गुणे 'वर्त्सी त्' इति जाते "सुट्तिथोः" इति तकारस्य सुटागमे उटि गते  
तस्याद्यावयवे जाते उभयत्र सकारद्वयस्य षत्वे तकारस्य ण्डत्वे च कृते 'वर्तिषीष्ट' इति  
रूपम् । अवृत्तत् । वृत्धातोर्लोडि अनुबन्धलोपे लः स्थाने "वृद्ध्यो लुङि" इति वा  
परस्मैपदे तिपि अनुबन्धलोपे, च्लौ, "पुषादिद्द्युतादयल्दितः परस्मैपदेषु" इति

शसददवादिगुणानाम् ६।४।१२६। शसेर्ददेर्वकारादीनां गुणशब्देन विहितो योऽकारस्तस्य एत्वाभ्यासलोपौ न स्तः । दददे । दददाते । दददिरे । ददिता । ददिष्यते । ददताम् । अददत । ददेत । ददिषीष्ट । अददिष्ट । अददिष्यत । त्रपूष

च्लेरडि अङ्गस्याडागमे “इतश्च” इति तिप इकारलोपे ‘अवृतत्’ इति रूपम् । अवृतत्, अवृतताम्, अवृतन् । अवृतः, अवृततम्, अवृतत । अवृतम्, अवृताव, अवृताम्, इति रूपाणि । पच्चे ‘अवर्तिष्ट’ इति । अत्र लुङस्ते, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते सिचः सकार-स्येडागमे गुणे अडागमे सिचः सकारस्य षत्वे ष्टुत्वे च रूपम् । अवत्स्यत् । वृत्धातो-र्लुङि कृते “स्यतासी लृलुटोः” इति स्ये “बृद्धयः स्यसनोः” इति परस्मैपदत्वे लृङो लस्य तिपि च कृते ‘वृत् स्य ति’ इति जाते स्यस्यार्धधातुकत्वादिति प्राप्ते “न बृद्धयश्चतुर्भ्यः” इति तस्य इटो निषेधे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति लघूपधगुणे “इतश्च” इति तिप इकारलोपे अडागमे ‘अवत्स्यत्’ इति रूपम् । पच्चे लृङस्ते स्ये इटि गुणे षत्वे अटि च कृते ‘अवर्तिष्यत’ इति रूपम् । दद-दाने । दानञ्च-स्वस्वत्वनिवृत्ति-पूर्वकपरस्वत्वोत्पादनमिति यावत् । ददते । दद्धातोर्लुङस्ते शपि, “टित आत्मने-पदानां टेरे” इति टेरेत्वे च कृते ‘ददते’ इति रूपम् । न शसददेति । शस दद वादि गुण एषां इन्द्रः । अवयवषष्ठी । गुणशब्देन विहित एव गुणोऽत्र गुणशब्देन विवक्षितः । अन्यथा शसददिग्रहणवैयर्थ्यात् । “अत एकहल्मध्ये” इत्यतोऽत इति “ध्वसोरेदौ” इत्यस्मात् एदिति, अभ्यासलोप इति चानुवर्तते । तदाह—शसेरित्या-दिना । ददते । दद्धातोर्लुङस्तादेशस्य एशि, द्वित्वे अभ्यासकार्ये च जाते ‘ददद् ए’ इति भूते “अत एकहल्मध्ये नादेशादेशादेर्लिटि” इति एत्वेऽभ्यासलोपे, “न शसदद-वादिगुणानाम्” इति निषेधात् । ददिता । दद्धातोर्लुङस्तादेशस्य ङात्वे, तासि, इटि, द्वित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपे ‘ददिता’ इति रूपम् । ददिष्यते । दद्धातोर्लुङस्तादेशे स्ये इटि षत्वे टेरेत्वे च ‘ददिष्यते’ इति रूपम् । ददताम् । दद्धातोर्लुङस्तादेशे, शपि, टेरेत्वे “आमेतः” इति एकारस्यामादेशे ‘ददताम्’ इति रूपम् । अददत । दद्धातोर्लुङ-स्तादेशे शपि, अटि च ‘अददत’ इति रूपम् । ददेत । दद्धातोर्लुङस्तादेशे शपि, सीयुटि, उटि गते “लिङः सलोपोऽनन्यस्य” इति सलोपे “आद्गुणः” इति गुणे “लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे च कृते ‘ददेत’ इति रूपम् । ददिषीष्ट । दद्धातोराशिषो लिङस्तादेशे लिङ आर्धधातुकत्वात् शबभावे “लिङः सीयुट्” इति सीयुडागमे अनु-बन्धलोपे टित्वादाद्यावयवे यदागमास्तद्गुणीभूतस्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते” इति न्यायेन सीयुट् अप्यार्धधातुकत्वात् “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इडागमे “सुट् तिथोः” इति तकारस्य सुडागमे “आदेशप्रत्यययोः” इति सकारद्वयस्यापि षत्वे “ष्टुना ष्टुः” इति तकारस्य ष्टुत्वे च कृते ‘दिषीष्ट’ इति रूपम् । ददिषीष्ट, ददिषीयास्ताम्, ददि-षीरन् । ददिषीष्ठाः, ददिषीयास्थाम्, ददिषीष्वम् । ददिषीय, ददिषीवहि, ददिषीमहि ।

लज्जायाम् ॥ २१ ॥ त्रपते ॥ तृफलभजत्रपश्च ६।४।१२२। एषामत एन्वमभ्यास-  
लोपश्च स्यात् किति लिटि सेटि थलि च । त्रेपे । त्रपिता-त्रप्ता । त्रपिष्यते-त्रप्स्य-  
ते । त्रपताम् । अत्रपत । त्रपेत ॥ त्रपिषीष्ट-त्रप्सीष्ट । अत्रपिष्ट-अत्रप्त । अत्रपि-  
ष्यत-अत्रप्स्यत । इत्यात्मनेपदिनः ॥

इति रूपाणि । अददिष्ट । ददधातोर्लुङ्स्ते, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते सिचः सकारस्या-  
र्धधातुकत्वे इडागमे षत्वे ण्टुत्वे च जाते अडागमे 'अददिष्ट' इति रूपम् । अददिष्यत ।  
ददधातोर्लुङ्स्ते स्ये इटि षत्वे अडागमे च 'अददिष्यत' इति रूपम् । त्रपूषिति । ऊकारः  
षकारश्च इत् । त्रपते । त्रपधातोः "वर्तमाने लट्" इति लटि अटावितौ, तयोर्लोपे लः  
स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने ते तस्य "तिङ्शित्सार्वाधातुकम्" इति सार्वधातुकत्वे "कर्तरि  
शप्" इति शपि, शपयोरित्सञ्ज्ञायां लोपे च "टित आत्मनेपदानां टेरे" इति टेरेत्वे च  
कृते 'त्रपते'—इति रूपम् । तृफलभजत्रपश्चेति । 'अत एकहलमध्ये' इत्यत अत इति,  
लिट्तीति चानुवर्तते । "ध्वसोरेद्वावभ्यासलोपश्च" इत्यत एदिति अभ्यासलोपश्चेति च,  
"गमहन" इत्यस्मात् कितीति, "थलि च सेटि" इति सूत्रञ्चानुवर्तते । तदाह—  
एषामत इति । त्रेपे । त्रपधातोर्लिट्स्तादेशस्य स्थाने "लिट्स्तन्मयोरेशिरेच्" इति एशि,  
शङ्गते 'त्रप् ए' इति स्थिते "लिटि धातोर्नभ्यासस्य" इति द्वित्वे "पूर्वाभ्यासः" इत्य-  
भ्यासत्वे "तृफलभजत्रपश्च" इति त्रप अकारस्यैत्वे अभ्यासलोपे च कृते मिलित्वा 'त्रेपे,  
इति रूपम् । त्रेपे, त्रेपाते, त्रेपिरे । त्रेपिषे त्रेप्से, त्रेपाथे, त्रेपिष्वे त्रेप्ष्वे । त्रेपे, त्रेपिवहे,  
त्रेप्वहे, त्रेपिमहे त्रेप्महे । इति रूपाणि । त्रपिता । त्रपधातोर्लुङ्स्तादेशस्य स्थाने डात्वे  
तासि, डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपे 'त्रप् त् आ' इति जाते "स्वतिसूतिसूयतिधूञ्दितो  
वा" इति विकल्पेनेडागमे 'त्रपिता' इति रूपम् । इडागमाभावे 'त्रप्ता' इति । त्रपिष्यते ।  
त्रपधातोर्लुङ्स्तादेशे स्ये 'त्रप् स्य त' इति स्थिते "स्वरतिसूतिसूयतिधूञ्दितो वा"  
इति वा इडागमे टेरेत्वे षत्वे च 'त्रपिष्यते' इति रूपम् । इडागमाभावे 'त्रप्स्यत' इति ।  
त्रपताम् । त्रपधातोर्लुङ्स्तादेशे शपि, टेरेत्वे च कृते "आमेतः" इति एकारस्यामादेशे  
'त्रपताम्' इति रूपम् । अत्रपत । त्रपधातोर्लुङ्स्ते कृते शपि, अटि 'अत्रपत' इति  
रूपम् । त्रपेत । त्रपधातोर्लुङ्स्ते शपि, "लिङः सीयुट्" इति सीयुटि, उटि गते टित्वा-  
दाद्याव्यवे जाते "लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य" इति सलोपे "आद्गुणः" इति गुणे "लोपो  
व्योर्वलि" इति यलोपे 'त्रपेत' इति रूपम् । त्रपिषीष्ट । त्रपधातोराशिषि लिङ्स्तादेशे  
तस्यार्धधातुकत्वे सीयुटि, उटि गते "स्वरतिसूतिसूयतिधूञ्दितो वा" इति वा इटि  
"सुट्तिथोः" इति तकारस्य सुडागमे 'त्रप् इ सी स् त' इति जाते इड्निमित्तके  
सीयुटः सस्य षत्वे, सीयुट् इनिमित्तके सुटः सस्य षत्वे तकारस्य ण्टुत्वे च जाते 'त्रपि-  
षीष्ट' इति रूपम् । इडभावे—'त्रप्सीष्ट' इति । अत्रपिष्ट । त्रपधालोर्लुङ्स्ते च्लौ, च्लेः  
स्थाने सिचि, इचि गते, "स्वरतिसूति०" इति इडागमे अङ्गस्याडागमे षत्वे ण्टुत्वे च



## ( त्रयोभयपदिनः )

श्रिञ् सेवायाम् ॥ १ ॥ श्रयति, श्रयते । शिश्राय, शिश्रिये । श्रयिता ।

‘अत्रपिष्ट’ इति रूपम् । अत्रप्त । त्रपधातोर्लुङ्स्ते च्लौ च्लेः सिचि इचि गते इडभावे अङ्गस्याङागमे च कृते ‘अ त्रप् स्त’ इति जाते “झलो झलि” इति स्लोपे ‘अत्रप्त’ इति रूपम् । अत्रप्त, अत्रप्साताम्, अत्रप्सत । अत्रप्थाः, अत्रप्साथाम्, अत्रप्ध्वम् । अत्रप्सि, अत्रप्सवहि, अत्रप्समहि । इति रूपाणि । अत्रपिष्यत । त्रपधातोर्लुङ्स्ते स्ये “स्वरतिसूति०” इति वा इटि, अटि षत्वे च ‘अत्रपिष्यत’ इति रूपम् । इडभावे— ‘अत्रप्स्यत’ । इति । इत्यात्मनेपदिनः ।

श्रयति । श्रिञो जकारस्य “हलन्त्यम्” इतीत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे कृते श्रिधातोः “वर्तमाने लट्” इति लटि, अटि गते “स्वरितजितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले” इति कर्तृगामिक्रियाफलाभावे । “शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्” इति परस्मैपदत्वात् लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तिपि कृते तस्य सार्वधातुकत्वे “कर्तरि शप्” इति शपि, शपयोरित्संज्ञायां लोपे च शपोऽकारस्यापि शित्वात्सार्वधातुकत्वे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति श्रिञ् इकारस्य गुणे “एचोऽयवायावः” इत्ययादेशे संयुक्ते च जाते ‘श्रयति’ इति रूपम् । श्रयते । श्रिधातोर्लोटो लः स्थाने “स्वरितजितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले” इत्यात्मनेपदत्वात् प्रथमपुरुषैकवचने तादेशे शपि गुणे अयादेशे च कृते “टित् आत्मनेपदानां ढेर” इति ढेरेत्वे च कृते ‘श्रयते’ इति रूपम् । शिश्राय । श्रिधातोः “परोक्षे लिट्” इति लिटि, लिटो लः स्थाने कर्तृगामिक्रियाफलाभावे प्रथमपुरुषैकवचने तिपि, “परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणत्वमाः” इति तिपो णलि, णकारस्य लकारस्य चेत्संज्ञायां लोपे च “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे ‘श्रि श्रि अ’ इति जाते “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति ‘शि’ अवशिष्टे “श्रिञ्” इकारस्य “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “एचोऽयवायावः” इत्ययादेशे ‘शिश्रय् अ’ इति जाते “अत उपधायाः” इत्युपधाकारस्य षट्ठौ मिलित्वा ‘शिश्राय’ इति रूपम् । शिश्राय, शिश्रियतः, शिश्रियुः । शिश्रियिथ, शिश्रियथुः, शिश्रिय । शिश्राय, शिश्रय, शिश्रियिव, शिश्रियिम । इति रूपाणि । शिश्रिये । श्रिधातोर्लिटि, लिटो लः स्थाने “स्वरितजितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले” इति कर्तृगामिक्रियाफलत्वेन आत्मनेपदत्वेन प्रथमपुरुषैकवचने तादेशे तस्य स्थाने “लिटि-स्तञ्जयोरेशिरेच्” इति एशि, शगते “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे, अभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति ‘शि’ अवशिष्टे ‘शि श्रि ए’ इति जाते “असंयोगालिट् कित्” इति लिट् एकारस्य कित्वात् गुणाभावे “अचि श्नुधातुभ्रुवां खोरियङ्वडौ” इतीयङि कृते ‘शिश्रिये’ इति रूपम् । शिश्रिये, शिश्रियाते, शिश्रियिरे । शिश्रियिषे, शिश्रियाये, शिश्रियिष्वे । शिश्रिये, शिश्रियिवहे, शिश्रियिमहे । इति रूपाणि ।

श्रयिष्यति । श्रयिष्यते । श्रयतु । श्रयताम् । अश्रयत् । अश्रयत । श्रयेत् ।  
श्रयेत । श्रियात् । श्रयिषाष्ट । चङ् । अशिश्रियत् । अशिश्रियत । अश्रयिष्यत् ।

श्रयिता । श्रिधातोर्लुट्स्तिपो ङात्वे, तासि, इटि, गुणे अयादेशे ङित्वसामर्थ्यादभ-  
स्यापि टेलोपे 'श्रयिता' इति रूपम् । एवमेव लुटस्ते कृतेऽपि रूपम् । श्रयिष्यति ।  
श्रिधातोर्लुट्स्तिपि, स्ये इटि, गुणे अयादेशे षत्वे च 'श्रयिष्यति' इति रूपम् । श्रयिष्यते ।  
श्रिधातोर्लुटस्ते स्ये इटि गुणे अयादेशे षत्वे च कृते "टित आत्मनेपदानां ढेरे" इति  
ढेरेत्वे च कृते 'श्रयिष्यते' इति रूपम् । श्रयतु । श्रिधातोर्लुट्स्तिपि, शपि, गुणे अया-  
देशे "एङ्" इति तिप् इकारस्योत्वे 'श्रयतु' इति रूपम् । श्रयताम् । श्रिधातोर्लुटि,  
लोढो लः स्थाने "खरितजितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले" इति कर्त्रभिप्राये क्रियाफले  
आत्मनेपदसंज्ञके प्रथमपुरुषैकवचने तादेशे शपि, गुणे अयादेशे "टित आत्मनेपदानां  
ढेरे" इति ढेरेत्वे "आमेतः" इति एकारस्यामादेशे 'श्रयताम्' इति रूपम् । अश्रयत् ।  
श्रिधातोर्लुट्स्तिपि, शपि, गुणे अयादेशे अडागमे "इतश्च" इति तिप् इकारस्य लोपे  
च कृते 'अश्रयत्' इति रूपम् । अश्रयत । श्रिधातोर्लुटस्ते शपि गुणे अयादेशे अटि  
च कृते 'अश्रयत' इति रूपम् । श्रयेत् । श्रिधातोर्लुट्स्तिपि, शपि, गुणे अयादेशे च  
कृते 'श्रय ति' इति जाते तत्र "यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङित्त्व" इति यासुडागमे  
उटि गते टित्वादाद्यावयवे जाते "अतो येयः" इति यास इयादेशे "आद्गुणः" इति  
गुणे "लोपो व्योर्वलि" इति यलोपे "इतश्च" इति तिप् इकारलोपे 'श्रयेत्' इति रूपम् ।  
श्रयेत । अत्र "स्वरितजितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले" इति वा आत्मनेपदे तेन लिङो लः  
स्थाने तादेशे, शपि, गुणे अयादेशे सीयुटि, उटि गते "लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य"  
इति सलोपे "आद्गुणः" इति गुणे यलोपे च कृते 'श्रयेत' इति रूपम् । श्रियात् ।  
श्रिधातोराशिषि लिङ्स्तिपि, यासुटि, उटि गते टित्वादाद्यावयवे जाते "अकृत्सार्वधा-  
नुकयोर्दीर्घः" इति श्रिय इकारस्य दीर्घे 'श्रियास्ति' इति भूते "इतश्च" इति तिप्  
इकारस्य लोपे, "स्कोः संयोगाद्योरन्ते च" इति सलोपे च 'श्रियात्' इति रूपम् ।  
श्रयिषीष्ट । श्रिधातोराशिषि लिङि, लिङो लः स्थाने जित्वात् वा आत्मनेपदत्वेन तादेशे  
सीयुटि, उटि गते, टित्वादाद्यावयवे जाते "सुट्तिथोः" इति तस्य सुटि, सीयुड्विशिष्टस्य  
इटि, गुणे अयादेशे उभयत्र सस्य षत्वे, यलोपे, षट्त्वे च 'श्रयिषीष्ट' इति रूपम् । अशि-  
श्रियत् । श्रिधातोर्लुट्स्तिपि "च्लि लुङि" इति च्लौ "णिश्रिद्रुसुभ्यः कर्तरि चङ्" इति  
च्लेः स्थाने चङि, चकारस्य ङकारस्य चेतसञ्ज्ञायां लोपे च कृते, "चङि" इति द्वित्वे,  
अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये च कृते 'शिभि अति' इति जाते "इतश्च" इति तिप् इकारस्य  
लोपे, "लुङ्लङ्लुङ्चवहुदात्तः" इति अङ्गस्याडागमे "अचि रनुधातुभ्रुवां य्वोरियङ्-  
वडौ" इति इयङि 'अशिश्रियत्' इति रूपम् । अशिश्रियत्, अशिश्रियताम्, अशिश्रियन् ।  
अशिश्रियः, अशिश्रियतम्, अशिश्रियत । अशिश्रियम्, अशिश्रियाव, अशिश्रियाम् ।

अश्रयिष्यत ॥ भृञ् भरणे ॥ ५ ॥ भरति । भरते । बभार । बभ्रुतुः । बभ्रुः ।

इति रूपाणि । अशिश्रियत । श्रिधातोर्लुङ्स्ते, च्लौ “णिश्रिदुस्रभ्यः कर्तरि चङ्” इति च्लेश्रङि, द्वित्वे, अभ्यासकार्ये अडागमे, ‘अ शि श्रि अ त’ इति स्थिते “अचि श्नुधा-  
तुभ्रुवां य्वोरियङुवडौ” इति इयङि, ‘अशिश्रियत’ इति रूपम् । अशिश्रियेताम्, अशिश्रियन्त । अशिश्रियथाः, अशिश्रियेथाम्, अशिश्रियध्वम् । अशिश्रिये, अशिश्रि-  
यावहि, अशिश्रियामहि । अश्रयिष्यत् । लुङ्स्तिपि, स्ये, इटि, गुणे, अयादेशे षत्वे  
अटि, तिप् इकारलोपे च रूपम् । अश्रयिष्यत । एवं लुङ्स्ते स्ये इटि, गुणे,  
अयादेशे षत्वे अटि च रूपम् । भरति । क्तिवादुभयपदम् । तत्र कर्त्तृगामिक्रि-  
याफलाभावे भृधातोः “वर्तमाने लट्” इति लटि, लटोः लः स्थाने ‘तिससस्मि०’  
इत्यादिना प्रथमपुरुषैकवचने तिपि, शपि, “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे  
अकारे जाते “उरण् रपरः” इति रपरे ‘भरति’ इति रूपम् । कर्त्तृगामिक्रियाफले  
तु भृधातोर्लट्स्ते शपि गुणे रपरे “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च कृते,  
‘भरते’ इति रूपम् । बभार । भृधातोः “परोक्षे लिट्” इति लिटि, प्रथमपुरुषैक-  
वचने परस्मैपदसञ्ज्ञके “तिससस्मि०” इत्यादिना तिपि, तिपः स्थाने “परस्मैपदानां  
णलतुसुस्थलथुसणत्वमाः” इति णलि, णस्य लस्य चेत्सञ्ज्ञायां लोपे च “लिट् च”  
इत्यार्धधातुकत्वे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे  
“उरत्” इत्यभ्यासऋवर्णस्यात्वे “उरण् रपरः” इति रपरत्वे च कृते ‘भर् भृ अ’ इति  
जाते “हलादिः शेषः” इति भवविशिष्टे “अभ्यासे चर्च” इति अभ्यासभस्य बत्वे ‘बभृ  
अ’ इति स्थिते “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति ऋकारस्य गुणे अकारे जाते “उरण्  
रपरः” इति रपरे भूते “अत उपधायाः” इति वृद्धौ कृतायां ‘बभार’ इति रूपम् ।  
बभ्रुतुः । भृधातोर्लिट्स्तसि, तसोऽनुसि, द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये च कृते ‘बभृ  
अतुस्’ इति स्थिते “असंयोगाल्लिट् कित्” इति क्तिवाद्गुणाभावे “इको यणचि” इति  
यणि, रुत्वे विसर्गे च ‘बभ्रुतुः’ इति रूपम् । एवं ‘बभ्रुः’ इति । बभर्थः । भृधातोर्लिट्-  
सिपि, सिपस्थलि, द्वित्वे अभ्यासकार्ये च कृते ‘बभृ थ’ इति स्थिते “एकाच उपदेशोऽ-  
नुदात्तात्” इति इडभावे थलः पित्वाद् “असंयोगाल्लिट् कित्” क्तिवाभावे “लिट् च”  
इत्यार्धधातुकत्वात् “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे ‘बभर्थ’ इति रूपम् । न  
चात्र क्रादिनियमादिडागमस्य प्रवृत्तिरिति वाच्यम् । “अचस्तास्वत्” इति तन्निषेधात् ।  
भारद्वाजमतेऽपि ऋदन्तेषु थलि निषेधाच्चेति यावत् । बभ्रुथुः, बभ्र । बभार-बभर ।  
बभृत् । बभृभ । अत्र पूर्वोक्तरीत्या इडभावो बोध्यः, शेषं पूर्ववत् । बभ्रे । भृधातोर्क्तिवात्  
कर्त्तृगामिक्रियाफलत्वाच्च आत्मनेपदम् । तत्र भृधातोः लिटि, लिटो लः स्थाने तादेशे  
तस्य स्थाने “लिट्स्तझयोरेशिरेच्” इति एशि, शगते द्वित्वे अभ्यासकार्ये क्तिवाद्गुणा-  
भावे यणि च ‘बभ्रे’ इति रूपम् । बभ्राते, बभ्ररे । बभृषे । अत्र “एकाच उपदेशोऽनु-  
दात्तात्” इति इडभावः, क्तिवाद्गुणाभावश्च ज्ञेयः । बभ्राथे, बभृष्वे । बभ्रे, बभृवहे,

वमर्थ । वमृव । वमृम । वम्रे । वमृषे । मर्तासि । मर्तासे । मरिष्यति, मरिष्यते । मरतु, मरताम् । अमरत्, अमरत । अरेत्, अरेत ॥ रिङ् शयम्निङ्कु अ०१२८ यो यकि मादावार्धधातुके लिङि च ऋतोर्लिङ् आदेशः स्यात् । रीङिप्रकृते रिङ्विधानसामर्थ्यादीर्घो न । भ्रियात् ॥ उ०१२।१२। ऋवर्णात्परौ भ्रतादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तडि । मृषोष्ट । मृषीयास्ताम् ।

वमृमहे । इति । मर्तासि । मृधातोर्लुटो लः स्थाने मध्यमपुरुषैकवचने सिपि कृते पृगते तासि, गुणे, “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इष्निषेधे “तासस्त्योलोपः” इति सलोपे ‘मर्तासि’ इति रूपम् । मर्तासि । मृधातोर्लुटो लः स्थाने आत्मनेपदसंज्ञके मध्यमपुरुषैकवचने यासि, यासः स्थाने “यासः से” इति से कृते, तासि, “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इङ्भावे गुणे च कृते “तासस्त्योलोपः” इति सलोपे ‘मर्तासे’ इति रूपम् । मरिष्यति । मृधातोर्लुटस्तिपि, स्ये “ऋद्धनोः स्ये” इति इटि, गुणे सस्य पत्वे च रूपम् । मरिष्यते । लृटस्ते, स्ये “ऋद्धनोः स्ये” इति इटि, गुणे पत्वे च रूपम् । मरतु । लोटस्तिपि, क्षपि, गुणे रपरि “एरुः” इति तिप इकारस्योत्वे च कृते रूपम् । मरताम् । लोटस्ते क्षपि, गुणे रपरि ढेरेत्वे च कृते “आमेतः” इति एकारस्याभि च सति रूपम् । अमरत् । लङस्तिपि, क्षपि, गुणे अटि, तिप इकारलोपे च रूपम् । अमरत । लङस्ते क्षपि, गुणे, अटि च रूपम् । अरेत् । लिङस्तिपि, क्षपि, गुणे, यासुटि, उटि गते, यास इयादेशे “आद्गुणः” इति गुणे बलोपे तिप इकारलोपे च विहिते रूपम् । अरेत । लिङस्ते क्षपि, गुणे सीयुटि, उटि गते सूलोपे “आद्गुणः” इति गुणे बलोपे च रूपम् । रिङ् शय इति । शयक् लिङ् एषां इन्द्रात्सप्तमीबहुवचनम् । “अयङ्ग्यि कङिति” इत्यतो यीति सप्तम्यन्तमनुवृत्तं लिङ्गे विशेषणम् । तदादिविधिः । योऽनु यीति नात्वेति, असंभवात् । नापि यकि, अन्यभिचारात् । अत एव ‘अकृत्सार्वधातुकयो’रित्यनुवृत्तमपि लिङ् एव विशेषणम् । तदाह—ये यकीत्यादिना । ननु भ्रियादिति वक्ष्यमाणमुदाहरणमयुक्तम्, कृते रिङि “अकृत्सार्वधातुकयोः” इति दीर्घप्रसङ्गादित्यत आह—रीङि प्रकृते इति । कृते रिङि यदि दीर्घः स्यात्तर्हि रिङ्विधिर्वर्ज्यः स्यात्, “रीङ्गत्” इत्येव सिद्धेः । अतो रिङि कृते सति न दीर्घ इत्यर्थः । भ्रियात् । मृधातोराशीर्लिङस्तिपि, पृगते “लिङ्गक्षिपि” इति तिप आर्धधातुकत्वे “किदाक्षिपि” इति यासुटि, उटि गते टित्वादाचावयवे, यासुटः कित्वात् गुणभावे “रिङ्गक्षिपि” इति मकारोत्तरवर्तिन ऋकारस्य रिङि कृते ङस्येत्संज्ञायां लोपे च जाते तिप इकारस्य “इत्तश्च” इति लोपे “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति सूलोपे ‘भ्रियात्’ इति रूपम् । भ्रियात्, भ्रियास्ताम्, भ्रियासुः । भ्रियाः, भ्रियास्तम्, भ्रियास्त । भ्रियासम्, भ्रियास्व, भ्रियास्म । इति रूपाणि । उच्येति । लिङ्सिचावत्तन्नेपदेषु” इति सूत्रमनुवर्तते । “इको षल” इत्यतो षलिति अ । तदाह—ऋवर्णादिति । मृषोष्ट । मृधातोराशीर्लिङ्गस्ते

अमार्षात् ॥ ह्रस्वादङ्गात् ८२२५ सिचो लोपः स्यात् ऋलि । अमृत । अमृषा-  
ताम् । अमरिष्यत्, अमरिष्यत् ॥ ३ ॥ हरति, हरते । जहार,  
जहे । जहर्ह्य । जहिव । जहिम । जह्वे । हर्ता । हरिष्यति, हरिष्यते । हरतु, हर-

सीयुटि, उटि गते ष्लोपे “मुट्तिथोः” इति तस्य सुडागमे, उटि गते, ‘मृ मी सू त  
इति जाते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इटो निषेधे “उश्च” इति कित्वात् “सार्व-  
धातुकार्धधातुकयोः” इति प्राप्तगुणस्य “क्वञ्ति च” इति निषेधे, षत्वे पुनः षत्वे ष्टुत्वे  
च ‘मृषीष्ट’ इति रूपम् । मृषीयास्ताम् । मृषातोराक्षीर्लिङ आतामि, सीयुटि, उटि गते,  
मुटि, उटि गते “उश्च” इति कित्वादगुणाभावे षत्वे च रूपम् । मृषीरन् । मृषीष्टाः,  
मृषीयास्ताम्, मृषीष्वम् । मृषीय, मृषीवहि, मृषीमहि । इति रूपाणि । अमार्षात् ।  
मृषातोर्लुङ्स्तपि, च्लौ, “च्लेः सिचि” इति सिचि, इचि गते, अटि तिप् इकारलोपे  
‘अ मृ सू त्’ इति स्थिते “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति वृद्धौ, रपरत्वे षत्वे च  
‘अमार्षात्’ इति रूपम् । अमार्ष्टम्, अमार्षुः । अमार्षीः, अमार्ष्टम्, अमार्ष्ट । अमार्ष्टम्,  
अमार्ष्ट्व, अमार्ष्टम् । इति रूपाणि । ह्रस्वादङ्गादिति । ह्रस्वान्तादित्यर्थः । सिच इति  
साध्यम् । “झलो झलि” इत्यतो झलीति “संयोगान्तस्य लोपः” इत्यतो लोप इति  
चानुवर्तते इत्यभिप्रेत्य शेषपूरणेन सूत्रं व्याचष्टे—सिचो लोपो ऋलीति । अमृत । मृषा-  
तोर्लुङ्गस्ते, च्लौ च्लेः सिचि, इचि गते, अटि, “उश्च” इति सिचः कित्वादगुणाभावे  
“ह्रस्वादङ्गात्” इति सिचः सस्य लोपे ‘अमृत’ इति रूपम् । अमृषाताम् । लुङः स्थाने  
आतामि, हल्परकत्वाभावात् सिचः सकारस्य लोपाभावः, शेषं पूर्ववत् । अमृषत्,  
अमृषाः, अमृषाताम्, अमृष्वम् । अमृषि, अमृष्वहि, अमृषमहि । इति रूपाणि ।  
अमरिष्यत् । लुङ्स्तपि, स्ये, स्यस्यार्धधातुकत्वे “अद्धनोः स्ये” इति इटि, गुणे, रप-  
त्वे, अटि, षत्वे तिप् इकारलोपे च सति रूपम् । अमरिष्यत् । लुङ्स्ते शेषं पूर्ववत् ।  
हरति । मृषातोर्लुङ्गस्तपि, शपि, गुणे रपरत्वे च रूपम् । हरते । लट्स्ते, शपि, गुणे  
रपरत्वे “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च रूपम् । जहार । मृषातोर्लुङ्गस्तपि,  
मृषी णलादेशे, अनुबन्धलोपे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः”  
इत्यभ्यासत्वे “अरत्” इति अभ्यासश्चवर्णस्याङ्कारे “उरण् रपरः” इति रपरत्वे च कृते  
‘हृ इ अ’ इति स्थिते “हलादिः शेषः” इति रलोपे “कुहोरचुः” इति अभ्यासहस्य  
झत्वे “अभ्यासे चर्च” इति झस्य जत्वे ‘जह अ’ इति भूते “सार्वधातुकार्धधातुकयोः”  
इति गुणे रपरत्वे च “अत उपधायाः” इति वृद्धौ ‘जहार’ इति रूपम् । जहतुः, जहुः ।  
जहे । लिट्स्ते “लिट्स्तम्योरेशिरेच” इति तस्य एशि, झगते, द्वित्वे, पूर्ववत् अभ्या-  
सकर्म्ये ‘जह ए’ इति भूते कित्वादगुणाभावे “इको यणचि” इति यणि ‘जहे’ इति  
रूपम् । जहाते, जहिरे । जहर्ह्य । ‘जह अ’ इति पूर्वकप्रसाध्य “एकाच उपदेशेऽनुदा-  
त्तात्” इति इणनिषेधस्य ऋदिष्वेव लिटि नियमितत्वाद्दिह ऋलि इति प्राप्ते “अचस्ता-

ताम् । अहरत्, अहरत । हरेत्, हरेत । हियात्, हृषीष्ट । हृषीयास्ताम् । अहार्षीत्, अहरत । अहरिष्यत्, अहरिष्यत । घृञ् धारणे ॥४॥ धरति, धरते । लोभ्य प्रापणे ॥५॥ नयति, नयते । डुपचष् पाके ॥६॥ पचति, पचते । पपाच । पेचिष-

स्वत्” इति तन्निषेधः । ऋदन्तत्वेन भारद्वाजमतेऽपि इण् निषेध एव । एवञ्च इडभावे गुणे च तद्रूपम् । जहथुः, जह । जहर, जहार । सिद्धवत्कृत्याह—जहिव । जहिम । क्रादि-नियमादिट् । जहिषे । क्रादिनियमादिट् । जहाथे, जहिद्वे—जहिध्वे । जहे, जहिध्वे, जहिमहे । इता । हृधातोर्लुटस्तिपि, तिपो ङात्वे, तासि, “एकाच” इति इडभावे, गुणे, रपरत्वे ङित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेल्लेपे ‘इता’ इति रूपम् । हरिष्यति । “ऋद्धनोः स्ये” इति इट् । हरिष्यते । मृज इव सर्वत्र साधनिकोऽह । हियात् । हृधातोराशीर्लिङि, लिङ्-स्तिपि, यासुटि, उटि गते “रिङ्क्षयभिलङ्क्षु” इति हकारोत्तरवर्तिन ऋकारस्य रिङादेशे ङ्गते तिप इकारलोपे “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति सलोपे ‘हियात्’ इति रूपम् । हृषीष्ट । हृधातोराशीर्लिङि, लिङ्स्ते सीयुटि, उटि गते यलोपे तस्य सुटि, उटि गते “उश्च” इति क्त्वात् गुणभावे उभयत्र सस्य षत्वे षट्त्वे च रूपम् । आतामि—हृषीयास्ताम् । अहार्षीत् । परस्मैपदे “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति वृद्धौ रपरत्वम् । अहन । तङि कृते ‘अह स्त’ इति स्थिते “उश्च” इति क्त्वात् “क्विति च” इति गुणनिषेधे “इस्वादङ्गात्” इति सिचः सलोपे सति रूपम् । अहरिष्यत् । “ऋद्धनोः स्ये” इति इट् । धरति । हृधातोर्लुटस्तिपि, ऋपि, गुणे रपरत्वे च कृते रूपम् । धरते । हृधातोर्लुटस्ते ऋपि, गुणे रपरत्वे च कृते “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च विहिते ‘धरते’ इति रूपम् । लटि-दधार, दधे । लुटि—धर्ता, धर्तासि, धर्तासे । लटि—धरिष्यति, धरिष्यते । लोटि—धरतु, धरताम् । लङि—अधरत्, अधरत । विधि-लङि—धरेत्, धरेत । आशीर्लिङि—ध्रियात् । हृषीष्ट । लुङि—अघार्षीत्, अघृत । लङि—अघरिष्यत्, अघरिष्यत । साधनिका हृग्धातुवज्ज्ञेया । णीञ् प्रापण इति । णीञ्धातुरनिट्, णोपदेशः । नयति । णीञो ऋकारस्य “हलन्त्यम्” इतीत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे “भूवादङ्गो घातवः” इति घातुत्वे, तस्मात् लटि, “णो नः” इति णस्य नत्वे लटो लः स्थाने तिपि, ऋपि गुणे अयादेशे च ‘नयति’ इति रूपम् । नयते । घातोर्नत्वे तस्मात् लटः स्थाने से ऋपि, गुणे अयादेशे “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च कृते “नयते” इति रूपम् । लटि—निनाय, निन्यतुः, निन्युः । निनयिथ—निनेथ, निन्यथुः, निन्य । निनाय—निनय, निन्यिव, निन्यिम । आत्मनेपदे—निन्ये, निन्याते, इत्यादि । लुटि—नेता । नेतासि, नेतासे । लुटि—नेष्यति, नेष्यते । लोटि—नयतु, नयताम् । लङि—अनयत्, अनयत । लङि—नयेत्, नयेत । आशीर्लिङि—नीयात्, नेषीष्ट । लुङि—अनैषीत्, अनेष्ट । लुङि—अनेष्यत्, अनेष्यत । साधनिका नयत्ययमूला । डुपचष्

पपक्य । पेचे । पक्ता । भज सेवायाम् ॥ ७ ॥ भजति, भजते । बभाज, भेजे ।  
भक्ता । भक्ष्यात्, भक्ष्यते । अभ्रादीत्, अभक्त । अभक्षाताम् । यज देवपूजासङ्ग-

पाके इति । डुः, षकारः, चकारादकारश्च इत् । स्वरितत्वादुभयपदी । तदाह—पक्वति  
इति । पच्धातोर्लटस्तिपि शपि च, रूपम् । पचते । अत्र च लटस्ते शपि, टेरेत्वम् ।  
पेचिथ । पच्धातोर्लटसिपि, सिपोः थलि, अनुबन्धलोपे, “लिटि धातोरनभ्यासस्य”  
इति द्वित्वे, अभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति चलोपे ‘प पच् थ’ इति जाते “लिट्  
च्” इति थल आर्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इटि प्राप्ते “एकाच  
उपदेशेऽनुदात्तात्” इति तस्य निषेधे क्रादिनियमाश्रित्ये इट्त्वे प्राप्ते भारद्वाजनिय-  
मात् वा इटि कृते “थलि च सेटि” इति एत्वेऽभ्यासलोपे च ‘पेचिथ’ इति रूपम् ।  
इडागमाभावपक्षे सेट्थलाभावात् एत्वाभ्यासलोपाभावेन ‘प पच् थ’ इत्यत्र “चोः  
कुः” इति कुत्वे ‘पपक्य’ इति रूपम् । पेचे । पच्धातोर्लटस्ते, तस्य स्थाने “लिटस्त-  
भयोरेशिरेच्” इति एशि, श्गते “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽ-  
भ्यासः” इति अभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति चलोपे ‘पपच् ए’ इति भूते “अत  
एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि” इति पच अकारस्यैत्वे अभ्यासलोपे च जाते संयुक्ते कृते  
सति ‘पेचे’ इति रूपम् । पेचे, पेचाते, पेचिरे । पेचिषे, पेचाथे, पेचिष्वे । पेचे, पेचि-  
वहे, पेचिमहे । इति रूपाणि । पक्ता । पच्धातोर्लटस्तिपि, तासि “एकाच उपदेशेऽ-  
नुदात्तात्” इति इडभावे “चोः कुः” इति चस्य कत्वे तिपो ङात्वे द्वित्वसामर्थ्यादभ-  
स्यापि टेलोपे ‘पक्ता’ इति रूपम् । एवमात्मनेपदेऽपि । लृटि—पच्यति, पच्यते ।  
लोटि—पचतु, पचताम् । लङि—अपचत्, अपचत । लिङि—पचेत्, पचेत । आशी-  
लिङि—पच्यात्, पचीष्ट । लुङि—अपाचीत्, अपक्त । लङि—अपच्यत्, अपच्यत,  
इति । भजति । भजधातोर्लटस्तिपि शपि, च रूपम् । भजते । लटस्ते, शपि, “दित  
आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वम् । बभाज । भजधातोर्लटस्तिपि, तिपो णलि, अनु-  
बन्धलोपे द्वित्वे अभ्यासकार्ये “अत उपधायाः” इति वृद्धौ ‘बभाज’ इति रूपम् ।  
भेजतुः, भेजुः । भेजिथ, भेजथुः, भेज । बभाज—बभज, भेजिव, भेजिम । भेजे । भज-  
धातोर्लटस्ते, “लिटस्तभयोरेशिरेच्” इति तस्य स्थाने एशि, श्गते “लिटि धातोरन-  
भ्यासस्य” इति द्वित्वे अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये च ‘बभज ए’ इति स्थिते “तृफल-  
भजत्रपञ्च” इति भकारोत्तरवर्तिन अकारस्यैत्वे अभ्यासलोपे च ‘भेजे’ इति रूपम् ।  
भेजाते, भेजिरं । भेजिषे, भेजाथे, भेजिष्वे । भेजे, भेजिवहे, भेजिमहे । इति लिटो  
रूपाणि । भक्ता । भजधातोर्लटस्तिपि, तासि, “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इड-  
भावे “चोः कुः” इति कुत्वे तिपो ङात्वे, द्वित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपे, ‘भक्ता’ इति  
रूपम् । भक्ष्यति । भजधातोर्लटस्तिपि, स्ये, इडभावे कुत्वे पत्वे च रूपम् । भक्ष्यते ।  
भज टेरेत्वमिति विशेषः । शेषं पूर्ववत् । लोटि—भजतु, भजताम् । लङि—भमजत्,

तिकरणदानेषु ॥८॥ यजति, यजते ॥ लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ६।१।१७। वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्यात् लिटि । इयाज ॥ वचिस्वपियजादीनां किति ६।१।१५। वचिस्वप्योर्यजादीनां च सम्प्रसारणं स्यात् किति । ईजतुः ।

अभजत । लिङि—भजेत्, भजेत । आशीर्लिङि—भज्यात्, भज्नीष्ट । अभाक्षीत् । भज्धातोः “लुङ्” इति लुङि, लुङः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तिपि, पृगते “ञ्लि लुङि” इति च्लौ, “च्लेः सिचि” इति सिचि, इचि गते, सिचः सस्यार्धधातुकत्वे, इटि प्राप्ते “एकाच” इति तस्य निषेधे अटि, तिप इकारस्य “इतश्च” इति लोपे ‘अभज् सूत्’ इति जाते “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति तिपस्तकारस्य ईटि, “वदव्रजहलन्तस्याचः” इति वृद्धौ, जस्य कुत्वे चत्वे, सस्य षत्वे च ‘अभाक्षीत्’ इति । अभाक्तम्, अभाक्षुः । अभाक्षीः, अभाक्तम्, अभाक्त । अभाक्षम्, अभाक्ष्व, अभाक्षम् । इति । अभक्त । भज्धातोर्लुङस्ते, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते, अटि, ‘अभज् सूत्’ इति स्थिते “झलो झलि” इति स्रलोपे, कुत्वे चत्वे च ‘अभक्त’ इति रूपम् । अभक्षाताम् । भज्धातोर्लुङि, लुङ आतामि, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते, “चोः कुः” इति कुत्वेन जकारस्य गकारे “स्वरि च” इति गस्य कत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति सस्य षत्वे अङ्गस्याडागमे ‘अभक्षाताम्’ इति रूपम् । अभक्षत । अभक्थाः, अभक्षाथाम्, अभक्थ्वम् । अभक्षि, अभक्ष्वहि, अभक्षमहि । इति लुङो रूपाणि । यजति । यज्धातोर्लट्यस्तिपि, शपि, ‘यजति’ इति । यजते । यज्धातोर्लटस्ते, शपि “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च ‘यजते’ इति रूपम् । लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् । “व्यङ्गः सम्प्रसारणम्” इत्यतः सम्प्रसारणमित्यनुवर्तते । “वचिस्वपियजादीनाम्” इति सूत्रोपात्ताः, “ग्रहिज्यावयि” इति सूत्रोपात्ताश्च उभयशब्देन गृह्यन्ते । तदाह—वच्यादीनां ग्रह्यादीनान्वेति । इयाज । यज्धातोः “परोच्चे लिट्” इति लिटि, लिटो लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तिपि, “परमैपदानां णल्लुप्तुसुस्थल्युसणल्वमाः” इति तिपो णलि, णस्य लस्य चेत्संज्ञायां लोपे च ‘यज अ’ इति जाते “लिट् च” । इत्यार्धधातुकत्वेन शपोऽभावे, “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति ज्रलोपे ‘ययज् अ’ इति भूते “लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्” इति अभ्यासयकारस्य सम्प्रसारणेन इकारे जाते “साम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे “अत उपधायाः” इति उपधावृद्धौ मिलित्वा ‘इयाज’ इति रूपम् । वचिस्वपीति । वचिस्वपीति इका निदेशः । सौत्रः सम्प्रसारणाभावः । आदिशब्दो यजिनैव सम्बध्यते, न तु वचिस्वपिभ्याम्, तथासति हि वच्यादेः स्वप्यादेर्यजादेश्वेत्यर्थः स्यात् । तथा सति पृथक्स्वपिग्रहणं व्यर्थं स्यात्, अदादिगणे लुग्विकरणे ‘क्व परिमाणे’ इत्यारभ्य षष्ठस्य ‘जिष्णु शये’ इत्यस्य वच्यादिग्रहणेनैव सिद्धेः । तदाह—वचिस्वप्योर्यजादीनान्वेति । यजादिपदेन—“यजिर्वापिवहिर्नैव वसिदेभ्येभ्य इत्यपि ।



ईजुः । इयजिथ—इयष्ट । ईजे । यष्टा । “षढोः कः सि” । यक्ष्यति यक्ष्यते ।

इक्षतिः श्वयतिश्चैव यजाथाः स्फुरिमे नव” ॥ १ ॥ इति नव ग्राह्याः । ईजतुः । यज्-  
धातोः “परोच्चे लिट्” इति लिटि, लिटो लः स्थाने प्रथमपुरुषद्विवचने तसि, “परस्मै-  
पदानां णलतुसुस्थल्” इत्यादिना तसोऽनुसि, तस्य “लिट् च” इत्यार्धधातुकत्वे  
“असंयोगालिट् कित्” इति अनुसः कित्त्वे, “वचिस्वपियजादीनां किति” इति यजो  
यकारस्य सम्प्रसारणे इकारे जाते “सम्प्रसारणाच्च” इति पररूपे ‘इज् अनुस’ इति जाते  
“लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे “हलादिः शेषः”  
इति इजवशिष्टे ‘इ इज् अनुस’ इति भूते “अकः सवर्णे दीर्घः” इति सवर्णदीर्घे सस्य रुत्वे  
विसर्गत्वे च ‘ईजतुः’ इति रूपम् । ईजुः । यज्धातोर्लिटो लः स्थाने झौ, झेः स्थाने उसि,  
“असंयोगालिट् कित्” इति कित्त्वे “वचिस्वपियजादीनाम्” इति सम्प्रसारणे इकारे  
“सम्प्रसारणाच्च” इति पररूपे, द्वित्वे, अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये च कृते ‘इ इज् उस’ इति  
स्थिते सवर्णदीर्घे सस्य रुत्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च ‘ईजुः’ इति रूपम् । इयजिथ । यज्-  
धातोर्लिटः सिप्, “परस्मैपदानां णलतुसुस्थल्” इत्यादिना सिपः स्थाने थलि, “लिट्  
च” इत्यार्धधातुकत्वे सिपः पित्वात् “असंयोगालिट् कित्” इति कित्वाभावे प्रथमतः  
“लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे ‘यज् यज् थ’ इति जाते “लिट्यभ्यासस्योभये-  
षाम्” इति सम्प्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे ‘इयज् थ’ इति भूते “आर्ध-  
धातुकस्येड्वलादेः” इति इटि प्राप्ते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इटो निषेधे  
क्रादिनियमाश्रित्यमिति प्राप्ते, भारद्वाजनियमेन वा इडागमे ‘इयजिथ’ इति । इडागमा-  
भावे ‘इयज् थ’ इति स्थिते “ऽश्चभ्रस्जसृजमृजयज” इत्यादिना षत्वे यस्य “ष्टुना षुः”  
इति षत्वे च ‘इयष्ट’ इति । ईजथुः, ईज । इयाज—इयज, ईजिव, ईजिम । ईजे । यज्-  
धातोर्लिटस्ते, तस्यार्धधातुकत्वे “असंयोगालिट् कित्” इति कित्त्वे च “वचिस्वपिय-  
जादीनां किति” इति सम्प्रसारणे, “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे इज् त इति जाते  
द्वित्वे, अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये च कृते ‘इ इज् त’ इति भूते “अकः सवर्णे दीर्घः” इति  
दीर्घे “लिटस्तभ्योरेशिरेच्” इति तस्य स्थाने एशि श्गते संयोगे च कृते ‘ईजे’ इति ।  
ईजाते, ईजिरे । ईजिवे, ईजाथे, ईजिव्हे । ईजे, ईजिवहे, ईजिमहे । इति । यष्टा ।  
यज्धातोर्लट्स्तिपि, तिपो ङात्वे, तासि, तासः आर्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः”  
इति इटि प्राप्ते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इटो निषेधे “व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयज-  
राजभ्राजच्छशां षः” इति जस्य षत्वे तासस्तकारस्य “ष्टुना षुः” इति ष्टुत्वे, द्वित्वसाम-  
भ्यादभस्वापि टेलोपि ‘यष्टा’ इति रूपम् । यक्ष्यति । यज्धातोर्लट्स्तिपि, स्ये, स्यस्यार्ध-  
धातुकत्वे “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इडभावे “व्रश्चभ्रस्ज” इति जस्य षत्वे ‘यच्  
स्व ति’ इति जाते “षढोः कः सि” इति षस्य कत्वे कात्परकत्वात् “आदेशप्रत्यययोः”  
इति स्यस्यावयवसकारस्य षत्वे कृष्योगे च जाते ‘यक्ष्यति’ इति रूपम् । यक्ष्यते । यज्-  
धातोर्लटस्ते स्वे इडभावे “व्रश्चभ्रस्ज” इति जस्य षत्वे तस्य “षढोः कः सि” इति कत्वे

इज्यात् । यचीष्ट । अयाचीत्, अयष्ट । वह प्रापणे ॥ ९ ॥ वहति, वहते । उवाह ।  
ऊहतुः । ऊहुः । उवहिय ॥ ऋषस्तथोर्ध्वोऽधः ॥ १० ॥ ऋषः परयोस्तथोर्ध्वः स्यान्ननु

कात्परकत्वात् स्यस्यावयवसकारस्य षत्वे क्षयोगे चे जाते “टित आत्मनेपदानां  
टेरे” इति टेरेत्वे च ‘यच्यते’ इति रूपम् । लोटि-यजतु, यजताम् । लङि-अयजत्,  
अयजत । लिङि-यजेत्, यजेत । इज्यात् । यजधातोराक्षिपो लिङ्गस्तिपि, यासुटि,  
उटि गते टित्वादाद्यावयवे जाते “लिङाक्षिपि” इति यासुटः क्तिवात् “वचिस्वपि-  
यजादीनां किति” इति सम्प्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे तिप इकारलोपे  
“स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति स्लो ‘इज्यात्’ इति रूपम् । इज्यास्ताम्, इज्यासुः ।  
इज्याः, इज्यास्तम्, इज्यास्त । इज्यासम्, इज्यास्व, इज्यास्म । यचीष्ट । यजधातोरा-  
क्षिपो लिङ्गस्ते सीयुटि, उटि गते टित्वादाद्यावयवे जाते ‘सुट तिथोः’ इति तस्य  
सुडागमे उटिगते टित्वात्तस्याद्यावयवे जाते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति  
इडभावे “व्रश्चभ्रस्ज” इति जस्य षत्वे षस्य “षढोः कः सि” इति कत्वे क्षयोगे चे  
जाते सुटः सस्य षत्वे तस्य ष्ट्वे च ‘यचीष्ट’ इति रूपम् । यचीयास्ताम्, यचीरन् । यची-  
ष्टाः, यचीयास्थाम्, यचीध्वम् । यचीय, यचीवहि, यचीमहि । अयाक्षीत् । यजधातोर्लु-  
ङ्गस्तिपि, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते सिचः सस्यार्धधातुकत्वे “एकाच उपदेशेऽनुदा-  
त्तात्” इति इडभावे अटि तिपः इकारलोपे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति तिपस्तस्य ईडागमे  
‘अयज् स् ई त्’ इति जाते “व्रश्चभ्रस्जसृजमृज” इति जस्य षत्वे “षढोः कः सि”  
इति षस्य कत्वे कात्परकत्वात् सिचः सकारस्य “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे क्षयोगे  
चे जाते “वद्वज्रहलन्तस्याचः” इति वृद्धौ ‘अयाचीत्’ इति रूपम् । अयाष्टाम्,  
अयाष्टुः । अयाचीः, अयाष्टम्, अयाष्ट । अयाचम्, अयाच्व, अयाक्षम् । अयष्ट । यजधा-  
तोर्लुङ्गस्ते, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते, अटि, ‘अयज् स् त्’ इति भूते “शलो शलि”  
इति स्लोपे “व्रश्चभ्रस्ज” इति जस्य षत्वे तकारस्य ष्ट्वे च ‘अयष्ट’ इति रूपम् ।  
अयचाताम्, अयचत । अयष्टाः, अयचाथाम्, अयदवम् । अयचि, अयच्वहि, अयचम्-  
हि । लृङि-अयच्यत्, अयच्यत । वहति । वहधातोर्लट्स्तिपि, क्षपि, ‘वहति’ इति  
रूपम् । वहते । वहधातोर्लट्स्ते क्षपि, “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च ‘वहते’  
इति रूपम् । उवाह—वहधातोर्लट्स्तिपि, तिपो णलि, अनुबन्धलोपे, द्वित्वे, ‘वह् वह्  
अ’ इति भूते “पूर्वोऽभ्यासः” इति अभ्यासत्वे “लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्” इति अभ्या-  
सवकारस्य सम्प्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे “हलादिः शेषः” इति हलोपे  
‘उ वह् अ’ इति स्थिते “अत उपधायाः” इति उपधावृद्धौ ‘उवाह’ इति रूपम् ।  
ऊहतुः । वहधातोर्लट्स्तसि, तसोऽनुसि, “लि च” इत्यार्धधातुकत्वे “असंयोगादिङ्  
किम्” इति क्तिवात् “वचिस्वपियजादीनां किति” इति बहो वकारस्य सम्प्रसारणे,  
“सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे ‘उह् ऊहुस्’ इति स्थिते “लिटि धातोरनभ्यासस्य”

दधातेः । “ढो ढे लोपः” । सहिवहोरोदवर्णस्य ६।३।११२। अनयोदवर्णस्य  
ओत्स्याद्ढलोपे । उवोढ । ऊहे । वोढा । वक्षति । अवाक्षीत् । अवाढाम् । अवाढुः ।

इति द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्यं च जाते “अकः सवर्णं दीर्घः” इति दीर्घे सस्य स्त्वे  
रेफस्य विसर्गे च ‘ऊह्रुः’ इति रूपम् । एवम्—‘ऊहुः’ इत्यपि बोध्यम् । उवहिय ।  
वहधातोर्लिटः सिपि, सिपस्थलादेशे, “लिट् च” इत्यार्धधातुकत्वेन “आर्धधातुकस्येड्-  
बलादेः” इति इटि प्राप्ते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इटो निषेधे “कृस्मृष्टृ”  
इति क्रादिनिबन्धादिटि प्राप्ते “उपदेशेऽजत्वतः” इति थल इटो निषेधे “ऋतो भारद्वाज-  
स्य” इति नियमात् भारद्वाजमतेन इटि जाते ‘वह् इ थ’ इति भूते पिप्वात् किदभावेन  
प्रथमतो द्वित्वे अभ्यासत्वे “लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्” इति अभ्यासवकारस्य सम्प्रसारणे  
“सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे “हलादिः शेषः” इति ह्रलोपे ‘उवहिय’ इति रूपम् ।  
झषस्तथोरिति । झषः इति पञ्चमी । तश्च थ् चेति द्वन्द्वः । तकारादकार उच्चारणार्थः ।  
तकारथकारयोरिति लभ्यते । अघः इति षष्ठ्यन्तम् । घाधातुभिन्नस्येति लभ्यते ।  
उदाह—झषः परयोरिति । सहिवहोः । ढलोप इति । ‘ढलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः’ इत्यस्मात्  
ढलोपे इत्यनुवृत्तेरिति भावः । उवोढ । वहधातोर्लिटः सिपि, सिपस्थलि, “एकाच”  
इति इडभावे प्राप्ते क्रादिनिबन्धादिटि प्राप्ते “उपदेशेऽजत्वतः” इति इटो निषेधे थलः  
स्थानिवत्त्वेन पिप्वात् “असंयोगाल्लिट् कित्” इति किदभावे, अतः “वचिस्वपियजादी-  
नां किति” इति न सम्प्रसारणम्, किन्तु “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वो-  
ऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे “लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्” इति अभ्यासवकारस्य सम्प्रसारणे  
“सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे “हलादिः शेषः” इति ह्रलोपे ‘उ वह् थ’ इति जाते  
“हो ढः” इति हस्य ढत्वे “झषस्तथोर्धोऽघः” इति थकारस्य धकारे “ष्टुना ष्टुः” इति  
ष्टुत्वेन घस्य ढत्वे ‘उवढ्ह’ इति जाते “ढो ढे लोपः” इति पूर्वढस्य लोपे “ढलोपे  
पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इति पूर्वस्याणो दीर्घ प्राप्ते तम्बाधित्वा “सहिवहोरोदवर्णस्य” इति  
अकारस्य ओत्वे ‘उवोढ’ इति रूपम् । ऊह्रुः, ऊहुः । उवाह—उवह, ऊहिव, ऊहिम ।  
इति अवशिष्टरूपाणि । ऊहे । वहधातोर्लिटस्ते, “लिटस्तस्योरेशिरेच्” इति तस्य स्थाने  
एशि, शृगते ‘वह् ए’ इति स्थिते “असंयोगाल्लिट् कित्” इति लिटः कित्वात् “वचि-  
स्वपियजादीनां किति” इति सम्प्रसारणे, सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे ‘उह् ए’ इति  
भूते “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्यं सवर्णदीर्घं च  
‘ऊहे’ इति रूपम् । उहाते, ऊहिरे । ऊहिषे, उहाये, ऊहिध्वे । ऊहे, ऊहिवहे, ऊहिमहे ।  
इत्यवशिष्टरूपाणि । वोढा । वहधातोर्लिटस्तिपि, तिपो ढात्वे, तासि, तासः आर्धधातुक-  
त्वे, इटि प्राप्ते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इटो निषेधे “हो ढः” इति हस्य ढत्वे,  
“झषस्तथोर्धोऽघः” इति तासस्तकास्स धकारे “ष्टुना ष्टुः” इति ष्टुत्वेन घस्य ढत्वे  
“ढो ढे लोपः” इति पूर्वढलोपे “सहिवहोरोदवर्णस्य” इति वकारोत्तरवर्तिन अकारस्य

अवाक्षीः । अवोढम् । अवोढ । अवाक्षम् । अवाक्षम् । अवाक्ष् । अवोढ । अवक्षा-

ओकारे, द्वित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपि 'वोढा' इति रूपम् । वोढारौ, वोढारः । वोढासि, वोढास्थः, वोढास्थ । वोढास्मि, वोढास्वः, वोढास्मः । इत्यवशिष्टरूपाणि । आत्मनेपदे च—वोढा, वोढारौ, वोढारः । वोढासे, वोढासाये, वोढाध्वे । वोढाहे, वोढास्वहे, वोढास्महे । इति । वक्ष्यति । वह् धातोर्लुङ्तिपि, स्ये, इडभावे "हो ढः" इति हस्य ढत्वे, "षढोः कः सि" इति ढस्य कत्वे, कात्परकत्वात् स्यस्याव्ययस्य षत्वे, कष्योगे च 'वक्ष्यति' इति रूपम् । एवमात्मनेपदे—वक्ष्यते । लोटि—वहतु—वहताम् । लङि—अवहत, अवहत । लङि—वहेत्, वहेत । आशीलिङि—उह्यात्, उह्यास्ताम्, उह्यासुः । उह्याः, उह्यास्तम्, उह्यास्त । उह्यासम्, उह्यास्व, उह्यास्म । इति । आत्मनेपदे आशीलिङि—वक्षीष्ट, वक्षीयास्ताम्, वक्षीरन् । वक्षीष्टाः, वक्षीयास्थाम्, वक्षीध्वम् । वक्षीय, वक्षीबहि, वक्षीमहि । इति । अवाक्षीत् । वह् धातोर्लुङ्तिपि, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते, अटि, तिप इकारलोपे "अस्तिसिचोऽपृक्ते" इति तिपस्तकारस्य ईडागमे 'अ वह् स् ईत्' इति स्थिते "वद्वज्रजहलन्तस्याचः" इति वकाराकारस्य वृद्धौ "हो ढः" इति हस्य ढत्वे, "षढोः कः सि" इति ढस्य कत्वे कात्परकत्वात् "आदेशप्रत्यययोः" इति सिचः सस्य षत्वे कष्योगे च जाते संयोगे कृते 'अवाक्षीत्' इति रूपम् । अवोढाम् । वह् धातोर्लुङ्तिपि, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते, तसः स्थाने "तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः" इति तामि, अङ्गस्याडागमे वहोऽकारस्य "वद्वज्र" इति वृद्धौ, हस्य ढत्वे 'अवाढ् स् ताम्' इति स्थिते "झलो झलि" इति सलोपे तामस्तकारस्य "अषस्तथोर्धोऽधः" इति धत्वे ष्टुत्वे, ढलोपे "सहिबहोरोदवर्णस्य" इति वह् आकारस्य ओकारे 'अवोढाम्' इति रूपम् । अवाक्षुः । वह् धातोर्लुङ्तिपि, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते, "सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च" इति शेर्जुसि, जस्येत्संज्ञायां लोपे च "लुङलङ्लुङ्क्वडुदात्तः" इति अटि, 'अवह् स् उस्' इति स्थिते "हो ढः" इति हस्य ढत्वे "षढोः कः सि" इति ढस्य कत्वे "आदेशप्रत्यययोः" इति सस्य षत्वे कष्योगे च जाते "वद्वज्रजहलन्तस्याचः" इत्यचो वृद्धौ सस्य रुत्वे रस्य विसर्गत्वे, कृते च संयोगे 'अवाक्षुः' इति रूपम् । अवाक्षीः । वह् धातोर्लुङ्तिपि, मध्यमपुरुषैकवचने सिपि समागते, च्लौ, च्लेः सिचि, इचो लोपे, अटि, "इत्-श्च" इति सिपि इकारलोपे "अस्तिसिचोऽपृक्ते" इति सिपः सस्य ईटिकृते 'अवह् स् ईत्' इति स्थिते "हो ढः" इति हस्य ढत्वे "षढोः कः सि" इति ढस्य कत्वे, सस्य षत्वे कष्योगे च जाते "वद्वज्रजहलन्तस्याचः" इति अचो वृद्धौ सस्य रुत्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च कृते 'अवाक्षीः' इति रूपम् । अवोढम् । वह् धातोर्लुङ्तिपि, तसः स्थाने "तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः" इति तामि, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते, अटि, हस्य ढत्वे, "झलो झलि" इति सलोपे तमस्तस्य धत्वे ढत्वेन ढत्वे, पूर्वढस्य "ढो ढे लोपः" इति लोपे "सहिबहोरोदवर्णस्य" इति अवर्णस्य ओकारे 'अवोढम्' इति रूपम् । अवोढ । वह् धातोर्लुङ्तिपि, च्लौ, च्लेः सिचि, इचो लोपे, अटि, "हो ढः" इति हस्य ढत्वे "झलो झलि" इति

ताम् । अवक्षत । अवोढाः । अवक्षायाम् । अवोद्वम् । अवक्षि । अवक्ष्वहि । अव-  
क्ष्महि । अवक्ष्यत्, अवक्ष्यत । ( इत्युभयपदिनः ) इति भवादयः ॥

सुलोपे “क्षपस्तथोर्धोऽधः” इति तस्य घकारे “ष्टुना ष्टुः” इति धस्य ढत्वे “ढो ढे  
लोपः” इति पूर्वढस्य लोपे “सहिवहोरोदवर्णस्य” इति वकाराकारस्यौच्ये ‘अवोढ’ इति  
रूपम् । अवाक्षम् । वहधातोर्लुङ् उत्तमपुरुषैकवचने मिपि, “तस्थस्थमिपां तान्त-  
न्तामः” इति मिपः स्थाने अमि, च्लौ च्लेः सिचि, इचो लोपे अटि, ‘अवह् स् अम्’  
इति स्थिते “वदन्नजहलन्तस्याचः” इति वकाराकारस्य वृद्धौ “हो ङः” इति हस्य ढत्वे  
“षढोः कः सि” इति ढस्य कत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति सिचः सस्य षत्वे कष्योगे चे  
जाते ‘अवाक्षम्’ इति रूपम् । अवाक्ष्व । वहधातोर्लुङ् वसि, च्लौ, च्लेः सिचि, इचो  
लोपे अटि, “वदन्नजहलन्तस्याचः” इति वकाराकारस्य वृद्धौ ‘अवाह् स् वस्’ इति  
स्थिते “नित्यं क्षितः” इति वसः सकारस्य लोपे “हो ङः” इति हस्य ढत्वे “षढोः कः  
सि” इति ढस्य कत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति सिचः सकारस्य षत्वे कष्योगे चे सम्पञ्चे  
‘अवाक्ष्व’ इति रूपम् । एवं मसि—अवाक्ष्म । इति । अवोढ । वहधातोर्लुङ्स्ते च्लौ  
च्लेः सिचि, इचो लोपे अटि, ‘अवह् स् त’ इति स्थिते “हो ङः” इति हस्य ढत्वे “झलो  
झलि” इति सुलोपे, “क्षपस्तथोर्धोऽधः” इति तस्य घत्वे “ष्टुना ष्टुः” इति धस्य  
ष्टुत्वेन ढकारे “ढो ढे लोपः” इति पूर्वढस्य लोपे “सहिवहोरोदवर्णस्य” इति वकारा-  
कारस्य ओकारे ‘अवोढ’ इति रूपम् । अवक्षाताम् । वहधातोर्लुङ् आतामि, च्लौ, च्लेः  
सिचि, इचो लोपे, अटि, हस्य ढत्वे “षढोः कः सि” इति ढस्य कत्वे “आदेशप्रत्यययोः”  
इति सिचः सस्य षत्वे कष्योगे चे जाते, कृते च संयोगे ‘अवक्षाताम्’ इति रूपम् ।  
अवक्षत । वहधातोर्लुङ् स्थाने शे आदेशे “आत्मनेपदेष्वनतः” इति झस्य अतादेशे च्लौ,  
च्लेः सिचि, इचो लोपे, अटि हस्य ढत्वे, ढस्य “षढोः कः सि” इति कत्वे “आदेशप्रत्य-  
ययोः” इति सिचः सस्य षत्वे कष्योगे चे जाते ‘अवक्षत’ इति रूपम् । अवोढाः । वह-  
धातोर्लुङ् मध्यमपुरुषैकवचने थासि, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते, अटि, हस्य ढत्वे  
“झलो झलि” इति सुलोपे थासस्थकारस्य “क्षपस्तथोर्धोऽधः” इति घत्वे ष्टुत्वेन  
ढकारे “ढो ढे लोपः” इति ढलोपे “सहिवहोरोदवर्णस्य” इति वकाराकारस्य ओकारे,  
सस्य षत्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च ‘अवोढाः’ इति रूपम् । अवक्षायाम् । वहधातोर्लुङ्  
आयामि, च्लौ च्लेः सिचि, इचो लोपे, अटि, हस्य ढत्वे “षढोः कः सि” इति ढस्य  
कत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति सिचः सस्य षत्वे कष्योगे चे जाते ‘अवक्षायाम्’ इति  
रूपम् । अवोद्वम् । वहधातोर्लुङ् ध्वमि, च्लौ, च्लेः सिचि, इचो लोपे, अटि “हो ङः”  
इति हस्य ढत्वे “झलो झलि” इति सुलोपे ष्टुत्वे ढलोपे “सहिवहोरोदवर्णस्य” इति  
वकाराकारस्य ओकारे ‘अवोद्वम्’ इति रूपम् । अवक्षि । वहधातोर्लुङ् उत्तमपुरुषै-  
कवचने इटि, च्लौ, च्लेः सिचि, इचो लोपे, अटि, हस्य ढत्वे “षढोः कः सि” इति

## अथादादयः ।

अद् भक्षणे ॥१॥ अदिप्रभृतिभ्यः शपः २।४।१४। लुक् स्यात् । अत्ति । अत्तः ।  
अदन्ति । अत्तिः । अत्यः । अत्यः । अत्ति । अत्तिः । अत्तिः ॥ लिङ्गान्त्यतरस्याम्  
२।४।४०। अदो घस्त्व वा स्याल्लिटि । जघास । उपधालोपः ॥ शासिवसिघसीनां  
च ८।३।६०। इण्कुभ्यां सस्य षः स्यात् । घस्य चत्वंम् । चक्षतुः । जन्तुः । जघसिथ ।

तस्य क्त्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे कष्योगे षे ‘अवक्षि’ इति रूपम् । अवक्षहि,  
अवक्षमहि । वहधातोः वहिमहोः परयोः च्लौ, च्लेः सिचि, इचो लोपे, अटि, हस्य ढत्वे  
ढस्य क्त्वे, कात्परकत्वात् षत्वे च रूपे स्तः । अवक्ष्यत् । वहधातोर्लृङ्गस्तिपि “इतश्च”  
इति तिपि इकारस्य लोपे स्ये, इडभावे अटि, हस्य ढत्वे ढस्य क्त्वे, स्यस्य सकारस्य  
षत्वे, कष्योगे षे ‘अवक्ष्यत्’ इति रूपम् । अवक्ष्यत । वहधातोर्लृङ्गस्ते ‘स्ये’ इडभावे  
अटि, हस्य ढत्वे, ढस्य क्त्वे, कात्परकत्वात् “आदेशप्रत्यययोः” इति स्यस्यावयवसस्य  
षत्वे, कृते च संयोगे ‘अवक्ष्यत’ इति रूपम् । इति भ्वादयः ।

अथ लुङ्गिकरणान् धातून् निरूपयितुमुपक्रमते—अद् भक्षणे इति । अनिङ्यम् ।  
अदिप्रभृतिभ्य इति । “अद्यच्चित्रियार्थजितो लुक् च” इत्यतो लुगित्यनुवर्तते इत्यभिप्रेत्य  
शेषपूरणेन सूत्रं व्याचष्टे—लुक् स्यादिति । अदिप्रभृतिभ्यः परस्य शपो लुगिति फलि-  
तम् । अत्ति । अद् भक्षणे, अस्मात् धातोः “वर्तमाने लट्” इति लटि अटयोरि-  
त्संज्ञायां लोपे च, लः स्थाने “तिससृक्षि” इत्यादिना प्रथमपुरुषैकवचने तिपि, पृगते  
‘अद् ति’ इति जाते “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति तिपः सार्वधातुकत्वे “कर्तरि शप्”  
इति तिपि परे णपि जाते “अदिप्रभृतिभ्यः शपः” इति शपो लुकि, “खरि च” इति  
दस्य चत्वं, ‘अत्ति’ इति रूपम् । अत्तः । शपो लुकि, दस्य चत्वंम् । अदन्ति । शपो  
लुकि, “झोऽन्तः” इति झस्यान्तादेशः । एवं सर्वत्र । लिङ्गान्त्यतरस्याम् । “अदो जग्धिः”  
इत्यत अद् इति “लुङ्सनोर्घस्त्व” इत्यतो घस्त्व इति चानुवर्तते । तदाह—अद् इति ।  
आदेशे लृकार इत् । घसादेश अनिट् । जघास । अद् धातोः “परोक्षे लिट्” इति लिटि,  
लिटो लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तिपि, तिपो णलि, अनुबन्धलोपे “लिङ्गान्त्यतर-  
स्याम्” इति अदो घस्त्व आदेशे जाते लृकारस्येत्संज्ञायां लोपे च ‘घस् अ’ इति स्थिते  
“लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यास” इत्यभ्यासत्वे “ह्लादिः शेषः”  
इति सलोपे “कुहोरनुः” इति घस्य झत्वे “अभ्यासे चर्व” इति झस्य झत्वे “अत उप-  
धायाः” इति वकाराकारस्य वृद्धौ ‘जघास’ इति रूपम् । उपधालोप इति । “गमहन-  
जनखनघसाम्” इत्यनेनेति भावः । शासिवसीति । “सहेः साढः सः” इत्यतः स इति  
बहुबन्तमनुवर्तते । ‘इष्कोः’ इति “अपदान्तस्य मूर्धन्यः” इति चाधिभूतम् ।  
तदाह—इण्कुभ्यामिति । जक्षतुः । अद् धातोर्लिट्स्त्वसि, तसोऽनुसि, “लिङ्गान्त्यतरस्याम्”

जक्षथुः । जक्ष । जवास, जघस । जक्षिव । जक्षिम । आद । आदतुः । आदुः । इड-  
त्यतिव्ययतीनाम् ७।२।६६। अद् ऋ ऌ एभ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात् । आदिथ ।  
अता । अत्स्यति । अतु, अतात् । अताम् । अदन्तु । हुभलभ्यो हेविः ६।४।

इति अदो घस्लादेशे, लकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे  
अभ्यासत्वे, पूर्ववदभ्यासकार्ये च, ‘जघस् अतुस्’ इति स्थिते “असंयोगाल्लिट् कित्”  
इति अतुसः कित्वे “गमहनजनखनघसां लोपः क्ङिति” इति उपधाकारस्य लोपे  
‘जघस् अतुस्’ इति जाते “खरि च” इति घस्य चत्वेन ककारे “शासिवसिघसीनाञ्च”  
इति सस्य षत्वे क्पयोगे च जाते संयोगे च कृते अतुसः सस्य रुत्वे रस्य विसर्गत्वे  
च ‘जघतुः’ इति । जक्षुः । अद्घातोर्लिटो श्रौ “परस्मैपदानां णलतुसुस्थल्” इत्यादिना  
श्रेः स्थाने उसि, लिङ्न्यन्यतरस्याम्” इति अदो घस्लादेशे लुगते द्वित्वे अभ्यासत्वे  
अभ्यासकार्ये च कृते ‘जघस् उस्’ इति भूते “असंयोगाल्लिट् कित्” इति कित्वात्  
“गमहनजनखनघसां लोपः क्ङिति” इति उपधाकारस्य लोपे “खरि च” इति घस्य  
चत्वेन ककारे “शासिवसिघसीनाञ्च” इति सस्य षत्वे क्पयोगे च संयोगे कृते, उसः  
सकारस्य रुत्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च ‘जक्षुः’ इति रूपम् । जघसिथ । अत्र थल इडागमे  
थलः पित्वात् किदभावेन न उपधालोप इति भावः । जक्षथुः । अत्र पूर्ववत्साधनिका ।  
एवं सर्वत्र लिटि बोध्यम् । आद । घस्लादेशाभावपक्षे—अद्घातोर्लिट्स्तिपि, तिपो  
णलि, अनुबन्धलोपे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्या-  
सत्वे “हलादिः शेषः” इति ढलोपे “अत आदेः” इति अभ्यासाकारस्य दीर्घे आकारे  
जाते “अत उपधायाः” इति उपाधाया वृद्धौ “अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घे  
‘आद्’ इति रूपम् । अतुसि—आदतुः । उसि—आदुः । इडत्यति । पञ्चम्यर्थे षष्ठी ।  
“अचस्तास्वत्” इत्यतः थलीत्यनुवर्तते । “विभाषा सृजिहशोः” इति पूर्वसूत्राद्विभाषा  
ग्रहणमस्वरितत्वानुवर्तते । तदाह—अद् ऋइत्यादिना । आदिथ । अद्घातोर्लिटः  
सिपि, सिपस्थलि, लुगते “लिट् च” इत्यार्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति  
इडागमे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे “हलादिः  
शेषः” इति ढलोपे “अत आदेः” इत्यभ्यासाकारस्य दीर्घे “अकः सवर्णे दीर्घः” इति  
दीर्घे, कृते च संयोगे ‘आदिथ’ इति रूपम् । एवमेव सर्वत्र । आदथुः, आद । आद,  
आदिव, आदिम । इति शेषरूपाणि । अत्ता । अद्घातोर्लिट्स्तिपि, तिपो ङात्वे तासि,  
तासः “आर्धधातुकं शेषः इत्यार्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इटि प्राप्ते  
“एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इटो निषेधे “खरि च” इति दस्य चत्वे ङित्वसा-  
मर्थ्यादभस्यापि टेलोपि ‘अत्ता’ इति रूपम् । अत्स्यति । अद्घातोर्लिट्स्तिपि पृगते स्ये,  
इडभावे, “खरि च” इति दस्य चत्वे ‘अत्स्यति’ इति रूपम् । अतु । अद्घातोर्लिट्-  
स्तिपि, पृगते षष्ठी, “अदिप्रभृतिभ्यः षष्ठी” इति शपो लुकि, “खरि च” इति दस्य

१०१। होर्शलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात् । अद्धि, अत्तात् । अतम् । अत्त । अदानि ।  
अदाव । अदाम । अदः सर्वेषाम् ७।३।१००। अदः परस्यापृक्तसार्वधातुकस्य अद्  
स्यात्सर्वमतेन । आदत् । आत्ताम् । आदन् । आदः । आत्तम् । आत्त । आदम् ।  
आद्ध । आद्ग । अद्यात् । अद्याताम् । अद्युः । अद्यात् । अद्यास्ताम् । अद्यायुः । लुङ्-

चत्वं, “एरुः” इति तिप इकारस्योत्वे ‘अत्तु’ इति पम् । “तुङोस्तातडाशिष्यन्यतर-  
स्याम्” इति तोःस्थाने तातडि, ‘अत्तात्’ इति । अत्ताम् । अद्धातोर्लोटस्तसि, शपि, शपो  
लुकि तसः स्थाने “तस्यस्यमिपां तान्तन्तामः” इति तामि, चत्वं च रूपम् । अदन्तु ।  
अद्धातोर्लोटो झौ, शपि, शपो लुकि, शस्य स्थाने “झोऽन्तः” इत्यन्तादेशे  
“अदन्ति” इति जाते तत्र “एरुः” इति अन्तेरिकारस्योत्वे ‘अदन्तु’ इति रूपम् ।  
हुश्लभ्यो हेर्धिः । मूलन्तेभ्य इति । अङ्गविशेषणत्वात्तदन्तविधिरिति भावः । अनेकास्त्वात्  
सर्वादेशो बोध्यः । अद्धि । अद्धातोर्लोटः सिपि, पृगते, शपि, शपो लुकि, ‘अद् सि’  
इति स्थिते “हुश्लभ्यो हेर्धिः” इति हेः स्थाने धिजाते ‘अद्धि’ इति सम्पञ्चम् । तातडि  
अत्तात् । थसस्तमादेशे—अत्तम् । थस्य स्थाने ते—अत्त । अदानि । अद्धातोर्लोटो मिपि,  
पृगते शपि, शपो लुकि, “मेर्निः” इति मेःस्थाने निजाते उत्तमपुरुषसंज्ञकस्य नेः “आहु-  
त्तमस्य पिच्च” इति आडागमे टित्वादाद्यावयवे जाते ‘अदानि’ इति रूपम् । अदाव ।  
लोटो वसि, शपि, शपो लुकि, वस आडागमे, “नित्यं ङितः” इति वसः सकारस्य  
कोपः । एवं मसि—अदाम इति । अदः सर्वेषामिति । अदः इति पञ्चमी । “तस्मा-  
दित्युत्तरस्य” इति परिभाषया परस्येति लभ्यते । “गुणोऽपृक्तः” इत्यतोऽपृक्ते  
इति “तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके” इत्यतः सार्वधातुके इति चानुवर्तते । सप्तमीद्वयं  
च षष्ठ्या विपरिणम्यते । “अङ्गार्ग्यगालवयोः” इत्यतः अङ्गित्यनुवर्तते । गार्ग्यगालव-  
योरनुवृत्तिनिवृत्त्यर्थं सर्वेषामिति, तदाह—अदः परस्येत्यादिना । आदत् । अद्धातोर्लङ्-  
स्तिपि, शपि, “अदिप्रमृतिभ्यः शपः” इति शपो लुकि, “आडजादीनाम्” इति अङ्गस्य  
आडागमे टित्वादाद्यावयवे जाते ‘आ अद् ति’ इति स्थिते “आटश्च” इति वृद्धौ, “इत-  
श्च” इति तिप इकारलोपे “अपृक्त एकाल्प्रत्ययः” इति तिपस्तकारस्यापृक्तसञ्ज्ञायाम्  
“अदः सर्वेषाम्” इति अपृक्तसंज्ञकस्य तिपस्तकारस्य अडागमे टृगते टित्वादाद्यावयवे  
जाते ‘आदत्’ इति रूपम् । आत्ताम् । अपृक्तग्रहणान्नेहाडागम इति भावः । अद्यात् ।  
अद्धातोर्लङ्स्तिपि, शपि, शपो लुकि, “यासुट्परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च” इति यासुटि,  
उटि गते, टित्वादाद्यावयवे जाते “लङ्गः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे “इतश्च”  
इति तिप इकारलोपे ‘अद्यात्’ इति रूपम् । अद्याताम् । अत्र शपो लुकि, अतः परत्वा-  
भावात् “अतो येयः” इति नेति भावः । अद्युः । झौ, “झेर्जुस्” इति जुसि, “जुट्” इति  
जस्येत्संज्ञायां लोपे च “उत्स्यपदान्तात्” इति पररूपत्वे सस्य रूपे, विसर्गत्वे चोक्तं  
रूपम् । अद्याः, अद्यातम्, अद्यात् । अद्याम्, अद्याव, अद्याम् । इति अवशिष्टरूपाणि ।



सनोर्धस्त् २।४।३७ अदो घस्त् स्याल्लुङि सनि च । लृदित्वादङ् । अवसत् । आत्स्यत् । हन हिंसागत्योः ॥२॥ हन्ति ॥ अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ६।४।३७ अनुनासिकान्तानामेषां वनतेष्वलोपः स्याज्झलादौ किति ङिति च परे । यमिरमिन्नमिगमिहनिमन्यतयोऽनुदात्तोपदेशाः । तनु षण् क्षण् क्षिण् ऋण् तृण् घृण् वनु मनु तनोत्यादयः ॥ हतः । भ्रन्ति ।

अथात् । अद्घातोर्लृङ्ङिस्तिपि, तिपः “लिङाक्षिपि” इत्यार्धधातुकत्वात् शपोऽभावे यासुटि, उटि गते, टित्वादाद्यावयवे “इतश्च” इति तिप इकारलोपे ‘अद्यास्त्’ इति जाते “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति सलोपे ‘अद्यात्’ इति रूपम् । लुङ्सनोर्धस्त् । “अदो जविघः” इत्यत अद् इत्यनुवर्तते । तदाह—अद् इति । लृदित्वस्य प्रयोजनमाह—लृदित्वादङिति । अवसत् । अद्घातोः “लुङ्” इति लुङि, उङि गते, लः स्थानेप्रथमपुरुषैकवचनविवक्षायां “तिसृस्त्रि” इत्यादिना तिपि, पृगते “लुङ्सनोर्धस्त्” इति अदः स्थाने घस्त् इत्यादेशे कृते लृकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “च्छि लुङि” इति च्लौ “च्छेः सिच्” इति प्राप्ते तम्बाधित्वा “पुषादिष्पुतादलृदितः परस्मैपदेषु” इति च्लेः स्थाने अङि, ङ्गते अङ्गस्य अङागमे जाते, तिप इकारस्य “इतश्च” इति लोपे ‘अवसत्’ इति रूपम् । अवसत्ताम्, अवसन् । अवसः, अवसतम्, अवसत । अवसम्, अवसाव, अवसाम । इत्यवशिष्टरूपाणि । आत्स्यत् । अद्घातोर्लृङ्ङिस्तिपि, स्ये, इङभावे, आटि, “आटश्च इति वृद्धौ तिप इकारलोपे दस्य चत्वे च “आत्स्यत्” इति रूपम् । हन हिंसागत्योरिति । हनधातोरनिट् । हन्ति । हनृधातोः “वर्तमाने लट्” इति लटि, अटि गते लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचने तिपि पृगते, “तिङ्क्षित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकसंज्ञायां “कर्तरि शप्” इति शपि, “अदिप्रभृतिभ्यः शपः” इति शपो लुकि, मिलित्वा “हन्ति” इति रूपम् । अनुदात्तोपदेशेति । अनुनासिक इति लुसषष्ठीकं पदं वनतीतरेषां विशेषणम् । वनधातोस्तु अनुनासिकान्तत्वाच्च विशेषणम् । अव्यभिचाराद् । तदेवाह—अनुनासिकान्तानामेषामिति । अनुदात्तोपदेशान् अनुनासिकान्तान् दर्शयति—यमिरमिति । अनुदात्तोपदेशेषु एतेषामेव षण्णामनुनासिकान्तत्वादिति भावः । अथ तनोत्यादीननुनासिकान्तान् दर्शयति—वनुषण्क्षण्क्षिण्विति । एतेऽष्टौ तनोत्यादयोऽनुनासिकान्ता इत्यर्थः । हतः । हनृधातोर्लट्स्तसि, शपि, शपो लुकि, “तिङ्क्षित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकत्वे “सार्वधातुकमपित्” इति तस्य ङिङ्गत्वे “अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति” इति हनो नस्य लोपे तसः सकारस्य हत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च “हतः” इति रूपम् । भ्रन्ति । हनृधातोर्लट् लौ, शपि, शपो लुकि, “झोऽन्तः” इति झस्य अन्तादेशे “हनृ भन्ति” इति जाते “तिङ्क्षित्सार्वधातुकम्” इति अन्तेः सार्वधातुकत्वे “सार्वधातुकमपित्” इति अन्तेर्ङिङ्गत्वे “गमहनजनजनयसां लोपः किङ्-

हंसि । हयः । हय । हन्मि । हन्वः । हन्मः । जघान । जघ्नतुः । जघ्नः । अभ्या-  
साच्च ७।३।५। अभ्यासात्परम्य हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात् । जघनिय, जघन्य ।  
जघ्नयुः । जघ्न । जघान, जघन । जघ्निय । जघ्निय । हन्ता । हनिष्यति । हन्तु,

ति” इति हन उपधालोपे “हो हन्तेर्णिन्नेषु” इति हस्य कुत्वेन घकारे ‘घ्नन्ति’ इति  
रूपम् । हंसि । हन्धातोर्लोटस्सिपि पूगते ऋषि, शपो लुकि, “नश्चापदान्तस्य झलि”  
इति नस्यानुस्वारे ‘हंसि’ इति रूपम् हयः । यसः “सार्वधातुकमपिप्” इति छिद्वात्  
“अनुदात्तोपदेशवनति” इति नलोपे सस्य स्त्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च ‘हयः’ इति  
रूपम् । जघान । हन्धातोः “परोक्षे लिट्” इति लिटि, इटि गते प्रथमपुरुषैकवचने तिपि,  
“परस्मैपदानां णलुतसुस्थल्” इत्यादिना तिपो णलि, अनुबन्धलोपे “लिटि धातोरन-  
भ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति नलोपे ‘ह  
हन् अ’ इति जाते “कुहोरवुः” इति अभ्यासहकारस्य सुत्वेन झकारे “अभ्यासे चर्च”  
इति झस्य जकारे “अत उपधायाः” इति ष्टद्धौ “हो हन्तेर्णिन्नेषु” इति हनो हस्य  
कुत्वेन घत्वे ‘जघान’ इति रूपम् । जघ्नतुः । हन्धातोर्लिट्स्तसि, तसोऽनुसि, द्वित्वे,  
अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये च ‘ज हन् अनुस्’ इति जाते “असंयोगाल्लिट् कित्” इति  
अनुसः कित्वात् “गमहनजनखनघसाम्” इति हन उपधाकारस्य लोपे “हो हन्तेर्णि-  
न्नेषु” इति हनो हस्य कुत्वेन घकारे अनुसः सस्य स्त्वे रेफस्य विसर्गत्वे च ‘जघ्नतुः’  
इति रूपम् । अभ्यासाच्चेति । “हो हन्तेः” इत्यनुवर्तते । “चजोः कुषिण्यतोः” इत्यतः  
कुप्रहणञ्च । तदाह—अभ्यासात्परस्येत्यादिना । जघनिय । हन्धातोर्लिटः सिपि, सिपः  
स्थाने “परस्मैपदानां णलुतसुस्थल्” इत्यादिना थलि, लृगते “लिट् च” इत्यार्धधातुक-  
त्वे भारद्वाजनियमादिङ्विकल्पे, द्वित्वे, अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये च जाते ‘ज हन् इ  
य’ इति स्थिते णिन्त्यत्ययपरत्वाभावाच्चकारपरस्वाभावाच्च “हो हन्तेः” इति कुत्वाप्रा-  
प्तौ “अभ्यासाच्च” इति कुत्वे ‘जघनिय’ इति रूपम् । इडभावे पूर्ववत्प्रसाध्य ‘जघन्य’  
इति रूपम् । अथुसि “असंयोगाल्लिट् कित्” इति कित्वात् “गमहन०” इत्युपधालोपे  
‘जघ्नयुः’ इति । जघान । जघन । “णलुत्तमो वा” इति विकल्पेन णित्वात् उपधाष्टद्धौ  
‘जघान’ इति । णिडभावे—‘जघन’ इति । जघ्निय । तसो वादेशे द्वित्वे अभ्या-  
सकार्ये “असंयोगाल्लिट् कित्” इति कित्वात् क्रादिनियमादिटि, उपधालोपे ‘जघ्निय’  
इति रूपम् । एवं मासि—जघ्निय । इति । हन्ता । हन्धातोर्लुट्स्तसि, तासि, तिपो  
ढात्वे, ङगते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इडभावे द्वित्वसामर्थ्यादभस्यापि  
टेलोपि ‘हन्ता’ इति रूपम् । हनिष्यति । हन्धातोर्लुट्स्तसि, स्ते, “अङ्गोः  
स्ते” इति स्यस्य इटि ‘हनिष्यति’ इति रूपम् । हन्तु । हन्धातोर्लुट्स्तसि, ऋषि,  
“अदिप्रभृतिभ्यः ऋषः” इति ऋषो लुकि, “एरु” इति तिपि इकारस्योत्वे ‘हन्तु’ इति  
रूपम् । एतात् । तात्कि—“अनुदात्तोपदेश०” इति नलोपः । जघ्नतु । शौ “शोऽङ्गः”

हतात् । हताम् । म्रन्तु । हन्तेर्जः ६।४।३६। हौ परे । असिद्धवदत्रामात् ६।  
 ४।२२। इत् ऊर्ध्वमापादसमाप्तेर्गामीयम् । समानाश्रये तस्मिन्कर्तव्ये तदसिद्धं स्यात् ॥  
 इति जस्यासिद्धत्वाच्च हेर्लुक् । जहि, हतात् । हतम् । हत । हनानि । हनाव ।  
 हनाम । अहन् । अहताम् । अम्रन् । अहन् । अहतम् । अहत । अहनम् । अहन्व ।  
 अहन्म । हन्यात् ॥ आर्धधातुके २।४।३५। इत्यधिकृत्य । हनो वध लिङि  
 २।४।४२। लुङि च २।४।४३। वधादेशोऽदन्तः । आर्धधातुके इति विषयसप्तमी ।  
 तेनार्धधातुकोपदेशे अकारान्तत्वादतो लोपः । वध्यात् । वध्यास्ताम् । अवधीत् । अह-

इति अन्तादेशे “असंयोगाल्लिट् कित्” तस्य कित्वात् “गमहनजन०” इति उपधा-  
 कारस्य लोपे, कत्वे उत्वे च रूपम् । हन्तेर्ज इति । “शा हौ” इत्यतो हौ इत्यनुवृत्ति-  
 मभिप्रेत्य शेषपूरणेन सूत्रं न्याचष्टे—हौ परे इति । असिद्धवदत्रेति । षष्ठस्य चतुर्थपादे  
 इदं सूत्रम् । “श्नाञ्चलोपः” इति सूत्रात्पूर्वं पठितम् । आभादित्यभिविधावाङ् ।  
 मस्येत्यधिकारमभिव्याप्येत्यर्थः । भाधिकारश्च आपादपरिसमाप्तेरिति सिद्धान्तः ।  
 तथाच आपादपरिसमाप्तेरिति लभ्यते । जहि । हन्धातोर्लोऽटः सिपि, शपि, शपो  
 लुकि, “सेह्यपिच्च” इति सिपः सेः स्थाने हौ कृते ‘हन् हौ’ इति भूते “हन्तेर्जः” इति  
 हनः स्थाने जादेशे जाते ‘ज हि’ इति स्थिते अत्र “अतो हेः” इति अतः परस्य हेर्लुक्  
 न भवति । “असिद्धवदत्रामात्” इति जादेशस्य असिद्धत्वात् । तेन ‘जहि’ इति रूपं  
 सिद्धम् । हनानि । हन्धातोर्लोऽटो मिपि, शपि, शपो लुकि, “मेनिः” इति मेः स्थाने  
 ‘नि’ इत्यादेशे “आहुत्तमस्य पिच्च” इति नेः आटि, ‘हनानि’ इति रूपम् । एवं  
 वस्मसोः । अहन् । हन्धातोर्लोङि, लङ्स्तपि, पगते, शपि, शपो लुकि, अटि,  
 “इतश्च” इति तिप इकारलोपे ‘अहन् त्’ इति भूते “हल्ङ्याभ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं  
 हल्” इति नूलोपे ‘अहन्’ इति रूपम् । अहताम् । लङ्स्तसि, तसस्तामि, शपो लुकि,  
 अटि, नूलोपे च उक्तं रूपम् । अघनन् । लङो हौ, शपो लुकि, अटि, “क्षोऽन्तः” इत्य-  
 न्तादेशे “गमहन०” इत्युपधाकारलोपे कृत्वे “इतश्च” इति अन्तेरिकारलोपे “संयोगा-  
 न्तस्य लोपः” इति नूलोपे “अघनन्” इति रूपम् । हन्यात् । हन्धातोर्लिङ्स्तपि,  
 शपि, शपो लुकि, यासुटि, उटि गते टित्वादाद्यावयवे “इतश्च” इति तिप इकारलोपे  
 “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सूलोपे ‘हन्यात्’ इति रूपम् । हन्याताम्, हन्युः ।  
 हन्याः, हन्यातम्, हन्यात । हन्याम्, हन्याव, हन्याम । हनो वध लिङीति । वधेति  
 लुसप्रथमाकम् । हनो वधादेशः स्यादार्धधातुके लिङीत्यर्थः । लुङि चेति । हनो वधा-  
 देशः स्यात् । लुङीत्यर्थः स्पष्टः । वध्यात् । हन्धातोः “आशिषिलिङ्लोटौ” इति लिङि,  
 लिङो लः स्थाने तिपि, “लिङाशिषि” इति तिप आर्धधातुकत्वे “हनो वध लिङि”  
 इति हनः स्थाने वधादेशे “किदाशिषि” इति यासुटि, उटि गते टित्वादाद्यावयवे  
 ‘वध यास्ति’ इति जाते “अतो लोपः” इति वधाकारस्य लोपे तिप इकारस्य

निष्पत् । युं मिश्रणामिश्रणयोः ॥३॥ उतो वृद्धिलुकिं हलि । अत्रादि लुकि-  
वये उतो वृद्धिः स्यात् पिति हलादीं सार्वधातुके न त्वभ्यस्तस्य । यौति । युतः ।  
युवन्ति । यौषि । युथः । युथ । यौमि । युवः । युमः । युयाव । यविता । यविष्यति ।

“इतश्च” इति लोपे “स्कीः संयोगाधोरन्ते च” इति स्रलोपे ‘वध्यात्’ इति रूपम् ।  
वध्यास्ताम् । हन्धातोराक्षिपौ लिङ्गस्तसि, “तस्यस्थमिपान्तान्ततामः” इति तस-  
स्तामि “लिङाक्षिपि” इत्याधधातुकत्वे ‘हनो वध लिङि’ इति हनो वधादेशे “अतो  
लोपः” इति वधाकारस्य लोपे यासुटि, उटि गते टित्वादाधायवये ‘वध्यास्ताम्’ इति  
रूपम् । वध्यासुः । वध्याः, वध्यास्तम्, वध्यास्त । वध्यासम्, वध्यास्व, वध्यास्म ।  
अवधीत् । हन्धातोः “लुङ् च” इति लुङि, “लुङि च” इति हनः स्थाने वधादेशे  
कृते लुङो लः स्थाने तिपि, “च्लि लुङि” इति च्लो “च्लेः सिच” इति सिधि, इधि  
गते “लुङ्लङ्लुङ्स्वदुदात्तः” इति अटि, “इतश्च” इति तिप इकारलोपे ‘अवधस्’  
इति स्थिते सिचः सकारस्याधधातुकत्वात् “आधधातुकस्येड्वलादेः” इति इटि,  
“अतो लोपः” इति वधाकारस्य लोपे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति तिपस्तकारस्य ईडा-  
गमे “इट ईटि” इति स्रलोपे “सिज्जलोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः” इति सिज्जलोपस्य  
सिद्धत्वात् “अकः सर्वणे दीर्घः” इति दीर्घे ‘अवधीत्’ इति रूपम् । अवधिष्टम्,  
अवधिषुः । अवधीः, अवधीष्टम्, अवधिष्ट । अवधिषम्, अवधिष्व, अवधिष्म । इति  
लुङि रूपाणि । अहनिष्यत् । हन्धातोर्लङ्गितिपि, स्ये, “ऋद्वनोः स्ये” इति स्यस्य  
ईडागमे “आदेशप्रत्यययोः” इति स्यस्य सकारस्य षत्वे “इतश्च” इति तिप इकारस्य  
लोपे “लुङ्लङ्लुङ्स्वदुदात्तः” इति अङ्गस्याडागमे ‘अहनिष्यत्’ इति रूपम् । यु  
मिश्रणामिश्रणयोः । अमिश्रणं पृथक् भावः । सेढयम् । उतो वृद्धिलुकोति । “नाम्यस्त-  
स्याचि पिति सार्वधातुके” इति अचिवर्जमनुवर्तते । लुकीति विषयसप्तमी, दर्शना-  
भावस्य लुकः परत्वासम्भवात् । तदाह—लुग्विषय इत्यादिना । यौति । युधातोर्लङ्-  
गितिपि, क्षपि, क्षपी लुकि, ‘यु ति’ इति स्थिते “उतो वृद्धिलुकिं हलि” इति यौत-  
कारस्य वृद्धौ ‘यौति’ इति रूपम् । युवः । युधातोर्लङ्गस्तांसि, क्षपि, क्षपी लुकि, तस-  
स्तांस्य स्त्वे रँस्य विसर्गत्वे च ‘युतः’ इति रूपम् । युवन्ति । लटो लः स्थाने श्रौ,  
“श्रौऽन्तः” इति अन्तादेशे अपित्वाद्बृद्धभावे क्त्वाद्गुणभावे “अचि रनुधातु-  
अर्वाधोरियलुवडौ” इति उवङि कृते ‘युवन्ति’ इति रूपम् । यौषि । “उतो वृद्धि-  
लुकिं हलि” इति वृद्धिः । युयाव । युधातोर्लङ्गितिपि, तिपो णलि, अनुबन्धलोपे  
द्वित्वे, अम्यासत्वे, अम्यासकाये च ‘यु यु अ’ इति मूते “अतो णिति” इति वृद्धौ  
“एचोऽयवायावः” इत्यावादेशे “युयाव” इति रूपम् । युयुक्त्तुः, युयुषुः । युयुक्, युयुव-  
युः, युयुव । युयाव-युयव, युयुविव, युयुविम । यविता । युधालोर्लङ्गितिपि,  
तांसि, तांस आधधातुकत्वे “आधधातुकस्येड्वलादेः” इति इटि, गुणे अवादेशे इलोपे

यौतु , युतात् । अयौत् । अयुताम् । अयुवन् । युयात् । इह उतो वृद्धिर्न । भाष्ये  
 'पिच ङिच ङिच पिच' इति व्याख्यानात् । युयाताम् । युयुः । यूयात् । यूयास्ताम् ।  
 यूयासुः । अयावीत् । अयविष्यत् । या प्राप्ते ॥ ४ ॥ याति । यातः । यान्ति ।

द्वित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपि 'यविता' इति रूपम् । यविष्यति । युधातोर्लूटस्तिपि,  
 स्ये, इटि, गुणे, अवादेशे षत्वे च रूपम् । यौतु । युधातोर्लोटस्तिपि, शपि, शपो लुकि,  
 "उतो वृद्धिर्लुकि हलि" इति वृद्धौ "एरुः" इति तिप इकारस्य उकारे 'यौतु' इति  
 रूपम् । युतात् । तातङो ङित्वात् गुणो न, पित्वाभावात् वृद्धिर्न । युताम् , युवन्तु ।  
 हौ अपित्वाच्च वृद्धिः । युहि-युतात् , युतम् , युत । आटि पित्वेऽपि हलादित्वाभा-  
 वाच्च वृद्धिः । पित्वेन ङित्वाभावाद् गुणः । यवानि, यवाव, यवाम । अयौत् । युधा-  
 तोर्लङ्स्तिपि, शपि, शपो लुकि, "उतो वृद्धिर्लुकि हलि" इति वृद्धौ अटि, तिप इकार-  
 लोपे च 'अयौत्' इति रूपम् । अयुवन् । युधातोर्लङ्गे शौ, शपि, शपो लुकि, "क्षोऽन्तः"  
 इत्यन्तादेशे इकारलोपे संयोगान्तलोपे उवङि, अटि च रूपम् । अयौः, अयुतम् , अयुत ।  
 अयवम् , अयुव, अयुम । युयात् । युधातोः "विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्पन्नप्रार्थनेषु  
 लिङ्" इति लिङि, लिङो लः स्थाने तिपि, शपि, शपो लुकि, यासुटि, उटि गते "लिङः  
 सलोपोऽनन्त्यस्य" इति सलोपे "इतश्च" इति तिप इकारस्य लोपे 'युयात्' इति  
 रूपम् । नचात्र तिपः पित्वं यदागमन्यायेन यासुटि आनीय "उतो वृद्धिः" इति वृद्धिः  
 स्यादिति वाच्यम् । भाष्ये 'ङिच्च पिच, पिच्च ङिच' इति व्याख्यानात् । तसस्तामि-  
 युयाताम् । युयुः । युधातोर्लिङ्गे शौ शपि, शपो लुकि, यासुटि, उटि गते "लिङः सलो-  
 पोऽनन्त्यस्य" इति सलोपे "क्षेर्जुस्" इति जुसि, जगते "उस्यपदान्तात्" इति पररूपे  
 सस्य स्त्वे रेफस्य विसर्गत्वे च "युयुः" इति रूपम् । युयाः, युयातम् , युयात । युयाम्,  
 युयाव, युयाम । यूयात् । युधातोराशिषो लिङ्स्तिपि, तिप आर्धधातुकत्वे तेन शबभावे  
 यासुटि, उटि गते तिप इकारलोपे "अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः" इति युधातोर्दीर्घं "स्कोः  
 संयोगाद्योरन्ते च" इति सलोपे 'यूयात्' इति रूपम् । यूयास्ताम् , यूयासुः । यूयाः, यूया-  
 स्तम् , यूयास्त । यूयासम् , यूयास्व, यूयास्म । अयावीत् । युधातोः "लुङ्" इति लुङि,  
 लुङो लः स्थाने तिपि, ल्लौ, ल्लेः सिच्, इचि गते अटि, तिप इकारलोपे सिचः सस्य इटि  
 तिपस्तस्य ईटि, "इट् ईटि" इति सिचः सस्य लोपे सिज्जलोप एकादेशे कर्त्तव्ये सिद्ध-  
 त्वात् सवर्णदीर्घं 'अयु ई त्' इति जाते "सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु" इति वृद्धौ आवादेशे  
 च 'अयावीत्' इति रूपम् । अयाविष्टाम् , अयाविषुः । अयावीः, अयाविष्टम् ,  
 अयाविष्ट । अयाविषम् , अयाविष्व, अयाविष्म । इति लुङो रूपाणि । अयविष्यत् ।  
 युधातोर्लङ्गतिपि, स्ये इटि, गुणे अवादेशे षत्वे, तिप इकारलोपे अङ्गस्याडागमे च  
 'अयविष्यत्' इति रूपम् । या-प्राप्ते । प्रापणमिह गतिः । णिजयस्तु अविवक्षित इति  
 भावः । याति । याधातोर्लङ्गस्तिपि, शपि, शपो लुकि, उक्त्वं रूपम् । यान्ति । शौ "क्षोऽ-

ययौ । याता । यास्यति । यातु । अयात् । अयाताम् । लङः शाकटायनस्यैव  
३।३।१११ आदन्तात्परस्य लङो भेजुस् वा स्यात् । अयुः, अयान् । यायात् ।  
यायाताम् । यायुः । यायात् । यायास्ताम् । यायासुः । अयासीत् । अयास्यत् । वा

न्तः” इति अन्तादेशे सवर्णदीर्घः । यासि, याथः, याथ । यामि, यावः, यामः । ययौ ।  
याघातोर्लिङ्गस्तिपि, तिपो णलि, “आत औ णलः” इति णल औ आदेशे द्वित्वे अम्या-  
सत्वे “ह्रस्वः” इति अम्यासस्य अचो ह्रस्वत्वे ‘य या औ’ इति स्थिते “वृद्धिरेचि”  
इति वृद्धौ ‘ययौ’ इति रूपम् । ययतुः, ययुः । ययिथ-ययाथ, ययथुः, यय । ययौ,  
ययिव, ययिम । याता । याघातोर्लुङ्गस्तिपि, तिपो ङात्वे तासि । तास आर्धघातुकत्वे  
“आर्धघातुकस्येङ्वलादेः” इति इटि प्राप्ते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इटो  
निषेधे, ङित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपि ‘याता’ इति रूपम् । यास्यति । याघातोर्लुङ्ग-  
स्तिपि, स्ये इङ्गभावे उक्तं रूपम् । यातु । याघातोर्लुङ्गस्तिपि, शपि, शपो लुकि, “एङ्”  
इति तिप इकारस्य उकारे ‘यातु’ इति रूपम् । यातात्, याताम्, यान्तु । याहि-  
यातात्, यातम्, यात । यानि, याव, याम । अयात् । याघातोर्लुङ्गस्तिपि, शपि शपो  
लुकि, अटि, तिप इकारस्य “इतश्च” इति लोपे ‘अयात्’ इति रूपम् । अयाताम् । याघा-  
तोर्लुङ्गस्तसि, “तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः” इति तसः स्थाने तामि, शपि, शपो लुकि,  
अटि ‘अयाताम्’ इति रूपम् । लङः शाकटायनस्यैवेति । “भेजुस्” इति “आत” इति  
चानुवर्तते । तदाह—आदन्तादिति । अयुः । याघातोर्लुङ्गे शौ शपि, शपो लुकि अटि,  
‘अया क्षि’ इति जाते “लङः शाकटायनस्यैव” इति भेजुसि, “चुट्” इति जस्येत्सञ्ज्ञा-  
यां लोपे च “उस्यपदान्तात्” इति पररूपे उसः सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च ‘अयुः’  
इति रूपम् । जुसोऽभावे “भोऽन्तः” इत्यन्तादेशे इकारलोपे तलोपे च जाते सवर्णदीर्घे  
च कृते “अयान्” इति रूपम् । अयाः, अयातम्, अयात । अयाम्, अयाव, अयाम ।  
यायात् । याघातोर्लुङ्गस्तिपि, शपि, शपो लुकि, यासुटि, उटि गते “लिङः सलोपोऽन-  
न्यस्य” इति सलोपे “इतश्च” इति तिप इकारलोपे “यायात्” इति रूपम् । यायाताम् ।  
तसस्तामि, यासुट् सलोपश्च । यायुः । याघातोर्लुङ्गे शौ यासुटि, उटि गते, सलोपे  
“भेजुस्” इति जुसि, जगते “उस्यपदान्तात्” इति पररूपत्वे सस्य रुत्वे रेफस्य  
विसर्गत्वे च ‘यायुः’ इति रूपम् । यायाः, यायातम्, यायात । यायाम्, यायाव,  
यायाम । यायात् । याघातोर्लुङ्गस्तिपि, यासुटि, उटि गते, तिप इकारलोपे  
“स्क्रोः संयोगाद्योरन्ते च” इति सलोपे ‘यायात्’ इति रूपम् । तामि—यायास्ताम् ।  
यायासुः । अत्र “भेजुस्” इति विशेषः । यायाः, यायास्तम्, यायास्त । यायासम्,  
यायास्व, यायास्म । अयासीत् । याघातोर्लुङ्गस्तिपि, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते अटि,  
तिप इकारलोपे ‘अया स् त्’ इति स्थिते अत्र “यमरमनमातां सकृच्च” इत्यनेन सिचः  
सकारस्य इडागमे आकारान्तघातोः सकागमे ‘अयासृहस् त्’ इति भूत्वे “अस्तिसिचो-

गतिगन्धनयोः ॥ ५ ॥ आ दीप्तौ ॥ ६ ॥ णा शौचे ॥ ७ ॥ आ पाके ॥ ८ ॥  
 द्रा कुत्सायां गतौ ॥ ९ ॥ प्सा भक्षणे ॥ १० ॥ रा दाने ॥ ११ ॥ ला आदाने  
 ॥ १२ ॥ दाप् लवने ॥ १३ ॥ पा रक्षणे ॥ १४ ॥ ख्या प्रकथने ॥ १५ ॥ अयं  
 सार्वधातुके एव प्रयोक्तव्यः । विद् ज्ञाने ॥ १६ ॥ विदो लटो वा शशान्३ वेत्ते-  
 लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः । वेद । विदतुः । विदुः । वेत्थ । विदथुः ।

‘अट्टि’ इति तिपस्तकारस्य ईडागमे “इट ईटि” इति सिचः संस्य लोपे एकादेशे क-  
 र्तव्ये सिज्जोपस्य सिद्धत्वात्सर्वर्णदीर्घे ‘अयासीत्’ इति रूपम् । अयासिष्टाम्, अया-  
 सिष्ठुः । अयासीः, अयासिष्टम्, अयासिष्ट । अयासिष्ठम्, अयासिष्ठ्व, अयासिष्ठम् ।  
 इति लुङो रूपाणि । अयास्यत् । याधातोलृङ्स्तिपि, स्ये “एकाच्च उपदेशेऽनुदात्तात्”  
 इति ईडभावे अटि, तिप इकारलोपे ‘अयास्यत्’ इति रूपम् । वा गतिगन्धनयोः । लटि-  
 वाति । लटि-ववौ । लुटि-वाता । लटि-वास्यति । लोटि-वातु । लङि-अवात्, अवाताम्,  
 अयुः-अवान् । लङि-वायात् । आशीलङि-वायात्, वायास्ताम् । लुङि-अवासीत् ।  
 लङि-अवास्यत् । भा दीप्तौ । लटि-भाति । लटि-बभौ । लुङि-अभासीत् । णा शौचे ।  
 लटि-स्नाति । लटि-सन्तौ । लुङि-अस्नासीत् । आ पाके । लटि-प्राति । लटि-शश्रौ ।  
 लुङि-अप्रासीत् । द्रा कुत्सायां गतौ । लटि-द्राति, लटि-ददौ, लुङि-अद्रासीत् । प्सा  
 भक्षणे । लटि-प्साति, लटि-पप्सौ । लुङि-अप्सासीत् । रा दाने । लटि-राति । लटि-  
 ररौ । लुङि-अरासीत् । ला आदाने । आदानं स्वीकरणमिति यावत् । लटि-लाति ।  
 लटि-ललौ । लुङि-अलासीत् । दाप् लवने । लवनम्-छेदनमिति यावत् । पस्वेत्संज्ञा ।  
 लटि-दाति । लटि-ददौ । लुङि-अदासीत् । पा रक्षणे । लटि-पाति, लटि-पपौ,  
 लुङि-अपासीत् । अन्यत्र सुगमम् । ख्या प्रकथने । अयं सार्वधातुक इति । अत्र प्रमाणम्-  
 “संस्थानत्वं नमः ख्यात्रे” इति वार्तिकम्, तद्भाष्यञ्च । सस्थानो-जिह्वामूलीयः । स नेति  
 ख्यानादेशस्य खशादित्वे प्रयोजनमित्यर्थः । लटि-ख्याति, ख्यातः, ख्यान्ति । लोटि-ख्यातु ।  
 लङि-अख्यात् । विधिलङि-ख्यायात्, ख्यायाताम्, ख्यायुरित्यादिः । विद् ज्ञाने । सेढ्यं  
 धातुः, अनिट्सु लुगिकरणस्याग्रहणात् । विदो लटो वेति । “परस्मैपदानां णलुत्सु” इ-  
 त्यादिसुत्रमनुवर्तते । विद् इति पञ्चमी । तदाह-वेत्तेलट इति । वेद । विद्वातोः “वर्तमाने  
 लट्” इति लटि, अटि गते लः स्थाने “तिससुश्चि” इत्यादिना तिपि, “विदो लटो वा”  
 इति तिपः स्थाने णलि, णस्य लस्य चेत्संज्ञायां लोपे च “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति  
 सार्वधातुकत्वे, “कर्तरि शप्” इति शपि, “अदिप्रभृतिभ्यः शपः” इति शपो लुकि,  
 “पुगन्तलृपधस्य च” इति विद् उपधाइकारस्य गुणे वेद इति रूपम् । विदतुः ।  
 विद्वातोलंटस्तसि, शपि, “अदिप्रभृतिभ्यः शपः” इति शपो लुकि, “विदो लटो वा”  
 इति विकल्पेन तसोऽनुसि, अतुसः सस्य स्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च ‘विदतुः’ इति  
 रूपम् । विदुः । विद्वातोलंटो शौ, शपि, शपो लुकि, “विदो लटो वा” इति शः स्थाने

विद । वेद । विद्र । विद्र । पचे । वेत्ति । वित्तः । विदन्ति ॥ उषविदजागृभ्यो-  
ऽन्यतरस्याम् ३।१।३८ एभ्यो लिटि आम्वा स्यात् । विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानादामि च  
गुणः । विदाञ्चकार । विवेद । वेदिता । वेदिष्यति । विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतर-  
स्याम् ३।१।४१ वेत्तेर्लोटि आम् गुणाभावो लोटो लुक् लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च वा  
निपात्यते । पुरुषवक्त्रे न विवक्षिते ॥ तनादिकृञ्भ्य उः ३।१।७६ तनादेः कृञश्च

उसि, “सार्वधातुकमपित्” इति द्वित्वात् लघूपधगुणाभावे सस्य स्त्वे रेफस्य विस-  
र्गत्वे च ‘विदुः’ इति रूपम् । वेत्थ । विदातोर्लटः सिपि, सिपस्थकि लगते शपो लुकि,  
लघूपधगुणे चत्वे च ‘वेत्थ’ इति रूपम् । पचे—वेत्ति । विदातोर्लटस्तिपि, ङपि, शपो  
लुकि, लघूपधगुणे “खरि च” इति चत्वे च ‘वेत्ति’ इति रूपम् । शौ—विदन्ति । वेत्सि,  
विस्थः, विस्थ । वेद्मि, विद्मः, विद्मः । इति अवशेषरूपाणि । उषविदजागृभ्य इति ।  
“कासप्रत्ययादाममन्त्रे लिटि” इत्यतः आम् लिटीत्यनुवर्तते । तदाह—एभ्यो लिटीति ।  
विदाञ्चकार । विदातोः “परोचे लिट्” इति लिटि, “उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्”  
इति आमि, “आमः” इति लिटो लुकि, अत्र आमः आर्धधातुकत्वेऽपि विद उपधायाः  
लघूपधगुणो न । विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानात् । “कृञानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्परकृञ्  
अनुप्रयुक्ते ‘विदाम् कृ लिट्’ इति जाते लिटो लः स्थाने तिपि, तिपो णलि, अनुबन्ध-  
लोपे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इति अभ्यासत्वे “उरत्”  
इति अभ्यासऋवर्णस्य अकारे “उरण् रपरः” इति रपरत्वे “हलादिः शेषः” इति  
रलोपे ‘विदाम् क कृ अ’ इति भूते “कुहोरनुः” इति अभ्यासकस्य तुत्वेन चकारे कृ  
इत्यस्य “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे अकारे “उरण् रपरः” इति रपरे “अव  
उपधायाः” इति बृद्धौ आसो मस्यानुस्वारे वा परसवर्णे च ‘विदाञ्चकार’ इति रूपम् ।  
विदाञ्चकतुः, विदाञ्चकृः । विदाञ्चकथं । विदाञ्चकथुः । विदाचक्र । विदाञ्चकार-विदा-  
ञ्चकर, विदाञ्चकृन्, विदाञ्चकृम् । विवेद । विदातोर्लटस्तिपि, तिपो णलि, अनुबन्धलोपे,  
द्वित्वे अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्णे च जाते “लिट् च” इति णलोऽकारस्यार्धधातुकत्वात्  
“पुगान्तलघूपधस्य च” इति लघूपधगुणे ‘विवेद’ इति रूपम् । विविदतुः, विविदुः ।  
विवेदिथ, विविदथुः, विविद । विवेद, विविदिथ, विविदिम । वेदिता । विदातोर्लट-  
स्तिपि, तासि, तास आर्धधातुकत्वे, इटि, “पुगान्तलघूपधस्य च” इति गुणे तिपो  
डात्वे द्वित्वसामर्थ्याद्भस्यापि टेलोपे ‘वेदिता’ इति । वेदिष्यति । विदातोर्लटस्तिपि,  
स्ये, इटि, गुणे, पत्वे च ‘वेदिष्यति’ इति रूपम् । विदाङ्कुर्वन्त्विति । “कृञ् चानुप्रयु-  
ज्यते लिटि” इत्युत्तरमिदं सूत्रम् । इति शब्दः प्रकारे । एवं जातीयकं वैकल्प्येन प्रत्ये-  
तन्यमित्यर्थः । वेत्तेरिति । लुम्बिकण्णात् विदधातोः लोटि परे आग्रत्ययो निपात्यत-  
इत्यर्थः । लोडन्तेति । आग्रत्यादिदेः लोडन्तकृञ्धातोः अनुप्रयोगश्च निपात्यत इत्यर्थः ।  
पुरुषेति । कुर्वन्निप्रि प्रथमपुरुषे बहुवचनञ्च न विवक्षितमित्यर्थः । तयोस्तु तान्तरि-



उः प्रत्ययः स्यात् । शपोऽपवादः । विदांकरोतु ॥ वेतु । अत उत्सार्वधातुके  
६।४।११० उपप्रत्ययान्तस्य कृजोऽत उत्स्यात् सार्वधातुके द्विति । विदांकुरुतात् ।  
विदांकुरुताम् । विदांकुर्वन्तु । विदांकुरु । विदांकरवाणि । अवेत् । अविताम् ।

यकमुच्चारणमिति भावः । तनादिकृष्ण्य इति । शपोऽपवाद इति । अनेन शब्दविषय  
एवास्य प्रवृत्तिरिति सूचितम् । “सार्वधातुके यक्” इत्यतः सार्वधातुकग्रहणस्य “कर्तरि  
ङ्गप्” इत्यतः कर्तरीत्यस्य चानुवृत्तेरिति भावः । विदाङ्करोतु । विद्वातोर्लोटि, “विदाङ्कु-  
र्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्” इत्यामि, “आमः” इति लोटो लुकि, लोट्परके कृजि प्रयुक्ते  
“विदाम् कृ लोट्” इति स्थिते लोटः स्थाने तिपि, तिपः सार्वधातुकत्वात् शपि प्राप्ते  
तम्बाधित्वा “तनादिकृष्ण्य उः” इत्युकारे कृते “विदाम् कृ उ ति” इति जाते “आर्ध-  
धातुकं शेषः” इति उकारस्यार्धधातुकत्वे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति उभयत्र गुणे  
“एरुः” इति तिप इकारस्योत्वे मस्यानुस्वारे वा परसवर्णे संयोगे च कृते “विदाङ्करोतु”  
इति रूपम् । अत उत् । उपप्रययान्तस्येति । “उतश्च प्रत्ययात्” इत्यतः तदनुवृत्तेरिति  
भावः । कृजोऽकारस्य उदिति । “नित्यं करोतेः” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । विद्वीति ।  
“गमहन” इत्यतः तदनुवृत्तेरिति भावः । विदाङ्कुरुतात् । विद्वातोर्लोटि, “विदां कुर्व-  
न्त्वित्यन्यतरस्याम्” इति आमि, “आमः” इति लोटो लुकि, लोट्पर कृजि चानु-  
प्रयुक्ते “विदाम् कृ लोट्” इति जाते, लोटस्तिपि “एरुः” इति उत्वे, तातडि, शपं  
बाधित्वा “तनादिकृष्ण्य उः” इति उविकरणे कृते तस्यार्धधातुकत्वे “सार्वधातुकार्ध-  
धातुकयोः” इति गुणे रपरि च कृते “अत उत्सार्वधातुके” इति ककाराकारस्य उत्वे,  
मस्यानुस्वारे वा परसवर्णे च कृते “विदाङ्कुरुतात्” इति रूपम् । विदाङ्कुरुताम् । विद्वा-  
तोर्लोटि, “विदां कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्” इति आमि, “आमः” इति लोटो लुकि,  
लोट्परके कृजि कृते, लोटो लः स्थाने तसि, “तनादिकृष्ण्य उः” इति उकृते कृज ऋका-  
रस्य गुणे रपरत्वे “अत उत्सार्वधातुके” इति ककाराकारस्योत्वे “तस्थस्थमिपां तान्त-  
न्तामः” इति तसस्तामि, आमो मस्यानुस्वारे वा परसवर्णे च “विदाङ्कुरुताम्” इति  
रूपम् । विदाङ्कुर्वन्तु । श्रौ परे “विदाङ्कुरु ऋ” इति पूर्ववत् प्रसाध्य “क्षोऽन्तः”  
इति क्षेः स्थाने अन्ति इति आदेशे कृते “एरुः” इति उत्वे च जाते “इको यणचि”  
इति यणि “विदाङ्कुर्वन्तु” इति रूपम् । विदाङ्कुरु । सिपि परे “विदाङ्कुरु” इति  
पूर्ववत्प्रसाध्य “सेर्षिप्च” इति सिपः सेः स्थाने हौ “विदाङ्कुरु हि” इति जाते  
“उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्” इति हेर्लुकि, “विदाङ्कुरु” इति रूपम् । तातडि—  
“विदाङ्कुरुतात्” । विदाङ्कुरुतम्, विदाङ्कुरुत । विदाङ्करवाणि । विद्वातोः “लोट्  
च” इति लोटि, “विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्” इति आमि, लोटो लुकि, लोट्-  
परके कृजोऽनुप्रयोगे “विदाम् कृ लोट्” इति जाते लोटो लः स्थाने मिपि, शपं बाधि-  
त्वा “तनादिकृष्ण्य उः” इति उकृते तस्य आर्धधातुकत्वे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः”

अविदुः । दश्च ङा२।७५ धातोर्दस्य पदान्तस्य सिपि परे र्वाभ्यात् । अवेः ।  
अवेत् । विद्यात् । विद्यास्ताम् । अवेदीत् । अवेदिष्यत् । अस भुवि ॥ १७ ॥

इति गुणे अकारे “उरण् रपरः” इति रपरे च जाते आमो मस्यानुस्वारे परसवर्णे च  
कृते ‘विदाङ्कर मि’ इति स्थिते “मेनिः” इति मेःस्थाने ‘नि’ इत्यादेशे “आङुत्तमस्य  
पिच्च” इति नेराडागमे ‘विदाङ्करु आ नि’ इति भूते उकारस्य “सार्वधातुकार्धधातु-  
कयोः” इति गुणेन ओकारे जाते “एचोऽयवायावः” इति अवादेशे “अट्कुप्वाङ्नुभ्य-  
वायेऽपि” इति नेर्नस्य णत्वे ‘विदाङ्करवाणि’ इति रूपम् । विदाङ्करवाव; विङ्करवाम ।  
पच्चे—वेत्तु, वित्तात्, वित्ताम्, विदन्तु । विद्धि, वित्तात्, वित्तम्, वित्त । वेदानि,  
वेदाव, वेदाम । अवेत् । विद्धातोर्लङ्स्तिपि, शपि, शपो, लुकि, अटि, लृपधगुणे  
“इतश्च” इति तिप इकारलोपे ‘अवेद् त्’ इति भूते “हल्ङ्याभ्यां दीर्घास्तुतिस्यपृक्तं  
हल्” इति तिपस्तकारस्य लोपे “वावसाने” इति वा दस्य चत्वे ‘अवेत्’ इति रूपम् ।  
अवित्ताम् । विद्धातोर्लङ्स्तिपि, शपि, शपो लुकि, अटि, “तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः”  
इति तसस्तामि, “खरि च” इति दस्य चत्वे ‘अवित्ताम्’ इति रूपम् । अविदुः । विद्धा-  
तोर्लङ्को शौ, शपि, शपो लुकि, अटि “सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च” इति शेर्जुसि, “चुट्”  
इति जस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च ‘अविदुः’ इति रूपम् ।  
दश्चेति । “सिपि धातोरुवां” इत्यनुवृत्तम् । द इति षष्ठ्यन्तेन धातुर्विशेष्यते । तद-  
न्तविधिः । “पदस्य” इत्यधिकृतम् । तदाह—धातोर्दस्य पदान्तस्येति । अवेः ।  
विद्धातोर्लङ्स्तिपि, शपि, शपो लुकि, अटि सिपि इकारस्य “इतश्च” इति । लोपे  
“पुगन्तलृपधस्य च” इति उपधागुणे ‘अवेद् स्’ इति भूते “हल्ङ्याभ्यां दीर्घा-  
स्तुतिस्यपृक्तं हल्” इति सिपः सस्य लोपे “दश्च” इति विदेर्दस्य वा रुत्वे रेफस्य  
विसर्गत्वे च ‘अवेः’ इति रूपम् । रुत्वाभावपच्चे—‘अवेत्’ इति रूपम् । अवि-  
त्तम्, अवित्त । अवेदम्, अविद्, अविद्म । इति । विद्यात् । विद्धातोर्लङ्स्तिपि,  
शपि, शपो लुकि, यासुटि, उटिगते, टित्वादाद्यावयवे “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति  
सूलोपे ङित्वाद्गुणाभावे तिप इकारलोपे ‘विद्यात्’ इति रूपम् । विद्याताम्, विद्यः ।  
विद्यात् । विद्धातोराशिषो लिङ्स्तिपि यासुटि, उटि गते टित्वादाद्यावयवे “इतश्च”  
इति तिप इकारलोपे ‘विद्यात्’ इति भूते “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति सूलोपे  
‘विद्यात्’ इति रूपम् । विद्यास्ताम् । विद्धातोराशिषो लिङ्स्तिपि, तसस्तामि, यासुटि,  
उटि गते, टित्वादाद्यावयवे ‘विद्यास्ताम्’ इति रूपम् । विद्यासुः । विद्याः, विद्यास्तम्,  
विद्यास्त । विद्यासम्, विद्यास्व, विद्यास्म । अवेदीत् । विद्धातोः “लुङ्” इति सूत्रेण  
लुङि लकारे उडावितौ लस्य तिवादेशे, च्लौ, च्लेः सिचि, इचोर्लोपे “आर्धधातुकस्ये-  
ड्वलादेः” इतीटि “लुङ्लङ्लृङ्स्त्वङुदात्तः” इत्यङागमे “इतश्च” इति तिप इकार-  
लोपे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति अपृक्सञ्ज्ञकस्य तकारस्य ईङागमे “इट ईटि” इति

अस्ति । रनसोरल्लोपः ६।४।११ रनस्यस्तेधातो लोपः स्यात् सार्वधातुके इति ।  
स्तः । सन्ति । अस्ति । स्थः । स्थ । अस्मि । त्वः । स्मः । उपसर्गप्रादुभ्यामि-  
स्तिर्यचपरः ८।३।८७ उपसर्गेणप्रादुसधास्तेः सस्य षः स्यात् यकारेऽचि च परे ।  
निष्यात् । प्रनिषन्ति । प्रादुःषन्ति । यचपरः किम् । अभिस्तः । अस्तेभूः २।४।१२  
आर्धधातुके । बभूव । भविता । भविष्यति । अस्तु, स्तात् । स्ताम् । सन्तु ॥ ध्व-

इदः पृष्ठस्य सिचः सकारस्य लोपे “अकःसवर्णदीर्घः” इति दीर्घे “पुगन्तलघूपधस्यञ्च”  
इति लघूपधस्येकारस्य गुणे ‘अवेदीन्’ इति । अवेदिष्टम्, अवेदिषुः । अवेदीः, अवेदि-  
ष्टम्, अवेदिष्ट । अवेदिषम्, अवेदिष्व, अवेदिषम् । अवेदिष्यत् । विद्वातोर्लुङ्स्तिपि  
“स्यन्तासी लुट्योः” इति स्यप्रत्यये तस्य “आर्धधातुकं शेषः” इति आर्धधातुकत्वेऽटि  
इटि “इतश्च” इति इकारलोपे ‘अविद् इ स्थ ति’ इति स्थिते लघूपधगुणे सस्य षत्वे  
‘अवेदिष्यत्’ इति निष्पद्यते । अस्ति । असभुविधातोर्लिटि लिपि क्षपि क्षपो लुकि ‘अस्ति’  
इति सिद्धम् । रनसोरल्लोप इति । अत् इति लुसषष्ठीकं पदम् । रन अस् अनयोर्द्वन्द्व-  
त्पृष्ठीद्विवचनम् । सकृन्वादिवात् पररूपम् । रनेति रनम्प्रत्ययैकदेशनिर्देशः । “अत्  
उत्सार्वधातुके” इत्यतः सार्वधातुके इत्यनुवर्तते “गमहन” इत्यतः किङ्क्षीति । तदाह—  
रनलोपेत्यादिना । स्तः । अस् धातोस्तसि “रनसोरल्लोपः” इत्यस्तेरकारलोपे सस्य लृत्वे  
सस्य विसर्गे च कृते ‘स्तः’ इति ज्ञेयम् । सन्ति । शौ, शेरन्तादेशे “रनसोरल्लोपः”  
इत्यस्तेरकारलोपे सन्तीति रूपं साधु । अस्ति । सिपि “तासस्योर्लोपः” इति असन्नातोः  
लकारलोपे ‘असि’ इति बोध्यम् । यास—स्थः । थे—त्थ । मिपि—अस्मि । बसि—त्तः ।  
मसि—स्मः । उपसर्गप्रादुभ्यामिति—उपसर्गः प्रादुस्, अत्रयोर्द्वन्द्वः । “इण्को” इत्यधि-  
कृतम् । तत्र इण इत्युपसर्गेण सम्बध्यते, न तु प्रादुसि, ततः परस्य अस्तेः सस्य इणः  
प्रत्ययासम्भवात् । कोरित्यपि असम्भवाच्च सम्बध्यते । अस्तिरिति षष्ठ्यर्थे प्रथमा “सहेः  
स्माहः सः” इत्यतः स इति षष्ठ्यन्तसमुन्नतते, “मूर्धन्य” इत्यधिकृतम् । य् अच् अन-  
योर्द्वन्द्वः । यचौ परौ यस्मादिति विग्रहः । यकारे अकारे च परे इति लभ्यते । तदाह—  
उपसर्गेति । निष्यात् । निउपसर्गादस् भुवि धातोर्लिङि तिबादिकार्ये च विहिते “उप-  
सर्गप्रादुभ्यामिस्तिर्यचपरः” इति उपसर्गत्वात् सस्य षत्वे ‘निष्यात्’ इति साधु ।  
अचपरः—यथा प्रनिषन्ति । प्रादुःषन्ति । अस्तेभूरिति । असधातोर्भूभावः स्यात् आर्ध-  
धातुके परे इत्यर्थः । बभूव । असधातोर्लिटो लः स्थाने तिपि, तिपो णलादेशे, अनुबन्ध-  
लोपे “लिट् च” इत्यार्धधातुकत्वे “अस्तेभूः” इति असधातोः स्थाने ‘भू’ इत्यादेशे “भुवो  
वृमलुङ्लिटोः” इति वृगागमे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः”  
इति अभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति बलोपे “इस्वः” इति इस्वे “भक्तोरः” इति भुज  
उकारस्य अकारे “अभ्यासे चर्च” इति अभ्यासभकारस्य बकारे ‘बभूव’ इति रूपम् ।  
भविता । भविष्यति । अस्तु । असन्नातोः “लोट् च” इति ओटि लोटो कः

सोरेद्वावभ्यासलोपश्च ६।४।११६ घोरस्तेष एत्वं स्याद् हौ परे अभ्यासलोपश्च ।  
एत्वस्यासिद्धत्वाद्धेधिः । “शनसोः” इत्यल्लोपः । तातङ्पक्षे एत्व न । परेण तातङ्  
बाधात् । एधि, स्तात् । स्तम् । स्त । असानि । असाव । असाम् । आसीत् ।  
आस्ताम् । आसन् । स्यात् । स्याताम् । स्युः । भूयात् । अभूत् । अभविष्यत् । इण्  
गतौ ॥ १८ ॥ एति । इतः ॥ इणो यण् ६।४।८१ अजादौ प्रत्यये परे । यन्ति ।  
अभ्यासस्यासवर्णं ६।४।७८ अभ्यासस्येवर्णोवर्णयोरियङ्बुवदौ स्तोऽसवर्णेऽचि ।

स्थाने तिपि, शपि, “अदिप्रभृतिभ्यः शपः” इति शपो लुकि, ‘अस्ति’ इति स्थिते “एहः”  
इति तिप इकारस्योत्वे ‘अस्तु’ इति रूपम् । “तुङ्घोस्तातङ्गशिष्यन्यतरस्याम्” इति  
तोः स्थाने तातङ्, तस्य डित्वात् “शनसोरल्लोपः” इति अस्तेरकारलोपे ‘स्तात्’ इति  
पक्षे रूपम् । स्ताम् । लोटस्तसि, शपि, शपो लुकि, “लोडो लङ्बत्” इति लङ्बद्भावा-  
त् “तस्थस्यमिपान्तान्तन्तामः” इति तसस्तामादेशे “शनसोरल्लोपः” इति अस्तेरका-  
रस्य लोपे सति रूपम् । सन्तु । झौ “झोऽन्तः” इत्यन्तादेशे “एहः” इति उत्वे असो-  
ऽकारलोपे रूपम् । वसोरेद्वावभ्यासलोपश्चेति । घु अस् अनयोर्द्वन्द्वः । एत् हौ इति  
च्छेदः । ननु ‘अस् हि’ इति स्थिते “हुङ्गलभ्यो हेधिः” इति धित्वं परत्वाद्वाधित्वा  
“ध्वसोः” इति सकारस्य एत्वे कृते हुङ्गलभ्यः परत्वाभावात् कथं धिभाव इत्यत आह—  
एत्वस्यासिद्धत्वदिति । “असिद्धवदन्नामात्” इति आभीयत्वेनासिद्धत्वादित्यर्थः । तथाच  
‘अ ए धि’ इति स्थिते आह—शनसोरित्यल्लोप इति । ननु आशिषि ‘अस् हि’ इति स्थिते  
तातङ् बाधित्वा परत्वादेत्वं प्राप्नोतीत्यत आह—तातङ्पक्षे एत्वं नेति । एधि । असधातो-  
र्लोटि सिपि “सेङ्गपिच्च” इति सिपो हिरादेशः स च अपिच्, “ध्वसोरेद्वावभ्यास-  
लोपश्च” इति सस्य एत्वे, एत्वस्यासिद्धत्वाद् “हुङ्गलभ्यो हेधिः” इति हेधौ, “शनसोर-  
ल्लोपः” इत्यलोपे ‘एधि’ इति जायते । तातङ्पक्षे परेण तातङ् बाधादेत्वाभावे  
‘स्तात्’ इति रूपम् । असानि । असधातोर्लोटे मिवादेशे “मेनिः” इति मिपो निरादेशे  
“आङ्गुत्तमस्य पिच्च” इति आटि ‘असानि’ इति बोध्यम् । आसीत् । असधातोर्लङ्-  
स्तिपि इलोपे “आङ्गादीनाम्” इति आटि “आटश्च” इति वृद्धौ, शपो लुकि “अस्ति-  
सिचोऽपृक्ते” इति अपृक्तसञ्ज्ञकस्य तकारस्य ईडागमे ‘आसीत्’ इति रूपम् । एति ।  
इण् गतौ धातोर्लोटि तिपि “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे शपो लुकि विहिते  
‘एति’ इति सिद्धम् । इणो यण् । अत्र “अचि रनुधातुः” इत्यतोऽचि इत्यनुवर्त्य अङ्गा-  
धिकाराच्चिसप्रत्ययविशेषणत्वात्तादादिविधिरित्यभिप्रेत्य शेषपूरणेन सूत्रं व्याचष्टे—  
अजादौ प्रत्यये पर इति । यन्ति । गत्यर्थकादिष्धातोर्लोटि, झौ, झेरन्तादेशे, शपो लुकि,  
इयङ्गादेशं बाधित्वा “इणो इण्” इति यणि च कृते तत्सिद्धिः । अभ्यासस्यासवर्णं इति ।  
“अचि रनुधातुः” इत्यतोऽञ्जीति, खोरियङ्बुवङावित्तिचानुवर्तते । इश्च उश्च यू तयो-  
रिति विग्रहः । अभ्यासविशेषणमिदम् । तेन तदन्तविधिरिति यावत् । इयाय । इणो

इयाय ॥ दीर्घ इणः किति ७।४।६६ इणोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात् किति लिटि ।  
 ईयतुः । ईयुः । इययिथ, इयेथ । एता । एष्यति । एतु । ऐत् । ऐताम् । आयन् ।  
 इयात् । ईयात् । एतेलिङि ७।४।२४ उपसर्गात्परस्य इणोऽणो ह्रस्वः स्यादार्धधा-  
 तुके किति लिङि । निरियात् । ‘उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्’ । अभीयात् ।  
 अणः किम् ? समेयात् । इणो गा लुङि २।४।४५ “गातिस्था” इति सिचो लुक् ।  
 अगात् । ऐष्यत् । शीङ् स्वप्ने ॥ १६ ॥ शीङः सार्वधातुके गुणः ७।४।२१

लिटस्तिपो णलि, द्वित्वेऽभ्यासत्वे “अचो ङिति” इति वृद्धौ आयादेशे “अभ्यासस्या-  
 सवर्णे” इतीयङि च तत्सिद्धम् । दीर्घ इण इति । “अत्र लोपोऽभ्यासस्य” इत्यतः अभ्या-  
 सस्येति “व्यथो लिटि” इत्यतो लिटीति चानुवर्तते । तदाह—इणोऽभ्यासस्येति । ईयतुः ।  
 इणो लिटस्तसोऽतुसि द्वित्वेऽभ्यासत्वे ‘इ इ अतुस्’ इति जाते “इणो यण्” इत्यनेन  
 यणि “दीर्घ इणः किति” इत्यनेन दीर्घे स्त्वे विसर्गे च तत्सिद्धिः । इययिथ । इणो  
 लिटः सिपस्थलि द्वित्वे भारद्वाजनियमात् पाक्षिके इटि गुणेश्यादेशे, “अभ्यासस्या-  
 सवर्णे” इति इयङि च ‘इययिथ’ इति, इडभावपक्षे तु गुणे अभ्यासस्य इयङि ‘इयेथ’  
 इति । ऐत् । इणो लङ्स्तिप इलोपे इकारस्य गुणे आटि वृद्धौ च तत्साधु । आयन् ।  
 इणो लङो झौ झस्यान्तादेशे इकारस्य ‘इणो यण्’ इति यणि तस्याभीयत्वेनासिद्ध-  
 त्वादाटि च तत्सिद्धिज्ञया । एतेलिङि । “उपसर्गाद्वस्व ऊहतेः” इत्यतः उपसर्गाद्वस्व  
 इति “केऽणः” इत्यतः अण इति “अयङ्गि ङिति” इत्यतः किति चानुवर्तते  
 तदाह—उपसर्गात्परस्येति । निरियात् । निरुपसर्गपूर्वात् इणधातोराशीलिङ्स्तिप इलोपे  
 यासुटि तस्यार्धतुकत्वे कित्वे सलोपे “अकृत्सार्वधातुकयाः” इति दीर्घ “एतेलिङ्”  
 इति ह्रस्वे निरियादिति निष्पन्नम् । ननु ‘अभीयात्’ इत्यत्रापि ह्रस्वः स्यादित्यत आह—  
 उभयत इति । अत्र एकादेशस्य ईकारस्य पूर्वान्तत्वे उपसर्गानुप्रवेशादिणधातुत्वं न सम्भ-  
 वति । परादिस्त्वेन इणधातुत्वाश्रयणे तु नोपसर्गात्परत्वम् । उपसर्गैकदशस्य इकारस्य  
 ईकारात्मना सत्वेन अभ् इत्यस्य उपसर्गत्वाभावात् । एकादेशस्य आदिक्त्वमाश्रित्य  
 इणधातुत्वम्, अन्तवत्त्वमाश्रित्य तस्य उपसर्गानुप्रवेशश्चेत्यपि न सम्भवति । पूर्वपरश-  
 षाभ्याम् अन्तादिशब्दाभ्याञ्च विरोधस्य पुरःस्फूर्तिकतया विरुद्धातिदेशद्वयस्य युगपद-  
 सम्भवादित्यर्थः । समेयादिति । सम् आ इयात् समेयादित्यत्र एकारस्य अनणत्वाच्च  
 ह्रस्वः । ग्रहणकसूत्रादन्यत्र पूर्वैर्णैव णकारेण प्रत्याहारश्रयणादिति भावः । इणो गा  
 लुङि । इणधातोः गा इत्यादेशः स्यात् लुङीति सूत्रार्थः स्पष्टः । अगात् । “इणो लुङि”  
 इति गादेशे तिप इकारलोपे अटि, च्लौ, च्लेः सिचि, इचि गते ‘अ गा स त्’ इति स्थिते  
 “गातिस्थाधुपाभूयः सिचः परस्मैपदेषु” इति सिचः सलोपे ‘अगात्’ इति रूपम् ।  
 अगाताम्, अगुः । अगाः, अगातम्, अगात । अगाम् । अगाव, अगाम । इत्यवशिष्ट-  
 रूपाणि । ऐष्यत् । इणधातोर्लङ्स्तिपि, स्ये आटि, वृद्धौ सस्य पक्षे तिप इकारलोपे च

“ङिति च” इत्यस्यापवादः । शेते । शयाते ॥ शीङो रुट् ७।१।७ शीङः परस्य ऋदेशस्यातो रुडागमः स्यात् । शेरते । शेधे । शयाथे । शेध्वे । शये । शेवहे । शेमहे । शिश्ये । शिश्याते । शिशियरे । शयिता । शयिष्यते । शेताम् । शयाताम् । शेरताम् । अशेत । अशयाताम् । अशेरत । शयीत । शयीयाताम् । शयीरन् । शयि-

‘ऐष्यत्’ इति रूपम् । शीङः सार्वधातुक इति । स्पष्टम् । “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इत्येव सिद्धे किमर्थमिदमित्यत आह—क्विति चेत्स्यापवाद इति । शेते । शीङधातोः “वर्तमाने लट्” इति लटि, लटो लः स्थाने शीङो ङित्वात् “अनुदात्तङित आत्मनेपदम्” इत्यात्मनेपदम् । प्रथमपुरुषैकवचनविवक्षायां ‘त’ कृते, शपि, शपो लुकि, तस्य अपित्सार्वधातुकत्वात् “सार्वधातुकमपित्” इति ङित्वेन गुणाभावे प्राप्ते “शीङः सार्वधातुके गुणः” इति गुणे “टित् आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च ‘शेते’ इति रूपम् । शयाते । लट् आतामि शपो लुकि, “शीङः सार्वधातुके गुणः” इति गुणे अयादेशे टेरेत्वे च रूपम् । शीङो ङिति । “झोऽन्तः” इत्यतो ‘झो’ इत्यनुवर्तते । “अदभ्यस्तात्” इत्यतः अदित्यनुबृत्तं षष्ठ्या विपरिणम्यते । तदाह—शीङः परस्य ऋदेशस्येङि । शेरते । शीङो लटो झप्रत्यये, शपो लुकि “शीङः सार्वधातुके गुणः” इति गुणे “आत्मनेपदेष्वनतः” इति झस्यातादेशे टेरेत्वे “शीङो रुट्” इति रुटि, उटि गते ‘टित्वादाद्याव्यवे जाते सति ‘शेते’ इति रूपम् । शेधे । लटः सिपि, शपो लुकि, “यासः से” इति से आदेशे “शीङः सार्वधातुके गुणः” इति गुणे षत्वे च रूपम् । शये । शीङो लट उत्तमपुरुषैकवचने इटि गुणे अयादेशे टेरेत्वे च कृते ‘शये’ इति रूपम् । शिये । शीङो लिटस्ते “लिटस्तझयोरेशिरेच्” इति तस्य स्थाने ए शि गते “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति इति द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये च कृते “एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य” इति यणि ‘शिरये’ इति रूपम् । शिदयाते । शीङो लिट आतामि, द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये यणि, टेरेत्वे च रूपम् । शिशियरे । लिटस्थाने शे कृते, “लिटस्तझयोरेशिरेच्” इति इरेचि गते द्वित्वे अभ्यासकार्ये यणि च रूपम् । शिशियधे, शिशयाथे, शिशियध्वे । शिरये, शिरियवहे, शिरियमहे । शयिता । लुटस्ते, तस्य स्थाने डात्वे, तासि, इटि, गुणे अयादेशे ङित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपे च कृते रूपम् । शयिष्यते । लुटस्ते स्ये इटि, गुणे अयादेशे षत्वे च कृते टेरेत्वम् । शेताम् । लोटस्ते शपि, शपो लुकि, “शीङः सार्वधातुके गुणः” इति गुणे, टेरेत्वे “आमेतः” इति एकारस्थमि कृते रूपम् । शयाताम् । लोट आतामि, शपो लुकि, गुणे अयादेशे, टेरेत्वे, एकारस्थामि कृते रूपम् । शेरताम् । लोटो लः स्थाने ऋदेशे शपो लुकि, “आत्मनेपदेष्वनतः” इति झस्य स्थाने अतादेशे “शीङो रुट्” इति रुडागमे टेरेत्वे, एत्वस्य चाभि कृते रूपम् । शेध्व, शयायाम्, शेध्वम्, शयानि, शयाव, शयाम इति अवशिष्टरूपाणि । अशेत । शीङो लङि, लङस्ते, शपि, शपो लुकि, अटि, “शीङः सार्व-

षीष्ट । अशयिष्ट । अशयिष्यत । इड् अभ्ययने ॥ २० ॥ इड्कावध्युपसर्गतो न व्यभिवरतः । अधीते । अधीयाते । अधीयते ॥ गाङ् लिटि २।४।४६ इडो गाङ् स्याल्लिटि । अधिजगे । अधिजगाते । अधिजगिरे । अध्येता । अध्येष्यते । अधी-

धातुके गुणः” इति गुणे ‘अशेत’ इति रूपम् । शयीत । शीडो लङ्स्तप्रत्यये शपो लुकि “क्षीकः सार्वधातुके गुणः” इति गुणे “लिङ्ः सीयुट्” इति सीयुटि, उटि गते टित्वा-  
दात्मन्यवे “लिङ्ः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे अयादेशे यलोपे च तत्सिद्धिः ।  
शयीयाताम् । लिङ् आतामि, शपो लुकि, यलोपाभावे च ‘शयीयाताम्’, इति रूपम् ।  
शयीरन् । शे शपो लुकि, सीयुटि उटो लोपे गुणे सलोपे “क्षस्य रन्” इति रन्नि “लोपो  
व्योर्वलि” इति यलोपे “एचोऽयवायावः” इति अयादेशे च कृते रूपम् । शयीथाः,  
शयीयाथाम्, शयीध्वम् । शयीय, शयीवहि, शयीमहि । इति रूपाणि । शयिषीष्ट ।  
शीडित्यस्माद्गतोराशीर्लिङ्गस्ते सीयुटि उटो लोपे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति  
गुणे “आर्धधातुकस्येड्वल्लादेः” इतीटि “एचोऽयवायावः” इति अयि ‘शय् इ सीय  
त’ इति स्थिते “लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे “सुट् तिथोः” इति सुटि उयवितौ  
सङ्गस्य षत्वे तस्य षट्त्वे च विहिते ‘शयिषीष्ट’ इति वेद्यम् । अशयिष्ट । शीडो लङ्गस्ते  
च्लौ “ञ्लेस्सिच” इति च्लेस्सिजादेशे इचावितौ इटि “सार्वधातुकार्धधातुकयोः”  
इति गुणेऽयादेशे सकारस्य षत्वे षट्त्वे च विहिते अडागमे “अशयिष्ट” इति सङ्गस्य-  
नीयम् । अशयिष्यत । शीडो लङ्गि, अटि तादेशे स्ये तस्यार्धधातुकत्वे इटि गुणेऽयि  
षत्वे च कृते । ‘अशयिष्यत’ इति अवगन्तव्यम् । अधीते । अधिपूर्वकात् इड् अभ्ययने  
धातोर्लटि तादेशे टेरित्वे च कृते “इडो यणचि” इति यणं बाधित्वा सवर्णदीर्घे ‘अधीते’  
इति वेदनीयम् । अधीयाते । अधिउपसर्गात् अध्ययनार्थकेड्धातोर्लटि आतामि, अधि  
इ आताम् इति स्थिते “सार्वधातुकर्मपित्” इति पिङ्गित्वादातासो डित्वं, डित्वात्  
“सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति प्रासस्य गुणस्य निषेधः । ननु अत्र “धातूपसर्गयोः  
कार्यमन्तरङ्गम्” इति अन्तरङ्गत्वात्पूर्वं सवर्णदीर्घस्य प्राप्तिः, “बहिर्भूतनिमित्तकत्वं  
बहिरङ्गमिति इयङो बहिरङ्गत्वात् “असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे” इति परिभाषया अन्त-  
रङ्गत्वेन सवर्णदीर्घेणैव भाव्यमिति चेत् ? न । “वर्णादाङ्गं बलीयः” इति न्यायेन  
इयङ् एवोचितत्वात् । इतीयाङि, टेः—आमः, एत्वम् । “अङः सवर्णे दीर्घः” इति  
इयङ्ः इकारेण सह उपसर्गोकारस्य सवर्णदीर्घे ‘अधीयाते’ इति रूपम् । अधीयते ।  
लटो शे, “आत्मनेपदेष्वनतः” इति त्रस्याव्येवं विशेषः । टेः एत्वे ‘अधीयते’ इति  
बोध्यम् । अधीषे, अधीयाये, अधीध्वे । अधीये, अधीवहे अधीमहे । गाङ् लिटि ।  
“इङ्क्ष” इत्यतस्तदनुबुद्धेरिति भावः । स्थानिवत्त्वादेव डित्वे सिद्धे डित्करणे “गाङ्-  
क्यादिभ्यः” इत्यत्र “इङ्क्षो गा लुङि” इत्यस्य ग्रहणाभावार्थमिति भाव्यम् । अधिवमे ।  
अधिपूर्वाङ्गिके किटि “गाङ् किटि” इति इङ्गे गाङ्गदेशेऽनुबन्धलोपे लिटो कः इत्यने

ताम् । अधीयताम् । अधीयताम् । अधीय । अधीयताम् । अधीयम् । अध्ययै ।  
अध्ययावहे । अध्ययामहे । अध्ययैत । अध्ययैताम् । अध्ययत । अध्ययैथाः । अध्यै-  
यायाम् । अध्यैध्वम् । अध्यैयि । अध्यैवहि । अध्यैमहि । अधीयीत । अधीयीया-

ते, तस्य एणि, श्रुते द्वित्वे, अभ्यासत्वे, इत्वे, लुत्वे, “आतो लोप इटि च” इत्या-  
लोपे च तत्सिद्धिः । आतामि—अधिजगाते । शे—अधिजगिरे । अधिजगिषे, अधिज-  
गाथे, अधिजगिष्वे । अधिजगे, अधिजगिगवहे, अधिजगिमहे । अध्येता । अधिपूर्वा-  
दिङो लुटस्ते तासि, ‘अधि इ तांस् तं’ इति स्थिते “लुटः प्रथमस्य डारौरसः” इति  
तस्य स्थाने डात्वे, द्वित्वसामर्थ्यादमस्यापि टेलोपे तांस आर्धधातुकत्वात् “सार्वधातु-  
कार्धधातुकयोः” इति गुणे ‘अधि ए त् आ’ इति जाते “इको यणचि” इति यणि, ‘अ-  
ध्येता’ इति रूपम् । अग्रे—अध्येतारौ, अध्येतारः । अध्येतासे, अध्येतासाथे, अध्येताध्वे ।  
अध्येताहे, अध्येतास्वहे, अध्येतासमहे । इति रूपाणि । अध्येष्यते । अधिपूर्वादिङो  
लुटस्ते, “स्यतासी लृलुटोः” इति स्ये टेरत्वे सस्य षत्वे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः”  
इति गुणे “इको यणचि” इति यणि च कृते ‘अध्येष्यते’ इति रूपम् । अध्येष्येते,  
अध्येष्यन्ते । अध्येष्यसे, अध्येष्येथे, अध्येष्यध्वे । अध्येष्ये, अध्येष्यावहे, अध्येष्यामहे ।  
इति । अधीताम् । अधिपूर्वादिङो लोटि, लोटो लः स्थाने ते, शपि, शपो लुकि, टेरत्वे  
“आमेतः” इत्येकारस्यामि, धातुपसर्गयोः सवर्णदीर्घं च जाते ‘अधीताम्’ इति  
रूपम् । अधीयाताम् । अधिपूर्वादिङो लोट आतामि, शपि, शपो लुकि, इयङि, सव-  
र्णदीर्घं टेरत्वे, “आमेतः” इति एकारस्यामि च कृते रूपम् । अधीयताम् । लोटो शे  
शस्याति, शपो लुकि, इयङि टेरत्वे “आमेतः” इति एकारस्यामि च कृते ‘अधीय-  
ताम्’ इति रूपम् । अधीय । लोटो मध्यमपुरुषैकवचने थासि शपो लुकि “थासः  
से” इति थासः सेत्वे “सवाम्थां वामौ” इति स्कारोत्तरवर्त्येकारस्य वकारे सस्य षत्वे,  
विहिते च दीर्घत्वे “अधीष्व” इति सिद्धम् । अधीयायाम् । इत्यस्य तु अधीयातामि-  
तिवत् साधनिका अवगन्तव्या । ध्वमि-दीर्घत्वे—अधीध्वम् । अध्ययै । इङो लोट उक्तं-  
मपुरुषैकवचने इटि शपो लुकि “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरत्वे “एत ऐ”  
इत्येकारस्यैकारे कृते ‘अधि इ ऐ’ इति स्थिते, लोट आटि “आटश्च” इति  
बृद्धौ ‘ऐ’ इति जाते पित्वात् पूर्वस्येकारस्य गुणे ‘अधि ए ऐ’ इति स्थिते “एचोऽय-  
चायावः” इत्ययादेशे पूर्वस्येको यणि ‘अध् य् अय् ऐ’ इति जाते अच्चीनं परेण  
संयुक्ते ‘अध्ययै’ इति बोध्यम् । अध्ययावहे । लोटो वहिप्रत्यये शपो लुकि टेरत्वे  
एकारस्य ऐकारे आटि गुणेऽयादेशे यणि ‘अध्ययावहे’ इति सिध्यति । एवम्—  
अध्ययामहे । अध्येत । अधिपूर्वादिङो लङस्तप्रत्यये शपो लुकि आटि वृद्धौ यणि  
च तत्सिद्धिः । अध्यैयाताम् । आतामि शपो लुकि परत्वादियङि तत आटि वृद्धौ यणि  
च तत्सिद्धम् । अध्यैयत । “आत्मनेपदेष्वनतः” इति श्रुत्याते-रीषं पूर्ववत् ।



ताम् । अधियीत् । अध्येषीष्ट । विभाषा लुङ्लुङोः २।४।१० इको गाङ् वा  
 स्यात् लुङ्लुङोः । गाङ्कुटादिभ्योऽङ्गिण्डित् १।२।१ गाङ्देशात्कुटादिभ्यश्च  
 परेऽङ्गित् प्रत्यया क्तिः स्युः । घुमास्थागापाजहातिसां हलि ६।४।६६ एषा-  
 मात् ईत्स्याद्वातादौ द्वित्यार्धधातुके । अध्यगीष्ट, अध्यैष्ट । अध्यगीष्यत्, अध्येष्यत् । दुह  
 प्रपूरणे ॥ २१ ॥ दोग्धि । दुग्धः । दुहन्ति । धोक्षि । दुग्धः । दुग्धे । दुहाते । दुहते ।

यासि-अध्यैथाः । आथामि-अध्यैयाथाम् । ध्वमि-अध्यैध्वम् । इटि-अध्यैषि । अध्यैवहि ।  
 अध्यैमहि । अधीयीत् । अधिपूर्वात् इको लिङ्स्तप्रत्यये शपो लुकि सीयुटि सुटि स्लोपे  
 यलोपे इयङि सवर्णदीर्घे च तत्साधु । अध्येषीष्ट । इङ् आशीर्लिङ्स्ते सीयुटि उटि गते  
 यलोपे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे ‘अधि ए सी स त’ इति स्थिते “सुट्  
 तियोः” इति सुटि उटि गते यणि च कृते ‘अध्ये सी स त’ इति जाते द्वयोः सकारयोः  
 षत्वे, ष्टुत्वे च विहिते च ‘अध्येषीष्ट’ इति । विभाषालुङ्लुङोः । शेषं पूरयति-इको गाङ्  
 वा स्यादिति । “इङ्श्च” इत्यतो “गाङ् लिटि” इत्यतश्च तदनुवृत्तेरिति भावः । गाङ्कुटा-  
 दिभ्योऽङ्गिण्डित् । अ ण्व ञ्यौ तौ इतौ यस्य स ङित् स न भवतीति अङ्गित्  
 गाङ् च कुटादयश्चेति इन्द्रात्पञ्चमी । गाङिति ङकारानुबन्धात् “इणो गा लुङि”  
 इत्यस्य न ग्रहणमित्युक्तम् । नापि गाङ् गतौ, इत्यस्यात्र ग्रहणम् । तत्र ङकारस्या-  
 स्मनेपदप्रापणेन चरितार्थत्वात् इङादेशस्य गाङो ङकारो नास्मनेपदप्रापणेन चरितार्थः ।  
 स्थानिवत्वेनैव तत्सिद्धेः । तदाह—गाङ्देशादिति । घुमास्थागापाजहातिसां हलि । षोऽ-  
 न्तकर्मणि इत्यस्य कृतात्वस्य निर्देशः । घु मा स्था गा पा जहाति सा एषां इन्द्रात्  
 षष्ठी । “आर्धधातुके” इत्यधिकृतम् । “आतो लोप इटि च” इत्यतः आत इति  
 “ईद्यति” इत्यतः ईदिति “अनुदात्तोपदेश” इत्यतः ङिति इति चानुवर्तते । तदाह—  
 एषामित्यादिना ॥ अध्यगीष्ट । अधिपूर्वकादिङ्धातोर्लुङि तप्रत्यये “विभाषा लुङ्लुङोः”  
 इतीको गाङ्देशे इटि च्लेः सिचि ‘गाङ्कुटादिभ्योऽङ्गिण्डित्’ इति सिचो ङित्वे  
 “घुमास्थागापाजहातिसां हलि” इति ईत्वे यणि षत्वे ष्टुत्वे च ‘अध्यगीष्ट’ इति  
 प्रकृत्यसिर्जया । गाङोऽभावे आटि वृद्धौ पूर्वोक्तकार्ये च ‘अध्यैष्ट’ इति । अध्यगीषाताम्,  
 अध्यगीषत् । अध्यगीष्ठाः, अध्यगीषाथाम्, अध्यगीध्वम् । अध्यगीषि । अध्यगीष्वहि ।  
 अध्यगीष्वमहि । अध्यगीष्यत् । इको लृङ्स्ते समागते “विभाषा लुङ्लुङोः” इति गाङ्-  
 देशे तस्य ङित्वे आकारस्येकारे अटि यणि सस्य षत्वे कृते ‘अध्यगीष्यत्’ इति । गाङ्-  
 देशाभावे—आटि वृद्धौ यणि स्ये सस्य षत्वे च कृते ‘अध्येष्यत्’ इति । दोग्धि । दुह-  
 प्रपूरणे इत्यस्मादातोर्लट्स्तिपि समागते शपो लुकि “दादेशातोर्धः” इति हस्य षत्वे  
 “अषस्तथोर्धोऽधः” इति तस्य षत्वे ‘दुग्धि’ इति जाते ‘शलां जश् शशि’ इति षस्य  
 गत्वे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे ‘दोग्धि’ इत्यस्य निष्पत्तिः । दुग्धः । तसि समा-  
 गते शपो लुकि, “दादेशातोर्धः” इति हस्य षत्वे “अषस्तथोर्धोऽधः” इति तस्य षत्वे

धुक्ते । दुहाये । धुग्वे । दुहे । दुहहे । दुहाहे । दुदोह, दुदुहे । दोग्धा । धोक्ष्यति,  
धोक्ष्यते । दोग्धु, दुग्धात् । दुग्धाम् । दुहन्तु । दुग्धि, दुग्धात् । दुग्धम् । दुग्ध ।  
दोहानि । दुग्धाम् । दुहाताम् । दुहताम् । धुक्त्व । दुहायाम् । धुग्वम् । दोहै ।

“झलां जश् झशि” इति घस्य गत्वे सस्य क्त्वे रस्य विसर्गे, अङ्गित्वेन छित्वात् गुणा-  
भावः । झौ तु—दुहन्ति । धोक्षि । दुहेर्लटः सिपि, शपो लुकि, गुणे हस्य घत्वे “एकाचो  
बशो भष् झषन्तस्य स्ञ्वोः” इति हस्य घत्वे घस्य गत्वे “खरिच” इति चत्वेन क्त्वे  
“आदेशप्रत्यययोः” इति घत्वे, क्त्वाः संयोगे घत्वे ‘धोक्षि’ । थसि—दुग्धः । पूर्ववत् ।  
दुग्ध, दोक्षि, दुह्मः, दुह्मः । दुग्धे—दुहो लटः प्रथमपुरुषैकवचने आत्मनेपदप्रत्यये ते स-  
मागते शपो लुकि टेरेत्वे “सार्वधातुकमपित्” इति छिट्त्वे “ङिति च” इति गुणाभावे  
“दादेर्धातोर्घः” इति हस्य घत्वे “झषस्तथोर्धोऽधः” इति तस्य घत्वे “झलां जश् झशि”  
इति घस्य गत्वे ‘दुग्धे’ इति साधु । धुक्षे । थसि शपो लुकि हस्य घत्वे “एकाचो  
बशः” इति दस्य घत्वे “झलां जश् झशि” इति घस्य गत्वे “खरिच” इति क्त्वे  
“थासः से” इति थासः से कृते ‘धुक्ते’ इति रूपं बोध्यम् । दुदोह । दुहेर्लटस्तिपि,  
तिपो णलि, धातोर्द्वित्वे हलोपे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे ‘दुदोह’ इति सिद्धम् ।  
दुदुहत्तुः, दुदुहः । दुदोहिय, दुदोग्ध । दुदुहथुः, दुदुह । दुदोह । दुदुहिव । दुदुहिम ।  
दुदुहे । दुहेर्लटः स्थाने आत्मनेपदिते, द्वित्वेऽभ्यासकार्ये हलोपे, तस्यैशि शलोपे,  
दुदुहे । दुदुहाते, दुदुहरे । दुदुहिषे, दुदुहाये दुदुहिङ्वे, दुदुहिष्वे । दुदुहे, दुदुहिवहे,  
दुदुहिमहे । दोग्धा । दुहो लुटस्तिपि “स्यतासील्लुटोः” इति तासि “दादेर्धातोः” इति  
हस्य घत्वे “झषस्तथोर्धोऽधः” इति तस्य घत्वे “लुटः प्रथमस्य” इति तिपो ङात्वे  
टेलोपि “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे ‘दोग्धा’ इति सिद्धम् । दोग्धारौ, दोग्धारः,  
दोग्धासि, दोग्धास्थः, दोग्धास्थ, दोग्धास्मि, दोग्धास्वः, दोग्धास्मः । दोग्धासे,  
दोग्धासाये, दोग्धाष्वे । दोग्धाहे । दोग्धास्वहे, दोग्धास्महे । धोक्ष्यति । दुह्धातोर्ल-  
टस्तिपि, स्ये, इङभावे, “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे “दादेर्धातोर्घः” इति हस्य  
घत्वे “एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ञ्वोः” इति दस्य भष्भावेन घत्वे “खरिच” इति  
घस्य क्त्वे काल्परकत्वात्घत्वे कष्योगे च ‘धोक्ष्यति’ इति रूपम् । धोक्ष्यते । आत्मने-  
पदिप्रत्यये लुटस्ते, टेरेत्वे शेषं पूर्ववत् । दोग्धु । दुह्धातोर्लटस्तिपि, शपि, शपो लुकि,  
“पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे “दादेर्धातोर्घः” इति हस्य घत्वे “झषस्तथोर्धोऽधः”  
इति तस्य घत्वे “झलां जश् झशि” इति घस्य गत्वे “एहः” इति तिप इकारस्योत्वे  
‘दोग्धु’ इति रूपम् । दुग्धात् । तातङि, गुणाऽभावे अङोऽलोपे शेषं पूर्ववत् । तामि—  
दुग्धाम् । दोहानि । दुहो लोटो मिपि, शपो लुकि “मेर्निः” इति मेर्नौ “आङुत्तमस्य  
पिच्च” इति आटि ट्गते, टित्वादाद्यावयवे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे ‘दोहानि’  
इति रूपम् । दोहाव, दोहाम । वसि, मसि च, “लोटो लङ्वत्” इति लङ्वत्वे “नित्यं

दोहावहै । दोहामहै । अधोक् । अदुग्धाम् । अदुहन् । अदोहम् । अदुग्धे । अदुहा-  
ताम् । अदुहतं । अदुग्धम् । दुह्यात् । दुहीत । लिङ्सिचावात्मनेपदैषु १।२।११

ङित्तः” इति सूत्रेण “आहुत्तमस्य पिच्च” इत्यादि, “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणः ।  
दुग्धाम् । दुह्धातोर्लोङि, लोटो लः स्थाने आत्मनेपदसञ्ज्ञके ते शपि, शपोलुकि, “सार्व-  
धातुकमपित्” इति तस्य ङित्वाद्गुणाभावे “दादेर्धातोर्घः” इति हस्य घत्वे “झषस्त-  
थोर्घो घः” इति तस्य घत्वे घस्य जश्त्वे टेरेत्वे “आमेतः” इति एकारस्यामि कृते ‘दु-  
ग्धाम्’ इति रूपम् । दुहाताम् । “आत्मनेपदेष्वातः” इति अस्य अत आदेशः, शेषं पूर्ववत् ।  
धुक् । दुह्धातोर्लोङ्स्थानि, शपो लुकि, यासः से, “सवाम्यां वामौ” इति एकारस्य  
वादेशे हस्य घत्वे दुहोदस्य भम्भावे घस्य चत्वेन कत्वे कात्परकत्वात्सस्य घत्वे कष्योगे चे  
‘धुक्’ इति रूपम् । आथामि—दुहाथाम् । धुक् । दुह्धातोर्ध्वमि, शपो लुकि “दादेर्धा-  
तोर्घः” इति हस्य घत्वे “एकाचो बशो भष् झषन्तस्य र्ध्वोः” इति दस्य घत्वे “झलां  
जश् झशि” इति घस्य गत्वे टेरेत्वे “सवाम्यां वामौ” इति ‘ध्वे’ एकारस्यामि कृते रूपम् ।  
दोहै । टेरेत्वे आटि “एत ऐ” इति एकारस्य ऐकारः, शेषं पूर्ववत् । दोहावहै । दोहा-  
महै । आटि “एत ऐ” इति विशेषः । अधोक् । दुह्धातोर्लङ्स्थितिपि, शपो लुकि, अङ्गस्या-  
दागमे, “पुगन्त०” इति लघूपधगुणे “इतश्च” इति तिप् इकारलोपे “हल्ङ्याभ्य०”  
इति तलोपे “दादेर्धातोर्घः” इति हस्य घत्वे “एकाच०” इति भम्भावेन दस्य घत्वे  
घस्य जश्त्वेन गकारे तस्य चत्वेन ककारे ‘अधोक्’ इति रूपम् । अदुग्धाम् । दुह्धातो-  
र्लङ्स्थितिपि तसस्तामि शपि, शपो लुकि “दादेर्धातोर्घः” इति हस्य घत्वे “झषस्तथोर्घो  
घः” इति तस्य घत्वे घस्य “झलां जश् झशि” इति गत्वे अटि ‘अदुग्धाम्’ इति  
रूपम् । अदुहन् । अस्य “सार्वधातुकमपित्” इति ङित्वाद्गुणाभावे “झोऽन्तः” इत्य-  
न्तादेशे “इतश्च” इति इकारलोपे तकारस्य संयोगान्तलोपे अटि च रूपम् । सिपि—  
अधोक् । थसि—अदुग्धम् । थे—अदुग्ध । मिपि—अदोहम् । मिपः पित्वालघूपधगुणौ  
मिपोऽमादेशः शेषं पूर्ववत् । वसि—अदुह । मसि—अदुह । अत्र “नित्यं ङित्तः” इति  
संज्ञोपः । अदुग्ध । दुह्धातोर्लङ्स्थाने आत्मनेपदसञ्ज्ञके ते, शपि, शपोलुकि, “दादेर्धातो-  
र्घः” इति हस्य घत्वे “झषस्तथोर्घो घः” इति तस्य घत्वे “झलां जश् झशि” इति जश्त्वेन  
घस्य गत्वे अटि च कृते ‘अदुग्ध’ इति रूपम् । अदुहाताम् । लङ् आत्मनेपदे आतामि, शपो  
लुकि अटि च रूपम् । अदुहतं । लङो शे, शपो लुकि “आत्मनेपदेष्वातः” इति  
अतादेशे अटि च कृते रूपम् । अदुग्धाः, अदुहायाम् । अधुक् । दुह्धातोर्लङ्, लङः  
स्थाने मध्यमपुरुषबहुवचने ध्वमि कृते शपो लुकि “दादेर्धातोर्घः” इति हस्य घत्वे  
“एकाचो बशो भष् झषन्तस्य र्ध्वोः” इति दस्य भम्भावेन घत्वे “झलां जश् झशि”  
इति जश्त्वेन घस्य गत्वे अटि च ‘अधुक्’ इति रूपम् । अदुहि, अदुहहि,  
अदुह्याहि । दुह्यात् । विधिलिङि रूपम् । आशिषि तु—दुह्धातोः “आशिषि लिङ् लोटौ”  
इति लिङि, लिङ्स्थितिपि, तस्यार्धधातुकत्वात् शबभावे यासुटि, अटि गते लिङ्स्थिति-

इक्षमीपादलः परी मलादी लिङ्सिचौ कितौ त्तस्तकि । धुक्षीष्ट । शल इगु-  
पधादनिटः क्सः ३।१।४५ इगुपधो चः शलन्तस्तस्मादनिटश्च्लेः क्सादेशः  
स्यात् । अधुक्षत् । लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ७।३।७३ एषां  
क्सस्य लुग्वा स्यादन्त्ये तकि । अदुग्ध-अधुक्षत् । क्सस्याचि ७।३।७- अजादौ

वयवे “इतश्च” इति तिप् इकार लोपे ‘दुह्यास् त्’ इति जाते “स्कोः संयोगाधोरन्ते  
च” इति स्रलोपे च रूपम् । दुहीत । दुह्धातोर्विधिलिङ्गस्ते समागते क्षपो लुकि “लिङ्गः  
सीयुट्” इति सीयुङागमे उटो लोपे टित्वादाद्यावयवे “लिङ्गः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति  
सलोपे ‘दुह् ईय् त्’ इति जाते “लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे इकारस्यकारेण सह  
संयोगे च विहिते ‘दुहीत’ इति । दुहीयाताम्, दुहीरन् । दुहीयाः, दुहीयायाम्,  
दुहीष्वम् । दुहीय । दुहीवहि । दुहीमहि । लिङ्सिचावात्मनेपदेषु । “इको मल” इति  
“हलन्ताच्च” इति च सूत्रमनुवर्तते । “असंयोगाद्” इत्यतः किदिति चानुवर्तते ।  
इक इति सामीप्ये षष्ठी हलि अन्वेति । तदाह—इक्षमीपादल इत्यादिना । धुक्षीष्ट ।  
दुह्धातोरासीलिङ्गस्ते, सीयुटि, उटि गते “लिङ्सिचावात्मने०” इति लिङ्गः क्स्त्वे  
“विङिति च” इति गुणभावे “लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे “दादेर्धातोर्धः” इति  
हस्य घत्वे “एकाचो वक्षः” इति भष्मावे “स्वरि च” इति घस्य कत्वे “आदेशप्रत्यय-  
बोः” इति सस्य घत्वे क्ब्योगे च “सुट्तिथोः” इति सुटि, उटि गते टित्वादाद्यावयवे,  
सस्य घत्वे “ःटुना ष्टुः” इति ष्टुत्वे च कृते ‘धुक्षीष्ट’ इति रूपम् । धुक्षीयास्ताम्,  
धुक्षीरन् । धुक्षीष्टाः, धुक्षीयास्थाम्, धुक्षीष्वम् । धुक्षीय, धुक्षीवहि, धुक्षीमहि ।  
शल इगुपधादनिटः क्सः । “धातोरेकाच” इत्यतोऽनुवृत्तधातुविशेषणत्वात्तदन्तविधिरिति  
भावः । सिचोऽपवादः क्सादेशः अदन्तः । ककार इत् । अधुक्षत् । दुहो लुङ्गस्तिपि  
“च्लि लुङि” इति च्लौ, “शल इगुपधादनिटः क्सः” इति च्लेः क्सादेशे कृते ‘दुह क्स’  
इति स्थिते क्स्त्वेत्सञ्ज्ञायां लोपे च “दादेर्धातोर्धः” इति हस्य घत्वे “एकाचो वक्षः”  
इति भष्मावेन हस्य घत्वे ‘धुक्ष् स्ति’ इति जाते “स्वरि च” इति घस्य कत्वे “लुङ्-  
लङ् लृङ् च्वङ् द्वाप्तः” इति अङागमे तिप् इकारलोपे सस्य घत्वे क्षोः संयोगे च च  
कृते ‘अधुक्षत्’ इति रूपम् । अग्रे—अक्षताम्, अधुक्षन् । अधुक्षः, अधुक्षतम्,  
अधुक्षत् । अधुक्षम्, अधुक्षाव, अधुक्षाम । इति । लुग्वा दुह० । दन्त्ये तकीति । दन्त्या-  
दौ तकीत्यर्थः । प्रत्ययादर्शनत्वात्सर्वादेशोऽयं लुक् । अदुग्ध । दुह्धातोः लुङ् आत्मने-  
षदिप्रत्यये ते समागते च्लौ “शल इगुपधादनिटः क्सः” इति क्सादेशे “लुग्वा दुहदि-  
हलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये” इति क्सस्य लुकि “दादेर्धातोर्धः” इति हस्य घत्वे “क्व-  
स्तथोर्धोऽघः” इति तस्य घत्वे “शलां जश् शशि” इति घस्य गत्वे अटि च ‘अदुग्ध’  
इति रूपम् । क्सस्य लुगभावे ‘अधुक्षत्’ इति रूपम् । क्सस्याचीति । अचीत्यस्याङ्गा-  
क्षिसप्रत्ययविशेषणत्वात् तदादिविधिः । “घोर्धोपो लोटि वा” इत्यतो लोप इत्यनुवर्तते ।

तच्च कसस्य लोपः स्यात् । “अलोन्त्यस्य” इत्यकारलोपः । अधुच्चाताम् । अधुक्षन्त ।  
अदुग्धाः-अधुक्षयाः । अधुक्षायाम् । अधुग्वम्, अधुक्ष्वम् । अधुक्षि, अदुहहि,  
अधुक्षवहि । अधुक्षामहि । अधोक्ष्यत् । एवं दिह उपचये ॥ २२ ॥ लिह आस्वा-

तदाह—अजादावित्यादिना । अलोऽन्त्यस्येति । अन्यस्याकारस्य लोप इति भावः ।  
अधुच्चाताम् । दुहो लुङ् आतामि, “च्छि लुङि” इति च्लौ “शल इगुपधादनिटः कसः”  
इति कसे, क्लोपे ‘दुह स आताम्’ इति स्थिते “कसस्याचि” इति सलोपे प्राप्ते  
“अलोऽन्त्यस्य” इत्यन्त्याकारलोपे “दादेर्धातोर्घः” इति हस्य धत्वे, दस्य भष्मावेन  
धत्वे “खरि च” इति घस्य कत्वे कात्परकत्वात् सस्य षत्वे कष्योगेन च जाते अटि  
च कृते कसस्य क्तिवाद्गुणभावे ‘अधुच्चाताम्’ इति रूपम् । अधुक्षन्त । दुहो लुङो  
क्षे, च्लौ, च्लेः स्थाने कसे, क्लोपे, “क्षोऽन्तः” इत्यन्तादेशे “कसस्याचि” इति अन्त्या-  
कारलोपे हस्य धत्वे, दस्य भष्मावेन धत्वे घस्य “खरि च” इति चत्वेन कत्वे कात्प-  
रकत्वात् षत्वे कष्योगेन च जाते अटि च कृते ‘अधुक्षन्त’ इति रूपम् । अदुग्धाः ।  
दुहो लुङस्थासि च्लौ च्लेः स्थाने “शल इगुपधादनिटः कसः” इति कसे क्लोपे  
“लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये” इति कसस्य लुकि, हस्य धत्वे आसस्थ-  
कारस्य “क्षपस्तयोर्घो घः” इति धत्वे “क्षलां जश् क्षशि” इति घस्य गत्वे, अटि सस्य  
रत्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च ‘अदुग्धाः’ इति रूपम् । कसस्य लुगभावे ‘अधुक्षयाः’ इति  
रूपम् । साधनिका पूर्ववत् । आतामि—अधुक्षायाम् । अत्र कसे “कसस्याचि” इत्यकार-  
लोपः, हस्य धत्वे भष्मावे अटि च रूपम् । अधुग्वम् । ध्वमि, कसे “लुग्वा दुहदिह०”  
इत्यादिना वा कसस्य लुकि, धत्वे भष्मावे जरत्वे अटि च रूपम् । लुगभावे—अधुक्ष-  
वम् । अधुक्षि । दुहो लुङ इटि, च्लौ, च्लेः स्थाने कसे, क्लोपे “कसस्याचि” इति  
अकारलोपे, धत्वे भष्मावे घस्य चत्वेन कत्वे कात्परकत्वात् षत्वे कष्योगे च अटि च  
मिलित्वा ‘अधुक्षि’ इति रूपम् । अदुहहि । अत्र वकारस्य दन्त्योष्ठ्यत्वात् “लुग्वा  
दुहदिह०” इति कसलोपः, शेषं पूर्ववत् । कसलोपभावे ‘अधुक्षवहि’ इति रूपम् ।  
अधुक्षामहि । दुहो लुङो महिङि कसे क्लोपे हस्य धत्वे दस्य भष्मावेन धत्वे, घस्य  
चत्वेन कत्वे कात्परकत्वात् षत्वे कष्योगे च “अतो दीर्घो यजि” इति कसस्याकारस्य  
दीर्घे अटि च रूपम् । अधोक्ष्यत् । दुह्धातोः “लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपक्षौ” इति  
लृङि, अनुबन्धलोपे लृङो लः स्थाने तिपि, स्ये इडभावे स्यस्यार्धधातुकत्वात् “पुगन्त-  
लृपधस्य च” इति गुणे “दादेर्धातोर्घः” इति हस्य धत्वे “एकाचो बशो भष् क्षप-  
न्तस्य रन्ध्रोः” इति भष्मावेन दस्य धत्वे घस्य चत्वेन कत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति  
कात्परकत्वात् सस्य षत्वे कष्योगे च जाते “इतश्च” इति तिप इकारलोपे अटि च कृते  
‘अधोक्ष्यत्’ इति रूपम् । एवमात्मनेपदेऽपि—‘अधोक्ष्यत्’ इति रूपम् । उपचय इति ।  
उपचयो—वृद्धिः । देवित्र, दिग्त्रे । दिदेह, दिदिहे । देग्वासि, देग्वासे । धेस्वति,

दने ॥ २३ ॥ लेडि । लीडः । लिहन्ति । लेक्षि । लीडे । लिहाते । लिहते । लिचे ।  
लिहाये । लीड्वे । लिखेह, लिलिहे । लीडासि । लीडासे । लेक्ष्यति । लेक्ष्यते । लेडु,

वेक्ष्यते । देण्डु, दिग्धाम् । अधेक्, अदिग्ध । दिह्यात्, दिहीत् । दिह्यात्, धिषीष्ट ।  
अधिचत्, अदिग्ध-अधिचत् । अधेक्ष्यत्, अधेक्ष्यत् । लेडि । लिह्धातोर्लट्स्तिपि, शपि,  
शपो लुकि, “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे “हो ढः” इति हस्य ढत्वे तस्य “क्षप्स्त-  
थोर्धो धः” इति धत्वे “ष्टुना ष्टुः” इति धस्य ष्टुत्वेन ढत्वे “ढो ढे लोपः” इति पूर्व-  
ढस्य लोपे च विहिते ‘लेडि’ इति रूपम् । लीडः । लिह्धातोर्लट्स्तिपि, शपो लुकि,  
तसः “सार्वधातुकमपित्” इति झित्वात् गुणाभावे, हस्य ढत्वे, तसस्तकारस्य धत्वे  
ष्टुत्वेन धस्य ढत्वे “ढो ढे लोपः” इति पूर्वढस्य लोपे “ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इति  
लिह् इकारस्य दीर्घे सस्य ऋत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च ‘लीडः’ इति रूपम् । लिहन्ति ।  
लटो झौ “झोऽन्तः” इत्यन्तादेशः । लेक्षि । लिह्धातोर्लटः सिपि, शपि, शपो लुकि,  
“पुगन्तलघूपधस्य च” इति लघूपधगुणे “हो ढः” इति हस्य ढत्वे, “षढोः कः सि”  
इति ढस्य कत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति कात्परकत्वात्सिपः सस्य षत्वे, क्ष्योगे चे,  
‘लेक्षि’ इति रूपम् । अग्रे रूपाणि—लीडः, लीड । लेक्षि, लिह्, लिहः । लीडे । लिहो  
लटस्ते आत्मनेपदके, शपि, शपो लुकि, “हो ढः” इति हस्य ढत्वे धत्वे, ष्टुत्वेन धस्य  
ढत्वे, “ढो ढे लोपः” इति पूर्वढस्य लोपे “ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इति पूर्वस्याणो  
दीर्घे “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च ‘लीडे’ इति रूपम् । आतामि—लिहाते ।  
क्षे—लिहते । “आत्मनेष्वनतः” इति क्षस्य अत आदेशः, टेरेत्वञ्च । लिक्षे । लिह्धातो-  
र्लट्स्थासि, शपो लुकि “थासः से” इति थासः स्थाने से आदेशे, “हो ढः” इति हस्य  
ढत्वे, “षढोः कः सि” इति ढस्य कत्वे कात्परकत्वात्सस्य षत्वे क्ष्योगे चे जाते ‘लिचे’  
इति रूपम् । आतामि—लिहाये । लीड्वे । लिह्धातोर्लटो ध्वमि, शपि, शपो लुकि  
“हो ढः” इति हस्य ढत्वे “ष्टुना ष्टुः” इति धस्य ष्टुत्वेन ढत्वे, “ढो ढे लोपः” इति  
ढ्रलोपे “ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इति पूर्वस्याण इकारस्य दीर्घे टेरेत्वे च ‘लीड्वे’  
इति रूपम् । अग्रे—लिहे, लिह्वे, लिह्वहे । इति । लिलेह । लिह्धातोः “परोचे लिट्”  
इति लिटि, लिट्स्तिपि “परस्मैपदानां णलतुसु०” इत्यादिना तिपो णलि, अनुबन्धलोपे  
“लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे, अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये च कृते ‘लि लिह् वा’  
इति स्थिते “पुगन्तलघूपधस्य च” इति लघूपधगुणे ‘लिलेह’ इति । अग्रे—  
लिलिहत्तुः, लिलिहुः । लिलेहिथ, लिलिहथुः, लिलिह । लिलेह, लिलिहिच, लिलिहिम ।  
इति । लिलिहे । लिह्धातोर्लटस्ते, तस्य स्थाने “लिटस्तस्योरोरेशिरेच” इति एषि,  
श्रुते द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये च कृते मिलित्वा ‘लिलिहे’ इति रूपम् । शेषम्—  
लिलिहाते, लिलिहिरे । लिलिहिचे, लिलिहाये, लिलिहिध्वे । लिलिहे, लिलिहिवहे, लिलि-  
हिमहे । इति । लुटि—लीडा, लीडारौ लीडारः । लीडासि । लिह्धातोर्लुटः सिपि, पुगते

लीढात् । लीढाम् । लिहन्तु । लीढि । लेहानि । लीढाम् । अलेट्-अलेह् । अ लि-  
 तासि, “आर्धधातुकं शेषः” इति आर्धधातुकत्वे “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इड-  
 भावे “हो ङः” इति हस्य ङत्वे “झषस्तथोर्धो घः” इति तस्य घत्वे, “ष्टुना ष्टुः” इति  
 ष्टुत्वेन घस्य ङत्वे, “ढो ढे लोपः” इति ढलोपे, “ढूलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इति पूर्व-  
 स्याणो दीर्घे “तासस्त्योर्लोपः” इति सूलोपे ‘लीढासि’ इति रूपम् । अग्रं—लीढास्थः,  
 लीढास्थ । लीढास्मि, लीढास्वः, लीढास्मः । इति । आत्मनेपदे—लीढा, लीढारौ, ली-  
 ङारः । लीढासे । लिह्धातोर्लुट्स्थासि, तासि “थासः से” इति थासः से आदेशे “हो ङः”  
 इति हस्य ङत्वे तप्तस्तकारस्य घत्वे ष्टुत्वे ढो ढे लोपे “ढूलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इति  
 पूर्वस्याणो दीर्घत्वे “तासस्त्योर्लोपः” इति सूलोपे ‘लीढासे’ इति रूपम् । अग्रं—लीढा-  
 सापे, लीढाध्वे । लीढाहे, लीढास्वहे, लीढास्महे । इति । लेच्यति । लिहो लुट्स्तिपि, स्वे  
 हस्य ङत्वे “षढोः कः सि” इति ङस्य कत्वे लघूपधगुणे कात्परकत्वात्सस्य षत्वे  
 कषयोगे षे जाते ‘लेच्यति’ इति रूपम् । एवमात्मनेपदे—लेच्यते । इति । लेहु ।  
 लिहो लोट्स्तिपि, शपि, शपो लुकि “हो ङः” इति हस्य ङत्वे “पुगन्तलघूपधस्य च”  
 इति लघूपधगुणे “झषस्तथोर्धो घः” इति तस्य घत्वे ष्टुत्वे ढो ढे लोपे च कृते “एरुः”  
 इति इकारस्योत्वे ‘लेहु’ इति निष्पन्नम् । तातडि—लीढात् । लीढाम् । लिहो लोट-  
 स्तासि, शपो लुकि, तप्तस्तामि हस्य ङत्वे तस्य घत्वे, घस्य ष्टुत्वेन ङत्वे, “ढो ढे  
 लोपः” इति ढलोपे “ढूलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इति पूर्वस्याणो दीर्घे ‘लीढाम्’ इति  
 रूपम् । लिहन्तु । लोटो झौ “झोऽन्तः” इत्यन्तादेशे शपो लुकि “एरुः” इति  
 उत्वे च तत्सिद्धिः । लीढि । लिह्धातोर्लोटः सिपि, शपो लुकि, “सेर्धपिच्च” इति  
 सिपो हौ “हो ङः” इति हस्य ङत्वे “दुस्रह्म्यो हेधिः” इति हेधिंत्वे “ष्टुना ष्टुः” इति  
 ष्टुत्वेन घस्य ङत्वे “ढो ढे लोपः” इति ढलोपे “ढूलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इति पूर्व-  
 स्याणो दीर्घे ‘लीढि’ इति सम्पन्नम् । तातडि—लीढात् । लीढम्, लीढ । लेहानि ।  
 लिहो लोटो मिपि, शपो लुकि “मेनिः” इति मेनिंत्वे “आहुत्तमस्य पिच्च” इति  
 उत्तमस्य नेराटि, “पुगन्तलघूपधस्य च” इति लघूपधगुणे ‘लेहानि’ इति रूपम् ।  
 लेहाव, लेहाम् । इति अवशिष्टरूपाणि । लीढाम् । लिहो लोटि, लोटो लः स्थाने आत्म-  
 नेपदसंज्ञके ते कृते, शपि, शपो लुकि, “हो ङः” इति हस्य ङत्वे, “झषस्तथोर्धो घः”  
 इति तस्य घत्वे, ष्टुत्वे ढो ढे लोपे “ढूलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इति पूर्वस्याणो दीर्घे  
 टेरेत्वे “आमेतः” इति एकारस्याधि ‘लीढाम्’ इति रूपम् । अग्रं त्वेवं रूपाणि—लिह-  
 ताम्, लिहताम् । लिष्व, लिहायाम्, लीढ्वम् । लेहै, लेहावहै, लेहामहै । अलेट् ।  
 लिहो लङ्स्तिपि, शपो लुकि, अटि, “इतश्च” इति तिप इकारलोपे “पुगन्तलघूपधस्य  
 च” इति गुणे “दुलङ्घाभ्यो दीर्घात्” इत्यादिना तिपस्तकारस्य लोपे “हो ङः” इति  
 हस्य ङत्वे “झलां जहोऽन्ते” इति ङत्वे “वावसाने” इति ङत्वे च कृते ‘अलेट्’ इति  
 रूपम् । चत्वाभावपदे—‘अलेह्’ इति रूपम् । अग्रं—अलीढाम्, अलिहन् । अलेह् ।

अतः, अलिङ्गित, अलीढ । अलेक्ष्यत् । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि ॥ २४ ॥ ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः । ३।४।८४ ब्रुवो लट्स्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रव्वाहादेशः । आह । आहतुः । आहुः । आहस्यः । ८।२।६५। कलि परे हस्य थः स्यात् । चर्त्वम् । आत्थ । आहथुः । ब्रुव ईद् । ७।३।६३। ब्रुवः परस्य

अलेङ्, अलीढम्, अलीढ । अलेहम्, अलिह, अलिह । आत्मनेपदे—अलीढ, अलिहाताम्, अलिहत । अलीढाः, अलिहायाम्, अलीढ्वम् । अलिहि, अलिहहि, अलिहहि । लिङि—लिङ्गात् । आत्मनेपदे लिङि—लिङ्गीत । आशीर्लिङि—लिङ्गात्, लिङ्गास्ताम्, लिङ्गासुः । आत्मनेपदे आशीर्लिङि—लिङ्गीष्ट । लिङ्गीयास्ताम्, लिङ्गीरन् । लिङ्गीयाः, लिङ्गीयास्थाम्, लिङ्गीध्वम् । लिङ्गीय, लिङ्गीवाहि, लिङ्गीमाहि । इति । अलिङ्गित । लिङ्घातोः “लुङ्” इति लुङि लुङ्स्तिपि च्छौ, “शल इगुपघादनितः कसः” इति च्छेः स्थाने क्से, क्लोपे हस्य ढत्वे ढस्य “षढोः कः सि” इति कत्वे कात्परकत्वात्सस्य षत्वे क्षयोगे च्छे अटि च ‘अलिङ्गित’ इति रूपम् । अलिङ्गिताम्, अलिङ्गितम् । अलिङ्गः, अलिङ्गितम्, अलिङ्गित । अलिङ्गम्, अलिङ्गाव, अलिङ्गाम । इति लुङ्गेऽवशिष्टरूपाणि । अलीढ । लिङ्घातोर्लुङिः स्थाने आत्मनेपदसंज्ञके ते “ञ्लि लुङि” इति च्छौ, च्छेः स्थाने, “शल इगुपघादनितः कसः” इति क्से, क्लोपे “लुगवा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे ढन्त्ये” इति क्सलुकि, हस्य ढत्वे तस्य षत्वे षस्य ष्ट्वे ढ्लोपे “ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इति पूर्वस्याणो दीर्घे ‘अलीढ’ इति रूपम् । लुगभावे हस्य ढत्वे “षढोः कः सि” इति ढस्य कत्वे कात्परकत्वात्सस्य षत्वे ‘अलिङ्गित’ इति च रूपम् । अग्रे अलिङ्गिताम्, अलिङ्गन्त । अलीढाः, अलिङ्गयाः, अलिङ्गायाम् । अलीढ्वम्, अलिङ्गध्वम् । अलिङ्गि, अलिङ्गहि, अलिङ्गावहि । अलिङ्गामहि । इति । अलेक्ष्यत् । लिङ्घो लुङ्स्तिपि स्ये लघूपघगुणे, हस्य ढत्वे, ढस्य कत्वे, कात्परकत्वात्षत्वे क्षयोगे च्छे अटि, तिप इकारलोपे च तस्सिङिः । एवम्—अलेक्ष्यत् । इत्यपि बोध्यम् । ब्रुवः पञ्चानामिति । “परस्मैपदानां णलुप्तुस्” इत्यत उत्तरसूत्रमिदम् । “विदो लटो वा” इत्यतो लट् केत्वनुवर्तते । तदाह—ब्रुवो लट् इति । आह । ब्रूधातोर्लट्स्तिपि, शपो लुकि “ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः” इति तिपो णलि, ब्रुव आहादेशे च कृते णलोऽनुबन्धलोपे ‘आह’ इति रूपम् । आहतुः । ब्रूधातोर्लट्स्तिपि, शपो लुकि, “ब्रुवः पञ्चानामादित” इति तसोऽनुसि ब्रुव आहादेशे सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च तस्सिङिः । आहुः । ब्रूधातोर्लट् लौ, शपो लुकि “ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः” इति शेषसि ब्रुव आहादेशे च तस्सिङिः । आहस्य इति । आह षष्ठ्यन्तम् । “शल्लो कलि” इत्यतो कलिस्त्वानुवर्तते इत्यभिप्रेत्य शेषपूरणेन सूत्रव्याचष्टे—कलि परे इति । आत्थ । ब्रुवो लट् स्तिपि शपो लुकि “ब्रुवः पञ्चानाम्” इति सिपस्थलि ब्रुव आहादेशे च “आहस्य” इति हस्य थत्वे तस्य “खरि च” इति चर्त्वेन तकारे ‘आत्थ’ इति रूपम् । आहथुः ।



हलादेः पित ईट् स्यात् । ब्रवीति । ब्रूतः । ब्रुवन्ति । ब्रूते । ब्रुवाते । ब्रुवते । ब्रुवो  
वचिः । २।४।५३। आर्धधातुके । उवाच । ऊचतुः । ऊचुः । उवचिथ, उवक्थ ।  
ऊचे । वक्ता । वक्ष्यति, वक्ष्यते । ब्रवीतु-ब्रूतात् । ब्रुवन्तु । ब्रूहि । ब्रवाणि । ब्रूताम् ।

लटस्थसोऽशुसि, शेषं पूर्ववत् । ब्रुव ईट् । “नाभ्यस्तस्य” इत्यतः पितीति “उतो वृद्धिः”  
इत्यतो हलीति चानुवर्तते । तदाह—ब्रुवः परस्येत्यादिना । ब्रवीति । ब्रूधातोर्लट्स्तिपि,  
शपो लुकि आहादेशाभावपक्षे “ब्रुव ईट्” इति तिप ईटि, दगते टित्वात् तिप आद्या-  
व्यवे जाते “सार्धधातुकार्धधातुकयोः” इति ब्रुव उकारस्य गुणेऽवादेशे च कृते ‘ब्रवीति’  
इति रूपम् । तसि—‘ब्रूतः’ इति । ब्रुवन्ति । “श्रोऽन्तः” इति शेरन्तादेशे कृते उवङ् ।  
सिपादिविशिष्टास्त्वेवम्—ब्रवीथि, ब्रूथः, ब्रूथ । ब्रवीमि, ब्रुवः, ब्रूमः । इति । ब्रूत ।  
ब्रूधातोर्लट्स्थाने आत्मनेपदे ते शपो लुकि “टित् आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च  
तत्सिद्धिः । ब्रुवाते । लट् आतामि शपो लुकि उवङि टेरेत्वम् । ब्रुवते । लटो शे, शपो  
लुकि, “आत्मनेपदेष्वनतः” इति शेरतादेशे उवङि टेरेत्वम् । एवं ब्रूषे, ब्रुवाथे ब्रूध्वे ।  
ब्रूषे, ब्रूवहे, ब्रूमहे, इति । ब्रुवो वचिरिति । ब्रुवो वचिरादेशः स्यादार्धधातुके इत्यर्थः ।  
इकार उच्चारणार्थः । उवाच । ब्रूधातोः “परोक्षे लिट्” इति लिटि, तत्स्थाने तिपि “लिट्  
च” इत्यार्धधातुकत्वे “ब्रुवो वचिः” इति ब्रूस्थाने वच् आदेशे, तिपो णलि, अनुबन्ध-  
लोपे द्वित्वे अभ्यासत्वे ‘वच् वच् अ’ इति जाते “लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्” इति अभ्या-  
सवचः सम्प्रसारणत्वे “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे “हलादिः शेषः” इति चलोपे “अत  
उपधायाः” इति उपधावृद्धौ ‘उवाच’ इति रूपम् । ऊचतुः । ब्रूधातोर्लट्स्तसि, तसोऽशु-  
सि, “लिट् च” इत्यार्धधातुकत्वे “असंयोगाद्विट्किट्” इति कित्वे, ब्रुवो वचादेशे “वचि-  
स्वपि०” इत्यादिना सम्प्रसारणत्वे “संप्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे “उच अतुस्” इति जाते  
द्वित्वे अभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति चलोपे सवर्णदीर्घे, रुत्वे विसर्गत्वे च तत्सिद्धिः ।  
एवम्—‘ऊचुः’ इत्यत्र बोध्यम् । उवचिथ, उवक्थ । ब्रुवो लिटः सिपि, सिपस्थलादेशे  
ब्रुवो वचादेशे द्वित्वे अभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति चलोपे “लिट्यभ्यासस्योभयेषा-  
म्” इति अभ्यासस्य सम्प्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे थल आर्धधातुकत्वा-  
दिति प्राप्ते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति निषिद्धे भारद्वाजनियमाद्वा इटि ‘उवचि-  
थ’ इति रूपम् । इडागमाभावपक्षे—‘चोः कुः’ इति चस्य कत्वे ‘उवक्थ’ इति  
रूपम् । अग्रे—ऊचथुः, ऊचुः । उवाच—उवच, ऊचिव, ऊचिम, इति । ऊचे । ब्रूज्धा-  
तोः आत्मनेपदे लिट्स्ते समागते “ब्रुवो वचिः” इति ब्रुवो वचिरादेशे, “वचिस्वपिथ-  
जादीनां किति” इति सम्प्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे “लिटि धातोरनभ्या-  
सस्य” इति द्वित्वे, “पूर्वोऽभ्यासः” इति अभ्याससंज्ञायां “हलादिः शेषः” इति चलोपे  
‘उ उच् त’ इति जाते “अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घे “लिट्स्तक्षयोरेक्षिरेच्” इत्येक्षि  
‘ऊचे’ इति रूपम् । ऊचाते, ऊचिरे, ऊचिषे, ऊचाथे, ऊचिध्वे । उचे, ऊचिवहे ऊचिमहे ।

अवै । अव्वीत् । अव्रूत् । अव्यात् , अव्वीत् । उच्चात् , वक्षीष्ट । अस्यतिवक्तिख्या-  
तिभ्योऽङ् । ३।१।४५। एभ्यश्च्लेरङ् स्यात् । वच उम् । ७।४।२०। अङि परे ।  
अवोचत् , अवोचत । अवक्ष्यत् , अवक्ष्यत । चर्करीतञ्च । चर्करीतमिति यङ्लु-

वक्ष्यति । ब्रूजो लुट्स्तिपि स्ये “ब्रुवो वचिः” इति ब्रुवो वचादेशे “चोः कुः” इति चस्य  
कत्वे, सस्य षत्वे क्ष् संयोगे षे जाते ‘वक्ष्यति’ इति रूपम् । आत्मनेपदे—वक्ष्यते ।  
ब्रवीतु । ब्रुवो लोटि, तिपि “ब्रुव ईट्” इति ईटि “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे  
“एचोऽयवायावः” इत्यवि “एरुः” इति तिपि इकारस्योत्वे ‘ब्रवीतु’ इति रूपम् ।  
तातङि—ब्रूतात् । ब्रूताम् , ब्रुवन्तु, ब्रूहि, ब्रूतात् , ब्रूतम् , ब्रूत , । ब्रवाणि । मिपि,  
मेर्नित्वे आटि गुणे अवि नस्य णत्वे ‘ब्रवाणि’ इति साधु । ब्रवाव, ब्रवाम् । ब्रूताम् ,  
ब्रुवाताम् ब्रुवताम् । ब्रूष्व, ब्रुवाथाम् , ब्रूष्वम् । ब्रवै । ब्रूजो लोटि आत्मनेपदे इटि  
समागते शपि, शपो लुकि, “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे “एत ऐ” इति ऐत्वे,  
ब्रू ऐ इति जाते आटि गुणेऽवि संयोगे च ‘ब्रवै’ इति रूपं बोध्यम् । ब्रवावहै, ब्रवामहै ।  
अब्रवीत् । ब्रुवो लङ्स्तिपि, शपि, शपो लुकि तिपि ईटि तिपि इकारलोपे “सार्वधातुकार्ध-  
धातुकयोः” इति गुणेऽवि, अटि च ‘अब्रवीत्’ इति । अग्र त्वेवं रूपाणि अब्रूताम् ,  
अब्रुवन् । अब्रवीः, अब्रूतम् , अब्रूत । अब्रवम् अब्रूव, अब्रूम् । अब्रूत । लङ् आत्मनेपदे  
ते समागते शपो लुकि अटि च ‘अब्रूत’ इति ध्येयम् । अग्रे—अब्रुवाताम् , अब्रुवत ।  
अब्रूथाः, अब्रुवाथाम् , अब्रूष्वम् । अब्रुचि, अब्रुवहि, अब्रूमहि । ब्रूयात् । ब्रुवो विधि-  
लिङ्स्तिपि शपि शपो लुकि यासुटि उटो लोपे, तिपि इकारलोपे “लिङः सलोपोऽन-  
न्त्यस्य” इति सलोपे च विहिते ‘ब्रूयात्’ इति साधु । आत्मनेपदे—विधिर्लिङ्स्ते  
समागते शपि, शपो लुकि, “लिङः सीयुट्” इति सीयुटि, उटो लोपे “लिङः सलोपोऽ-  
नन्त्यस्य” इति सलोपे “लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे “अचिश्नुधातुअवाम्” इत्युवङि  
‘ब्रवीत’ इति साधु । अग्रे—ब्रुवीयाताम् , ब्रुवीरन् । ब्रुवीथाः, ब्रुवीयाथाम् , ब्रुवीष्वम् ।  
ब्रुवीथ । ब्रुवीवहि । ब्रुवीमहि, इति । उच्चात् । ब्रूजधातोराभीलिङ्स्तिपि, यासुटि,  
उटो लोपे “ब्रुवो वचिः” इति वचौ, “वचिस्त्वपियजादीनां किति” इति सम्प्रसारणे  
“सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे ‘उच् यास् ति’ इति स्थिते “इतश्च” इति तिपि इकार-  
लोपे “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति सलोपे ‘उच्चात्’ इति रूपम् । आत्मनेपदसङ्के-  
ते समागते सीयुटि उटो लोपे यलोपे ‘ब्रूसी त’ इति दशायां “ब्रुवो वचिः” इति  
वचादेशे “चोः कुः” इति कुत्वे “सुट् तिथोः” इति सुटि उटावितौ, सकारद्वयोः षत्वे,  
कषयोः संयोगे षे ‘वक्षीष्ट’ इति रूपं ज्ञेयम् ॥ अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् । “च्लेस्सिच”  
इत्यतः च्लेरित्यनुवर्तते तदाह—एभ्यश्च्लेरङ् स्यादिति । वच उम् । शेषप्रकरणेन सूत्र  
व्याचष्टे—अङि पर इति । “आह्नोऽङि गुणः” इत्यतस्तदनुवर्तते इति भावः ।  
मित्वादन्त्यादचः परः, आद्गुणः, तदाह—अवोचत् । ब्रुवो लुङ्स्तिपि, “च्लि लुङि”

गन्तमदादौ बोध्यम् । ऊर्णुञ् आच्छादने ॥ २५ ॥ ऊर्णोतेर्विभाषा । अ३।६०  
 वा वृद्धिः स्याद्भलादौ पिति सार्वधातुके । ऊर्णोति, ऊर्णोति । ऊर्णुतः । ऊर्णुवन्ति ।  
 ऊर्णुते । ऊर्णुवाते । ऊर्णुवते । ( ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम् ) ॥ नन्दाः संयो-  
 गादयः । ६।१।३। अचः पराः संयोगादयो नदरा द्विर्न भवन्ति । नुशब्दस्य द्वित्वम् ।  
 ऊर्णुनाव । ऊर्णुनुवतुः । ऊर्णुनुवुः । विभाषोर्णोः १।२।३ इडादिप्रत्ययो वा  
 द्वित्वात् । ऊर्णुनुविथ, ऊर्णुनविथ । ऊर्णुविता, उर्णुविता । ऊर्णुविष्यति, ऊर्ण-

इति च्लौ “अवो वचिः” इति वचादेशे “अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्” इति च्लेरकादेशे  
 कृते ‘वच् अ ति’ इति जाते तिपि इकारलोपे “वच् उम्” इति उमि ‘व उम् च् अ  
 त्’ इति जाते मलोपे आदगुणे अटि च कृते ‘अवोचत्’ इति रूपं साधु । अवोचताम्,  
 अवोचन् । अवोचः, अवोचतम् । अवोचत । अवोचम् । अवोचाव । अवोचाम् । एवं  
 आत्मनेपदे ते समागते ‘अवोचत’ इति बोध्यम् । ऊर्णोतेर्विभाषा । “उतो वृद्धिर्लुकि  
 हलि” इत्यतो वृद्धिरिति हलीति चानुवर्तते “नाभ्यस्तस्य” इत्यतः ‘पिति सार्वधातुके’  
 इति च, इत्यभिप्रेत्य शेषपूरणेन सूत्रं व्याचष्टे—वा वृद्धिः स्यादित्यादिना । ऊर्णोति ।  
 ऊर्णञ् आच्छादने इत्यस्माद्धातोर्लट्स्तिपि समागते, शपि, शपो लुकि च “ऊर्णोतेर्वि-  
 भाषा” इति वृद्धौ ‘ऊर्णोति’ इति । वृद्धयभावे गुणे च कृते ‘ऊर्णोति’ इति । तसि—  
 ऊर्णुतः । शौ—क्षेरन्तादेशे उवङि च ऊर्णुवन्ति । आत्मनेपदसङ्गके लटस्ते, शपो लुकि,  
 ढेरत्वे च ‘ऊर्णते’ इति । नन्दाः संयोगादयः । “एकाचो द्वे प्रथमस्य” इत्यतो द्वे इत्यनुव-  
 र्तते । “अजादेर्द्वितीयस्य” इत्यतः अजादेरिति । अच्चासौ आदिश्चेति कर्मधारयात्पञ्चमी ।  
 न्द् र् एषां द्वन्द्वः । तदाह—अचः परा इति । ऊर्णुनाव । ऊर्णुधातोर्लिट्स्तिपि, तिपो-  
 णलि चागते ‘ऊर्णु अ’ इति स्थिते “इजादेशश्च गुरुमतोऽनृच्छः” इति आभि प्राप्ते “ऊर्णोते-  
 राम् नेति वाच्यम्” इति निषेधे “अजादेर्द्वितीयस्य” इति सरेफस्य णोर्द्वित्वे प्राप्ते “नन्दाः  
 संयोगादयः” इति रेफस्य द्वित्वाभावे णत्वस्यासिद्धत्वाद् नुशब्दस्य द्वित्वे, प्रथमनस्य  
 “रषाभ्यां नो णः समानपदे” इति णत्वे, द्वितीयनकारस्य तु “अट्कुप्वाङ्” इति णत्वे,  
 ‘ऊर्णु णु अ’ इति जाते “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति परत्वात् गुणे प्राप्ते तं प्रवाच्य  
 कृताकृतप्रसंगित्वेन नित्यत्वात् “अचोऽन्विणिति” इति वृद्धौ “एचोऽयवायावः” इति  
 औकारस्य आवि कृते ‘ऊर्णुनाव’ इति रूपम् । अतुसि—उवङि, ऊर्णुनुवतुः । उसि-  
 उणुनुवुः । विभाषोर्णोः । “गाङ्कुटादिभ्यः” इत्यतो ङिदित्यनुवर्तते “विज इट्” इत्यतः  
 इङिति, इत्यभिप्रेत्य शेषपूरणेन सूत्रं व्याचष्टे—इडादीति । लिट्स्थलि, इटि द्वित्वे  
 “विभाषोर्णोः” इति इडादिप्रत्ययस्य द्वित्वात् “ङिति च” इति गुणाभावे उवङि च  
 ‘ऊर्णुनुविथ’ इति । द्वित्वाभावे गुणोऽवादेशे च कृते—ऊर्णुनविथ इति । ऊर्णुविता । लुटि  
 तिपि तासि, तास इटि “लुटः प्रथमस्य डारौरसः” इति तिपो ङात्वे द्वित्वसममर्थ्यादभ-  
 स्यापि टेलोपि “विभाषोर्णोः” इति द्वित्वाद्गुणाभावे, उवङि च ‘ऊर्णुविता’ इति ।

विध्यति । ऊर्णोतु, ऊर्णोतु, ऊर्णवानि, ऊर्णवै । गुणोऽपुक्ते अ३।६१ ऊर्णोतेगुणः  
स्यादपुक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके । और्णोत् । और्णोः । ऊर्णुयात् ।  
ऊर्णुयाः । ऊर्णुवीत् । ऊर्णुयात् । ऊर्णुविषीष्ट । ऊर्णविषीष्ट । ऊर्णोतेर्विभाषा  
अ३।६ इडादौ परस्मैपदे परे सिचि वा वृद्धिः स्यात् । पञ्चे गुणः । और्णावीत् ,

विभाषाग्रहणात् क्त्वाभावपक्षे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणेऽवादेशे । ‘ऊर्णविता’  
इति रूपं संगमनीयम् । ऊर्णविष्यति । लुटस्तिपि स्ये इटि “विभाषोर्णोः” इति इडादि-  
प्रत्ययस्य क्त्वाभावश्चित्य गुणनिषेधे उवङि सस्य षत्वे कृते ‘ऊर्णविष्यति’ इति रूपम् ।  
क्त्वाभावे गुणे अवादेशे ‘ऊर्णविष्यति’ इति । ऊर्णोतु । लोटस्तिपि समागते शपो लुकि  
“ऊर्णोतेर्विभाषा” इति वृद्धौ “एरुः” इति तिप इकारस्योत्वे विहिते ‘ऊर्णोतु’ इति ।  
वृद्धभावे गुणे कृते ‘ऊर्णोतु’ इति । मिति-मेनित्वे आटि, गुणेऽवादेशे च, ऊर्णवानि ।  
आत्मनेपदसंज्ञके लोटः स्थाने उत्तमपुरुषैकवचने इटि, शपो लुकि, ढेरत्वे आटि “एत  
रे” इत्यैत्वे “आटश्च” इति वृद्धौ गुणेऽवादेशे ‘ऊर्णवै’ इति । गुणोऽपुक्ते । “ऊर्णोतेर्वि-  
भाषा” इत्यतः ऊर्णोतेरिति “नाभ्यस्तस्य” इत्यतः ‘पिति सार्वधातुके’ इति “उतो  
वृद्धिः” इत्यतः हलोति चानुवर्तते, तदाह—ऊर्णोतेरित्यादिना । और्णोत् । लङ्स्तिपि  
शपि शपो लुकि आटि तिप इकारलोपे “उतो वृद्धिर्लुकि हलि” इति प्राप्ते तम्बाधित्वा  
“गुणोऽपुक्ते” इति गुणे “आटश्च” इति वृद्धौ च ‘और्णोत्’ इति । सिपि—और्णोः । लङ्  
आत्मनेपदे स्वेत्वम्—और्णुत, और्णुवाताम्, और्णुवत । और्णुयाः, और्णुवाथाम्, और्णु-  
ध्वम् । और्णुवि, और्णुवहि, और्णुमहि । ऊर्णुयात् । विधिलिङ्स्तिपि, शपि, शपो लुकि  
यासुटि उतो लोपे तिप इकारलोपे “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे ‘ऊर्णुयात्’  
इति रूपम् । सिपि—ऊर्णुयाः । विधिलिङः स्थाने आत्मनेपदे ते समागते सीयुटि उटि  
गते “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे यलोपे उवङि च ‘ऊर्णुवीत्’ इति सिद्धम् ।  
ऊर्णुयात् । आशीर्लिङ्स्तिपि यासुटि उटि गते “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति सलोपे,  
तिप इकारलोपे “अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः” इति दीर्घे ‘ऊर्णुयात्’ इति । आत्मनेपदे ते  
सीयुटि, उटि गते, यलोपे “आर्धधातुकस्येड्” इति इटि इटो क्त्वात् गुणाभावे उवङि  
सुटि षत्वे ष्त्वत्वे च ‘ऊर्णुविषीष्ट’ इति सिद्धम् । क्त्वाभावपक्षे—गुणेऽवादेशे—ऊर्णवि-  
षीष्ट इति बोध्यम् । ऊर्णोतेर्विभाषा । “सिचि द्विः परस्मैपदेषु” इत्यनुवर्तते, “नेटि”  
इत्यतः इटोति च । तदाह—इडादाविति । और्णावीत् । ऊर्णधातोर्लुङ्स्तिपि, “इतश्च”  
इति तिप इकारलोपे आटि वृद्धौ ऋलेः सिचि इचि गते ‘और्णु स् व’ इति स्थिते सिचः  
सस्य इटि तिपस्तकारस्य ईटि “विभाषोर्णोः” इतीटो क्त्वाद् गुणाभावे उवङि “इट  
ईटि” इति सलोपे दीर्घे च ‘और्णुवीत्’ इति । क्त्वाभावपक्षे गुणं बाधित्वा “ऊर्णोते-  
र्विभाषा” इति वा वृद्धावावादेशे ‘और्णावीत्’ इति । वृद्धभावेपक्षे “सार्वधातुकार्धधा-

और्णवीत्, और्णुवीत् । और्णविष्टाम्, और्णविष्टाम्, और्णविष्टाम् । और्णविष्ट,  
और्णविष्ट । और्णविष्यत्, और्णविष्यत् । इत्यादयः ।

### अथ जुहोत्यादयः ।

हु दानादनयोः ॥१॥ जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २।४।७५ शपः श्लुः स्यात् । श्लौ  
६।१।१० धातोर्द्धे स्तः । जुहोति । जुहुतः । अदभ्यस्तात् ७।१।४ भस्यात्स्या-  
त् । “हुरुनवोः” इति यण् । जुहति । भीहीभृदुवां श्लुवच्च ३।१।३६ एभ्यो  
लिटि आम् वा स्यादामि श्लाविष्य कार्यं च । जुहवाश्चकार, जुहाव । होता ।

गुक्रयोः” इति गुणेऽवादेशे ‘और्णवीत्’ इति च सिद्धम् । अवशिष्टरूपाणि-और्णविष्टाम्,  
और्णविष्टाम्, और्णविष्टाम् । और्णविषुः, और्णविषुः, और्णविषुः । और्णवीः, और्णवीः,  
और्णवीः । और्णविष्टम्, और्णविष्टम्, और्णविष्टम् । और्णविष्ट, और्णविष्ट, और्णविष्ट ।  
और्णविषम्, और्णविषम्, और्णविषम् । और्णविष्व, और्णविष्व, और्णविष्व । और्ण-  
विष्व, और्णविष्व, और्णविष्व । इति । और्णविष्ट । ऊणुधातोर्द्धे आत्मनेपदे तप्रत्यये  
आटि ष्टद्वौ, च्लेः सिचि, इटि “विभाषोर्णोः” इति क्त्वाद् गुणाभावे उवङि षत्वे ष्टुत्वे  
च ‘और्णविष्ट’ इति रूपम् । क्त्वाभावपक्षे गुणेऽवादेशे ‘और्णविष्ट’ इति च सिद्धम् ।  
अग्रे—और्णविषाताम्, और्णविषाताम्, और्णविषत, और्णविषत । और्णविष्टाः, और्ण-  
विष्टाः, और्णविषाथाम्, और्णविषाथाम्, और्णविष्वम्—और्णविष्वम्, और्णविष्वम् ।  
और्णविष्वम् । और्णविषि—और्णविषि । और्णविष्वहि, और्णविष्वहि । और्णविष्वहि-  
और्णविष्वहि । इति । और्णविष्यत् । “विभाषोर्णोः” इति क्त्वादुवङ् । क्त्वाभावपक्षे  
गुणे—और्णविष्यत् इति । शेष सुगमम् । एवमारत्नेपदेऽप्युद्धम् । इत्यादयः ।

जुहोत्यादिभ्य इति । शप इति । “अदिप्रभृतिभ्यः” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः ।  
श्लाविति । शेषं पूरयति—धातोर्द्धे स्त इति । “एकाचो द्वे” इत्यतः “लिटि धातोः”  
इत्यतश्च तदनुवृत्तेरिति भावः । जुहोति । हुधातोर्द्धेऽस्तिपि, शपि “जुहोत्यादिभ्यः श्लुः”  
इति शपः श्लौ, “श्लौ” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इत्यादिहलः शेषे ‘हु हु  
ति’ इति जाते “जुहोरुचुः” इति हस्य झत्वे “अभ्यासे चर्च” इति झस्य जत्वे ‘जुहु  
ति’ इति भूते “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “जुहोति” इति रूपम् । जुहुतः ।  
तसः “सार्वधातुकमपित्” इति क्त्वाच्च गुणः । अदभ्यस्तादिति । अत्र “शोऽन्त”  
इत्यतो झ इत्यनुवर्तते । जुहति । हुधातोर्द्धेऽस्ति श्लौ, शपः श्लौ, द्वित्वेऽभ्यासत्वे पूर्ववद-  
भ्यासकार्यं च कृते, ‘जुहु झि’ इति स्थिते “उभे अभ्यस्तम्” इत्यभ्यस्तसंज्ञायाम् “अ-  
दभ्यस्तात्” इति शेरतादेशे “हुरुनवोः सार्वधातुके” इति यणि ‘जुहति’ इति रूपम् ।  
अग्रे तु—जुहोषि, जुहुयः, जुहुय । जुहोमि, जुहुवः, जुहुमः । इति । भीहीभृदुवामिति ।  
भी ही भृ हु एषां इन्द्रात्पञ्चम्यर्थे षष्ठी । “कास्प्रत्ययात्” इत्यत आम् लिटीत्वनु-

होष्यति । जुहोतु, जुहुतात् । जुहुताम् । जुहुतु । जुहुधि । जुहवनि । अजुहोत् ,  
अजुहुताम् । जुसि च ७।३।२३ इगन्ताङ्गस्य गुणः स्यादजादौ जुसि । अजुहवुः ।  
जुहुयात् । हूयात् । अहौषीत् । अहोष्यत् । जिभी मये ॥ २ ॥ विमेति । मियोऽ-

वर्तते । तदाह—एभ्य इति । श्लुवदिति सप्तम्यन्तात् वतिरित्यभिप्रेत्य आह—आमि  
श्लाविव कार्यं चेति । जुह्वाञ्चकार । हुधातोर्लिटि “मीहीमृहुवां श्लुवच्च” इति पाक्षिके  
आमि श्लुवन्नावे च द्वित्वेऽभ्यासकार्यं चुत्वेन शकारे, “अभ्यासे चर्च” इति जश्त्वेन  
जकारे गुणेऽवादेशे “आमः” इति लिटो लुकि, “कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्-पर-  
कृणोऽनुप्रयोगे लिट्स्तिपो णळि द्वित्वे “उरत्” इत्यत्वे रपरे हलादिशेषे “कुहोरचुः”  
इति चुत्वे गुणे रपरे च, ‘जुह्वाम् च कर् अ’ इति स्थिते “अत उपधायाः” इति उप-  
धावृद्धौ “मोऽनुस्वारः” इति अनुस्वारे “वा पदान्तस्य” इति वैकल्पिके परसवर्णे ‘जुह-  
वाञ्चकार’ इति रूपं निष्पन्नम् । आमोऽभावपक्षे तु लिट्स्तिपो णळि, द्वित्वेऽभ्यासत्वे  
परत्वात् “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे प्राप्ते, “कृताकृतप्रसङ्गे विधिर्नित्यः”  
इति नियमेन “अचो ऽप्यिति” इति नित्यत्वात् वृद्धौ, अवादेशे च ‘जुहाव’ इति निष्प-  
न्नम् । जुहुवतुः, जुहुवुः, जुह्विथ जुहोथ, जुहुवथुः, जुहुव, जुहाव, जुहव, जुहुविव, जुहु-  
विम । जुहुधि । हुधातोर्लोटस्सिपो हौ, शपः श्लौ, “श्लौ” इति द्वित्वे चुत्वेन शकारे  
“अभ्यासे चर्च” इति चत्वेन जकारे “हुस्त्वभ्यो हेधिः” इति हेर्धौ ‘जुहुधि’ इति  
बोध्यम् । जुहवनि । हुधातोर्लोटो मिपि, शपः श्लौ, द्वित्वे अभ्यासकार्यं “कुहोरचुः”  
इति हस्य शत्वे, “अभ्यासे चर्च” इति जश्त्वे मेन्यादेशे “आहुत्तमस्य पिच्च” इति  
आटि, “हुस्त्वभ्योः” इति यण् बाधित्वा परत्वात् “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे-  
ऽवादेशे च तत्सिद्धिः । अजुहोत् । जुहोतेर्लङि, लङः तिपि शपि, शपः श्लुत्वे “श्लौ”  
इति सूत्रेण धातोर्द्वित्वेऽभ्यासकार्यं “कुहोरचुः” इति हस्य शत्वे, शस्य “अभ्यासे  
चर्च” इति जश्त्वेन जकारे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “इतश्च” इति तिप  
इकारलोपे कृते चाटि ‘अजुहोत्’ इति साधु । तासि-अजुहुताम् । जुसि च । अङ्गस्येत्य-  
धिकृतम् । “मिदेर्गुणः” इत्यतः गुण इत्यनुवर्तते । “इको गुणवृद्धी” इति परिभाषया  
इक इत्युपस्थितेन अङ्गस्येति विशेषणात्तदन्तविधिः । “क्सस्याचि” इत्यतोऽनुवृत्तेन  
अचीत्यनेन जुसीत्यस्य विशेषणात्तदादिविधिस्तदाह—अजादावित्यादिना । अजुहवुः ।  
झौ “झेर्जुस्” इति जुसि “जुसि च” इति गुणेऽवादेशे ‘अजुहवुः’ इति साधु । अजुहोः,  
अजुहुताम्, अजुहुत । अजुहवम्, अजुहुव, अजुहुम । जुहुयात् । जुहोतेर्विधिलङः तिपि,  
शपि, शपः श्लुत्वे “श्लौ” इति धातोर्द्वित्वे “कुहोरचुः” इति हस्य शकारे तस्य  
“अभ्यासे चर्च” इति जकारे “यासुट् परस्मैपदेषु” इति यासुट्-गमे, उटो लोपे, “लङः  
सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे तिप इकारलोपे ‘जुहुयात्’ इति । हूयात् । आशी-  
लङिस्तिपि, यासुटि, अनुबन्धलोपे, “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति सलोपे “अकृ-

न्यतरस्याम् ६।४।११५ इकारो वा स्याद्वलादौ विकृति सार्वधातुके । विभितः-  
विभीतः, विभ्यति । विमेषि । विभयाञ्चकार, विभाय । मेता । मेष्यति । विमेतु,

‘सार्वधातुकयोर्दोर्ध्वः’ इति दीर्घे च ह्रयादिति रूपम् । अहौषीत् । जुहोतेलुकि,  
अटि, तिपि, च्लौ, च्लेः सिचि इचावितौ तिप इकारलोपे “अस्तिसिचोऽपृक्ते”  
इति ईटि “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति वृद्धौ च ‘अहौषीत्’ इति निष्पन्नम् ।  
अहोष्यत् । जुहोतेलुकिस्तिपि स्ये गुणे सस्य षत्वे तिप इकारलोपे अटि च  
‘अहोष्यत्’ इति ज्ञेयम् । विमेति । जिभी भये इत्यस्माद्धातोः “वर्तमाने लट्”  
इति लटि, लट्स्तिपि, शपि “आदिर्जिह्वडवः” इति जिकारस्येत्संज्ञायां “तस्य लोपः”  
इति लोपे “जुहोत्यादिभ्यः श्लुः” इति श्लुत्वे, “श्लौ” इति द्वित्वे ‘भी भी ति’ इति  
जाते “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्याससंज्ञायां “ह्रस्वः” इत्यभ्यासह्रस्वे “अभ्यासे चर्च”  
इति भस्य बत्वे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इतिगुणे ‘विमेति’ इति । भियोऽन्यतरस्याम् ।  
“इद्दरिद्रस्य” इत्यतः इदिति, “गमहन” इत्यतः क्किति इति “ईहल्यघोः” इत्यतः  
हलीति “अत उत्सार्वधातुके” इत्यतः सार्वधातुके इति चानुवर्तते इत्यभिप्रेत्य शेषं  
पूरयति—इकारो वा स्यादित्यादिना । विभितः । तसि, शपः श्लुत्वे धातोर्द्वित्वेऽभ्यास-  
स्याचो ह्रस्वत्वे, भस्य बत्वे “भियोऽन्यतरस्याम्” इति ईकारस्य इकारे ‘विभितः’  
इति । इकाराभावपक्षे तु ‘विभीतः’ इति रूपं ज्ञेयम् । विभ्यति । शौ धातोर्द्वित्वे ह्रस्वत्वे  
भस्य बत्वे “उभे अभ्यस्तम्” इत्यभ्यस्तसंज्ञायाम् “अदभ्यस्तात्” इति शेरति “परने-  
काचोऽसंयोगपूर्वस्य” इति यणि च कृते ‘विभ्यति’ इति रूपम् । विमेषि । सिपि “सा-  
र्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे षत्वञ्चेति भावः । विमिथः, विभीथः । विमिथ,  
विभीथ । विमेमि, विमिवः विभीवः, विभिमः विभीमः । विभयाञ्चकार । भियो लिटि  
समागते “भीहीमृहुवां श्लुवच्च” इत्यामि, आमः श्लुवन्नावात् “श्लौ” इति द्वित्वे,  
‘भी भी आम् लिट्’ इति स्थिते अभ्यासस्याचो ह्रस्वे, भस्य बत्वे, “आमः” इति  
लिटो लुकि, “कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिटपरकृजोऽनुप्रयोगे च कृते “लिटिधातो-  
रनभ्यासस्य” इति द्वित्वे “उरत्” इति अदादेशे रपरे, “हलादिः शेषः” इति रलोपे  
‘बि भी आम् क कृ लिट्’ इति जाते “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणेश्यादेशे च  
‘विभयाम् च कृ लिट्’ इति स्थिते लिटस्तिपि, तिपो णलि, “कुहोरशुः” इति कस्य  
चत्वे, “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे रपरे “अत उपधायाः” इति उपधावृद्धौ  
“मोऽनुस्वारः” इत्यनुस्वारे “वा पदान्तस्य” इति परसवर्णे “विभयाञ्चकार” इति  
साधु । आमोऽभावपक्षे, लिटः तिपि, तिपो णलि धातोर्द्वित्वे, अभ्यासत्वे ह्रस्वत्वे,  
भस्य बत्वे “अचो ण्णिति” इति वृद्धौ आयादेशे च ‘विभाय’ इति । विमेतु । भियो  
लोटि, तिपि, शपि, शपः श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वे “ह्रस्वः” इति अभ्यासस्याचो  
ह्रस्वत्वे “अभ्यासे चर्च” इति भस्य बत्वे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “पृक्”

विमितात्, विभीतात् । अभिमेत् । विमियात् । भीयात् । अभैषीत् । अभैष्यत् ।  
ही लज्जायाम् ॥ ३ ॥ जिहेति । जिहीतः । जिह्रियति । जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय  
हेता । हेप्यति । जिहेतु । अजिहेत् । जिहीयात् । अहैषीत् । अहेष्यत् । पृ पालन-

इति तिप इकारस्योत्वे 'बिभेत्' इति । तातडि जु-“भियोऽन्यतरस्याम्” इति विकल्पेन  
ईकारस्य इकारे 'विमितात्' इति । पच्चे-“विभीतात्” इति ज्ञेयम् । तसि-विमिताम्,  
विभीताम्-बिभ्यतु । विमिहि, विभीहि, विमितात्, विभीतात्, विमितम्-विभी-  
तम्, विमित-विभीत, विभयानि, विभयाव, विभयाम् । आबभेत् । भीधातोर्लुङि  
अटि तिपि अपि शपः श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वे इत्वे अस्य क्त्वे तिप इकारलोपे  
“सार्वधातुकार्ध०” इति गुणे 'अबिभेत्' इति । तसि-अविमिताम्-अविभीताम्,  
अविभयुः । अबिभेः, अबिभितम्-अबिभीतम्, अबिभित, अबिभीत । अबिभयम्,  
अबिभिव-अबिभीव, अबिभिम-अबिभीम । अभैषीत् । भीधातोर्लुङि अटि लुङः  
तिपि, तिप इकारलोपे, छलौ, च्लेः सिचि, इचावितौ “अस्तिसिचोऽपृक्के” इति ईटि  
सस्य क्त्वे “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति वृद्धौ “अभैषीत्” इति रूपम् । तसि-  
अभैषाम्, अभैषुः । अभैषीः, अभैष्टम्, अभैष्ट । अभैषम्, अभैष्व, अभैष्म । जिहेति ।  
ही लज्जायाम् इत्यस्मादातोर्लुङः तिपि अपि शपः श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वे 'ही ही  
ति' इति जाते “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे “ह्रस्वः” इति अभ्यासस्याचो ह्रस्वत्वे  
“कुहोरशुः” इति ह्रस्य श्त्वे “अभ्यासे चर्च” इति शस्य अकारे “सार्वधातुकार्धधातुक-  
योः” इति गुणे 'जिहेति' इति । तसि-जिहीतः । शौ “अदभ्यस्तात्” इति क्षेरति “अचि  
रनुधातुञ्जाम्” इति इयङि-जिह्रियति । जिहेषि, जिहीथः, जिहीथ । जिहेमि,  
जिहीवः, जिहीमः । जिह्रयाञ्चकार । हीधातोर्लुङि “भीहीभृदुवां श्लुवच्च” इत्यामि  
श्लुवच्चावच्च धातोर्द्वित्वे 'ही ही आम् लिट्' इति जाते अभ्यासत्वे इत्वे “कुहोरशुः”  
इति ह्रस्य श्त्वे “अभ्यासे चर्च” इति जत्वे “आमः” इति लिटो लुकि, “कृञ्चानुप्रयु-  
ज्यते लिटि” इति लिट्परकृञोऽनुप्रयोगे च 'जि ही आम् कृ लिट्' इति भूते, लिटः  
तिपि, णळि अनुबन्धलोपे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति कृञो द्वित्वेऽभ्यासत्वे  
उरदत्वे हलादिशेषे “कुहोरशुः” इति कस्य क्त्वे “सार्वधातुकार्ध०” इति गुणेश्यादेशे  
'जिह्रयाम् च कृ अ' इति जाते, पुनः “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इत्यनेन कृ इत्यस्य  
गुणे रपरे च “अत उपधायाः” इति वृद्धौ “मोऽनुस्वारः” इति अनुस्वारे “वा पदा-  
न्तस्य” इति परसवर्णे अकारे च जाते 'जिह्रयाञ्चकार' इति । आम्भावपच्चे लिट्स्तिपि  
तिपो णळि धातोर्द्वित्वे रलोपे ह्रस्य श्त्वे “अचो ङिति” इति वृद्धौ आयादेशे  
च 'जिह्राय' इति सिद्धम् । जिहीयात् । विधिलिङस्तिपि, अपि, शपः श्लुत्वे,  
धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे इत्वे रलोपे ह्रस्य श्त्वे शस्य अकारे यासुटि उद्यो लोपे  
तिप इकारलोपे “लिङः सलोपोऽनभ्यस्य” इत्यनेन सलोपे 'जिहीयात्' इति ।



पूरणयोः ॥ ४ ॥ अतिपिपत्योश्च ७।४।७७ अभ्यासस्य इकारोऽन्तादेशः स्यात्  
 श्लौ । पिपति । उदोष्ठ्यपूर्वस्य ७।१।१०२ अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ऋत् तदन्त-  
 स्यात्तस्य उत्स्यात् । हलि च ८।२।७७ रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः स्यात्  
 हलि । पिपूतः । पिपुरति । पपार । शूद्रप्रां ह्रस्वो वा ७।४।१२ एषां किति  
 लिटि ह्रस्वो वा स्यात् । पप्रतुः । ऋच्छत्यृताम् ७।४।११ तौदादिकृच्छेर्द्धधातां-  
 ऋतां च गुणः स्यात् लिटि । पपरतुः । पपरुः । वृत्तो वा ७।२।३८ वृद्ध्वम्भ्यामूद-

जिहीयाताम्, जिहीयुः । जिहीयाः, जिहीयातम्, जिहीयात । जिहीयाम्, जिही-  
 याव, जिहीयाम । अहैषीत् । हीधातोर्लुङ्स्तपि, च्लौ, च्लेः सिचि, इचो लोपे तिप  
 इकारलोपे “अस्तिस्सिचोऽपृक्ते” इति ईटि सस्य षत्वे “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति  
 वृद्धौ अटि च “अहैषीत्” इति रूपम् । अहैष्टाम्, अहैषुः । अहैषीः, अहैष्टम्, अहैष्ट । अहैषम्,  
 अहैष्व, अहैष्म । अतिपिपत्योश्चेति । “अत्र लोपः” इत्यस्मादभ्यासस्येति “भृजामित्”  
 इत्यस्मात् इदिति “निजां त्रयाणां गुणः श्लौ” इत्यतः श्लाविति चानुवर्तते इत्यभि-  
 प्रेत्य शेषं पूरयति—अभ्यासस्येत्यादिना । पिपति । पृपालनपूरणयोरित्यस्माद्धातोर्लट-  
 स्तिपि, शपि, शपः शलुत्वे, “श्लौ” इति द्वित्वे “पृ पृ ति” इति स्थिते “अतिपिपत्योश्च”  
 इत्यभ्यासस्येकारान्तादेशे “पिपृ ति” इति जाते “सार्वधातुकार्ध०” इति गुणे “पिपति”  
 इति साधु । उदोष्ठ्यपूर्वस्येति । “ऋत् इद्धातोः” इत्यतः ऋत् इत्यनुवर्तते । अङ्गस्येत्यधि-  
 कृतमिहानुवृत्तमावर्तते । एकमवयववचनान्तम्, ओष्ठ्यस्य विशेषणम् । अपरं तु कृता  
 विशेष्यते । तदन्तविधिः । तदाह—अङ्गावयवौष्ठ्येत्यादिना । हलि च । “वोरूपधाया  
 दीर्घ इक” इत्यनुवर्तते । “सिपि धातोः” इत्यतो धातोरिति च । तच्च वोरित्यनेन  
 विशेष्यते । तदन्तविधिः । तदाह—रेफवान्तस्येत्यादिना । पिपूतः । पृधातोर्लटस्तसि,  
 श्लौ “श्लौ” इति धातोर्द्वित्वेऽभ्यासकार्ये “अतिपिपत्योश्च” इत्यभ्यासस्येकारान्तादेशे  
 रपरत्वे हलादिशेषे “उदोष्ठ्यपूर्वस्य” इति उत्वे, रपरे च कृते “हलि च” इति दीर्घत्वे  
 सस्य रुत्वे विसर्गे च “पिपूतः” इति रूपं भवति । पिपुरति । श्लौ, धातोर्द्वित्वेऽभ्यासकार्ये  
 “अतिपिपत्योश्च” इत्यभ्यासस्येकारान्तादेशे “उभे अभ्यस्तम्” इति अभ्याससंज्ञायाम्  
 “अदभ्यस्तात्” इति शेरति “उदोष्ठ्यपूर्वस्य” इति उकारे रपरे च “पिपुरति” इति  
 सिद्धं भवति । पिपर्षि, पिपूर्यः, पिपूर्य । पिपर्मि, पिपूर्वः, पिपूर्मः । पपार । पृधातोर्लि-  
 टस्तिपि णलि धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे “पृ पृ अ” इति स्थिते “ह्रस्वः” इति अभ्यासस्याचो  
 ह्रस्वे “उरत्” इति रपरे अदादेशे “परू पृ अ” इति जाते “हलादिः शेषः” इति रलोपे  
 “अचो ञ्णिणिति” इति वृद्धौ प्राप्तायां “सार्वधातुकार्ध०” इति गुणे “अत उपधाया”  
 इति वृद्धौ “पपार” इति रूपं बोध्यम् । शृद्रप्रां ह्रस्वो वा । शृ ह पृ एषां इन्द्रः । लिटीति ।  
 “दयतेर्दिगि लिटि” इत्यतः तदनुवृत्तेरिति भावः । पप्रतुः । पृधातोर्लटस्तसि तसोऽ-  
 नुसि धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे, ह्रस्वे अकारे रपरे रलोपे, “शृ ह प्रां ह्रस्वो वा” इति ऋका-

न्ताच्चेद्ये दीर्घो वा स्यान्न तु लिटि । परिता, परीता । परिध्यति, परीष्यति । पिपर्तु ।

रस्य इस्वे “इको यणचि” इति यणि सस्य रुत्वे विसर्गे च ‘पप्रतुः’ इति भवति । कृच्छ-  
त्यताम् । “दयतेर्दिगिलिटि” इत्यतो लिटौति, “ऋतश्च संयोगादेर्गुण” इत्यतो गुण इति  
चानुवर्तते इति भावः । पचे—“ऋच्छत्युताम्” इति ऋकारस्य गुणे विहिते ‘पपस्तुः’  
इति । औ श्लेखसि द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये अभ्यासस्य अकारे रपरे रलोपे च “शृ ह प्रां  
इस्वो वा” इति ऋकारस्य इस्वे यणि च ‘पप्रुः’ इति । इस्वाभावपचे गुणे ‘पपरुः’ इति  
रूपद्वयम् । सिपि—पपरिथ, पप्रथुः—पपरथुः, पप्र—पपर । पपार—पपर, पप्रिव—पपरिव,  
पप्रिम—पपरिम । परिता । पृधातोर्लुङ्तिपि तासि तिपो ङात्वे “ङित्वसामर्थ्यादभस्यापि  
टेलोपः” इति टिलोपे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति ईटि कृते ‘पृ इ ता’ इति जाते  
“सार्वधातुकार्ध०” इति गुणे “वृत्तो वा” इति विकल्पेनेदो दीर्घे ‘परीता’ । दीर्घाभावे  
‘परिता’ इति साधु । पिपर्तु । पृधातोर्लुङ्तिपि शपि, शपः श्लुत्वे, “श्लौ” इति धातो-  
र्द्वित्वे “अर्तिपित्थोश्च” इति अभ्यासस्येकारान्तादेशे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति  
गुणे “एरुः” इति तिप इकारस्योत्वे ‘पिपत्तुं’ इति रूपम् । पिपूर्तात्, पिपूर्ताम्, पिपु-  
स्तु । पिपूर्हि—पिपूर्तात्, पिपूर्तम्, पिपूर्त । पिपराणि, पिपराव, पिपराम । अपिपः । पृ-  
धातोर्लुङ्तिपि शपि शपः श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे “अर्तिपित्थोश्च” इति  
अभ्यासस्य इदन्तादेशे तिप इकारलोपे “सार्वधातुकार्ध०” इति गुणे कृते ‘अपिपर्त्’  
इति जाते “हलङ्घाभ्य” इति तलोपे “स्वरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति विसर्गे अटि  
‘अपिपः’ इति साधु । अपिपूर्ताम् । तासि, तसस्तामि, धातोर्द्वित्वेऽभ्यासस्य इदन्तादेशे  
‘पिपृताम्’ इति जाते “उदोध्यपूर्वस्य” इति उकारे रपरे च ‘पिपुर्ताम्’ इति जाते  
“हलि च” इत्युपधाया इको दीर्घेऽटि च ‘अपिपूर्ताम्’ इति । औ—सपि शपः श्लुत्वे  
“श्लौ” इति धातोर्द्वित्वे “अर्तिपित्थोश्च” इत्यभ्यासस्य इदन्तादेशे “सिज्जम्यस्तवि-  
दिम्यश्च” इति श्लेखसि जस्येत्संज्ञायां लोपे च “जुसि च” इति गुणे, सस्य रुत्वे विसर्गे-  
ऽटि च ‘अपिपरुः’ इति रूपं ज्ञेयम् । सिपादौ—अपिपः, अपिपूर्तम्, अपिपूर्त । अपि-  
परम्, अपिपूर्व, अपिपूर्म । पिपूर्यात् । पृधातोर्विधिलिङ्तिपि, शपि, शपः श्लुत्वे  
“श्लौ” इति द्वित्वे “अर्तिपित्थोश्च” इत्यभ्यासस्येदन्तादेशे यासुटि उटि गते लिङः  
सलोपे, तिप इकारलोपे “उदोध्यपूर्वस्य” इति उकारे रपरे च “हलि च” इत्युपधाया  
इको दीर्घे ‘पिपूर्यात्’ इति बोध्यम् । पिपूर्याताम्, पिपूर्युः । पिपूर्याः, पिपूर्यातम्, पि-  
पूर्यात । पिपूर्याम्, पिपूर्याव । पिपूर्याम । पूर्यात् । आशीर्लिङ्तिपि यासुटि उटो लोपे  
तिप इकारलोपे “स्कोः” इति सलोपे “उदोध्यपूर्वस्य” इति उकारे रपरे च जाते  
“हलि च” इत्युपधाया इको दीर्घत्वे ‘पूर्यात्’ इति । अपारीत् । पृधातोर्लुङ्तिपि च्लौ,  
च्लेः सिचि, इचो लोपे, “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति ईटि, तिप इकारलोपे  
“अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति ईटि “इट ईटि” इति सलोपे “अकः सक्ते दीर्घः”

अपिपः । अपिपूर्ताम् । अपिपरः । पिपूर्यात् । पूर्यात् । अपारीत् । सिचि च परस्मैपदेषु ७।२।४० अत्र इटो न दीर्घः । अपारिष्टम् । अपरीष्यत्, अपरिष्यत्, । ओहाक् त्यागे ॥ ५ ॥ जहाति । जहातेश्च ६।४।११६ इत् वा स्याद-  
लादौ विभक्ति सार्वधातुके । जहितः । ई हल्यघोः ६।४।११३ श्नाभ्यस्तयोरात्  
ईत्यात् सार्वधातुके विभक्ति हलि न तु घोः । जहीतः । श्नाभ्यस्तयोरातः ६।४।  
११२ अनयोरातो लोपः स्यात् इति सार्वधातुके । जहति । जहौ । हाता । हास्यते ।

इति दीर्घत्वे “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति वृद्धौ अङ्गस्याहागमे, ‘अपारीत्’  
इति । सिचि च परस्मैपदेषु । अत्रेति । परस्मैपदपरके सिचि वृद्धृजभ्याम् ऋद-  
न्ताच्च परस्य इटो दीर्घो नेत्यर्थः । “न लिङि” इत्यतो नेत्यनुवर्तते । अपा-  
रिष्टम् । तसि तसस्तामि “वृतो वा” इति दीर्घत्वे प्राप्ते, “सिचि च परस्मै-  
पदेषु” इति इटो दीर्घत्वाभावे—अपारिष्टम्, अपारिपुः । अपारीः अपारिष्टम्,  
अपारिष्ट । अपारिषम्, अपारिष्व, अपारिष्म । अपरिष्यत् । पृधातोर्लुङ्स्तिपि  
इत्ये इटि तिप इकारलोपे सस्य षत्वे गुणे “वृतो वा” इति दीर्घे ‘अपरीष्यत्’ इति,  
दीर्घत्वाभावे ‘अपरिष्यत्’ इति रूपद्वयं ज्ञेयम् । जहाति । ओहाक् त्यागे इत्यस्माद्धातोः  
लृट्स्तिपि ऋपि शपः श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वे “ह्रस्वः” इति अभ्यासस्याचो ह्रस्वे  
“कुहोरचुः” इति हस्य ऋत्वे ऋस्य जत्वे “जहाति” इति सिद्धम् । जहातेश्च । “इह्रिद्वस्य”  
इत्यत इदिति “भियोऽन्यतरस्याम्” इत्यतोऽन्यतरस्याम् इति “गमहन” इत्यतः  
विभक्ति, “अत उत्सार्वधातुके” इत्यतः हलीति चानुवर्तते, तदाह—इत्याद्वेति । जहितः ।  
तसि शपः श्लौ, द्वित्वे ह्रस्वे हस्य ऋत्वे, ऋस्य जत्वे “सार्वधातुकमपित्” इति तसो  
छिद्वात्वे “जहातेश्च” इति हकारोत्तरवर्तित आकारस्य इकारादेशे ‘जहितः’ इति ।  
ई हल्यघोः । ई इतिलुसप्रथमाकम् । “श्नाभ्यस्तयोरातः” इत्यनुवर्तते । “गमहन”  
इत्यतः विभक्तीति “अत उत्सार्वधातुके” इत्यतः सार्वधातुके इति चानुवर्तते, तदाह—  
श्नाभ्यस्तयोरित्यादिना । पञ्चे—“ई हल्यघोः” इति आकारस्य ईकारे ‘जहीतः’ इति  
सिद्धम् । श्नाभ्यस्तयोरातः । “गमहन” इत्यतः लोपः द्वितीत्यनुवर्तते “अत । उत्”  
इत्यतः सार्वधातुके इति, तदाह—अनयोरिति । जहति । शौ धातोर्द्वित्वेऽभ्यासस्याचो  
ह्रस्वे “कुहोरचुः” इति हस्य ऋत्वे “अभ्यासे चर्च” इति अभ्यासप्रकारस्य ऋत्वे  
“उभे अभ्यस्तम्” इति अभ्यस्तसंज्ञायाम् “अदभ्यस्तात्” इति शेरति “ज हा अति”  
इति दशायां “सार्वधातुकमपित्” इति छिद्वात्वे “श्नाभ्यस्तयोरातः” इत्याकारलोपे  
कृते संयोगे ‘जहाति’ इति सिद्धं भवति । जहासि, जहियः—जहीथः, जहिय—जहीथ ।  
जहामि । जहिवः—जहीवः, जहिमः—जहीमः । जहौ । हाधातोर्लिट् लकारे, तस्य तिबा-  
देशे तिपः स्थाने णलि जाते “हा अ” इति दशायां “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति  
धातोर्द्वित्वेऽभ्यासस्य ह्रस्वे “कुहोरचुः” इति हस्य ऋत्वे, ऋस्य जत्वे ‘जहा अ’ इति

जहातु, जहितात्, जहीतात् । आ च हौ ६।४।११७ जहातेहौ परे आत्स्याच्चादि-  
दीतौ । जहाहि, जहिहि, जहीहि । अजहात् । अजहुः । लोपो यि ६।४।११  
जहातेरालोपः स्यात् यादौ सार्वधातुके । जहात् । “एलिङि” । हेयात् । अहासीत् ।  
अहास्यत् । माङ् माने शब्दे च ॥ ६ ॥ भृजामित् ७।४।२६ भृज माङ् ओहाङ्

स्थिते “आत औ णलः” इति णल औत्वे “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ “जहौ” इति बोध्यम् ।  
अग्रे तु-जहतुः, जहुः । जहिय-जहाय, जहथुः, जह । जहौ, जहिव, जहाम । इति ।  
जहातु । हाधातोः “लोट् च” इति लोट् लकारे, लस्य तिबादेशे शपि, शपः श्लुत्वे  
“श्लौ” इति द्वित्वेऽभ्यासकार्ये “ह्रस्वः” इति अभ्यासस्याचो ह्रस्वात्वे “कुहोरशुः”  
इति हस्य झत्वे “अभ्यासे चर्च” इति झस्य जत्वे, तिप इकारोत्वे कृते “जहातु” इति  
रूपम् । तातङि-“जहातेश्च” इत्यन्कारस्य इकारे “जहितात्” इति, पच्चे-“ई हल्यघोः”  
इति ईत्वे कृते “जहीतात्” इति रूपत्रयं सिद्ध्यति । आच हौ । “जहातेश्च” इत्यतस्तद-  
नुवृत्तेरिति भावः । जहाहि । हाधातोर्लोटः स्थाने मध्यमपुरुषैकवचने सिबादेशे “सेह-  
पिच्च” इति सिपः स्थाने हिबादेशे शपि, शपः श्लौ “श्लौ” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे  
“ह्रस्वः” इति अभ्यासस्याचो ह्रस्वात्वे “कुहोश्च” इति कुत्वेन हस्य झत्वे “अभ्यासे चर्च”  
इति झस्य जत्वे “आच हौ” इति आत्वे “जहाहि” इति । इकारे विहिते तु “जहिहि” ईत्वे  
च “जहीहि” इति रूपत्रयं बोध्यम् । अग्रे रूपाणीत्यम्-जहितात्-जहीतात् । जहितम्-  
जहीतम्, जहित-जहीत । जहानि, जहाव, जहाम । अजहात् । हाधातोर्लङ् इतिपि शपि  
शपः श्लुत्वे द्वित्वेऽभ्यासकार्ये हकारस्य झत्वे झस्य जत्वे तिपः इकारलोपे अटि च  
“अजहात्” इति । अजहिताम्-अजहीताम् । अजहुः । जहातेर्लङ् औ “सिजभ्यस्त-  
विदिभ्यश्च” इति श्रेष्ठसि अनुषन्धलोपे “श्नाभ्यस्तयोरातः” इति आलोपे “अजहुः”  
इति । अजहाः, अजहितम्-अजहीतम्, अजहित-अजहीत । अजहाम्, अजहिव-अज-  
हीव, अजहिम-अजहीम । लोपोऽयि । “जहातेश्च” इत्यतो जहातेरिति “आभ्यस्तयो-  
रातः” इत्यतः आत इति “अत उत्सार्वधातुके” इत्यतः सार्वधातुके इति चानुवर्तते ।  
यि इति सप्तम्यन्तं सार्वधातुकविशेषणम् । तदादिविधिस्तदाह-जहातेरित्यादिना ।  
जहात् । हाधातोर्विचिङिङिस्तिबादेशे शपः श्लुत्वे धातोर्द्वित्वेऽभ्यासकार्ये “इतश्च”  
इति तिप इकारलोपे हकारस्य झत्वे झकारस्य जत्वेन जकारे यासुटि उटावितौ “लिङः  
सल्लोपोऽनन्त्यस्य” इति सल्लोपे “लोपो यि” इति हकाराकारलोपे “जहात्” इति रूपं  
सिद्धं भवति । हेयात् । आक्षीर्लिङ् इतिपि यासुटि उटावितौ तिप इकारलोपे “स्कोः  
संयोगाद्योरन्ते च” इति सल्लोपे “एलिङि” इति हकाराकारस्य एत्वे “हेयात्” इति रूपं  
भवति । अहासीत् । हाधातोर्लुङि अटि लः स्थाने तिपि प्लौ प्लेः सिचि इचोलोपे  
तिप इकारलोपे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति इटि “अमरमनमातां सक् च” इति धातोः  
सकागमे सिच इटि च “इट ईटि” इति सल्लोपे सवर्णदीर्घे च उक्तं रूपं सिद्धम् । मृजा-

एषां त्रयाणामभ्यासस्य इत्स्यात् श्लौ । मिमीते । मिमाते । मिमते । ममे । माता । मास्यते । मिमीताम् । अमिमोत । मिमीत । मासीष्ट । अमास्त । अमास्यत । ओ-  
हाङ्गतौ ॥ ७ ॥ जिहीते । जिहाते । जिहते । जहे । हाता । हास्यते । जिही-

मित् । मृजामिति बहुवचनात् मृजादीनामिति लभ्यते “अत्र लोपोऽभ्यासस्य” इत्यतः  
अभ्यासस्येति “जिजां त्रयाणां गुणः श्लौ” इत्यतः त्रयाणां श्लौ इति चानुवर्तते, तदाह—  
मृजमाङ् इति । मिमीते । माङ्माने शब्दे च इत्यस्माद्घातोर्लट्लकारे तत्स्थाने तिपि ञपि  
ज्ञपः श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वे “मृजामित्” इत्यभ्यासस्य इत्वे “ई हल्यघोः” इति आका-  
रस्य ईत्वे “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति । टेरेत्वे च विहिते “मिमीते” इति साधु । मिमाते ।  
माघातोर्लट् आतामि टेरेत्वे ज्ञपः श्लौ “श्लौ” इति द्वित्वे ह्रस्वे “मृजामित्” इति अभ्या-  
सस्य इत्वे “श्नाभ्यस्तयोरातः” इत्यालोपे च उक्तं रूपं सिद्धम् । मिमते । श्लौ टेरेत्वे  
ज्ञपः श्लौ “श्लौ” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे “ह्रस्वः” इति ह्रस्वत्वे “मृजामित्” इति इत्वे  
“उमे अभ्यस्तम्” इत्यभ्यस्तसंज्ञायाम् “अदभ्यस्तात्” इति ञस्य अति “श्नाभ्यस्तयो-  
रातः” इति आलोपे “मिमते” इति । मिमीषे, मिमाये, मिमीध्वे । मिमे, मिमीवहे, मिमी-  
महे । ममे । माघातोर्लिट्स्ते “लिट्स्तेऽयोरेशिरेच्” इति एक्षि द्वित्वेऽभ्यासकार्ये आलोपे  
च रूपसिद्धिः । ममाते, ममिरे, ममिषे, ममाये, ममिध्वे । ममे, ममिवहे, ममिमहे ।  
मिमोताम् । माघातोर्लिट्स्ते समागते ञपि, ज्ञपः श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वेऽभ्यासकार्ये  
“मृजामित्” इति इत्वे “ई हल्यघोः” इति आकारस्य ईत्वे “मिमो त” इति स्थिते टेरेत्वे  
“आमेतः” इति एकारस्य स्थाने आमि “मिमोताम्” इति रूपम् । मिमाताम्, मिमताम् ।  
मिमीध्व, मिमाथाम्, मिमीध्वम् । मिमै, मिमावहे, मिमामहे । अमिमोत । माङ्घातो-  
र्लट् अटि लः स्थाने तादेशे ज्ञपः श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वेऽभ्यासकार्ये “मृजामित्”  
इति इकारे “ई हल्यघोः” इति ईत्वे “अमिमोत” इति जायते । अमिमाताम्, अमिमत ।  
अमिमोथाः, अमिमाथाम् अमिमिध्वम् । अमिमि, अमिमोवहि, अमिमिमहि । अमास्त ।  
माघातोर्लुङि अटि लः स्थाने तादेशे च्लौ च्लेः सिचि इचावितौ ‘अमास्त’ इति ।  
अमासाताम्, अमासत, अमास्थाः, अमासाथाम्, अमाध्वम् । अमासि, अमा-  
स्वहि, अमास्महि । इति । जिहीते । ओहाङ्गतौ अस्मात् धातुतो लटि समागते लः  
स्थाने ते ञपि ज्ञपः श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां “मृजामित्” इत्यभ्या-  
सस्य इकारे “कुहोरचुः” इति ह्रस्व इत्वे “अभ्यासे चर्च” इति ञस्य घत्वे “ई हल्य-  
घोः” इत्याकारस्य ईत्वे टेरेत्वे च कृते “जिहीते” इति निष्पन्नम् । जिहाते, जिहते । जिहीषे,  
जिहाये, जिहीध्वे । जिहे, जिहीवहे, जिहोमहे । जहे । ओहाङ्गतौ अस्मात् लिटि ते  
समागते “लिटि घातोरनभ्यासस्य” इति घातोर्द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे  
“ह्रस्वः” इत्यभ्यासस्याचो ह्रस्वे कृते “कुहोरचुः” इति ह्रस्व इत्वे “अभ्यासे चर्च”  
इति ञस्य जत्वे ‘जहा त’ इति जाते “लिट्स्तेऽयोरेशिरेच्” इति तस्यैक्षि “आतो लोप-

ताम् । अजिहीत । जिहीत । ह्यसीष्ट । अहास्त । अहास्यत । दुभृञ् धारणपोष-  
णयोः ॥ ८ ॥ विभर्ति । विभृतः । विभ्रति । विभृते । विभ्राते । विभ्रते । विभरा-  
ञ्चकार । वभार । वभर्थ । वभृव । विभराञ्चके । वभ्रे । भर्ता । भरिष्यति, भरि-

इटि च” इत्याकारलोपे ‘जहे’ इति रूपम् । जहाते, जह्तिरे । जतिषे, जहाथे, जहिव्हे  
जहे, जहिवहे, जहिमहे । जिहीताम् । हाधातोर्लोटस्ते समागते शपि, शपः श्लुत्वे  
“श्लौ” इति धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे “भृजामित्” इति अभ्यासस्य इत्वे “कुहोश्चु”  
इति हस्य झत्वे झस्य जत्वे “ई हल्यघोः” इति ईकारे टेरेत्वे “आमेतः” इति लोट  
एकारस्य आमि च कृते ‘जिहीताम्’ इति रूपम् । जिहाताम्, जिहताम्, जिहीष्व,  
जिहाथाम् । जिहीध्वम् । जिहै, जिहावहै, जिहामहै । अजिहीत । ओहाङ्धातोर्लोटस्ते  
शपि, शपः श्लुत्वे “श्लौ” इति धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे “ह्रस्वः” इति ह्रस्वे “भृजामित्”  
इत्यभ्यासस्य इकारे “कुहोश्चु” इति हस्य झत्वे “अभ्यासे चर्च” इति झस्य जत्वे  
“ई हल्यघोः” इति ईकारे अटि च ‘अजिहीत’ इति सिद्धयति । अजिहाताम्, अजि-  
हत । अजिहीथाः, अजिहाथाम्, अजिहीध्वम् । अजिहे, अजिहीवहि, अजिहीमहि ।  
जिहीत । ओहाङ्धातोर्विधिलिङि, लिङः तादेशे शपि शपः श्लुत्वे, “श्लौ” इति  
द्वित्वेऽभ्यासकार्ये हस्य झत्वे झस्य जत्वे “लिङः सीयुट्” इति सीयुटि, उटो लोपे  
“लापो व्योर्वलि” इति यलोपे “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे “श्नाभ्यस्त-  
योरातः” इति आकारलोपे ‘जिहीत’ इति रूपं सिद्धं भवति । जिहीयाताम्, जिही-  
रन् । जिहीथाः, जिहीयाथाम्, जिहीध्वम् । जिहीय, जिहीवहि, जिहीमहि । अहास्त ।  
लुङि, अटि, ते, “च्छि लुङि” इति च्लौ “च्लेस्सिच्” इति सिचि इचो लोपे ‘अहास्त’  
इति रूपं ज्ञेयम् । अहासाताम्, अहासत । अहास्थाः, अहासाथाम्, अहाध्वम्,  
अहासि, अहास्वहि, अहास्महि ॥ विभर्ति । भृञ्धातुतो लटि, लटः तिपि, शपि, शपः  
श्लुत्वे, धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे ‘भृ भृ ति’ इति स्थिते अभ्याससंज्ञायाम् “भृजामित्”  
इति इत्वे रपरत्वे “हलादिः शेषः” इति रलोपे “अभ्यासे चर्च” इति भस्य बत्वे ‘विभृ-  
ति’ इति जाते, तिपः सार्वाधातुकत्वे “सार्वाधातुकार्वाधातुकयोः” इति गुणे ‘विभर्ति’  
इति रूपम् । एवं ‘विभृतः’ इति । विभ्रति । सौ समागते “श्लौ” इति द्वित्वादिकार्ये  
च कृते “भृजामित्” इति अभ्यासस्य इत्वे “उभे अभ्यस्तम्” इति अभ्याससंज्ञा-  
याम् “अदभ्यस्तात्” इति झस्यति “इको यणचि” इति यणि ‘विभ्रति’ इति ।  
अग्रे त्वेवम्-विभर्षि, विभृत्यः, विभृत्य । विभर्मि, विभृवः, विभृत्यः । इति विभराञ्चकार ।  
भृजो लिटि “भीहीभृदुवां श्लुवच्च” इति आमि श्लुवद्भावे, तेन द्वित्वे अभ्यासादि-  
कार्ये “भृजामित्” इति इत्वे च कृते, पुनः धातोश्च गुणेश्चारे रपरे च “आमः” इति  
लिटो लुकि “कृञ्धातुप्रयुज्यते लिटि” इति लिटपरकृजोऽनुप्रयोगे लिटस्तिपि, तिपो  
लुकि द्वित्वादिकार्ये “सार्वाधातुकार्वा” इति गुणेश्चारे रपरे च उपचाष्टदौ “भोऽनु-

ष्यते । विभर्तु । विभराणि । विभृताम् । अविभः । अविभृताम् । अविभरुः ।  
अविभृत । विभृयात् । विभ्रीत । अत्रियात् । भृषीष्ट । अभाषीत् । अभृत । अभरि-  
ष्यत् । अभरिष्यत । जुदाञ् दाने ॥९॥ ददाति । दत्तः । ददाति । दत्ते । ददाते ।

स्वारः” इति आमो मकारस्य अनुस्वारे “वा पदान्तस्य” इति परसवर्णे चोक्तं रूपं  
सिद्धम् । आमोऽभावपक्षे तु—धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे ‘भृ भृ अ’ इति स्थिते “उरत्”  
इति अकारे रपरि “हलादिः शेषः” इति रलोपे “अभ्यासे चर्च” इति भस्य बत्वे पर-  
त्वात् “सार्वधातुकार्ध०” इति गुणे “अत उपधायाः” इति उपधाया बृद्धौ जातायां  
‘बभार’ इति रूपम् । आत्मनेपदे—‘विभराञ्चक्रे’ ‘बभ्रे’ इति रूपद्वयं ज्ञेयम् । विभृताम् ।  
भृधातोर्लोपे शपः श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये ढेरेत्वे, “आमेतः” इति  
एकारस्यामि ‘विभृताम्’ इति भवति । विभ्राताम् , विभ्रताम् । विभृष्व, विभ्राथाम् ,  
विभृष्वम् । विभरै, विभरावहै, विभरामहै । अविभः । भृधातोर्लिङ्गस्तिपि शपि शपः  
श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वे अभ्यासकार्ये “भृजामित्” इति इकारे भस्य बत्वे “सार्व-  
धातुकार्ध०” इति गुणे रपरत्वे तिप इकारलोपे “हल्ङ्वाभ्यो०” इति तलोपे “स्वरव-  
सानयोर्विसर्जनीयः” इति रेफस्य विसर्गे अटि च ‘अविभः’ इति जातम् । सिपि-  
अविभः, अविभृतम् , अविभृत । अविभरम् , अविभृव, अविभृम । आत्मनेपदे तु  
अविभृत । आतामि—अविभ्राताम् , अविभ्रत । अविभृथाः, अविभ्राथाम् , अविभृ-  
ष्वम् । अविभ्रि, अविभृवहि, अविभृमहि । विभृयात् । विधिलिङ्गस्तिपि शपि शपः  
श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये “भृजामित्” इति इकारे यासुटि उटावितौ  
“लिङ्गः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे तिप इकारलोपे ‘विभृयात्’ इति निष्पन्नम् ।  
विभ्रोत । विधिलिङ्गस्ते शपि शपः श्लुत्वे द्वित्वादिकार्ये सीयुटि उटावितौ “लोपो  
व्योर्वलि” इति यलोपे “लिङ्गः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे “इको यणचि” इति  
यणि ‘विभ्रीत’ इति रूपम् । आशीर्लिङ्गस्तिपि समागते यासुडागमे “रिङ्गशयलिङ्गु”  
इति ऋकारस्य रिङ्गदेशे सलोपे तिप इकारलोपे च कृते ‘अत्रियात्’ । आत्मनेपदे आशी-  
लिङ्गस्ते सीयुडागमे उटावितौ “लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे “सुट्तिथोः” इति सुटि  
उटो लोपे इयोस्सकारयोः पत्वे तस्य टत्वे “उञ्च” इति कित्वाद्गुणभावे ‘भृषीष्ट’ ।  
इति साधु । अभाषीत् । विभर्तेर्लुङि अटि लः स्थाने तिपि च्लौ च्लेः सिचि इच्चावितौ  
तिप इकारलोपे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति ईटि “सिचि वृद्धिः० इति वृद्धौ ‘अभाषीत्’  
इति । अभाषीम्, अभाषुः । अभाषीः, अभाषीम्, अभाषी । अभाष्यम् । अभाष्य अभाष्यम् ।  
अभृत । आत्मनेपदे लुङ्गस्तादेशे च्लौ च्लेः सिचि “इत्स्वादङ्गात्” इति सिचो लुकि  
“उञ्च” इति कित्वाद् “ङिति च” इति गुणनिषेधे ‘अभृत’ इति । अभृषाताम् , अभृ-  
षत । अभृथाः, अभृषाथाम्, अभृष्वम् । अभृषि, अभृष्वहि । अभृष्यहि । ददाति ।  
जुदाञ् दाने इति धातुगे छट्स्तिपि शपि शपः श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वे अभ्यासादि-

ददते । ददौ । ददे । दाता । दास्यति । दास्यते । ददातु । दाधाध्वदाप् १।१।  
२० दारुण धारुणाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युर्दापदैपौ विना । “ध्वसोः” इत्येत्वम् ।  
देहि । दत्ताम् । अददात् । अदत्त । दद्यात् । ददीत । देयात् । दासीष्ट । अदात् ।

कार्ये “ह्रस्वः” इति अभ्यासस्याचो ह्रस्वे ‘ददाति’ । तसि-धातोर्द्विस्वे कृते अभ्यासत्वे ह्रस्वत्वे “उभे अभ्यस्तम्” इति अभ्यस्तसंज्ञायां “आभ्यस्तयोरातः” इत्याकारलोपे “खरि च” इति दस्य तकारे सस्य स्त्वे रेफस्य च विसर्गे ‘दत्तः’ इति सिद्धम् । श्रौ-द्वित्वेऽभ्यासत्वेऽभ्यासस्याचो ह्रस्वे “उभे अभ्यस्तम्” इति अभ्यस्तसंज्ञकत्वात् “अदभ्यस्तात्” इति शेरति “श्नाभ्यस्तयोरातः” इत्याकारलोपे च कृते ‘ददति’ । ददासि, दत्स्यः, दत्स्य । ददामि, दद्वः, दद्वः । दत्ते । आत्मनेपदे लटि तादेशे टेरेत्वे द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये ह्रस्वे “श्नाभ्यस्तयोरातः” इत्याकारलोपे “खरि च” इति दस्य तत्वे ‘दत्ते’ इति रूपं बोध्यम् । ददाते, ददते । दत्से, ददाथे, ददध्वे । ददे, दद्वहे, दद्वहे । ददौ । दाधातुलो लोटिस्तिपि तिपो णलि “लिटि धातोर्नभ्यासस्य” इति धातोर्द्विस्वे “ह्रस्वः” इति ह्रस्वे “आत औ णलः” इति णलः स्थाने औत्वे “बृद्धिरेचि” इति बृद्धौ ‘ददौ’ इति साधु । ददतुः, ददुः । ददित्थ, ददाथ, ददथुः, दद । ददौ, ददिव, ददिम । ददे, ददाते, ददिरे । ददिथे, ददाथे, ददध्वे । ददे, ददिवहे, ददिमहे । ददातु । लोटिस्तिपि शपि शपः श्लौ “श्लौ” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे ह्रस्वे “एरु” इति तिप इकारस्योत्वे ‘ददातु’ । दत्तात्, दत्ताम्, ददतु । दाधाध्वदाप् । देत्यनेन स्वाभाविकाकारान्तयोः ‘हुदाब्’ बाने ‘दाण्’ दाने इत्यनयोः, कृतात्वयोः दो अवस्त्वण्डने ‘देङ् रच्णे’ इत्यनयोः लाङ्गणिकयोश्च, घेत्यनेन स्वाभाविकाकारान्तस्य ‘हुधाब्धारणपोषणयोः’ इत्यस्य लाङ्गणिकस्य ‘घेट् पाने’ इत्यस्य च ग्रहणम् । ‘गामादाग्रहणेष्वाविशेषः’ इति परिभाषाबलात् । तत्र दाग्रहणेन धारूपस्यापि ग्रहणाच्च । अत एव “दो दद्वोः” इत्यत्र धेर्निवृत्त्यर्थं दाग्रहणमर्थवत् । दधातेर्हिभावविधानादेव निवृत्तिसिद्धेः, तदाह—शारूपा धारूपाश्चेति । देहि । दाधा-  
तोर्लोटः सिपो हौ “दाधाध्वदाप्” इति घुसंज्ञायां शपः श्लौ द्वित्वेऽभ्यासह्रस्वे “ध्वसो-  
रेद्वावभ्यासलोपश्च” इति एत्वाभ्यासलोपयोरुक्तं रूपं सिध्यति । दत्तम्, दत्त, ददामि,  
ददाव, ददाम । आत्मनेपदे—दत्ताम् । लोटस्तादेशे टेरेत्वे शपः श्लुत्वे द्वित्वादिकार्ये  
‘द दा ते’ इति स्थिते “श्नाभ्यस्तयोरातः” इत्याकारलोपे “खरि च” इति दस्य तकारे  
“आमेतः” इत्येकारस्य आमि ‘दत्ताम्’ इति रूपम् । ददाताम्, ददताम् । दत्स्व, ददा-  
थाम्, ददध्वम् । ददै, ददावहै, ददामहै । अददात् । लङि अटि तिपि शपि शपः श्लौ  
“श्लौ” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे ह्रस्वे तिप इकारलोपे ‘अददात्’ इति । तसि-अदत्ताम्,  
अददुः । अददाः, अदत्तम्, अदत्त । अददाम्, अदद्व, अदद्वः । आत्मनेपदे-अदत्त, अद-  
दाताम्, अददत्त । अदत्थाः, अददाथाम्, अददध्वम् । अददि, अदद्वहि, अदद्वहि ।  
दद्यात् । विधिलिङ्गस्तिपि शपि शपः श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे ह्रस्वे यासुति



अदाताम् । अदुः । स्थाच्चोरिच्च १।२।१७ अनयोरिदन्तादेशः स्यात् स च कित्स्या-  
दात्मनेपदे । अदित । अदास्यत् । अदास्यत । दुधाञ् धारणपोषणयोः ॥ १० ॥  
दधाति । दधस्तथोश्च ८।२।३८ द्विरुक्तस्य ऋषन्तस्य धाधातोर्बशो भष् स्यात्तथोः  
परयोः स्त्वोश्च परतः । धत्तः । दधति । दधासि । धत्थः । धत्थ । धत्ते । दधाते ।  
दधते । धत्से । धद्वे । “ध्वसोरेद्वाभ्यासलोपश्च” । धेहि । अदधात् । अधत्त ।

उदावितौ तिप इकारलोपे “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे “श्नाभ्यस्तयोरातः”  
इत्वाकारलोपे च ‘दधात्’ इति रूपम् । आत्मनेपदे-‘ददीत’ द्वित्वेऽभ्यासत्वे “लिङः  
सीयुट्” इति सीयुडागमेऽनुबन्धलोपे यलोपे “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे  
“आभ्यस्तयोरातः” इति अभ्यस्तसंज्ञकत्वादाकारलोपे ‘ददीत’ इति । आशीलिङि-  
‘देयात्’ “एलिङि” इति आकारस्य एत्वम्, स्कोरिति सलोपश्चेति विशेषः । आत्मनेपदे-  
सीयुट्, सुट्, षत्वष्टुत्वे च विशेषः-‘दासीष्ट’ इति जातम् । अदात् । लुङि अटि तिपि  
ल्लौ ल्लेः सिचि “दाधाध्वदाप्” इति घुसंज्ञायां “गातिस्थाधुपभूम्यस्तिचः परस्मैपदेषु”  
इति सिचो लुकि ‘अदात्’ इति । स्थाच्चोरिच्च । “असंयोगाद्भिट् कित्” इत्यतः  
किदिति “हनः सिच्” इत्यतः सिजिति चानुवर्तते । तदाह—अनयोरित्यादिना ।  
अदित । आत्मनेपदे-लुङस्तादेशे ल्लौ ल्लेः सिचि “दाधाध्वदाप्” इति घुसंज्ञकत्वात्  
“स्थाच्चोरिच्च” इति इदन्तादेशे सिचः कित्त्वे च “ह्रस्वादङ्गात्” इति सिचः सलोपे  
विहिते ‘अदित’ इति निष्पन्नं भवति । अदिषाताम्, अदिषत् । अदिषाः, अदिषा-  
भ्याम्, अदिद्वम् । अदिषि, अदिष्वहि, अदिष्महि । दधाति । दुधाञ् धारणपोषण-  
योरिति धातुतो लट्स्तिपि शपि शपः श्लौ द्वित्वादिकार्ये ह्रस्वे “अभ्यासे चर्च” इति  
चकारस्य दकारे ‘दधाति’ इति । दधस्तथोश्च । धा धातोः कृतद्वित्वस्य दधः इति  
षष्ठ्यन्तम् “एकाचो बश्” इत्यतो ऋषन्तस्य बशो भष् इत्यनुवर्तते । तथ् अनयो-  
र्हन्द्वात् सप्तमीद्विवचनम् । तकारादकार उच्चारणार्थः । तकारथकारयोरिति लभ्यते,  
चकारात् स्त्वोरिति समुच्चीयते । सकारे ध्वशब्दे चेति लभ्यते तदाह—द्विरुक्तस्ये-  
त्यादिना । धत्तः । धाधातोः तसि शपः श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे “ह्रस्वः”  
इति ह्रस्वे “अभ्यासे चर्च” इति धस्य दत्वे ‘दधातस्’ इति जाते “दधस्तथोश्च” इति  
ह्रस्व धत्वे “श्नाभ्यस्तयोरातः” इत्यालोपे “खरि च” इति धस्य तत्त्वे सस्य ह्रस्वे  
विसर्गे च ‘धत्तः’ इति । धेहि । धाञ्धातोर्लोऽटि सिपि “सेह्यपिच्च” इति सेह्रित्वे  
शपि, शपः श्लुत्वे धातोर्द्वित्वे “ह्रस्वः” इति अभ्यासस्याचो ह्रस्वे “ध्वसोरेद्वाभ्यास-  
लोपश्च” इति एत्वेऽभ्यासलोपे च ‘धेहि’ इति रूपम् । अदधात् । दधातेर्लिङि तिपि  
शपि शपः श्लुत्वे “श्लौ” इति धातोर्द्वित्वेऽभ्याससंज्ञात्वे “ह्रस्वः” इति ह्रस्वे । “अभ्यासे  
चर्च” इति धस्य दत्वे तिप इकारलोपे अटि च ‘अदधात्’ इति । अधत्ताम्, अधत्तुः ।  
अदधाः, अधत्तम्, अधत्त । अदधम्, अदध्व, अदध्म । आत्मनेपदे—अधत्त, अध-

दध्यात्, दधीत् । धेयात् । धासीष्ट । अध्यात् । अधित । अधास्यत् । अधास्यत ।  
 शिजिर् शौचपोषणयोः ॥११॥ (इर इत्संज्ञा वाच्या) । शिजां त्रयाणां गुणः  
 श्लौ ७१४।७५ गिज्विज्वषामभ्यासस्य गुणः स्यात् श्लौ । नेनेक्ति । नेनक्तिः ।  
 नेनिजति । नेनिके । निनेज । निनिजे । नेक्ता । नेक्ष्यति । नेक्ष्यते । नेनेक्षु ।

धाताम्, अदधत् । अधत्याः, अदधाताम्, अधध्वम् । अदधि, अदध्वहि, अदध्महि ।  
 धेयात् । धाधातोराक्षीलिङ्गस्तिपि वासुदागमे उटो लोपे तिप इकारलोपे “स्कोः”  
 इति सलोपे “एलिङ्गि” इत्याकारस्य एत्वे ‘धेयात्’ इति । अध्यात् । दधातेर्लुकि  
 अटि तिपि तिप इलोपे श्लौ, च्लेः सिचि “गातिस्था” इति सिचो लोपे ‘अधात्’  
 इति । अधाताम्, अधुः । अधाः, अधातम्, अधात । अधाम्, अधाव, अधाम ।  
 अधित । धाज आगमनेपदे, लुङ्स्तादेशे च्लौ च्लेः सिचि इचो लोपे “स्था-  
 ध्वोरिच्च” इति इदन्तादेशे सिचः कित्त्वे च कित्त्वात् “कृञ्जिति च” इति गुणाभावे  
 “ह्रस्वादङ्गात्” इति सलोपे चाटि ‘अधित’ इति । शिजां त्रयाणां गुणः श्लौ । णिजामिति  
 बहुवचनात् तदादीनां ग्रहणम् “अत्र लोपोऽभ्यासस्य” इत्यतः अभ्यासस्येत्यनुवर्तते,  
 तदाह—णिज्विजित्यादिना ॥ नेनेक्ति । णिजिर् शौचपोषणयोरित्यस्माद् धातोर्लटि समा-  
 गते “इर इत्संज्ञा वाच्या” इति इत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे “णो नः” इति  
 धात्वादर्णस्य नत्वे लट्स्तिपि शपि शपः श्लौ धातोर्द्वित्वेऽभ्यासकार्ये “णिजां त्रयाणां  
 गुणः श्लौ” इत्यभ्यासस्य गुणे “चोः कुः” इति जस्य गत्वे “खरि च” इति गस्य कत्वे  
 “पुगन्तलधूपधस्य च” इति गुणे ‘नेनेक्ति’ इति । तसि धातोर्द्वित्वे जलोपे “णिजां  
 त्रयाणाम्” इति अभ्यासगुणे तसः कित्त्वात् “पुगन्त” इति गुणाभावे “चोः कुः” इति  
 जस्य गत्वे “खरि च” इति कत्वे ‘नेनक्तिः’ इति सिद्धम् । नेनिजति । क्षिपरतः शपः  
 श्लुत्वे “श्लौ” इति द्वित्वेऽभ्यासकार्ये “उभे अभ्यस्तम्” इति अभ्यस्तसंज्ञावाम्  
 “अदभ्यस्तात्” इति शेरतादेशे “णिजां त्रयाणाम्” इति अभ्यासस्य गुणे अस्य कित्त्वाद्  
 गुणाभावे ‘नेनिजति’ इति रूपम् । सिपि-नेनेक्षि, नेनिकथः, नेनिकथ । नेनेक्मि,  
 नेनिज्वः, नेनिज्मः । नेनिके, नेनिजाते, नेनिजते । नेनिक्षे, नेनिजाथे, नेनिक्ष्वे ।  
 नेनिजे, नेनिज्वहे, नेनिज्महे । निनेज । निज्धातोर्लिटि, लिटः तिपि तिपो णलि “ख्रिडि  
 धातोरेनभ्यासस्य” इति द्वित्वेऽभ्यासकार्ये जलोपे ‘नि निज् अ’ इति स्थिते “पुग-  
 न्तलधूपधस्य च” इति गुणे संयोगे च ‘निनेज’ इति साधु । निनिजत्तुः, निनिजुः ।  
 निनेजिय, निनिजथुः, निनिज । निनेज, निनिजिव, निनिजिम । निनिजे । आत्मने-  
 पदे तादेशे “लिटस्तथ्योरेक्षरेच्” इति त इत्यस्य स्थाने एकादेशे धातोर्द्वित्वेऽभ्या-  
 सकार्ये ‘निनिजे’ इति रूपं बोध्यम् । निनिजाते, निनिजरे । निनिजिषे, निनिजाषे,  
 निनिजिष्वे । निनिजे, निनिजिवहे, निनिजिमहे । नेक्ष्यति । लट्स्तिपि स्ये आर्षधा-  
 तुकत्वे “पुगन्तलधूपधस्य च” इति गुणे “चोः कुः” इति जस्य गत्वे “खरि च” इति

नेनिग्धि । नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ७।३।८७ लघूपधगुणे न स्यात् ।  
नेनिजानि । नेनिकाम् । अनेनेक् । अनेनिकम् । अनेनिजुः । अनेनिजम् । अने-

गस्य कत्वे कषसंयोगे चे 'नेन्यति' इति । नेनेक्त् । लोटस्तिपि शपि शपः श्लौ  
"श्लौ" इति द्वित्वे हलादिशेषे "णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ" इत्यभ्यासगुणे "पुगन्तल-  
घूपधस्य च" इति अनभ्यासेकारस्य गुणे "चोः कुः" इति जकारस्य गत्वे गत्वस्य  
कत्वे "एरुः" इति तिप इकारस्योत्वे च 'नेनेक्त्' इति । नेनिकात्, नेनिकाम्,  
नेनिजत् । नेनेग्धि । लोटः सिपि शपि शपः श्लुत्वे "सेर्द्धपिच्च" इति सेर्द्धित्वे धातो-  
र्द्वित्वे जलोपे "णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ" इति अभ्यासगुणे "हुस्सभ्यो हेर्धिः" इति  
हेर्धिरादेशे "चोः कुः" इति जस्य गत्वे 'नेनेग्धि' इति रूपम् । नेनिकात्, नेनिकम्,  
नेनिक । नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके । "मिदेगुणः" इत्यतो गुण इति "पुगन्त"  
इत्यतो लघूपधस्येति चानुवर्तते, इत्यभिप्रेत्य शेषं पूरयति—त्रधूपधेति । नेनिजानि ।  
मिपि "मेर्निः" इति मेर्नित्वे "आडुत्तमस्य पिच्च" इति आटि द्वित्वेऽभ्यासकार्ये जलोपे  
"णिजां त्रयाणाम्" इति अभ्यासस्याचो गुणे "पुगन्तलघु०" इति गुणे प्राप्ते । "नाभ्य-  
स्तस्याचि पिति सार्वधातुके" इति गुणभावे नेनिजानि, नेनिजाव, नेनिजाम् । आत्मने-  
पदे लोटि—नेनिकाम् । ते शपः श्लौ "श्लौ" इति द्वित्वेऽभ्यासकार्ये 'नि निज् त'  
इति दशायां "दित आत्मनेपदानां टेरे" इति एत्वे "चोः कुः" इति जस्य गत्वे "खरि  
च" इति गस्य कत्वे "णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ" इति अभ्यासस्य गुणे "नेनिकते"  
इति स्थिते "आमेतः" इति आमि 'नेनिकाम्' इति रूपं ज्ञेयम् । आतामि तु—नेनि-  
जाताम्, नेनिजताम् । नेनिक्त् । थासि-शपः श्लुत्वे धातोर्द्वित्वेऽभ्यासकार्ये "चोः  
कुः" इति जस्य गत्वे "खरि च" इति कत्वे "णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ" इति अभ्या-  
सगुणे 'नेनिक् थास्' इति दशायां "थासः से" इति थास् इत्यस्य स्थाने से इत्यादेशे  
"सवाभ्यां वामौ" इति से इत्यन्तर्गतैकारस्य स्थाने व इत्यादेशे "आदेशप्रत्यययोः"  
इति कवर्गात्परस्य सकारस्य षत्वे कषसंयोगे चे 'नेनिक्त्' इति रूपं बोध्यम् । नेनिजा-  
याम्, नेनिज्वम् । नेनिजै, नेनिजावहै, नेनिजामहै । अनेनेक् । लङि अटि तिपि शपः श्लौ  
"श्लौ" इति द्वित्वेऽभ्यासकार्ये "णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ" इति अभ्यासस्य गुणे 'अ  
ने निज् ति' इति स्थिते तिप इलोपे "चोः कुः" इति कुत्वेन जस्य गत्वे गस्य "खरि  
च" इति चत्वेन कत्वे "पुगन्तलघूपधस्य च" इति गुणे 'अ ने ने क् त्' इति व्यवस्थिते  
"हलङ्घ्याभ्यम्" इति तलोपे 'अनेनेक्' इति रूपं भवति । तसि-अनेनिकाम्, अनेनिजुः ।  
सिपि-अनेनेक्, अनेनिकम्, अनेनिक । अनेनिजम्, अनेनिज्व, अनेनिजम् ॥ अनेनिकत् ।  
आत्मनेपदे तादेशे शपः श्लुत्वे "श्लौ" इति द्वित्वेऽभ्यासकार्ये "चोः कुः" इति कुत्वेन  
गत्वे तस्य चत्वेन कत्वे "णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ" इति अभ्यासगुणेऽटि 'अनेनिक'  
इति । आतामि-अनेनिजाताम्, अनेनिजत । थासि-अनेनिकथाः, अनेनिजायाम्, अने-

निक । नेनिज्यात् । निज्यात् । नेनिजीत । निक्षीष्ट । इरितो वा ३।१।५७ इरितो  
धातोश्चलेरङ् वा स्यात् परस्मैपदेषु । अनिजत् । अनैक्षीत् । अनिक्त । अनेक्ष्यत् ।  
अनेक्ष्यत । इति जुहोत्यादयः ।

### अथ दिवादयः ।

दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्वयुतिस्तुतिभोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु ॥१॥ दिवा-

निगध्वम् । अनेनिजि, अनेमिज्वहि, अनेनिज्महि । नेनिज्यात् । विधिलिङ्गस्तिपि शपि  
शपः श्लुत्वे “श्लौ” इति धातोर्द्वित्वेऽभ्यासकार्ये अभ्यासगुणे यासुटि उटावितौ  
“लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे तिप इकारलोपे ‘नेनिज्यात्’ इति रूपम् ।  
नेनिजीत । आत्मनेपदे विधिलिङ्गस्तादेशे शपि श्लौ द्वित्वेऽभ्यासकार्ये अभ्यासगुणे  
“लिङः सीयुट्” इति सीयुटि उटावितौ “लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे “लिङः सलो-  
पोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे ‘नेनिजीत’ इति रूपं बोध्यम् । आशीर्लिङ्ग परस्मैपदे-  
‘निज्यात्’ । आत्मनेपदे-निक्षीष्ट । आशीर्लिङ्गस्ते सीयुडागमे अनुबन्धलोपे “लोपो  
व्योर्वलि” इति यलोपे “सुट्तिथोः” इति सुटि उटावितौ “चोः कुः” इति जस्य गत्वे  
“खरि च” इति चत्वेन क्त्वे विहिते षत्वे ष्टुत्वे च कृष्संयोगे च ‘निक्षीष्ट’ इति रूपम् ।  
इरितो वा । “धातोरेकाचः” इत्यतो धातोरिति “च्लेः सिच्” इत्यतः च्लेरिति “अस्य-  
तिवक्किख्याति” इत्यतः अङि इति “पुषादिद्युतादि” इत्यतः परस्मैपदेषु इति चानु-  
वर्तते तदाह—इरितो धातोरित्यादिना । अनिजत् । लुङि अटि तिपि च्लौ सति “इरितो  
वा” इति च्लेरङि तिप इकारलोपे ‘अनिजत्’ इति । अङभावपक्षे-च्लेः सिचि “अस्ति-  
सिचो ऽपृक्ते” इति तिपस्तकारस्य ईटि “वदन्नजहलन्त्यस्याचः” इति वृद्धौ “चोः  
कुः” इति कुत्वेन गत्वे “खरि च” इति चत्वेन गस्य क्त्वे, सिचः सस्य षत्वे कृष्-  
संयोगे चकारे अटि च ‘अनैक्षीत्’ इति । तसि-अनैक्षाम्, अनैक्षुः । अनैक्षीः, अनैक्षम्,  
अनैक्ष । अनैक्षम्, अनैक्ष्व, अनैक्षम् । अनिक्त । आत्मनेपदे लुङि अटि लुङस्तादेशे च्लेः  
सिचि इचो लोपे “क्षलो क्षलि” इति सलोपे “चोः कुः” इति जस्य गत्वे “खरि च”  
इति गस्य क्त्वे “अनिक्त” इति सिद्धम् । आत्मनेपदे आतामि—अनिच्छाताम् । अनि-  
च्छत । अनिकथाः, अनिच्छायाम्, अनिगध्वम् । अनिचि । इत्यादि । अनेक्ष्यत् । लुङि अटि  
तिपि स्ये “चोः कुः” इति जस्य गत्वे “खरि च” इति गस्य क्त्वे सस्य षत्वे “पुगन्त-  
लघूपधस्य च” इति गुणे तिप इकारलोपे ‘अनेक्ष्यत्’ । अनेक्ष्यताम्, अनेक्ष्यन् ।  
अनेक्ष्यः, अनेक्ष्यतम्, अनेक्ष्यत । अनेक्ष्यम्, अनेक्ष्याव, अनेक्ष्याम । आत्मनेपदे—  
तादेशो विशेषः, ‘अनेक्ष्यत’ इति रूपम् । इति जुहोत्यादयः ।

अथ श्यन्विकरणधातवो निरूप्यन्ते । दिवु क्रीडेति । उदिद्वयम् । तेन क्त्वायामि-  
द्विकल्पः । निष्ठायां च नेट् । दिवादिभ्यः श्यञिति । “कर्तरि शप्” इत्यतः कर्तरीति

दिभ्यः श्यन् ३।१।६६ शपोऽपवादः । “हलि च” इति दीर्घः । दीव्यति । दिदेव । देविता । देविष्यति । दीव्यतु । अदीव्यत् । दीव्येत् । दीव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् । एवं षिवु तन्तुसन्ताने ॥ २ ॥ नृती गात्रविशेषे ॥ ३ ॥ नृत्यति । ननर्त । नर्तिता ॥ सेऽसिचि कृतचृतछृदत्तदन्तः ७।२।५७ एभ्यः परस्य सिजिभ्रस्य सादेरार्धधातुकस्येड् वा स्यात् । नर्तिष्यति, नत्स्यति । नृत्यतु । अनृत्यत् । नृत्येत् । नृत्यात् । अनर्तीत् । अनर्तिष्यत्, अनत्स्यत् । त्रसी उद्देगे ॥ ४ ॥

“सार्वधातुके यक्” इत्यतः सार्वधातुके इति चानुवर्तते इत्यभिप्रेत्याह—शपोऽपवाद इति । शकारनकारावितौ ‘दिब्य ति’ इति स्थिते, आह—हलि चेति दीर्घ इति । श्यनः अपित्वेन ङित्वाच्च गुण इति भावः । दीव्यतः, दीव्यन्ति इत्यादि सुगमम् । दिदेव । दिवु धातोर्लिट्तिपि तिपो णलि “लिटि धातोर्नभ्यासस्य” इति धातोर्द्वित्वेऽभ्यासकार्ये “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे ‘दिदेव’ इति सिद्धम् । अनुसि-दिदिवत्तुः, दिदिवुः । दिदेविथ, दिदिविथुः, दिदिव । दिदेव, दिदिविव, दिदिविम । दीव्येत् । दिवुधातोर्विधिलिङि तिपि “दिवादिभ्यः श्यन्” इति श्यनि अनुबन्धलोपे “हलि च” इति उपधादीर्घे यामुडागमे उटावितौ “अतो येयः” इति यास इयादेशे “लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे, “आद्गुणः” इति गुणे तिपि इकारलोपे श्यनः अपित्वेन ङित्वात् गुणाभावे दीव्येदिति । अदेवीत् । लुङि अटि तिपि इकारलोपे प्लौ सिजादेशे इचावितौ “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इटि “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति ईटि “इट ईटि” इति सलोपे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति लघूपधगुणे ‘अदेवीत्’ इति । तसि तु-अदेविष्टाम्, अदेविषुः । अदेवीः, अदेविष्टम्, अदेविष्ट । अदेविषम् । अदेविष्व, अदेविष्म । नृत्यति । नृतीगात्रविशेषे धातोर्लिटि तन्न तिपि “दिवादिभ्यः श्यन्” इति श्यनि श्यनः अपित्वेन ङित्वाच्च गुणः, ‘नृत्यति’ इति सिद्धम् । नृत्यतः, नृत्यन्ति । नृत्यसि, नृत्यथः, नृत्यथ । नृत्यामि, नृत्यावः, नृत्यामः । ननर्त । नृतीगात्रविशेषे इत्यस्माद्धातोर्लिट्तिपि तिपो णलि धातोर्द्वित्वे तलोपे “उरत्” इति अभ्यासश्चकारस्य अदादेशे रपरे “हलादिः शेषः” इति रलोपे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे ‘ननर्त’ इति । ननृततुः, ननृतुः, ननर्तिथ, ननृतथुः, ननृत । ननर्त, ननर्तिव, ननर्तिम । नर्तिता । लुट्तिपि तासि तासेरार्धधातुकत्वात् “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इटि अनुबन्धलोपे “लुटः प्रथमस्य ङारौरसः” इति तिपो ङादेशेऽनुबन्धलोपे ङित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपि “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे ‘नर्तिता’ इति । सेऽसिचि कृतचृतछृदत्तदन्तः । से असिचि इति छेदः । सप्तमी षष्ठ्यर्थे । कृतचृतछृदत्तदत् एषां समाहारइन्द्रात् पञ्चमी । “उदितो वा” इत्यतो वेति ‘आर्धधातुकस्येडिति’ चानुवर्तते तदाह—एभ्य स्यादिना । नर्तिष्यति । लुटि तिपि स्ये इटि “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे सस्य श्रुत्वे “सेऽसिचिकृतचृतछृदत्तदत्तः” इतीदृभावे ‘नर्तिष्यति’ इति, इदमावप्ये—

“वा प्राश” इति श्यन्वा । त्रस्यति, त्रसति । तत्रास ॥ वा जृभ्रमुत्रसाम् ६।४।  
१२४ एषां किति लिटि सेटि थलि च एत्वाभ्यासलोपौ वा स्तः ॥ त्रसतुः-तत्रसतुः ।  
त्रसिथ-तत्रसिथ । त्रसिता । शो तनूकरणे ॥ ५ ॥ ओतः श्यनि ७।३।७१ लोपः-  
स्यात् श्यनि । श्यति । श्यतः । श्यन्ति । शशौ । शशतुः । शशुः । शाता ।  
शात्यति ॥ विभाषा प्राघेट्शाच्छासः २।४।७८ अभ्यः सिचो लुगवा स्यात्  
परस्मैपदे परे । अशात् । अशाताम् । अशुः ॥ यमरमनमातां सक्च ७।२।७३

‘नत्स्यति’ इति च रूपद्वयं सिद्धम् । नृतो लङ्तिपि श्यनि तिप इकारलोपे अटि  
च ‘अनृत्यत्’ । अनर्तात् । नृतो लुङ्तिपि च्लौ च्लेः सिचि इचो लोपे “आर्ध-  
धातुकस्येड्वलादेः” इति इटि तिप इकारलोपे “अस्तिसिचोऽपृत्ते” इति ईटि  
“इट ईटि” इति सलोपे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे अटि च ‘अनर्तात्’ इति ।  
त्रस्यति । त्रसीउङ्गे इतिधातुतो लट्तिपि “वा प्राशम्लाशभ्रमुक्रमुङ्मुत्रसिबुटिलषः”  
इति वैकल्पिकेन श्यनि ‘त्रस्यति’ इति । श्यनोऽभावपक्षे शपि त्रसति । तत्रास ।  
त्रसीधातोर्लिङ्तिपि तिपो णलि “लिटि धातोः” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे  
“अत उपधायाः” इति उपधाबृद्धौ ‘तत्रास’ इति रूपम् । वाजृभ्रमुत्रसाम् । “अत  
एकहस्मज्ये” इत्यतो लिटि इति “थलि च सेटि” इति चानुवर्तते । “ध्वसोरेद्वौ”  
इत्यतः एदिति “गमहन” इत्यतः क्तितीति च । तदाह—एषामिति । त्रसतुः । तसि-  
तसोऽनुसि “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे “वा जृभ्रमुत्रसाम्” इति  
एत्वेऽभ्यासलोपे च सस्य स्त्वे रस्य विसर्गे च ‘त्रसतुः’ इति एत्वाभ्यासलोपाभावपक्षे  
‘तत्रसतुः’ इति रूपद्वयं सिद्धम् । थलि परतः ‘तत्रसिथ’ ‘त्रसिथ’ इति । त्रसिता । लुटि  
तिपि तासि तासः आर्धधातुकत्वेन “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इटि तिपः स्थाने  
ढादेशेऽनुबन्धलोपे द्वित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेः—अस् इत्यस्य लोपे ‘त्रसिता’ इति ।  
त्रसिष्यति । त्रस्यतु, त्रसतु । विधौ—त्रस्येत्, त्रसेत्, लङि—अत्रस्यत, अत्रसत् ।  
आशीर्लिङि—त्रस्यात् । लुङि—अत्रासीत्, अत्रसीत् । ओतः श्यनि । “बोर्लोपो लेटि वा”  
इत्यतो लोप इत्यनुवर्तते इत्यभिप्रेत्य शेषं पूरयति—जोपः स्यादिति । श्यति । शो तनू-  
करणे इत्यस्माद्धातोः “वर्तमाने लट्” इति लटि, लट्तिपि “दिवादिभ्यः श्यन्” इति  
श्यनि “ओतः श्यनि” इति शोवर्तिन ओकारलोपे ‘श्यति’ इति बोध्यम् । शशौ । लिटि  
तिपि णलि अनुबन्धलोपे धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे “ह्रस्वः” इति अभ्यासस्याचो ह्रस्वत्वे  
‘शशा-अ’ इति स्थिते “आत औ णलः” इति णलः औकारे “बृद्धिरेचि” इति बृद्धौ  
“शशौ” इति । शशतुः, शशुः । शशिय-शशाय, शशयुः, शश । शशौ, शशिव, शशिम ।  
शाता । लुटि—शात्यति । लङि—अशयत् । विधौ—श्येत् । आशीर्लिङि—शेयात् । विभाषा  
प्राघेट्शाच्छासः । च्लि लुङीत्वनुवर्तते “णिश्रिदुभ्यः” इत्यतः कर्तरि चञिति च ।  
तदाह—आभ्यामिति । अशात् । लुङि तिपि च्लौ च्लेः सिच् “विभाषा प्राघेट्शाच्छासः”

एषां सकृत्स्यात् एभ्यः सिव इट् स्यात् परस्मैपदेषु । इट्सकौ । अशासीत् । अशा-  
सिष्टम् । छो छेदने ॥ ६ ॥ छ्यति । षोऽन्तकर्मणि ॥ ७ ॥ स्यति । ससौ ॥  
दोऽवलण्डने ॥ ८ ॥ यति । ददो । देयात् । अदात् । व्यध ताडने ॥ ९ ॥  
ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतितृश्चतिपृच्छतिभृज्जतानां डिति च ६।१।१६  
एषां सम्प्रसारणं स्यात्किति डिति च । विध्यति । विव्याध । विविधतुः । विविधुः ।  
विव्यधिय-विव्यद्ध । व्यद्धा । व्यत्स्यति । विध्येत् । विव्यात् । अव्यात्सीत् ॥ पुष

इति सिचो लोपे “आदेच उपदेशेऽशिति” इति आत्वेऽटि अनुबन्धलोपे-‘अशात्’  
इति । लुकोऽभावपक्षे-तु आदन्तत्वात् “यमरमनमातां सकृच्च” इति इट्सकौ, “अस्ति-  
सिचोऽपृक्ते” इति ईटि “इट ईटि” इति सलोपे ‘अशासीत्’ इति रूपं सिद्धम् । अशा-  
सिष्टम्, अशासिषुः । अशासीः, अशासिष्टम्, अशासिष्ट । अशासिषम्, अशासिष्व,  
अशासिष्म । पक्षे-अशात्, अशाताम्, अशुः, अशाः, अशातम्, अशात, अशाम्,  
अशाव, आशाम । छ्यति । छो धातुतो लटि तिपि श्यनि “ओतः श्यनि” इति  
ओकारलोपे ‘छ्यति’ इति रूपम् । चञ्चौ । छाता, छास्यति, छ्यतु, अछ्यत् । छ्येत् ।  
छेयात् । लुङि-अछासीत् । एवं षोऽन्तकर्मणि, दोऽवलण्डने इति । अदात् । दोऽवलण्डने  
धातोर्लुङि अटि तिपि च्छौ सिचि “आदेच उपदेशेऽशिति” इत्यात्वे “गातिस्था”  
इति सिचो लोपे च तत्सिद्धिः । ग्रहिज्यावयिव्यधीत्यादि । चकारेण “वक्षिस्वपियजादीनां  
किति” इत्यतः कितोति समुचीयते । व्यङ्गः सम्प्रसारणमित्यनुवर्तते, तदाह-एषामिति ।  
विध्यति । व्यध ताडने धातोर्लटि तिपि “दिवादिभ्यः श्यन्” इति श्यनि अनुबन्धलोपे  
‘व्यध् य ति’ इति स्थिते श्यनोऽपित्वेन “सार्वधातुकमपित्” इति क्त्विम्, क्त्वात्  
“ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतितृश्चतिपृच्छतिभृज्जतानां डिति च” इति सम्प्रसारणे ‘व्ह  
अ ध्य ति’ इति जाते “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे ‘विध्यति’ इति रूपम् । विध्यतः,  
विध्यन्ति । विध्यसि, विध्यथः, विध्यथ । विष्यामि, विष्यावः, विष्यामः । विव्याध । व्यध् धा-  
तोर्लटिस्तपित्तिपोणलि अनुबन्धलोपे “लिटि धातोः” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषेऽर्थात्  
धलोपे ‘व्य व्यध् अ’ इति स्थिते “लिङ्गभ्यासस्योभयेषाम्” इति अभ्यासस्य सम्प्रसारणे  
‘व्ह अ व्यध् अ’ इति जाते “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे ‘व्ह व्यध् अ’ मिलित्वा  
‘विव्यध् अ’ इति स्थिते “अत उपधायाः” इति उपधाबुद्धौ ‘विष्याध’ इति रूपं  
ज्ञेयम् । विविधतुः । लिटस्तसि तसोऽनुसि कृते “असंयोगाद्भिट् कित्” इति तसः क्त्वे  
“ग्रहिज्या” इति सम्प्रसारणे ‘व्ह अ ध् अतुस्’ इति भूते “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्व-  
रूपे ‘विध् अतुस्’ इति दशम्याम् “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे  
हलादिशेषे ‘विविध्-अतुस्’ इत्यत्र अतुसः क्त्वेन गुणाभावे संयोगे ‘विविधतुः’ इति  
रूपम् । तसि-‘विविधुः’ इत्यत्र एवमेव ज्ञेयम् । सिपि-विन्यधिय । सिपस्थलि “लिटि-  
धातोः” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वेऽभ्यासत्वात् “लिङ्गभ्यासस्योभयेषाम्” इति सम्प्रसारणे

पुष्टौ ॥१०॥ पुष्यति । पुषे ॥ पुषेति । पोष्टा । पोष्यति । पुषादीत्यङ् । अपुषत ।

“सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे ‘विध्यध् थ’ इति स्थिते “आर्धधातुकस्येड्वल्लदेः” इति इटि प्राप्ते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति निषेधे “कृसृष्टृस्तुमुसृश्रुवो लिटि” इति पुनरिटि प्राप्ते “उपदेशेऽज्वतः” इति अत्वात् निषेधे “ऋतो भारद्वाजस्य” इति वैकल्पिके इटि ‘विध्यधिय’ इति । इडभावपक्षे—“अथस्तथोर्धोऽधः” इति यस्य धत्वे “अलां जश् शशि” इति धकारस्य दकारे ‘विध्यद्’ इति रूपद्वयं सिद्धं ज्ञेयम् । विवि-  
ध्युः, विविध । विव्याध, विव्यध । विविधिव । “कृसृष्टृस्तुमुसृश्रुवो लिटि” इति इटि यलोऽभावात् “ऋतो भारद्वाजस्य” इत्यस्य नात्र प्रवृत्तिर्बोध्या । विविधिव । विवि-  
धिम । लोटि—विध्यतु, विध्यतात्, विध्यताम्, विध्यन्तु । इति रूपं बोध्यम् । लुटि-  
व्यदा । लुटि तत्स्थाने तिपि तासि, तिपः स्थाने ङात्वे ङित्सामर्थ्यादभस्यापि ङेलोपि,  
“अथस्तथोर्धोऽधः” इति तकारस्य धकारे “अलां जश् शशि” इति पूर्वधस्य दकारे  
‘व्यदा’ इति । व्यदारौ, व्यद्वारः, इत्यादि रूपमवगन्तव्यम् । लुटि—व्यत्स्यति । लुटि  
तिपि स्यप्रत्यये “स्वरि च” इति धस्य तकारे कृते ‘व्यत्स्यति’ इति रूपं ज्ञेयम् । लङि-  
अविध्यत्, लङि तिपि श्यनि सम्प्रसारणे पूर्वरूपे अटि च ‘अविध्यत्’ इति । अवि-  
ध्यताम्, अविध्यन् । अविध्यः, अविध्यतम्, अविध्यत । अविध्यम्, अविध्याव, अवि-  
ध्याम् । विधौ—विध्येत् । विधिलिङ्गस्तिपि इकारलोपे “दिवादिभ्यः श्यन्” इति श्यनि  
श्यनोऽपित्वेन “सार्वधातुकमपित्” इति क्त्वे, क्त्वात् “ग्रहिज्या” इति सम्प्रसारणे  
“सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे ‘विध्यत्’ इति स्थिते “यासुट् परस्मैपदेषुदात्तो  
ङिच्च” इति यासुडागमेऽनुबन्धलोपे ‘विध्य यास् त्’ इति स्थिते “अतो येयः” इति  
यास इत्यस्य स्थाने इयादेशे “आद्गुणः” इति गुणे “लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे  
‘विध्येत्’ इति रूपं बोध्यम् । विध्येताम्, विध्येयुः । इत्यादि ज्ञेयम् । आशिषि—  
विध्यात् । आशीर्लिङ्गस्तिपि तिप इलोपे ‘विध् त्’ इति जाते “यासुट् परस्मैपदेषु” इति  
यासुटि उदावितौ “किदाशिषि” इति क्त्वात् “ग्रहिज्या” इति सम्प्रसारणे “सम्प्र-  
सारणाच्च” इति पूर्वरूपे “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति संयोगादेः सस्य लोपे  
‘विध्यात्’ इति रूपं मन्तव्यम् । विध्यास्ताम्, विध्यासुः, इत्यादि । लुङि—अव्या-  
त्सीत् । लुङि—अटि तिपि च्लौ च्लेः सिचि तिप इकारलोपे अनिट्त्वादिवभावे “अस्ति-  
सिचोऽपृक्ते” इति अपृक्संज्ञकस्य तकारस्य ईटि विहिते “वदन्नजहलन्तस्याचः” इति  
वृद्धौ, “स्वरि च” इति धस्य तत्वे ‘अव्यात्सीत्’ इति । अव्यादात् । “अलो अलि”  
इति सिचो लोपे “अथस्तथोर्धोऽधः” इति तस्य धत्वे “अलां जश् शशि” इति पूर्वध-  
कारस्य दत्वे ‘अव्यादात्’ इति रूपं निष्पन्नम् । शौ—‘अव्यात्सुः’ अत्र अलपरत्वाभावाच्च  
अलन्तलक्षणः सिचो लुक् । अव्यात्सीः, अव्यादम्, अव्याद । अव्यात्सम्, अव्यात्स्व,  
अव्यात्सम् । पुष्यति । पुष् पुष्टौ चापुषे अटि, तत्स्थाने तिपि “दिवादिभ्यः श्यन्” इति



शुष शोषणे ॥११॥ शुष्यति । शुशोष । अशुषत् । शश अदर्शने ॥१२॥ नश्यति । ननाश । नेशतुः ॥ रधादिभ्यश्च ७२।४५ रध् नश त्प् ह्पृ ह् दुह् मुह् णुह् णिह् एभ्यो वलाद्यार्धधातुकस्य वेट् स्यात् । नशिय । मस्तिजनशोर्मलि ७१।६० नृम्

श्यनि श्यनोऽपित्वेन “सार्धधातुकमपित्” इति क्त्वाद्गुणाभावे ‘पुष्यति’ इति । पुष्यतः, पुष्यन्ति । पुपोष । लिटि तिपि णलि अनुबन्धलोपे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वेऽभ्यासकार्ये “पुगन्तलभूपधस्य” इति गुणे ‘पुपोष’ इति सिद्धं भवति । पुपुषतुः । “असंयोगाङ्गिट् कित्” इति क्त्वाद्गुणाभाव एव विशेषः । पुपुषतुः, पुपुषुः । पुपोषिव । थलि द्वित्वेऽभ्यासत्वे “आर्धधातुकस्येड्” इति इटि प्राप्ते “एकाच उपदेशे ऽनुदात्तात्” इति निषेधे “कृसृष्टृस्तु” इति नित्यमिड् । अजन्तत्वाभावात् “अतो भारद्वाजस्य” इत्यस्य नात्र प्रसक्तिः । “पुगन्त” इति गुणे ‘पुपोषिव’ इति रूपम् । पुपुषथुः, पुपुष । पुपोष । पुपुषिव । “कृसृष्टृस्तु” इत्यादिना इटि ‘पुपुषिव’ इति रूपम् । एवं ‘पुपुषिम’ इति । लुटि—गोष्ठा । लुटि तिपि तासि “पुगन्त” इति गुणे तिपो ङात्वे ढेलोपे ष्ट्वत्वे ‘पोष्ठा’ इति । पोष्टारौ, पोष्टारः इत्यादिः । लुटि—गोच्यति । लुटि, तिपि स्ये “पुगन्त” इति गुणे “षढोः कः सि” इति षस्य कत्वे—पोष्यति, पोष्यतः, पोष्यन्ति । लोटि—पुष्यतु, पुष्यतात्, पुष्यताम्, पुष्यन्तु । विधौ—‘पुष्येत्’ ‘दीव्येत्’ इतिवत् । पुष्येताम्, पुष्येयुः । आशीर्लिङि—पुष्यात्, दीव्यात् इतिवत् । “किदाशिषि” इति क्त्वाद्गुणाभावः । पुष्यात्, पुष्यास्ताम्, पुष्यासुः । लङि—अपुष्यत्, अपुष्यताम्, अपुष्यन् । लुङि—अपुषत् । पुषधातुतो लुङि, अटि तिपि तिप इकारलोपे ल्लौ “पुषादिद्युतादिङ्गदितः” इति पुषादिगणपाठात् च्लेरङि क्त्वाद्गुणाभावे ‘अपुषत्’ अपुषताम्, अपुषन् । शुष्यति । लुसानुबन्धकात् शोषणार्थात् शुषधातुतो लटि लट् तिपि, “दिवादिभ्यः श्यन्” इति श्यनि श्यनोऽपित्वेन “सार्धधातुकमपित्” इति क्त्वाद्गुणाभावे ‘शुष्यति’ । शुष्यतः । शुष्यन्ति । लिटि—शुशोष । लिटि तिपि णलि अनुबन्धलोपे द्वित्वेऽभ्यासकार्ये “पुगन्त” इति गुणे ‘शुशोष’ इति साधु । शुशुषतुः, शुशुषुः । शुशोषिव, शुशुषथुः, शुशुष । शुशोष, शुशुषिव, शुशुषिम । पुषधातुवत् । शुष्यतुः । शुष्येत् । शुष्यात् । गोष्ठा । शोच्यति । अशुष्यत् । लुङि—तु-अशुषत् । पुषादीत्यड् । नश्यति । सानुबन्धकात् अदर्शनार्थकात् णञ् धातुतो लटि लट्तिपि श्यनि “णो नः” इति णस्य नत्वे ‘नश्यति’ इति रूपम् । नश्यतः, नश्यन्ति । नश्यसि, नश्यथः, नश्यथ । नश्यामि, नश्यावः, नश्यामः । ननाश । नशधातोर्लिङ्गस्तिपि णलि “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे “अत उपधायाः” इति वृद्धौ ‘ननाश’ इति । अनुसि—नेशतुः । लिटि अनुसि धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे “अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिङि” इति एत्वेऽभ्यासलोपे च ‘नेशतुः’ । एवमुसि—नेशुः इति । रधादिभ्यश्च । “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इत्यनुवर्तते “ह्रस्व-

स्यात् । ननष्ट । नेशिव, नेश्व । नेशिम, नेश्म । नशिता, नंष्टा । नशिष्यति, नंक्ष्य-  
ति । नश्यतु । अनश्यत् । नश्येत् । नश्यात् । अनशत् । षूङ् प्राणिप्रसवे ॥१३॥  
सूयते । सुषुवे । ऋादिनियमादिट् । सुषुविषे । सुषुविह्वे । सुषुविमहे । सोता, सवि-

तिसूति" इत्यतो वेति चेत्यभिप्रेत्य शेषं पूरयति—नलाघार्धधातुकस्येति । मस्जिनशोर्झलि ।  
“इदितो नुम्” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । नेशिथ । सिपस्थलि धातोर्द्वित्वेऽभ्या-  
सत्वे “रधादिभ्यश्च” इति विकल्पेन इटि ‘ननश् इ थ’ इति स्थिते “थलि च सेटि”  
इति एत्वेऽभ्यासलोपे ‘नेशिथ’ इडभावपक्षे तु ‘ननश् थ’ इति स्थिते “मस्जिनशो-  
र्झलि” इति नुमागमे उमो लोपे मित्वात् “मिदचोऽन्त्यात्वरः” इति अचः परा  
नकार स्थितिः ‘न न न् थ’ इति विहिते “व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराज” इति शका-  
रस्य षकारे “ष्टुना” इति ष्ट्वेन ठकारे “नश्चापदान्तस्य झलि” इति अपदान्तत्वात्  
झस्परत्वाच्च अनुस्वारे ‘ननंष्ट’ इति रूपं सङ्गमनीयम् । अथुसि-नेशथुः, नेश ।  
ननाश, ननश । नेशिव । नश्धातोर्वसि, वसो वादेशे द्वित्वेऽभ्यासत्वे “अत एक-  
हल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि” इति एत्वेऽभ्यासलोपे च “रधादिभ्यश्च” इति वैकल्पिके  
इटि ‘नेशिव’ इति, इडभावपक्षे तु—‘नेश्व’ इति । एवं नेशिम नेश्म इति । नशिता ।  
लुटि तिपि तासि तास आर्धधातुकत्वे “रधादिभ्यश्च” इति वेटि तिपो ङात्वे टेल्लिपि  
‘नशिता’ इति । इडभावपक्षे “मस्जिनशोर्झलि” इति नुमागमे ‘नन् श् ता’ इति  
स्थितौ “व्रश्चभ्रस्ज” इति षत्वे ष्ट्वे “नश्चापदान्तस्य झलि” इति अनुस्वारे ‘नंष्टा’ इति  
रूपद्वयं बोध्यम् । नशिष्यति । लुटि तिपि स्ये आर्धधातुकत्वे “रधादिभ्यश्च” इति वेटि  
षत्वे ‘नशिष्यति’ इति । इडभावपक्षे—“मस्जिनशोर्झलि” इति नुमि अनुबन्धलोपे  
“व्रश्चभ्रस्जसृज” इति षत्वे ‘षढोः कः सि’ इति षस्य कत्वे “नश्चापदान्तस्य झलि”  
इत्यनुस्वारे परसवर्णे ङकारे च कृते ‘नंक्ष्यति’ इति रूपद्वयं ज्ञेयम् । लोटि-नश्यतु  
नश्यतात् नश्यताम्, नश्यन्तु इत्यादि । लङि—अनश्यत् । विधौ—नश्येत्, आशि-  
षि लिङि—नश्यात् । अनशत् । पुषादीत्यङ् लुङि बोध्यः । सूयते । षूङ्प्राणिप्रसवे  
इति धातुतो लटि, लटः तादेशे “दिवादिभ्यः श्यन्” इति श्यनि अनुबन्धलोपे “टित  
आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे “धात्वादेः षः सः” इति धात्वादेः षकारस्य सकारे ‘सूयते’  
इति रूपम् । सूयेते, सूयन्ते । सूयसे, सूयेथे, सूयध्वे, सूये, सूयावहे, सूयामहे ।  
लिटि—पुषुवे । लिटि तादेशे धात्वादेः षस्य सत्वे धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे “ह्रस्वः” इति  
अभ्यासाचो ह्रस्वे ‘सु सू त’ इति स्थिते “लिटस्तश्चोरेक्षिरेच” इति तस्य स्थाने णक्षि  
झलोपे आदेशसकारत्वात् “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे “अचि श्नुधातुमुवाम्” इति  
उक्लि संयोगे च ‘सुषुवे’ इति रूपं बोध्यम् । सुषुवाते, सुषुविरे । सुषुविषे । थसि-  
द्वित्वेऽभ्यासत्वे ह्रस्वत्वे “थासः से” इति थासः से इत्यादेशे “आर्धधातुकस्येड्” इति  
इटि प्राप्ते “एकाच्” इति निषेधे “कृषृष्टृस्तृदृक्षृब्रुवो लिटि” इति इटि “आदेशः

त । दीङ् परितापे ॥१४॥ दूयते ॥ दीङ् क्षये ॥१५॥ दीयते । दीङो युङचि  
कृडिति ६।४।६३ दीङः परस्याजादेः कृडित आर्धधातुकस्य णुट् स्यात् । (बुग्यु-  
टावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ) दिदीये ॥ मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च  
६।१।५० एषामात्वं स्यात् ल्यपि चादशित्येज्जनिमित्तं ॥ दाता । दास्यति । (स्था-

प्रत्यययोः” इति षत्वे “अचि श्नुधातु०” इति उवङि ‘सुषुविषे’ इति रूपम् । सुषु-  
चाये, सुषुविष्वे । सुषुवे, सुषुविवहे, सुषुविमहे । अत्रापि क्रादिनियमादिर् बोध्यः ।  
सोता । लुटि-तिपि तासि “स्वरतिसूतिसूयतिधूजूदितो वा” इति वैकल्पिके इटि “सा-  
र्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे अवि ‘सविता’ इति । इडभावपक्षे । “सार्वधातुकार्ध-  
धातुकयोः” इति गुणे ‘सोता’ इति रूपं ध्येयम् । लुटि-सविष्यते, सोष्यते । लोटि-  
सूयताम्, सूयेताम्, सूयन्ताम् । सूयस्व, सूयेथाम्, सूयध्वम् । सूयै, सूयावहे,  
सूयामहे । लङि-असूयत । विधौ-सूयेत, आशिषि-सविषीष्ट, सोषीष्ट “स्वरति”  
इति इड्विकल्पः । लुङि-असविष्ट । लुङि अटि लस्तादेशे च्लौ, च्लेः सिचि, सिच  
आर्धधातुकत्वे “स्वरति” इति विकल्पेनेटि “सार्वधातु०” इति गुणेऽवादेशे “आदेश-  
प्रत्यययोः” इति षत्वे णुत्वे च ‘असविष्ट’ इति इडभावपक्षे-असोष्ट’ इति रूपं बोध्यम् ।  
असविषाताम्, असविषत । असविष्टाः, असविषाथाम्, असविध्वम् । असविषि,  
असविष्वहि, असविष्महि, इति । इडभावपक्षे-असोषाताम्, असोषत । असोष्टाः,  
असोषाथाम्, असोष्वम् । असोषि, असोष्वहि, असोष्महि । लुङि-असविष्यत,  
असोष्यत । दूयते । लट् तादेशे टेरेत्वे श्यनि श्यनोऽपित्वेन “सार्वधातुकमपित्” इति  
ङित्वाद्गुणामावे ‘दूयते’ इति । लिटि-दुदुवे, दुदुवाते, दुदुविरे । दुदुविषे, दुदुवाये,  
दुदुविष्वे । दुदुवे, दुदुविवहे, दुदुविमहे । लुटि-नित्यमिट्-द्विता । दविष्यते ।  
दूयताम् । अदूयत । दूयेत । दविषीष्ट । लुङि-अदविष्ट, अदविष्यत । दीयते । दीङ्  
क्षये, तस्माल्लुटि-तादेशे टेरेत्वे श्यनि ‘दीयते’ इति साधु । दीङो युङचि कृडिति ।  
‘आर्धधातुके’ इत्याधिकृतम् अत्रा विशेष्यते । तदादिविधिः । दीङ इति पञ्चमी ।  
सप्तमी षष्ठ्यर्थे तदाह-दीङः परस्येत्यादिना । दिदीये । लिटि तादेशे धातोर्द्वित्वेऽ-  
भ्यासत्वे “ह्रस्वः” इति ह्रस्वे ‘दिदीत’ इति स्थिते “लिटस्तद्धयोरेशितरेच” इति  
तस्याने एशि “दीङो युङचि कृडिति” इत्यजादेरार्धधातुकस्य युटि प्राप्ते “एरने-  
काचोऽस्ययोगपूर्वस्य” इति परत्वाद्यणि प्राप्ते “बुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ”  
इति नित्यत्वात् युटि । टकार इत् । उकार उच्चारणार्थः ‘दिदीये’ इति सिद्धम् । दिदी-  
वाते, दिदीयिरे । दिदीयिषे दिदीयाये, दिदीयिष्वे । दिदीये, दिदीयिवहे, दिदीयिमहे ।  
मीनातिमिनोति दीङां ल्यपि च । “आदेच उपदेशेऽशिति” इत्यतः आदित्यनुवर्तते ।  
तदाह-एषामात्वं स्यात् ल्यपीति । लुटि-दाता, दातारौ, दातारः, दातासे, इत्यादि ।  
लुटि-दास्यते । लङि-अदीयत । अदीयेताम्, अदीयन्त । अदीयथाः, अदीयेथाम्, अदीय-

ध्वोरित्वे दीङः प्रतिषेधः) । अदास्त ॥ डीङ् विहायसा गतौ ॥१६॥ डीयते ।  
डिङ्ये । डयिता । पीङ् पाने ॥१७॥ पीयते । पेता । अपेष्ट । माङ् माने ॥१८॥  
मायते । ममे । जनी प्रादुर्भावे ॥१९॥ शाजनोर्जा ७।३।७६ अनयोर्जादेशः स्यात्  
शिति परे । जायते । जज्ञे । जनिता । जनिष्यते ॥ दीपजनबुधपूरितायिप्यायि-

ध्वम् । अदीये, अदीयावहि, अदीयामहि । विधौ-दीयेत । आशिषि-दासीष्ट ।  
लुङि-अदास्त । लुङि तादेशे च्लौ, च्लेः सिचि, “मीनातिमिनोतिदीङां त्यपि च”  
इतीकारस्यात्वे “स्थाध्वोरित्च” इति इदादेशे प्राप्ते “स्थाध्वोरित्वे दीङः प्रतिषेधः”  
इतीत्वनिषेधे अटि ‘अदास्त’ इति सिद्धम् । लुङ आताम-अदासाताम्, अदासत ।  
अदास्थाः, अदासाथाम्, अदाध्वम् । अदासि, अदास्वहि, अदास्महि । लुङि-अदा-  
स्यत । डीयते । डीङ् विहायसा गतौ इत्यस्माद्धातोर्लटि, लः स्थाने तादेशे टेरेत्वे श्यनि  
अनुबन्धलोपे श्यनोऽपित्वेन “सार्वधातुकमपित्” इति क्त्वात् “ङ्किति च” इति गुण-  
निषेधे ‘डीयते’ इति रूपम् । डिङ्ये । लिटि तादेशे द्वित्वेऽभ्यासत्वे एशि “एरनेकाचः”  
इति यणि डिङ्ये, डिङ्याते, डिङ्यिरे । डिङ्यिषे, डिङ्याथे, डिङ्यिध्वे । डिङ्ये, डिङ्-  
यिवहे, डिङ्यमहे । लुटि-डयिता, डयितारौ, डयितारः । डयितासे इत्यादि । लुटि-  
डयिष्यते । लोटि-डीयताम्, लङि-अडीयत । विधौ-डीयेत । आशिषि-डयिषीष्ट ।  
लुङि-अडयिष्ट । पीयते । पानार्थकात् पीङ्धातुतो लटि, ते टेरेत्वे श्यनि श्यनोऽपित्वेन  
“सार्वधातुकमपित्” इति क्त्वात् “ङ्किति च” इति गुणनिषेधे ‘पीयते’ इति रूपम् ।  
पिप्ये । लिटि ते द्वित्वेऽभ्यासत्वे “लिटस्तश्चयोरेशिरेच” इति एशि “एरनेकाच” इति  
यणि ‘पिप्ये’ इति रूपं सिद्धं भवति । अनिट्त्वात् लुटि-पेता इति । लुटि-  
पेप्यते । लोटि-पीयताम् । लङि-अपीयत । विधौ-पीयेत । आशिषि-पेषीष्ट । लुङि  
अपेष्ट, अपेष्ताम्, अपेष्टत । इत्यादि । लुङि-अपेप्यत । मायते । मानार्थकमाङ्धातो-  
रनुबन्धलोपे लटि तादेशे टेरेत्वे श्यनि मायते इति । लिटि-ममे । माङ्धातोर्लटि  
तादेशे द्वित्वेऽभ्यासत्वे “इस्वः” इति इस्वे ममा त इति स्थिते “लिटस्तश्चयोः” इति  
तकारस्यैशि “आतो लोप इटि च” इति आकारलोपे ममे इति रूपम् । ममाते, ममिरे,  
ममिषे, क्रादिनियमादिट् । ममाथे, ममिध्वे । ममे, ममिवहे, ममिमहे । अनयोरपि  
क्रादिनियमादिट् । लुटि-माता । लुटि-मास्यते । लोटि-मायताम्, मायेताम्, माय-  
न्ताम् । मायस्व, मायेथाम्, मायध्वम् । मायै, मायावहै, मायामहै । लङि-अमायत ।  
विधौ-मायेत । आशिषि-मासीष्ट । लुङि-अमास्त इति अदास्तवत् ज्ञेयम् । लुङि-अमा-  
स्यत । शाजनोर्जा । शितीति । “ध्रिवुक्लमुचमाम्” इत्यस्तदनुवृत्तेरिति भावः । जायते-  
प्रादुर्भावार्थकात् लुसानुबन्धकात् जन्धातोर्लटि तादेशे टेरेत्वे “दिवादिभ्यः श्यन्” इति  
श्यनि अनुबन्धलोपे “शाजनोर्जा” इति जन् इत्यस्य जादेशे, जायते इति रूपम् ।  
जायेते, जायन्ते । जायसे, जायेथे, जायध्वे । जाये, जायावहे, जायामहे । लिटि-जज्ञे ।

भ्योऽन्यतरस्याम् ३।१।६१ एभ्यश्च्लेखिण् वा स्यात् एकवचने तशब्दे परे ॥  
 चिणो लुक् ६।४।१०४ चिणः परस्य तशब्दस्य लुक् स्यात् ॥ जनिवध्योश्च  
 ७।३।३५ अनयोरुपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ङिति कृति च । अजनि, अजनिष्ठ ॥  
 दीपो दीप्तौ ॥२०॥ दीप्यते । दिदीपे । अदीपि, अदीपिष्ठ । पद गतौ ॥२०॥

जन्धातोर्लिटि तादेशेऽनुबन्धलोपे “लिटि धावोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वेऽभ्यासकार्ये  
 “हलादिः शेषः” इति नलोपे ‘ज जन् त’ इति स्थिते “लिटस्तश्चयोरेशिरेच्” इति  
 तकारस्यैशि “गमहनजनखनघसां लोपः कृति” इति जन्धातोरुपधाया अकारलोपे  
 ‘ज ज् न् ए’ इति स्थिते “स्तोः रचुनाः रचुः” इति रचुत्वे जकारजकारयोः संयोगे ज्ञे  
 ‘जज्ञे’ इति रूपम् । आतामि-जज्ञाते, जज्ञिरे । जज्ञिवे । सेट्त्वात् “आर्धधातुकस्येड्  
 वलादेः” इति इटि ‘जज्ञिवे’ इति । जज्ञाथे, जज्ञिवे । जज्ञे, जज्ञिवहे, जज्ञिमहे ।  
 लुटि-जनिता । जनितासे । लटि-जनिष्यते । लोटि-जायताम् । लङि-अजायत ।  
 विधौ-जायेत । आशिषि-जनिषीष्ट । दीपजनेत्यादि । “च्लेः सिच्” इत्यतः च्लेरिति  
 “चिण् ते पदः” इत्यस्मात् चिण् ते इति चानुवर्तते तदाऽह—एभ्यश्च्लेरिति । चिणो  
 लुगिति । चिण इति पञ्चमी, तदाह—चिणः परस्येति । जनिवध्योश्चेति । “अत उप-  
 धायाः” इत्यतः उपधाया इति “मृजेवृद्धिः” इत्यतो वृद्धिरिति “नोदात्तोपदेशस्य”  
 इत्यतो नेति “आतो युक्” इत्यतः चिण्कृतोरिति “अचो ङिति” इत्यतो ङिति इति  
 चानुवर्तते, तदाह—अनयोरिति । अजनि । जनोप्रादुर्भावे धातोर्लुङि तादेशे च्लौ  
 “दीपजनबुधपूरिताधिप्याधिभ्योऽन्यतरस्याम्” इति सूत्रेण च्लेश्चिणि अनुबन्धलोपे  
 “अत उपधायाः” इति वृद्धौ प्राप्तायाम् “जनिवध्योश्च” इति निषेधे “चिण् ते पदः” इति  
 तलोपेऽटि ‘अजनि’ इति । चिणोऽभावपक्षे तु च्लेस्सिचि, “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति  
 इटि पक्षे ष्टुत्वे च ‘अजनिष्ठ’ इति रूपम् । आतामि—अजनिषाताम्, अजनिषत ।  
 अजनिष्ठाः, अजनिषायाम्, अजनिध्वम् । अजनिषि, अजनिष्वहि, अजनिष्महि । चिणो-  
 ऽभावपक्षे—आतामि—अजनिषाताम्, अजनिषत, इत्यादि पूर्ववत् । अजनिष्यत ।  
 दीप्यते । दीपी दीप्तौ धातोर्लिटि प्रथमपुरुषैकवचने आत्मनेपदे तादेशे टेरेत्वे श्यनि  
 श्यनोऽपित्वेन “सार्वधातुकमपित्” इति क्त्वात् “कृति च” इति गुणनिषेधे दीप्यते  
 इति । दिदीपे । लिटि तादेशे द्वित्वेऽभ्यासत्वेऽभ्यासाचो ह्रस्वे हलादिशेषे तकारस्यैशि  
 दिदीपे । सेट्त्वात् लुटि—दीपिता । लृटि—दीपिष्यते । लोटि—दीप्यताम् । लङि-  
 अदीप्यत । विधौ—दीप्येत । आशिषि—दीपिषीष्ट । लुङि—अदीपि । “दीपजन०”  
 इति चिण्विकल्पः । चिणोऽभावपक्षे—अदीपिष्ठ । जनधातुवत् रूपाणि बोध्या-  
 नि । पद्यते । पद गतौ धातोः लटि तादेशे श्यनि टेरेत्वे पद्यते इति ।  
 पेदे । लिटि तादेशे धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे तकारस्यैशि “अत एक ह्रस्मच्चेऽ-  
 नादेशादेर्लिटि” इति ष्ट्वेऽभ्यासलोपे च पेदे इति रूपम् । पेदाते, पेदिरे । पेदिरे,

पद्यते । पेदे । पत्ता । पत्सीष्ट ॥ चिण् ते पदः ३।१।६० पदश्च्लेखिण स्यात्तशब्दे  
परे ॥ अपादि । अपत्साताम् । अपत्सत ॥ विद् सत्तायाम् ॥२२॥ विद्यते । वेत्ता ।  
अवित्त ॥ बुध अवगमने ॥२३॥ बुध्यते । बोद्धा । भोत्स्यते । भुत्सीष्ट । अबोधि,  
अबुद्ध । अभुत्साताम् । युध सम्प्रहारे ॥२४॥ युध्यते । युयुधे । योद्धा । अयुद्ध ।

पेदाथे, पेदिष्वे । पेदे, पेदिबहे, पेदिमहे । पत्ता । लुटि ते तासि तप्रत्ययस्य स्थाने  
ढात्वे टेलोपि “खरि च” इति दस्य तत्वे च ‘पत्ता’ इति रूपम् । अग्रे—पत्तासे  
इत्यादि । लुटि—पत्स्यते । लोटि—पद्यताम् । लङि—अपद्यत । विधौ—पद्येत ।  
आशिष्टि—पत्सीष्ट । चिण्ते पद इति । पदश्च्लेरिति । “च्लेस्सिच्” इत्यतः च्लेरित्यनुवर्तते, इति  
भावस्तदाह—तशब्दे इति । अपादि । लुङि तादेशे च्लौ “चिण्ते पदः” इति श्लेखिण्  
चणावितौ “चिणो लुक्” इति तलोपे “अत उपधायाः” इति घृद्धौ ‘अपादि’ इति  
सिद्धम् । अपत्साताम्, अपत्सत । अपत्थाः अपत्साथाम्, अपद्ध्वम् । अपत्सि,  
अपत्स्वहि, अपत्समहि, इति । लुङि—अपत्स्यत । विद्यते । विद्धातोर्लुटि तादेशे ढेरत्वे  
श्यनि श्यनोऽपित्वेन “सार्वधातुकमपित्” इति क्त्वाद् “ङिति च” इति गुणनिषेधे  
‘विद्यते’ इति रूपं निष्पन्नं भवति । लिटि—विविदे । लिटि ते समागते धातोर्द्वित्वेऽ-  
भ्यासत्वे हलादिशेषे तकारस्यैसादेशे ‘विविदे’ इति रूपमभवति । लुटि—अनिट्त्वाद्  
वेत्ता । वेत्तासे इत्यादि । लुटि—वेत्स्यते । लोटि—विद्यताम् । लङि—अविद्यत । विधौ-  
विद्येत । आशिषि—वित्सीष्ट । लुङि—अवित्त । “झलो झलि” इति सिचः सलोपः ।  
लुङि—अवेत्स्यत । बुध्यते । विद्यते इतिवत् । लिटि—बुध्यते । बोद्धा । लुटि, तादेशे, तासि  
तस्य ढात्वे टेलोपि “झषस्तयोर्धोऽधः” इति तकारस्य धत्वे “झलां जश् झशि” इति  
जश्त्वेन दकारे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे ‘बोद्धा’ इति । अग्रे—बोद्धासे इत्यादि ।  
भोत्स्यते । लुटि ते स्ये आर्षधातुकत्वे इडागमाभावे “एकाचो बशो भष्” इति बस्  
भत्वे लघूपधगुणे “खरि च” इति चत्वे ‘भोत्स्यते’ इति । लोटि—बुध्यताम् । लङि—  
अबुध्यत । विधौ—बुध्येत । आशिषि—भुत्सीष्ट । अबोधि । लुङि अटि तादेशे च्लौ  
च्लेस्सु “दीपजनबुधपूरितायि०” इति चिण्विकल्पे “चिणो लुक्” इति तलोपे “पुग-  
न्तलघूपधस्य” इति लघूपधगुणे ‘अबोधि’ इति रूपम् । चिणोऽभावपच्—अबुद्ध ।  
“झलो झलि” इति सलोपे “झषस्तयोर्धोऽधः” इति तस्य धत्वे “झलां जश् झशि”  
इति जश्त्वेन दकारे ‘अबुद्ध’ इति रूपं च सिद्धं भवति । अभुत्साताम् । बुधधातोर्लुङि  
आतामि, च्लौ च्लेः सिचि इचावितौ लोपे भम्भावे बुधोधस्य चत्वे च ‘अभुत्साताम्’  
इति रूपम् । अभुत्सत । अबुद्धाः । अभुत्साथाम्, अभुद्ध्वम् । अभुत्सि, अभुत्स्वहि,  
अभुत्समहि । युध्यते । युधसंप्रहारे धातोर्लुटि ते श्यनि श्यनोऽपित्वेन “सार्वधातुकमपित्”  
इति क्त्वेन “ङिति च” इति गुणाभावे ‘युध्यते’ इति । युयुधे । युधधातोर्लुटि  
‘युद्धादेशे तकारस्यैषि, धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे ‘युयुधे’ इति साधु । लुटि—‘बोद्धा’

सृज विसर्गे ॥२५॥ सृज्यते । ससृजे । ससृजिषे ॥ सृजिदृशोर्ज्ञत्यमकिति  
६।१।१८। अनयोःमागमः स्याज्मलादावकिति । सृष्टा । सृक्ष्यते । सृक्षीष्ट । असृष्ट ।  
असृक्षाताम् । मृष तितिक्षायाम् ॥ २६ ॥ मृष्यति, मृष्यते । ममर्ष । ममर्षिष्य ।

बोद्धावत् । लुटि-योत्स्यते । लोटि-युध्यताम् । लङि-अयुध्यत । विधौ-युध्येत । आशिषि-  
युत्सीष्ट । अयुद्ध । युष्धातोर्लुङि ते च्लौ, च्लेः सिचि “लिङ्सिचावात्मनेपदेषु”  
इति क्त्वाद्गुणाभावे “अलो झलि” इति सिचः सलोपे “अषस्तथोर्धोऽधः” इति  
तस्य धत्वे ‘अयुद्ध’ इति रूपम् । लुङि-अयोत्स्यत । सृज्यते । सृज विसर्गे  
धातोर्लुटि तादेशे टेरेत्वे श्यनि श्यनोऽपित्वेन क्त्वाद्गुणाभावे ‘सृज्यते’ इति ।  
ससृजे । सृजधातोर्लुटि तादेशे तकारस्यैसादेशे धातोर्द्वित्वेभ्यासत्वे “उरत्”  
इत्यभ्यासश्चवर्णस्य अकारे “उरण रपरः” इति रपरे “हलादिः शेषः” इति रलोपे  
‘ससृजे’ इति रूपम् । ससृजिषे । लोटो मध्यमपुरुषैकवचने थासि “थासः से”  
इति थासः से इत्यादेशे द्वित्वेभ्यासत्वे “उरत्” इति अदादेशे रपरे च कृते, “हलादिः  
शेषः” इति रलोपे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इटि प्राप्ते “एकाच उपदेशेऽनुदा-  
त्तात्” इति निषेधे क्रादिनियमाद् इटि, षत्वे च ‘ससृजिषे’ इति रूपं बोध्यम् । ससृ-  
जिष्वे । ससृजे । ससृजिवहे, ससृजिमहे । अत्रापि क्रादिनियमादिट् । सृजिदृशोर्ज्ञत्य-  
मकिति । अकिति इति छेदः । नित्यार्थमिदम् । सृष्टा । सृजधातोर्लुटि तादेशे, तासि  
तकारस्य ङात्वे क्त्वासामर्थ्यादभस्यापि टेलोपे “सृजिदृशोर्ज्ञत्यमकिति” इति अमि  
अनुबन्धलोपे मित्वादन्त्यादचः परोऽकारे जाते ‘सृ अज् ता’ इति जाते “इको यणचि”  
इति ऋकारस्य रेफादेशे “व्रश्चभ्रस्जसृज” इति षत्वे “ष्टुना ष्टुः” इति ष्ट्वेन टकारे  
‘सृष्टा’ इति साधु । सृष्टारौ, सृष्टारः । सृष्टासे इत्यादि । लुटि—सृक्ष्यते । लुटि तादेशे  
स्ये प्रत्यये ‘सृज् स्य त’ इति स्थिते टेरेत्वे “सृजिदृशोर्ज्ञत्यमकिति” इत्यमि अनुबन्ध-  
लोपे “मिदचोऽन्त्यात्परः” इति मित्वेनान्त्यादचः परोऽकारो जातः, तेन ‘सृ अ जस्यते’  
इति स्थिते “इको यणचि” इति यणि सृजस्यते इति दशायाम् “व्रश्च” इति षत्वे  
“षढो कः सि” इति क्त्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे कृष्णयोगे षे ‘सृक्ष्यते’ इति  
सिद्धं भवति । लोटि-सृज्यताम् । लङि-असृज्यत । विधौ-सृज्येत । सृक्षीष्ट । सृजधातो-  
राशीर्लिङि तादेशे “लिङः सीयुट्” इति सीयुटि उटावितौ “सुट्तिथोः” इति सुटि  
उटो लोपे “व्रश्चेति” जस्य षत्वे “षढोः कः सि” इति षस्य क्त्वे कात्परकत्वात्स्यस्य  
‘आदेशप्रत्यययोः’ इति षत्वे ष्टुत्वे च “लिङ्सिचावात्मनेपदेषु” इति क्त्वात् “क्विति  
च” इति गुणतिषेधे ‘सृक्षीष्ट’ इति सिद्धम् । असृष्ट । सृजधातोर्लुङि अडागमे तादेशे  
च्लौ, च्लेः सिजादेशे “लिङ्सिचावात्मनेपदेषु” इति क्त्वाद्गुणाभावे “अलो झलि”  
इति सलोपे “व्रश्चेति” जस्य षत्वे “ष्टुना ष्टुः” इति ष्ट्वे ‘असृष्ट’ इति रूपम्बोध्यम् ।  
असृक्षाताम् । अत्र “लिङ्सिचावात्मनेपदेषु” इति क्त्वादमभावो बोध्यः ।

ममृषे । मर्षितासि । मर्षितासे । मर्षिष्यति, मर्षिष्यते । गृह बन्धने ॥ २७ ॥  
नह्यति । नह्यते । ननाह । ननद्ध, नेहिय । नेहे । नद्धा । नत्स्यति । अनात्सीत्,  
अनद्ध ॥ इति दिवादयः ।

असृञ्चत । असृष्टाः । असृञ्चायाम् । असृञ्चम् । असृञ्चि, असृञ्चहि, असृञ्चमहि ।  
लुङि—असृञ्चयत् । सृज्यति । सृष्टितिच्चायां धातोर्लटि तिपि श्यनि श्यनोऽपित्वेन  
ङित्वाद् गुणाऽभावे ‘सृज्यति’ इति । आत्मनेपदे—‘सृज्यते’ सृज्यते इतिवत् । ममर्ष ।  
सृष्टधातोर्लटि तिपि णलिङित्वेऽभ्यासत्वे “उरत्” इति रपरेऽदादेशे ‘मर्ष् सृष् च’  
इति स्थिते “हलादिः शेषः” इति रषयोर्लोपे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे ‘ममर्ष’  
इति । मसृषतुः, मसृषुः । ममर्षिथ, मसृषथुः, मसृष । ममर्ष । मसृषिव, मसृषिम ।  
ममृषे । आत्मनेपदे रूपम् । लुङि—मर्षितासि । मर्षितासे । लुङि—मर्षिष्यति । मर्षिष्यते ।  
लोटि—सृज्यतु । सृज्यताम् । लङि—असृज्यत् । असृज्यत । विधौ—सृज्येत्, सृज्येत ।  
आशिषि—सृज्यात् । सृज्जीष्ट । लुङि—अमर्षीत्, सृषेर्लुङि अटि तिपि ष्लौ सिति इका-  
रचकारयोर्लोपे तिपि इकारलोपे आर्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्” इति इटि, ईटि “इट्  
ईटि” इति सलोपे इट्त्वात् “नेटि” इति हलन्तलङ्गणायाः वृद्धेर्निषेधे “पुगन्तलघूप-  
धस्य च” इति गुणे ‘अमर्षीत्’ इति । आत्मनेपदे—अमर्षिष्ट । लुङि—अमर्षिष्यत्,  
अमर्षिष्यत । नह्यते । गृह बन्धने धातुतो लटि तादेशे “णो नाः” इति धात्वादेर्भका-  
रस्य नत्वे टेरेत्वे श्यनि ‘नह्यते’ इति । परस्मैपदे—नह्यति । ननाह । लिटि तिपि णलि  
अनुबन्धलोपे द्वित्वे कृतेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे “अत उपधायाः” इति वृद्धौ ‘ननाह’  
इति । अनुसि—नेहतुः । अत्रापि तसि अनुसि द्वित्वेऽभ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति  
हलोपे ‘ननह् अनुस्’ इति जाते “अत एकहल्मध्ये” इति एत्वेऽभ्यासलोपे सत्य स्त्वे  
विसर्गे च ‘नेहतुः’ इति । अग्रे—नेहुः । नेहिय । नहृधातोः सिपि थलि द्वित्वेऽभ्यास-  
कार्ये ‘ननह् थ’ इति स्थितौ भारद्वाजमते इडविकल्पे ‘ननह् इ थ’ इति स्थिते “थलि  
च सेटि” इति एत्वेऽभ्यासलोपे च ‘नेहिय’ इति । इडभावपक्षे “नहो धः” इति हस्य  
धकारे “अषस्तथोः” इति थस्यधत्वे “शलां जश् शशि” इति जश्त्वे दकारे ‘ननद्ध’ इति ।  
नेहे । आत्मनेपदे लिटि, लिट्स्तादेशे, तस्यैशि द्वित्वेऽभ्यासकार्ये “अत एकहल्मध्ये” इति  
एत्वाभ्यासलोपे च तत्सिद्धेः । नद्धा । लुङि तिपि तासि तिपो डात्वे टिलोपे नह् ता इङि  
स्थितौ “नहो धः” इति हस्य धत्वे “अषस्तथोर्धोऽधः” इति तकारस्य धकारे “शलां  
जश् शशि” इति पूर्वधकारस्य दकारे ‘नद्धा’ इति रूपं भवति । नत्स्यति । लुङि तिपि  
स्ये प्रत्यये आर्धधातुकत्वे इडभावे “नहो धः” इति हस्य धत्वे “खरि च” इति चस्य  
तत्वे च ‘नत्स्यति’ इति रूपम् । लोटि—नह्यतु । नह्यताम् । लङि—अनह्यत् । अनह्यत ।  
विधौ—नह्येत् । नह्येत । आशिषि—नह्यात् । नत्सीष्ट । अनात्सीत् । लुङि अटि तिपि ष्लौ  
सिजादेशे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति ईटि “वदन्नजहलन्तस्याचः” इति हलन्तत्वमा-



## अथ स्वादयः ।

पुञ् अमिषवे ॥ १ ॥ स्वादिभ्यः श्नुः ३।१।७३। शपोऽपवादः । सुनोति ।

सुनुतः । “ह्रश्नुवोः” इति यण् । सुन्वन्ति । सुन्वः, सुनुवः । सुनुते । सुन्वाते । सुन्वते । सुन्वहे, सुनुवहे । सुषाव । सुषुवे । सोता । सुनु । सुनवानि । सुनवै । सुनुयात् । सूयात् ॥ स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु ७।२।७२। एभ्यः सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु । असावीत् । असोष्ट । चिञ् चयने ॥ २ ॥ चिनोति । चिनुते ॥

अित्य ष्टद्वौ “नहो धः” इति हस्य धकारे “खरि च” इति धस्य तकारे अनात्सीत् इति रूपम् । आत्मनेपदे—अनद्ध । लुङि-अनत्स्यत्, अनत्स्यत । इति दिवादयः ।

स्वादिभ्यः श्नुरिति । कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे स्वादिभ्यः श्नुः स्वादित्यर्थः । सुनोति । पुञ् अमिषवे धातुतो लटि तिपि “स्वादिभ्यः श्नुः” इति श्नौ, शलोपे, “धात्वादेः घः सः” इति धात्वादेः घस्य सकारे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे च ‘सुनोति’ इति रूपम् । तसि-सुनुतः । तसि श्नौ श्नोऽपित्वेन “सार्वधातुकमपित्” इति छित्वात् “विकृति च” इति गुणनिषेधे सस्य रुवे विसर्गे च रूपम् । सुन्वन्ति । झौ श्नौ शेर-न्वादेशे कृते “ह्रश्नुवोः सार्वधातुके” इति यणि ‘सुन्वन्ति’ इति । सुनोषि । सुनुयः । सुनुष । सुनोमि । सुन्वः, सुनुवः । अत्र “लोपश्चाऽस्यान्यतरस्याम्” इति उकारलोपविकल्पः । एवम् ‘सुन्मः, सुनुमः’ इत्यत्रापि बोध्यम् । सुनुते । आत्मनेपदे लटि तादेशे ‘सुनुते’ इति । आतामि-सुन्वाते । “ह्रश्नुवोः” इति यण् । सुन्वते । सुनुषे । सुन्वाथे । सुनुध्वे । सुन्वे । सुन्वहे-सुनुवहे । सुन्महे-सुनुमहे । “लोपश्चास्यान्यतरस्याम्” इति उकारलोपविकल्पोऽत्र बोध्यः । सुषाव । पुञ्धातोर्लिटि, तिपि णलि द्वित्वेऽभ्यासत्वे, धात्वादेः घस्य सत्वे “अचो ङिति” इति ष्टद्वौ आवादेशे ‘सुषाव’ इति रूपम् । सुषु-क्तुः, सुषुवुः । सुषुविथ-सुषोथ । सुषुवथुः, सुषुव । सुषाव, सुषव, सुषुविव, सुषुविम ॥ आत्मनेपदे-सुषुवे । लुटि-सोता । लुटि-सोष्यति । लोटि-सुनोतु, सुनुतात्, सुनु-ताम्, सुन्वन्तु । सुनु । अत्र “उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्” इति हेर्लुक् । सुनवानि । अत्र लोट आढागमे गुणे आवादेशे, मेनौ च रूपम् । आत्मनेपदे-सुनुताम्, सुन्वाताम्, सुन्वताम् । सुनुष्व, सुन्वाथाम्, सुनुध्वम् । सुनवै । लोट आत्मनेपदे इटि श्नौ लोट आढागमे गुणे टेरत्वे एत ऐ आदेशे च रूपम् । लङि-असुनोत् । आत्मनेपदे-असुनुत । विधौ-सुनुयात् । आत्मनेपदे-सुन्वीत । आशिषि-सूयात् । अत्र “अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः” इति दीर्घः । आत्मनेपदे-सोषीष्ट । स्तुसुधूञ्भ्य इति । “इडस्यति” इत्यत इडि-त्वनुवर्तते । “अञ्जेः सिचि” इत्यतः सिजित्यनुवृत्तं षष्ठया विपरिणम्यते तदाह—एभ्यः सिच इति । असावीत् । लुङि अटि तिपि च्लौ, च्लेः सिचि “स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मै-पदेषु” इति इटि “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति ईटि, “इट ईटि” इति सलोपे “सिचि वृद्धिः

विभाषा चेः ७।३।५८। अभ्यासात्परस्य कृत्वं वा स्यात्सनि लिटि च ॥ चिकाय,  
चिवाय । चिक्ये, चिच्ये । अचैषीत् । अचेष्ट । स्तृञ् आच्छादने ॥ ३ ॥ स्तृणाति ।  
स्तृणुते ॥ शर्पूर्वाः खयः ७।४।६१। अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्ते अन्ये  
हलो लुप्यन्ते । तस्तार । तस्तरतुः । तस्तरे ॥ “गुणोऽति” इति गुणः । स्तर्यात् ॥

परस्मैपदेषु” इति वृद्धौ सवर्णदीर्घे च ‘असावीत्’ इति रूपम् । आत्मनेपदे—असोष्ट ।  
चिनोति । चिञ् चयने धातोर्लिटि तिपि “स्वादिभ्यः णुः” इति णौ शलोपे णोरपि-  
त्वेन “सार्वधातुकार्धधातु-  
कयोः” इति प्राप्तस्य गुणस्य अभावे, तिपः पित्वेन णोरकारस्य “सार्वधातुकार्धधातु-  
कयोः” इति गुणे च कृते ‘चिनोति’ इति रूपम् । आत्मनेपदे—चिनुते । विभाषा चेरिति ।  
“चजोः कुघिण्यतोः” इत्यतः कुग्रहणमनुवर्तते । “अभ्यासाच्च” इत्यतः अभ्यासादिति,  
“सन्लिटोर्जेः” इत्यतः सन्लिटोरिति च । तदाह—अभ्यासादित्यादिना । चिकाय । चिञ्  
धातोर्लिटि तिपि तिपो णलि धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे “विभाषा चेः” इति कुत्वेन चका-  
रस्य कत्वे ‘चिकि अ’ इति स्थिते “अचो णिति” इति वृद्धौ, आयादेशे च ‘चिकाय’  
इति साधु । कुत्वाभावे—चिवाय । आत्मनेपदे—चिक्ये, सिच्ये, इति । लुटि—चेता ।  
लुटि तिपि तासि तिपो ङात्वे टेलोपे “सार्वधातुकार्ध०” इति गुणे ‘चेता’ इति सिद्धम् ।  
लुटि—चेष्यति, चेष्यते । लोटि—चिनोतु । आत्मनेपदे—चिनुताम् । लङि—अचिनोत् ।  
आत्मनेपदे—अचिनुत । विधौ—चिनुयात् । आत्मनेपदे—चिन्वीत् । आशिषि—वीयात् ।  
आत्मनेपदे—चेषीष्ट । लुङि—अचैषीत् । अत्र “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति वृद्धिः ।  
आत्मनेपदे—अचेष्ट । लङि—अचेष्यत् । आत्मनेपदे—अचेष्यत । स्तृणाति । स्तृञ् आच्छा-  
दने धातोर्लटि तिपि णौ “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “अट्कुप्वाङ्नुम्वय-  
वेऽपि” इति नस्य णत्वे ‘स्तृणाति’ इति । आत्मनेपदे—स्तृणुते । शर्पूर्वाः खय इति ।  
अभ्यासस्येति । “अत्र लोपोऽभ्यासस्य” इत्यतस्तदनुवर्तत इति भावः । शर्पूर्वा इत्यत्र  
शर्पूर्वा येभ्य इत्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः । तेन शर् न शिष्यते । तस्तार । स्तृञ्-  
धातोर्लिटि तिपि णलि अनुबन्धलोपे “लिटि धातोः” इति धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे “उरत्”  
इति अभ्यासश्चकारस्य अदादेशे रपरे च “शर्पूर्वाः खयः” इति खयः शेषेऽर्थात् सलोपे  
“हलादिः शेषः” इति सलोपे ‘त स्तृ अ’ इति स्थिते “श्चतश्च संयोगादेर्गुणः” इति गुणे  
रपरे ‘त स्तर् अ’ इति स्थिते “अत उपधायाः” इति वृद्धौ सत्यां ‘तस्तार’ इति सिद्धं  
भवति । तस्तरतुः । तस्तरुः । तस्तर्य, अलि तु “अचस्तास्वत्यल्पनिटः” इति इण्निषेधः,  
श्चदन्तत्वाच्च “श्चतो भारद्वाजस्य” इति नेह, तस्तरथुः, तस्तर । तस्तार, तस्तर,  
तस्तरिव, तस्तरिम । आत्मनेपदे—तस्तरे । तस्तराते । तस्तरिरे । तस्तरिषे, तस्तराये,  
तस्तरिद्वे, तस्तरिध्वे । तस्तरे, तस्तरिवहे, तस्तरिमहे । क्रादिनियमादिट् एषु बोध्यः ।  
स्तर्या । स्तरिष्यति, स्तरिष्यते, अत्र “श्चदनोः स्ये” इति इट् । लोटि—स्तृणातु ।

ऋतश्च संयोगादेः ७।२।४३। ऋदन्तात्संयोगादेः पर्योर्लिङ्सिचोरिङ् वा स्यात्तङि ।  
स्तरिषीष्ट, स्तृषीष्ट । अस्तरिष्ट, अस्तृत । धूञ् कम्पने ॥ ४ ॥ धूनोति । धूनुते ।  
दुधाव । “स्वरति” इति वेट् । दुधविथ, दुधोय ॥ श्रुयुक्तः किति ७।२।११।  
अत्र एकाच उगन्ताच्च गित्कितोरिण् न स्यात् । परमपि स्वरत्यादिविकल्पं बाधित्वा  
पुरस्तात्प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यादनेन निषेधे प्राप्ते ऋदिनियमाभित्यमिट् । दुध-

लङि-अस्तृणोत् । आत्मनेपदे-अस्तृणुत । विधौ-स्तृणुयात् । आत्मनेपदे-स्तृण्वीत् ।  
आशिषि-स्त्यात् । आशिषि लिङि, तत्र तिपि इकारलोपे यासुटि ‘स्त्यास् त्’  
इति स्थिते “गुणोर्तिसंयोगाद्योः” इति गुणे “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति सलोपे  
च ‘स्त्यात्’ इति सिद्धम् । ऋतश्च संयोगादेरिति । “लिङ्सिचोरात्मने-  
पदेषु” इत्यनुवर्तते । “इट् सनि वा” इत्यतः इडवेति, तदाह—ऋदन्तादित्या-  
दिना । स्तरिषीष्ट । आशिषि लिङि, लिङस्तादृशे सीयुडागमेऽनुबन्धलोपे । “सुट्  
तियोः” इति सुटि उदावितौ “ऋतश्च संयोगादेः” इति विकल्पेनेटि कृते “गुणोर्तिसं-  
योगाद्योः” इति गुणे उभयोः सकारयोः षत्वे ष्टुत्वे ‘स्तरिषीष्ट’ इति । इडभावपक्षे—“उश्च”  
इति किंवाद्गुणाभावे ‘स्तृषीष्ट’ इति । अस्तार्षीत् । लुङि अटि तिपि च्लौ, च्लेः सिचि  
“अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति ईटि “वद्वज्र” इति वृद्धौ तिपः इलोपे ‘अस्तार्षीत्’ इति  
सिद्धम् । इडोऽभावात् “नेटि” इति वृद्धिनिषेधो नाशङ्क्यः । अस्तरिष्ट, अस्तृत । आत्म-  
नेपदे-लुङि अटि तादेशे च्लौ सिचि, अनुबन्धलोपे “सार्वधातुकार्ध०” इति गुणे “ऋतश्च  
संयोगादेः” इति इटि षत्वे ष्टुत्वे च ‘अस्तरिष्ट’ इति । इडभावे च्लेः सिचि “उश्च” इति कि-  
त्वाद्गुणाभावे “ह्रस्वादङ्गात्” इति सिचो लोपे, अटि ‘अस्तृत’ इति । अस्तरिष्यत्,  
अस्तरिष्यत । धूनोति । धूञ् कम्पने धातोर्लटि तिपि रनौ रनुव उकारस्य “सार्वधातु-  
कार्धधातुकयोः” इति गुणे ‘धूनोति’ इति । आत्मनेपदे—धूनुते । दुधाव । लिटि तिपि  
णलि द्वित्वे ऽभ्यासत्वे “ह्रस्वः” इति ह्रस्वत्वे “अभ्यासे चर्च” इति धस्य जरत्वेन दत्वे  
‘दु धू अ’ इति दशायाम् “अचो ङिति” इति कृताकृतप्रसङ्गे विधिर्नित्यः इति  
न्यायेन नित्यत्वात् वृद्धौ आवि ‘दुधाव’ इति । दुधुवतुः, दुधुवुः । दुधविथ । लिटः  
सिपस्थलि द्वित्वे ऽभ्यासत्वे ह्रस्वे जरत्वे ‘दुधू थ’ इति जाते “स्वरतिसुतिसूयतिधूष-  
दितो वा” इति इटि “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणेऽवादेशे ‘दुधविथ’ इति ।  
इडभावपक्षे ‘दुधोय’ इति । दुधुवथुः, दुधुव । दुधाव, दुधव । श्रुयुक्तः किति । अत्र  
“एकाच उपदेशे” इत्यत एकाच इति “नेड्वशि कृति” इत्यतो नेडित्यनुवर्तते ।  
तदाह—इडनेति । दुधुविथ, दुधुविम । अनयोः किरसंज्ञकयोर्द्वयोः वसमसोः स्थाने वमौ  
आदेशौ । धातोर्द्वित्वे पूर्ववत् अभ्यासादिकार्षे ‘दुधू व’ इति ‘दुधू म’ इति स्थिते,  
परमपि स्वरत्यादिविकल्पं बाधित्वा पुरस्तात् प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्याद् “श्रुयुक्तः  
किति” इत्यनेन निषेधे प्राप्ते ऋदिनियमाद् कित्यमिटि “अचि रनुधातुभ्रवां र्योः”

विव । दुधुवे । अधावीत्, अधविष्ट, अधोष्ट । अधविष्यत्, अधोष्यत् । अधविष्य-  
ताम्, अधोष्यताम् । अधविष्यत्, अधोष्यत् ॥ इति स्वादयः ।

### अथ तुदादयः ॥

तुद् व्यथने ॥ १ ॥ तुदादिभ्यः शः ३।१।७अ शपोऽपवादः । तुदति ।  
तुदते । तुतोद । तुतोदिथ । तुतुदे । तोत्ता । अतोत्सीत् । अतुत्त । तुद् प्रेरणे ॥ २ ॥  
तुदति । तुदते । नुनोद । नोत्ता । अस्ज पाके ॥ ३ ॥ “ग्रहिज्या” इति सम्प्रसा-

इति उवङि अनुबन्धलोपे ‘दुधुचिव’ ‘दुधुचिम’ इति । आत्मनेपदे—दुधुवे । दुधुविषे ।  
अत्रापि क्रादिनियमाच्चित्यमिद् । लुटि—धाविता, धोता । धोतासि, धवितासि ।  
आत्मनेपदे—धोता, धविता । धोतासे, धवितासे । लुटि—धोष्यति, धविष्यति । धवि-  
ष्यते—धोष्यते । लोटि—धूनुतु । आत्मनेपदे—धूनुताम् । लङि—अधूनुत् । आत्मनेपदे  
लङि—अधूनुत । विधौ—धूनुयात् । आत्मनेपदे—धून्वीत् । आशिषि—धूयात् । आत्मने-  
पदे—धविषीष्ट, धोषीष्ट । अधावीत् । लुङि, लुङःस्थानेतिपि अनुबन्धलोपे, तिपः इकार-  
लोपे ‘अधूत्’ इति जाते च्छौ, च्छेः सिचि “स्तुसूधूभ्यः परस्मैपदेषु” इति सिचः  
परत्वाच्चित्यमिडि “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति तिपस्तकारस्य ईटि, “इट ईटि” इति  
सलोपे “सिद्धि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति वृद्धौ आवि अङागमे ‘अधावीत्’ इति । आत्म-  
नेपदे लुङि—अधविष्ट, अधोष्ट । अत्र “स्वरति” इति वेट् । लङि—अधविष्यत्, अधोष्यत् ।  
आत्मनेपदे—अधविष्यत्, अधोष्यत् । इति स्वादयः ।

तुदादिभ्यः श इति । कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे तुदादिभ्यः शः स्यात् स्वाथ इत्यर्थः ।  
शपोऽपवादः । तुदति । व्यथनार्थात् लुप्तानुबन्धकात् तुदधातुतो लटि, तिपि, तिपः सा-  
र्वधातुकत्वे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति लघूपधगुणं बाधित्वा नित्यत्वात् “तुदादिभ्यः  
शः” इति शे कृते तस्य अपित्त्वात् “सार्वधातुकमपित्” इति द्विस्वादगुणाभावे ‘तुदति’  
इति । तुदतः, तुदन्ति । तुदसि, तुदथः, तुदथ । तुदामि, तुदावः, तुदामः । आत्मनेपदे—  
तुदते, तुदेते, तुदन्ते । इत्यादि । तुतोद । तुदधातोर्लिटि तिपि णळि द्वित्वेऽभ्यासादि-  
कार्ये लघूपधगुणे ‘तुतोद’ इति । तुतुदतुः, तुतुदुः । तुतोदिथ । थलि धातोर्द्वित्वेऽभ्यास-  
त्वे “हलादिः शेषः” इति दलोपे “आर्वधातुकस्येद्वलादेः” इति इटि प्राप्ते “एकाच  
उपदेशेतुदात्तात्” इति निषेधे क्रादिनियमाद् नित्यमिडि लघूपधगुणे ‘तुतोदिथ’ इति ।  
तुतुदथुः, तुतुद । तुतोद, तुतुदिव, तुतुदिम । आत्मनेपदे—तुतुदे, तुतुदाते, तुतुदिरे इति ।  
लुटि—तोत्ता । लुटि—तोत्स्यति । तोत्स्यते । लोटि—तुदतु । आत्मनेपदे—तुदताम् ।  
लङि—अतुदत् । आत्मनेपदे—अतुदत । विधौ—तुदेत् । आत्मनेपदे—तुदेत । आशिषि-  
तुधात् । अत्र “किदाशिषि” इति कित्वाच्च गुणः । तुत्सीष्ट । अत्र “लिङ्सिचावा-  
त्मनेपदेषु” इति कित्वाच्च गुणः । अतोत्सीत् । लुङि तिपि च्छेः सिचि इचो लोपे तिप

रणम् । सस्य श्चुत्वेन शः, शस्य जश्त्वेन जः । मृज्जति । मृज्जते ॥ अस्जो  
रोपधयो रमन्यतरस्याम् ६।४।७७। अस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वा  
स्यादार्धधातुके । मित्वादन्त्यादचः परः । स्थानषष्ठीनिर्देशादोपधयोर्निवृत्तिः ॥  
बभर्ज । बभर्जतुः । बभर्जिथ, बभर्ष्ट, वभ्रज्ज । वभ्रज्जतुः । वभ्रज्जिथ । “स्कोः”

इकारलोपे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति ईटि “वद्वज” इति वृद्धौ “खरि च” इति चत्वे  
अडागमे च “अतौत्सीत् इति । आत्मनेपदे-अतुत् । गुदधातुः तुदिवत् । मृज्जति । अस्ज-  
पाके धातोर्लिटि तिपि “तुदादिभ्यः शः” इति शे, अनुबन्धलोपे शस्यापित्वेन “सार्व-  
धातुकमपित्” इति छित्वात् “ग्रहीज्यावयिव्यधिवष्टिवचितिष्टश्चतिपृच्छतिमृज्जतीनां  
किति च” इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे “मृ सज् अ” इति स्थिते “स्तोः श्चुना” इति  
श्चुत्वेन सस्य शत्वे “मृशज् अति” इति स्थिते “झलां जश् झशि” इति जश्त्वेन शस्य  
जत्वे कृते “मृज्जति” इति रूपम् । मृज्जतः, मृज्जन्ति । मृज्जसि, मृज्जथः, मृज्जथ ।  
मृज्जामि, मृज्जावः, मृज्जामः । आत्मनेपदे-मृज्जते । अस्जो रोपधयोरिति । अस्ज इत्यव-  
यवषष्ठी । रोपधयोः इति स्थान-षष्ठीच उपधा च तयोरिति विग्रहः । रेफादकार उच्चा-  
रणार्थः । रेफस्य उपधायाश्च स्थाने इति लभ्यते “आर्धधातुके” इत्यधिकृतम्, तदाह-  
अस्जे रेफस्येत्यादिना । मित्वादन्त्यादचः पर इति । “मिदचोऽन्त्यात्परः” इति परिभा-  
षयेति भावः । बभर्ज । अस्जधातोर्लिटि तिपि, तिपो णलि “लिटि धातोः” इति धातो-  
र्हित्वेऽभ्याससंज्ञायां “अस्ज् अस्ज् अ” इति स्थितौ “हलादिः शेषः” इति हलो लोपे  
“अ अस्ज् अ” इति जाते “अभ्यासे चर्च” इति भकारस्य बकारे विहिते “ब अस्ज् अ”  
इति स्थिते “अस्जो रोपधयोरमन्यतरस्याम्” इति रेफस्य उपधाभूतसकारस्य च  
स्थाने रमि प्राप्ते “मिदचोऽन्त्यात्परः” इत्यन्त्यादेशात् भकारान्तर्गताकारात्परस्यैव  
रमागमे अमाधितौ लोपे च स्थानषष्ठीनिर्देशाद् रेफस्योपधाभूतसकारस्य च निवृत्तौ  
“बभर्ज” इति रूपम् । रमोऽभावपक्षे तु “अस्ज् अस्ज् अ” इति स्थिते हलादिशेषे  
“अभ्यासे चर्च” इति अस्य बत्वे श्चुत्वेन सस्य शत्वे “झलां जश् झशि” इति शस्य  
जश्त्वेन जत्वे “बभ्रज्ज” इति रूपम् । बभर्जतुः । अतुसि कृते पूर्ववत् साधनिका बोध्या ।  
बभर्जतुः-बभ्रज्जतुः । बभर्जुः-बभ्रज्जुः । बभर्जिथ । लिटि सिपि थलि धातोर्हित्वेऽ-  
भ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इति हलादिशेषे “अभ्यासे चर्च” इति अस्य बत्वे “अस्जो-  
रोपधयोरमन्यतरस्याम्” इति रमि रोपधयोर्निवृत्तौ “आर्धधातुकस्येड्वल्लादेः” इति  
थलि इटि प्राप्ते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इण्निषेधे सति क्रादिनियमाद् विक-  
ल्पेन इटि “बभर्जिथ” इति रूपम् । इडभावे तु “बभ्रज्ज् थ” इति स्थिते “अस्जो रोप-  
धयो” इति रमि रोपधयोश्च निवृत्तौ “बभर्ज् थ” इति जाते “ब्रश्चअस्ज्” इति अस्य  
पत्वे “ष्टुना षुः” इति थस्य ठत्वे “बभर्ष्ट” इति । रमभावपक्षे तु थलि पूर्ववद् क्रादिनि-  
यमादित् श्चुत्वेन सस्य शत्वे “झलां जश् झशि” इति शस्य जत्वे बभर्जिथ । थलि

इति सलोपः । “ब्रश्च” इति षः । बभ्रष्ट । बभर्जे । बभृज्जे । भर्ष्टा, भ्रष्टा । भ्रक्ष्यति, भ्रक्ष्यति । “किञ्चि रमागमं बाधित्वा सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन” । भृज्यात् । भृज्यास्ताम् । भृज्यासुः । भर्क्षीष्ट, भ्रक्षीष्ट । अभ्राक्षीत्, अभर्क्षीत् । अभर्ष्ट, अभ्रष्ट ॥ कृष विलेखने ॥ ४ ॥ कृषति, कृषते । चर्ष, चकृषे ॥ अनुदात्तस्य

रमभावे इडभावे च “स्कोः संयोगाद्योः” इति सलोपे “ब्रश्च” इति जस्य षत्वे “ष्टुना ष्टुः” इति ष्टुत्वेन यस्य ठत्वे ‘बभ्रष्ट’ इति रूपम् । आत्मनेपदे तु—बभर्जे, बभ्रज्जे । अत्र साधनिका पूर्ववत् । भर्ष्टा भ्रष्टा । लुटि तिपि तासि तास आर्धधातुकत्वे तिपो ङात्वे ढेलोपि रमागमे रोपधयोर्निवृत्तौ “ब्रश्चेति” इति जकारस्य षत्वे “ष्टुना ष्टुः” इति ष्टुत्वे ‘भर्ष्टा’ इति । रमोऽभावपक्षे—“स्कोः संयोगाद्योः” इति सलोपे कृते जस्य षत्वे ष्टुत्वे ‘भ्रष्टा’ इति रूपम् । भ्रक्ष्यति । भ्रक्ष्यति । लुटि तिपि स्ये आर्धधातुकत्वे रमि रोपधयोर्निवृत्तौ च “ब्रश्च” इति जस्य षत्वे “षढोः कः सि” इति षस्य कत्वे सस्य षत्वे कृषसंयोगे चकारे कृते “भ्रक्ष्यति” इति । रमोऽभावपक्षे तु “ब्रश्च” इति जकारस्य पकारे “षढोः कः सि” इति षस्य ककारे “स्कोः” इति सलोपे षत्वे कृषसंयोगे च कृते ‘भ्रक्ष्यति’ इति रूपम् । आत्मनेपदे तु लुटि—भ्रक्ष्यते, भ्रक्ष्यते इति । लोटि—भृज्जतु । आत्मनेपदे—भृज्जताम् । लङि—अभृज्जत् । आत्मनेपदे—अभृज्जत । विधौ—भृज्जेत् । आ०—भृज्जेत, भृज्जेयाताम्, भृज्जेरन्, इत्यादि पूर्ववत् । भृज्यात् । आशीर्लिङि तिपि यासुटि उटावितौ तयोर्लोपे च “इतश्च” इति तिप इकारलोपे, “किदाशिषि” इति यासुटः कित्वात् किञ्चि रमागमं बाधित्वा पूर्वविप्रतिषेधेन पूर्वं कित्वात् “ग्रहीज्या” इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे “स्कोः संयोगाद्योः” इति सलोपे श्चुत्वेन सकारस्य शकारे “झलां जश् झशि” इति शस्य जकारे “भृज्यात्” इति । आत्मनेपदे—भर्क्षीष्ट । आशिषि आत्मनेपदे तादेशे “लिङः सीयुट्” इति सीउटिउटावितौ रमि, रोपधयोर्निवृत्तौ च “ब्रश्च” इति जस्य षत्वे “षढोः कः सि” इति षस्य कत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति सीयुटः सस्य षत्वे “लोपो व्योर्वालि” इति यलोपे ‘भर्क् षीत्’ इति स्थिते “सुट् तिथोः” इति सुटिउटावितौ लोपयोश्च “आदेशप्रत्यययोः” इति सुटः सकारस्य षत्वे ष्टुत्वे च ‘भर्क्षीष्ट’ इति रूपम् । रमोऽभावपक्षे—भ्रक्षीष्ट । अत्र “स्कोः” इति, संयोगादेः सस्य लोप एव विशेषः । अभर्क्षीत्, अभ्राक्षीत् । लुङिअटि तिपि च्लौ सिचि इच्चावितौ लोपे च रमिरोपधयोर्निवृत्तौ च “ब्रश्च” इति जस्य षत्वे “षढोः कः सि” इति षस्य कत्वे तिप इकारलोपे इटि “वद्व्रज” इति वृद्धौ अभर्क्षीत्, इति । रमोऽभावपक्षे तु “स्कोः” इति सलोपे जस्य षत्वे षस्य कत्वे सिचः सस्य षत्वे कृषसंयोगे च “वद्व्रज” इति वृद्धौ ‘अभ्राक्षीत्’ इति । अभर्ष्ट । लुङिअटि तादेशे च्लौ सिचि रमि रोपधयोर्निवृत्तौ च “झलो झलि” इति सिचः सकारस्य लोपे “ब्रश्च” इति जस्य षत्वे ष्टुत्वे ‘अभर्ष्ट’ इति । रमोऽभावे ते च्लौ सिचि “झलो झलि” इति सलोपे जस्य षत्वे ष्टुत्वे “स्कोः” इति धातोरादेः सकारस्य लोपे ‘अभ्रष्ट’ इति रूपम् ।

चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ६।१।१६। उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधस्तस्याम्ना स्याज्झ-  
लादावकिति । कष्या, कर्षा । कृशीष्ट । ( स्प्रशमृशकृषतृपट्पां च्लेः सिज्वा  
वाच्यः ) अक्राशीत्, अक्राशीत्, अकृषत् । अकृष्ट । अकृषाताम् । अकृषत् ।

लङि-अभर्चयत्, अभर्चयत्, आत्मनेपदे-अभर्चयत्, अभर्चयत् इति । कृषति । कृषविले-  
खने धातोः लटि तिपि शे शित्वात् सार्वधातुकत्वे अपित्वेन “सार्वधातुकमपित्” इति  
ङित्वात् गुणाभावे ‘कृषति’ इति रूपम् । आ०- कृषेत् । चकर्ष । लटि तिपि णङि  
ङित्वेऽभ्यासत्वे “उरत्” इत्यभ्यासश्चकारस्य अकारे रपरे च “हलादिः शेषः” इति  
रेफषकारयोर्लोपे “कुहोरचुः” इति कस्य चत्वे “पुगन्त” इति लघूपधगुणे ‘चकर्ष’ इति  
रूपम् । चकृषतुः, चकृषुः । चकर्षयि, चकृषयुः, चकृष । चकर्ष, चकृषिव, चकृषिम ।  
आत्मनेपदे लटि— चकृषे । अनुदात्तस्य चेति । “सृजि दृशः” इत्यतः झत्यमकित्तीति ।  
“आदे च उपदेशे” इत्यतः उपदेशे इति चानुवर्तते, तदाह— उपदेशे । अनुदात्त इत्यादिना ।  
कष्या, कर्षा । कृषधातोरनुबन्धलोपे लटि तिपि तासि इङभावे तिपो डात्वे ङित्वाट्टेलोपे  
“अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्” इति वैकल्पिकेन अभागे मित्वादन्त्यादचः  
परे ‘कृ ष त् आ’ इति स्थिते “इको यणचि” इति यणि ङ्त्वे च कृते ‘कषा’ इति  
रूपम् । अमोऽभावपक्षे तु— “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे ङ्त्वे च ‘कर्षा’ इति रूपम् ।  
लृटि-कच्यति, कच्यति । आत्मनेपदे-कच्यते, कच्यते । लोटि-कृषतु । आ०-  
कृषताम् । लङि-अकृषत् । आ०-अकृषत् । विधौ-कृषेत् । आ०-कृषेत् । आशिषि-  
कृष्यात् । कृचीष्ट । कृषधातोः आशीर्लङि तादेशे “लिङः सीयुट्” इति सीयुटि उटावितौ  
तयोर्लोपे च “सुट् तिथोः” इति सुडागमेऽनुबन्धलोपे “लिङ्सिचावात्मनेपदेषु” इति  
कित्वाद्गुणाभावे “लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे “षढोः कः सि” इति धातोः षकारस्य  
कत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति सकारद्वयस्य षत्वे ङ्त्वे क्स्संयोगे चकारे च जाते ‘कृचीष्ट’  
इति रूपम् । अक्राचीत् । कृषधातोरुङि अटि तिपि अनुबन्धलोपे तिप इकारलोपे च्लेः  
सिचि प्राप्ते तं प्रबाध्य “स्प्रशमृशकृषतृपट्पां च्लेः सिज्वा वाच्यः” इति वार्तिकेन वैक-  
ल्पिके च्लेः सिचि इच्चावितौ लोपे च “अनुदात्तस्य चर्दु०” इति वैकल्पिकेऽमि ‘अकृ-  
अमृषत्’ इति स्थिते मस्येत्संज्ञायां लोपे च मित्वादन्त्यादचः परे अवपरत्वात् “इको  
यणचि” इति यणि ‘अकृषत्’ इति जाते “षढोः कः सि” इति धातोः षस्य कत्वे  
“आदेशप्रत्यययोः” इति सिचः सकारस्य षत्वे क्स्संयोगे चकारे “अस्तिसिचोऽपृषते”  
इति ईटि अनुबन्धलोपे “वदत्रजहलन्तस्याचः” इति हलन्तत्वमाश्रित्य वृद्धौ ‘अक्र-  
चीत्’ इति रूपम् । अमोऽभावपक्षे तु हलन्तलक्षणा वृद्धौ । अक्राशीत् इति । सिचोऽभाव-  
पक्षे— “शल इगुपधादिनटः कसः” इति च्लेः कसादेशे “लशक्तद्धिते” इति कस्येत्संज्ञायां  
लोपे च “षढोः कः सि” इति धातोः षस्य कत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति कसः  
सस्य षत्वे क्स्संयोगे ङ्त्वे कसः कित्वाद्गुणाभावे ‘अकृषत्’ इति रूपम् । अमि सिचि

कसपच्चे-अकृक्षत् । अकृक्षाताम् । अकृक्षन्त । मिलसङ्गमे ॥ ५ ॥ मिलति । मिलते ।  
मिमेल । मेलिता । अमेलीत् । मुच्ल् मोचने ॥ ६ ॥ शे मुचादीनाम् ७।१।५६।  
मुच् लुप् विद् लिप् सिच् कृत् खिद् पिशां नुम् स्यात् शे परे । मुञ्चति । मुञ्चते ।  
मुमोच । मोक्ता । मुच्यात् । मुक्षीष्ट । अमुचत् । अमुक्त । अमुक्षाताम् । लुप्

अक्राष्टाम् । अक्रावुः । अक्राहीः, अक्राष्टम्, अक्राष्ट । अक्राचम् । अक्राचव । अक्राचम् ।  
अमभावे सिचि अकार्षाम् । अकार्षुः । अकार्षीः, अकार्षम्, अकार्ष । अकार्षम्, अका-  
चम्, अकार्षम् । अमभावे सिजभावे क्सादेशे तु तसि अकृचताम्, अकृचन् । अकृचाः,  
अकृचतम्, अकृचत्, अकृचम्, अकृचव, अकृचम् । अकृष्ट । लुङ्स्ते च्लौ सिचि “लिङ्-  
सिचावात्मनेपदेषु” इति क्त्वाद्गुणाभावे “झलो झलि” इति सलोपे “घ्ना घ्नः” इति  
झ्वेऽटि ‘अकृष्ट’ इति रूपम् । अकृक्षाताम् । आतामि “षढोः कः सि” इति षस्य कत्वे  
सिचः सस्य षत्वेऽटि ‘अकृक्षाताम्’ इति रूपम् । झदेशे तु “आत्मनेपदेष्वनतः” इति  
अतादेशे-अकृचत । अकृष्टाः, अकृष्टायाम्, अकृष्टवम् । अकृचि, अकृचवहि, अघृ-  
चमहि । सिजभावे तु क्सादेशे अनुबन्धलोपे ‘कृ ष स त’ इति स्थिते “षढोः कः सि”  
इति धातोः षस्य कत्वे क्ससः सस्य षत्वे संयोगेऽटि ‘अकृचत’ इति । आतामि-अकृ-  
क्षाताम् । ‘क्सस्याचि, इति अलोपः । झौ-अकृक्षन्त । अकृचथाः, अकृचायाम्, अकृच-  
वम् । अकृचि, अकृचवहि, अकृचमहि । लङि-अकृच्यत्, अकृच्यत । आ०-अकृ-  
च्यत, अकृच्यत । मिलति । मिलसङ्गमे धातुतो लटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे ‘मिलति’  
इति रूपम् । आ०-मिलते । मिमेल । मिलधातोर्लिटि तिपि णलि अनुबन्धलोपे “लिटि  
धातोः” इति द्वित्वे अभ्यासकार्ये “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे ‘मिमेल’ इति ।  
मिमिलतुः, मिमिलुः । लुटि-मेलिता । लृटि-मेलिष्यति, मेलिष्यते । लोटि-मिल-  
तु । आ०-मिलताम् । लङि-अमिलत् । आत्मनेपदे-अमिलत । विधौ-मिलेत् ।  
आ०-मिलेत । आशिषि-मिक्ष्यात् । आ०-मेलिषीष्ट । अमेलीत् । लुङि अटि तिपि  
तिपि इकारलोपे च्लौ च्लेः सिचि “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे “आर्धधातु०”  
इति इटि “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति ईटि “इट ईटि” इति सलोपे ‘अमेलीत्’  
इति । आ०-अमेलिष्ट । लृङि-अमेलिष्यत्, अमेलिष्यत । शे मुचादीनामिति ।  
नुम् स्यादिति शेषपूरणमिदम् । “इदं तो नुम्” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः ।  
मुञ्चति । मुच्ल्मोचने धातुतो लटि तिपि अनुबन्धलोपे “तुदादिभ्यः शः” इति शे  
अनुबन्धलोपे क्त्वाद्गुणाभावे, “शे मुचादीनाम्” इति नुमि अनुब-  
न्धलोपे । “नश्चापदान्तस्य” इति अनुस्वारे परसवर्णे च जाते ‘मुञ्चति’ इति रूपम् ।  
आत्मनेपदे-मुञ्चते । मुमोच । लटि मुच् मुच् अ इति स्थिते हलादिशेषे “पुगन्त” इति गुणे  
‘मुमोच’ इति । आ०-मुमुचे । लृटि-मोक्तासि । मोक्तासे । लृटि-मोक्ष्यति-मोक्ष्यते ।  
लोटि-मुञ्चतु । आ०-मुञ्चताम् । लङि-अमुचत् । आ०-अमुञ्चत । विधौ-मुञ्चेत् ।



छेदने ॥ ७ ॥ लुम्पति । लुम्पते । लोप्ता । अलुप्त । अलुप्त । विदुः लामे ॥ ८ ॥  
 विन्दति । विन्दते । विवेद । विविदे । व्याघ्रभूतिमते सेट् । वेदिता । भाष्यमतेऽनिट् ।  
 परिवेत्ता । षिच् क्षरणे ॥ ९ ॥ सिञ्चति । सिञ्चते ॥ लिपिसिचिह्नश्च ३।१।५३  
 एभ्यश्च्लेरङ् स्यात् । असिचत् ॥ आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ३।१।५४ लिपि-  
 सिचिह्नः परस्य च्लेरङ् वा स्यात् तङि । असिचत् । असिक्त । लिप उपदेहे ॥ १० ॥  
 उददेहो वृद्धिः । लिम्पति । लिम्पते । लेप्ता । अलिपत् । अलिपत्, अलिप्त ॥ इति  
 उभयपदिनः ॥

आ०—मुञ्चेत् । आशिषि—मुच्यात् । मुक्षोष्ट । अत्र “लुङ्सिचावात्मनेपदैषु” इति  
 क्त्वाद्गुणाभावो बोध्यः । अमुचत् । मुच्धातोर्लुङि अटि तिपि अनुबन्धलोपे च्लौ  
 “पुषादिद्युताद्यलुङितः” इति च्लेरङि क्त्वाद्गुणाभावे ‘अमुचत्’ इति । अमुक्त । आ०—  
 लुङि अटि तादेशे च्लौ च्लेः सिचि ‘अमुच् सत्’ इति स्थिते “झलो झलि” इति  
 सलोपे “चोः कुः” इति चस्य क्तवे ‘अमुक्’ इति रूपम् । लुङि—अमोच्यत् । आ०—  
 अमोच्यत । लुम्पति । लुप्लुङेदने धातोर्लुङि तिपि अनुबन्धलोपे शेऽनुबन्धलोपे “शे  
 मुचादीनाम्” इति नुमि अनुबन्धलोपे “नश्चापदान्तस्य झलि” इति अनुस्वारे परस-  
 वर्णे च लुम्पति । आत्मनेपदे—नुम्पते । लिटि—लुलोप । आ०—लुलोपे । लोप्तासि ।  
 लोप्तासे । लोप्स्यति । लोप्स्यते । लोटि—लुम्पतु । लुम्पताम् । लङि—अलुम्पत्, अलु-  
 म्पत । लुम्पेत्—लुम्पेत । आशिषि—लुप्यात् । लुप्सीष्ट । लुङि—अलुपत् । लुदित्वादङ् ।  
 आत्मनेपदे—अलुप्त । अलोप्स्यत्—अलोप्स्यत । विन्दति । विन्दते । “शे मुचादीनाम्”  
 इति नुमि शेषं मुचिवत् । विवेद, विविदे । वेत्ता । व्याघ्रभूतिमते सेट्, तदा—वेदिता ।  
 वेत्स्यति, वेत्स्यते । विन्दताम् । लङि—अविन्दत् । अविन्दत । विन्देत् । विन्देत ॥ विधात् ।  
 विस्सीष्ट । लुङि—अविदत् । लुदित्वादङ् । अविक्त । लुङि—अवेत्स्यत् । अवेत्स्यत ।  
 सिञ्चति । षिच् क्षरणे धातोः “धात्वादेः षः सः” इति धात्वादेः षस्य सत्वे लटि तिपि “शे  
 मुचादीनाम्” इति नुमि अनुबन्धलोपेऽनुस्वारे परसवर्णे च ‘सिञ्चति’ इति रूपम् ।  
 आत्मनेपदे—सिञ्चते । लिटि—सिषेच—सिषिचे । लुटि—सेक्ता । सेच्यति—सेच्यते ।  
 सिञ्चतु । सिञ्चताम् । लङि—असिञ्चत् । असिञ्चत । सिच्यात्—सिञ्चीष्ट । लिपिसिचि-  
 लिपि सिचि ह्या एषां समाहारइन्द्रात्पञ्चम्येकवचनम् । “च्लेः सिच्” इत्यतः च्लेरिति  
 “अस्यतिवक्तव्यातिभ्यः” इत्यतोऽङिति चानुवर्तते । तदाह—एभ्य इति । असिचत् ।  
 लुङि अटि तिपि तिप इकारलोपे च्लौ “लिपिसिचिह्नश्च” इत्यङि अनुबन्धलोपे क्त्वा-  
 दगुणे ‘असिचत्’ इति । आत्मनेपदेष्विति । “लिपिसिचिह्नश्च” इत्यनुवर्तते । “च्लेः  
 सिच्” इत्यतः च्लेरिति, “अस्यतिवक्तव्यातिभ्यः” इत्यतः अङिति चानुवर्तते, तदाह—  
 लिपिसिचीत्यादिना । असिचत् । लुङि तादेशे च्लौ “आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्” इति च्ले-  
 रङि अटि अनुबन्धलोपे क्त्वाद्गुणाभावे ‘असिचत्’ इति रूपम् । अङमावे च्लौ, च्लेः  
 सिचि “झलो झलि” इति सिचः सलोपे “चोः कुः” इति कुत्वेऽटि ‘असिक्’ इति ।

कृती छेदने ॥ ११ ॥ कृन्तति । चकर्त्त । कर्तिता । कर्तिष्यति, कर्त्स्यति ।  
अकर्त्तात् । खिद् परिघाते ॥ १२ ॥ खिन्दति । चिखेद् । खेत्ता ॥ पिश अवबवे  
॥ १३ ॥ पिशति । पेशिता । ओग्रश्च छेदने ॥ १४ ॥ वृश्चति । वग्रश्च । वग्रश्चिय,

लुङि—असेच्यत्—असेच्यत ॥ लिम्पति । लिपउपदेहे इति धातोर्लटि, तिपि शेऽनुबन्धलोपे “शेमुचादीनाम्” इति नुमि अनुबन्धलोपे “नश्चापदान्तस्य झलि” इति अनुस्वारे परसवर्णे च ‘लिम्पति’ इति । आत्मनेपदे—लिम्पते । लिलेप । लिटः तिपि णलि द्वित्वेऽभ्यासकार्यं ‘पुगन्त०’ इति गुणे ‘लिलेप’ इति । आः लिलिपे । लुटि—लेसासि । लेसासे । लेप्स्यति—लेप्स्यते । लोटि—लिम्पतु । लिम्पताम् । लङि—अलिम्पत् । अलिम्पत । विधौ—लिम्पेत्—लिम्पेत । आशिषि—लिप्स्यात् । लिप्सीष्ट । अलिपत् । लुङि अटि तिपि च्लौ “लिपिसिचिङ्गश्च” इति च्लेरङि अनुबन्धलोपे तिप् इकारलोपे क्त्वाद्गुणाभावे ‘अलिपत्’ इति रूपम् । आत्मनेपदे तु—‘अ लिप् च्लि त्’ इति स्थितौ “आत्मनेपदेऽन्यतरस्याम्” इति वा च्लेरङि अनुबन्धलोपे क्त्वाद् गुणाभावे ‘अलिपत्’ इति रूपम् । अङभावे च्लेः सिचि अनुबन्धलोपे ‘अलिप् स त्’ इति स्थितौ “झलो झलि” इति सिजलोपे “लिङ् सिचौ” इति क्त्वाद्गुणाभावे ‘अलिप्त’ इति रूपम् । लुङि—अलेप्स्यत्—अलेप्स्यत । कृन्तति । कृती छेदने इति धातुतो लटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे “शे मुचादीनाम्” इति नुमि क्त्वादन्यादचः परे अनुबन्धलोपेऽनुस्वारे परसवर्णे च ‘कृन्तति’ इति रूपम् । चकर्त्त । कृती छेदने धातोर्लटि तिपि णलि अनुबन्धलोपे द्वित्वेऽभ्यासकार्यं “कुहोरनुः” इति कस्य चत्वे “पुगन्त०” इति गुणे “अचो रहाभ्यां द्वे” इति रेफात्परस्य तकारस्य द्वित्वे “चकर्त्त” इति । सेट्त्वात् लुटि—कर्त्तिता । लुटि—कर्त्तिष्यति । कृत्धातोर्लटि तिपि स्ये “सेऽसिचिकृतचृतृदृदृदन्तः” इति विकल्पेन इटि षत्वे ‘कर्त्तिष्यति’ इति । इङभावे—कर्त्स्यति । लोटि—कृन्ततु । लङि—अकृन्तत् । विधौ—कृन्तेत् । आशिषि—कृत्यात् । लुङि—अकर्त्तात् । लुङि—अटि तिपि तिप् इकारलोपे च्लौ, च्लेः सिचि “आर्धधातुकस्येड्” इति इटि “अस्तिचिचः” इति ईटि “इट ईटि” इति सलोपे “पुगन्त०” इति गुणे “वद्वज्ज” इति वृद्धौ प्राप्ते “नेटि” इति निषिद्धे “पुगन्तलवूपधस्य च” इति गुणे ‘अकर्त्तात्’ इति रूपम् । अकर्त्तिष्यत्, अकर्त्स्यत् । खिदति । खिद् परिघातार्थकात् धातोर्लटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे अनुस्वारे परसवर्णे च ‘खिदन्ति’ इति । लिटि—चिखेद् । लुटि—खेत्ता । लुटि—खेत्स्यति । लोटि—खिन्दतु । लङि—अखिन्दत् । विधौ—खिन्देत् । आशिषि—खिद्यात् । लुङि—असेदीत् । लुङि—अलेत्स्यत् । पिशति । लटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे “शे मुचादीनाम्” इति नुमि अनुबन्धलोपेऽनुस्वारे ‘पिशति’ इति । लिटि—पिपेक्ष । लुटि—पेक्षितासि । लुटि—पेक्षिष्यति । लोटि—पिशतु । लङि—अपिषत् । विधौ—पिषेत् । आशिषि—पिष्यात् । लुङि—अपेक्षीत् । वृश्चति । ओग्रश्चछेदने इति धातोर्लटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे सस्या-

व्रष्ट । व्रश्चिता, व्रष्टा । व्रश्चिष्यति, व्रक्ष्यति । वृश्च्यात् । अग्रश्चीत्, अग्रश्शीत् ।  
व्यच व्याजीकरणे ॥ १५ ॥ विचति । विव्याच । विविचतुः । व्यचिता । व्यचि-

पित्वेन “सार्वाधातुकमपित्” इति क्त्वात् “ग्रहीज्या” इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे च  
‘वृश्चति’ इति रूपम् । व्रश्च । ओग्रश्पूर्वातोऽनुबन्धलोपे लिटि तिपि णलि धातोर्द्वि-  
त्वे “लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्” इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे च ‘वृश्च व्रश्च अ’ इति स्थिते  
“उरत्” इति अभ्यासञ्चवर्णस्य अदादेशे रपरं ‘वृश्च् व्रश्च् अ’ इति जाते “हलादि-  
शेषः” इति हललोपे ‘व्रश्च’ इति रूपम् । व्रश्चतुः, व्रश्चुः । व्रश्चिथ । लिटि थलि  
धातोर्द्वित्वेऽभ्यासकार्यं “लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्” इत्यभ्यासस्य सम्प्रसारणे पूर्वरूपे  
‘वृश्च् व्रश्च् थ’ इति जाते “उरत्” इत्यभ्यासञ्चवर्णस्यादादेशे रपरं च कृते “हलादि-  
शेषः” इति हलो लोपे “स्वरतिसूतिसूयतिधूञ्दितो वा” इति ऊदित्वात् थल इडा-  
गमे ‘व्रश्चिथ’ इति रूपम् । इडभावपक्षे धातोर्द्वित्वे “लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्”  
इत्यभ्यासस्य सम्प्रसारणे पूर्वरूपे अभ्यासञ्चवर्णस्य “उरत्” इति अदादेशे रपरत्वे च  
“हलादिः शेषः” इति हलो लोपे ‘व व्रच् थ’ इति स्थिते शत्वस्यासिद्धत्वात् “स्को-  
संयोगाद्योः” इति सलोपे “व्रश्चभ्रस्ज” इति चकारस्य षत्वे “ऽदुना ऽदुः” इति यस्य  
उत्वे ‘व्रश्च’ इति । व्रश्चचधुः, व्रश्च । व्रश्च, व्रश्चिव, व्रश्चिम । व्रश्चिता, व्रष्टा ।  
लुटि तिपि तासि तासः “स्वरतिसूति०” इति विकल्पेन इटि, तिपो डात्वे क्त्वाट्टे-  
लोपे ‘व्रश्चिता’ इति । इडभावपक्षे शत्वस्यासिद्धत्वात् “स्कोः” इति सलोपे व्रश्चेति  
षत्वे “ऽदुना ऽदुः” इति ऽदुत्वे ‘व्रष्टा’ रूपम् । व्रश्चिष्यति । लृटि तिपि स्ये “स्वरति-  
सूतिसूयति०” इति विकल्पेनेटि षत्वे व्रश्चिष्यति । इडभावे सलोपे षत्वे कत्वे कात्पर-  
कत्वात्षत्वे च-व्रक्ष्यति । वृश्चतु । अवृश्चत् । वृश्चेत् । वृश्च्यात् । आशीर्लिङि तिपि  
यासुटि उटो लोपे तिपि इलोपे “ग्रहीज्या०” इति सम्प्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इति  
पूर्वरूपे ‘वृश्च्यात्’ इति । अग्रश्चीत् । लुङि अटि तिपि तिपि इकारलोपे च्लौ च्लेः सिचि  
इचावितौ “स्वरति०” इति विकल्पेनेटि “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति ईटि “इट ईटि”  
इति सलोपे “वद्व्रज” इति वृद्धिस्तु न, “नेटि” इति निषेधात् ‘अग्रश्चीत्’ इति रूपम्  
इडभावपक्षे तु “वद्व्रज०” इति वृद्धौ “स्कोः” इति सलोपे “व्रश्च” इति षत्वे, षस्य  
“स्कोः” इति कत्वे कात्परकत्वात् सिचः सस्य षत्वे कप्संयोगे च ‘अग्रश्चीत्’ इति ।  
विचति । व्यच्धातोर्लिङि तिपि शेऽनुबन्धलोपे शित्वादिपित्वेन “सार्वाधातुकमपित्”  
इति क्त्वात् “ग्रहीज्या” इति सम्प्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे ‘विचति’  
इति रूपम् । विव्याच । व्यच्धातोर्लिङि तिपि णलि धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे  
“लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्” इति सम्प्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे ‘विव्यच्  
अ’ इति जाते “अत उपधायाः” इति वृद्धौ ‘विव्याच’ इति रूपम् । विविचतुः । व्यचोऽ-  
नुसि “असंयोगादिलिट्कित्” इति अनुसः कित्वे “ग्रहीज्या०” इति सम्प्रसारणे “सम्प्र-

भवति । विव्यात् । अव्याचीत् । अव्यचीत् । 'व्यचेः कृत्यदित्वमनसि' इति तु नेह प्रवर्तते । अव्यचीति पर्युदासत्वेन तस्य कृन्माप्रविषयत्वात् । उच्छि उच्छे ॥ १६ ॥ उच्छति । 'उच्छः कण्ठस्य आदानं कर्णशार्थजनं शिलाम्' इति यादवः ॥ ऋच्छु यतीन्द्रियप्रलम्भमूर्तिभावेषु ॥ १७ ॥ ऋच्छति । 'ऋच्छत्यताम्' इति गुणः । द्विह-लम्प्रहणस्याऽनेकहलुपलक्षणत्वान्नुट् । आनर्छु । आनर्छतुः । ऋच्छिता । उज्झ उत्सर्गो ॥ १८ ॥ उज्झति । लुभ विमोहने ॥ १९ ॥ लुमति । तीक्ष्णसहलुभ-

सारणाच्च" इति पूर्वरूपे "लिटि धातोः" इति द्वित्वे अभ्यासत्वे 'वि विच् अनुस्' इति जाते संयोगे च कृते 'विविचतुः' इति रूपम् । विविचुः । विव्यचिष्य । विविचथुः । विविच । विव्याच । विव्यच । विविचिव । विविचिम । व्यचिता । व्यचिष्यति । विचतु । अविचत् । विचेत् । आशिषि—विच्यात् । अव्याचीत् । अव्यचीत् । लुङि अटि तिपि ऋषी स्त्रिषु इच्छावितौ तयोर्लोपे च "आर्षधातुकस्येड्" इति ईटि तिपि हलोपे "अस्तिवसि-चोऽणुके" इति ईटि "ईट ईटि" इति सलोपे "अतो हलादेर्लोभोः" इति विकल्पेन वृद्धौ 'अव्याचीत्' इति । वृद्धभावे—'अव्यचीत्' इति । व्यचेः कृत्यदित्वमिति । "व्यचेः कृत्या-दित्वमनसि" इत्यस्यात्र प्रवृत्तिर्न भवति । पर्युदासत्वेन असम्भित्वात्सदृशस्य कृष्णवप-स्येव ग्रहणात् । उच्छति । उच्छिधातोरनुबन्धलोपे तस्मात् एटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे ह्रस्वात् "इदित्ते लुम् धातोः" इति लुमि अनुबन्धलोपे भित्वादन्यादचः परे लुमोऽ-नुस्वारे परसवर्णे च कृते 'उच्छति' इति रूपम् । लिटि—उच्छाकार । लुटि—उच्छिता । वृटि—उच्छिष्यति । लोटि—उच्छतु । लङि—औच्छत् । विचौ—उच्छेत् । आशिषि—उच्छयात् । लुङि—औच्छीत् । लङि—औच्छिष्यत् । ऋच्छति । ऋच्छ धातोर्लटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे 'ऋच्छु' इति रूपम् । आनर्छु । ऋच्छधमत्तोर्लटि तिपि अलि अनु-बन्धलोपे धातोर्हित्वेऽभ्यासत्वे 'ऋच्छ ऋच्छ' इति जाते "उरत्" इति अभ्यासक-कारस्य अङादेशे "उरण् रणः" इति रणत्वे च जाते "इलमिः शेषः" इति हलो लोपे 'अ ऋच्छ अ' इति स्थिते "अत आदेः" इति अभ्यासस्य आत्वे "तस्मान्नुड्द्विहलः" इति द्विहलप्रणस्यानेकहलुपलक्षणत्वान्नुटि अनुबन्धलोपे 'आ न् ऋच्छ अ' इति जाते "ऋच्छत्यताम्" इति गुणे रधरे 'आन् अर्छ अ' इति स्थिते संयोगे च कृते, 'आनर्छ' इति रूपम् । अनुसि—आनर्छतुः । आनर्छुः । आनर्छिष्य, आनर्छिषुः, आनर्छ । आनर्छ, आनर्छिव, आनर्छिम । लुटि—ऋच्छिता । वृटि—ऋच्छिष्यति । लोटि—ऋच्छतु । लङि—आर्छत् । विचौ—ऋच्छेत् । आशिषि—ऋच्छयात् । लुङि—आर्छीत् । वृटि—आर्छिष्यत् । उज्झति । उज्झ उत्सर्गोधातोर्लटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे 'उज्झति' इति रूपम् । लिटि—उज्झाकार । लुटि—उज्झिता । वृटि—उज्झिष्यति । लोटि—उज्झतु । लङि—औज्झत् । विचौ—उज्झेत् । आशिषि—उज्झयात् । लुङि—औज्झीत् । वृटि—औज्झि-ष्यत् । उज्झति । लुभविमोहोधातोर्लटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे भित्वादन्यादचः च ह्रस्वात्

परिषः अ२।४८। इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्येद् वा स्यात् । लोमिता, लोन्धा । लोमिष्यति । तृप् तृम्फ तृप्तौ ॥ २१ ॥ तृपति । ततर्प । तर्पिता । अतर्पीत् । तृम्फति । ( शे तृम्फादीनां नुम्वाच्यः ) आदिशब्दः प्रकारे । तेन येऽत्र नकारानुबन्धस्ते तृम्फादयः । ततृम्फ । तृफथात् । मृड पृड सुखने ॥ २२ ॥ मृडति । पृडति । शुन गतौ ॥ २४ ॥ शुनति । इष इच्छायाम् ॥ २५ ॥ इच्छति । एषिता, एष्या । एषिष्यति । इष्यात् । ऐषीत् । कुट कौटिल्ये ॥ २६ ॥ “गाङ्कु-

गुणः ‘लुमति’ इति रूपम् । लुटि-लुलोभ । तीषसहलुभरूपपरिषः । “आर्धधातुकस्येद्” इत्यतः इडित्यनुवर्तते । “स्वरतिसूति०” इत्यतो वेति च । तीति ससम्युपादानाच्चदादिविधिः । इषसहलुभरूपपरिष एषां द्वन्द्वात्पञ्चम्येकवचनम् । तदाह—इच्छत्यादेः ति । लोमिता, लोन्धा । लुमधातोर्लुटि तिपि तासि तस्यार्धधातुकत्वे “तीषसहलुभरूपपरिषः” इति इडविकल्पे “पुगन्त०” इति गुणे तिपो ङात्वे टिलोपे च “लोमिता” इति । इडभावे “क्षपस्तयोर्धोऽधः” इति तस्य धत्वे “क्षलां जश् क्षशि” इति भस्य वत्त्वे “पुगन्त” इति गुणे लोन्धा । लोमिष्यति । लुटि तिपि स्ये आर्धधातुकत्वे इटि “पुगन्त” इति गुणे ‘लोमिष्यति’ इति रूपम् । लोटि-लुभतु । लङि-अलुभत् । विधौ-लुमेत् । आशिषि-लुभ्यात् । अलोभीत् । अलोमिष्यत् । तृपति । तृप् तृप्तौ इति धातोर्लुटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे ‘तृपति’ इति रूपम् । ततर्प । तर्पिता । लुटि-तर्पिष्यति । तृपतु । अतृपत् । तृपेत् । तृप्यात् । लुङि-अतर्पीत् । लुङि-अतर्पिष्यत् । तृम्फति । तृम्फ तृप्तौ धातोर्लुटिस्तिपि शे शस्यापित्वेन “सार्वधातुकमपित्” इति द्वित्वे “अनिदितां हल उपधाया विङिति” इति नलोपे “शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः” इति नुमि अनुबन्धलोपेऽनुस्वारे परसवर्णे च ‘तृम्फति’ इति रूपम् । ततृम्फ । तृम्फिता । तृम्फिष्यति । तृम्फतु । अतृम्फत् । तृम्फेत् । तृम्फ्यात् । अतृम्फीत् । अतृम्फिष्यत् । मृडति, पृडति । मृडपृडसुखने इति धातुतो लुटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे ‘मृडति’ ‘पृडति’ इति । ममर्ह, पपर्ह । मर्हता । पर्हिता । लुटि-मर्हिष्यति, पर्हिष्यति । लोटि-मृडतु, पृडत् । लङि-अमृडत्, अपृडत् । विधौ-मृडेत्, पृडेत् । आशिषि-मृड्यात् । पृड्यात् । लुङि-अमर्हीत्, अपर्हीत् । शुनति । शुनगतौ इति धातोर्लुटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे ‘शुनति’ इति । लुटि-शुनोत् । लुटि-शोनिता । लुटि-शोनिष्यति । लोटि-शुनतु, लङि-अशुनत् । विधौ-शुनेत् । आशिषि-शुन्यात् । लुङि-अशोनीत् । लुङि-अशोनिष्यत् । इच्छति । इष इच्छायां धातोर्लुटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे “इषुगमियमां छः” इति षकारस्य छकारे “छे च” इति तुकि अनुबन्धलोपे “स्तोःश्चुना श्चुः” इति श्चुत्वेन चकारे ‘इच्छति’ इति रूपम् । लुटि-इयेष । लुटि तिपि णलि द्वित्वेऽभ्यासत्वे “इलाङिः शेषः” इति हलो लोपे “इ इष् अ” इति जाते “अभ्यासस्यासवर्णे” इति इयङि ‘इयेष’ इति रूपम् । एषिता । लुटि तिपि तासि आर्धधातुकत्वे “तीषसहलुभरूपपरिषः” इति

यदि" इति द्वित्वम् । चुकटिथ । चुकोट । चुकुट । कुटिता । पुट संस्लेषणे ॥ २७ ॥  
पुटति । पुटिता । स्फुट विकसने ॥ २८ ॥ स्फुटति । स्फुटिता । स्फुर स्फुल्ल  
सञ्चलने ॥ २९-३० ॥ स्फुरति । स्फुलति ॥ स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः  
प् ३७ ॥ षत्वं वा स्यात् । निःस्फुरति, निःस्फुलति । षू स्तवने ॥ ३१ ॥ परिणत-  
गुणोदयः । नुवति । नुनाव । नुवेता । टुमस्त्रो शुद्धौ ॥ ३२ ॥ मज्जति । ममज्ज ।

इङ्विकल्पे "पुगन्त०" इति गुणे 'एषिता' इति । इङभावे 'ष्टुत्वे 'ष्टा' इति । लृटि—  
एषिष्यति । लोटि—इच्छतु । लङि—ऐच्छत् । विधौ—इच्छेत् । आशिषि—इष्यात् । लुङि—ऐ-  
षीत् । लृङि—ऐषिष्यत् । कुटति । कुटकौटिल्ये घातोर्लटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे शित्वा-  
दपित्वेन "सार्वधातुकमपित्" इति द्वित्वादगुणाभावे 'कुटति' इति रूपम् । चुकोट ।  
लिटि तिपि णलि, अनुबन्धलोपे "लिटि घातोः" इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे  
"कुहोरचुः" इति अभ्यासकवर्गस्य चत्वे "पुगन्त०" इति गुणे 'चुकोट' इति रूपम् ।  
चुकुटतुः, चुकुट्टः । चुकुटिथ । अत्र "गाङ्कुटादिभ्योऽङ्गिण्डित्" इति द्वित्वादगुणा-  
भावे "आर्षधातुकस्येङ्" इति इटि 'चुकुटिथ' इति । चुकुटथुः, चुकुट । चुकोट, चुकट ।  
लिट उत्तमपुरुषे मिपो णलि अनुबन्धलोपे घातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे "कुहोरचुः"  
इति चत्वे "णल उत्तमो वा" इति विकल्पेन शित्वात् "गाङ्कुटादिभ्यः" इति द्वित्वाभा-  
वेन वृद्धौ 'चुकोट' इति । शित्वाभावपक्षे "गाङ्कुटादिभ्योऽङ्गिण्डित्" इति द्वित्वा-  
दृष्ट्यभावे 'चुकुट' इति रूपम् । लृटि—कुटिता । लृटि—कुटिष्यति । लोटि—कुटतु । लङि—  
अकुटत् । विधौ—कुटेत् । आशिषि—कुट्यात् । लुङि—अकुटीत्, अकुटिष्टाम्, अकुटिषुः ।  
लृङि—अकुटिष्यत् । पुटति । पुटसंस्लेषणे घातोर्लटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे "गाङ्कुटादि-  
भ्योऽङ्गिणित्" इति द्वित्वाद् गुणाभावे 'पुटति' इति रूपम् । पुपोट । पुटिता । पुटिष्य-  
ति । पुटतु । लङि—अपुटत् । विधौ—पुटेत् । आशिषि—पुटयात् । लुङि—अपुटीत् ।  
लृङि—अपुटिष्यत् । स्फुटति । स्फुटविकसने घातोर्लटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे 'स्फुटति'  
इति । लिटि—पुस्फोट । स्फुटिता । स्फुटिष्यति । स्फुटतु । लङि—अस्फुटत् । विधौ—  
स्फुटेत् । आशिषि—स्फुटयात् । लुङि—अस्फुटीत् । लृङि—अस्फुटिष्यत् । स्फुरति । स्फु-  
लति । स्फुरस्फुल्लमञ्चलने घातोर्लटि तिपि शे 'स्फुरति, स्फुलति' इति । स्फुरतिस्फुल-  
त्योरिति । "मूर्धन्य" इत्यधिकृतम् । "सिवादीनां वा" इत्यतो वेत्यनुवर्तते । तदाह—  
षत्वं वा स्यादिति । निःस्फुरति, निःस्फुरति । निर्-पूर्वकस्फुटघातोर्लटि तिपि शे "स्फुरति-  
स्फुल्लयोर्निर्निविभ्यः" इति घातोस्सकारस्य वा षत्वे निःस्फुरति इति, तदभावे तु  
निःस्फुरति' इति । लिटि—पुस्फार । पुस्फाल । स्फुरिता, स्फुलिता । स्फुरिष्यति,  
स्फुलिष्यति । स्फुरतु । स्फुलतु । अस्फुरत् । अस्फुलत् । विधौ—स्फुरेत्,  
स्फुलेत् । स्फुर्यात्, स्फुल्यात् । लुङि—अस्फुरीत्, अस्फुलीत् । अस्फुरिष्यत्,  
अस्फुलिष्यत् । नुवति । णस्तवने घातोर्लटि तिपि शे अनुबन्धलोपे शित्वादगुणाभावे

“मस्त्रिनशोः” इति नुम् । ( मस्त्रेरन्त्यात्पूर्वो नुम् वाच्यः ) संबोगादितोपः ।  
ममङ्क्थ, ममज्जिथ । मङ्क्ता । मङ्क्थति । अमाङ्क्षीत् । अमाङ्क्षाम् । अमाङ्क्षुः ।

“अचिरनु०” इति उबङि ‘बुवति’ इति । नुनाव । नूधातोर्लिटि तिपि णळि अनु-  
बन्धलोपे धातोर्हित्वेऽभ्यासकार्ये “कृताकृतप्रसङ्गी विधिनित्यः” इति नित्यत्वात् “अचो  
ष्णिगिति” इति वृद्धौ ‘नु नौ अ’ इति जाते “एचोऽयवायावः” इति आवि ‘नुनाव’  
इति रूपम् । नुनुवतुः नुमुवुः । नुनुविथ, नुनुवथुः, नुनुव । नुनाव, नुनव । नुमुविथ,  
नुमुविम । लुटि-नुविता । लुटि-नुविष्यति । लोटि-नुवतु । अनुवत् । नुवेत् । नूयात् ।  
अनुवीत् । अनुविष्यत् । मज्जति । द्रुमस्त्रधातोर्लिटि तिपि श्लेऽनुबन्धलोपे “स्तोः रचुना  
रचुः” इति रचुत्वेन सस्य ङत्वे “झलं जश् झशि” इति शस्य जश्त्वेन जत्वे “मज्ज-  
ति” इति रूपम् । ममज्ज । मस्त्रधातोर्लिटि तिपि णळि अनुबन्धलोपे “मस्त्र् अ” इति  
जाते “लिटि धातोः” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे ‘म मस्त्र् अ’ इति जाते”  
“स्तोः रचुना रचुः” इति रचुत्वेन सस्य ङत्वे “झलं जश् झशि” इति शस्य जत्वे  
‘ममज्ज’ इति रूपम् । ममज्जतुः, ममज्जुः । ममज्जिथ । लिटिः सिपि तस्य णळि धातो-  
र्हित्वेऽभ्यासादिकार्ये ‘ममस्त्र् थ’ इति दशायां “स्तोः रचुना रचुः” इति रचुत्वेन सस्य  
ङत्वे “झलं जश् झशि” इति शस्य ङत्वे क्रमादिनिघमाङ्कैरधिक लुटि “ममज्जिथ”  
इति रूपम् । इहमममाभावपक्षे “मस्त्रिनशोर्लिटि” इति सूत्रेण “मस्त्रेरन्त्यात्पूर्वो वा  
नुम् वाच्यः” इति वार्तिककलादेवास्त्यात्माङ् नुमि ‘म मस्त्र् ज् थ’ इति भूषे “स्त्रोः  
संबोगाज्जोरन्ते च” इति संयोगादेः सकारस्य लोपे ‘म मस्त्र् ज् थ’ इति स्थितौ “जोः  
कुः” इति जस्य ङत्वे “खरि च” इति मस्य ङत्वे “नम्रपदान्तस्य झलित्” इति अनुस्वारे  
परसवर्णे च ‘ममङ्क्थ’ इति रूपम् । मङ्क्ता । मस्त्र धातोर्लिटि तिपि तासि अनुबन्ध-  
लोपे तिषो ङत्वे टेलोपि अन्वहलपरे “मस्त्रिनशोर्लिटि” इति सूत्रेण धातोर्ह्यादेव-  
परे नुमि प्राप्ते “मस्त्रेरन्त्यात्पूर्वो नुम् वाच्यः” इति वार्तिककलात् अनुबन्धलोपे  
“स्त्रोः” इति कलोपे “जोः कुः” इति जस्य ङत्वे “खरि च” इति मस्य ङत्वेऽनुस्वारे  
परसवर्णे च कृते ‘मङ्क्ता’ इति । मङ्क्थति । ‘मस्त्रज्यति’ इति स्थिते “स्त्रोः” इति  
सलोपे “जोः कुः” इति जस्य ङत्वे “खरि च” इति मस्य ङत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति  
पक्षे कृत्संयोगे वेऽनुस्वारे परसवर्णे च ‘मङ्क्थति’ इति । मज्जतु । अमज्जत् । मज्जेत् ।  
मज्ज्यात् । आक्षिपि लिङ्गस्तिपि आसुटि अनुबन्धलोपे “स्तोः रचुना रचुः” इति रचुत्वेन  
सस्य ङत्वे “झलं जश् झशि” इति शस्य जत्वे “मज्ज्यात्” इति रूपम् । अमाङ्क्षीत् ।  
मस्त्रधातोर्लुङि अटि तिपि सिच इकास्त्रोपे “स्त्रोः सिचि इधावितौ तिषोऽपृक्तसकारस्य  
ईटि “मस्त्रिनशोर्लिटि” इति नुमि “मस्त्रेरन्त्यात्पूर्वो नुम् वाच्यः” इति वार्तिककलात्  
सकारस्य जाते “स्त्रोः संबोगाज्जोः” इति तस्य लोपे “मज्जज्जङ्गमस्तोचः” इति  
इदौ “जोः कुः” इति जस्य ङत्वे “खरि च” इति मस्य ङत्वे “नम्रपदान्तस्य

रुजो भङ्गे ॥३३॥ रुजति । रोका । रोह्यति । अरोहीत् । भुजो कौटिल्ये ॥३४॥  
रुजिवत् । विज्ञा प्रवेशने ॥३५॥ विशति । मुश आमर्शने ॥३६॥ आमर्शनं स्पर्शः ॥  
“अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्” ॥ अग्रशीत् । अग्रशीत् । अमृक्षत् । षट् लु

झलि” इत्यनुस्वारे “अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः” इति परसवर्णे “आदेशप्रत्यययोः”  
इति सस्य षत्वे ‘अमाङ्चीत्’ इति रूपम् । अमाङ्क्ताम् । अत्र “झलो झलि” इति  
सिज्जोपः । अमाङ्कुः । अमाङ्कीः, अमाङ्कम्, अमाङ्क् । अमाङ्कम्, अमाङ्क्व,  
अमाङ्कम् । लुङि-अमाङ्क्यत् । रुजति । रुजो भङ्गे धातोर्लटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे  
शस्य अपित्वेन “सार्वधातुकमपित्” इति द्वित्वाद्गुणाभावे ‘रुजति’ इति रूपम् ।  
लिटि-‘रुज’ । लिटि तिपि णलि अनुबन्धलोपे धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे “पुग-  
न्तलवृपधस्य च” इति लघूपधत्वात् गुणे ‘रुज’ इति, एवमग्रेऽपि । रुजुः । रुजित्य ।  
अविनिबमान्नित्यमिट् । रुजिव, रुजिम । आदिनिबमान्नित्यमिट् । रोका । रुजधातो-  
र्लुङि तिपि तासि तिषो ङात्वेऽनुबन्धलोपे टेलोपे ‘रुज् त् आ’ इति स्थिते “पुगन्त”  
इति गुणे “चो कुः” इति जस्य गत्वे “खरि च” इति गस्य क्त्वे ‘रोक्ता’ इति रूपम् ।  
लुङि-रोह्यति । लोडि-रुजतु । लङि-अरुजत् । विधौ-रुजेत् । आसिषि-रुज्यात् ।  
अरोहीत् । लुङि अटि तिपि च्लौ सिचि “अस्तिस्मिचः” इति ईदि “चोः कुः”, इति  
जस्य गत्वे “खरि च” इति गस्य क्त्वे तिप इलोपे सकारस्य षत्वे । क् ष् षयोगे षे  
“वद्वज्ज०” इति वृद्धौ विहिते ‘अरोहीत्’ इति रूपम् । लुङि-अरोह्यत् । भुजो  
कौटिल्ये । रुजिवत् । भुजति । भुमोज । भोक्ता । भोक्षति । भुजतु । अभुजत् । भुजेत् ।  
भुज्यात् । अभौचीत् । अभोच्यत् । इति । विशति । विश् प्रवेशने धातोर्लटि तिपि अनु-  
बन्धलोपे शेऽनुबन्धलोपे शस्यापित्वेन “सार्वधातुकमपित्” इति द्वित्वाद्गुणाभावः ।  
लिटि-विज्ञेता, विविक्तनुः, विविक्तः । लुङि-वेष्टा । वेष्टति । विस्तु । लङि-अविस्तत् ।  
विधौ-विस्तेत् । आसिषि-विश्यात् । लुङि-अविष्टत् । लुङि-अवेष्ट्यत् । आमर्शनं  
रति । आमर्शनं स्पर्शः । लटि-मुशति । लिटि-अमर्श । मृश । मुशधातोर्लुङि तिपि अनु-  
बन्धलोपे तासि तिषो ङात्वे टेलोपे “अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्” इति विक-  
ल्पेन अमि अनुबन्धलोपे मित्वात् “मिदृशोऽन्यात्परः” इति नियमेन अस्याद्वचः  
परोक्ताते ‘ष्ट अ ङ् त् आ’ इति श्रुते “इङो यणचि” इति यणि अनुबन्धलोपे “मृश-  
अस्त०” इति षत्वे ष्टुत्वे च ‘मृश’ इति । अमोऽभामकपणे “पुगन्तलवृपधस्य च” इति  
गुणे ‘मृश’ इति रूपम् । लुङि-अमृशति, ममृशति । मृशतु । लङि-अमृशत् । विधौ-  
मृशेत् । आसिषि मृश्यात् । लुङि-अम्राचीत् । मृशधातोर्लुङि अटि तिपि अनुबन्ध-  
लोपे च्लौ “रूपमृशकृपमृश्यां ङेः सिज्जा वाच्यः” इति वार्तिकेन विकल्पेन ङेः  
सिचि अनुबन्धलोपे “अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्” इति वैकल्पिकेऽपि मृशोपे  
“ष्ट अ ङ् त् आ” इति स्थिते तिप इलोपे कलि “मृश०” इति षत्वे “मृशोः कः मृश”



विशरणगत्यवसादनेषु ॥३७॥ सीदतीत्यादि । शद्ल शतने ॥३८॥ शदेशिशतः  
१।३।६०। शिद्भाविनोऽस्मात्तन्नानौ स्तः । शीयते । शीयताम् । अशीयत । शं येत ।  
शशद । शत्ता । शत्त्यति । अशदत् । अशत्त्यत् । कृ विक्षेपे ॥३९॥ ऋत  
इद्भातोः ७।१।१००। ऋदन्तस्य धातोर्ऋस्य इत्स्यात् । किरति । चकार । चक-

इति षस्य कत्वे सस्य षत्वे “अस्तिसिच” इति ईटि “वदव्रज०” इति वृद्धौ ‘अम्राक्षीत’  
इति रूपम् । अमोऽभावपक्षे वैकल्पिके च्लेः सिचि कृते हलन्तलक्षणावृद्धौ ‘अमाक्षीत’  
इति । सिजभावे च “शल इगुपधात्” इति च्लेः स्थाने कसादेशोऽनुबन्धलोपे “व्रश्च०”  
इति षत्वे “षढोः कः सि” इति षस्य कत्वे कात्परकत्वात् सस्य षत्वे कषसंयोगे च  
‘अमृक्षत’ इति रूपम् । लुङि अम्रच्यत्, अमर्चयत् । सीःति । षद्धातोर्लटि तिपि  
शे अनुबन्धलोपे “पाम्राध्मा०” इति सदः सीदादेशे सयोगे च कृते ‘सीदति’ इति  
रूपम् । लिटि—ससाद । अत्र तिपि णलि द्वित्वेऽभ्यासादिकार्ये उपधावृद्धौ “ससाद’  
इति । अतुसि—सेदतुः । “अत एक हल्मध्ये” इति एत्वाभ्यासलोपौ विशेषौ । सेदुः ।  
सेदिथ, ससत्थ । सेदथुः, सेद । ससाद ससद । सेदिव, सेदिम । लुटि—सत्ता । लटि-  
सत्त्यति । लोटि—सीदतु । लङि—असीदत् । विधौ—सीदेत् । आशिषि—सद्यात् । लुङि-  
लुदिस्वादङि ‘असदत्’ इति । लङि—असत्स्यत् । शदेः शित इति । “अनुदात्तङित्त”  
इत्यतः आत्मनेपदमित्यनुवर्तते । शू इत् यस्य सः शित् । शप् विवक्षितः । शिति  
विवक्षिते सतीत्यर्थः । तिङुत्पत्तेः पूर्वं सार्वधातुकाश्रयस्य शपोऽसम्भवात् । तदाह—  
शिद्भाविन इति । शीयते । शद्लशतने इति धातोर्लटि “शदेः शितः” इति आत्मनेपदत्वे  
ते समागते “तुदादिभ्यः शः” इति शेऽनुबन्धलोपे “पाम्राध्मास्थान्ना” इति शदः  
स्थाने शीयादेशे “टित आत्मनेपदानाम्” इति ऋत्वे ‘शीयते’ इति । लिटि—शशद,  
शेदतुः, शेदुः । लुटि शत्ता । लृटि—शत्त्यति । लोटि—शीयताम्, शीयेताम्,  
शीयन्ताम् । लङि अशीयत । विधौ—शीयेत । आशिषि—शदयात् । लुङि तु लुदि-  
त्वाद् “पुषादिद्यताद्यलुदतः परस्मैपदेषु” इति इत्यङि—अशदत्’ इति । ऋत इद्भातो-  
रिति । ऋत इति धातोर्विशेषणम् । तदन्तविधिः । अङ्गस्येत्यधिकृतम् । तदाह—ऋदन्त-  
स्येति । किरति । कृविक्षेपे धातोर्लटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे “ऋत इद्भातोः” इति ऋत  
इद्भादेशे “उरण् रपरः” इति रपरे च कृते ‘किरति’ इति रूपम् । चकार । कृ धातोर्लटि  
तिपि णलि अनुबन्धलोपे धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे “कृ कृ अ” इति स्थिते “उरत्” इति  
क्कारस्य अदादेशे रपरे च ‘कृ कृ अ’ इति जाते “हलादिः शेषः” इति रलोपे  
“कुहोरशुः” इति अभ्यासकवर्गस्य चकारे च कृते ‘च कृ अ’ इति जाते परत्वात् “अङ्ग-  
त्पृताम्” इति गुणे रपरे “अत उपधायाः” इति वृद्धौ ‘चकार’ इति रूपम् । अतुसि—  
द्वित्वेऽभ्यासत्वे ‘कृ कृ अतुस्’ इति स्थिते “उरत्” इति क्कारस्य अदादेशे रपरे  
“हलादिः शेषः” इति रलोपे “अङ्गत्पृताम्” इति गुणे रपरे “अङ्गत्पृताम्” इति । एवम्

रतुः । चकरुः । करिता, करीता । कीर्यात् ॥ किरतौ लवने ६।१।१४०। उपात्कि-  
रतेः सुट् स्यात् छेदने । उपस्किरति ॥ अडभ्यासव्यवायेऽपि ६।१।१३५। ( सुट्  
कात् पूर्व इति वक्तव्यम् ) उपास्किरत् । उपचस्कार । हिंसायां प्रतेश्च ६।१।  
१४१ । उपात्प्रतेश्च किरतेः सुट् स्यात् हिंसायाम् । उपस्किरति । प्रतिस्किरति ।  
गृ निगरणे ॥४०॥ अचि विभाषा ८।२।२ । गिरते रेफस्य लत्वं वा स्यादजादौ  
प्रत्यये । गिरति, गिलति । जगार, जगाल । जगरिथ, जगलित्थ । गरिता, गरीता ।

चकरुः । थलि—चकरिथ । चकरथुः । चकर । चकार—चकर । चकरिव, चकरिम ।  
करीता, करिता । कृधातोर्लुटि तिपि तासि आर्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वल्लदेः”  
इति इटि “सार्वधातुकार्ध०” इति गुणे रपरे तिपो ङादेशे टिलोपे “वृत्तो वा”  
इति दीर्घे ‘करीता’ इति रूपम् । दीर्घाभावे ‘करिता’ इति । लुटि—करीष्यति,  
करिष्यति । लोटि—किरतु । लङि—अकिरत् । विधौ—किरेत् । कीर्यात् । आशीर्लिङि  
तिपि यासुटि उदावितौ “कृत इद्भातोः” इति इवादेशे रपरे च ‘किर् यास् ति’ इति  
जाते तिप इकारलोपे “स्कोः संयोगाद्योः” इति सलोपे “हलि च” इति दीर्घत्वे कृते  
‘कीर्यात्’ इति रूपम् । अकारीत् । लुङि अटि तिपि तिप इलोपे प्लौ प्लेः सिचि,  
अनुबन्धलोपे “आर्धधातुकं शेषः” इति सिच आर्धधातुकसंज्ञायाम् “आर्धधातुकस्येड्”  
इति सिचः सस्य इटि अनुबन्धलोपे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति तिपस्तकारस्य ईटि  
“इट ईटि” इति सलोपे “अकः सवर्णे दीर्घः” इति इकारस्य ईकारेण सह दीर्घे “सिचि  
वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति वृद्धौ ‘अकारीत्’ इति रूपम् । लुङि—अकरीष्यत्, अक-  
रिष्यत् । किरतौ लवने । उपादिति । “उपात् प्रतियत्न” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः ।  
मुङित । “सुट्कात्पूर्वः” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । उपस्किरति । ‘उप किरति’ इति  
स्थिते “किरतौ लवने” इति सुटि उदावितौ टित्वादाद्यावयवे ‘उपस्किरति’ इति ।  
“अडभ्यासव्यवायेऽपि” इति वार्तिकम् । “सुट् कात्पूर्वः” इत्यनुवृत्तिलभ्यम् । उपा-  
स्किरत् । इत्यत्र ‘उप अ किरत्’ इति दशायां “अडभ्यासव्यवायेऽपि सुट् कात्पूर्व”  
इति वक्तव्यम्” इति वार्तिकेनाड्यवधाने सत्यपि ककारात्पूर्वं सुडागमे विहिते  
‘उपास्किरत्’ इति रूपम् । उपचस्कार । ‘उप चकार’ इति व्यवस्थायाम् “अभ्यास-  
व्यवायेऽपि सुट् कात्पूर्व इति वक्तव्यम्” इति अभ्याससंज्ञकव्यवधानेऽपि कात्पूर्वमेव  
सुटि जाते ‘उपचस्कार’ इति । हिंसायां प्रतेश्चेति । चकारादुपादिति समुच्चीयते,  
तदाह—उपादिति । उपस्किरति । ‘उप किरति’ इति स्थितौ “हिंसायां प्रतेश्च” इति  
सुटि कात्पूर्वं सजाते सति उपस्किरति, प्रतिस्किरति इति । अचि विभाषेति । “ओ  
बङि” इत्यत्र ओः प्रः इत्यनुवर्तते । “कृपो रो लः” इत्यतः रो लः इति, तदाह—गिर-  
तेरिति । गिरति, गिलति । निगरणार्धकगृधातोर्लुटि तिपि शेऽनुबन्धलोपे “कृत इद्भा-  
तोः” इति ककारस्य इवादेशे रपरे “अचि विभाषा” इति रेफस्य लत्वे ‘गिलति’

गलिता, मलीता । प्रच्छु झीप्सायाम् ॥४१॥ “प्रहिज्या” इति सम्प्रसारणम् । पृच्छ-  
ति । पप्रच्छ । पप्रच्छतुः । पप्रच्छुः । प्रष्टा । प्रष्टयति । अप्राशीत् । मुञ्च् प्राप्स्यगे  
॥४२॥ प्रियतेर्लुङ्गलिङ्गोच्च १।३।७१। लुङ्गलिङ्गोः शितव्यं प्रकृतिभूतान्मुक्ताब्  
नान्यत्र । रिद् । इयद् । प्रियते । ममार । मर्ता । मरिष्यति । मृषीष्ट । अमृत ।

इति । लकाराभावे ‘गिरति’ इति । जगार । गृधातोर्लिटि तिपि णलि अनुबन्धलोपे  
धातोर्हित्वेऽभ्यासत्वे “उरत्” इति अभ्यासञ्कारस्य अकारे रपरे ‘गर् गृ अ’ इति  
स्थिते “हलादिः शेषः” इति रेफस्य लोपे “ञ्चक्ष्वत्ताम्” इति ऋवर्णस्य गुणे रपरे  
‘ग गर् अ’ इति जाते “अत उपधायाः” इति वृद्धौ “कुहोरचुः” इति अभ्यासकव-  
र्गस्य गकारस्य जकारे ‘जगार’ इति । तत्र “अधि विभाषा” इति ल्यवे ‘जगाल’  
इति । ल्वाभावपक्षे ‘जगार’ इति । जगलनुः, जगरतुः । जगलुः, जगरु । जगलिय,  
जगरिय । जगलथुः, जगरथुः । जगाल, जगार । जगल, जगर । जगलिव, जगरिव ।  
जगलिय, जगरिय । गरिता, गरीता । अत्र “वृत्तो वा” इति वा इटो दीर्घः । अत्र  
“अधि विभाषा” इति ल्यक्म् । लृटि-गलिष्यति, गरिष्यति । गिलतु, गिरतु ।  
अगिलत्, अगिरत् । विधौ-गिलेत्, गिरेत् । गीर्षात् । लुङि-अगारीत्, अगालीत् ।  
लृङि-अगलिष्यत्, अगरिष्यत्, अगलीष्यत्, अगरीष्यत् । पृच्छति । प्रच्छातो-  
र्लिटि तिपि श्नेऽनुबन्धलोपे शस्वापिस्त्वेव “सावधातुकमपित्” इति हित्वात् “प्रहिज्या०”  
इति संप्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वकूपे पृच्छति । पप्रच्छ । प्रच्छातोर्लिटि  
तिपि णलि अनुबन्धलोपे धातोर्हित्वेऽभ्यासत्वे “लिङ्यभ्यासस्योभयेषाम्” इत्यभ्या-  
सस्य सम्प्रसारणे पूर्वकूपे उरदत्वे रपरे च हलादिशेषे ‘पप्रच्छ’ इति रूपम् । पप्र-  
च्छतुः, पप्रच्छुः । पप्रच्छिष्य, पप्रष्ट । पप्रच्छथुः, पप्रच्छ । पप्रच्छ, पप्रच्छिव, पप्र-  
च्छिष्य । प्रष्टा । लृटि तिपि तासि तिपो ङात्वे हित्वात् टेलोपि “व्रश्चञ्ज०” इति ङस्य  
कत्वे टुत्वे ‘प्रष्टा’ इति । लृटि तिपि स्ये “व्रश्च०” इति कत्वे “कः सि” इति  
कस्य कत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति कत्वे क्स्वयोगे कत्वे ‘प्रक्ष्यति’ इति रूपम् ।  
अप्राशीत् । प्रच्छातोर्लुङि अटि तिपि च्छौ सिचि “व्रश्च०” इति ङस्य कत्वे “कः  
सि” इति कस्य कत्वे सस्य कत्वे तिप इलोपे “अस्तिस्तिचोऽनृक्ते” इति ईटि । “वद्-  
व्रश्च०” इति वृद्धौ ‘अप्राशीत्’ इति । अप्राष्टास्, अप्राष्टुः, अप्राष्टीः, अप्राष्टस्,  
अप्राष्ट । अप्राष्टम्, अप्राष्टव, अप्राष्टम् । प्रियतेर्लुङ्गलिङ्गोच्चेति । “अनुदात्तङितः”  
इत्यतः आत्मनेपदमित्यनुवर्तते । षकारेण “क्षदेः लितः” इत्यतः लित इत्यनुकुर्याते ।  
प्रकृतिभूतादित्यभ्याहार्यम् । तदाह—लुङ्गलिङ्गोरित्यादिना । प्रियते । मृच्छाप्स्यगे-  
धातुतो अटि, लटस्थाने “प्रियतेर्लुङ्गलिङ्गोच्च” इति ते “मुदादिभ्यः ष” इति श्नेऽनु-  
बन्धलोपे “रिक्त्वमिङ्गु” इति रिक्तादेशे ङकत्वे “अचिरनु०” इति इषादि “सि-  
व्यमनेपदानां ङे” इति ङेत्वे “अचिरं” इति रूपम् । यमार । सुधातुलुङ्गलिङ्गोच्च तिपि णलि

पृष्ठ् व्यायामे ॥४३॥ प्रायेणाय व्याकृपूर्वः । व्याप्रियते । व्यापमे । व्यापप्रते ।  
व्यापरिष्यते । व्यापृत । व्यापृषाताम् । जुषी प्रीतिसेवनयोः ॥४४॥ जुषते । जुषुषे ।  
ओविजी भयचलनयोः ॥४५॥ प्रायेणायमुत्पूर्वः । उद्विजते ॥ विज इट् १।२।२।  
विजेः पर इडादिप्रत्ययो द्वित्व स्यात् । उद्विजिता । इति तुदादयः ।

### अथ क्वादयः ।

रुधिर आवरणे ॥१॥ क्वादिव्यः क्तम् ३।१।७८। शपोऽपवादः । रुणद्धि ।

धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे “उरत्” इति अदादेशे रपरे “हलादिः शेषः” इति रलोपे “सार्व-  
धातुकार्धधातुकयोः” इति गुणेरपरे “अत उपधायाः” इति वृद्धौ ‘ममार’ इति । मन्त्रतुः ।  
मन्त्रः । ममर्थः । मन्त्रधुः । मन्त्र । ममार । ममर । ममृव । ममृम । मरिष्यति । मृद्धातोर्लुटि  
तिपि स्ये “सार्वधातुः” इति गुणे रपरे “ऋद्धनोः स्वे” इति इटि षत्वे च ‘मरिष्यति’ इति ।  
मृषीष्ट । आश्लिषि लिङ्गस्ते सीयुटि अनुबन्धलोपे “उश्च” इति क्त्वाद्गुणामावे षत्वे वृत्ते  
च रूपम् । अमृत । मृद्धातोर्लुङि अटि ते च्लौ सिचि “उश्च” इति क्त्वाद्गुणामावे  
“इस्वादङ्गात्” इति सिचो लोपे ‘अमृत’ इति रूपम् । व्याप्रियते । विभाङ्गपसर्गात्  
पृष्ठ् व्यायामे धातोर्लुटि तादेशे शेऽनुबन्धलोपे रिङि इयङि देरेत्वे च ‘व्याप्रियते’  
इति । व्यापमे । लिङि तादेशे तस्य एसादेशे द्वित्वेऽभ्यासत्वे “उरत्” इति अदादेशे  
रपरे हलादिष्वे यणि च ‘व्यापमे’ इति रूपम् । व्यापरिष्यते । लृटि तादेशे स्ये आर्ध-  
धातुक्त्वे “ऋद्धनोः स्वे” इति ऋद्धन्तत्वात् इटि “सार्वधातुकार्ध” इति गुणे रपरे  
षत्वे देरेत्वे च ‘व्यापरिष्यते’ इति रूपम् । व्यापृत । लुङि अटि तादेशे च्लौ सिचि इच्चा-  
वितौ “उश्च” इति सिचः सकारस्य क्त्वाद् गुणामावे “इस्वादङ्गात्” इति सिचः  
सलोपे ‘व्यापृत’ इति रूपम् । व्यापृषाताम् । आतामि प्रत्यये, सत्परत्वाभावात् सिचो  
लोपामावे सिचः क्त्वाद् गुणामावे ‘व्यापृषाताम्’ इति रूपम् । व्यापृषत । व्यापृषाः ।  
व्यापृषायाम् । व्यापृङ्ङवम् । व्यापृषि, व्यापृष्वहि, व्यापृष्महि । जुषते । जुषीप्रीति-  
सेवनयोर्धातोर्लुटि तादेशे शेऽनुबन्धलोपे देरेत्वे सिक्त्वात् सार्वधातुक्त्वेन “सार्वधातु-  
कमपित्” इति क्त्वाद्गुणामावे ‘जुषते’ इति रूपम् । जुषधातोर्लुटि तादेशे द्वित्वेऽ-  
भ्यासकार्ये तस्य एसादेशे च ‘जुषते’ इति रूपम् । उद्विजते । उद्पूर्वकविजधातोर्लुटि  
तादेशे शेऽनुबन्धलोपे गुणामावे, देरेत्वे च ‘उद्विजते’ इति रूपम् । लिङि-उद्विजेज ।  
विज इट् इति । “ग्राङ्गुटादिव्यः” इत्यतः क्तिदित्यनुवर्तते । तदाह—विजेः पर इत्यादि ।  
उद्विजिता । लुटि तादेशे तासि इटि सिपो ङात्वे तासः क्त्वाट्देलेपि “विज इट्” इति  
इदो किङ्करावाद् गुणामावे ‘उद्विजिता’ इति रूपम् । इति तुदादयः ।

क्वादिव्यः क्तमिति । कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे क्वादिव्यः क्तम् प्रत्ययः स्यात् स्वाधे  
इत्यर्थः । तदाह—अपोऽपवाद इति । क्पद्धि । रुधिर आवरणे इति धातुतो अटि तिपि

“रुनसोरल्लोपः” । रुन्धः । रुन्धन्ति । रुणत्सि । रुन्धः । रुन्ध । रुणध्मि ।  
 रुन्ध्वः । रुन्ध्वः ॥ रुन्धे । रुन्धाते । रुन्धते । रुन्त्से । रुन्धाथे । रुन्ध्वे । रुन्धे ।  
 रुन्ध्वहे । रुन्ध्वहे । रुरोध । रुरुधे । रोद्धा । रोत्स्यति । रोत्स्यते । रुणद्धु । रुन्धात् ।  
 रुन्धाम् । रुन्धन्तु । रुन्धि । रुणधानि । रुणधाव । रुणधाम । रुन्धाम् । रुन्धाताम् ।  
 रुन्धताम् । रुणत्स्व । रुणधै । रुणधावहै । रुणधामहै । अरुणत् अरुणद् । अरुन्धाम् ।  
 अरुन्धन् । अरुणत्, अरुणः । अरुन्ध । अरुन्धाताम् । अरुन्धत । अरुन्धाः । रुन्ध्या-  
 त् । रुन्धीत । रुन्ध्यात् । रुत्सीष्ट । अरुधत्, अरौत्सीत् । अरुद्ध । अरुत्साताम् ।  
 अरुत्सत । अरोत्स्यत् । अरोत्स्यत ॥ भिदिर् विदारणो ॥२॥ छिदिर् द्वैधोकरणो

“रुधादिभ्यः भ्रम्” इति भ्रमि अनुबन्धलोपे “मिदचोऽन्त्यात्परः” इति सूत्रबलात्  
 अन्त्याचः परे र्नामि प्रत्यये कृते ‘रु न ध् ति’ इति जाते “अटकुप्वाङ्” इति णत्वे  
 “क्षपस्तथोर्धोऽधः” इति तिपस्तस्य धत्वे “क्षलां जश् क्षशि” इति धस्य दत्वे ‘रुणद्धि’  
 इति रूपम् । रुन्धः । रुन्धातोर्लटि तसि र्नामि अनुबन्धलोपे मित्वादन्त्यादचः परे  
 भूते ‘रु न ध् तस्’ इत्यत्र “भ्रसोरल्लोपः” इति भ्रमो नकारान्तर्गताकारस्य लोपे  
 “क्षपस्तथोर्धोऽधः” इति तस्य धत्वे “क्षलां जश् क्षशि” इति धस्य दकारे ‘रुन्धः’ इति  
 रूपम् । रुणत्सि । लटि सिपि भ्रमि अनुबन्धलोपे मित्वादन्त्यादचः परे “स्वरि च” इति  
 धस्य तत्वे “अटकुप्वाङ्” इति णत्वे ‘रुणत्सि’ इति । रुन्धे । रुन्धातोर्लट्स्ते, भ्रमि,  
 अनुबन्धलोपे मित्वादन्त्यादचः परे “भ्रसोरल्लोपः” इति भ्रमोऽकारस्य लोपे, तस्य  
 धत्वे रुधो धस्य जश्त्वे ढेरत्वे च रूपम् । एवमग्रेऽपि । लिटि—रुधे । रुन्धातोर्लिटि  
 तिपि णलि धातोर्द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे ‘रुधे’  
 इति रूपम् । रुधन्तुः, रुधुः । रुधिय, रुधयुः, रुध । रुोध, रुधिव, रुधिम ।  
 रोद्धा । रुन्धातोर्लटि तिपि तासि अनुबन्धलोपे तिपो ङात्वे, ङित्वात्तासष्टेर्लोपे “क्षप-  
 स्तथोर्धोऽधः” इति तस्य धत्वे “क्षलां जश् क्षशि” इति धस्य दत्वे “पुगन्त” इति गुणे  
 ‘रोद्धा’ इति रूपम् । अरुणत्, अरुणद् । रुन्धातोर्लटि, तिपि, तिप इकारलोपे भ्रमि  
 अनुबन्धलोपे मित्वादन्त्यादचः परे ‘अरुन्धत्’ इति जाते “अटकुप्वाङ्” इति णत्वे  
 “हल्ङ्यादिना” तलोपे “क्षलां जश्ोऽन्ते” इति धस्य दत्वे “वाऽवसाने” इति दस्य  
 तत्वे अटि ‘अरुणत्, अरुणद्’ इति । अरुणः । लङि सिपि र्नामि सिपः पकारलोपे “इत-  
 श्च” इति सिप इकारलोपे ‘अरुन्धत्’ इति जाते हल्ङ्यादिना सलोपे “क्षलां जश्ो-  
 ऽन्ते” इति धकारस्य दकारे “दश्च” इति दस्य रुवे रस्य विसर्ग णत्वे अङागमे च  
 ‘अरुणः’ इति रूपम् । अरुधत् । रुन्धातोर्लङि अटि तिपि च्लौ “इरितो वा” इति  
 ष्ठेरङि अनुबन्धलोपे ‘अरुधत्’ इति । अङमावे तु ष्ठेः सिपि “अस्तिसिचोऽप्युक्ते” इति  
 ईटि “स्वरि च” इति धस्य तत्वे “वद्बज्ज” इति वृद्धौ ‘अरौत्सीत्’ इति । अरुद्ध ।  
 रुन्धातोर्लङि अटि आत्मनेपदे तादेये ‘अरुधत्’ इति जाते च्लौ सिपि “क्षलां जश्ोऽन्ते”

॥३॥ युजिर् योगे ॥४॥ रिचिर् विरेचने ॥५॥ रिणक्ति । रिङ्क्ते । रिरेच । रेका । रेच्यति । अरिणक् । अरिचत् । अरैक्षीत् । अरिक्त । विचिर् पृथग्भावे ॥६॥ विनक्ति । विङ्क्ते ॥ लुदिर् सम्पेषणे ॥७॥ लुणत्ति । लुन्ते । क्षोत्ता । अलु-  
दत्, अक्षौत्सीत् । अक्षुत् ॥ उच्छुदिर् दीप्तिदेवनयोः ॥ ८ ॥ छृणत्ति । छृन्ते ।

इति सिचः सकारलोपे “क्षपस्तथोर्ध्वोऽधः” इति तस्य धत्वे “क्षलां जश झशि” इति धस्य धत्वे ‘अरुद्ध’ इति रूपम् । भिनत्ति । मिदिर्धातोर्लटि तिपि रनमि अनुबन्धलोपे “खरि च” इति दस्य तत्वे ‘भिनत्ति’ इति रूपम् । भिन्तः, भिन्दन्ति, एवं छिदिर्धातोरपि बोध्यम् । युनक्ति । युजिर् योगे धातोर्लटि तिपि रनमि अनुबन्धलोपे मित्वादन्त्यादचः परे “चोः कुः” इति चस्य गत्वे “खरि च” इति गस्य कत्वे ‘युनक्ति’ इति रूपम् । युङ्क्, युजन्ति । युनचि, युङ्क्थ, युङ्क्थ । युनज्मि, युज्म, युज्मः । युयोज, युयुजे । योक्ता । योच्यति, योच्यते । युनक् । युङ्क्ताम् । अयुनक्, अयुनग । अयुङ्क्ताम्, अयुजन् । अयुनक्, अयुङ्क्त्, अयुङ्क्त् । अयुनजम् अयुज्म, अयुज्म । आत्मनेपदे-अयुङ्क्त्, अयुजाताम् । लुङि-अयुजत्, अयौचीत् । आत्मनेपदे लुङि-अयुक्त इत्यादि । लुङि-अयोच्यत् । अयोच्यत । रिणक् । रिचिर् विरेचने धातोर्लटि तिपि रनमि “चोः कुः” इति चस्य कत्वे णत्वे च ‘रिणक्ति’ इति । रिङ्क्ते । आत्मनेपदे लटि तादृशे रनमि शलोपे मित्वाद् अन्त्याचः परे, टरेत्वे “चोः कुः” इति कृत्वे “नश्च” इति अनुस्वारे परसवर्णे च ‘रिङ्क्ते’ इति । रेका । लुटि तिपि डादेशे तासि “पुगन्त” इति गुणे तासष्टेलोपे “चोः कुः” इति चस्य ककारे ‘रेका’ इति उभयत्र । लुटि-रेच्यति, रेच्यते । लोटि-रिणक्तु । आ०-रिङ्क्ताम् । अरिणक् । लङि अटि तिपि रनमि अनुबन्धलोपे अन्त्याचः परे जाते “चोः कुः” इति चस्य कत्वे तिपि इलोपे ह-  
लङ्यादिना तलोपे ‘अरिणक्’ इति । लुङि-‘अरिचत्’ । अत्र “इरितो वा” इति विकल्पेन च्लेरडादेशः । अलोऽभावपदे-च्लेः सिचि अनुबन्धलोपे “अस्ति सचोऽपृक्ते” इति ईदि “चोः कुः” इति चस्य कत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति सिचः सस्य षत्वे “वदन्नञ” इति वृद्धौ कपसंयोगे च ‘अरैचीत्’ इति रूपम् । आत्मनेपदे-लुङः तादृशे च्लेः सिचि अनुबन्धलोपे “चोः कुः” इति चस्य कत्वे “झलो झलि” इति सलोपे ‘अरिक्त’ इति रूपम् । विनक्ति । विचिर्पृथग्भावे धातोर्लटि तिपि रनमि अनुबन्धलोपे मित्वादन्त्यादचः परे “चोः कुः” इति चस्य कत्वे ‘विनक्ति’ इति रूपम् । लुणक्ति । लुदिर् सम्पेषणे धातोर्लटि तिपि रनमि अनुबन्धलोपे मित्वादन्त्यादचः परे “खरि च” इति दस्य तत्वे “अट्कुप्वाङ्” इति णत्वे “लुणत्ति” इति । छृणत्ति । उच्छुदिर् दीप्तिदेवनयोरिति धातोर्लटि तिपि रनमि “खरि च” इति दस्य तत्वे “अट्कुप्वाङ्” इति णत्वे “छृणत्ति” इति । चच्छर्द । छृद् धातोर्लटि तिपि णङि अनुबन्धलोपे, धातोर्लटि-सम्भासत्वे “उरत्” इति अम्भासकारस्य अदादेशे २ परे इडादिदेशे “पुगन्त” इति गुणे २ परे “अम्भासते चर्च”







उन्दी क्लेदने ॥१३॥ उनत्ति । उन्तः । उन्दन्ति । उन्दाश्चकार । औनत् । औन्ताम् ।

मित्वादन्यादचः परे “शनान्नलोपः” इति नुमो नस्य लोपे कृते “लुङ्लङ्लुङ्चवहु-  
दात्तः” इत्यटि “इतश्च” इति सिप इकारलोपे “हल्ङ्घ्याभ्यः” इति सलोपे “सिपि  
धातोर्त्वा” इति सस्य रुत्वे रस्य विसर्गे च कृते ‘अहिनः’ इति सिद्धम् । पञ्चे-  
“झलौ जझोऽन्ते” इति सस्य दत्वे दस्य चत्वेन तकारे ‘अहिनत्’ इति । चत्वा-  
भावपञ्चे—‘अहिनद्’ इति । अहिस्तम्, अहिस्त । अहिनसम्, अहिस्व, अहिस्म ।  
विधौ—हिस्यात्, हिस्याताम्, हिंस्युः । हिस्याः, हिस्यातम्, हिस्यात । हिस्याम्,  
हिस्याव, हिस्याम । आशिपि—हिस्यात्, हिस्यास्ताम्, हिस्यासुः । हिस्याः, हिस्या-  
स्तम्, हिस्यास्त । हिस्यासम्, हिस्यास्व, हिस्यास्म । अहिंसीत्, अहिसिष्टाम्,  
अहिसिषुः । अहिंसीः, अहिसिष्टम्, अहिसिष्ट । अहिसिषम्, अहिसिष्व, अहिसिषम् ।  
लुङि—अहिसिष्यत्, अहिसिष्यताम्, अहिसिष्यन् । अहिसिष्यः, अहिसिष्यतम्,  
अहिसिष्यत । अहिसिष्यम्, अहिसिष्याव, अहिसिष्याम । उनत्ति । उन्दी क्लेदने  
इत्यस्माद्धातोर्लट्स्तिपि शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा रनमि कृते अकारमकारयोर्लोपे  
मित्वादन्यादचः परे “शनान्नलोपः” इति नलोपे ‘खरि च’ इति दस्य चत्वेन तकारे  
च कृते ‘उनत्ति’ इति रूपम् । उन्तः । उन्द् इत्यस्माद्धातोर्लटि तसि रनमि अनुबन्ध-  
लोपे “शनान्नलोपः” इति नलोपे “रनसोरल्लोपः” इत्यनेनाकारलोपे ‘खरि च’  
इति चत्वेन दस्य तकारे “झरो झरि सवर्णे” इत्यनेन तलोपे च कृते सस्य रुत्वे रेफस्य  
विसर्गे च कृते ‘वन्तः’ इति सिद्धयति । उन्दन्ति । औ श्वेरेन्तादेशे ‘उन्दन्ति’ इति ।  
उन्त्ति, उन्त्यः, उन्त्य । उनग्नि, उन्हूः, उन्मः । इति । उन्दाश्चकार—उन्द् इत्यस्मा-  
द्धातोर्लटि “इजादेशश्च गुरुमतोऽनृच्छः” इत्यामि “भामः” इत्यनेन लिटो लुकि “कृञ्चा-  
नुप्रयुज्यते लिटि” इत्यनेन लिट्परके कृञोऽनुप्रयोगे कृते ‘उन्दाम कृ लिट्’ इति जाते  
लिट्स्तिपि तिपो णलि धातोर्द्वित्वे “उरत्” इत्यत्वे रपरे च कृते “हलादिः शेषः”  
इत्यनेन रलोपे “कुहोरशुः” इति चुत्वे “अचोऽब्धिगति” इति घृद्धौ रपरे च मस्यानु-  
स्वारे परसवर्णे च कृते ‘उन्दाश्चकार’ इति रूपम् । उन्दाश्चक्रतुः, उन्दाश्चक्रुः । उन्दा-  
श्चकर्थ, उन्दाश्चक्रथुः, उन्दाश्चक्र । उन्दाश्चकार, उन्दाश्चकर, उन्दाश्चकृव, उन्दाश्चकृम  
इति । लुटि—उन्दिता, उन्दितारौ, उन्दितारः, उन्दितासि, उन्दितास्थः, उन्दितास्थ,  
उन्दितास्मि, उन्दितास्वः, उन्दितास्मः । लुटि—उन्दिष्यति, उन्दिष्यतः, उन्दिष्यन्ति ।  
उन्दिष्यसि, उन्दिष्यथः, उन्दिष्यथ । उन्दिष्यामि, उन्दिष्यावः उन्दिष्यामः ।  
लोटि—उनत्तु, उन्तात्, उन्ताम्, उन्दन्तु । उन्दि, उन्तात्, उन्तम्, उन्त ।  
उनदानि, उनदाव, उनदाम । औनत् । उन्द्धातोर्लङि तिपि शपि प्राप्ते तम्बा-  
धित्वा रनमि कृते अनुबन्धलोपे मित्वादन्यादचः परे ‘उननृद् ति’ इति जाते “रना-  
न्नलोपः” इत्यनेन नलोपे च कृते अटि प्राप्ते तम्बाधित्वा अजादित्वात् “आरजा-

औन्दन् । औनः, औनत् । औनदम् । अञ्ज व्यक्तिसंज्ञकान्तिगतिषु ॥१४॥  
अनक्ति । अङ्कः । अजन्ति । आनञ्ज । आनञ्जिथ, आनङ्क्य । अञ्जिता, अङ्कता ।

दीनाम्” इत्यनेनाटि “आटश्च” इत्यनेन वृद्धौ “स्तरि च” इति दस्य चत्वे “इतश्च” इति तिपि इलोपे “झरो झरि सवर्णे” इत्यनेन पूर्वतकारस्य लोपे च कृते ‘औनत्’ इति रूपम् । औन्ताम् । लङ्स्तसस्तामि रनमि “रनान्नलोपः” इत्यनेन नस्य लोपे “रनसोरल्लोपः” इति अल्लोपे दस्य चत्वेन तकारे “झरो झरि सवर्णे” इत्यनेन पूर्वतकारस्य लोपे वृद्धौ च कृते आढागमे “आटश्च” इति वृद्धौ ‘औन्ताम्’ इति सिद्ध्यति । औन्दन् । लङ् लोः स्थाने झौ, झेरन्तादेशे कृते, रनमि अनुबन्धलोपे मित्वादन्यादचः परे “रनान्नलोपः” इति नलोपे “रनसोरल्लोपः” इति अल्लोपे “इतश्च” इति अन्तेः इकारस्य लोपे “संयोगान्तस्य लोपः” इत्यनेन लोपे “आढजादीनाम्” इत्याटि “आटश्च” इति वृद्धौ कृतायाम् ‘औन्दन्’ इति । औनः । लङ् लोः स्थाने सिपि रनमि अनुबन्धलोपे मित्वादन्यादचः परे “इतश्च” इति सिपि इकारलोपे ‘उनन् इस्’ इति जाते “रनान्नलोपः” इत्यनेन नलोपे “हल्ङ्याभ्यो दीर्घास्तुतिस्यपृक्तं हल्” इति सलोपे “आढजादीनाम्” इत्याटि “आटश्च” इति वृद्धौ ‘औनद्’ इति जाते “दश्च” इति दकारस्य रुवे रस्य विसर्गे च कृते ‘औनः’ इति । पञ्च-औनत्, औनद्, इति । औनदम् । लङ् लोः स्थाने सिपि रनमि “रनाञ्चलोपः” इत्यनेन नलोपे मिपोऽमि कृते ‘अन द् अम्’ इति जाते “आढजादीनाम्” इत्याढागमे “आटश्च” इत्यनेन वृद्धौ ‘औनदम्’ इति । औन्द्, औन्दम् । विधिलिङि—उन्धात्, उन्धाताम्, उन्द्युः । उन्धाः, उन्धातम्, उन्धात । उन्धाम्, उन्धाव, उन्धाम । आशीलिङि—उधात्, उधास्ताम्, उधासुः । उधाः, उधास्तम्, उधास्त । उधासम्, उधास्व, उधास्म । लुङि—औन्दीत्, औन्दिष्टाम्, औन्दिषुः । औन्दीः, औन्दिष्टम्, औन्दिष्ट । औन्दिषम्, औन्दिष्व, औन्दिष्म । लृङि—औन्दिष्यत्, औन्दिष्यताम्, औन्दिष्यन् । औन्दिष्यः, औन्दिष्यतम्, औन्दिष्यत । औन्दिष्यम्, औन्दिष्याव, औन्दिष्याम । अनक्ति । उकारेऽस्सन्तक ‘अञ्’ इत्यस्माद्धातोर्लटि तिपि रनमि कृते अनुबन्धलोपे मित्वादन्यादचः परे जाते “रनान्नलोपः” इति नलोपे “चोः कुः” इति कुत्वेन जस्य गकारे गस्य चत्वेन ककारे ‘अनक्ति’ इति सिद्ध्यति । अङ्कः । अञ्धातोर्लटो लस्तसि रनमि कृते अनुबन्धलोपे मित्वादन्यादचः परे “रनाञ्चलोपः” इति नलोपे “रनसोरल्लोपः” इति अल्लोपे ‘अ न् ज् तस्’ इति जाते, जस्य गत्वे गस्य चत्वेन कत्वे नस्यानुस्वारे परसवर्णे च जाते सस्य रुवे रस्य विसर्गत्वे कृते ‘अङ्कः’ इति । अजन्ति । लटो लो झौ रनमि झेरन्तादेशे कृते नलोपाल्लोपयोः, रनमो नस्य अनुस्वारे परसवर्णे अकारे च कृते ‘अजन्ति’ इति । अनञ्जि, अङ्क्यः, अङ्क्य । अनञ्जि, अञ्जः, अञ्जः । इति । आनञ्ज । अञ्जधातोर्लटि तिपि तिपो णलि च कृते

अंश्चि । अनजनि । अनङ् ॥ अञ्जेः सिचि ७२॥७१ अञ्जेः सिचो नित्यमिद्

धातोर्द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् “हलादिः शेषः” इत्यनेन लोपे ‘अ वञ्ज् अ’ जाते “अत आदेः” इत्यनेन दीर्घे “अकः सवर्णे दीर्घः” इति सवर्णदीर्घे च कृते “तस्मान्मुद् द्विहलः” इत्यनेन मुटि उटावितौ टित्वाङ्गजेराद्यावयवे च जाते, कृते च संयोगे ‘आनञ्ज’ इति सिद्ध्यति । आनञ्जतुः, आनञ्जुः । आनञ्जिव । अञ्जधातोर्लोटि सिचि सिचः स्थाने षलि च कृते धातोर्द्वित्वे, अभ्याससंज्ञायाम् “हलादिः शेषः” इत्यनेनाभ्यासहललोपे “अत आदेः” इत्यनेन अभ्यासाकारस्य दीर्घे सवर्णदीर्घे च कृते “तस्मान्मुद् द्विहलः” इत्यनेन मुडागमे अनुबन्धलोपे टित्वाङ्गजावयवे ‘आनञ्ज् थ’ इति जाते “स्वरतिसूतिसूयसिधूअदितो वा” इत्यनेन विकल्पनेडागमे, नस्वानुस्वारे परसवर्णे च कृते ‘आनञ्जिथ’ इति । इडभावे तु “चोः कुः” इति जस्व कुत्वेन गकारे “स्वरि च” इत्यनेन गस्य कत्वे नस्वानुस्वारे परसवर्णे च कृते ‘आनङ्कथ’ इति । आनञ्जथुः, आनञ्ज । आनञ्ज, आनञ्जिव, आनञ्जिम । अञ्जिता । अञ्जधातोर्लुटिस्तपि अनुबन्धलोपे “स्यतासी कृलुटोः” इत्यनेन तास् प्रत्यये तिपो दात्वे च कृते द्वित्वाङ्गलोपे तास आर्धधातुकारवध् “स्वरतिसूतिसूयसिधूअदितो वा” इत्यनेन वेदि ‘अञ्जितार’ इति । इडभावे जस्व कत्वे गस्व कत्वे नस्वानुस्वारे परसवर्णे च कृते ‘अङ्क’ इति । इटि-अञ्जितारौ, अञ्जितारः । अञ्जितासि, अञ्जितास्मः, अञ्जितास्थः । अञ्जितप्रस्मि, अञ्जितास्वः, अञ्जितास्मः । इडभावे-अङ्कारौ, अङ्कारः । अङ्कासि, अङ्कास्थः, अङ्कास्थः । अङ्कास्मि, अङ्कास्मः, अङ्कास्मः । लुटि-अञ्जिष्यति, अञ्जिष्यतः, अञ्जिष्यन्ति । अञ्जिष्यसि, अञ्जिष्यथः, अञ्जिष्यथ । अञ्जिष्यामि, अञ्जिष्याथः, अञ्जिष्यामः । इडभावे-अङ्कयति, अङ्कयतः, अङ्कयन्ति । अङ्कयसि, अङ्कयथः, अङ्कयथ । अङ्कयामि, अङ्कयथः, अङ्कयामः । लोटि-अङ्कतु, अङ्कात्, अङ्काम्, अञ्जन्तु इत्यादि । अङ्कन् । अञ्जधातोर्लोटि, लः स्थाने मध्यमपुरुषैक्यवने सिचि, रश्मि अनुबन्धलोपे मित्वाङ्गत्वादचः परे जाते “रवाङ्गलोपः” इति अञ्जेर्ललोपे “रनसोत्-रलोपः” इति रनमोञ्ज्यरलोपे “लेङ्गिच” इत्यनेन हिभावे “हुमाङ्गयो हेर्भिः” इत्यनेन विभावे “चोः कुः” इत्यनेन चस्व कत्वे नस्वानुस्वारे परसवर्णे च कृते ‘अङ्कयिच’ इति । अङ्कात्, अङ्कम्, अङ्क । अनजनि । अञ्जधातोर्लोटि लः स्थाने उत्तमपुरुषैक्यवने मिचि, अमि, अनुबन्धलोपे मित्वाङ्गत्वादचः परे “आङ्गलोपः” इति नलोपे च कृते “मेनिः” इति मिपो मेः स्थाने निभावे “आङ्गमस्य पिच” इत्यादि ‘अन-जनि’ इति । अनजाव, अनजाम । आनङ्-अञ्जधातोर्लुटि तिचि ऋचि आप्ते तन्माधित्वा अमि ते अनुबन्धलोपे मित्वाङ्गत्वादचः परे “आङ्गलोपः” इत्यनेन गलोपे “इस्य” इति इकारस्य लोपे “हल्ङ्गान्म्यो दीर्घासुतिस्यपृक्तां हङ्” इत्यनेन ललोपे “चोः कुः” इत्यनेन जस्व कुत्वेन गकारे “वाङ्गस्ताने” इत्यनेन गस्य कत्वे “वाङ्गमाङ्गी-नश्च” इत्यनेनाङागमे ‘आनङ्’ इति । आङ्काम्, आङ्कम् । अङ्कः, आङ्कः, आङ्कः ।

स्यात् । आञ्जीत् । तञ्च संकोचने ॥१५॥ तनक्ति । तद्धा-तद्धिता । ओविज्जी मय-  
चलनयोः ॥१६॥ विनक्ति । विङ्क्तः । “विज इट्” इति ङित्वम् । विविजिथ । विजि-  
ता । अविनक् । अविज्जीत् । शिष्लु विशेषणे ॥१७॥ शिनाष्टि । शिष्टः । शिषन्ति ।

आङ्क्त । आनजम्, आञ्ज्व, आञ्जम् । विधिलिङि—अञ्ज्यात्, अञ्ज्याताम्, अञ्ज्युः । अञ्ज्याः, अञ्ज्यातम्, अञ्ज्यात् । अञ्ज्याम्, अञ्ज्याव, अञ्ज्याम । आञ्जी-  
लिङि—अञ्ज्यात्, अञ्ज्यास्ताम्, अञ्ज्यासुः । अञ्ज्याः, अञ्ज्यास्तम्, अञ्ज्यास्त । अञ्ज्यासम्, अञ्ज्यास्व, अञ्ज्यास्म । अञ्जेः सिचीति । “इडत्त्यर्ति” इत्यतः इडित्यनुवर्तते । ऊदित्वादेव सिद्धे नित्यार्थमिदम् । तदाह—अञ्जेरित्यादिना । आञ्जीत् । अञ्ज्यातोर्लुङि लः स्थाने तिपि “ल्लि लुङि” इति ल्लौ “ल्लेः सिच्” इत्यनेन सिञ्जादेशे इचावितौ तयोर्लोपे च तिप इलोपे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इत्यनेन ईडागमेऽनुबन्धलोपे “इट ईटि” इति सूत्रेण सिचः सस्य लोपे “आङ्जादीनाम्” इत्यादि च कृते “आटश्च” इति वृद्धौ ‘आञ्जीत्’ इति । आञ्जिष्टाम्, आञ्जिषुः । आञ्जीः, आञ्जिष्टम्, आञ्जिष्ट । आञ्जिषम्, आञ्जिष्व, आञ्जिष्यम् । लुङि—आञ्जिष्यत्, आञ्जिष्यताम्, आञ्जिष्यन् । आञ्जिष्यः, आञ्जिष्यतम्, आञ्जिष्यत । आञ्जिष्यम्, आञ्जिष्याव, आञ्जिष्याम । तनक्ति । सङ्कोचना-  
र्थक-ऊकारेत्संज्ञकतन्च् इत्यस्माद्भातोर्लुङि लः स्थाने तिपि ऋपि प्राप्ते तम्बाधित्वा ऋमि कृते अनुबन्धलोपे मित्वादन्त्यादचः परे “आङ्गलोपः” इत्यनेन नलोपे “चोः कुः” इति चस्य कत्वे च कृते ‘तनक्ति’ इति । अञ्ज्वद्रूपाणि यथायथमूहानि । तद्धिता । तन्च् इत्यस्माद्भातोर्लुङि तसिपि तासूप्रत्यये “लुटः प्रथमस्य डारौरसः” इत्यनेन तिपो ङादेशे ङित्वसामर्थ्यादिलोपे “स्वरतिसूतिसूयतिधृगृदितो वा” इत्यनेन विकल्पेनेडा-  
गमे च कृते ‘तद्धिता’ इति । इडभावे चस्य कत्वे नस्यानुस्वारे परसवर्णे च कृते ‘तङ्का’ इति । विनक्ति । ओकार-ईकारेत्संज्ञकविज् इत्यस्माद्भातोर्लुङि तिपि ऋपि प्राप्ते तम्बा-  
धित्वा ऋमि कृते अनुबन्धलोपे मित्वादन्त्यादचः परे “चोः कुः” इत्यनेन जस्य कुत्वेन गकारे “खरि च” इत्यनेन गस्य कत्वे कृते ‘विनक्ति’ इति । विङ्क्तः । विज्जातोर्लुङि तसादेशे, सार्वधातुकसंज्ञायां ऋपि प्राप्ते तम्प्रबाध्य ऋमि कृते अनुबन्धलोपे मित्वा-  
दन्त्याचः परे “ऋनसोरल्लोपः” इत्यनेनाकारस्य लोपे “चोः कुः” इति कुत्वेन गकारे “खरि च” इति चत्वेन गकारे, सस्य “ससजुषोरुः” इति रुत्वे रस्य विसर्गे च कृते नकारस्यानुस्वारे परसवर्णे च ‘विङ्क्तः’ इति सिद्धयति । विञ्जन्ति । विनष्टि, विङ्क्थः, विङ्क्थ । विनञ्मि, विञ्ज्वः, विञ्जम् । लिटि—विवेज, विविजतुः, विविजुः । विविजिथ—विज्जातोर्लुङि मध्यमपुरुषैकवचने सिपस्थलि कृते “लिटि भातोरनभ्या-  
सस्य” इति द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् “हलादिः शेषः” इति लोपे “आर्घधातुकस्येडव-  
लादेः” इत्यनेनेडागमे “विज इट्” इत्यनेन इटो ङित्वाद् गुणाभावे ‘विविजिथ’ इति । विजिता । विज्जातोर्लुङि लुटो ल्स्थाने तिपि तासूप्रत्यये तिपो ङादेशे ङित्वादिलोपे

शिनसि। शिशेषशिशेषिष। शेषः। शेषति। हेर्चिः। शिष्टि। शिनवाणि। अशिनवट्।

इटि च कृते “विज इट्” इति इटो द्वित्वाद्गुणाभावे “विजिता” इति। अविनक्। विज्-  
धातोर्लङ्स्तिपि क्षपि प्राप्ते तम्प्रबाध्य शनमि कृते अनुबन्धलोपे मित्वादन्याचः परे  
जाते “इतञ्च” इति तिपङ्कारस्य लोपे, “हल्ङ्वाभ्यो दीर्घात्सुतिस्वपृक्तं हल्” इति  
तलोपे कृते जकारस्य “चोः कुः” इति कुत्वेन गकारे “खरि च” इति कत्वे “लुङ्लङ्लृङ्-  
श्चबहुदाचः” इत्यटि “अविनक्” इति। पचे “अविनग्” इति। अविजीत्। विज्धातोर्लङ्-  
स्तिपि “च्छि लुङि” इति ल्यौ “च्छेः सिच्” इति सिज्जादेशे इचावितौ, सिच आर्चधामु-  
क्त्वादिति तिपङ्कारस्य लोपे कृते “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति तिपस्तकारस्य ईडागमे  
“इट ईटि” इति स्रलोपे च कृते “सिज्जलोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः” इति स्रलोपस्य  
सिद्धत्वात्सवर्णदीर्घे अटि च “अविजीत्” इति। शिनष्टि। लृकारेत्सञ्जकशिष् इत्य-  
स्मद्भातोर्लङ् लटो लस्स्थाने तिपि क्षपि प्राप्ते तम्बाधित्वा शनमि कृते, अनुबन्ध-  
लोपे मित्वादन्याचः परे तकारस्य ष्टुत्वे च कृते “शिनष्टि” इति सिद्ध्यति। शिष्टः।  
शिष्धातोर्लङ् लटो लः स्थाने तसि क्षपि प्राप्ते तम्प्रबाध्य “रुधादिभ्यः शनम्” इति  
शनमि कृते मित्वात् अन्त्यस्याचः परे जाते “शनसोरल्लोपः” इत्यल्लोपे, तकारस्य  
ष्टुत्वे नस्यानुस्वारे सस्य ष्टुत्वे विसर्गे च कृते “शिष्टः” इति। शिषन्ति। शिष्धातोर्लङ्  
क्षिप्रत्यये, क्षेरन्तादेशे, क्षपि प्राप्ते शनमि कृतेऽनुबन्धलोपे “शनसोरल्लोपः” इत्यल्लोपे,  
शनमो नस्यानुस्वारे, च कृते “शिषन्ति” इति। शिनच्चि। शिष्धातोर्लङ्, लः स्थाने  
सिपि, क्षपि प्राप्ते तम्बाधित्वा शनमि कृते अनुबन्धलोपे मित्वादन्याचः परे “बढोः  
कः सि” इत्यनेन षस्य कत्वे कात्परकत्वात् सस्य षत्वे कषयोः संयोगे चे जाते  
“शिनच्चि” इति। शिष्टः, शिष्टः। शिनष्मि, शिष्वः। शिष्मः। शिशेष। शिष्धातोर्लङ्, लः  
स्थाने तिपि, तिपो णलि च कृते, धातोर्द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् “हलादिः शेषः”  
इति लोपे “पुगन्तलघूपधस्य च” इत्यनेन गुणे च कृते “शिशेष” इति। शिशेषिष।  
शिष्धातोर्लङ्, लटो लः स्थाने सिपि, सिपस्थलि च कृते धातोर्द्वित्वेऽभ्याससंज्ञा-  
याम् “हलादिः शेषः” इत्यभ्यासहल्लोपे क्रादिनियमादिति गुणे च कृते “शिशेषिष”  
इति। शेषः। शिष्धातोर्लङ्, लटो लः स्थाने तिपि तासप्रत्यये तिपो डादेशे द्वित्वा-  
दिलोपे गुणे ष्टुत्वे च कृते “शेषः” इति। शेष्यति। शिष्धातोर्लङ् तिपि “स्यतासी  
लुलुटोः” इति स्वप्रत्यये “बढोः कः सि” इति षस्य कत्वे कात्परकत्वात् “आदेशप्रत्य-  
ययोः” इति सस्य षत्वे गुणे संयोगे च कृते “शेष्यति” इति। लोटि—शिनष्टु,  
शिष्टात्, शिष्टाम्, शिषन्तु। शिष्टि। शिष्धातोर्लङ्, लः स्थाने मध्यमपुरुषैकवचने  
सिपि, क्षपि प्राप्ते तम्बाधित्वा शनमि कृतेऽनुबन्धलोपे मित्वादन्याचः परे  
“सेर्हपिच” इति सेर्हिभावे “शनसोरल्लोपः” इत्यल्लोपे “हुङ्गम्भो हेर्चिः” इति  
हेर्चिभावे “हलां जङ् शसि” इति षस्य ढत्वे “पुना ष्टुः” इति षैर्षस्य ष्टुत्वे “शरी

शिष्यात् । शिष्यात् । अशिषत् । एवं पिप्पु सञ्चूर्णने ॥१८॥ भञ्जो आमर्दने ॥१९॥  
श्मानलोपः ॥ मनक्ति । बभञ्जिथ-बभञ्जथ । भङ्क्ता । भङ्गिथ । अभाङ्गीत् ।

‘‘शरि सवर्णे’’ इति ङलोपे नस्यानुस्वारे तस्य परसवर्णे च कृते ‘‘शिषिङ्’’ इति । शिष्टात् ,  
शिष्टम् शिष्ट । शिनषाणि । शिष्यातोर्लोङि, लः स्थाने उत्तमपुरुषैकवचने मिपि ‘‘मेभिः’’  
इति मिपो मेः स्थाने निभावे ‘‘आहुत्तमस्य पिच्च’’ इत्यादि रनमि अनुबन्धलोपे, मि-  
त्वादन्याचः परे नस्य णत्वे ‘‘शिनषाणि’’ इति । शिनषाथ, शिनषाम । अशिनट् । शिष्या-  
तोर्लोङि तिपि अनुबन्धलोपे रनमि अनुबन्धलोपे मित्वाद् अन्याचः परे कृते ‘‘इतश्च’’  
इति तिप इलोपे ‘‘हृत्तथाभ्यो’’ इति तलोपे ‘‘क्षलां जशोऽन्ते’’ इति षस्य जश्त्वेन  
ङकारे ‘‘वाऽवसाने’’ इति चत्वे, अटि च कृते ‘‘अशिनट्’’ इति । चत्वाभावे-‘‘अशिनङ्’’  
इति । शिष्यात् । शिष्यातोर्विधिलिङि, लिङो लः स्थाने तिपि रनमि अनुबन्धलोपे च  
कृते मित्वादन्याचः परे जाते ‘‘यासुट् परस्मैपदेषुदात्तो ङिच्च’’ इत्यनेन यासुडागमेऽ-  
नुबन्धलोपे टित्वात् तिप आद्यावयवे जाते यासुटो ङित्वात् ‘‘रनसोरञ्चोपः’’ इत्यञ्चोपे  
नस्यानुस्वारे ‘‘लिङः सलोपोऽनन्वस्य’’ इति सस्य लोपे ‘‘इतश्च’’ इति तिप इकारस्य  
लोपे ‘‘शिष्यात्’’ इति । शिष्यात् । शिष्यातोराज्ञीर्लिङि, लिङो लः स्थाने तिपि ‘‘इतश्च’’  
इति तिप इकारलोपे यासुडागमे अनुबन्धलोपे टित्वात्तिप आद्यावयवे जाते ‘‘शिष्यास्त्’’  
इति मृते अत्र ‘‘स्कोः संयोगाद्योरन्ते च’’ इति सलोपे ‘‘शिष्यात्’’ इति । अशिषत् ।  
शिष्यातोर्लुङि लुङो लः स्थाने तिपि ‘‘लुङ्लृङ्स्वङ्दुदात्तः’’ इत्यङागमे ‘‘च्लि  
लुङि’’ इति च्लौ तत्स्थाने ‘‘पुषादिषुताद्युदितः परस्मैपदेषु’’ इत्यङि ‘‘इतश्च’’ इति  
तिप इकारस्य लोपे कृते ‘‘अशिषत्’’ इति । एवं रीत्या ‘‘पिप्पु सञ्चूर्णने इति धातोरपि  
सर्वाणि रूपाणि साधनीयानि । मनक्ति । ओकारेत्संज्ञकमञ्जधातोर्लोङि, लटो लः स्थाने  
तिपि अपि प्राप्ते तन्वाधित्वा रनमि कृतेऽनुबन्धलोपे मित्वादन्याचः परे जाते  
‘‘श्नान्नलोपः’’ इति नलोपे ‘‘चोः कुः’’ इति जस्य गत्वे ‘‘खरि च’’ इति चत्वेन गस्य  
ककारे कृते ‘‘मनक्ति’’ इति । लिटि बभञ्ज, बभञ्जन्तु, बभञ्जुः । बभञ्जिथ । भञ्जधा-  
तोर्लोङि, लिटो लः स्थाने मध्यमपुरुषैकवचने सिपि, सिपः स्थाने थलि, धातोर्ङित्वे  
अभ्याससंज्ञायां हञ्चोपे इटि प्राप्ते ‘‘उपदेशेऽज्वतः’’ इति निषेधे ‘‘श्रुतो भारद्वाजस्व’’  
इति वेटि ‘‘अभ्यासे चर्च’’ इति भस्य चत्वेन ङकारे ‘‘बभञ्जिथ’’ इति । इङभावे जस्व  
गत्वे गस्व कत्वे नस्यानुस्वारे ‘‘अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः’’ इति परसवर्णे च कृते  
‘‘बभञ्जथ’’ इति । भङ्क्ता । भञ्जधातोर्लुङिस्तिपि तास तास आर्धधातुकत्वादिति  
प्राप्ते ‘‘एकाच् उपदेशेऽनुदात्तात्’’ इति निषिद्धे तिपो ङादेशे ङित्वाट्टिलोपे जस्व गत्वे  
गस्य कत्वे नस्यानुस्वारे परसवर्णे च कृते ‘‘भङ्क्ता’’ इति । लुटि-भङ्क्थति । लोटि-  
मनक्तु, भङ्क्तात्, भङ्काम्, भञ्जन्तु । भङ्गिथ । भञ्जधातोर्लोङि, लोटो लः स्थाने  
मध्यमपुरुषैकवचने सिपि ‘‘सेञ्जिथ’’ इति हिभावे अपि प्राप्ते तन्वाधित्वा

भुज पालनाभ्यवहारयोः ॥२०॥ भुनक्ति । भोक्ता । भोक्ष्यति । अभुनक् ॥  
भुजोऽनवने १।३।६६ तद्वनौ स्तः । ओदनं मुद्वक्ते । अनवने किम् ? महौ

रनमि अनुबन्धलोपे मित्वादन्त्याचः परे “रनान्नलोपः” इति नलोपे “रनसोरश्चोपः”  
इत्यकारस्य लोपे जस्य गत्वे “हुहृहृभ्यो हृर्धिः” इति धिभावे नस्यानुस्वारे परसवर्णे च  
कृते ‘भङ्ग्धि’ इति । भङ्क्तात्, भङ्क्तम्, भङ्क्त । भनजानि, भनजाव, भनजाम ।  
अभाङ्क्तीत्—भञ्जधातोर्लुङि, लुङो लः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे “इतश्च” इति तिप  
इकारलोपे “लुङ्लङ्लुङ्स्वङुदात्तः” इत्यनेनाडागमे “च्छि लुङि” इत्यनेन च्लौ “च्छेः  
सिच्” इत्यनेन सिजादेशे इचावितौ सिच आर्धधातुकत्वादिति प्राप्ते “एकाच उपदेशे-  
ऽनुदात्तात्” इति निर्षङ्गे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इतीडागमे “चोः कुः” इति कुत्वेन  
जकारस्य गकारे तस्य चत्वेन कत्वे सस्य षत्वे नस्यानुस्वारे परसवर्णे च कृते “वदधज-  
हलन्तस्याचः” इत्यनेन वृद्धौ “अभाङ्क्तीत्” इति । अभाङ्क्ताम्, अभाङ्क्तुः । अभाङ्क्तीः,  
अभाङ्क्तम्, अभाङ्क्त । अभाङ्क्तम्, अभाङ्क्त । अभाङ्क्तम्, अभाङ्क्तम् । लुङि—अभङ्क्ष्यत् अ-  
भङ्क्ष्यताम्, अभङ्क्ष्यन् । अभङ्क्ष्यः, अभङ्क्ष्यतम्, अभङ्क्ष्यत । अभङ्क्ष्यम्,  
अभङ्क्ष्याव, अभङ्क्ष्याम । इत्यादीनि रूपाणि बोध्यानि । भुनक्ति । भुजधातोर्लट-  
स्तिपि सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तन्वाधित्वा रनमि कृते ऽनुबन्धलोपे मित्वाद-  
न्त्याचः परे “चोः कुः” इति जस्य कुत्वेन गत्वे गस्य “खरि च” इति चत्वे ‘भुनक्ति’  
इति । भुङ्क्तः, भुजन्ति । भुनक्ति, भुङ्क्थः, भुङ्क्थ । भुनक्ति, भुजवः, भुजमः ।  
लिटि—बुभोज, बुभुजतुः, बुभुजुः । बुभोजिथ, बुभुजथुः, बुभुज । बुभोज, बुभुजिव,  
बुभुजिम । भोक्ता । भुजधातोर्लटस्तिपि, तासि तिपो ङादेशे ङित्वादिलोपे तासः आर्ध-  
धातुकत्वात् इति प्राप्ते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति इङभावे “कुहोरुः” इति  
चुत्वे “खरि च” इति चत्वे “पुगन्तल्लृपधस्य च” इति गुणे ‘भोक्ता’ इति । भोक्ष्यति ।  
भुजधातोर्लटस्तिपि अनुबन्धलोपे “स्यतासी लृटोः” इति स्यप्रत्यये “चोः कुः” इति  
कुत्वे “खरि च” इति चत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे गुणे च कृते ‘भोक्ष्यति’ इति ।  
लोटि—भुनक्तु, भुङ्क्तात्, भुङ्क्ताम्, भुजन्तु । भुङ्ग्धि, भुङ्क्तात्, भुङ्क्तम्, भुङ्क्त ।  
भुनजानि, भुनजाव, भुनजाम । अभुनक् । भुजधातोर्लटस्तिपि अनुबन्धलोपे सार्वधा-  
तुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते रनमि कृते अनुबन्धलोपे अडागमे “इतश्च” इति तिप इलोपे  
तस्य “हल्ह्याभ्यो०” इति लोपे जस्य कुत्वे चत्वे च कृते ‘अभुनक्’ इति । विधिलिङि-  
भुञ्ज्यात्, भुञ्ज्याताम्, इत्यादि । आशीलिङि—भुज्यात्, भुज्याताम्, इत्यादि ।  
लुङि तु—अभौक्षीत्, अभौक्षाम्, अभौक्षुः । अभौक्षीः, अभौक्षम्, अभौक्ष । अभौक्षम्,  
अभौक्षव, अभौक्षम् । लुङि—अभोक्ष्यत्, अभोक्ष्यताम्, अभोक्ष्यन् इति । भुजोऽनवने ।  
अवनम्—रक्षणम्, ततोऽन्यत्र भुजेरात्मनेपदमित्यर्थः । मुद्वक्ते—भुजधातोर्लट्लकारे  
“भुजोऽनवने” इत्यात्मनेपदे तप्रत्यये रनमि कृतेऽनुबन्धलोपे “रनसोरश्चोपः” इत्यलोपे

भुनक्ति । अिइन्धी दीप्तौ ॥२१॥ इन्धे । इन्धाते । इन्धते । इन्से । इन्ध्वे ।  
इन्धाञ्चके । इन्धिता । इन्धाम् । इन्धाताम् । इनधै । ऐन्ध । ऐन्धाताम् । ऐन्धाः ॥  
विद विचारणे ॥ २२ ॥ विन्ते । वेत्ता ॥ इति रुधादयः ।

“चोः कुः” इति कुत्वे चत्वं च कृते अनुस्वारे परसवर्णे “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति  
टेरेत्वे च ‘भुङ्क्ते’ इति । इह उपभोगो भुजेरर्थः । धातूनामनेकार्थत्वात् । ‘महा भुनक्ति’  
इत्यत्रावनार्थकत्वाच्च तद्ध् । इन्धे । इन्धधातोर्लट्स्थितिपि सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते  
तम्ब्राधित्वा रनमि कृते अनुबन्धलोपे मित्वादन्याचः परे “रनाञ्चलोपः” इति नलोपे  
“रनसोरञ्चोपः” इत्यञ्चोपे “क्षपस्तथोर्धो धः” इति तस्य धकारे “क्षरो क्षरि सवर्णे”  
इति प्रथमधस्य लोपे अनुस्वारे परसवर्णे च कृते “टित आत्मनेपदानां टेरे” इत्येत्वे  
कृते ‘इन्धे’ इति । इन्धाते । इन्धधातोर्लट्लकारे लः स्थाने आतामप्रत्यये रनमि अनु-  
बन्धलोपे मित्वादन्याचः परे “रनसोरञ्चोपः” इत्यञ्चोपे, नलोपे टेरेत्वे च ‘इन्धाते’  
इति रूपम् । इन्धते—इन्धधातोर्लटि लः स्थाने ङादेशे “आत्मनेपदेष्वनतः” इति  
ङस्यादादेशे रनमि अनुबन्धलोपे मित्वादन्याचः परे “रनसोरञ्चोपः” इत्यञ्चोपे,  
“रनाञ्चलोपः” इति नलोपे टेरेत्वे च कृते ‘इन्धते’ इति । इन्से । इन्धधातोर्लट्स्थितिपि  
“थासः से” इति सेभावे रनमि कृतेऽनुबन्धलोपे मित्वादन्याचः परे “रनसोरञ्चोपः”  
इत्यञ्चोपे “रनाञ्चलोपः” इति नलोपे “क्षरि च” इत्यनेन धकारस्य तकारे ‘इन्से’  
इति । इन्धाये । इन्ध्वे । इन्धधातोर्लटि लः स्थाने आत्मनेपदे ध्वमि शपि प्राप्ते  
तम्ब्राधाय रनमि कृतेऽनुबन्धलोपे अन्त्याचः परे जाते “रनाञ्चलोपः” इति नलोपे  
“रनसोरञ्चोपः” इत्यञ्चोपे च कृते “क्षरो क्षरि सवर्णे” इति धलोपे टेरेत्वे च कृते  
‘इन्ध्वे’ इति रूपम् । इन्धाञ्चके । इन्धधातोर्लटि “ईजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः” इत्यामि  
“आमः” इत्यनेन लिटो लुकि “कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि” इत्यनेन लिट्परककृञ्चानुप्रयोगे  
लस्थाने ते कृते ‘इन्धाम् कृ त’ इति जाते “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे  
“उरत्” इत्यनेनाभ्यासश्चवर्णस्यादादेशे रपरे च कृते “हलादिः शेषः” इत्यभ्यासलोपे  
“कुहोरश्चुः” इति चुत्वे “लिटस्तथोरेषिरेच्” इत्यनेन तस्य पृश्नादेशे “इको यणचि”  
इति यणि मस्यानुस्वारे परसवर्णे च कृते “इन्धाञ्चके” इति । इन्धाञ्चकाते, इन्धाञ्च-  
किरे । इन्धाञ्चकृषे, इन्धाञ्चकाये, इन्धाञ्चकृद्वे । इन्धाञ्चके, इन्धाञ्चकृवहे, इन्धाञ्च-  
कृमहे । इन्धिता । इन्धधातोर्लटि लुटो लः स्थाने आत्मनेपदे तादेशे “स्यतासी लुलुटोः”  
इति तासप्रत्यये तिपो ङादेशे, ङित्वाट्टिलोपे कृते, इडागमे ‘इन्धिता’ । लुटि—इन्धि-  
ष्यते, इन्धिष्येते, इन्धिष्यन्ते । इन्धिष्यसे, इन्धिष्येथे, इन्धिष्यध्वे । इन्धिष्ये, इन्धि-  
ष्यावहे, इन्धिष्यामहे । इन्धाम् । इन्धधातोर्लटि लः स्थाने तादेशे रनमि कृतेऽनुब-  
न्धलोपे “मिदचोऽन्त्यात्परः” इति अन्त्याचः परे “रनाञ्चलोपः” इति नलोपे “रनसो-  
रञ्चोपः” इत्यञ्चोपे “क्षपस्तथोर्धो धः” इति तकारस्य धकारे “टित आत्मनेपदानां



## अथ तनादयः ।

तनु विस्तारे ॥ १ ॥ तनादिकृष्ण्य उः ३ । १ । ७६ तनादेः कृष्णश्च उः  
प्रत्ययः स्यात् । शपोऽपवादः । तनोति । तनुते । ततान । तेने । तनितासि ।

‘टेरे’ इत्येत्वे “झरो झरि सवर्णे” इति धलोपे “आमेतः” इति टेरेवस्यामादेशे च कृते  
‘इन्धाम्’ इति । इन्धाताम् । इन्धधातोर्लोडि लोटो लः स्थाने आतामि, रन्मि कृते-  
ऽनुबन्धलोपे मित्रादन्यस्याचः परे जाते “रनसोरल्लोपः” इत्यकारस्य लोपे “रनाञ्च-  
लोपः” इत्यनेन नलोपे टेरेत्वे “आमेतः” इति सूत्रेणामि कृते ‘इन्धाताम्’ इति । इन्ध-  
ताम् । इन्त्स्व, इन्धाताम्, इन्ध्वम् । इनधै । इन्धधातोर्लोडि इडप्रत्यये रन्मि कृतेऽनु-  
बन्धलोपे “रनसोरल्लोपः” इत्यल्लोपे “रनाञ्चलोपः” इति नलोपे “आहुत्तमस्य पिच्च”  
इत्याडागमे टेरेत्वे “एत् ए” इति ऐकारादेशे “आटश्च” इति वृद्धौ ‘इनघै’  
इति । इनधावहै, इनधामहै, इति । ऐन्ध । इन्धधातोर्लोडि, लस्ते आदेशे रन्मि कृते-  
ऽनुबन्धलोपे अन्त्याचः परे “रनसोरल्लोपः” इत्यल्लोपे “रनाञ्चलोपः” इति नलोपे  
“झषस्तथोर्धो धः” इति तकारस्य धकारे “झरो झरि सवर्णे” इति पूर्वधकारस्य लोपे  
“आडजादीनाम्” इत्याडि “आटश्च” इति वृद्धौ ‘ऐन्ध’ इति । आतामि—ऐन्धाताम् ।  
झिप्रत्यये, झस्यादादेशे, ‘ऐन्धत्’ इति । ऐन्धाः । इन्धधातोर्लोडि, लः स्थाने मध्यमपुरुष-  
कवचने थासि, शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा रन्मि कृतेऽनुबन्धलोपे अल्लोपनलोपयोः “झष-  
स्तथोर्धो धः” इति थस्य धकारे “झरो झरि ” इति पूर्वधकारस्य लोपे सस्य रुत्वे रस्य  
विस्मर्णे च कृते “आडजादीनाम्” इत्याडागमे “आटश्च” इति वृद्धौ “ऐन्धाः” इति ।  
विन्ते । विद्धधातोर्लोडि लः स्थाने तादेशे, रन्मि अनुबन्धलोपे अन्त्याचः परे “रनसोर-  
ल्लोपः” इत्यल्लोपे “खरि च” इति चत्वे “झरो झरि सवर्णे” इति पूर्वतकारस्य लोपे  
टेरेत्वे च कृते ‘विन्ते’ इति । विन्दाते, विन्दते । विन्से, विन्दाथे, विन्ध्वे । विन्दे,  
विन्दहे, विन्ग्रहे । वेत्ता । विद्धधातोर्लोडि तासि, लस्तिपि, तिपो ङादेशे ङित्वाटिलोपे,  
इडभावे, “खरि च” इति दस्य चत्वे “पुगान्तलधूपधस्य च” इत्यनेन गुणे कृते  
‘वेत्ता’ इति । वेत्तारौ, वेत्तारः । वेत्तासे, वेत्तासाथे, वेत्ताध्वे । वेत्ताहे, वेत्तास्वहे, वेत्ता-  
स्महे । लुटि—वेत्स्यति । लोटि—विन्ताम् । लङि—अविन्त । लिङि—विन्दीत ।  
आङ्गिषि = वित्सीष्ट । लुङि—अवित्त । लृङि—अवेत्स्यत । इति रुधादिप्रकरणम् ।

तनादिकृष्ण्य उः । तनादेः कृष्णश्च उप्रत्ययः स्यादिति सूत्रार्थः । शपोऽपवाद इति ।  
अनेन शब्द्विषय एवास्य प्रवृत्तिरिति सूचितम् । “सार्वधातुके यक्” इत्यतः सार्वधा-  
तुक इति “कर्त्तरि शप्” इत्यतः कर्त्तरीति चानुवृत्तेरिति भावः । तनोति । तनुइत्य-  
स्माद्धातोर्लोडि तिपि शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा “तनादिकृष्ण्य उः” इत्युपप्रत्यये “सार्व-  
धातुकार्थधातुक्रयोः” इति गुणे च कृते “तनोति” इति । तनुते । तनु इत्यस्माद्धातोरा-  
ल्लोपदे लटस्ते प्रत्यये “कर्त्तरि शप्” इति शप्प्राप्ते तम्बाधित्वा “तनादिकृष्ण्य उः”

तनितासे । तनिष्यति । तनिष्यते । तनोतु । तनुताम् । अतनोत् । अतनुत ।  
तनुयात् । तन्वीत् । तन्यात् । तनिषीष्ट । अतनीत्-अतानीत् ॥ तनादिकृष्ण-

इति उविकरणे, प्रत्ययस्य तस्य सार्वधातुकत्वात् “सार्वधातुकमपित्” इति हिन्वाङ्गु-  
णाभावे “टित् आत्मनेपदानां ढेरे” इति ढेरेत्वे च कृते ‘तनुते’ इति । तन्वाते, तन्वते ।  
तनुये, तन्वाये, तनुध्वे । तन्वे, तनुवहे-तन्वहे, तनुमहे-तन्महे, इति । ततान । तन्  
इत्यस्माद्घातोर्लिटि, लिटो लः स्थाने तिपि, तिपो णलि च कृते “लिटि घातोरनभ्या-  
सस्व” इति द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां लोपे च कृते “अत उपधायाः” इत्यनेन वृद्धौ ‘ततान’  
इति । तेनतुः, तेनुः । तेनिथ, तेनथुः, तेन । ततान, ततन, तेनिव, तेनिम । तेने । तन्  
घातोर्लिटि तत्स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये, तस्य “लिटस्तभ्योरेश्चिरेच्” इति पञ्चादरे  
द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां लोपे च कृते “अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि” इति एत्वाभ्या-  
सलोपे च कृते ‘तेने’ इति । तेनाते, तेनिरे । तेनिषे, तेनाये, तेनिध्वे । तेने, तेनिवहे,  
तेनिमहे । लुटि-तनिता, तनितारौ, तनितारः । तनिवासि । तन्घातोर्लुट्कारे भभ्य-  
सपुरुषैकवचने परस्मैपदे सिपि तासि विकरणे, तास आर्षधातुकत्वात् इडागमे “तास-  
स्योर्लोपः” इति सलोपे ‘तनितासि’ इति । तनितास्यः । तनितास्य । तनितास्मि,  
तनितास्वः, तनितास्मः । तनितासे । तन्घातोर्लुट्कारे लः स्थाने आत्मनेपदे थासि,  
“थासः से” इत्यनेन थासः से आदेशे, तासि प्रत्यये तास इडागमे, “तासस्योर्लोपः”  
इति सलोपे कृते ‘तनितासे’ इति । तनितासाये, तनिताध्वे । तनिताहे, तनितास्वहे,  
तनितास्महे । तनिष्यति । तन् घातोर्लिटि, लुटो लः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे स्वप्र-  
त्यये इटि च कृते ष्वे ‘तनिष्यति’ इति । तनिष्यतः, तनिष्यन्ति, इत्यादि । तनिष्यते ।  
तन् घातोर्लुटि आत्मनेपदे तप्रत्यये “स्यतासी लृलुटोः” इति स्वप्रत्यये इटि च कृते,  
ष्वे ढेरेत्वे च ‘तनिष्यते’ इति । तनोतु । तन्घातोर्लिटि, लोटो लः स्थाने तिपि  
अनुबन्धलोपे सार्वधातुकसंज्ञायां अपि प्राप्ते तन्वाधित्वा “तनादिकृष्ण उः” इत्यु-  
प्रत्यये “सार्वधातुकार्षधातुकयोः” इति गुणे “एङ्” इत्यनेन तिप इकारस्य उकारे-  
‘तनोतु’ इति । तनुतात्, तनुताम्, तन्वन्तु । तनु-तनुतात्, तनुतम्, तनुव ।  
तनवानि, तनवान, तनवाम । तनुताम् । तन् इत्यस्माद्घातोर्लिटि, लोटो लः स्थाने  
आत्मनेपदे तप्रत्यये “तनदिकृष्ण उः” इति उप्रत्यये, ढेरेत्वे “आमेतः” इत्यनेन  
एकारस्यामि ‘तनुताम्’ इति । तन्वाताम्, तन्वताम् । तनुष्व, तन्वाथाम्, तनुष्वम् ।  
तन्वै, तनवान्वहै, तनवान्वहै । अतनोत् । तन्घातोर्लिटि, लङो लः स्थाने तिपि अनु-  
बन्धलोपे, अप्रं प्रवाध्य उप्रत्यये, अडागमे, गुणे च कृते, “इतश्च” इति तिप इकार-  
लोपे ‘अतनोत्’ इति । अतनुतम्, अतन्वन् । अतनोः, अतनुतम्, अतनुत । अतन्-  
वम्, अतन्व-अतनुव, अतन्म-अतनुम । अतनुत । तन्घातोर्लिटि लङो लः स्थाने  
तत्स्थाने शषश्चाधित्वा “तनादिकृष्ण उः” इत्युविकरणे अडागमे च कृते ‘अतनुत’

स्तथासोः २।४।७६ तनादेः सिचो वा लुक् स्यात् तथासोः । अतत-अतनिष्ट ।  
अतथाः-अतनिष्ठाः । अतनिष्यत् । अतनिष्यत । षण्णु दाने ॥ २ ॥ सनोति ।

इति । तन्यात् । तन्धातोर्विधिलिङि, लिङो लः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे “तना-  
दिकृम्यः उः” इत्युप्रत्यये “यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिञ्च” इति यासुडागमे, उटा-  
वितौ, “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे “इतश्च” इति तिप इकारलोपे ‘तनु-  
यात्’ इति । तन्वीत । तन्धातोर्विधिलिङि लः स्थाने तनादेशे, “तनादिकृम्य उः”  
इति उविकरणे “लिङः सीयुट्” इति सीयुडागमे, उटावितौ “लोपो व्योर्बलि” इति  
यलोपे “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे च कृते “इको यणचि” इति यणि  
‘तन्वीत’ इति । तन्यात् । तन् धातोराशीर्लिङि तिपि यासुडागमे, उटावितौ, तिप  
इकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति सलोपे ‘तन्यात्’  
इति । तन्यास्ताम्, तन्यासुः, इत्यादि । तनिषीष्ट । तन्धातोराशीर्लिङि, आत्मनेपदे  
तादेशे सीयुडागमे, उटावितौ “सुट् तिथोः” इति सुटि, अनुबन्धलोपे “आर्धधातुक-  
स्येङ्त्वलादेः” इतीडागमे सकारस्य षत्वे ण्डत्वे च ‘तनिषीष्ट’ इति । तनिषीयास्ताम्,  
तनिषीरन् । तनिषीष्ठाः, तनिषीयास्थाम्, तनिषीष्वम् । तनिषीय, तनिषीवहि,  
तनिषीमहि । अतानीत् । तन्धातोर्लुङि लुङो लः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे अडागमे  
च कृते “छि लुङि” इति छ्लौ, “छ्लेः सिच” इति सिजादेशे, इचावितौ, इटि कृते,  
तिप इकारस्य लोपे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इतीडागमे च कृते “इट ईटि” इति सलोपे,  
स्ववर्णदीर्घे “अतो हलादेर्लघोः” इति विकल्पेन वृद्धौ च ‘अतानीत्’ इति । वृद्ध-  
भावे—‘अतनीत्’ इति । अतनिष्टाम्, अतनिष्ठुः । अतनीः, अतनिष्टम्, अतनिष्ट ।  
अतनिष्ठम्, अतनिष्ठ्व, अतनिष्म । वृद्धिपदे—‘अतानिष्टाम्’ इत्यादि । तनादिभ्य-  
स्तथासोरिति । “गातिस्था०” इत्यतः सिच इति “ण्यञ्चत्रियार्थ०” इत्यतो लुगिति  
“विभाषा प्राप्ते ०” इत्यतो विभाषेति चानुवर्तते । तदाह—तनादेरित्यादिना । अतत ।  
तन्धातोर्लुङि, लः स्थाने आत्मनेपदे तादेशे अडागमे अनुबन्धलोपे “छि लुङि”  
इति छ्लौ, छ्लेः सिजादेशे, इचावितौ “तनादिभ्यस्तथासोः” इति सिचो लुकि, “अनु-  
दात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि किञ्चति” इत्यनुनासिकनकारस्य  
लोपे ‘अतत’ इति । सिचो लोपाभावे—इटि, सस्य षत्वे ण्डत्वे च ‘अतनिष्ट’ इति ।  
अतनिष्ठाताम्, अतनिष्ठत । अतथाः । तन्धातोर्लुङि थासि “छि लुङि” इति छ्लौ,  
छ्लेः सिजादेशे, इचावितौ, “तनादिभ्यस्तथासोः” इति सिचो लोपे अनुदात्तोपदेश-  
वनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि किञ्चति” इति नलोपे अटि च तत् सिद्धम् ।  
सिचो लोपाभावे—सिचः सः इटि कृते षत्वे ण्डत्वे च जाते ‘अतनिष्ठाः’ इति । अतनि-  
ष्ठाथाम्, अतनिष्ठ्वम् । अतनिषि, अतनिष्ठ्वहि, अतनिष्महि । अतनिष्यत् । तन्-  
धातोर्लुङि, लुङो लः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे अडागमे, स्वप्रत्यये, इटि च कृते,

सनुते । ये विभाषा ६।४।४३ जनसनखनामात्वं वा यादौ द्विति । सायात्-  
सन्यात् । असानोत्-असनीत् ॥ जनसनखनां सञ्मूलोः ६।४।४२ एषामाकारो-  
ऽन्तादेशः स्यात् सनि भलादौ किञ्चि । असात्-असनिष्ट । असाथाः-असनिष्टाः ।

सस्य षत्वे 'अतनिष्यत्' इति । अतनिष्यत् । तन्धातोर्लृङि आत्मनेपदे तप्रत्यये अडागमे  
स्यप्रत्यये इटि षत्वे च कृते 'अतनिष्यत्' इति । सनोति । उकारेत्सञ्ज्ञक 'षण्' धातो-  
र्लृङि तिपि "तनादिकृष्ण्य उः" इत्युविकरणे "धात्वादेः षः सः" इति सत्वे "निमित्ता-  
पाये नैमित्तिकस्याप्यपायः" इति परिभाषया णस्य नत्वे गुणे च कृते 'सनोति'  
इति । सनुते । षण्धातोर्लृङि आत्मनेपदे तप्रत्यये उत्वे सत्वे णस्य नत्वे ढेरेत्वे च  
कृते 'सनुते' इति । तनुधातुबदस्य रूपाणि बोध्यानि । ये विभाषेति । "जनसन-  
खनां सन्मूलोः" इत्यतः जनसनखनामित्यनुवर्तते । "अनुदात्तोपदेश०" इत्यतः  
किञ्चीति । ये इति तद्विशेषणम् । अकार उच्चारणार्थः । तदादिविधिः । "विड्व-  
नारनुनासिकस्यात्" इत्यतः आदित्यनुवर्तते । तदाह—जनसनखनामित्यादिना ॥  
सायात् । षण्धातोराशीर्लृङि, लिङ्गे लः स्थाने तिपि तिपो यासुडागमे अनुबन्धलोपे  
धातोः सत्वे णस्य नत्वे च कृते "स्कोः संयोगाद्योरन्ते च" इति सलोपे "अलोऽन्त्यस्य"  
इति सूत्रसहकारेण "ये विभाषा" इति नस्यात्वे सवर्णदीर्घे च कृते 'सायात्' इति ।  
आत्वाभावे 'सन्यात्' इति । असानोत् । षण्धातोर्लृङि तिपि अनुबन्धलोपे अडागमे  
च कृते "धात्वादेः षः सः" इति षकारस्य सकारे णस्य नत्वे च जाते, च्लौ, च्लेः  
सिजादेशे इचावितौ तिप इकारलोपे "अस्तिसिचोऽपृक्ते" इतीटि "इट ईटि" इति  
सलोपे सवर्णदीर्घे च "अतो हलादेर्लघोः" इति विकल्पेन वृद्धौ 'असानोत्' इति ।  
वृद्धवभावे 'असनीत्' इति । जनसनखनां सञ्मूलोरिति । "विड्वनोः" इत्यतः आदित्य-  
नुवर्तते । तदाह—एषामाकारोऽन्तादेश इति । सन्मूलोः इत्यनयोः इन्हात् सप्तमीहि-  
वचनम् । सनि झलि चेति लभ्यते । "अनुदात्तोपदेश०" इत्यतः झलि किञ्चीत्यनुव-  
र्तते । तत्र झलीत्यनुवृत्तेन सन् विशेष्यते । तदादिविधिः । झलादौ सनीति लभ्यते ।  
तत्र किञ्चीत्यनुवृत्तं तु एतत्सूत्रस्थझला विशेष्यते । तदादिविधिः । झलादौ किञ्चीति  
लभ्यते । तदाह—भलादौ सनीत्यादिनेति । असात् । षण्धातोर्लृङ्गे लः स्थाने आत्मने-  
पदे तादेशे अडागमे अनुबन्धलोपे धातोः षकारस्य सत्वे सस्य नत्वे च कृते च्लौ,  
च्लेः सिजादेशे "तनादिभ्यस्तथासोः" इति सिचो लोपे "जनसनखनां सञ्मूलोः"  
इत्यात्वे सवर्णदीर्घे च 'असात्' इति । असनिष्ट । षण्धातोर्लृङि लः स्थाने ते कृते  
धातुस्थषस्य सत्वे णस्य नत्वे च कृते अडागमे च्लौ, च्लेः सिजादेशे इचावितौ सिच  
आर्षधातुकत्वात् "आर्षधातुकस्येड्वलादेः" इतीडागमे सस्य षत्वे च कृते 'असनिष्ट'  
इति । असाथाः । षण्धातोर्लृङि लुङ्गे लः स्थाने आत्मनेपदे थासि षस्य सत्वे णस्य  
नत्वे च कृते च्लौ, च्लेः सिचि इचावितौ "तनादिभ्यस्तथासोः" इति सिचो लोपे

क्षु हिंसायाम् ॥ ३ ॥ क्षणोति । क्षणुते । “इयन्त” इति न वृद्धिः ॥ अक्षणीत् ।  
अक्षत-अक्षणिष्ट । अक्षथाः-अक्षणिष्ठाः । क्षिणु च ॥ ४ ॥ उपत्यये लघूपधगुणः,  
केषांचिन्मते न ॥ क्षिणोति-क्षेणोति । क्षेणिता । अक्षेणीत् । अक्षित-अक्षेणिष्ट ।

“जनसनस्त्रनां सम्बल्लोः” इति नस्यात्वे दीर्घं च कृते थासः सस्य स्त्वे, रेफस्य विसर्गे  
च कृते ‘असाथाः’ इति । सिचो लोपाभावे सिचः स इटि सस्य क्त्वे ष्टुत्वे च कृते  
‘असनिष्ठाः’ इति । क्षणोति । चण्धातोर्लटि लटो लः स्थाने तिपि, तिपः “तिङ्शि-  
त्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तं प्रबाध्य उपत्यये “सार्वधातु-  
कार्वाधातुकयोः” इति गुणे ‘चणोति’ इति । क्षणुते । लटो लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये  
उत्वे टेरत्वे च कृते ‘चणुते’ इति । लिटि-चङाण, चङणे । लुटि-चणितासि, चणि-  
तस्ते । लुटि-चणिष्यति, चणिष्यते । लोटि-चणोतु, चणुताम् । लङि-अचणीत्, अच-  
णुत । लिङि-चणुयात्, चण्वीत । आशिषि-चणुयात्, चणिषीष्ट । अचणीत् । चण्धातो-  
र्लुङि, लुङो लः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे “इतश्च” इति तिप इकारलोपे च्लौ, च्लेः  
सिच्चादेशे इचावितौ, सिचः सकारस्य “आर्धधातुकस्येड्वल्लदेः” इतीदाममे च कृते  
“अस्तिसिचोऽप्युक्ते” इतीति “इट ईटि” इति सिचो लोपे, कृदौ प्राप्तायां “इयन्त-  
चणञ्जगृणिश्चोदिताम्” इति निषेधे ‘अचणीत्’ इति । अचणिष्टाम्, अचणिषुः ।  
अचणीः, अचणिष्टम्, अचणिष्ट । अचणिषम्, अचणिष्व, अचणिष्म । अचत । चण-  
धातोर्लुङि आत्मनेपदे तप्रत्यये, च्लौ, च्लेः सिचि, इचावितौ, “तनादिभ्यस्तथासोः”  
इति सिचो लुकि, अनुनासिकणलोपे च कृते अडाममे-‘अचत’ इति । सिचो लोपाभावे  
इटि सस्य क्त्वे ष्टुत्वे अडाममे च कृते ‘अचक्षिष्ट’ इति । अचणिषाताम् । अचणिषत ।  
अचथाः-चणुधातोर्लुङि, लुङो लः स्थाने थासि, च्लौ, च्लेः सिच्चादेशे, इचावितौ  
“तनादिभ्यस्तथासोः” इति सिचो लुकि अनुनासिकणलोपे च कृते अङ्गस्य अडाममे  
‘अचथाः’ इति । सिचोलोपाभावे इटि सस्य क्त्वे ष्टुत्वे च कृते अडाममे ‘अच-  
णिष्ठाः’ इति । अचणिषायाम्, अचणिष्वम् । अचणिषि, अचणिष्वहि, अचणिष्महि ।  
क्षिणोति । उकारेत्सञ्ज्ञकचिण्धातोर्लटि, लिटो लः स्थाने तिपि, उपत्यये “संज्ञापूर्वको  
विधिरनित्यः” इति पक्षे गुणाभावे ‘क्षिणोति’ इति । “संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः” इति  
पक्षाभावे उपत्यये परे लघूपधगुणे कृते ‘क्षेणोति’ इति । क्षेणिता । चिण्धातोर्लुटिस्तिषि  
तात्प्रत्यये तिपो ङादेशे ङित्वाट्टिलोपे इटि गुणे च कृते ‘क्षेणिता’ इति । क्षेणितासि,  
क्षेणितासे । क्षेणिष्यति, क्षेणिष्यते । क्षिणोतु-क्षेणोतु । क्षिणुताम् । अक्षिणीत्-अक्षेणीत् ।  
अक्षिणुत । क्षिणुयात्, क्षिण्वीत । क्षीयात्, क्षेणिषीष्ट । अक्षेणीत् । क्षिणधातोर्लुङि,  
लुङो लः स्थाने तिपि, अडाममे अनुबन्धलोपे “इतश्च” इति तिप इकारस्य लोपे,  
च्लौ, च्लेः सिच्चादेशे इचावितौ “आर्धधातुकस्येड्वल्लदेः” इत्यनेनेदाममे “अस्तिसि-  
चोऽप्युक्ते” इतीदाममे च कृते “इट ईटि” इति । सिचः सस्य लोपे “इयन्त-चणञ्जगृणिश्चोदिताम्”

दृष्टु अक्षणे ॥ ५ ॥ तृणोति-तर्णोति । तृणुते-तर्णुते ॥ कुर्वन् करणे ॥ ६ ॥ करोति ॥ अत उत्सार्वधातुके ६।४।११० उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽकारस्य उत्सा-त्सार्वधातुके क्ङिति । कुरुतः ॥ न भकुर्बुराम् ८।२।७६ भस्य कुर्बुरोऽधोपधाया न दीर्घः । कुर्वन्ति ॥ नित्यं करोतेः ६।४।१०८ करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपः स्यात् भ्वोः परयोः । कुर्वः । कुर्मः । कुरुते । चकार । चक्रे । कर्ता ।

च" इति गुणे सवर्णदीर्घे च कृते 'अक्षेणीत्' इति । अक्षित । चिणधातोर्बुद्धि, लुङो लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये च्लौ च्लेः सिजादेशे इचावितौ "तनादिभ्यस्तथासोः" इति सिचो लुकि अनुनासिकणलोपे अडागमे च कृते 'अक्षित' इति । सिचो लोपाभावे सिचः, सस्य इटि षत्वे ष्टुत्वे गुणे अडागमे च कृते 'अक्षेणिष्ट' इति सिद्धयति । तृणोति । तृणधातोर्लट्स्तिपि अनुबन्धलोपे उप्रत्यये गुणे च कृते 'तृणोति' इति । संज्ञापूर्वकविधेरनित्याभावपक्षे—“सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “तर्णोति” । तर्णुते । तृणधातोर्लट्लकारे, लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये “तनादिभ्य उः” इत्युप्रत्यये संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वात् गुणाभावे ढेरेत्वे च कृते 'तृणुते' इति । पक्षे—उप्रत्यये लघूपधगुणे च कृते 'तर्णते' इति । करोति । कृधातोर्लट्स्तिपि सार्वधातुकत्वे, शपम्बाधित्वा “तनादिभ्य उः” इत्युप्रत्यये उकारस्यार्धधातुकत्वात् “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे रपरे उकारस्यापि गुणे कृते 'करोति' इति । अत उत् । उप्रत्ययान्तस्येति । “उतश्च प्रत्ययात्” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । कुरुतः । कृधातोर्लटि, लटो लः स्थाने तस्प्रत्यये “तनादिभ्य उः” इत्युविकरणे ऋकारस्य गुणे रपरे च कृते 'कुरुतस्' इति जाते “अत उत्सार्वधातुके” इत्यनेन कृञोऽकारस्योत्वे च कृते । 'कुरुतः' इति सिद्धयति । नभकुर्बुराम् । “वोरूपधायाः इत्यतः उपधाया इति दीर्घ इति चानुवर्तते । तदाह—भस्येत्यादिना । कुर्वन्ति । कृधातोर्लट्लकारे क्षिप्रप्रत्यये “क्षोऽन्तः” इत्यनेन क्षेरन्तादेशे “कर्तरि शप्” इति शपं बाधित्वा उकारप्रत्यये गुणे रपरे “अत उत्सार्वधातुके” इत्यनेनाऽकारस्य उत्वे “इको यणचि” इत्यनेन यणि च कृते “हलि च” इत्यनेन रेफान्तस्योपधाया दीर्घत्वे प्राप्ते “न भकुर्बुराम्” इति दीर्घत्वनिषेधे ‘कुर्वन्ति’ इति रूपम् । करोषि, कुरुयः, कुरुय । करोमि । नित्यं करोतेरिति । “उतश्च प्रत्ययात्” इत्यनुवर्तते, “लोपश्चास्यान्यतरस्याम्” इत्यतो लोप इति, भ्वोरिति च । तदाह—करोतेरिति । कुर्वः । कृधातोर्लटि, लटो लः स्थाने वसादेशे “तनादिभ्य उः” इत्युविकरणे तस्य आर्धधातुकत्वात् “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति ऋकारस्य गुणे रपरे च कृते “अत उत्सार्वधातुके” इत्यनेनाऽकारस्य उकारे “लोपश्चास्यान्यतरस्याम्” इत्यनेन उकारस्य लोपविकल्पे प्राप्ते “नित्यं करोतेः” इत्यनेन नित्यल्येपे कृते सस्य स्त्वे रेफस्य विसर्गे च कृते ‘कुर्वः’ इति सिद्धयति । एवं—कुर्मः इति । कुरुते । कृधातोर्लटि लटो लः स्थाने आत्मनेपदे तादेशे “तनादिभ्य उः” इत्युप्रत्यये गुणे रपरे च

करिष्यति । करिष्यते । करोतु । कुरुताम् । अकरोत् । अकुरुत ॥ ये च ६।४।

कृते अकारस्योत्वे ढेरेत्वे च कृते 'कुरुते' इति सिद्धयति । कुर्वाते, कुर्वते । कुरुषे, कुर्वाथे, कुरुष्वे । कुर्वे, कुर्वहे, कुर्महे । चकार । कृधातोर्लिटि, लः स्थाने तिपि तिपो णलि च कृते "लिटि धातोरनभ्यासस्य" इत्यनेन द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् उरदत्वे रपरि च कृते "हलादिः शेषः" इत्यनेन रलोपे "कुहोरुचुः" इति चुत्वे "अचो ङिति" इत्यनेन घृद्धौ 'चकार' इति सिद्धयति । चक्रतुः, चक्रुः । चकर्थ, चक्रथुः, चक्र । चकार-चकर, चकृव, चकृम । चक्रे । कृधातोर्लिटि, लः स्थाने आत्मनेपदे तादेशे धातोर्द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् "उरत्" इत्यत्वे रपरि च कृते रस्य "हलादिः शेषः" इत्यनेन लोपे "कुहोरुचुः" इत्यभ्यासस्य चुत्वे "लिटस्तन्मयोरेशिरेचु" इत्यनेन एशादेशे "इको यणचि" इत्यनेन यणि च कृते 'चक्रे' इति सिद्धयति । चक्राते, चक्रिरे । चकृषे, चक्राथे, चकृद्वे । चक्रे, चकृवहे, चकृमहे । कर्त्ता । कृधातोर्लिटि, लः स्थाने तिपि "स्यतासी लृटोः" इत्यनेन तासप्रत्यये, तिपो ङादेशे । क्तिवाट्टिलोपे गुणे च कृते 'कर्त्ता' इति सिद्धयति । कर्त्तारौ, कर्त्तारः । कर्त्तासि, कर्त्तास्यः, कर्त्तास्थ । कर्त्तास्मि, कर्त्तास्वः, कर्त्तास्मः । आत्मनेपदे तु-कर्त्ता, कर्त्तारौ, कर्त्तारः । कर्त्तासे, कर्त्तासाथे, कर्त्ताध्वे । कर्त्ताहि, कर्त्तास्वहे, कर्त्तास्महे । करिष्यति । कृधातोर्लिटि, लृटो लः स्थाने तिपि पकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते "स्यतासी लृटोः" इत्यनेन स्यप्रत्यये "ऋद्धनोः स्ये" इतीटि गुणे सस्य षत्वे च कृते 'करिष्यति' इति सिद्धयति । करिष्यतः, करिष्यन्ति । करिष्यसि, करिष्यथः, करिष्यथ । करिष्यामि, करिष्यावः, करिष्यामः । करिष्यते । कृधातोर्लिटि, लृटो लः स्थाने आत्मनेपदे तादेशे "स्यतासि" इत्यनेन स्यप्रत्यये इटि च कृते गुणे रपरि सस्य षत्वे च कृते 'करिष्यते' इति । करिष्येते, करिष्यन्ते । करिष्यसे, करिष्येथे, करिष्यध्वे । करिष्ये, करिष्यावहे, करिष्यामहे । करोतु । कृधातोर्लिटि, लृटो लः स्थाने तिपि, सार्वधातुकसंज्ञायां अपि प्राप्ते तन्वाधित्वा "तनादिकृम्य उः" इत्युप्रत्यये "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इत्यनेन गुणे "एरुः" इत्यनेन इकारस्य उत्वे 'करोतु' इति । कुरुताम्, कुर्वन्तु । कुरु-कुरुतात्, कुरुतम्, कुरुत । करवाणि, करवाव, करवाम । कुरुताम् । कृधातोर्लिटि लः स्थाने आत्मनेपदे तादेशे "तनादिकृम्य उः" इत्युप्रत्यये गुणे रपरि ढेरेत्वे च कृते 'कुरुते' इति जाते "अत उत्सार्वधातुके" इत्यकारस्य उत्वे "आमेतः" इति ढेरेत्त्वस्यामि च कृते 'कुरुताम्' इति सिद्धयति । कुर्वाताम्, कुर्वताम् । कुरुष्व, कुर्वाथाम्, कुरुष्वम् । करवै, करवावहै, करवामहै । अकरोत् । कृधातोर्लिटि, लृटो लः स्थाने तिपि तन्वाधित्वा "तनादिकृम्य उः" इत्युप्रत्यये "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इत्यनेन गुणे रपरि पुनः उकारस्वापि गुणे च कृते तिपि हलोपे 'अकरोत्' इति सिद्धयति । अकुरुताम्, अकुर्वन् । अकरोः, अकुरुतम्, अकुरुत । अकरवम्, अकुर्वं, अकुर्मं । अकुरुत । कृधातोर्लिटि, लृटो लः स्थाने आत्मनेपदे तादेशे "तनादिकृम्य उः" इत्युप्रत्यये गुणे रपरि च

१०६ कृञ उलोपः स्यात् यादौ प्रत्यये परे । कुर्यात् । कुर्वीत । क्रियात् । कृषीष्ट ।  
अकार्षीत् । अकृत । अकरिष्यत् । अकरिष्यत् । सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे

कृते “अत उत्सार्वधातुके” इत्यकारस्य उकारे अडागमे च कृते ‘अकुरुत्’ इति ।  
अकुर्वाताम्, अकुर्वत् । अकुरुथाः, अकुर्वायाम्, अकुरुध्वम् । अकुर्वि, अकुर्वहि,  
अकुर्महि । ये चेति । “लोपश्चास्यान्यतरस्याम्” इत्यतो लोप इति, अस्येति चानुवर्तते ।  
अस्येत्यनेन पूर्वसूत्रे उत इत्युपात्तः परास्मृत्यते । “नित्यं करोतेः” इत्यतः करोतेरित्य-  
नुवर्तते । अङ्गाक्षिसः प्रत्ययो यकारेण विशेष्यते । तदादिविधिः । तदाह-  
कृञ उलोप इति । कुर्यात् । कृधातोर्विधिलिङि, लिङो लः स्थाने तिपि  
अनुबन्धलोपे, “तनादिकृन्भ्य उः” इति उविकरणे तस्य आर्धधातुकत्वात्  
गुणे रपरे च कृते ‘कुरु ति’ इति जाते “अत उत्सार्वधातुके” इति ककारोत्तरवर्तिन  
अकारस्य उकारे यासुडागमे उटावितौ “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे  
‘कुरु या त्’ इति जाते “ये च” इत्यनेन उकारस्य लोपे च कृते ‘कुर्यात्’ इति ।  
कुर्याताम्, कुर्युः । कुर्याः, कुर्यातम्, कुर्यात् । कुर्याम्, कुर्याव, कुर्याम । कुर्वीत । कृधा-  
तोर्विधिलिङि, लिङो लः स्थाने आत्मनेपदे तादेशे शपं बाधित्वा उकारे विकरणे गुणे  
रपरे च कृते ‘कृ उ त’ इति जाते “अत उत्सार्वधातुके” इति ककाराकारस्य उत्वे च  
कृते “लिङः सीयुट्” इति सीयुडागमे अनुबन्धलोपे “लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे  
“लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे “इको यणचि” इति यणि च कृते ‘कुर्वीत’  
इति । कुर्वाताम्, कुर्वीरन् । कुर्वीथाः, कुर्वीयाथाम्, कुर्वीध्वम् । कुर्वीय, कुर्वीवहि,  
कुर्वीमहि । क्रियात् । कृधातोराशीर्लिङि, लिङो लः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे तिपस्ते  
यासुडागमे उटावितौ “इतश्च” इति तिप इकारस्य लोपे कृते “स्कोः संयोगाद्योरन्ते  
च” इति सलोपे “रिङ्शयग्लिङ्शु” इत्यनेन श्रुतो रिडादेशे कृते ‘क्रियात्’ इति ।  
क्रियास्ताम्, क्रियासुः । क्रियाः, क्रियास्तम्, क्रियास्त । क्रियासम्, क्रियास्व, क्रि-  
यास्म । कृषीष्ट । कृधातोराशीर्लिङि, लिङो लः स्थाने आत्मनेपदे तादेशे “लिङः सीयुट्”  
इत्यनेन सीयुडागमे उटावितौ, यलोपे कृते “सुट् तिथोः” इत्यनेन सुटि उटो लोपे  
उभयोः सकारयोरिणपरकत्वात् षत्वे कृते, कृते च षट्त्वे, गुणे प्राप्ते “उश्च” इत्यनेन  
लिङः कित्वात् “ङिति च” इति तन्निषेधे ‘कृषीष्ट’ इति सिद्धयति । कृषीयास्ताम्,  
कृषीरन् । कृषीष्ठाः, कृषीयास्थाम्, कृषीध्वम् । कृषीय, कृषीवहि, कृषीमहि । अका-  
र्षीत् । कृधातोर्लुङि लुङो लः स्थाने तिपि “हलन्त्यम्” इति तिपः पकारस्येत्संज्ञायां  
लोपे च कृते “ल्लि लुङि” इति ल्लौ “ल्लेः सिच” इति सिजादेशे इचावितौ, सिचः  
सस्य आर्धधातुकत्वादिति प्राप्ते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इति निषिद्धे “इतश्च”  
इति तिपस्तेरिणपरकत्वात् लोपे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इतीडागमे, “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु”  
इति वृद्धौ सस्य षत्वे च कृते, अङ्गस्य अडागमे अनुबन्धलोपे टित्वाद्भस्याषावयवे



६।१।१३७ समवाये च ६।१।१३८ सम्परिपूर्वस्य करोतेः सुट् स्यात् मूषले  
सङ्घाते चार्थे । संस्करोति अलङ्करोतीत्यर्थः । संस्कुर्वन्ति । सङ्घीभवन्तीत्यर्थः ।  
सम्पूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट् । “संस्कृतं भक्षाः” इति शापकात् ॥ उपात्त्रनि-  
यत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च ६।१।१३९ उपात्कनः सुट् स्यादेष्वर्थेषु चात्प्रगु-  
क्तयोरर्थयोः । प्रतिबन्तो-गुणाधानम् । विकृतमेव वैकृतं-विकारः । वाक्याध्याहारः-  
आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम् । उपस्कृता कन्या । उपस्कृता ब्रह्मणाः । एधोदकस्योप-  
स्कृते । उपस्कृतं मुङ्क्ते । उपस्कृतं व्रते । वनु याचने ॥ ७ ॥ वनुते । ववने ।

जाते ‘अकार्षात्’ इति सिद्धयति । अकार्षाम्, अकार्षुः । अकार्षीः, अकार्षम्,  
अकार्षं । अकार्षम्, अकार्ष्वं, अकार्षम् । इत्यवशिष्टरूपाणि । अकृत । कृधातोर्लुङि लः  
स्थाने आत्मनेपदे तादेशे अङ्गस्य अडागमे च कृते च्लौ, च्लेः सिजादेशे च कृते इच्चा-  
वितौ “उञ्च” इति सिचः कित्वादगुणाभावे “इस्वादङ्गात्” इति सलोपे च कृते ‘अकृत’  
इति सिद्धयति । अकृषाताम्, अकृषत् । अकृथाः, अकृषायाम्, अकृध्वम् । अकृषि,  
अकृष्वहि, अकृष्महि । अकरिष्यत् । कृधातोर्लुङि लुङ् लः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे  
अडागमे कृते स्वप्रत्यये “ऋद्धनोः स्ये” इति इटि च कृते, गुणे सस्य षत्वे “इतश्च”  
इति तिपस्तेरिकारस्य लोपे ‘अकरिष्यत्’ इति । अकरिष्यताम्, अकरिष्यन् । अक-  
रिष्यः, अकरिष्यतम्, अकरिष्यत । अकरिष्यम्, अकरिष्याव, अकरिष्याम । अक-  
रिष्यत । कृधातोर्लुङि, लः स्थाने तादेशे अङ्गस्य अडागमे कृते “स्यतासी लुलुटोः” इति  
स्वप्रत्यये तस्यार्धधातुकत्वात् “आर्धधातुकस्येड् वलादेः” इतीडागमे प्राप्ते “एकाच  
उपदेशेऽनुदात्तात्” इति निषिद्धे सति “ऋद्धनोः स्ये” इतीडागमे सस्य षत्वे गुणे रपरे  
च कृते ‘अकरिष्यत’ इति सिद्धयति । अकरिष्येताम्, अकरिष्यन्त । अकरिष्यथाः,  
अकरिष्येयाम्, अकरिष्यध्वम् । अकरिष्ये, अकरिष्यावहि, अकरिष्यामहि । सम्परिभ्या-  
मिति । अत्र सूत्रे एवं “समवाये च” इत्यत्र च “सुट्कात्पूर्वः” इत्यतः “नित्यं करोतेः”  
इत्यतश्च तदनुवृत्तेरिति भावः । संस्करोति । इत्यत्र सम्पूर्वस्य कृधातोः “सम्परिभ्यां  
करोतौ भूषणे” इति सुटि, उटावितौ टित्वादा वयवे च जाते ‘संस्करोति’ इति  
सिद्धयति । संस्कुलः, संस्कुर्वन्ति । इत्यादि । उपस्कृता कन्येति । उपेत्युपसर्गपूर्व-  
कात् कृधातोः ऋप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे स्त्रीत्वविवक्षायां टापि ततः प्रकृतसूत्रेण सुटि  
च कृते उटावितौ ‘उपस्कृता कन्या’ इति ‘अलङ्कृता’ इति हि तस्यार्थः । एवं  
सर्वत्र सुटि कृते ज्ञेयम् । ‘उपस्कृता ब्रह्मणाः’ सङ्घीभूता इत्यर्थः । ‘एधो दक-  
स्योपस्कृते’ गुणमाचत्ते । ‘उपस्कृतं मुङ्क्ते’ विकृतमित्यर्थः । ‘उपस्कृतं व्रते’ वाक्या-  
ध्याहारेण व्रते इत्यर्थः । वनुते । वनु याचने इति धातोर्लुङि लः स्थाने आत्मनेपदे  
तादेशे ऋप्रत्याधित्वा “तनादिकृष्ण्य उः” इति उविकरणे कृते “टित आत्मनेपदाती  
देरे” इति टेरेत्वे ‘वनुते’ इति सिद्धयति । वन्वाते, वन्वते । वनुषे, वन्वाषे, वनुषीः

मनु अवबोधने ॥ ८ ॥ मनुते । मेने । मनिता । मनिष्यते । मनुताम् । अमनुत ।  
मन्वीत-मनिषीष्ट । अमनिष्ट-अमत । अमनिष्यत ॥ इति तनादयः ।

वन्वे, वनुवहे-वन्वहे, वनुमहे-वन्महे । ववने । उकारेत्संज्ञकवनूधातोर्लिटि, लः स्थाने तादेशे “लिटि घातोरभ्यासस्य” इति द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां “हलादिः शेषः” इत्यनेन लोपे “लिटस्तद्वयोरेशिरेच्” इत्यनेन एसादेशे “अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि” इत्येत्वे, अभ्यासलोपे च प्राप्ते “न शसददवादिगुणानाम्” इत्यनेन निषिद्धे ‘ववने’ इति रूपं सिद्धयति । ववनाते, ववनिरे । ववनिषे, ववनाथे, ववनिष्वे । ववने, ववनिवहे, ववनिमहे । एवम्-वनिता । वनिष्यते । वनुताम् । अवनुत । वन्वीत, वनिषीष्ट, अवत, अवनिष्ट । अवनिष्यत् । अवनिष्यत । इति । मनुते । उकारेत्संज्ञक मनुधातोर्लिटि लः स्थाने आत्मनेपदे तादेशे “तनादिकृष्ण्य उः” इत्युप्रत्यये टेरत्वे च कृते ‘मनुते’ इति रूपम् । मन्वाते, मन्वते । मनुषे, मन्वाथे, मनुष्वे । मन्वे, मनुवहे-मन्वहे, मनुमहे-मन्महे । मेने । मनुधातोर्लिटि लः स्थाने ते, धातोर्द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्याससंज्ञायां अभ्यासकार्ये च कृते तप्रत्ययस्यैसादेशे ‘म मन् ए’ इति जाते “अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि” इत्यनेन एत्वेऽभ्यासलोपे च कृते ‘मेने’ इति सिद्धयति । मेनाते, मेनिरे । मेनिषे, मेनाथे, मेनिष्वे । मेने, मेनिवहे, मेनिमहे । मनिता—मनुधातोर्लिटि लुटो लः स्थाने ते, “स्यतासी लृलुटोः” इत्यनेन तासप्रत्यये तस्य ङादेशे ङिवाट्टिलोपे च कृते, तास आर्धधातुकत्वात् इडागमे ‘मनिता’ इति सिद्धयति । मनितारौ, मनितारः, इत्यादि । मनिष्यते—मनुधातोर्लिटि तादेशे “स्यतासी लृलुटोः” इत्यनेन स्यप्रत्यये इडागमे च कृते सकारस्य षत्वे टेरत्वे च कृते ‘मनिष्यते’ इति रूपं सिद्धयति । मनिष्येते, मनिष्यन्ते, इत्यादि । मनुताम् । मनुधातोर्लिटि लः स्थाने तादेशे, तस्मिन्परे उकारविकरणे च कृते “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरत्वे “आमेतः” इत्यनेन एकारस्यामि च कृते ‘मनुताम्’ इति सिद्धयति । मन्वाताम्, मन्वताम् । मनुष्व, मन्वाथाम्, मनुष्वम् । मनवे, मनवावहे, मनवामहे । अमनुत । मनुधातोर्लिटि लङ्गे लः स्थाने तादेशे अपि प्राप्ते तन्बाधित्वा “तनादिकृष्ण्य उः” इत्युकारविकरणे कृते अडागमे च कृते ‘अमनुत’ इति सिद्धयति । अमन्वाताम्, अमन्वत । अमन्वथाः, अमन्वाथाम्, अमनुष्वम् । अमन्वि, अमनुवहि-अमन्वहि, अमनुमहि-अमन्महि । मन्वीत । मनुधातोर्विधिलिङि लिङ्गे लः स्थाने तादेशे “तनादिकृष्ण्य उः” इत्युकारविकरणे “लिङ्गः सीयुट्” इति सीयुटि उटावितौ “लिङ्गः सलोपोऽनन्वबस्य” इति सलोपे “लोपो व्योर्वलि” इति बलोपे च कृते ‘मन् उ ई त’ इति जाते “इको यणचि” इति यणि च कृते ‘मन्वीत’ इति सिद्धयति । मन्वीयाताम्, मन्वीरन् । मन्वीथाः, मन्वीथायाम्, मन्वीष्वम् । मन्वीव, मन्वीवहि, मन्वीमहि । मनिषीष्ट । मनुधातोराङी-लिङि, लिङ्गे लः स्थाने तादेशे तस्य सीयुटि च कृते उटावितौ, सिनुट इडागमे “युट्

## अथ क्रयादयः ।

डुक्रीञ् इव्यविनमये ॥ १ ॥ क्रयादिभ्यः श्ना ३।१।८१ शपोऽपवादः ॥  
क्रीणाति । “ई हृत्थघोः” । क्रीणीतः । “श्नाभ्यस्तयोरतः” । क्रीणन्ति । क्रीणासि ।  
क्रीणीयः । क्रीणीथ । क्रीणामि । क्रीणीवः । क्रीणीमः । क्रीणीते । क्रीणाते । क्रीणते ।

तिथोः” इति सुडागमे च कृतेऽनुबन्धलोपे टित्वात्तस्याद्यावये च जाते ‘मन् इ सी  
स् त’ इति जाते इयोः सकारयोः षत्वे ष्टुत्वे च कृते ‘मनिषीष्ट’ इति रूपं सिद्ध्यति ।  
मनिषीयास्ताम्, मनिषीरन् । मनिषीष्टाः, मनिषीयास्थाम्, मनिषीष्वम् । मनिषीय,  
मनिषीवहि, मनिषीमहि । लुङि परस्मैपदे अमानीत्-अमनीत्, इति । अमनिष्ट ।  
मन्धातोर्लुङि लुङो लः स्थाने तादेशे “च्छि लुङि” इति च्छी “च्छे, सिच” इति  
सिजादेशे इचावितौ सिचः सकारस्य आर्धधातुकत्वात् इडागमे षत्वे ष्टुत्वे अडागमे च  
कृते, ‘अमनिष्ट’ इति सिद्ध्यति । पठे “तनादिभ्यस्तथासोः” इति सिचः सकारस्य  
लोपे “अनुदात्तोपदेश” इत्यादिना नलोपे कृते ‘अमत’ इति सिद्ध्यति । अमनिषाताम्,  
अमनिषत । अमथाः-अमनिष्ठाः । अमनिषाथाम्, अमनिष्वम् । अमनिषि, अमनि-  
ष्वहि, अमनिष्महि । लुङि परस्मैपदे-‘अमनिष्यत्’ इति । अमनिष्यत । मन्धातोर्लुङि,  
लुङो लः स्थाने तादेशे “स्यतासी लृटोः” इति स्यप्रत्यये तस्यार्धधातुकत्वात् इडा-  
गमे च कृते, सकारस्य षत्वे अडागमे च जाते ‘अमनिष्यत’ इति सिद्ध्यति । अमनि-  
ष्येताम्, अमनिष्यन्त अमनिष्यथाः, अमनिष्येथाम्, अमनिष्यध्वम् । अमनिष्ये, अम-  
निष्यावहे, अमनिष्यामहे । इति तनादयः ।

क्रयादिभ्यः श्नेति । कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे क्रयादिभ्यः श्नाप्रत्ययः स्यात् स्वार्थे ।  
क्रीणाति । ङकार-उकार-अकारेऽसंज्ञकक्रीधातोर्लटि, लटो लः स्थाने तिपि, शपि प्राप्ते  
तम्बाधित्वा “क्यादिभ्यः श्ना” इति श्नाप्रत्यये अनुबन्धलोपे शित्वात्सार्वधातुकत्वे  
क्रीधातुगतस्य ईकारस्य “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे प्राप्ते किन्तु श्ना-  
प्रत्ययस्य अपित्सार्वधातुकत्वेन “सार्वधातुकमपित्” इति क्तिवात् “गिङ्गिति च”  
इति निषेधे “अटकुप्वाडनुभ्यवायेऽपि” इति नकारस्य णत्वे च कृते ‘क्रीणाति’ इति  
सिद्ध्यति । क्रीणीतः । क्रीधातोर्लटि, लटो लः स्थाने तसि, श्नाप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे  
“ई हृत्थघोः” इति श्नागताकारस्य ईकारे नस्य णत्वे च कृते-‘क्रीणीतः’ इति ।  
क्रीणन्ति । क्र धातोर्लटि, लटो लः स्थाने शि आदेशे, श्नाविकरणे च कृते शलोपे शेर-  
न्तादेशे “श्नाभ्यस्तयोरतः” इत्याकारलोपे नस्य णत्वे च ‘क्रीणन्ति’ इति सिद्ध्यति ।  
सिपि-‘क्रीणासि’ इति रूपम् । थसि-श्नाप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “ई हृत्थघोः” इतीकारे  
सस्य णत्वे रेफस्य विसर्गे च कृते ‘क्रीणीयः’ इति रूपं सिद्ध्यति । एवम्-थप्रत्यये  
‘क्रीणीथ’ इति । क्रीणामि । क्रीधातोर्लटि, लटो लः स्थाने मिपि अनुबन्धलोपे श्नाप्रत्यये  
‘क्रीणामि’ इति रूपे च कृते श्नोक्तिवाद्गुणामावे नस्य णत्वे च ‘क्रीणामि’ इति

क्रीणीषे । क्रीणाये । क्रीणीध्वे । क्रीणे । क्रीणीवहे । क्रीणीमहे । चिक्राय ।  
चिक्रियतुः । चिक्रियुः । चिक्रेथ-चिक्रियथ । चिक्रिये । केता । केप्यति । केप्यते ।

सिद्धयति । लटो लः स्थाने वसि रनाप्रत्यये कृतेऽनुबन्धलोपे नकारस्य णत्वे च कृते  
“ई हल्यघोः” इतीत्वे सस्य हत्वे विसर्गे च ‘क्रीणीवः’ इति । मसि—‘क्रीणीमः’ इति  
रूपं सिद्धयति । क्रीणीते । क्रीधातोर्लटि, लटो लः स्थाने आत्मनेपदे तादेशे शपि प्राप्ते  
तम्बाधित्वा रनाप्रत्यये शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते “ई हल्यघोः” इतीकारे टेरेत्वे नस्य  
णत्वे च कृते ‘क्रीणीते’ इति सिद्धयति । क्रीणाते—क्रीधातोर्लटि, लटो लः स्थाने  
आतामि रनाप्रत्यये शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते नस्य णत्वे टेरेत्वे “रनाभ्यस्त-  
योरातः” इत्याकारस्य लोपे संयोगे च कृते ‘क्रीणाते’ इति सिद्धयति । क्रीणते ।  
क्रीधातोर्लटि, झप्रत्यये “कयादिभ्यः रना” इति रनाप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे नस्य णत्वे  
“आत्मनेपदेष्वनतः” इति शस्यादादेशे “रनाभ्यस्तयोरातः” इत्याकारस्य लोपे टेरेत्वे  
च कृते ‘क्रीणते’ इति सिद्धयति । लटि थासि रनाप्रत्यये अनुबन्धलोपे नस्य णत्वे  
“थासः से” इति ‘से’ आदेशे “ई हल्यघोः” इतीत्वे सस्य णत्वे च ‘क्रीणीषे’ इति । लटि  
लः स्थाने आतामि रनाप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे नस्य णत्वे “रनाभ्यस्तयोरातः” इत्या-  
कारस्य लोपे टेरेत्वे च कृते ‘क्रीणाये’ इति । क्रीणीध्वे । क्रीधातोर्लटि ध्वमि-रनाप्रत्यवे-  
ऽनुबन्धलोपे नस्य णत्वे “ई हल्यघोः” इतीत्वे टेरेत्वे च कृते ‘क्रीणीध्वे’ इति । क्रीणे ।  
इटि-रनाप्रत्यये शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते नस्य णत्वे “रनाभ्यस्तयोरातः” इत्या-  
कारस्य लोपे टेरेत्वे च कृते ‘क्रीणे’ इति । क्रीणीवहे । क्रीधातोर्लटि वहिप्रत्यये शपि  
प्राप्ते तम्बाधित्वा रनाप्रत्यये, शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते नस्य णत्वे ‘ना’ इत्यस्य  
“ईहल्यघोः” इतीकारे टेरेत्वे च कृते ‘क्रीणीवहे’ इति । एवम्-महिङ्प्रत्यये सति  
‘क्रीणीमहे’ इति बोध्यम् । चिक्राय । क्रीधातोर्लटि लिटो लः स्थाने तिपि, तिपः स्थाने  
“परस्मैपदानाम्” इति णलि कृते अनुबन्धलोपे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति  
द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां “ह्रस्वः” इत्यनेन ह्रस्वे च कृते “हलादिः शेषः” इति लोपे,  
चुत्वे वृद्धौ “एचोऽयवायावः” इत्यायादेशे च ‘चिक्राय’ इति सिद्धयति । चिक्रियतुः ।  
क्रीधातोर्लटस्तसि तसोऽनुसि, धातोर्द्वित्वे कृतेऽभ्याससंज्ञायां रलोपे कस्य चुत्वे ‘चिक्री  
अतुस्’ इति जाते “अचिरनुधातुभ्रवां योरियकुवद्धौ” इतीयङादेशे सस्य हत्वे रेफस्य  
विसर्गे च कृते ‘चिक्रियतुः’ इति रूपम् । चिक्रियुः । क्रीधातोर्लिटो श्रौ, शेः स्थाने उसि,  
धातोर्द्वित्वे, अभ्याससंज्ञायां “हलादिः शेषः” इति रलोपे च कृते “ह्रस्वः” इति ह्रस्वे,  
ककारस्य चुत्वे ‘चिक्री उस्’ इति जाते इयङादेशे च कृते सस्य हत्वे रेफस्य विसर्गे  
च कृते ‘चिक्रियुः’ इति । चिक्रेथ । क्रीधातोर्लटि, सिपि थलि च कृते द्वित्वेऽभ्यास-  
संज्ञायां लोपे ह्रस्वे च कृते, चुत्वे च जाते, ऋदिनिबमादिकरूपेन इडभावे गुणे च कृते  
‘चिक्रेथ’ इति । इडागमपदे—‘चिक्री थ’ इत्यवस्थायां थल इटि गुणे अथि च कृते

क्रीणातु-क्रीणीतात् । क्रीणीताम् । अक्रीणात् । अक्रीणीत । क्रीणीयात् । क्रीणीत ।

‘चिक्रिय’ इति । चिक्रियथुः, चिक्रिय । चिक्राय-चिक्रिय, चिक्रियिव, चिक्रियिम । चिक्रिये । क्रीधातोर्लुङि लोटो लः स्थाने आत्मनेपदे तादेशे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां “हलादिः शेषः” इत्यादिहलः शेषे “ह्रस्वः” इति ह्रस्वे “कुहोश्चुः” इति चुत्वे तप्रत्ययस्यैवादेशे च कृते “अचि रनुधातु” इति इयङि ‘चिक्रिये’ इति सिद्धयति । चिक्रियाते, चिक्रियरे । चिक्रियिषे, चिक्रियाथे, चिक्रियिध्वे । चिक्रिये, चिक्रियिवहे, चिक्रियिमहे । क्रेता । क्रीधातोर्लुङि लोटो लः स्थाने तिपि तासप्रत्यये तासः आर्धधातुकत्वादिति प्राप्ते “एकाच” इति निषिद्धे तिपो ङादेशे द्वित्वाट्टिलोपे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे ‘क्रेता’ इति । क्रेष्यति । क्रीधातोर्लुङि, लोटो लः स्थाने तिपि स्यप्रत्यये गुणे षत्वे च कृते “क्रेष्यति” इति । आत्मनेपदे तप्रत्यये स्ये ढेरेत्वे षत्वे च कृते ‘क्रेष्यते’ इति । क्रीणातु । क्रीधातोर्लुङि, लोटो लः स्थाने तिपि, तिपः सार्वधातुकत्वात्प्राप्तं शप बाधित्वा रनाप्रत्यये शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते नस्य णत्वे “एरुः” इति तिप इकारस्य उत्वे च कृते ‘क्रीणातु’ इति रूपम् । पक्षे-“तुहोस्ता-तङाशिष्यन्यतरस्याम्” इति तातङि “ई ह्रस्वघोः” इतीकारे ‘क्रीणीतात्’ इति सिद्धयति । क्रीणीताम्, क्रीणन्तु । क्रीणीहि-क्रीणीतात्, क्रीणीतम्, क्रीणीत । क्रीणानि, क्रीणाव, क्रीणाम । क्रीणीताम् । क्रीधातोर्लुङि लोटो लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये षापि प्राप्ते तम्बाधित्वा रनाप्रत्यये कृतेऽनुबन्धलोपे तस्य सार्वधातुकत्वे “ई ह्रस्वघोः” इति रनः आकारस्य ईकारे ढेरेत्वे नस्य णत्वे च कृते “आमेतः” इत्येकारस्यामि च कृते ‘क्रीणीताम्’ इति सिद्धयति । क्रीणाताम्, क्रीणताम् । क्रीणीष्व, क्रीणाथाम्, क्रीणीध्वम् । क्रीणै, क्रीणावहै, क्रीणामहै । अक्रीणात् । क्रीधातोर्लुङि लोटो लः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे रनाप्रत्यये शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते “लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वङुदात्तः” इत्यङागमे नस्य णत्वे च जाते तिप इलोपे च ‘अक्रीणात्’ इति । अक्रीणीताम्, अक्रीणन् । अक्रीणाः, अक्रीणीतम्, अक्रीणीत । अक्रीणाम्, अक्रीणीव, अक्रीणीम । अक्रीणीत । क्रीधातोर्लुङि लोटो लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये तस्य कर्त्रर्थकसार्वधातुकत्वात् रनाप्रत्यये कृते शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते “ई ह्रस्वघोः” इतीत्वे नस्य णत्वे च कृते अङागमे ‘अक्रीणीत’ इति । अक्रीणाताम्, अक्रीणत । अक्रीणीथाः, अक्रीणाथाम्, अक्रीणीध्वम् । अक्रीणि, अक्रीणीवहि, अक्रीणीमहि । क्रीणीयात् । क्रीधातोर्विधिलिङि, लिङो लः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे रनाप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे यासुङागमे उटावितौ “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे “ई ह्रस्वघोः” इति रन आकारस्य ईत्वे तिप इलोपे च ‘क्रीणीयात्’ इति । क्रीणीत । विधिलिङि तप्रत्यये तस्य सार्वधातुकत्वात् शपम्बाधित्वा रनाप्रत्यये, लिङस्तस्य सीयुङागमे उटावितौ “लोपो व्योर्वलि” इति लोपो “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे “ई ह्रस्वघोः” इतीत्वे अत्वे च कृते

क्रीयात् । क्रेषीष्ट । अक्रेषीत् । अक्रेष्ट । अक्रेष्यत् । अक्रेष्यत । प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च ॥ २ ॥ प्रीणाति । प्रीणीते । श्रीञ् पाके ॥ ३ ॥ श्रीणाति । श्रीणीते । मीञ् हिंसायाम् ॥ ४ ॥ हिनुमीना ८।४।१५ उपसर्गस्थानिमित्तात्परस्यैतयोर्नस्य णः

‘क्रीणीत’ इति रूपम् । क्रीणीयाताम्, क्रीणीरन् । क्रीणीथाः, क्रीणीयाथाम्, क्रीणी-  
ष्वम् । क्रीणीय, क्रीणीवहि, क्रीणीमहि । क्रीयात् । क्रीघातोराशीर्लिङि लिङो लः स्थाने  
तिपि अनुबन्धलोपे यासुटि उटावितौ “पर्जन्यवलङ्घणप्रवृत्तिः” इति न्यायेन दीर्घस्यैव  
“अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः” इति दीर्घे, तिप इलोपे “स्कोः” इति सलोपे च ‘क्रीयात्’  
इति रूपम् । क्रेषीष्ट । आशीर्लिङि, लिङो लः स्थाने तप्रत्यये सोयुटि उटावितौ सुटि  
च कृते उटावितौ द्वयोः सकारयोः षत्वे ष्टुत्वे गुणे च कृते ‘क्रेषीष्ट’ इति रूपम् । अक्रे-  
षीत् । क्रीघातोर्लिङि लिङो लः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे अडागमे च कृते, च्लौ, च्लेः  
सिचि इचावितौ सस्य षत्वे “इतश्च” इति तिप इलोपे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति  
तिपस्तकारस्येडागमे च कृते “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति वृद्धौ ‘अक्रेषीत्’ इति  
सिद्धयति । अक्रेषाम्, अक्रेषुः । अक्रेषोः, अक्रेष्टम्, अक्रेष्ट । अक्रेषम्, अक्रेष्व,  
अक्रेष्म । अक्रेष्ट । क्रीघातोर्लिङि, लिङो लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये; च्लौ  
च्लेः सिचि च कृते इचावितौ गुणे सस्य षत्वे ष्टुत्वे अडागमे च कृते ‘अक्रेष्ट’  
इति रूपम् । अक्रेषाताम्, अक्रेषत । अक्रेष्टाः, अक्रेषाथाम्, अक्रेष्ट्वम् ।  
अक्रेषि, अक्रेष्वहि, अक्रेष्महि । अक्रेष्यत् । क्रीघातोर्लिङि लिङो लः स्थाने तिपि  
अनुबन्धलोपे अडागमे च कृते सप्रत्यये तस्य षत्वे अङ्गस्य गुणेतपि इलोपे च विहिते  
‘अक्रेष्यत्’ इति रूपम् । आत्मनेपदे-‘अक्रेष्यत’ इति । प्रीणाति । अकारेत्संज्ञकप्रीघा-  
तोर्लिङि, लिङो लः स्थाने तिपि शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा “क्रयादिभ्यः शना” इति आप्र-  
त्यये, शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते शित्वात्सार्वधातुकत्वात् “सार्वधातुकमपित्” इति  
क्षित्वात् ‘प्री’ इत्यस्य गुणामवे नस्य णत्वे च ‘प्रीणाति’ इति रूपं सिद्धयति । प्रीणीते ।  
प्रीघातोर्लिङि लिङो लः स्थाने तप्रत्यये शनाप्रत्यये च कृते शस्येत्संज्ञकत्वे लोपे च कृते “ई  
हस्यघोः” इतीत्वे नस्य णत्वे टेरेत्वे च कृते ‘प्रीणीते’ इति सिद्धयति । लिटि-प्रिप्राच,  
पिप्रिये । लुटि-प्रेता, लुटि-प्रेष्यते । लोटि-प्रीणातु, प्रीणीतात् । आत्मनेपदे-प्रीणी-  
ताम् । लङि-अप्रीणात्, अप्रीणीत । विधिलिङि-प्रीणीयात्, प्रीणीत । आशर्लिङि-  
प्रीयात्, प्रेषीष्ट । लुङि-अग्रंषीत्, अग्रेष्ट । लुङि-अग्रेष्यत्, अग्रेष्यत । इत्यादीनि  
रूपाणि । साधनिका तु स्वयम्भूता । श्रीणाति । अकारेत्संज्ञकप्रीघातोर्लिङि, लिङो लः  
स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे शनाप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे नस्य णत्वे ‘श्रीणाति’ इति । आत्म-  
नेपदे तु-“ई हस्यघोः” इतीत्वे टेरेत्वे च कृते-‘श्रीणीते’ इति । हिनुमीना । हिनु-  
मीना अनयोर्द्वन्द्वात् षष्ठीद्विवचनस्य आर्यो लुक् । “रषाभ्यां नो णः समानपदे” इत्य-  
नुवर्तते । “उपसर्गादसमासेऽपि ञोपदेशस्य” इत्यत उपसर्गादिति च तदाह—

स्यात् । प्रमीणाति । प्रमीणीते । “मीनाति” इत्यात्वम् । ममौ । मिम्यतुः । ममिथ-  
ममाथ । मिम्ये । माता । मास्यति । मीयात् । मासीष्ट । अमासीत् । अमासिष्ठम् ।

सर्गस्थादिति । प्रमीणाति—प्रोपसर्गपूर्वकात् अकारेत्सञ्ज्ञकमीधातोर्लटि लटो लः स्थाने  
तिपि, अनुबन्धलोपे शनाप्रत्यये शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते “हिनुमीना” इति नस्य  
णत्वे ‘प्रमीणाति’ इति सिद्धयति । प्रमीणीते । प्रोपसर्गात् मीधातोर्लटि, लः स्थाने  
आत्मनेपदे तप्रत्यये शनाप्रत्यये च कृते अनुबन्धलोपे ढेरेत्वे नस्य णत्वे च कृते “ई  
हल्यघोः” इतीत्वे ‘प्रमीणीते’ इति सिद्धयति । ममौ—मीधातोर्लटि लिटो लः स्थाने  
तिपि, तिपो णलादेशे च कृते “मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च” इति मीधातोरात्वे  
तस्य द्वित्वेऽभ्याससञ्ज्ञायां अभ्यासकार्ये ह्रस्वे च कृते ‘म मा अ’ इति जाते “आत  
औ णलः” इति णलोऽकारस्य औकारे “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ “ममौ” इति रूपम् ।  
मिम्यतुः । मीधातोर्लटि, लिटो लः स्थाने तसि, तसोऽनुसि च कृते “असंयोगाद्धिद्  
कित्” इति कित्वाद्गुणाभावात् एज्जिमित्त्वाभावेन “मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि  
च” इत्यादेरप्राप्त्या “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इत्यनेन मो इत्यस्य द्वित्वे कृते, अभ्या-  
ससञ्ज्ञायाम् अभ्यासकार्ये “ह्रस्वः” इति ह्रस्वे “एरेनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य” इति यणि  
सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गे च कृते ‘मिम्यतुः’ इति सिद्धयति । मिम्युः । लिटो लः स्थाने  
झौ, शेरुसि च कृते शेषं पूर्ववत् । ममिथ । मीधातोर्लटि, लिटो लः स्थाने सिपि,  
सिपः स्थाने “परस्मैपदानां णलु” इत्यादिना थलि च कृते “मीनातिमिनोति०”  
इत्यादिना मीधातोः आत्वे “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वेऽभ्याससञ्ज्ञायां  
“हलादिः शेषः” इति आदिहलःशेषे ह्रस्वे च कृते क्रादिनियमाद् विकल्पेनेटि च कृते  
“धातो लोप इटि च” इत्याकारस्य लोपे ‘ममिथ’ इति । इहभावे तु ‘ममाथ’ इति ।  
मिम्ये । मीधातोर्लटि, लिटो लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये एज्जिमित्त्वाभावेन  
आत्वाऽप्राप्ते धातोर्द्वित्वेऽभ्याससञ्ज्ञायां अभ्यासकार्ये ह्रस्वे च कृते तकारस्यैशादेशे  
“इको यणचि” इति यणि ‘मिम्ये’ इति सिद्धयति । माता । मीधातोर्लटि, लटो लः  
स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे “मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च” इत्यात्वे तासप्रत्यये  
तिपो ङादेशे ङित्वाटिलोपे ‘माता’ इति सिद्धयति । मास्यति । मीधातोर्लटि लटो लः  
स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे स्यप्रत्यये “मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च” इति आत्वे  
च कृते ‘मास्यति’ इति । लटो लः स्थाने आत्मनेपदे ते स्वे, ढेरेत्वे च कृते ‘मास्यते’  
इति । लोटि—मीनातु, मीनीताम् । लङि—अमीनात्, अमीनीत । विधिलिङि—मीनी-  
यात्, मीनीत । मीयात् । मीधातोराशीर्लिङि, लिङो लः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे  
यासुटि उदावितौ, तयोर्लोपे, ह्रलोपे च कृते ‘मीयात्’ इति । मासीष्ट । मीधातोराशी-  
र्लिङि, लिङो लः स्थाने तप्रत्यये “लिङः सीयुट्” इति सीयुटागमे सुटि च कृतेऽनुब-  
न्धलोपे “मीनातिमिनोति” इत्यात्वे सुदस्सस्य षत्वे ष्टुत्वे च कृते ‘मासीष्ट’ इति

अमास्त । षिञ् बन्धने ॥ ५ ॥ सिनाति । सिनीते । सिषाय । सिष्ये । सेता ।  
स्कुञ् आप्लवने ॥ ६ ॥ स्तन्मुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुम्भ्यः श्नुश्च  
३।१।२२ चात् रना । स्कुनोति-स्कुनाति । स्कुनुते-स्कुनीते । चुत्काव । चुत्कुवे ।

रूपम् । अमासीत् । मीधातोर्लुङि, लुङो लः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे, च्लौ, च्लेः  
सिचि च कृते इचावितौ “मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च” इत्यात्वे “यमरमनमातां  
सक् च” इति सकागमे सिचः सस्य इडागमे तिप इलोपे च ‘मा स् इ स् त्’ इति  
जाते “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इति ईटि च कृते “इट ईटि” इति सूलोपे अडागमे कृते  
“अमासीत्” इति रूपम् । अमासिष्टम् । मीधातोर्लुङि, लुङो लः स्थाने तसि, तसः तामि  
च कृते, च्लौ, च्लेः सिचि, इचावितौ “मीनाति” इत्यादिना आत्वे “यमरमनमातां सक्  
च” इति सकि इडागमे च कृते अको लोपे सस्य षत्वे ण्डत्वे च कृते, कृते च  
अडागमे ‘अमासिष्टम्’ इति । अमासिषुः । अमासीः, अमासिष्टम्, अमासिष्ट ।  
अमासिषम्, अमासिष्व, अमासिष्म । अमास्त । मीधातोर्लुङि, लः स्थाने आत्मनेपदे  
तादेशे, च्लौ, च्लेः सिचि, इचावितौ “मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च” इत्यात्वे कृते  
अडागमे ‘अमास्त’ इति । लृङि—अमास्यत्, अमास्यत । सिनाति । अकारेत्सञ्ज्ञक-  
षिधातोः “धात्वादेः षः स” इति सत्वे तस्माच्छटि, तिपि, अनुबन्धलोपे रनाप्रत्यये  
शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते ‘सिनाति’ इति । सिनीते । आत्मनेपदे तु लटः स्थाने  
तादेशे रनाप्रत्यये कृते “ई हल्यघोः” इतीत्वे टेरेत्वे च कृते ‘सिनीते’ इति । सिनाते,  
सिनते । सिनीषे, सिनाषे, सिनीष्वे । सिने, सिनीवहे, सिनीमहे । सिषाय । षिधातोर्लि-  
टि, लस्तिपि, तिपो णलि च कृते षस्य सत्वे धातोर्द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये  
“अचो ङिति” इति वृद्धौ आयादेशे षत्वे च कृते ‘सिषाय’ इति रूपम् । सिष्ये ।  
षिधातोर्लिङ्गस्ते षस्य सत्वे धातोर्द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये, तकारस्यैशादेशे सस्य  
षत्वे च कृते ‘सि षि ए’ इति जाते तत्र “एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य” इति यणि ‘सिष्ये’  
इति । सेता । षिधातोर्लुङि, तिपि, धातोः षस्य सत्वे तास्रप्रत्यये तिपो डादेशे द्वित्वा-  
द्विलोपे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे ‘सेता’ इति । लङि—असिनात्,  
असिनीत । लुङि—असेषीत्, असेष्ट । लृङि—असेष्यत्, असेष्यत । इत्यादि  
बोध्यम् । स्तन्मुस्तुम्भुस्कुम्भ्वति । एभ्यः श्नुप्रत्ययः स्यात्, चात् रनाप्रत्ययोऽपीति  
सुत्रार्थः । अत्र सूत्रे “क्रयादिभ्यः रना” इत्यस्मात् ‘रना’ इत्यनुवर्तते इति भावः ।  
स्कुनोति । अकारेत्सञ्ज्ञकस्कुधातोर्लुङि लटो लः स्थाने तिपि, “स्तन्मुस्तुम्भुस्कम्भुस्कु-  
म्भुस्कुम्भ्यः श्नुश्च” इति श्नुप्रत्यये, शस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते, तिपः सार्वधातुक-  
त्वात् “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे ‘स्कुनोति’ इति रूपम् । पक्षे—“क्रयादिभ्यः  
रना” इति रनाप्रत्यये ‘स्कुनाति’ इति । स्कुनुते । स्कुधातोर्लुङि, लटो लः स्थाने  
आत्मनेपदे तप्रत्यये तस्य कर्त्रर्थसार्वधातुकत्वात्तस्मिन् परे श्नुप्रत्यये च कृते अनुबन्ध-







लुञ् छेदने ॥ १२ ॥ लुनाति । लुनीते । स्तृञ् आच्छादने ॥ १३ ॥ स्तृणाति । स्तृणीते । “शर्पूर्वाः खयः” । तस्तार । तस्तरतुः । तस्तरे । स्तरिता-स्तरिता ।

क्षिति परे इति । पुनाति । पवनार्थकजकारेत्संज्ञक पू इत्यस्माद्धातोर्लटि, तिपि, सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तम्बाध्य रनाप्रत्यये शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते, “प्वादीनां ह्रस्वः” इति ह्रस्वे ‘पुनाति’ इति सिद्ध्यति । पुनीते । पूधातोर्लटि, तस्य स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये, “क्रधादिभ्यः रना” इति रनाप्रत्यये शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते “प्वादीनां ह्रस्वः” इति ह्रस्वे च कृते “ई ह्रस्वोः” इतीत्वे टेरेत्वे च ‘पुनीते’ इति सिद्ध्यति । पविता । पू इत्यस्माद्धातोर्लुटि, तिपि, अनुबन्धलोपे “स्यतासी लुलुटोः” इति ताप्रत्यये, तिपो डादेशे ङित्वाट्टिलोपे, तासः आर्धधातुकत्वात् “आर्धधातुकस्येड्वल्लादेः” इतीडागमे गुणेऽवादेशे च कृते ‘पविता’ इति सिद्ध्यति । पविष्यति, पविष्यते । पुनातु-पुनीताम् । अपुनात्, अपुनीत । पुनीयात्-पुनीत । पूयात्-पविषीष्ट । अपावीत् । अपविष्ट । अपविष्यत्-अपविष्यत । लुनाति । जकारेत्संज्ञक लू इत्यस्माद्धातोर्लटि, लः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे, सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा “क्यादिभ्यः रना” इति रनाप्रत्यये, शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते “प्वादीनां ह्रस्वः” इति ह्रस्वे ‘लुनाति’ इति सिद्ध्यति । लुनीते । लूधातोर्लटि, लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा रनाप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, “ई ह्रस्वोः” इतीत्वे “प्वादीनां ह्रस्वः” इति ह्रस्वादेशे टेरेत्वे च ‘लुनीते’ इति सिद्ध्यति । लिटि-लुलाव, लुलुवे । लुटि लविता, लटि-लविष्यति, लविष्यते । लुनातु-लुनीताम् । अलुनात्-अलुनीत । लुनीयात्-लूयात्-लविषीष्ट । अलावीत्-अलविष्ट । अलविष्यत्-अलविष्यत । स्तृणाति । आच्छादनार्थक-जकारेत्संज्ञक ‘स्तृ’ इत्यस्माद्धातोर्लटि, लः स्थाने तिपि, सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा “क्यादिभ्यः रना” इति रनाप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, नस्य गत्वे “प्वादीनां ह्रस्वः” इति ह्रस्वे च विहिते ‘स्तृणाति’ इति सिद्ध्यति । स्तृणीते । ‘स्तृ’ इत्यस्माद्धातोर्लटि लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये, सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते रनाप्रत्यये कृतेऽनुबन्धलोपे “ई ह्रस्वोः” इतीकारादेशे नस्य गत्वे “प्वादीनां ह्रस्वः” इति ह्रस्वे टेरेत्वे च जाते ‘स्तृणीते’ इति सिद्ध्यति । तस्तार । ‘स्तृ’ इत्यस्माद्धातोर्लटि, लः स्थाने तिपि, णलि च कृते “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् “शर्पूर्वाः खयः” इत्यभ्यासलोपे “अचो ङिति” इति षुद्धौ ‘तस्तार’ इति सिद्ध्यति । तस्तरतुः । ‘स्तृ’ इत्यस्माद्धातोर्लटि, लः स्थाने तसप्रत्यये, “परस्मैपदानाम्” इत्यादिना अतुसि द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां लोपे च कृते “श्चक्षृत्याताम्” इति गुणे सस्य स्त्वे उकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते, रेफस्य विसर्गे कृते “तस्तरतुः” इति सिद्ध्यति । तस्तरे । ‘स्तृ’ इत्यस्माद्धातोर्लटि, लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् “शर्पूर्वाः

स्तृणीयात् । स्तृणीत । स्तीर्यात् ॥ लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ७।२।४२ वृद्धञ्भ्या-  
मृदन्ताच्च परयोर्लिङ् सिचोरिङ् वा स्यात्लिङ् । न लिङि ७।२।३६ वृत् इटो लिङि  
न दीर्घः । स्तरिषीष्ट । “उश्च” इति क्त्वम् । स्तीर्षीष्ट । “सिचि च परस्मैपदेषु” ।  
अस्तारीत् । अस्तारिष्टाम् । अस्तारिषुः । अस्तरीष्ट-अन्तरिष्ट-अस्तीर्ष । कृञ्

खयः” इत्यभ्याससंज्ञकस्य ‘स्’ इत्यस्य लोपे “लिङस्तम्योरेशिरेच्” इति तकारस्यै-  
शादेशे “ऋच्छत्यृताम्” इति गुणे च कृते ‘तस्तरे’ इति सिद्ध्यति । स्तरीता । ‘स्तृ-  
इत्यस्मादातोर्लुट्तिपि, अनुबन्धलोपे तासप्रत्यये तिपो ङादेशे, ङित्वाट्टिलोपे इटि  
च कृते “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “वृत्तो वा” इत्यनेन इटो विकल्पेन दीर्घं  
‘स्तरीता’ इति । दीर्घाभावे तु-‘स्तरिता’ इति च सिद्ध्यति । स्तृणीयात् । ‘स्तृ’ इत्य-  
स्मादातोर्विधिलिङि, लः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते  
तम्बाधित्वा रनाप्रत्यये, शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते, “यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङित्च”  
इति यासुडागमे उटावितौ, “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सस्य लोपे “ई हत्यघोः”  
इतीत्वे नस्य णत्वे “प्वादीनां इस्वः” इति इस्वे च कृते ‘स्तृणीयात्’ इति सिद्ध्यति ।  
स्तृणीत । ‘स्तृ’ इत्यस्मादातोर्विधिलिङि, लिङो लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये,  
“क्रयादिभ्यः रना” इति रनाप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, “लिङः सीयुट्” इति सीयुडागमे,  
उटावितौ “लोपो व्यावर्लि” इति यस्य लोपे “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे  
च कृते “रनाभ्यस्तयोरातः” इत्याकारस्य लोपे इस्वे च विहिते ‘स्तृणीत’ इति सिद्ध्यति ।  
स्तीर्यात् । ‘स्तृ’ इत्यस्मादातोराशीर्लिङि, लः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे यासुडागमे,  
उटावितौ तिप इलोपे “स्कोः संयोगाघोरन्ते च” इति सलोपे “ऋत इद्दातोः” इतीत्वे  
“हलि च” इति दीर्घं च ‘स्तीर्यात्’ इति । लिङ्सिचोः । “इट् सनि वा” इत्यतः इड्वा  
इत्यनुवर्तते । तदाह—वृद्धञ्भ्यामित्यादिना । न लिङि । “वृत्तो वा” इत्यतो वृत् इत्यनु-  
वर्तते । लिङीति षष्ठ्यर्थं सप्तमी “आर्धधातुकस्येड्” इत्यतः इडित्यनुवृत्तं षष्ठ्या विप-  
रिणम्यते । “ग्रहो लिटि” इत्यतो दीर्घ इत्यनुवर्तते । तदाह—वृत् इति । वृद्धञ्भ्या-  
मृकारान्ताच्चेत्यर्थः । स्तीर्षीष्ट । ‘स्तृ’ इत्यस्मादातोराशीर्लिङि, लः स्थाने आत्मनेपदे  
तप्रत्यये सीयुडागमे उटावितौ “लोपो व्यावर्लि” इति यलोपे “सुट् तिथोः” इति  
सुडागमे उटावितौ “लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु” इति विकल्पेनेडागमे गुणे “वृत्तो वा”  
इति वा दीर्घं प्राप्ते “न लिङि” इति निषेधे द्वयोः सकारयोः षत्वे ष्टुत्वे च विहिते  
‘स्तरिषीष्ट’ इति । इडभावे—“ऋत इद्दातोः” इतीत्वे “हलि च” इति दीर्घं च कृते  
“उश्च” इति क्त्वाद्गुणाभावे ‘स्तीर्षीष्ट’ इति चोऽस्य इत्यति । अस्तारीत् । ‘स्तृ’ इत्य-  
स्मादातोर्लुङि लःस्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे अडागमे च कृते, “च्लि लुङि” इति  
च्लौ, “च्लेः सिच” इति सिजादेशे इचावितौ, तयोर्लोपे च “आर्धधातुकस्येड्वल्लादेः”  
इतीडागमे तिप इलोपे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इत्यनेन ईडागमे च कृते “इट् ईटि” इति

हिंसायाम् ॥ १४ ॥ कृणाति । कृणीते । चकार । चकरे । वृज वरणे ॥ १५ ॥  
वृणाति । वृणीते । ववार । ववरे । वरिता-वरीता । “उदोष्ठथ” इत्युत्त्वम् । वूर्यात् ।

सलोपे “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति वृद्धौ ‘अस्तारीत्’ इति सिद्ध्यति । अस्तारिष्टम् ।  
‘स्तृ’ इत्यस्मादातोर्लुङि लुङो लः स्थाने तस्यप्रत्यये तसस्तामादेशे, अडागमे  
च्लेः सिचि च कृते इचावितौ तयोर्लोपि सिचः सस्य इडागमे, “वृतो वा” इति दीर्घं  
प्राप्ते “सिचि च परस्मैपदेषु” इति निषिद्धे “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति वृद्धौ  
पत्वे ष्टुत्वे च विहिते ‘अस्तारिष्टम्’ इति सिद्ध्यति । अस्तारिषुः । ‘स्तृ’ इत्यस्मादा-  
तोर्लुङि लुङो लः स्थाने क्षिप्रप्रत्यये, “सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च” इति श्लेः स्थाने जुसि कृते,  
“चुट्” इति जकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते अडागमे, च्लौ, च्लेः सिचि कृते इचा-  
वितौ तयोर्लोपि च सस्य इडागमे च विहिते, वृद्धौ सकारस्य पत्वे सस्य रुत्वे, रेफस्य  
विसर्गे च जाते ‘अस्तारिषुः’ इति । अस्तारीः, अस्तारिष्टम्, अस्तारिष्ट । अस्तारिषम्,  
अस्तारिष्व, अस्तारिष्म । अस्तारिष्ट । ‘स्तृ’ इत्यस्मादातोर्लुङि, लः स्थाने आत्मनेपदे  
क्षप्रत्यये “च्लि लुङि” इति च्लौ, च्लेः सिचि च कृते, इचावितौ “लिङ्सिचोरात्मने-  
पदेषु” इति विकल्पेन इडागमे गुणे अडागमे च कृते “वृतो वा” इति विकल्पेन इटो  
दीर्घं ‘अस्तारिष्ट’ इति । दीर्घाभावे ‘अस्तारिष्ट’ इति । इडभावे तु “कृत इडातोः”  
इतीत्वे “हलि च” इति दीर्घं ‘अस्तीष्ट’ इति सिद्ध्यति । कृणाति । ‘कृ’ इत्यस्मादा-  
तोर्लुङि, लुङो लः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते, तस्मा-  
न्निस्वा रनाप्रत्यये शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते नस्य णत्वे “प्वादीनां ह्रस्वः” इति ह्रस्वे  
‘कृणाति’ इति । कृणीते । कृधातोर्लुङि, लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये “क्रयादिभ्यः  
रना” इति रनाप्रत्यये शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते नस्य णत्वे “ई ह्रस्वघोः” इतीत्वे  
ह्रस्वे च कृते ढेरेत्वे ‘कृणीते’ इति सिद्ध्यति । चकार । ‘कृ’ इत्यस्मादातोर्लुङिस्तपि,  
तिपो णलि च कृते, “लिङि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् “उरत्”  
इत्यस्वे रपरे च कृते “हलादिः शेषः” इति लोपे “कुहोरचुः” इत्यनेन चुत्वे “अचो  
ष्णिगति” इति वृद्धौ ‘चकार’ इति । चकरतुः, चकरुः । चकरिथ, चकरथुः, चकर ।  
चकार-चकर, चकरिच, चकरिम । चकरे । ‘कृ’ धातोर्लुङि, लः स्थाने आत्मनेपदे  
सप्रत्यये, द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां “उरत्” इत्यस्वे रपरे “हलादिः शेषः” इति लोपे  
“कुहोरचुः” इति चुत्वे “लिङस्तञ्जयोरेन्निरेच्” इति तकारस्यैश्च आदेशे “ञञ्चुत्पृ-  
ताम्” इति गुणे ‘चकरे’ इति सिद्ध्यति । चकराते, चकरिरे । चकरिषे, चकराथे,  
चकरिध्वे । चकरे, चकरिबहे, चकरिमहे । करिता, करीता । करिष्यति, करीष्यति ।  
करिष्यते, करीष्यते । कृणातु । कृणीताम् । अकृणात्-अकृणीत । कृणीयात्-कृणीत ।  
करीयात् । करिष्यत् । अकरीयात्-अकरिष्यत्, अकरीष्यत् । अकतिष्यत् अकरीष्यत् । अकरि-  
ष्यत्-अकरीष्यत् । कृणाति । कृणीते । कृधातोर्लुङि, लः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे, सार्व-

वरिषीष्ट-वृषीष्ट । अवारीत् । अवारिष्टम् । अवरिष्ट-अवरीष्ट-अवृष्ट । धूम् कम्पने

धातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा शनाप्रत्यये, शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते नस्य णत्वे “प्वादीनां ह्रस्वः” इति ह्रस्वे च जाते ‘वृणाति’ इति सिद्ध्यति । वृणीते । ‘वृ’ धातोर्लिटि, लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते, तम्बाधित्वा शनाप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे नस्य णत्वे “प्वादीनां ह्रस्वः” इति ह्रस्वे, “ई ह्रस्वघोः” इत्यनेन ईकारादेशे ढेरेत्वे च कृते, ‘वृणीते’ इति सिद्ध्यति । ववार । ‘वृ’ धातोर्लिटि, लः स्थाने तिपि, तिपो णलि च कृते, धातोर्द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम्, “उरत्” इत्यत्वे, रपरे च कृते, “ह्लादिः शेषः” इति लोपे “अचो ङिति” इति वृद्धौ च कृतायां ‘ववार’ इति सिद्ध्यति । ववरे । ‘वृ’ धातोर्लिटिस्ते, “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे, अभ्याससंज्ञायाम् “उरत्” इत्यत्वे, रपरे च कृते, लोपे, तकारस्यैवादेशे “ऋच्छस्युताम्” इति गुणे ‘ववरे’ इति सिद्ध्यति । वरीता । ‘वृ’ धातोर्लिटि लः स्थाने तिपि, तासप्रत्यये, तिपो ङादेशे, ङित्वाट्टिलोपे, “आर्धधातुकस्येडवलादेः” इतीडागमे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे ‘वृतो वा’ इति विकल्पेन दीर्घे ‘वरीता’ इति । दीर्घाभावे-‘वरीता’ इति । वरिष्यति-वरीष्यति, वरिष्यते, वरीष्यते । वृणातु-वृणी-क्षम् । अवृणात्-अवृणीत । वृणीयात्-वृणीत । वृयात् । वृधातोराशीर्लिङि, तिपि, अनुबन्धलोपे “यासुट्परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च” इति यासुडागमे, उदावितौ “स्कोः संयोगाधोरन्ते च” इति सलोपे यासुट् कित्वाद्गुणामावे “उदोऽयपूर्वस्य” इत्युत्वे “हलि च” इति दीर्घे च विहिते, ‘वृयात्’ इति सिद्ध्यति । वरिषीष्ट । ‘वृ’ इत्यस्माद्धातोराशीर्लिङि, कित्वाद् कर्तृगामिनि क्रियाफले सात आत्मनेपदे तप्रत्यये, “लिङः सीयुट्” इति सीयुडागमे, उदावितौ “लोपो व्योर्वलि” इति सलोपे “सुट् तिथोः” इति सुटि च कृते, उदावितौ तयोर्लोपे च “लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु” इति विकल्पेनेडागमे, “वृतो वा” इति इटो दीर्घे प्राप्ते “न लिङि” इति निषिद्धे “ऋच्छस्युताम्” इति गुणे इयोः सकारयोः षत्वे, षट्त्वे च विहिते ‘वरिषीष्ट’ इति सिद्ध्यति । इडभावे तु-“उदोऽयपूर्वस्य” इत्युत्वे “हलि च” इति दीर्घे उभयोः सकारयोः षत्वे च ‘वृषीष्ट’ इति रूपम् । वृषीयास्ताम्, इत्यादि । अवारीत् । ‘वृ’ इत्यस्माद्धातोर्लुङि, लः स्थाने तिपि, इकार-प्रकारयोरित्संज्ञायां लोपे च कृतेऽडागमे “च्लि लुङि” इति च्लौ, च्लेः सिजादेशे च कृते इच्चावितौ तयोर्लोपे च-सिचः सकारस्य आर्धधातुकत्वात् “आर्धधातुकस्येडवलादेः” इत्यनेन इडागमे तिपि हलोपे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इत्यनेन ईडागमे च कृते “इट ईटि” इति सलोपे “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति वृद्धौ सवर्णदीर्घे च कृते ‘अवारीत्’ इति सिद्ध्यति । अवारिष्टम् । ‘वृ’ इत्यस्माद्धातोर्लुङि लः स्थाने तसप्रत्यये, अडागमे च्लौ, च्लेः सिजादेशे इच्चावितौ इडागमे, “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति वृद्धौ “तस्यस्थमिषां तान्वन्तामः” इति तसः स्थाने तामादेशे सस्य षत्वे षट्त्वे च

॥ १६ ॥ धुनाति । धुनीते । धोता-धविता । अधावीत् । अधविष्ट-अधोष्ट । ग्रह  
 .उपादाने ॥ १७ ॥ गृह्णाति । गृह्णीते । जग्राह । जगृहे । ग्रहाऽलिटि दीर्घः ॥ ७२ ॥

‘अवारिष्टाम्’ इति । अवरिष्ट । ‘वृ’ इत्यस्माद्धातोर्लुङि, लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये,  
 “लुङ्लुङ्लुङ्क्वडुदात्तः” इत्यङागमे, च्लौ, च्लेः सिजादेशे “लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु”  
 इति विकल्पेनेङागमे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “वृतो वा” इति विकल्पेन  
 इटो दीर्घे सस्य षत्वे ष्टुत्वे च ‘अवारिष्ट’ इति । दीर्घाभावे-‘अवरीष्ट’ इति । इडभावे-तु  
 पूर्ववदित्थं प्रसाध्य ‘अ वृत्’ इति स्थिते “उञ्च” इति क्तिवाद्गुणाभावे “उदोष्ठथ-  
 पूर्वस्य” इत्युत्वे रपरे “हलि च” इति दीर्घे सस्य षत्वे ष्टुत्वे च विहिते ‘अवृष्ट’ इति  
 सिद्ध्यति । लङि-अवरिष्यत्-अवरीष्यत् । अवरिष्यत्-अवरीष्यत् । धुनाति । अकारे-  
 रसंज्ञक ‘धू’ इत्यस्माद्धातोर्लटि लः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे सार्वधातुकसंज्ञायां,  
 अपि प्राप्ते तम्बाधित्वा “क्रथादिभ्यः रना” इति रनाप्रत्यये, शस्येत्संज्ञायां लोपे च,  
 कृते “प्वादीनां ह्रस्वः” इति ह्रस्वे ‘धुनाति’ इति सिद्ध्यति । धुनीतः, धुन्वन्ति ।  
 धुनाति, धुनीथः, धुनीथ । धुनामि, धुनीवः, धुनीमः । धुनीते । ‘धू’ इत्यस्माद्धातोर्लटि,  
 लटो लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये सार्वधातुकसंज्ञायां अपि प्राप्ते तम्बाधित्वा रनाप्र-  
 त्यये, शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते “ई ह्रस्वोः” इतीकारे “प्वादीनां ह्रस्वः” इति  
 ह्रस्वे टेरेत्वे च विहिते ‘धुनीते’ इति सिद्ध्यति । धुनाते, धुनते । धुनीषे, धुनाथे,  
 धुनीध्वे । धुने, धुनीवहे, धुनीमहे । धविता-‘धू’ इत्यस्माद्धातोर्लटि, लटो लः  
 स्थाने तिपि, तासप्रत्यये तिपो ङादेशे शित्वाटिलोपे, “स्वरतिसूतिः सूयति धूज्जुदितो वा”  
 इति विकल्पेनेङागमे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे अवादेशे च विहिते,  
 ‘धविता’ इति । इडभावे-‘धोता’ इति च सिद्ध्यति । धविष्यति-धोग्यति, धविष्यते-  
 धोग्यते । धुनातु-धुनीताम् । धुनीयात्-धुनीत । धूयात्-धविषीष्ट, धूयात्-धोषीष्ट ।  
 अधावीत् । ‘धू’ इत्यस्माद्धातोर्लुङि, लः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे, अङागमे, “च्लि  
 लुङि” इति च्लौ, च्लेः सिचि कृते, इचावितौ “स्तुसुधूभ्यः परस्मैपदेषु” इति  
 विकल्पेनेङागमे तिपि इलोपे “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इत्यनेन ईङागमे च कृते “इट ईटि”  
 सलोपे “सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति वृद्धौ अवादेशे च कृते ‘अधावीत्’ इति  
 सिद्ध्यति । अधाविष्टाम्, अधाविषुः । अधावीः, अधाविष्टम्, अधाविष्ट । अधाविषम्,  
 अधाविष्व, अधाविष्म । अधविष्ट । ‘धू’ इत्यस्माद्धातोर्लुङि, आत्मनेपदे तप्रत्यये अङा-  
 गमे “च्लि लुङि” इति च्लौ, च्लेः सिजादेशे इचावितौ तयोर्लोपे च “स्वरतिसूति”  
 इति विकल्पेनेङागमे गुणे अवादेशे सस्य षत्वे ष्टुत्वे च कृते ‘अधविष्ट’ इति  
 सिद्ध्यति । इडभावे तु—अधोष्ट इति । गृह्णाति । उपादानार्थक ‘ग्रह’ इत्यस्माद्धातोर्लटि,  
 लटो लः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे, सार्वधातुकसंज्ञायां, अपि प्राप्ते तम्बाधित्वा  
 रनाप्रत्यये, शस्येत्संज्ञायां लोपे च जाते, शित्वात्तस्य सार्वधातुकसंज्ञायां “सार्वधातु-

३७ एकाचो ग्रहेर्विहितस्येदो दीर्घः स्यात्, न तु लिटि । ग्रहीता । गृह्णातु । “हलः  
अः शानज्झौ” इति अः शानजादेशः । गृहाण । गृह्यात् । ग्रहीषीष्ट । “ह्यथन्त”

कमपित्” इति क्तिवात् “ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्वातिवृच्छतिभृज्जतीनां किति  
च” इत्यनेन सम्प्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे नस्य णत्वे च कृते ‘गृह्णाति’  
इति रूपं सिद्ध्यति । गृह्णीतः, वृहन्ति । गृह्णासि, गृह्णीयः, गृह्णीथ । गृह्णामि, गृह्णीवः,  
गृह्णीमः । गृह्णीते । ग्रहधातोर्लिटि, लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये, रनाप्रत्यये च कृते,  
अनुबन्धलोपे सार्वधातुकसंज्ञायां द्वित्संज्ञायाञ्च सत्याम् सम्प्रसारणे, पूर्वरूपे च जाते,  
“ई ह्रस्वघोः” इतीकारादेशे नस्य णत्वे ढेरेत्वे च कृते, ‘गृह्णीते’ इति सिद्ध्यति । गृह्णाते,  
गृह्णते । गृह्णीषे, गृह्णाथे, गृह्णीध्वे । गृह्णे, गृह्णीवहे, गृह्णीमहे । जग्राह । ‘ग्रह’ इत्यस्माद्वा-  
तोर्लिटि, लिटो लः स्थाने तिपि, तिपो णलि च कृते “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति  
द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् “हलादिः शेषः” इत्यभ्यासलोपे “कुहोश्चुः” इति अभ्यासस्य  
चुत्वे, “अत उपधायाः” इत्यनेन वृद्धौ च कृतायां ‘जग्राह’ इति रूपं सिद्ध्यति ।  
जगृहतुः, जगृहुः । जग्रहिय । जग्रहथुः । जग्रह । जग्राह-जग्रह, जग्रहिव, जग्रहिम ।  
जगृह । ‘ग्रह’ धातोर्लिटि, आत्मनेपदे तप्रत्यये, “असयोगास्त्रिट्कित्” इति क्तिवे  
“ग्रहिज्या” इत्यादिना सम्प्रसारणे पूर्वरूपे च कृते तप्रत्ययस्यैवादेशे कृते “लिटि  
धातोरन०” इति द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् उरदत्वे रपरे च “हलादिः शेषः” इति लोपे  
“कुहोश्चुः” इति चुत्वे ‘जगृहे’ इति रूपं सिद्ध्यति । जगृहाते, जगृहिर । जगृहिषे,  
जगृहाथे, जगृहिध्वे । जगृहे, जगृहिवहे, जगृहिमहे । इति । ग्रहोऽलिटि दीर्घ इति ।  
ग्रह इति दिग्योगे पञ्चमी । “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इत्यतः इडित्यनुवृत्तं षष्ठ्यन्तं  
विपरिणम्यते । “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्” इत्यतः एकाच इति च तदाह—एकाच  
इत्यादि । ग्रहीता । ग्रहधातोर्लुटि, लः स्थाने तिपि, तासप्रत्यये, तिपो ङादेशे, क्तिवाङ्-  
लोपे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इतीडागमे “ग्रहोऽलिटि दीर्घः” इति इटो दीर्घे ‘ग्रहीता’  
इति सिद्ध्यति । ग्रहीतारौ, ग्रहीतारः । ग्रहीतासि, ग्रहीतास्थः, ग्रहीतास्थ । ग्रहीतास्मि,  
ग्रहीतास्वः, ग्रहीतास्मः । इति । आत्मनेपदे-ग्रहीतासे, ग्रहीतासाथे, ग्रहीताध्वे ।  
ग्रहीताहे, ग्रहीतास्वहे । ग्रहीतास्महे । ग्रहीष्यति-ग्रहीष्यते । गृह्णातु । ‘ग्रह’ धातोर्लुटि,  
लः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे सार्वधातुकसंज्ञायां षापि प्राप्ते तम्बाधित्वा रनाप्रत्यये,  
शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते “एरुः” इत्यनेन इकारस्य उकारे “अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽ-  
पि” इति नस्य णत्वे “ग्रहिज्या” इत्यादिना सम्प्रसारणे पूर्वरूपे च ‘गृह्णातु’ इति ।  
गृह्णीतात्, गृह्णीताम्, गृह्णन्तु । गृहाण । ग्रहधातोर्लुटि, मध्यमपुरुषैकवचने सिपि,  
अनुबन्धलोपे “सेष्पिच्च” इति ङादेशे “क्रयादिभ्यः रना” इति रनाप्रत्यये अनुबन्ध-  
लोपे शित्वात्सार्वधातुकत्वे क्तिवे सम्प्रसारणे च कृते “हलः रनः शानज्झौ” इति  
शानजादेशे शस्येत्संज्ञायां लोपे च जाते नस्य णत्वे “अतो हेः” इति हेर्लुकि च कृते



इति न वृद्धिः । अग्रहीत् । अग्रहीष्टाम् । अग्रहीष्ट । अग्रहीषताम् । कुष निष्कर्षे

‘गृहाण’ इति सिद्ध्यति । गृहीतात्, गृहीतम्, गृहीत । गृह्णानि, गृह्णाव, गृह्णाम । गृह्णीताम् । ‘ग्रह’ घातोर्लोपि, आत्मनेपदे तप्रत्यये “क्रयादिभ्यः शना” इति शनाप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे, सम्प्रसारणे “ई ह्रस्वघोः” इत्यनेकारस्येत्वे ढेरेत्वे च कृते, “आमेतः” इत्यापि ‘गृहीताम्’ इति । गृह्णाताम्, गृह्णताम्, गृह्णीष्व, गृह्णाथाम्, गृह्णीष्वम् । गृह्णे, गृह्णावहै, गृह्णामहै । लङि-अगृह्णात्, अगृह्णीत । विधिलिङि-गृह्णीयात्, गृह्णीत । गृह्णात् । ग्रहघातोराशीर्लिङि, तिपि, अनुबन्धलोपे “यासुट्परस्मैपदेष्वात्तो-ल्लिच्च” इति यासुडागमेऽनुबन्धलोपे “किदाशिषि” इति यासुडः क्त्वे “ग्रहज्याव-यिभ्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिमृजतीनां ङिति च” इति सम्प्रसारणे “सम्प्रसार-णाच्च” इति पूर्वरूपे “स्कोः सयोगाद्योरन्ते च” इति सलोपे ‘गृह्णात्’ इति सिद्ध्यति । गृह्णास्ताम्, गृह्णामुः । गृह्णाः, गृह्णास्तम्, गृह्णास्त । गृह्णासम्, गृह्णास्व, गृह्णास्म इति । ग्रहीषीष्ट । ग्रहघातोराशीर्लिङि, आत्मनेपदे तप्रत्यये, “लिङः सीयुट्” इति सीयुडागमे उटावितौ तयोर्लोपे च “लोपो व्योर्वलि” इत्यनेन यलोपे कृते “सुट्तिथोः” इति तकारस्य सुडागमे अनुबन्धलोपे “आर्धघातुकस्येड्वलदादेः” इतीडागमे “ग्रहो-ऽलिटि दीर्घः” इति दीर्घे द्वयोः सकारयोः षत्वे ष्टुत्वे च कृते ‘ग्रहीषीष्ट’ इति सिद्ध्यति । ग्रहीषीयास्ताम्, ग्रहीषीरन् । ग्रहीषीष्ठाः, ग्रहीषीयास्थाम्, ग्रहीषीष्वम् । ग्रहीषीय, ग्रहीषीवहि, ग्रहीषीमहि । अग्रहीत् । ग्रहघातोर्लुङि लः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे अडागमे च कृते, “च्लि लुङि” इति च्लौ, च्लेः सिजादेशे, इचावितौ तयोर्लोपे च कृते “आर्धघातुकस्येड्वलदादेः” इतीडागमे तिपः इकारस्य लोपे तस्यापृक्तसंज्ञायाम् “अस्तिसिचोऽपृक्ते” इत्यनेन ईडागमे च कृते “इट ईटि” इति सलोपे सिज्लोपस्य सिद्धत्वात्सवर्णदीर्घे “वद्वज्जलन्तस्थाचः” इति प्रासायाः वृद्धेः “नेटि” इत्यनेन निषेधे “अतो हलादेर्लोः” इति वृद्धौ प्रासायाम् “ह्यन्तञ्चणश्चसजागृणिरन्येदिताम्” इत्यनेन निषेधे ‘अग्रहीत्’ इति सिद्ध्यति । अग्रहीष्टाम् । ग्रहघातोर्लुङि, लः स्थाने तस्यप्रत्यये, अङ्गस्य अडागमे “च्लि लुङि” इति च्लौ, च्लेः सिच- इति सिजादेशे इचावितौ तयोर्लोपे च कृते “तस्यस्यमिपां तान्तन्तामः” इति तसस्तामादेशे सिचः सस्यार्धघातुकत्वात् इडागमे च कृते “ग्रहोऽलिटि दीर्घः” इति इटो दीर्घे सस्य षत्वे ष्टुत्वे वृद्धभावे च ‘अग्रहीष्टाम्’ इति सिद्ध्यति । अग्रहीषुः । अग्रहीः, अग्रहीष्ट्व, अग्रहीष्ट । अग्रहीषम्, अग्रहीष्व, अग्रहीष्म । इति । अग्रहीष्ट । ग्रहघातोर्लुङि लुङो लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये, अडागमे “च्लि लुङि” इति च्लौ, च्लेः सिजादेशे इचावितौ तयोर्लोपे च सिचः सस्य इडागमे च कृते “ग्रहोऽलिटि दीर्घः” इति दीर्घादेशे सस्य षत्वे ष्टुत्वे च “अग्रहीष्ट” इति सिद्ध्यति । अग्रहीषताम् । ग्रहघातो-र्लुङि लुङो लः स्थाने आत्मनेपदे आतामि, अडागमे, “च्लि लुङि” इति च्लौ, च्लेः

॥ १८ ॥ कुष्णाति । चुकोष । कोषिता । अश मोजने ॥ १९ ॥ अरनाति । आश ।  
अशिता । अशिष्यति । अश्रातु । अशान । मुष स्तेये ॥ २० ॥ मुष्णाति । मुषाण ।

सिजादेशे, इचावितौ तयोर्लोपे च सिचः सस्य इडागमे च कृते, “प्रहोऽलिटिदी चः”  
इति इदो दीर्घे सस्य षत्वे च जाते ‘अग्रहीषाताम्’ इति सिद्ध्यति । अग्रहीषत । अग्र-  
हीष्ठाः, अग्रहीषायाम्, अग्रहीढ्वम् । अग्रहीषि, अग्रहीष्वहि, अग्रहीष्महि । इति ।  
लृङि-अग्रहीष्यत्, अग्रहीष्यत । कुष्णाति । कुष् इत्यस्माद्धातोर्लटि, लः स्थाने तिपि  
अनुबन्धलोपे सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा रनाप्रत्यये, शस्येत्संज्ञायां  
लोपे च कृते “रषाम्यां नो णः समानपदे” इति णत्वे ‘कुष्णाति’ इति रूपं सिद्ध्यति ।  
चुकोष । कुष्धातोर्लटि, लः स्थाने तिपि, तिपो णलि च कृते अनुबन्धलोपे धातोर्द्वित्वे-  
ऽभ्याससंज्ञायां, लोपे च कृते “कुहोश्चुः” इति चुत्वे “पुगन्तलधूपधस्य च” इति  
गुणे ‘चुकोष’ इति रूपं सिद्ध्यति । कोषिता । कुष्धातोर्लटि, लः स्थाने तिपि, तास-  
प्रत्यये, तिपो ङादेशे ङित्वाट्टिलोपे इटि च कृते, लधूपधगुणे ‘कोषिता’ इति रूपं  
सिद्ध्यति । लृटि-कोषिष्यति । लोटि-कुष्णातु । लङि-अकुष्णात् । विधिलिङि-  
कुष्णीयात् । आशिषि-कुष्यात् । लुङि-अकोषीत् । लृङि-अकोषिष्यत् । अश्राति ।  
अश्रधातोर्लटि, लः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तम्बा-  
धित्वा आप्रत्यये, शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते ‘अरनाति’ इति रूपं सिद्ध्यति ।  
आश । अश्रधातोर्लटि, लोटो लः स्थाने तिपि, तिपो णलि च कृते, अनुबन्धलोपे,  
धातोर्द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां लोपे च कृते “अत आदेः” इति अभ्यासाकारस्य दीर्घे “अकः  
सवर्णं दीर्घः” इति दीर्घादेशे ‘आश’ इति साधु । आशतुः आशुः । आशिय, आशयुः,  
आशं । आश, आशिव, आशिम । अशिषा । अश्रधातोर्लटि, लोटो लः स्थाने तिपि,  
तास प्रत्यये च कृते तिपो ङादेशे ङित्वाट्टिलोपे तास आर्धधातुकत्वात् इटि च विहिते  
‘अशिता’ इति रूपं सिद्ध्यति । अशिष्यति । अश्रधातोर्लटि, लृटो लः स्थाने तिपि,  
अनुबन्धलोपे स्यप्रत्यये च कृते, तस्य आर्धधातुकसंज्ञायाम् इडागमे, षत्वे ‘अशिष्यति’  
इति रूपं सिद्ध्यति । अश्रातु । अश्रधातोर्लटि, लोटो लः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे,  
सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते, तम्बाधित्वा रनाप्रत्यये, शकारस्येत्संज्ञायां लोपे च  
कृते, तिपि इकारस्य “एरु” इत्युत्वे ‘अरनातु’ इति रूपं सिद्ध्यति । अरनीतात्,  
अरनीताम्, अरनन्तु । अशान । ‘अश्र’ धातोर्लटि लोटो लः स्थाने मध्यमपुरुषकवचने  
सिप्प्रत्यये “सेर्वापिच्च” इत्यनेन ङादेशे रनाप्रत्यये शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते “हल्  
रनः शानजसौ” इति शानजादेशे अनुबन्धलोपे “अतो हेः” इति हेर्लुकि च कृते  
‘अशान’ इति रूपं सिद्ध्यति । अरनीतात्, अरनीतम्, अरनीत । अरनानि, अरनाय,  
अरनाम् । लङि-अरन्त् । विधिलिङि-अरनीयात् । आशिषि-अर्यात् । लुङि-  
आशीत् । लृङि-आशिष्यत् । मुष्णाति—स्तेयार्थकं ‘मुष्’ इत्यस्माद्धातोर्लटि, तिपि,

ज्ञाऽवबोधने ॥ २१ ॥ जज्ञौ । वृड् सम्भक्तौ ॥ २२ ॥ वृणीते । ववृषे । ववृद्धे ।  
वरिता-वरीता । अवरिष्ट-अवरीष्ट-अवृत ॥ इति कथादयः ।

सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तम्बाधित्वा शनाप्रत्यये, शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते  
नस्य णत्वे 'मुष्णाति' इति रूपं सिद्ध्यति । मुष्णीतः, मुष्णन्ति । मुष्णासि, मुष्णीथः,  
मुष्णीथ । मुष्णामि, मुष्णीवः, मुष्णीमः । लिटि-मुमोष । लुटि-मोषिता । लृटि-  
मोषिष्यति । लोटि-मुष्णातु । मुष्णीतात्, मुष्णीताम्, मुष्णन्तु । मुषाण । 'मुषः'  
इत्यस्माद्धातोर्लोटि, मध्यमपुरुषैकवचने सिपि, सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते तम्बा-  
धित्वा शनाप्रत्यये, शस्येत्संज्ञायां लोपे च विहिते, "सेर्द्धापिच्च" इति ह्यादेशे "हलः  
शनः शानजज्ञौ" इति शानजादेशे अनुबन्धलोपे "अतो हेः" इति हेर्लुकिन स्य णत्वे  
च कृते 'मुषाण' इति रूपं सिद्ध्यति । मुष्णीतात्, मुष्णीताम्, मुष्णीत । मुष्णानि,  
मुष्णाव, मुष्णाम । लङि-अमुष्णात् । लङि-मुष्णीयात् । आशिषि-मुष्यात् । लुङि-  
अमोषीत् । लुङि-अमोषिष्यत् इति । ज्ञा अवबोधने इत्यस्माद्धातोर्लोटि, तिपि, शनाप्र-  
त्यये "ज्ञाजनोर्जा" इति जादेशे 'जानाति' इति रूपम् । जज्ञौ । 'ज्ञा' इत्यस्माद्धातो-  
र्लिटि, लिटो लः स्थाने तिपि, तिपो णलि च कृते अनुबन्धलोपे धातोर्द्वित्वेऽभ्यास-  
संज्ञायाम् "हलादिः शेषः" इत्यभ्यासलोपे "ह्रस्वः" इति ह्रस्वे, "आत औ णलः"  
इत्यनेन णल औकारादेशे वृद्धौ 'जज्ञौ' इति सिद्ध्यति । जज्ञतुः । जज्ञुः । जज्ञिथ-  
जज्ञाथ, जज्ञथुः, जज्ञ । जज्ञौ, जज्ञिव, जज्ञिम । इति रूपाणि । लुटि-ज्ञाता । लृटि-  
ज्ञास्यति । लोटि-'जानातु' इत्यादि । लङि-अजानात् । विधिलिङि-जानीयात् ।  
आशिषि-ज्ञायात्, ज्ञेयात् । लुङि-अज्ञासीत्, अज्ञासिष्टम्, अज्ञासिषुः । अज्ञासीः,  
अज्ञासिष्टम्, अज्ञासिष्ट । अज्ञासिषम्, अज्ञासिष्व, अज्ञासिष्म । इति । अत्र "यमर-  
मनमातां सक्च" इति सकागमो विशेषः । शेषं पूर्ववत् । लुङि-अज्ञास्यत् । इति ।  
वृणीते । ङकारेत्संज्ञक 'वृ' इत्यस्माद्धातोर्लोटि, लटो लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये,  
सार्वधातुकसंज्ञायां, शपि प्राप्ते, तम्बाधित्वा शनाप्रत्यये, शस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते  
"ई हल्यघोः" इत्यनेनाकारस्य ईत्वे कृते, नस्य णत्वे टेरेत्वे च कृते 'वृणीते' इति रूपं  
सिद्ध्यति । लिटि-वव्रे, वव्राते, वव्रिरे । ववृषे । 'वृ' इत्यस्माद्धातोर्लोटि, लिटो लः  
स्थाने आत्मनेपदे थासप्रत्यये, "थासः से" इत्यनेन से आदेशे, "लिटि धातोरनभ्या-  
सस्य" इति द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् "उरत्" इत्यत्वे रपरे च कृते 'हलादिः शेषः'  
इत्यभ्यासलोपे सस्य षत्वे इटि प्राप्ते "कृत्स्नृत्स्नुद्गुञ्जुबुवो लिटि" इति निषेधे 'ववृषे'  
इति रूपं सिद्ध्यति । वव्राये । ववृद्धे- 'वृ' इत्यस्माद्धातोर्लोटि, लिटो लः स्थाने  
मध्यमपुरुषबहुवचनविचक्षायां ध्वमि धातोर्द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायाम् "उरत्" इत्यत्वे  
रपरे च कृते अभ्यासलोपे क्रादिनियमादिङभावे "इणः षीध्वं लुङ्लियां षोऽङ्गात्"  
इत्यनेन अस्य इत्वे टेरेत्वे च विहिते 'ववृद्धे' इति सिद्ध्यति । वव्रे, ववृवहे, ववृमहे ।

अथ चुरादयः ।

चुर स्तेये ॥ १ ॥ सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ३।१।२५ एभ्यो णिच् स्यात् । चूर्णान्तेभ्यः प्रातिपदिकाद्वात्वर्थे इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम् । चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे । “पुगन्त” इति गुणः । “सनाद्यन्ता” इति धातुत्वम् । तिप् शवादि, गुणयादेशौ । चोरयति ।

इति रूपाणि । वरीता । ‘वृ’ इत्यस्माद्धातोर्लुटि, लुटो लः स्थाने तिपि, तासप्रत्यये, तिपो ङादेशे, ङित्वाट्टिलोपे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इत्यनेन गुणे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इतोङागमे “वृतो वा” इत्यनेन इटो दीर्घे ‘वरीता’ इति सिद्ध्यति । दीर्घाभावे—‘वरिता’ इति । लृटि—अवरिष्यत—अवरीष्यत । लोटि—वृणीताम् । लङि—अवृणीत । लिङि—वृणीत । आशिषि—वरिषीष्ट, वृषीष्ट । अवरीष्ट । ‘वृ’ इत्यस्माद्धातोर्लुङि, लुङो लः स्थाने आत्मनेपदे तप्रत्यये, अङागमे “च्लि लुङि” इति च्लौ, च्लेः सिजादेशे, इचावितौ तयोर्लोपे च कृते “लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु” इति विकल्पेनेङागमे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे सस्य षत्वे च कृते “वृतो वा” इत्यनेन इटो दीर्घे च कृते ‘अवरीष्ट’ इति रूपं सिद्ध्यति । दीर्घाभावे—‘अवरिष्ट’ इति । इडभावे “च्लि लुङि” इति च्लौ, “च्लेः सिच्” इति च्लेः सिजादेशे इचावितौ तयोर्लोपे च कृते “उञ्च” इत्यनेन सिचः कित्वे किस्वादगुणाभावे “ह्रस्वादङ्गात्” इत्यनेन स्रलोपे च कृते अङागमे ‘अवृत’ इति रूपं सिद्ध्यति । लृङि—अवरिष्यत—अवरीष्यत इति । इति कथादयः ।

चुरस्तेय इति । रेफादकार उच्चारणार्थः, न त्वित्संज्ञकः, प्रयोजनाभावात् । सत्यापेति । सत्याप पाश रूप वीणा तूल श्लोक सेना लोमन् त्वच वर्मन् वर्णं चूर्णं चुरादि एषां इन्द्रात्पञ्चमी । तदाह—एभ्यो णिच् स्यादिति । कस्मिन्नर्थे इत्याकाङ्क्षायामाह—चूर्णान्तेभ्य इति । सत्यादिभ्यः चूर्णान्तेभ्यो द्वादशभ्यः करोत्याचष्टे इत्याद्यर्थे “प्रातिपदिकाद्वात्वर्थे बहुलमिष्टवच्च” इति वक्ष्यमाणवार्तिकेनेव सिद्धे पुनरेषां सत्यादीनां ग्रहणं प्रपञ्चार्थम् । चुरादिभ्यस्त्विति । अर्थान्तरस्यानिर्देशादिति भावः । अत्र “धातोरेकाचः” इत्यतो धातोरित्यनुवर्तते । चुरादिभ्यो धातुभ्यो णिजिति फलितम्, एवञ्च णिच आर्धधातुकत्वं सिध्यति । अन्यथा धातोरिति विहितत्वाभावाद्धार्षधातुकत्वं न स्यादिति बोध्यम् । तदाह—पुगन्तेति गुण इति । चोरयति । चुरधातोः “वर्तमाने लट्” इति लटि प्राप्ते तं बाधित्वा “सत्यापपाशरूपवीणा०” इति चुरादित्वात् स्वार्थे णिचि, णचयोरित्संज्ञायां लोपे च ‘चुर इ’ इत्यत्र णिच इकारस्य “आर्धधातुक शेषः” इत्यार्धधातुकत्वे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति चुर उपधाया गुणे ‘चोरि’ इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायाम् धातुत्वाल्लटि अनुबन्धलोपे लः स्थाने तिपि पकारस्येत्संज्ञायां लोपे च “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकसंज्ञायाम् “कर्तरि

णिचश्च १।३।७४ णिजन्तादात्मनेपदं स्वात् कर्तृगामिनि क्रियाफले । चोरयते । चोरयामास । चोरयिता । चोर्यात् । चोरयिषीष्ट । “णिश्चि” इति चङ् । “णौ चङ्” इति ह्रस्वः । “चङि” इति द्वित्वम् । “हलादिः शेषः” । “दीर्घो लघोः” इत्यभ्यासस्य दीर्घः । अचूचुरत् । अचूचुरत । कथं वाक्यप्रबन्धे ॥ २ ॥ अल्लोपः । अचः

ज्ञप्” इति शपि शपयोरित्संज्ञायां लोपे च शित्वात्सार्वधातुकत्वे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे ‘चोरे अ ति’ जाते “एचोऽयवायावः” इत्याद्यादेशे मिलित्वा ‘चोरयति’ इति रूपम् । अग्रे-चोरयतः, चोरयन्ति । चोरयसि, चोरयथः, चोरयथ । चोरयामि, चोरयावः, चोरयामः । णिचश्चेति । “अनुदात्तङितः” इत्यत आत्मनेपदमिति “स्वरितङितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले” इति चानुवर्तते । प्रत्ययग्रहणपरिभाषया णिजन्तादिति लभ्यते । तदाह-णिजन्तादित्यादिना । चोरयते । चुरधातोः पूर्ववत् स्वार्थं णिचि धातुसंज्ञायाम् “वर्तमाने लट्” इति लटि लः स्थाने कर्तृगामिनि क्रियाफले सति “णिचश्च” इत्यात्मनेपदे ते जाते शपि अनुबन्धलोपे गुणे अयादेशे ढेरेत्वे च रूपम् । अग्रे-चोरयेते, चोरयन्ते । चोरयसे, चोरयेथे, चोरयध्वे । चोरये, चोरयावहे, चोरयामहे । इति । चोरयामास । चुरधाताः स्वार्थं णिचि, धातुसंज्ञायाम् “परोच्चे लिट्” इति लिटि “कास्यनेकाच आम्बक्तव्यः” इत्यामि तभ्य आर्धधातुकत्वे तत्पदे चोरिधातोर्गुणे अयादेशे च कृते “आमः” इति लिटो लुकि “कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्परासोऽनुप्रयोगे कृते ‘चोरयाम् अम् लिट्’ इति जाते लिटो लः स्थाने तिपि तिपो षलि द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये संयोगे च कृते तत्सिद्धिः । एवमन्यत्र । चोरयामासतुः, चोरयामासुः । चोरयामासिथ, चोरयामासथुः, चोरयामास । चोरयामास, चोरयामासिव, चोरयामासिम । एवम्, चोरयाम्बभूव । तथा-चोरयाञ्चकार—चोरयाञ्चक्रे । लुटि—चोरयिता । अत्र तास इडागम प्रकृतेर्गुणोऽयादेशश्च विशेषः, शेषं पूर्ववत् । चोरयिष्यति-चोरयिष्यते । चोरयतु-चोरयनाम् । अचोरयत्-अचोरयत । चोरयेत्-चोरयेत । आशीर्लिङि परस्मैपदे आह-चोर्यात् । चुरधातोः णिचि अनुबन्धलोपे प्रकृतेर्गुणे धातुसंज्ञायाम् आशिष्यर्थे लिङि, लः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे “लिङाशिषि” इत्यार्धधातुकत्वे यासुटि तस्यापि यदागमन्यायेनार्धधातुकत्वात् “जेरनिटि” इति णिलोपे ‘चोरयास्त्’ इति जाते तत्र सकारस्य “स्कोः संयोगाथोरन्ते च” इति लोपे कृते ‘चोर्यात्’ इति रूपम् । चोर्यास्ताम्, चोर्यासुः । चोर्याः, चोर्यास्तम्, चोर्यास्त । चोर्यासम्, चोर्यास्व, चोर्यास्म । चोरयिषीष्ट । चोरीति पूर्ववत्प्रसाध्य तस्य धातुत्वात् आशिषि लिङि आरम्भेपदे ते आर्धधातुकत्वे स्युटि उटि गते टित्वादाद्यावयवे ‘चोरि सी त’ इति भूते तस्य सुडागमे स्युट् इडागमे प्रकृतेर्गुणे अयादेशे स्युटस्सस्य षत्वे तस्य षत्वे च रूपम् । चोरयिषीयास्ताम्, चोरयिषीरन् । चोरयिषीष्टाः, चोरयिषीयास्ताम्, चोरयिषीजम् । चोरयिषीथ, चोरयिषीवहि, चोरयिषीमहि । अचूचुरत् ।

परस्मिन्पूर्वविधौ १।१।५७ अल्विध्यर्थमिदम् । परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिव-  
स्यात्, स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये । इति स्थानिवत्वाज्जोधा-  
वृद्धिः । कथयति । अग्लोपित्वादीर्घसन्वद्भावौ न । अचकथत् । गण सङ्ख्याने

चोरीति पूर्ववत्प्रसाध्य तस्य धातुत्वात् लुङ्स्तिपि अनुबन्धलोपे “इतश्च” इति निप  
इकारलोपे तस्य सार्वधातुकत्वे शप बाधित्वा “च्लि लुङि” इति च्लौ “णिश्चिदुभ्यः  
कर्तरि चङ्” इति च्लेः चङि अनुबन्धलोपे “गेरनिटि” इति णिलोपे स्थानिवद्भावेन  
“णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः” इति चोर उपधाया ह्रस्वे “चुर अ त्” इति जाते “चङि”  
इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् अभ्यासकार्ये च कृते “सन्वल्गुनि चङारेऽनङलोपे”  
इति सन्वद्भावे “दीर्घा लघोः” इत्यभ्यासोकारस्य दीर्घे अङ्गस्य अडागमे च ‘अचूचु-  
रत्’ इति रूपम् । अचूचुरताम्, अचूचुरन् । अचूचुरः, अचूचुरतम्, अचूचुरत ।  
अचूचुरम्, अचूचुराव, अचूचुराम । अचूचुर । चोरीति पूर्ववत्प्रसाध्य लुङ्स्ते तस्य  
सार्वधातुकसंज्ञायाम् प्राप्तं शपम्बाधित्वा “च्लि लुङि” इति च्लौ तस्य स्थाने ‘णि-  
श्चिदु—’ इति चङि अनुबन्धलोपे “गेरनिटि” इति णिलोपे “चङि” इति द्वित्वे,  
अभ्याससंज्ञायाम् अभ्यासकार्ये च जाते ‘चु चुर अ त्’ इति भूते “सन्वल्गुनि चङ-  
परेऽनङलोपे” इति सन्वद्भावे “दीर्घा लघोः” इति अभ्यासस्य दीर्घे “लुङ्गङलुङ्चर-  
द्भुदात्तः” इति अडागमे ‘अचूचुरत’ इति रूपम् । अचूचुरेताम्, अचूचुरन्त । अचूचु-  
रथाः, अचूचुरेथाम्, अचूचुरध्वम् । अचूचुरे, अचूचुरावह, अचूचुरामहि । इति ।  
लुङि—अचोरयिष्यत्—अनोरयिष्यत् । अल्लोप इति । “अतो लोपः” इत्यनेनेति भावः ।  
अचः परस्मिन्निति । “स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ” इत्यस्मात् ‘स्थानिवदादेशः’ इत्यनु-  
वर्तते । अच इत्येतदादेश इत्यनेनान्वेति, अच आदेश इति । परस्मिन्निति सति  
सप्तमी । ततश्च परनिमित्तक इति लभ्यते । तच्चादेशविशेषणम् । तदाह— । निमि-  
त्तोऽजादेश इत्यादिना । कथयति । कथ इत्यकारान्तादिस्माणिचि अनुबन्धलोपे णिच  
“आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकत्वात् “अतो लोपः” इति यकारोत्तरवर्तिन अकारस्य  
लोपे कृते णिचनिमित्तिकायाम् “अन उपधायाः” इति वृद्धौ प्राप्तायाम् ‘अचः पर-  
स्मिन् पूर्वविधौ’ इति अल्लोपस्य स्थानिवत्वात् तदभावे जाते “सनाद्यन्ता धातवः”  
इति धातुसंज्ञायाम् लटि, लः स्थाने तिपि अनुबन्धलोपे सार्वधातुकसंज्ञायां शपि अनु-  
बन्धलोपे शिवात्सार्वधातुकसंज्ञायां गुणे अयादेशे च कृते ‘कथयति’ इति रूपम् ।  
लिटि—कथयामास । कथयाञ्चकार । कथयाम्बभूव । लुटि—कथयिता । लृटि—कथ-  
यिष्यति । लङि—अकथयत् । लिङि—कथयेत् । आशिषि—कथ्यात् । अचकथत् ।  
कथ इत्यकारान्तधातोर्णिचि अल्लोपे तस्य स्थानिवद्भावात् वृद्धभावे धातुर्वाल्लुङ्-  
स्तिपि इलोपे अटि च्लेः स्थाने “णिश्चिदुभ्यः” इति चङि द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यास-  
कार्ये च कृते ‘अ च कथ् अ त्’ इति भूते अत्र यकारोत्तरवर्तिन अकारस्य णिचि-

॥ ३ ॥ गणयति । ई च गणः ७।४।६७ गणयतेरभ्यासस्य ईत्स्याच्चङ् परे णौ ।  
चादत् । अजीगणत्-अजगणत् । इति चुरादयः ।

### अथ गण्यन्तप्रक्रिया ।

स्वतन्त्रः कर्ता १।३।५४ क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् ।  
तत्प्रयोजको हेतुश्च १।४।५५ कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात् । हेतु-  
मति च ३।१।२६ प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात् । भवन्तं प्रेर-

मिच्चेन लोपित्वात् “सन्वल्लघुनि०” इति सन्वद्भावाभावेन “सन्त्यतः” इतीत्वस्य  
“दीर्घो लघोः” इति दीर्घस्य चाप्राप्तौ ‘अचकथत्’ इति रूपम् । गणयति । गणधातो-  
र्णिचि अल्लोपे स्थानिवत्त्वाद् घृद्धभावे धातुत्वाल्लोटो लः स्थाने तिपि णपि अनुबन्ध-  
लोपे गुणे अयादेशे च तत्सिद्धिः । तसादौ—गणयतः, गणयन्ति । इत्यादि । लोटि—  
गणयामास । गणयाम्बभूव । गणयाञ्चकार । इत्यादि । लुटि—गणयिता । लृटि—गण-  
यिष्यति । लोटि—गणयतु । लङि—अगणयत् । लङि—गणयेत् । आशिषि—गणयात् ।  
ई च गण इति । “सन्वल्लघुनि” इत्यतः चङ् परे इति, “अत्र लोपः” इत्यतोऽभ्यास-  
स्येति चानुवर्तते । तदाह—गणयतेरभ्यासस्येति । “अस्मद्दृष्ट्वर०” इति पूर्वसूत्रात्  
‘अद्’ ग्रहणं चकारादनुकृत्यते । तदाह—चाददिति । अजीगणत्, अजगणत् । गणधातो-  
र्णिचि अल्लोपे तस्य स्थानिवत्त्वाद् घृद्धभावे लुङ्स्तिप् इकारलोपेऽटि च्लेश्रद्धि द्वित्वे  
अभ्यासत्वे हलादेः शेषे चुत्वे अगलोपित्वादीर्घसन्वद्भावयोरभावे ‘ई च गणः’ इति  
ईत्वे ‘अजीगणत्’ इति रूपम् । पच्चे ‘अजगणत्’ इति । अजीगणताम्—अजगणताम्,  
अजीगणन्—अजगणन् । अजीगणाः—अजगणाः । अजीगणतम्—अजगणतम् । अजीग-  
णत्—अजगणत् । अजीगणम्—अजगणम् । अजीगणाव—अजगणाव । अजीगणाम—  
अजगणाम । इति । लृङि—अगणयिष्यत् । इति चुरादयः ।

स्वतन्त्रः कर्तेति । कारकाधिकारात् क्रियाजनने स्वातन्त्र्यमिह विवक्षितमित्याह—  
क्रियायामिति । ‘स्वातन्त्र्यमिह प्राधान्यम्’ इति भाष्ये स्पष्टम् । ननु ‘स्थाली पचति’  
इत्यादौ कथं स्थाल्यादीनां कर्तृत्वम्, स्वातन्त्र्याभावादित्यत आह—विवक्षितोऽर्थः  
इति । “विवक्षातः कारकाणि भवन्ति” इति भाष्यादिति भावः । स्वातन्त्र्यञ्च धात्व-  
र्थन्यापाराश्रयत्वम् । अथ “हेतुमति च” इति निज्विधिं वक्ष्यन् हेतुसंज्ञामाह—  
तत्प्रयोजको हेतुश्चेति । “स्वतन्त्रः कर्ता” इति पूर्वसूत्रोपात्तः कर्ता तच्छब्देन परा-  
मृश्यते । तस्य—कर्तुः, प्रयोजकः—प्रवर्तयिता तत्प्रयोजकः । तदाह—कर्तुः प्रयोजक-  
त्वादिना । हेतुमति चेति । “सत्यापपाश” इत्यतो निजित्यनुवर्तते । ‘हेतुः—प्रयोजकः’  
आधारतया अस्यास्तीति हेतुमान् प्रयोजकनिष्ठः प्रेषणादिव्यापारः तस्मिन् वाच्ये  
णिच् स्वादित्यर्थः । “धातोरेकाचो हलादेः” इत्यतो धातोरित्यनुवर्तते तदाह—प्रयो-

यति भावयति । ओः पुण्यण्यपरे ७।१।८ सनि परे यदङ्गं तदव्यवाभ्यासोका-  
रस्य इत्स्यात् पवर्गयण्कारेष्ववर्णपरेषु परतः । अवीभवत् । घ्रा गतिनिवृत्तौ ।  
अतिङ्हीन्लीरीकन्यूयीत्माय्यातां पुङ् लौ ७।३।३६ स्थापयति । तिष्ठतेरित्

जकन्यापार इति । भवन्तमिति । देवदत्तो यज्वा भवति । तं प्रेरयति याजक इत्याद्यर्थे  
भूधात्वर्थस्य भवनस्य मुख्यकर्ता यज्वा तस्य यज्वभवने प्रवर्तयिता याजकादिः  
प्रयोजकः, तन्निष्ठायां प्रेरणायां भूधातोः “हेतुमति च” इति णिचि वृद्धौ, अवादेशे  
च भावि इति णिजन्तम् । तस्य “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायाम् “वर्त-  
माने लट्” इति लटि, तिपि शपि गुणे अयादेशे च ‘भावयति’ इति । भवन्तं प्रेरय-  
तीति । फलितोऽर्थः । भावयतः, भावयन्ति । भावयसि, भावयथः, भावयथ । भाव-  
यामि, भावयावः, भावयामः । एवमात्मनेपदे—भावयते । लिटि—भावयामास, भाव-  
याम्बभूव, भावयाञ्चकार, भावयाञ्चक्रे, इत्यादि । लुटि—भावयिता, लटि—भावयि-  
ष्यति, भावयिष्यते । लोटि—भावयतु—भावयताम् । लङि—अभावयत्, अभाव-  
यत । विधौ—भावयेत्, भावयेत । आशिषि—भाष्यात्, भावयिषीष्ट । ओः पुण्य-  
णिति । उ इत्यस्य ओः इति षष्ठी । पुण्यञि इति च्छेदः । पुश्च यण् च ज् च् इति  
समाहारइन्द्रात्सप्तमी । अः परो यस्मादिति बहुवीहिः । “सन्त्यतः” इत्यस्मात्सनी-  
त्यनुवर्तते । “अङ्गस्य” इत्यधिकृतम् । “अत्र लोपोऽभ्यासस्य” इत्यस्मादभ्यास-  
स्येति “भृजामित्” इत्यस्मादिदिति चानुवर्तते । तदाह—सनि परे इत्यादिना । अवी-  
भवत् । भू इत्यस्मात् “हेतुमति च” इति णिचि “णिच्यच आदेशो न स्याद् द्वित्वे  
कर्तव्ये” इति निषेधात् पूर्वं षड्यभावे “सनाद्यन्ता” इति धातुत्वानुलुङ्गस्तिप इका-  
रलोपे अटि ल्लौ “णिश्चिद्रुद्रुभ्यः कर्तरि चङ्” इति च्लेश्चङि अनुबन्धलोपे “णेरनिटि”  
इति णिलोपे ‘अ भू अ त्’ इति स्थिते ‘द्वित्वे कार्ये णौ अच आदेशस्य निषेधाद्’  
षड्यभावादेशाभ्यां प्रागेव भू इत्यस्य “चङि” इत्यनेन द्वित्वे अभ्यासत्वे “ह्रस्वः”  
इति ह्रस्वे “अभ्यासे चर्व” इति चर्वेन भस्य बत्वे ‘अ बु भू अ त्’ इति जाते प्रत्य-  
यलक्षणत्वात् वृद्धौ आवादेशे “णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः” इति उपधाह्रस्वे ‘अ बु भव्  
अ त्’ इति भूते “सन्वल्लुगुनि चङ्परेऽनरलोपे” इति सन्वद्भावे “ओः पुण्यण्यपरे”  
इत्यभ्यासोकारस्य इत्वे “दीर्घो लघोः” इति दीर्घे च ‘अवीभवत्’ इति रूपम् । कर्तृ-  
गामिनि क्रियाफले ‘अवीभवत्’ इत्यात्मनेपदविशेषः, शेष पूर्ववत् । लङि—अभाव-  
यिष्यत्, अभावयिष्यत । अतिङ्हीति । अतिङ् ही ली री कन्यूयी चमायी आत् एषां  
इन्द्रात् षष्ठी । पुक् णौ इति च्छेदः । तदाह—एषां पुक् स्थापयति । घ्रा गति-  
निवृत्तौ इत्यत्र “धात्वादेः षः सः” इति षस्य सत्वे “निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्य-  
पायः” इति निमित्तस्य षत्वस्य, अपाये—नाशे, नैमित्तिकस्यापि—प्लुत्वस्यापि, अपा-  
यः—नाशः । प्लुत्वनिवृत्तौ च स्था इत्यस्माणिचि अनुबन्धलोपे “अतिङ्हीन्लीरीकन्यू-



७।४।५ उपधाया इदादेशः स्याच्चङ्परे णौ । अतिष्ठिपत् । घट चेषायाम् । मितं ह्रस्वः ६।४।६२ घटादीनां झपादीनां चोपधाया ह्रस्वः स्यात् णौ । घटयति । झप ज्ञाने ज्ञापने च । ज्ञायति । अजिज्ञपत् । इति ण्यन्तप्रक्रिया ।

### अथ सन्नन्तप्रक्रिया ।

धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३।१।७ इषिकर्मण इषिगैक-

यीकमाख्यातां पुरु णौ” इति पुगागमे ‘स्थापि’ इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वाल्लट्स्तपि शपि अनुबन्धलोपे उभयत्र सार्वधातुकसंज्ञायां स्थापेरिकारस्य गुणेऽयादेशे च ‘स्थापयति’ इति रूपम् । आत्मनेपदे—स्थापयते । लिटि—स्थापयामास । स्थापयिता । स्थापयिष्यति, स्थापयिष्यते । स्थापयतु—स्थापयताम् । अस्थापयत्—अस्थापयत । स्थापयेत्—स्थापयेत । स्थाप्यात्—स्थापिषीष्ट । तिष्ठतेरिति । “णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः” इत्यनुवर्तते । तदाह—उपधाया इति । अतिष्ठिपत् । स्थाधातोर्णिच ण्यन्तत्वात् “णिश्रिद्रुभ्यः कर्तरि चङ्” इति चङि अनुबन्धलोपे “णिच्यच आदेशो न स्यात्, द्वित्वे कार्ये” इति निषेधात् द्विवापेक्षया पूर्वं “चङि” इति द्वित्वे अभ्यासत्वे “शर्पूर्वाः खयः” इति सलोपेऽभ्यासह्रस्वे चत्वं “णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः” इति उपधाया ह्रस्वे “णेरनिटि” इति णिलोपे “सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे” इति ह्रस्वे षत्वे ष्ट्वे “तिष्ठतेरित्” इति ह्रस्वे च “अतिष्ठिपत्” इति रूपम् । अत्र केचित् ओण् अपनयने, इत्यत्र ‘अदित्करणल्लिङ्गात्’ उपधाकार्यं द्वित्वात्प्रबलम्” इति कल्पनया पूर्वं “तिष्ठतेरित्” इति ह्रस्वं ततो द्वित्वमिति न समीचीनमिति प्रामाणिकाः । तत्र प्रमाणमन्यत्र स्पष्टम् । मितं ह्रस्व इति । “ऊदुपधाया गोहः” इत्यत उपधाया इति । “दोषो णौ” इत्यस्माद् ‘णौ’ इति चानुवर्तते तदा—ह्रस्व इति । के ते मित्संज्ञका इत्यत आह—घटादीनां झपादीनां चेति । घटयति । घट इत्यस्मांणिच “अत उपधाया” इति उपधावृद्धौ घटादेर्मित्वात् “मितं ह्रस्वः” इति ह्रस्वे धातुत्वाल्लट्स्तपि शपि गुणेऽयादेशे च तरिसिद्धिः । झपयति । झप धातोश्चुरा दत्वाणिच अनुबन्धलोपे “अत उपधायाः” इति वृद्धौ “झप मिच्च” इति मित्वात् “मितं ह्रस्वः” इति उपधाया ह्रस्वत्वे “सनाद्यन्ता” इति धातुत्वाल्लट्स्तपि शपि अनुबन्धलोपे उभयत्र सार्वधातुकसंज्ञायां गुणे अयादेशे च तरिसिद्धिः । अजिज्ञपत् । झप इत्यस्मांणिच उपधावृद्धौ ह्रस्वे ‘झपि’ इति जाते धातुत्वाल्लुङ्गस्तिपङ्कारलोपेऽट् च्लेश्चङि “णेरनिटि” इति णिलोपे “चङि” इति द्वित्वेऽभ्यासकार्ये “सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे” इति सन्वल्लघुत्वे “सन्न्यतः” इति अभ्यासस्याकारस्येत्वे लघुत्वाभावात् ‘दीर्घो लघोः’ इति दीर्घाभावे ‘अजिज्ञपत्’ इति रूपम् । इति ण्यन्तप्रक्रिया ।

धातोः कर्मण इति । “गुहिकर्मणः” इत्यतः सन्नित्यनुवर्तते । इत्याद्याः भुतत्वात्

कर्तृकादातोः सन्प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम् । पठ व्यक्तायां वाचि । सन्नन्डोः ६।  
१।६ सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य । “सन्न्यतः” ।  
पठितुमिच्छति पिपठिषति । कर्मणः किम् ? गमनेनेच्छति । समानकर्तृकात्किम् ?  
शिष्याः पठन्तिवतीच्छति गुरुः । वाग्रहणाद्वाक्यमपि । “लुङ्सनोर्घस्तु” ॥ सः स्या-  
र्धधातुके ७।४।४६ सत्य तः स्यात्सादावार्धधातुके । अतुमिच्छति जिघत्सति ।  
“एकाच” इति नेट् । अजन्तगमां सनि ६।४।१६ अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च

प्रत्येव कर्मत्वं विवक्षितम् । तथा समानकर्तृकत्वमपि इच्छानिरूपितमेव विवक्षितम् ।  
कमेति स्ववाचकशब्दद्वारा धातौ सामानाधिकरण्येनान्वेति । तथा च इच्छासमान-  
कर्मकत्वे सति इच्छाकर्मीभूतो यो व्यापारः तद्वाचकादातोःरिच्छायां सन् वा स्यादिति  
फलति । तदाह—इषि कर्मण इत्यादि । इषिणा एककर्तृकात् इषिकर्मीभूतव्यापारवाच-  
कादातोःरित्यर्थः । सन्नन्डोरिति । अवयवषष्ठ्येषा । प्रत्ययत्वात्तदन्तग्रहणम् । “एकाचो  
द्वे प्रथमस्य” इति “अजादेर्द्वितीयस्य” इति चाधिकृतम् । तदाह—सन्नन्तस्येत्यादिना ।  
सनि यङि च परे इति तु न न्याख्येयम् । तथा सति प्रतिपूर्वादिणः सनि अटधातो-  
र्वाङि च प्रतीषिषति, अटाटवते इत्यत्र प्रत्ययसहितस्य द्वित्वानापचेः । अभ्यासस्य  
इत्त्रविधिं स्मारयति—सन्न्यत इति । पठितुमिच्छतीति । भावस्तुमुनर्थः । “अव्ययकृतो  
भावे” इत्युक्तेः । पिपठिषति । पठ् इत्यस्मात् “धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां  
वा” इति सन्नप्रत्यये अनुबन्धलोपे ‘पठ् स’ इति जाते “आर्धधातुकं शेषः” इति  
आर्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इडागमे टलोपे टित्वादाद्यावयवे  
“सन्न्यङोः” इति द्वित्वे ‘पठ् पठ् इ स’ इति जाते “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यासत्वे  
“इलादिः शेषः” इति टलोपे “सन्न्यतः” इतीत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे “सना-  
द्यन्ता धातवः” इति धातुत्वात्कलटस्तिपि अपि अनुबन्धलोपे ‘पिपठिष अ ति’ इति  
जाते “अतो गुणे” इति पररूपे ‘पिपठिषति’ इति रूपम् । सः स्यार्धधातुक इति । सः  
इति षष्ठ्यन्तम् । सि इति सप्तम्यन्तम्, आर्धधातुकविशेषणम् । तदादिबिभ्रिः  
“अच उपसर्गात्तः” इत्यतः तः इत्यनुवर्तते । अकार उच्चारणार्थः तदाह—सस्य  
तः स्यादिति । आदेशे अकारस्य उच्चारणार्थत्वात्तकारः स्यादित्यर्थः । जिघत्सति ।  
अद् इत्यस्माद्वातोः “धातोः कर्मणः” इति सन्नप्रत्यये “लुङ्सनोर्घस्तु” इत्यदो घञ-  
देशेऽनुबन्धलोपे ‘घस् स’ इति भूते अत्र सनस्सस्य “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातु-  
कसंज्ञायाम् “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इतीडागमे प्राप्ते “एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्”  
इति निषिद्धे “सन्न्यङोः” इति द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये च कृते ‘जघस् स’ इति  
जाते अभ्याससकारस्य “सः स्यार्धधातुके” इति तकारे “जिघत्स” इति भूते “सना-  
द्यन्ता” इति धातुत्वात्कलटस्तिपि अपि अनुबन्धलोपे “अतो गुणे” इति पररूपे च

दीर्घः स्याज्ज्मलादौ सनि । इको भल् १।२।६ इगन्ताज्ज्मलादिः सन् कित् स्यात् ।  
 “ऋत इद्वातोः” कर्तुमिच्छति चिकीर्षति । सनिग्रहगुहोश्च ७।२।१२। ग्रहेगुहेर-  
 गन्ताच्च सन इण् न स्यात् । बुभूषति । इति सन्नन्ताः ।

### अथ यङन्तप्रक्रिया ।

धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ३।१।२२ पौनःपुन्ये भृशार्थे  
 च योत्पे धातोरेकाचो हलादेर्यङ् स्यात् । गुणो यङ्लुकोः ७।४।८२ अभ्यासस्य

कृते ‘जिवस्सति’ इति रूपम् । अज्जनगमां सनीति । अच्, हन्, गम्, एषां द्वन्द्वः ।  
 “नोपधायाः” इत्यतः उपधाया इत्यनुष्टुप् हनगमोरन्वेति । न त्वजन्ते, असम्भवात् ।  
 “अङ्गस्य” इत्यधिकृतम् । अचस्तद्विशेषणत्वात्तदन्तविधिः, गमधातुरिह अजादेश  
 एव विवक्षित इति प्रकृतभाष्ये स्पष्टम् । “दूलोपे पूर्वस्य” इत्यतो दीर्घ इत्यनुवर्तते ।  
 तदाह—अजन्तानामित्यादिना । इको भलिति । इगन्तादिति । सना आक्षिप्तधातुविशेष-  
 णत्वात्तदन्तविधिरिति भावः । सन् किति । “रुदविदमुषग्रहि” इत्यतः ‘सन्’ इति,  
 “असंयोगाल्लिट् कित्” इत्यतश्च ‘किङ्’ इत्यनुवर्तत इति भावः । इत्वं स्मारयति—  
 ऋत इद्वातोरिति । चिकीर्षतीति । कृधातोः “धातोः कर्मणः” इत्यादिना सनि अनुबन्ध-  
 लोपे आर्धधातुकत्वे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इडागमे प्राप्ते “एकाच उपदेशे-  
 ऽनुदात्तात्” इतीगिण्येषे “अज्जनगमां सनि” इति दीर्घे “इको झल्” इति क्तिवाद्  
 गुणभावे “ऋत इद्वातोः” इति इत्वे रपरे ‘किर् स’ इति भूते द्वित्वेऽभ्यासकार्ये  
 “हलि च” इति दीर्घे षत्वे च कृते ‘चिकीर्ष’ इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः” इति  
 ‘धातुसंज्ञायां लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे “अतो गुणे” इति पररूपे च कृते ‘चिकी-  
 र्षति’ इति सिद्धम् । सनि ग्रहगुहोश्चेति । चकारात् “अगुक् किति” इत्यतः उक्  
 इत्यनुकृष्यते, न तु श्रयति, तस्य “सनीवन्तर्ध” इति विकल्पस्य वक्ष्यमाणत्वात् ।  
 “नेड्वसिकृति” इत्यतो नेडिति चानुवर्तते । तदाह—ग्रहेरित्यादिना । बुभूषति ।  
 भूधातोः “धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा” इति सनि “आर्धधातुकं शेषः”  
 इत्यार्धधातुकसंज्ञायाम् “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इडागमे प्राप्ते “सनि ग्रहगु-  
 होश्च” इत्यनेन निषिद्धे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे प्राप्ते “इको झल्” इति  
 क्तिवेन “विडिति च” इत्यनेन निषिद्धे “सन्त्यङोः” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्य-  
 भ्यासत्वे “हलादिः शेषः” इत्यादिहलः शेषे “ह्रस्वः” इति ह्रस्वे “अभ्यासे चर्च” इति  
 अभ्यासप्रकारस्य बत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति सनः सस्य षत्वे ‘बुभूष’ इति जाते  
 “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वाल्लटस्तिपि शपि अनुबन्धलोपे “अतो गुणे” इति  
 पररूपे ‘बुभूषति’ इति रूपम् । इति सन्नन्तप्रक्रिया ।

१. धातोरेकाचो हलादेरिति । योत्पे इति । वाच्यत्वे तु प्रत्ययवाच्यस्य प्रधानतया सन्नन्ते

गुणः स्यात् यङि यङ्लुकि च परतः । ङिदन्तत्वादात्मनेपदम् । पुनः पुनरतिशयेन वा भवति बोभूयते । बोभूयाञ्चक्रे । अबोभूयिष्ट ॥ नित्यं कौटिल्ये गतौ ३१।२३ गत्यर्थात्कौटिल्य एव यङ् स्यात्, न तु क्रियासमभिहारे ॥ दीर्घोऽकितः ७।४।८३ अकितोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात् यङ्यङ्लुकोः । कुटिलं व्रजति वाव्रज्यते ॥ यस्य

इच्छया इव तस्य विशेष्यत्व स्यादिति भावः । गुणो यङ्लुकोरिति । यङ् च लुक् च इति ङ्ङ्ङ्हात् सप्तमी । लुगिह यङ एव विवक्षितः उपस्थितत्वात् । “अत्र लोपोऽभ्यासस्य” इत्यतोऽभ्यासस्येत्यनुवर्तते । तदाह — अभ्यासस्येति । इक्परिभाषया इगन्तस्येति लभ्यते । बोभूयते । भूधातोः “धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्” इति यङ् प्रत्यये ङकारेत्संज्ञायां लोपे च “सन्यङोः” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्याससंज्ञायां “हलादिः शेषः” इत्यादिहलःशिष्टे इस्वे “अभ्यासे चर्च” इति मस्य बत्वे “गुणो यङ्लुकोः” इत्यभ्यासस्य गुणे ‘बोभूय’ इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वात् “वर्तमाने लट्” इति लटि, यङो ङित्वात् “अनुदात्तङित आत्मनेपदम्” इति लटो लः स्थाने तङि “तिङ्शित्सार्वाधातुकम्” इति तस्य सार्वाधातुकसंज्ञायां “कर्तरि शप्” इति शपि अनुबन्धलोपे “अतो गुणे” इति पररूपे “दित आत्मनेपदानां टेरे” इति तस्य टेरेत्वे ‘बोभूयते’ इति रूपम् । बोभूयेते, बोभूयन्ते । बोभूयसे, बोभूयेथे, बोभूयध्वे । बोभूये, बोभूयावहे, बोभूयामहे । बोभूयाञ्चक्रे । भूधातोः “धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्” इति यङि “सन्यङोः” इति द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्यं च जाते “गुणो यङ्लुकोः” इति अभ्यासस्य गुणे ‘बोभूय’ इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायाम् “परोच्चे लिट्” इति लिटि “कास्यनेकाच्च आम्बक्तव्यः” इति आमि, “आमः” इति लिटो लुकि, “कृञ्छानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्परकृजोऽनुप्रयोगे ‘बोभूयाम् कृ लिट्’ इति जाते लिटो लः स्थाने ते “लिटस्तद्धयोरेशिरेच्” इति तस्य एशि आदेशे “लिटि धातोः” इति कृजो द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्यं ‘बोभूयाम् चकृ ए’ इति भूते यणि कृते आमो मस्य अनुस्वारे परसवण च कृते ‘बोभूयाञ्चक्रे’ इति रूपम् । लुटि—बोभूयिता । लृटि—बोभूयिष्यते । लोटि—बोभूयताम् । लङि—अबोभूयत । लिङि—बोभूयेत । आशिधि—बोभूयिषीष्ट । अबोभूयिष्ट । भूइत्यस्माद् धातोः यङि द्वित्वेऽभ्यासगुणे जश्त्वे ‘बोभूय’ इत्यस्य धातुत्वाल्लुङो लः स्थाने तप्रत्ययेऽटि च्लेः सिचि इचावितौ तयोर्लोपे च कृते स् इत्यस्य आर्धधातुकत्वे इटि “अतो लोपः” इति यङोऽङ्कारस्य लोपे षत्वे ष्टुत्वे च ‘अबोभूयिष्ट’ इति रूपम् । आताम्प्रभृतिषु—अबोभूयिषाताम्, अबोभूयिषत । अबोभूयिष्ठाः, अबोभूयिषाथाम्, अबोभूयिध्वम् । अबोभूयिषि, अबोभूयिष्वहि, अबोभूयिष्महि । नित्यं कौटिल्ये इति । नित्यशब्दः पुरार्थः । कौटिल्ये इत्यस्योपरि द्रष्टव्यः । “धातोरेकाचः” इत्यतो यङित्यनुवर्तते । तदाह—त्यतिशयेन कौटिल्य एवेति । दीर्घोऽकित इति ।

हलः ६।४४६। यस्तेति सङ्घातग्रहणम् । हलः परस्य यशब्दस्व लोपः स्यादार्वाधा-  
तुके । “आदेः परस्य” । “अतो लोपः” । वाव्रजाञ्चके । वाव्रजिता ॥ रीगृदुप-  
धस्य च ७।४।६०। ऋदुधस्य धातोरभ्यासाय रीगागमः स्याद्यङ्यङ्लुकोः । वरीवृ-

अभ्यासस्येति । “अत्र लोपोऽभ्यासस्य” इत्यतोऽभ्यासस्येत्यनुवर्तते इति भावः । यङि  
यङ्लुकि चेति । “गुणो यङ्लुकोः” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । वाव्रज्यते । व्रजधातोः  
“नित्यं कौटिल्ये गतौ” इति यङि द्वित्वेऽभ्यासत्वे अभ्यासकार्यं च कृते ‘व व्रज्य’  
इति जाते “दीर्घोऽकितः” इति दीर्घं “सनाद्यन्ता” इति धातुत्वाल्लुटस्ते शपि,  
“अतो गुणे” इति पररूपे ढरेत्वे च ‘वाव्रज्यते’ इति । व व्रज्येते वाव्रज्यन्ते ।  
वाव्रज्यसे, वाव्रज्येथे, वाव्रज्यध्वे । वाव्रज्ये, वाव्रज्यावहे, वाव्रज्यामहे । यस्य हल  
इति । यकारादकारस्य उच्चारणार्थस्वप्नं वारयति—संघातग्रहणमिति । यकाराकार-  
समुदायस्येत्यर्थः । हलः इति पञ्चमी । “आर्धधातुके” इत्यधिकृतम् । “अतो लोपः”  
इत्यस्माल्लोप इत्यनुवर्तते । तदाह—हलः परस्येति । ननु “अलोऽन्त्यस्य” इति यका-  
रादकारस्य लोपः स्यादित्यत आह—आदेः परस्येति । “अलोऽन्त्यस्य” इत्यस्यायमप-  
वाद इति भावः । अतो लोप इति । यकाराकारसंघाते यकारस्य लोपे सति परिशिष्ट-  
स्याकारस्य “अतो लोपः” इति भावः । वाव्रजाञ्चके । व्रजधातोर्यङि द्वित्वेऽभ्यासत्वे  
अभ्यासकार्यं “दीर्घोऽकितः” इत्यभ्यासदीर्घं च कृते ‘वाव्रज्य’ इति जाते धातुत्वाङ्घ्रि-  
अनेकाध्वादाग्रप्रत्यये “आदेः परस्य” इति सूत्रबलात् “यस्य हलः” इति यलोपे  
“अतो लोपः” इत्यङ्गोपे “आमः” इति लिटो लुकि ‘वाव्रजाम्’ इति भूते “कृष्णा-  
नुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्परकृजोऽनुप्रयोगे तप्रत्यये तस्य एशि द्वित्वेऽभ्यासत्वे  
अभ्यासकार्यं च कृते, कृते चानुस्वारे परसवर्णे ‘वाव्रजाञ्चके’ इति सिद्धम् । वाव्र-  
जिता । व्रजधातोः “धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्” इति यङि द्वित्वे-  
ऽभ्यासकार्यं “दीर्घोऽकितः” इति अभ्यासाकारस्य दीर्घं धातुत्वाल्लुटि तासि,  
लुटो लस्य तादेशे तस्य ङात्वे द्वित्वसामर्थ्यादभस्यापि ढेलोपे तास इति च  
कृते “आदेः परस्य” इति सूत्रबलाद् “यस्य हलः” इति यलोपे “अतो लोपः” इत्य-  
ङ्गोपे ‘वाव्रजिता’ इति रूपम् । लुटि—वाव्रजिष्यते । लोटि—वाव्रज्यताम् । लङि—अवा-  
व्रज्यत । लिङि—वाव्रज्येत । आशिषि—वाव्रजिषीष्ट । लुङि—अवाव्रजिष्ट । लङि—अवाव्र-  
जिष्यत । रीगृदुपधस्येति । अभ्यासस्येति । “अत्र लोपः” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः ।  
यङ्लुकोरिति । “गुणो यङ्लुकोः” इत्यतो ‘यङ्लुकोः’ इत्यनुवर्तते इति भावः । वरीवृ-  
त्त्यते । वृत्तधातोर्यङि द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् “उरत्” इत्यभ्यासस्य अत्वे “उरण्  
रपरः” इति रपरे “हलादिः शेषः” इत्यादिहलोऽवशिष्टे “रीगृदुपधस्य च” इति  
अभ्यासस्य रीगागमे ‘वरीवृत्त्य’ इत्यस्य “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वाल्लुटस्ते  
शपि अनुबन्धलोपे “अतो गुणे” इति पररूपे ढरेत्वे च कृते ‘वरीवृत्त्यते’ इति रूपम् ।

त्यते । वरीवृताञ्चके । वरीवृतिता ॥ जुम्नादिषु च ८।४।३६ एषु णत्वं न स्यात् ।  
जरीनृत्यते । जरीगृह्यते । इति यङन्तप्रक्रिया ।

पुनः पुनः वर्तते इति हि तस्यार्थः । वरीवृताञ्चके । वृत्धातोः “धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्” इति यङि, अनुबन्धलोपे “सन्धङोः” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इति अभ्याससंज्ञायाम् “उरत्” इति अभ्यासस्य अकारे “उरण् रपरः” इति रपरे “हलादिः शेषः” इत्यादिहलः शेषे ‘व वृत् य’ इति जाते “रीगृदुपधस्य च” इति अभ्यासस्य रीगागमे अनुबन्धलोपे, ‘वरीवृत्त्य’ इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः” धातुसंज्ञायां “परोक्षे लिट्” इति लिटि, “कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः” इति आम्, “यस्य हलः” इति यलोपे “अतो लोपः” इति अकारस्य लोपे ‘वरीवृताम् लिट्’ इति जाते “आमः” इति लिटो लुकि, “कृञ्छानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्परके कृञि अनुप्रयुक्ते, लिटो लः स्थाने ते, तस्य एङि कृते द्वित्वे, अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये च कृते, यणि, आमो मस्यानुस्वारे परसवर्णे च कृते ‘वरीवृताञ्चके’ इति रूपम् । वरीवृताञ्चकात्, वरीवृताञ्चकिरे । वरीवृताञ्चकृषे, वरीवृताञ्चकाथे, वरीवृताञ्चकृढवे । वरीवृताञ्चके, वरीवृताञ्चकृवहे, वरीवृताञ्चकृमहे । वरीवृतिता । वृत्धातोर्थङि, द्वित्वेऽभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये च जाते, “रीगृदुपधस्य च” इति धातोरभ्यासस्य रीगागमे ‘वरीवृत्त्य’ इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायाम् लुटि, लुटो लः स्थाने तिपि, तासि तिपो ङादेशे, “यस्य हलः” इति यमात्रस्य लोपे “अतो लोपः” इत्यकारस्य लोपे, ‘वरीवृत्तास्’ इति जाते ङकारे गते द्वित्वाट्टिलोपे, तास इङागमे, ‘वरीवृतिता’ इति रूपम् । वरीवृतितारौ, वरीवृतितारः । वरीवृतितासे, वरीवृतितासाथे । वरीवृतिताध्वे । वरीवृतिताहे, वरीवृतितास्वहे, वरीवृतितास्महे । लुटि—वरीवृतिष्यते । लोटि—वरीवृत्त्यताम् । लङि—अवरीवृत्स्यत । लिङि—वरीवृत्स्येत । आशिषि—वरीवृतिषीष्ट । लुङि—अवरीवृतिष्ट । लृङि—अवरीवृतिष्यत । इति । जुम्नादिविविति । “रषाम्यां नो णः” इत्यतो ण इति “न भाभूपकमि” इत्यतो नेति चानुवर्तते । तदाह—एत्वं नेति । नरीनृत्यत । नृत्धातोर्थङि, द्वित्वेऽभ्यासकार्ये, रीगागमे धातुस्वाल्लटस्तादेशे णपि, अनुबन्धलोपे, पररूपे ढेरत्वे ‘नरीनृत्यते’ इति स्थितौ “अट्कुप्वाङनुम्वयवायङपि” इति णत्वे प्राप्ते “जुम्नादिषु च” इति णत्वनिषेधे सति ‘नरीनृत्यते’ इति रूपम् । लिटि—नरीनृताञ्चके । लुटि—नरीनृतिता । लृटि—नरीनृतिष्यते । लोटि—नरीनृत्यताम् । लङि—अनरीनृत्यत । विधौ—नरीनृत्येत । आशिषि—नरीनृतिषीष्ट । लुङि—अनरीनृतिष्ट । लृङि—अनरीनृतिष्यत । इति । जरीगृह्यते । ग्रहधातोर्थङि द्वित्वात्सम्प्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे ‘गृह् य’ इति जाते “सन्धङोः” इति द्वित्वेऽभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये, “रीगृदुपधस्य च” इत्यभ्यासस्य रीगागमे, धातुस्वाल्लटस्ते प्रत्यये, णपि, अनुबन्धलोपे, “अतो गुणे” इति पररूपे ढेरत्वे च कृते ‘जरीगृह्यते’ इति रूपम् । जरीगृ-

## अथ यङ्लुगन्तप्रक्रिया ।

यङोऽचि च २।४।७४। यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्याच्चकारात् विनापि कचित् ।  
 अनैमित्तिकोऽयमन्तरङ्गत्वादादौ भवति । ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद्विद्वत्त्वमभ्या-  
 सकार्यम् । धातुत्वाद्भादयः । “शेषात्कर्तरि” इति परस्मैपदम् । ‘चर्करीतं च’  
 इत्यदादौ पाठाच्छपो लुक् ॥ यङो वा अ३।६४। यङ्लुगन्तात्परस्य हतादेः पितः  
 सार्वधातुकस्येड् वा स्यात् । “भूसुवोः” इति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषायां न ।  
 “बोभूतुतेतिके” इति छन्दसि निपातनात् । बोभवीति-बोभोति । बोभूतः । “अदभ्य-

ञेते, जरीगृह्यन्ते । जरीगृह्यसे, जरीगृह्ये, जरीगृह्ये, जरीगृह्ये, जरीगृह्यावहे, जरी-  
 गृह्यामहे । लुटि-जरीगृहाञ्चक्रे । लुटि-जरीगृहिता । लुटि-जरीगृहिष्यते । लोटि-जरी-  
 गृह्यताम् । लङि-अजरीगृह्यत । लङि-जरीगृह्येत । आशिषि-जरीगृहिषीष्ट । लुङि-  
 अजरीगृहिष्ट । लुङि-अजरीगृहिष्यत । इति यङन्तप्रक्रिया ।

यङोऽचि चेति । अचि इति प्रत्ययग्रहणम्, न तु प्रत्याहारः, यङा साहचर्यात् ।  
 “ण्यञ्चत्रियार्ष” इत्यतो लुगित्यनुवर्तते । तदाह—यङोऽचि प्रत्यये इति । चकारात्  
 विनापीति । अच्यत्ययाभावेऽपीत्यर्थः । तत इति । यङो लुगान्तरमित्यर्थः । “न लुमता”  
 इत्यनेन हि लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं निषिध्यते । द्वित्वादिकं तु यङ-  
 न्तस्य कार्यम्, ननु यङ्निमित्तकम्, यङि परतस्तद्विध्यभावादिति भावः । द्वित्वमिति ।  
 “सन्त्यङोः” इत्यनेनेति भावः । अभ्यासकार्यमिति । गुणादीति भावः । धातुत्वादिति ।  
 यङो लुकि सत्यपि प्रत्ययलक्षणमाश्रित्य यङन्तत्वात् “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातु-  
 स्वम् । चर्करीतमिति । यङ्लुगन्तमदादौ बोध्यमिति व्याख्यातं प्राक् । अतो यङ्लुग-  
 न्ताच्छपो लुगित्यर्थः । यङो वेति । “उतो वृद्धिः” इत्यतो हलीति “नाभ्यस्तस्याचि”  
 इत्यतः पिति सार्वधातुके इति, “ब्रुव ईट्” इत्यत ईडिति चानुवर्तते । तदाह—यङ्लु-  
 गन्तादित्यादिना । “भूसुवोस्तिङि” इति गुणनिषेधमाशङ्क्य आह—भूसुवोरिति । निपात-  
 नादिति । “कृषेः छन्दसि” इत्यतः छन्दसोत्यनुवृत्तौ “दाधर्तिदधर्तिदधेषिबोभूतुते-  
 तिके” इत्यादिसूत्रे भूधातोर्यङ्लुगन्तस्य गुणाभावो निपात्यते । “भूसुवोः” इत्येव  
 तत्र गुणनिषेधे सिद्धे गुणाभावनिपातनं नियमार्थम्—यङ्लुकि छन्दस्येवायं “भूसुवोः”  
 इति गुणनिषेधो, नान्यत्र इति । अतो लोकेऽपि यङ्लुगस्तीति विज्ञायते । बोभवीति ।  
 भूधातोर्यङि, “यङोऽचि च” इति द्वित्वापेक्षया आदौ यङो लुकि, ततः प्रत्ययलक्षणेन  
 यङन्तत्वात् द्वित्वे, “गुणो यङ्लुकोः” इति अभ्यासस्य गुणे, जश्चे, “सनाद्यन्ता  
 धातवः” इति धातुत्वाद्धटस्तिपि, “कर्तरि शप्” इति शपि, “चर्करीतं च” इति यङ्लु-  
 गन्तस्य अदादौ पाठाददादित्वात् “अदिप्रभृतिभ्यः शप्” इति शपो लुकि, ‘बो भू ति’  
 इति स्थिते “यङोऽचि च” इति पाञ्चिक ईडागमे, ‘बोभूतुतेतिके’ इति छन्दसि निपा-

स्तात्' । बोभुवति । बोभवाञ्चकार-बोभवामास । बोभविता । बोभविष्यति । बोभ-

तनात् "भूसुबोस्तिङि" इति गुणनिषेधस्य यङ्लुकि भाषायामप्रवृत्त्या गुणेऽवादेशे च 'बोभवीति' इति रूपम् । इडभावे 'बोभोति' इति रूपम् । बोभूतः । भूधातोः "धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्" इति यङि, "यङोऽचि च" इति यङ्लुकि, "प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्" इति प्रत्ययलक्षणेन "सन्यङोः" इति धातोद्वित्वे अभ्याससंज्ञायां "ह्रस्वः" इति अभ्यासस्याचो ह्रस्वत्वे "अभ्यासे चर्च" इति अभ्यासमकारस्य बत्वे "गुणो यङ्लुकोः" इति अभ्यासस्याचो गुणे, 'बोभू' इति जाते "सनाद्यन्ता धातवः" इति धातुत्वाल्लटि, लटः स्थाने प्रथमपुरुषद्विवचने तसि, "कर्तरि शप्" इति शपि, यङ्लुगन्तस्य अदादौ पाठात् "अदिप्रभृतिभ्यः शपः" इति शपो लुकि, तसः सस्य रूपे विसर्गे च 'बोभूतः' इति रूपम् । बोभुवति । भूधातोः "धातोरेकाचो" इति यङि, "यङोऽचि च" इति यङो लुकि, प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात् "सन्यङोः" इति द्वित्वे, अभ्याससंज्ञायां "हलादिः शेषः" इति आदिहलः शेषे, "ह्रस्वः" इति ह्रस्वे "अभ्यासे चर्च" इति अभ्यासमकारस्य बत्वे, "गुणो यङ्लुकोः" इति अभ्यासस्य गुणे 'बोभू' इति जाते, प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात् "सनाद्यन्ता धातवः" इति धातुत्वाल्लटि, तत्स्थाने प्रथमपुरुषबहुवचने झौ, "कर्तरि शप्" इति शपि "अदिप्रभृतिभ्यः शपः" इति शपो लुकि, "ङमे अभ्यस्तम्" इति अभ्यस्तत्वात् "अदभ्यस्तात्" इति ङेः स्थाने अदादेशे 'बोभू अ ति' इति जाते "अचि श्नुधातुभ्रवां य्वोरियङुवङौ" इति उवङि, मिलित्वा 'बोभुवति' इति रूपम् । अग्रे बोभवीषि-बोभोषि, बोभूथः, बोभूथ । बोभवीमि-बोभोमि, बोभूवः, बोभूमः । इति रूपाणि । साधनिका पूर्ववत् । बोभवाञ्चकार । भूधातुतो "धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्" इति यङि, "यङोऽचि च" इति यङो लोपे प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात् "सन्यङोः" इति द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये "गुणो यङ्लुकोः" इति अभ्यासस्याचो गुणे, 'बोभू' इति जाते "सनाद्यन्ता धातवः" इति धातुत्वात् "परोच्चे लिट्" इति लिटि, "कास्यनेकाच आम्बक्तव्यः" इति आमि, तस्य "आर्धधातुकं शेषः" इति आर्धधातुकत्वे "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इति 'बोभू' इत्यस्य गुणे अवादेशे च कृते, "आमः" इति लिटो लुकि, "कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि" इति लिटपरकस्य कृञोऽनुप्रयोगे 'बोभवाम् कृ लिट्' इति स्थिते लिटः स्थाने तिप्, तिपः स्थाने "परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः" इति णलि, अनुबन्धलोपे, "लिटि धातोरभ्यासस्य" इति 'कृ' इत्यस्य द्वित्वे अभ्यासत्वे "उरत्" इति उः स्थानेऽत्वे रपरत्वे "हलादिः शेषः" इति आदिहलः शेषे "कुहोश्चुः" इति अभ्यासकस्य चत्वे 'बोभवाम् चकृ अ' इति जाते, "अचो ण्णिति" इति 'कृ' इत्यस्य वृद्धौ रपरे मस्य अनुस्वारे परसवर्णे च कृते 'बोभवाञ्चकार' इति । अग्रे-बोभवाञ्चक्रतुः, बोभवाञ्चक्रुः । बोभवाञ्चकथं, बोभवाञ्चक्रथुः, बोभवाञ्चक्र । बोभवाञ्चकार-बोभवाञ्चकर, बोभवाञ्चकृव । बोभवाञ्च-



बीतु-बोभोतु-बोभूतात् । बोभूताम् । बोभुवतु । बोभूहि । बोभवानि । अबोभवीत-

कृम । इति । साधनिका बोभवाङ्कारवत् ज्ञेया । बोभवामास । 'बोभू' इति यङ्-  
लुगन्तं प्रसाध्य ततो लोटि, आभि, लोटो लुकि लोटपरेऽसि प्रयुक्ते उक्तरूपस्य सिद्धिः ।  
बोभविता । भूधातोर्यङि, यङो लुकि, द्वित्वे अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्यं च कृते,  
"गुणो यङ्लुकोः" इति अभ्यासस्य गुणे 'बोभू' इति जाते, "सनाद्यन्ता धातवः"  
इति धातुसंज्ञायां लुटि, तत्स्थाने तिपि, तिपो ङात्वे, तासि, तासः आर्धधातुकत्वाद्  
इडागमे, गुणेऽवादेशे च 'बोभविता' इति रूपम् । बोभवितारौ, बोभवितारः । बोभ-  
वितारि, बोभवितार्यः, बोभवितार्यः । बोभवितास्मि, बोभवितास्वः, बोभवितास्मः ।  
इति । बोभविष्यति । 'बोभू' इति पूर्ववत् यङ्लुगन्तं प्रसाध्य धातुसंज्ञायां लुटि, ल-  
स्थाने प्रथमरूपैकवचने तिपि, "स्यतासी लुटोः" इति स्ये, "आर्धधातुकं शेषः"  
इत्यार्धधातुकसंज्ञायाम् "आर्धधातुकस्ङवलादेः" इति इडागमे "सार्वधातुकार्ध-  
धातुकयोः" इति गुणे, "एचोऽयवायावः" इत्यवादेशे "आदेशप्रत्यययोः" इति पत्वे  
'बोभविष्यति' इति । बोभविष्यतः, बोभविष्यन्ति । बोभविष्यसि, बोभविष्यथः,  
बोभविष्यथ । बोभविष्यामि, बोभविष्यावः, बोभविष्यामः । इति । बोभवीतु । भूधा-  
तोः "धातौरेकाचो हलादेः त्रिआसमभिहारे यङ्" इति यङि, "यङोऽचि च" इति  
यङो लुकि, प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात् "सन्त्यङोः" इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम्  
अभ्यासकार्यं च कृते, "गुणो यङ्लुकोः" इति अभ्यासस्य गुणे 'बोभू' इति जाते  
"सनाद्यन्ता धातवः" इति धातुसंज्ञायां लोटः प्रथमपुरुषैकवचने तिपि, शपि, 'यङ्लु-  
गन्तस्य अदादौ पाठात्' "अदिप्रभृतिभ्यः शपः" इति शपो लुकि, "यङो वा" इति  
तिपः इडागमे गुणे अवादेशे च कृते, "एरुः" इति तिप इकारस्योत्वे च कृते 'बोभ-  
वीतु' इति रूपम् । ईडभावे "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इति गुणे 'बोभोतु' इति  
रूपम् । तातङि-बोभूतात् । बोभूताम् । भूधातोः यङ्लुगन्तं प्रसाध्य लोटि, तसि,  
तसः स्थाने "तत्स्थस्थमिपां तान्तन्तामः" इति तामादेशे च कृते शेषं पूर्ववत् । बोभु-  
वतु । यङ्लुगन्तं पूर्ववत्प्रसाध्य लोटः स्थाने झौ कृते "अदभ्यस्तात्" इति शेरदा-  
देशे "एरुः" इति उत्वे "अचि रनुधातु" इति उवङि च कृते 'बोभुवतु' इति रूपम् ।  
बोभूहि । भूधातोर्यङि, यङ्लुकि, द्वित्वे अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्यं च कृते, "गुणो  
यङ्लुकोः" इति अभ्यासस्याचो गुणे 'बाभू' इति जाते प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात्  
"सनाद्यन्ता धातवः" इति धातुसंज्ञायां "लोट च" इति लोटि, लोटस्सिपि, शपि,  
"अदिप्रभृतिभ्यः शपः" इति शपो लुकि "सेर्षपिच्च" इति सेर्षौ कृते 'बोभूहि' इति  
रूपम्, एवं 'बोभूतात्, बाभूतम्, बोभूत । बोभवानि । लोट उत्तमपुरुषैकवचने  
मिपि समागते- 'बोभू' इति भूते "मेनिः" इति "मेनिस्त्वे" "आहुत्तमस्य पिच्च"  
इति आदि, "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इति गुणे, "एचोऽयवायावः" इत्यावादेशे

अबोभोत् । अबोभूताम् । अबोभुः । बोभूयात् । बोभूयाताम् । बोभूयुः । बोभूयात् ।

‘बोभवानि’ इति रूपम् । बोभवाव, बोभवाम्, इत्यत्राप्येवं बोध्यम् । अबोभवीत् । भूधातोः “धातोरैकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्” इति यङि, “यङोऽचि च” इति यङो लुकि, “सन्त्यङोः” इति द्वित्वे अभ्यासत्वे, “हलादिः शेषः” इत्यादिहल् शेषे “ह्रस्वः” इत्यभ्यासस्य ह्रस्वत्वे, “अभ्यासे चर्च” इति भस्य बत्वे, “गुणो यङ्लुकोः” इति अभ्यासस्याचो गुणे ‘बोभू’ इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वे “अनद्यतने लङ्” इति लङि, लङ्स्तपि, शपि “अदिप्रभृतिभ्यः शपः” इति शपो लुकि, “यङो वा” इति वेदि, “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे, एचोऽयवायावः” इति अवादेशे “इतश्च” इति तिप इकारस्य लोपे, अङ्गस्याडागमे च कृते “अबोभवीत्” इति सिद्धम् । इडागमाभावे—अबोभोत् इति । अबोभूताम् । ‘बोभू’ इति यङ्लुगन्तात् लङ्स्तसि, तसस्ताम, शपो लुकि अटि च ‘अबोभूताम्’ इति । अबोभुः । ‘बोभू’ इति यङ्लुगन्तात् लङः प्रथमपुरुषबहुवचने शौ, शपि शपो लुकि, “सिज्भ्यस्तविदिभ्यश्च” इति श्लेजुसि, अटि, “जुसि च” इति भकारोत्तरवर्युकारस्य गुणे अवादेशे र्वत्वे विसर्गे च ‘अबोभुः’ इति रूपम् । लङा मध्यमपुरुषे—अबोभवीः—अबोभोः, अबोभूतम्, अबोभूत । लङ उत्तमपुरुषे—अबोभवम्, अबोभूव, अबोभुम् । बोभूयात् । भूधातोर्थाङ्, यङो लुकि, प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात् “सन्त्यङोः” इति द्वित्वे, अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये च कृते भस्य बत्वे “गुणो यङ्लुकोः” इत्यभ्यासस्य गुणे ‘बोभू’ इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वात् “विधिनमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्पन्नप्रार्थनेषु लिङ्” इति लिङि, तत्स्थाने तिप्, शपि, शपो लुकि, यासुटि, उटि गते, “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे, “इतश्च” इति तिप इकारस्य लोपे, ‘बोभूयात्’ इति रूपम् । बोभूयाताम् । यङ्लुगन्तं ‘बोभू’ इति प्रसङ्ग्य धातुसंज्ञायां विधौ लिङि, लिङ्स्तसि, तसस्तामि, शपि, शपो लुकि, यासुटि, उटि गते, सलोपे च तत्सिद्धिः । बोभूयुः । ‘बोभू’ इति यङ्लुगन्तप्रसाङ्ग्य “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वात् विधौ लिङि तत्स्थाने शौ, “श्लेजुस्” इति श्लेः स्थाने जुसि, जस्येत्संज्ञायां लोपे च, शपि शपो लुकि, यासुटि, उटि गते, “लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति सलोपे, ‘बोभू या उस्’ इति जाते, “उस्यपदान्तात्” इति पररूपत्वे, सस्य रूपे, रेफस्य विसर्गत्वे च ‘बोभूयुः’ इति रूपम् । मध्यमपुरुषे—बोभूयाः, बोभूयातम्, बोभूयात् । उत्तमपुरुषे—बोभूयाम्, बोभूयाव, बोभूयाम् । इति । बोभूयात् । भूधातोः “धातोरैकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्” इति यङि, “यङोऽचि च” इति यङो लुकि, स्थानिवद्भावेन यङन्तत्वमानीय “सन्त्यङोः” इति द्वित्वे, अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये भस्य बत्वे “गुणो यङ्लुकोः” इति अभ्यासस्य गुणे ‘बोभू’ इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वात् “आक्षिपि लिङ्लोटौ” इति आक्षिपि लिङि,

बोभूयास्ताम् । बोभूयासुः । “गातिस्था” इति सिचो लुक् । “यङो वा” इतीदृपचे गुणं बाधित्वा नित्यत्वाद् वुक् । अबोभूवीत्-अबोभोत् । अबोभूताम् । अबोभूवुः । अबोभविष्यत् ॥ इति यङ्लुगन्ताः ।

लिङः स्थाने तिपि, अनुबन्धलोपे “लिङाशिषि” इति तिपि आर्धधातुकत्वे, तेन शब-  
भावे, “किदाशिषि” इति यासुटि, उटि गते “इतश्च” इति तिपि इकारस्य लोपे ‘बोभू-  
यास्व’ इति भूते “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति स्रलोपे ‘बोभूयात्’ इति रूपम् ।  
बोभूयास्ताम् । ‘बोभू’ इति यङ्लुगन्तम्प्रसाध्य आशिषि लिङि, तत्स्थाने तसि, तस-  
स्तामि यासुटि, उटि गते, ‘बोभूयास्ताम्’ इति रूपम् । बोभूयासुः । ‘बोभू’ इति यङ्लु-  
गन्तम्प्रसाध्य आशिषि लिङो श्रौ, “क्षेर्जुस” इति जुसि, अनुबन्धलोपे, यासुटि, उटि  
गते, संयोगे सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गं च ‘बोभूयासुः’ इति रूपम् । मध्यमपुरुषे-बोभू-  
याः, बोभूयास्तम्, बोभूयास्त । बोभूयासम्, बोभूयास्व, बोभूयास्म । इति रूपाणि । अबो-  
भूवीत् । भूधातोः “धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्” इति यङि, “यङोऽचि च”  
इति यङो लुकि, प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात् “सन्त्यङोः” इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम्  
‘हलादिः शेषः’ इत्यादिहलः क्षिप्ते, “ह्रस्वः” इत्यभ्यासस्याचो ह्रस्वे “अभ्यासे चर्च”  
इति अभ्यासमकारस्य बत्वे, “गुणो यङ्लुकोः” इति अभ्यासस्य गुणे ‘बोभू’ इति  
जाते, “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायाम् “लुङ्” इति लुङि, लुङः स्थाने प्रथमः  
पुरुषैकवचनविवक्षायां तिपि, अनुबन्धलोपे, “ल्लि लुङि” इति ल्लौ, “ल्लेः सिच”  
इति सिचि, इचि गते, ‘बोभू स् ति’ इति भूते, “इतश्च” इति तिपिः इकारस्य लोपे,  
“तिङ् शित्सार्वधातुकम्” इति तिपस्तकारस्य सार्वधातुकसंज्ञायाम् “गातिस्थाधुपा-  
भूम्यः सिचः परस्मैपदेषु” इति सिचः सो लोपे, “यङो वा” इति तिपस्तकारस्य  
ईडागमे, “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे प्राप्ते नित्यत्वात् तम्बाधित्वा “भुवो  
वुग्लुङ्लिटोः” इति वुगागमे ‘बोभूवीत्’ इति जाते “लुङ्लुङ्लृङ्क्ष्वङुदाच्” इत्यङ्गस्य  
अडागमे ‘अबोभूवीत्’ इति रूपम् । अबोभोत् । “यङो वा” इति ईडागमाभावपक्षे लुङ्स-  
म्बन्ध्यचपरत्वाभावेन वुगभावे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे ‘अबोभोत्’ इति रूप-  
म् । अबोभूताम् । ‘बोभू’ इति यङ्लुगन्तम्प्रसाध्य धातुसंज्ञायां लुङस्तसि, तसस्तामि, ल्लौ,  
ल्लेः सिचि, “गातिस्थाधुपाभूम्यः सिचः परस्मैपदेषु” इति सिचो लोपे, अटि च कृते तत्सि-  
द्धिः । अबोभूवुः । ‘बोभू’ इति यङ्लुगन्ताद्भातोर्लुङो श्रौ, “सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च” इति  
क्षेर्जुसि, अनुबन्धलोपे, “भुवो वुग्लुङ्लिटोः” इति वुगागमे, अनुबन्धलोपे कित्वादन्या-  
वयवे जाते, अडागमे च कृते सस्य रुत्वे विसर्गं च तत्सिद्धिः । मध्यमपुरुषे-अबो-  
भूवीः-अबोभोः, अबोभूतम्, अबोभूत । अबोभूवम्, अबोभूव, अबोभूम । इति  
रूपाणि । अबोभविष्यत् । ‘बोभू’ इति पूर्ववत्प्रसाध्य लृङ्स्तिति, स्ये इटि गुणे अवादेशे,  
ह्रस्वस्य ऋत्वे तिपि इकारस्य लोपे, अङ्गस्याडागमे च तत्सिद्धिः । अबोभविष्यत्, अबो-

### अथ नामधातवः ।

सुप आत्मनः क्यच् ३।१।८। इषिकर्मण एषितुः सम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छा-  
यामर्थे क्यच् प्रत्ययो वा स्यात् ॥ सुपो धातुप्रातिपदिकयोः २।४।७। एतयोर-  
वयवस्य सुपो लुक् स्यात् ॥ क्यचि च ७।४।३३। अवर्णस्य ईत्स्यात् । आत्मनः  
पुत्रमिच्छति पुत्रीयति ॥ नः क्ये १।४।१५। क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं स्यात्  
नान्यत् । नलोपः । राजीयति । नान्तमेवेति किम् ? वाच्यति । “हलि च” । गीर्य-

मविष्यताम्, अबोभविष्यन् । अबोभविष्यः, अबोभविष्यतम्, अबोभविष्यत । अबो-  
भविष्यम्, अबोभविष्याव, अबोभविष्याम । इति रूपाणि । इति यङ्लुगन्तप्रक्रिया ।

सुप आत्मन इति । प्रत्ययग्रहणपरिभाषया सुबन्तादिति लभ्यते । “धातोः कर्मणः”  
इति सूत्रात्कर्मणः इच्छायां वा इत्यनुवर्तते । कर्मण इति पञ्चमी । कर्मकार-  
कादिति लभ्यते । सन्निधानादिच्छां प्रत्येव कर्मत्वं विवक्षितम् । आत्मन्—शब्दः  
स्वपर्यायः । तादर्थ्यस्य शेषत्वविवक्षायां षष्ठी । स्वार्थात्कर्मण इति लभ्यते, स्वस्य  
इच्छायां सन्निधापितत्वादेष्टैव विवक्षितः । तथाच स्वस्मै यदिष्यते कर्मकारकं  
तदनुवृत्तेः सुबन्तादिच्छायां क्यच्चा स्यादिति फलति । तदिदमभिप्रेत्य आह—  
इषि कर्मण एषितुः सम्बन्धिन इत्यादिना । सुपो धात्विति । धातुप्रातिपदिकयोरि-  
त्यवयवषष्ठीत्याह—एतयोरवयवस्येति । लुक् स्यादिति । “ण्यङ्नित्यार्षजितो यूनि लुक्”  
इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । क्यचि चेति । “अस्य च्वौ” इत्यतोऽस्येत्यनुवर्तते । “ई  
प्राध्मोः” इत्यत ईग्रहणञ्चेति मत्वा शेषं पूरयति—अवर्णस्येति । पुत्रीयति । आत्मनः पुत्र-  
मिच्छतीत्यर्थे द्वितीयान्तपुत्रशब्दात् “सुप आत्मनः क्यच्” इति क्यचि “पुत्र  
अम् क्यच्” इति स्थिते “सनाद्यन्ता धातवः” इति सूत्रेण समुदायस्य धातुसंज्ञायां  
“सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति अमो लुकि, ‘पुत्र क्यच्’ इत्यत्र “लशक्त-  
द्धिते” इति ककारस्येत्संज्ञायां “हलन्त्यम्” इति चस्येत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति  
उभयोः कचयोर्लोपे, “क्यचि च” इत्यनेन ‘पुत्र’ इत्यत्र अकारस्य ईत्वे ‘पुत्रीय’  
इति जाते तस्मात् “वर्तमाने लट्” इति लटि, लटस्तिपि, शपि अनुबन्धलोपे,  
“अतो गुणे” इति पररूपत्वे च ‘पुत्रीयति’ इति रूपम् । एवं सर्वत्र । लिटि—  
‘पुत्रीयाञ्चकार’ इत्यादि । लुटि—पुत्रीयिता । लृटि—पुत्रीयिष्यति । लोटि—पुत्रीयतु ।  
लङि—अपुत्रीयत् । लिङि—पुत्रीयेत् । आशिषि—पुत्रीय्यात् । लुङि—अपुत्रीयीत् ।  
लृङि—अपुत्रीयिष्यत् । इत्यादि । नः क्ये इति । नकारादकार उच्चारणार्थः । “सुस्तिङ-  
न्तम्” इत्यतः सुबन्तं पदमित्यनुवर्तते । सुबन्तं नकारेण विशेष्यते । तदन्तविधिः ।  
नकारान्तं सुबन्तं पदसंज्ञं स्यादिति लभ्यते । सुबन्तत्वादेव पदत्वे सिद्धे निबन्धार्थमि-  
दम् । क्यग्रहणेन क्यच्क्वलोर्ग्रहणम् । न तु क्यचः, “लोहितवज्रम्बः क्यच्यवज्रम्बः”

ति । पूर्यति । 'धातोरित्येव' नेह-दिवमिच्छति दिव्यति ॥ क्यस्य विभाषा ६।४।  
५०। हलः परयोः क्यच्क्यङोर्लोपो वा स्यादार्धधातुके । "आदेः परस्य" । "अतो

इति हलन्तात्क्यषोऽभावात् । तदाह-न्यचि क्यङि चेत्यादिना । राजीयति । आत्मानं  
राजानमिच्छति इत्यर्थे "सुप आत्मनः क्यच्" इति 'राजन् अम्' इति सुबन्तात् क्यचि,  
"सनाद्यन्ता धातवः" इति धातुसंज्ञायां "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" इति अमो लुकि,  
कचयोरित्संज्ञायां लोपे च जाते "नः क्ये" इति नियमेन अत्र पदत्वात् "न लोपः  
प्रातिपदिकान्तस्य" इति नलोपे 'राज य' इति भूते "क्यचि च" इति जकारोत्तरवर्तिन-  
अकारस्य ईत्वे 'राजीय' इति सम्पन्ने धातुत्वाल्लटस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे, "अतो  
गुणे" इति पररूपत्वे 'राजीयति' इति रूपम् । राजीयाञ्चकार । राजीयिता । राजीयि-  
ष्यति । राजीयद्बु । अराजीयत् । राजीयेत् । राजीय्यात् । अराजीयीत् । अराजीयिष्यत् ।  
इति लिट्प्रभृति प्रतिलकारमेकमेकं रूपं बोध्यम् । नान्तमेवेति किमिति । अन्तर्वर्तिनीं  
विभक्तिमादायैव पदत्वात् नलोपे सिद्धे "नः क्ये" इति सूत्रस्य 'सिद्धे सति आरभ्य-  
माणो विधिर्नियमाय भवति" इति नियामकत्वात् नान्तस्यैव पदत्वम्, अन्यत्र पद-  
त्वाभावः । तेन आत्मनो वाचमिच्छतीत्यर्थे "सुप आत्मनः क्यच्" इति क्यचि, अनु-  
बन्धलोपे 'वाच्यति' इत्यत्र अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमादाय पदत्वाभावात् "चोः कुः" इति  
कुत्वाभावः, "वचिस्वपि" इति सम्प्रसारणन्तु न । "धातोः कार्यमुच्यमानं धातुविहित-  
प्रत्यये एव" इति नियमात् । गीर्यति । पूर्यति । आत्मनो गिरमिच्छति, 'आत्मनः पुर-  
मिच्छति' इत्यत्र च "सुप आत्मनः क्यच्" इति क्यचि, "सनाद्यन्ता धातवः" इति  
धातुसंज्ञायां "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" इति अमो लुकि, 'गिर् य' 'पुर य' इति  
जाते, "हलि च" इति उपधाया इको दीर्घत्वे 'गीर्य' 'पूर्य' इति जाते धातुत्वाल्लट-  
स्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे, "अतो गुणे" इति पररूपत्वे 'गीर्यति' 'पूर्यति' इति रूपे  
स्तः । दिव्यति । दिवमिच्छति इत्यर्थे 'दिव् अम्' इति सुबन्तात् "सुप आत्मनः क्यच्"  
इति क्यचि, "सनाद्यन्ता धातवः" इति धातुत्वात् "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" इति  
अमो लुकि, कचयोरलोपे 'दिव्य' इति भूते, तस्माल्लटस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे,  
"अतो गुणे" इति पररूपे च कृते तस्सिद्धिः । अत्र "हलि च" इति दीर्घो न, धातुत्वा-  
भावात् । दिव्शब्दोऽन्युत्पन्नं प्रातिपदिकमिति भावः । क्यस्य विभाषेति । "यस्य हलः"  
इत्यतो हल इति पञ्चम्यन्तमनुवर्तते । "आर्धधातुके" इत्यधिकृतम् । तदाह-हलः  
परयोरित्यादिना । अन्तलोपमाशङ्क्याह-आदेः परस्येति । लटि-"समिध्यति" इति  
रूपम् । लटि-"समिधाञ्चकार, समिध्याञ्चकार" इति । समिधिता । समिधमात्मान-  
मिच्छति इत्यर्थे क्यचि, धातुसंज्ञायाम् अमो लुकि, कचयोरलोपे, "नः क्ये" इति  
नियमेन पदत्वाभावाच्च जरत्वम् । तस्मात् समिध्य इति धातोर्लुटि, लुटस्तिपि, तिपो  
दात्वे, तासौ, टिलोपे तास आर्धधातुकत्वादिति 'समिच् य इ ट् आ' इति जाते "क्यस्य

लोपः” । तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न । समिधिता-समिध्यत् ॥ काम्यच्च ३।  
१।६। उक्तविषये काम्यच् स्यात् । पुत्रमात्मन इच्छति पुत्रकाम्यति । पुत्रकाम्यिता ॥  
उपमानादाचारे ३।१।१०। उपमानात्कर्मणः सुबन्तादाचारेऽयं क्यच् स्यात् । पुत्र-  
मिवाचरति पुत्रीयति छात्रम् । विष्णूयति द्विजम् । ( सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्त्वा

विभाषा” इति यलोपे प्राप्ते, “अलोऽन्त्यस्य” इति परिभाषां प्रवाध्य “आदेः परस्य”  
इत्यनेन यमात्रस्य लोपे, “अतो लोपः” इत्यनेन अकारस्य च लोपे ‘समिधिता’ इति  
रूपम् । क्यचो लोपाभावे ‘समिध्यिता’ इति रूपम् । लुटि—समिधिष्यति, समिध्यि-  
ष्यति । लोटि—समिध्यतु । लङि—असमिध्यत् । लिङि—समिध्येत् । आशिषि  
समिध्यात्-समिध्य्यात् । लुङि—असमिधीत्-असमिध्यीत् । लुङि—असमिधिष्यत्-अस-  
मिध्यिष्यत्, इति । काम्यच्चेति । “सुप आत्मनः क्यच्” इत्युत्तरमिदं सूत्रम् । तदाह—  
उक्तविषये इति । पुत्रकाम्यति । आत्मनः पुत्रमिच्छतीत्यर्थे पुत्र अम् इति सुबन्तात् काम्यच्  
प्रत्यये “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायां “सुपो धातु प्रातिपदिकयोः” इति अमो  
लुकि, ‘पुत्रकाम्य’ इत्यस्मात् धातोर्लटस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे, “अतो गुणे” इति  
पररूपत्वे ‘पुत्रकाम्यति’ इति रूपम् । लुटि—पुत्रकाम्याञ्चकार इति । पुत्रका-  
म्यिता । आत्मनः पुत्रमिधिता इत्यर्थे पुत्रम् इति सुबन्तात् काम्यचि, “सनाद्यन्ता  
धातवः” इति धातुत्वादमो लुकि, तस्मात् लुटि, लुटस्तिपो ङात्वे अनुबन्धलोपे, तासि,  
तासः आर्धधातुकत्वाद् इटि “अतो लोपः” इति काम्यचोऽकारस्य लोपे, ‘पुत्रका-  
म्यिता’ इति रूपम् । लुटि—पुत्रकाम्यिष्यति । लोटि—पुत्रकाम्यतु । लङि—अपुत्र-  
काम्यत् । लिङि—पुत्रकाम्येत् । आशिषि—पुत्रकाम्यात् । लुङि—अपुत्रकाम्यीत् ।  
लुङि—अपुत्रकाम्यिष्यत् । उपमानादाचारे इति । “सुप आत्मनः क्यच्” इत्यतः सुप  
इत्यनुवर्तते । “धातोः कर्मणः समानकर्तृकात्” इत्यतः कर्मण इति तदाह—उपमाना-  
त्कर्मण इत्यादिना । पुत्रीयति छात्रमिति । पुत्रमिवाचरति इत्यर्थे ‘पुत्र अम्’ इति उप-  
मानवाचककर्मणः “उपमानादाचारे” इति क्यचि, कस्य चस्य च लोपे “सनाद्यन्ता  
धातवः” इति धातुसंज्ञायां “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इत्यमो लुकि, “क्यचि च”  
इति अस्य ईत्वे ‘पुत्रीय’ इति भूते, तस्मात्लटस्तिपि, शपि अनुबन्धलोपे “अतो गुणे”  
इति पररूपत्वे च कृते ‘पुत्रीयति’ इति सिद्धम् । विष्णूयति द्विजमिति । विष्णुमिवा-  
चरति इत्यर्थे ‘विष्णु अम्’ इति उपमानवाचकात्कर्मणः “उपमानादाचारे” इति  
क्यचि, अनुबन्धलोपे, धातुसंज्ञायां “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति अमो लुकि,  
‘विष्णु य’ इति जाते “अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः” इति दीर्घे ‘विष्णूय’ इति भूते, तस्मा-  
त्लटस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे, “अतो गुणे” इति पररूपत्वे च कृते “विष्णूयति”  
इति रूपम् । लिङादौ—विष्णूयाञ्चकार । विष्णूयिता, विष्णूयिष्यति, विष्णूयतु, अवि-  
ष्णूयत्, विष्णूयेत् । विष्णूय्यात्, अविष्णूयीत् । अविष्णूयिष्यत् । सर्वप्रातिपदिकेभ्य

वक्तव्यः) “अतो गुणे” । कृष्ण इव आचरति कृष्णति । स्व इवाचरति स्वति । सस्वौ ॥ अनुनासिकस्य किमलोः किञ्चि ६।४।१५। अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात् कौ मलादौ च किञ्चि । इदमिवाचरति इदामति । राजेव राजानति ।

इति । आचारे इति शेषः । कृष्णति । कृष्ण इव आचरति इत्यर्थे कृष्ण इति प्रातिपदिकात् “सर्वप्रातिपदिकेभ्यः किञ्वा वक्तव्यः” इति क्पिपि, “लशकृतद्धिते” इति कस्येत्संज्ञायां “हलन्त्यम्” इति पस्येत्संज्ञायाम् “उपदेशेऽजनुनासिक इत्” इतीकास्येत्संज्ञायां कृतायां “तस्य लोपः” इति लोपे वस्य “वेरपृक्तस्य” इतिलोपे “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायां लटस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे “अतो गुणे” इति पररूपत्वे च कृते ‘कृष्णति’ इति रूपम् । लिटि—कृष्णाञ्चकार । लुटि—कृष्णिता । लृटि—कृष्णिष्यति । लोटि—कृष्णात् । लङि—अकृष्णत् । लिङि—कृष्णेत् । आशिषि—कृष्ण्यात् । लुङि—अकृष्णीत् । लृङि—अकृष्णिष्यत् । इति । स्वति । एवमेव स्वशब्दात् उपमानवाचकात् आचरतीत्यर्थे क्पिपि, क्पिपः सर्वस्य अपहारे धातुसंज्ञायां लटस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे पररूपे च तत्सिद्धिः । सस्वौ । स्वशब्दात् “सर्वप्रातिपदिकेभ्यः” इति क्पिपि, तस्यापहारे धातुसंज्ञायां लिटि, लिटस्तिपि, तिपो णळि, अनुबन्धलोपे द्वित्वे, अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये ‘स स्व अ’ इति जाते, “अचो ङिति” इति वृद्धौ, ‘स स्वा अ’ इत्यत्र “आत औ णलः” इति णलोऽकारस्योत्वे “वृद्धिरेचि” इति वृद्धौ ‘सस्वौ’ इति रूपम् । सस्वौ, सस्वतुः, सस्तुः । सस्विथ, सस्वधुः, सस्व । सस्वौ, सस्विथ, सस्विम । इति । लृडादौ—स्विता, स्विष्यति । इत्यादि । अनुनासिकस्य किमलोरिति । “अङ्गस्य” इत्यधिकृतमनुनासिकेन विशेष्यते । तदन्तविधिः । “नोपधायाः” इत्यतः उपधाया इति, “दूलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इत्यतो दीर्घ इति चानुवर्तते । तदाह—अनुनासिकान्तरयेत्यादिना । इदामति । इदमिवाचरति इत्यर्थे इदमिति प्रातिपदिकात् “सर्वप्रातिपदिकेभ्यः किञ्वा वक्तव्यः” इति क्पिपि, तस्य सर्वापहारे प्रत्ययलक्षणेन क्बिबन्तत्वात् “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायाम् “अनुनासिकस्य किमलोः किञ्चि” इति उपधायाः दीर्घत्वे ‘इदाम्’ इति भूते तस्मात्लटस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे मिलित्वा ‘इदामति’ इति रूपम् । इदामतः, इदामन्ति । इत्यादि । इदामाञ्चकार, इदामिता, इदामिष्यति, इदामतु, ऐदामीत् । इदामेत् । इदाम्यात् । ऐदामीत् । ऐदामिष्यत् । इति । राजानति । ‘राजेवाचरति’ इत्यर्थे राजन् इति प्रातिपदिकात् “सर्वप्रातिपदिकेभ्यः किञ्वा वक्तव्यः” इति क्पिपि, क्पिपो लुकि, प्रत्ययलक्षणेन क्बिबन्तत्वात् “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायाम् “अनुनासिकस्य किमलोः किञ्चि” इति उपधाया दीर्घत्वे ‘राजान्’ इति जाते तस्मात्लटस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे मिलित्वा ‘राजानति’ इति रूपम् । राजानाञ्चकार । राजानिता । राजानिष्यति । राजानतु । अराजानत् । राजानेत् । राजा-

पन्था इव पथीनति ॥ कष्टाय क्रमणे ३।१।१३। चतुर्थ्यन्तात्कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे  
क्यङ् स्यात् । कष्टाय क्रमते कष्टायते । पार्प कर्तुमुत्सहत इत्यर्थः ॥ शब्दवैरकल-  
हाम्रकण्वमेधेभ्यः करणे ३।१।१७। एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात् ।  
शब्दं करोति शब्दायते । 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच् ( प्रातिपदिकाद्वात्वर्थे  
बहुलमिष्टवच्च ) प्रातिपदिकाद्वात्वर्थे णिच् स्यात् । इष्टे यथा प्रातिपदिकस्य पुंव-  
द्भावरभावटिलोपविन्मतुल्लोपयणादिलोपप्रस्थस्फाद्यादेशभसंज्ञास्तद्वणावपि स्युः । इत्य-  
ल्लोपः । घटं करोत्याचष्टे घटयति ॥ इति नामधातवः ।

न्यात् । अराजानीत् । अराजानिष्यत् । इति । पथीनति । पन्था इव आचरति इत्य-  
स्मिन्नर्थे पथिन् शब्दात् उक्तवातिकेभ्यः क्तिप्, क्तिपो लोपे, "अनुनासिकस्य क्तिञ्छलो-  
विजति" इत्युपधाया दीर्घत्वे, "सनाद्यन्ता धातवः" इति धातुसंज्ञायां लट्तिपि,  
अपि, अनुबन्धलोपे, संयुक्ते च कृते 'पथीनति' इति रूपम् । कष्टाय क्रमणे । क्रमणशब्दं  
विष्णोति—उत्साहे इति । कष्टायते । 'कष्ट के' इति चतुर्थ्यन्तात् क्रमते इत्यस्मिन्नर्थे  
"कष्टाय क्रमणे" इत्यनेन क्यङि, अनुबन्धलोपे "सनाद्यन्ता धातवः" इति धातुसंज्ञायां  
"सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" इति कर्त्तुं कि, "अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः" इति अजन्ताङ्ग-  
स्य दीर्घत्वे 'कष्टाय' इति जाते, क्तिप्वात् तस्माद्धटस्ते, अपि, अनुबन्धलोपे "अतो गुणे"  
इति पररूपत्वे "दित आत्मनेपदानां टेरे" इति टेरेत्वे च तत्सिद्धिः । शब्दवैरकलहति ।  
करणं क्रिया । तदाह—करोत्यर्थे इति । तत् करोतीति णिचोऽपवादः । शब्दायते । 'शब्दभ्रम'  
इति द्वितीयान्तात् करोतीत्यर्थे क्यङि, अनुबन्धलोपे, "सनाद्यन्ता धातवः" इति धातु-  
संज्ञायां "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" इति अतो लुकि, "अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः" इति  
अजन्ताङ्गस्य दीर्घत्वे 'कष्टाय' इति जाते, तस्मात् लटि, धातोर्क्तिप्वात् लटो लस्थाने  
ते अपि, अनुबन्धलोपे, "अतो गुणे" इति पररूपत्वे "दित आत्मनेपदानां टेरे" इति  
टेरेत्वे च कृते रूपम् । तत्करोति तदाचष्टे । इदं चुरादिमणसूत्रम् । प्रातिपदिकादित्यनु,  
वर्तते । तत्करोति तदाचष्टे इति चार्थे प्रातिपदिकाणिच् स्यादित्यर्थः । आचारकिविब  
प्रातिपदिकादेवेदम् । प्रातिपदिकान्चेति । इष्टवच्चेति । इष्टवदिति ससम्यन्ताइति ।  
तदाह—इष्टे यथेति । पुंवद्भावेति । अतिशयेन पट्वी 'पटिष्ठ' इत्यत्र "भस्यादे" इति  
पुंवत्वम् । द्रदिष्ठ—इत्यत्र "रञ्जतो हलादेर्लुङोः" इति रभावः । अतिशयेन साधुः  
साधिष्ठः इत्यत्र टिलोपः । अतिशयेन सग्वी सजिष्ठः इत्यत्र "विन्मतोर्लुक्" इति विनो  
लुक् । अतिशयेन गोमान् गविष्ठः इत्यत्र मतुपो लुक् । अतिशयेन स्थूलः स्थविष्ठः  
इत्यादौ "स्थूलदूरसुव" इत्यादिना यणादिलोपः पूर्वस्य च गुणः । अतिशयेन प्रियः  
प्रेष्ठः इत्यादौ "प्रियस्थिर" इत्यादिना प्रादेशः । अतिशयेन सग्वी सजिष्ठः  
इत्यत्र भत्वाच्च कुत्वम् । एते इष्टे इव णावपि परतः स्युस्त्यर्थः । इत्यल्लोप इति । इष्ट-  
वद्भावादिलोप इत्यर्थः । घटयति । घटं करोति घटमाचष्टे वा इत्यस्मिन्नर्थे "तत्करोति



## अथ कण्ठ्वादयः ।

कण्ठ्वादिभ्यो यक् ३।१।२७। एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात्स्वार्थे । कण्ठ्भू गात्रविघर्षणे ॥ १ ॥ कण्ठ्यति । कण्ठ्यते, इत्यादि ॥ इति कण्ठ्वादयः ।

## अथात्मनेपदप्रक्रिया ।

कर्तरि कर्मव्यतिहारे १।३।१४। क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मनेपदं स्यात् ।

‘तदाचष्टे’ इति वार्तिकणिचि, णस्य घस्य च लोपे, ‘घट इ’ इति जाते, इष्टवन्नावाद् भसंज्ञायां “यस्येति च” इत्यकारलोपे, ‘घटि’ इति जाते, “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायां “वर्तमाने लट्” इति लटि, अकारटकारयोरित्संज्ञायां लोपे च कृते लः स्थाने प्रथमपुरुषैकवचनविवक्षायां तिपि, अनुबन्धलोपे, “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकसंज्ञायां शपि, शपयोरित्संज्ञायां लोपे च कृते मिलित्वा ‘घटयति’ इति रूपम् । लिटि—घटयाञ्चकार । लुडादौ—घटयिता । घटयिष्यति । घटयतु । अघटयत् । घटयेत् । घट्यात् । अजघटत् । अघटयिष्यत् इति । इति नामधातवः ।

कण्ठ्वादिभ्यो यक् । धातुभ्य इति । “धातोरेकाचो हलादेः” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । नित्यमिति । वाग्रहणं तु निवृत्तमिति भावः । अन्यथा ‘कण्ठ्वति’ इत्याद्यपि स्यादिति भावः । द्विधा हि कण्ठ्वादयः, धातवः, प्रातिपदिकानि च—धातुप्रकरणाद्धातुः, अस्य चासञ्ज्ञादपि । आह चायमिमं दीर्घं, मन्ये धातुर्विभाषितः ॥ इति भाष्यादिति भावः । गात्रविघर्षणम् । गात्रस्वर्जनमिति यावत् । कण्ठ्यति । अनुबन्धविनिर्मुक्तात् गात्रविघर्षणार्थककण्ठ्वाधातोः “कण्ठ्वादिभ्यो यक्” इति स्वार्थे यकि, “हलन्त्यम्” इति कस्येत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे, “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायां “वर्तमाने लट्” इति लटि, लटस्तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे, ‘कण्ठ्य अ ति’ इति जाते, “अतो गुणे” इति पररूपत्वे च विहिते ‘कण्ठ्यति’ इति रूपम् । कण्ठ्यते । कण्ठ्वातोः ‘कण्ठ्वादिभ्यो यक्’ इति यकि, सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वान्नलटस्ते, शपि अनुबन्धलोपे, “अतो गुणे” इति पररूपत्वे “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च कृते ‘कण्ठ्यते’ इति रूपम् । लिटि—कण्ठ्याञ्चकार—कण्ठ्याञ्चके । लुटि—कण्ठ्यितासि—कण्ठ्यितासे । लृटि—कण्ठ्यिष्यति, कण्ठ्यिष्यते । लोटि—कण्ठ्यतु—कण्ठ्यताम् । अकण्ठ्यत्—अकण्ठ्यत । कण्ठ्येत्—कण्ठ्येत । कण्ठ्य्यात्—कण्ठ्यिषीष्ट । अकण्ठ्यीत्—अकण्ठ्यिष्ट । अकण्ठ्यिष्यत्—अकण्ठ्यिष्यत इति । इति कण्ठ्वादयः ।

कर्तरि कर्मेति । कर्मव्यतिहार इत्यत्र कर्मशब्दः क्रियापरः, व्यतिहारशब्दो विनिमयपर इत्युक्तं भवति । व्यतिलुनीते । वि अति इति उपसर्गद्वयपूर्वकलृप्तधातोः “वर्तमाने लट्” इति लटि, अनुबन्धलोपे, लटो लः स्थाने “कर्तरि कर्मव्यतिहारे” इति कर्मव्यतिहारे द्योत्ये कर्तरि आत्मनेपदे प्राप्ते, तत्र प्रथमपुरुषैकवचनविवक्षायां ते कृते,

व्यतिलुनीते, अन्यस्य योग्यं लवनमन्यः करोतीत्यर्थः ॥ न गतिर्हिसार्थेभ्यः १।३।  
१५। व्यतिगच्छन्ति । व्यतिघ्नन्ति ॥ नेर्विशः १।३।१७। निविशते । परिव्यवेभ्यः  
क्रियः १।३।१८। परिक्रीणीते । विक्रीणीते । अवक्रीणीते ॥ विपराभ्यां जेः १।३।  
१६। विजयते । पराजयते ॥ समवप्रविभ्यः स्थः १।३।२२। सन्तिष्ठते । अवति-  
ष्ठते । वितिष्ठते ॥ प्रतिष्ठते । अपह्वे ज्ञः १।३।४४। शतमपजानीते । अपलपती-  
त्यर्थः ॥ अकर्मकाच्च १।३।४५। सर्पिषो जानीते । सर्पिषोपायेन प्रवर्तत इत्यर्थः ॥  
उदश्चरः सकर्मकात् १।३।५३। धर्ममुचरते । उल्लङ्घ्य गच्छतीत्यर्थः ॥ समस्त-

“क्रयादिभ्यः आ” इति भाप्रत्यये अनुबन्धलोपे, उभयत्र सार्वधातुकसंज्ञायां “प्वादीनां  
ह्रस्वः” इति लृजो ह्रस्वत्वे, “ई ह्रस्वघोः” इति आभाकारस्य ईत्वे, “दित आत्मनेपदानां  
देरे” इति देरेत्वे “वि अति” इत्यत्र यणि च कृते ‘व्यतिलुनीते’ इति रूपम् । अन्य-  
स्येति । शूद्रादियोग्यं सस्यादिलवनं ब्राह्मणः करोतीत्यर्थः । न गतिर्हिसार्थेभ्य इति ।  
कर्मव्यतिहारे द्योत्ये गत्यर्थेभ्यो हिसार्थेभ्यश्च धातुभ्यो न आत्मनेपदमित्यर्थः । व्यति-  
गच्छन्ति । व्यतिघ्नन्ति । अत्र “कर्तरि कर्मव्यतिहारे” इत्यात्मनेपदत्वे प्राप्ते “न गति-  
र्हिसार्थेभ्यः” इति निवार्यते । नेर्विशः । निपूर्वाद्भिः आत्मनेपदं स्यादित्यर्थः । निवि-  
शते । निपूर्वात् विज्ञातोर्लटः स्थाने “नेर्विशः” इति ते, शपि, अनुबन्धलोपे च  
तत्सिद्धिः । परिव्यवेभ्य इति । परि वि अव एभ्यः परस्मात् क्रीञ्धातोरात्मनेपदमित्यर्थः ।  
अत्वादात्मनेपदसिद्धेः अकर्त्रभिप्रायार्थमिदम् । परिक्रीणीते इत्यादि । परिपूर्वकक्रीञ्-  
धातोः “वर्तमाने लट्” इति लटः स्थाने “स्वरितजितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले” इति  
कर्त्रभिप्राये क्रियाफले आत्मनेपदे प्राप्ते तम्बाधित्वा “परिव्यवेभ्यः क्रियः” इत्यात्म-  
नेपदे ते “क्रयादिभ्यः आ” इति आ, अनुबन्धलोपे, “ई ह्रस्वघोः” इति ईत्वे णत्वे देरेत्वे  
च तत्सिद्धिः । एवं वि अवएतदुपसर्गाभ्यां परस्य क्रीञ्धातोरपि बोध्यम् । विपराभ्यां  
जेरिति । वि परा आभ्यां परस्मात् जिघातोरात्मनेपदमित्यर्थः । विजयते । विपूर्वकजि-  
घातोर्लटः स्थाने “विपराभ्यां जेः” इति ते, शपि, गुणे, अयादेशे देरेत्वे च तत्सिद्धिः ।  
विजयते-उत्कृष्टो भवतीत्यर्थः । पराजयते । निकृष्टो भवतीत्यर्थः । समवप्रविभ्यः स्थ  
इति । स्थः इति पञ्चमी । सम् अव प्र वि एभ्यः परस्मात् स्थाधातोरात्मनेपदमित्यर्थः ।  
सन्तिष्ठते । सम्पत् भवतीत्यर्थः । अवतिष्ठते । अत्र सर्वत्र स्थाधातोर्लटः स्थाने “समव-  
प्रविभ्यः स्थः” इत्यात्मनेपदे, शपि, “प्राघ्राध्मास्थान्नादाण०” इत्यादिना तिष्ठ  
आदेशः । अपह्वे ज्ञः । अपह्वे—अपलापः । तद्बृहत्तेर्ज्ञाधातोरात्मनेपदमित्यर्थः ।  
अपजानीते । अपोपसर्गपूर्वकज्ञाधातोर्लटः स्थाने “अपह्वेज्ञः” इत्यात्मनेपदत्वे “क्रया-  
दिभ्यः शना” इति शना, “ई ह्रस्वघोः” इति शनाकारस्य ईत्वे च तत्सिद्धिः । अकर्म-  
काच्च । ज्ञः आत्मनेपदमिति शेषः । सर्पिषो जानीते इति । अत्र ज्ञाधातुः प्रवृत्तौ वर्तते ।

तीयायुक्तात् १।३।५४। रथेन सञ्चरते । दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे १।३।५५। सम्पूर्वादाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात्, तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थः । दास्या संयच्छते कामी ॥ पूर्ववत्सनः १।३।६२। सनः पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात् । एदिधिषते ॥ हलन्ताच्च १।२।१०। इक्समीपादलः परो ऋजादिः सन् कित् स्यात् । निविक्लिषते ॥ गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः १।३।३२। गन्धनं सूचनम् । उत्कुरुते । सूचयतीत्यर्थः । अवक्षेपणं भर्त्सनम् । श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते, भर्त्सयतीत्यर्थः । हरिमुपकुरुते ।

“ज्ञो ऽविद्व्यस्य करणे” इति तृतीयार्थे षष्ठी । तदाह—सर्पिषोपायेन प्रवर्तते इति । उद-  
 श्वरः सकर्मकात् । उत्पूर्वाच्चरधातोः सकर्मकादात्मनेपदमित्यर्थः । धर्ममुच्चरते । उत्पूर्वकात्  
 चरधातोर्लटः स्थाने “उदश्वरः सकर्मकात्” इति आत्मनेपदे टेरेत्वे च तत्सिद्धिः ।  
 समस्तृतीयेति । सकर्मकादिति निवृत्तम् । सम्पूर्वात् तृतीयान्तसमामिव्याहृताच्चरधातो-  
 रात्मनेपदमित्यर्थः । रथेन सञ्चरते । अत्र सम्पूर्वकचरधातुवर्तते, रथेन इति तृतीयान्तेन  
 च युक्तः, तस्माद् “समस्तृतीयायुक्तात्” इत्यनेनात्मनेपदम् । दाणश्च सा । “समस्त-  
 तीयायुक्तात्” इत्यनुवर्तते । तदाह—संपूर्वादिति । दास्या संयच्छते कामी । “अशिष्ट्य-  
 बहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया” इति वार्तिकेन दास्या इत्यत्र चतुर्थ्यर्थे तृतीया,  
 ततश्च दास्या इति तृतीयान्तयुक्तात्सम्पूर्वादाणधातोर्लटि तत्स्थाने प्रथमपुरुषैकवचन-  
 विवक्षायां “दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थः” इत्यात्मनेपदत्वात्प्रत्यये अपि अनुबन्धलोपे  
 “षाप्ताध्मा” इत्यादिना दाणो यच्छादेशे “अतो गुणे” इति पररूपत्वे टेरेत्वे च कृते  
 तत्सिद्धिः । पूर्ववत्सन इति । एदिधिषते । एधधातोः सनि इटि, ‘एधिस’ इति जाते  
 कञ् “सन्धलोः” इत्यनेन “अजादेर्द्वितीयस्य” इति ‘धि’ इत्यस्य द्वित्वे अभ्यासत्वे,  
 अभ्यासकार्ये षत्वे, जरत्वे, “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वाह्णटि, लटो लः स्थाने  
 “पूर्ववत्सनः” इत्यात्मनेपदे ते, अपि, अनुबन्धलोपे, पररूपत्वे, टेरेत्वे च तत्सिद्धिः ।  
 हलन्ताच्चेति । “इको झल्” इति पूर्वसूत्रमनुवर्तते “रुदविदमुष” इत्यतः सञ्ज्ञिति,  
 “असंयोगाह्णटिक्त्” इत्यतः किदिति च । हलिात् लुसपञ्चमीकं पदम् । अन्तःशब्दः  
 समीपवाची । तदाह—इक्समीपादित्यादि । निविक्लिषते । निपूर्वाद्भिषधातोः सनि “हल-  
 न्ताच्च” इति सनः कित्वादगुणाभावे द्वित्वे, अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये, “व्रश्च०” इति  
 शस्य षत्वे, षस्य क्त्वे, सस्य षत्वे, “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वाह्णटि, लटः  
 स्थाने “पूर्ववत्सनः” इत्यात्मनेपदत्वात् ते, अपि, अनुबन्धलोपे, “अतो गुणे” इति पर-  
 रूपत्वे, टेरेत्वे च तत्सिद्धिः । गन्धनावक्षेपण । आत्मनेपदम्, अकर्त्रभिप्रायेऽपीति शेषः ।  
 सूचयतीति । परदोषमाविष्करोतीत्यर्थः । श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते इति । “गन्धनावक्षेपणसे-  
 वनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृ ः” इत्यनेन ‘श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते’ इत्यतः

सेवत इत्यर्थः । परदारान्प्रकुरुते, तेषु सहसा प्रवर्तते । एधोदकस्योपस्कुरुते, गुण-  
माधते । कथाः प्रकुरुते, प्रकथयतीत्यर्थः । शतं प्रकुरुते, धर्मार्थं विनियुक्ते । एषु  
किम् ? कटं करोति । भुजोऽनवने १।३।६६ । ओदनं भुङ्क्ते । अनवने किम् ?  
महीं भुनक्ति ॥ इत्यात्मनेपदप्रक्रिया ।

### अथ परस्मैपदप्रक्रिया ।

अनुपराभ्यां कृञः १।३।७६ । कर्तुं च फले गन्धनादौ च परस्मैपदं  
स्यात् । अनुकरोति । पराकरोति ॥ अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १।३।८० । क्षिप  
प्रेरणे । स्वरितेत् । अभिक्षिपति ॥ प्राद्वहः १।३।८१ । प्रवहति ॥ परेर्मृषः  
१।३।८२ । परिमृषति ॥ व्याङ्परिभ्यो रमः १।३।८३ । रमु क्रीडायाम् । विर-  
मति ॥ उपाच्च १।३।८४ । यज्ञदत्तमुपरमति । उपरमयतीत्यर्थः । अन्तर्भावित-  
प्यर्थोऽयम् ॥ इति पदव्यवस्था ॥

आरभ्य क्षतं प्रकुरुते' इत्यन्तः प्रयोगा आत्मनेपदिनो भवन्ति । कटं करोति, । अत्र गन्ध-  
नादिभिन्नत्वात् नात्मनेपदमिति भावः । भुजोऽनवने । अवनं रक्षणम् । ततोऽन्वय-  
भुजेरात्मनेपदमित्यर्थः । ओदनं भुङ्क्ते । भुज्धातोर्लटः स्थाने "भुजोऽनवने" इति  
आत्मनेपदत्वात् ते, सार्वधातुकसंज्ञायां "रुधादिभ्यः झम्" इति शनमि, अनुबन्धलोपे,  
मित्रादन्त्यादयः परे "शनसोरल्लोपः" इति शनमोऽकारस्य लोपे, जस्य कुस्वेन गत्वे  
गस्य चत्वेन कत्वे, अनुस्वारे, परसवर्णे टेरेत्वे च तत्सिद्धिः । महीं भुनक्तीति । रक्ष-  
तात्यर्थः । इत्यात्मनेपदप्रक्रिया ।

अनुपराभ्यां कृञः । गन्धनादाविति । गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिकप्रतियत्प्रकथ-  
नोपयोगेषु हर्यर्थः । अनुकरोति । पराकरोति । अत्र "गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिकप्र-  
तियत्प्रकथनोपयोगेषु कृञः" इति आत्मनेपदे प्राप्ते, "अनुपराभ्यां कृञः" इत्यपवा-  
दभूतेनानेन परस्मैपदम् । अभिप्रत्यतिभ्य इति । अभि प्रति अति इत्येवं पूर्वात् क्षिपः  
परस्मैपदं स्यादित्यर्थः । अभिक्षिपति । क्षिप प्रेरणे स्वरितेत् । ततः कर्त्रभिप्राये क्रिया-  
फले विवक्षायामात्मनेपदे प्राप्ते "अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः" इत्यनेन परस्मैपदं विधी-  
यते । प्राद्वह इति । प्रपूर्वाद्द्वहतेः परस्मैपदम्भवतीत्यर्थः । प्रवहति । वहप्रापणे स्वरितेत् ।  
तत्र कर्त्रभिप्रायक्रियाफलविवक्षायामात्मनेपदे प्राप्ते "प्राद्वहः" इत्यनेन परस्मैपदमिति  
भावः । परेर्मृष इति । परिपूर्वाद् मृषतेः परस्मैपदम्भवति । परिमृषति । मृषतिविचारा-  
स्वरितेत् । ततस्तथैवात्मनेपदे प्राप्ते "परेर्मृषः" इति परस्मैपदं विधीयते । व्याङ्-  
परिभ्यो रम इति । वि आङ् परि इत्येवं पूर्वाद्रमतेः परस्मैपदम्भवति । विरमति । अत्र  
"अनुदात्तचित्ता आत्मनेपदम्" इत्यात्मनेपदे प्राप्ते, "व्याङ्परिभ्यो रमः" इति परस्मै-

## अथ भावकर्मप्रक्रिया ।

भावकर्मणोः १।३।१३। लस्यात्मनेपदम् । सार्वधातुके यक् ३।१।६७।  
भावकर्मवाचिनि धातोर्यक् स्यात् सार्वधातुके । भावः क्रिया । सा च भावार्थकल-  
कारेणानूयते । 'युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याभावात् प्रथमः पुरुषः । तिङ्वा-  
च्यक्रियाया अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि, किन्त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः ।  
त्वया मया अन्यैश्च भूयते । बभूवे ॥ स्यसिच्सीयुद्तासिषु भावकर्मणोरुप-

पदमिति बोध्यम् । आरमति, परिरमति । इति । उपाच्चेति । रम इत्येव । उपपूर्वाद्रमतेः  
परस्मैपदं भवति । ननु विरामार्थकत्वात् कथं सकर्मकतेत्यत आह—उपरमयतीत्यर्थं  
इति । ननु णिजभावात् कथमयमर्थो लभ्यते इत्यत आह—अन्तर्भावितण्यर्थोऽयमिति ।  
धातूनामनेकार्थत्वादिति भावः । इति परस्मैपदप्रक्रिया ।

भावकर्मणोरिति । भावो भावना क्रियेति पर्यायाः । कर्मशब्दः कर्मकारके वर्तते ।  
भावे कर्मणि च यो लकारस्तस्यात्मनेपदमित्यर्थः । सार्वधातुके यगिति । “धातोरेकाचो  
हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्” इत्यतो धातोरिति, “चिण्भावकर्मणोः” इत्यतो भाव-  
कर्मणोरिति चानुवर्तते । तदाह—धातोरिति । भावकर्मवाचिनीति । भावार्थकलकारेणानूयत  
इति । द्वौ, त्रयः, इत्यादौ द्विवचनबहुवचनवदिति भावः । युष्मदस्मद्भ्यामिति । युष्मदि  
अस्मदि च तिङ्समानाधिकरणे उपपदे मध्यमोत्तमपुरुषौ विहितौ । युष्मदस्मदोस्ति-  
ङ्समानाधिकरणतिङ्वाच्यकारकवाचित्वमेव । भावे लकारे तु 'आस्यते त्वया' 'आ-  
स्यते मया' इत्यादौ भाव एव तिङ्वाच्यः । न तु युष्मदस्मदर्थौ । अतो न मध्यमोत्त-  
मावित्यर्थः । कर्मलकारे तु 'एवं वन्द्यसे, अहं वन्द्ये' इत्यादौ लकारस्य युष्मदस्मदोश्च  
सामानाधिकरण्यसम्भवात्पुरुषत्रयमपि यथायथमुदाहरिष्यते । तिङ्वाच्येति । सत्त्वं-द्रव्य-  
म्, लिङ्गसंख्यान्वययोग्यम् । तिङ्वाच्या या भावना क्रिया सा असत्त्वरूपा लिङ्गसं-  
ख्यान्वयायोग्या, शब्दशक्तिस्वभावात् । ततश्च तस्यां तिङ्वाच्यभावनायां द्वित्वबहुत्व-  
योरप्रतीतेः 'युवाभ्यां युष्माभिर्वा आस्यते' इत्यादौ न द्विवचनं बहुवचनं चेत्यर्थः ।  
किन्त्वेकवचनमेवेति । तिङ्वाच्यभावलकारस्येति शेषः । त्वया मयेति । त्वत्कर्तृकं मत्कर्तृ-  
कम् अन्यकर्तृकं भवनमित्यर्थः । भूयते । भूधातोः “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः”  
इति भावरूपे अर्थे “वर्तमाने लट्” इति लट्लकारे अटि गते, “भावकर्मणोः” इति  
आत्मनेपदे प्राप्ते, तत्र एकवचनविवक्षायां ते “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातु-  
कसंज्ञायां “सार्वधातुके यक्” इति यकि, कस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते क्त्वाद्गुणाभावे  
“टित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च कृते 'भूयते' इति रूपम् । बभूवे । भूधातोः  
“लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति भावे, “परोचे लिट्” इति लिटि, इटि गते,  
लः स्थाने “भावकर्मणोः” इति आत्मनेपदे ते, “लिट् च” इत्यार्धधातुकसंज्ञायाम्,

देशेऽजन्तग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ६।४।६२। उपदेशे योऽच् तदन्तानां  
हनादीनां च चिणीवाङ्कार्यं वा स्यात्स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामि-  
डागमश्च । चिण्वद्भावापक्षेऽयमिट् । चिण्वद्भावाद्वृद्धिः । भाविता-भविता । भाविष्यते-  
भविष्यते । भूयताम् । अभूयत । भूयेत । भाविषीष्ट-भविषीष्ट ॥ चिण् भावकर्मणोः

“लिटस्तञ्जयोरेशिरेच” इति तस्य एशि शगते “भुवो वुग्लुङ्लिटोः” इति वुकि,  
कित्वादन्त्यावयवे “लिटि धातोर्नभ्यासस्य” इति द्वित्वे, “पूर्वोऽभ्यासः” इत्यभ्यास-  
संज्ञायां “हलादिः शेषः” इति आदिहलः शेषे “ह्रस्वः” इति अभ्यासस्य ह्रस्वत्वे “भव-  
तेरः” इति अभ्यासोकारस्य अत्वे, “अभ्यासे चर्च” इति भस्य बत्वे च कृते ‘बभूवे’  
इति रूपम् । स्यसिच् । अच् हन् ग्रह् इष् एषां इन्द्रात् षष्ठी । उपदेश इत्यच एव  
विशेषणम्, नेतरेषाम्, अव्यभिचारात् । तदाह—उपदेशे योऽजिति । अजित्यस्य उप-  
दिशान्वयित्वेऽपि सौत्रः समासः । अजिति लुप्तषष्ठीकं वा । चिण्वदिति सप्तम्यन्ताङ्-  
तिः, स्यसिच्सीयुट्तासिष्वित्युपमेयतः सप्तमीदर्शनात् । तदाह—चिणीवेति । अङ्गका-  
र्यमिति । अङ्गस्येत्यधिकृतत्वादिति भावः ।, अयमिडिति । सेट्कस्य वलादित्वलक्षण इट्  
तु स्यादेवेति भावः । भाविता । भूधातोः “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति  
भावे “अनद्यतने लुट्” इति अनद्यतनभविष्यत्यर्थे लुटि, उटि गते, लः स्थाने “भावक-  
र्मणोः” इति आत्मनेपदे ते, सार्वधातुकसंज्ञायां शपि प्राप्ते, तन्वाधित्वा “स्यतासी  
लुलुटोः” इति तासि, तासः आर्धधातुकत्वे, “लुटः प्रथमस्य ङारौरसः” इति तस्य  
ङात्वे, अनुबन्धलोपे, “द्वित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपे” इति तासष्टेलोपे, “स्यसिच्सी-  
युट् तासिषु भावकर्मणोः” इति तासः चिण्वद्भावात् इडागमे, अङ्गस्य ‘भू’ इत्यस्य  
“अचो ङ्गिति” इति वृद्धौ आवादेशे च ‘भाविता’ इति रूपम् । भविता । चिण्वद्भावा-  
भावपक्षे भूधातोः भावे लुटि, “भावकर्मणोः” इति लुटस्ते, तासि, तस्य ङात्वे तासष्ट-  
लोपे, तास आर्धधातुकत्वादिति, “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “एचोऽयवायावः”  
इत्यवादेरे ‘भविता’ इति रूपम् । भाविष्यते । भूधातुतो “लः कर्मणि च भावे चाक-  
र्मकेभ्यः” इति भावे, “लुट् शेषे च” इति लुटि, “भावकर्मणोः” इति लुटो लः  
स्थाने आत्मनेपदे ते, “स्यतासी लुलुटोः” इति स्ये, “स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावक-  
र्मणोः” इति चिण्वद्भावात् स्यस्य इडागमे, अङ्गस्य भुवो वृद्धौ, आवादेशे, षत्वे, टेरित्वे  
च कृते ‘भाविष्यते’ इति रूपम् । भविष्यते । चिण्वद्भावाभावपक्षे—भावे लुटि, “भावक-  
र्मणोः” इति ते, स्ये, स्यस्य आर्धधातुकत्वादिति, गुणे आवादेशे, षत्वे टेरित्वे च तत्सि-  
द्धिः । भूयताम् । भूधातोः “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति कर्मणि, “लोट् च”  
इति विद्धयादौ लोटि, लः स्थाने “भावकर्मणोः” इति आत्मनेपदे ते तस्य “तिङ्शि-  
त्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकसंज्ञायां “सार्वधातुके यक्” इति यकि, टेरित्वे, “आमे-  
तः” इति एकारस्य आमि च ‘भूयताम्’ इति रूपम् । अभूयत । भूधातोर्भावे अनद्यतन-

३।१।६६। च्लेक्षिण् स्याद्भावकर्मवाचिनि तशब्दे परे । अभावि । अभाविष्यत-अभ-  
विष्यत । अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात्सकर्मकः । अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया  
च । अनुभूयेते । अनुभूयन्ते । त्वमनुभूयसे । अहमनुभूये । अन्वभावि । अन्वभा-

भूते चार्थे लङ्, “भावकर्मणोः” इति लस्ते, “सार्वधातुके यक्” इति यकि, “लुङ्लङ्-  
लङ्क्वद्बुदात्तः” इति अङ्गस्य अडागमे च तत्सिद्धिः । भूयेत । भूधातोर्भावे विध्यादौ  
लङ्, “भावकर्मणोः” इति लिङ्स्ते, “सार्वधातुके यक्” इति यकि, “लिङ्ः सीयुट्”  
इति सीयुटि, उटि गते टित्वात्तस्याद्यावयवे जाते, “लिङ्ः सलोपोऽनन्त्यस्य” इति  
सलोपे, “लोपो व्योर्वलि” इति यलोपे, “आद्गुणः” इति गुणे च कृते ‘भूयेत’ इति  
रूपम् । भाविषीष्ट । भूधातोः “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति भावे “आशिषि  
लिङ्लोटौ” इत्याशिषि लिङि, लिङो लः स्थाने “भावकर्मणोः” इत्यात्मनेपदे ते  
तस्य “लिङाशिषि” इत्यार्धधातुकसंज्ञायाम् “लिङ्ः सीयुट्” इति सीयुटि, उटि गते  
“सुट्तिथोः” इति सुटि उटि गते, “स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोः” इति चिण्-  
वद्भावे, इडागमे च कृते, “अचो ङिति” इति वृद्धौ आवादेशे, उभयत्र षत्वे, तस्य  
वृद्धेन टकारे ‘भाविषीष्ट’ इति रूपम् । चिण्वद्भावाभावपक्षे—मविषीष्ट । भावे आशिषि  
लिङ्स्ते सोयुटि, सुटि, इडागमे षत्वे वृद्धे च तत्सिद्धिः । चिण्भावकर्मणोः । च्लेरिति ।  
“च्लेः सिच्” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । तशब्दे परे इति । “चिण् ते पदः” इत्यत-  
स्तदनुवृत्तेरिति भावः । अभावि । भूधातोः “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति  
भावे, “लुङ्” इति भूतार्थे लुङि कृते, लः स्थाने “भावकर्मणोः” इति ते, “च्लि लुङि”  
इति च्लौ, च्लेः स्थाने “चिण्भावकर्मणोः” इति चिणि, चस्य णस्य चेत्संज्ञायां लोपे  
च, “अचो ङिति” इति वृद्धौ, “एचोऽयवायावः” इत्यावादेशे “चिणो लुक्” इति  
तशब्दस्य लुकि, “लुङ्लङ् लङ्क्वद्बुदात्तः” इत्यङ्गस्वाडागमे ‘अभावि’ इति रूपम् ।  
अभाविष्यत । भावे लङ्स्ते “स्यतासी ललुटोः” इति स्ये, “स्यसिच्सीयुट्तासिषु भाव-  
कर्मणोः” इति चिण्वद्भावे, इडागमे वृद्धौ, आवादेशे षत्वे अडागमे च तत्सिद्धिः ।  
अभविष्यत । चिण्वद्भावाभावपक्षे—लङ्स्ते, स्ये, इटि, गुणे अवादेशे, षत्वे अडागमे  
च तत्सिद्धिः । अनुभूयते । अनुपूर्वात् भूधातोरुपसर्गाद्यर्थकात्सकर्मकात्कर्मणि लटि,  
लटस्ते यकि, ‘अनुभूयते’ इति । अत्र कर्तुरनभिहितत्वात् तृतीया—चैत्रेण त्वया मया  
चेति । आतामि—अनुभूयेते । आनन्दौ, अत्र कर्मानुरोधात् पुरुषवचनव्यवस्था उद्भा ।  
अनुभूयन्ते । आनन्दाः । त्वम्—इति कर्म, तदनुरोधात् लटो लः स्थाने मध्यमपुरुषैक-  
वचने यासि, यकि. “यासः से” इति यासः स्थाने से कृते—अनुभूयसे । युवामनुभू-  
येथे । यूयमनुभूयध्वे । अहमनुभूये । अनूपसर्गपूर्वकभूधातोः “लः कर्मणि च भावे चाक-  
र्मकेभ्यः” इति कर्मणि “वर्तमाने लट्” इति लटि, लटो लः स्थाने उत्तमपुरुषैकवचन-  
विध्यायां “भावकर्मणोः” इति आत्मनेपदे इटि, “सार्वधातुके यक्” इति यकि, कस्वे-

विषाताम्-अन्वमविषाताम् । णिलोपः । भाव्यते । भावयाध्क्के । भावयाम्भूवे ।

त्संज्ञायां लोपे च “दित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे “अतो गुणे” इति पररूपत्वे च ‘अनुभूये’ इति रूपम् । आवामनुभूयावहे । वयमनुभूयामहे इति । लुटि-अनुब-भूवे, अनुबभूवाते, अनुबभूविरे । अनुबभूविषे, अनुबभूवाधे, अनुबभूविध्वे । अनुब-भूवे, अनुबभूविवहे, अनुबभूविमहे । लुटि-अनुभविता, अनुभवितारौ, अनुभवितारः । अनुभवितासे, अनुभवितासाथे, अनुभविताध्वे । अनुभविताहे, अनुभवितास्वहे, अनुभ-वितास्महे । लुटि-अनुभविष्यते इत्यादि । लोटि-अनुभूयताम् । लङि-अन्वभूयत । विधौ-अनुभूयेत । आशिषि-अनुभूयात्, इत्यादि । अन्वभावि । अनुपूर्वकभूधातोः, सकर्मकत्वात् “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति कर्मणि, “लुङ्” इति भूतार्थे लुङि, “भावकर्मणोः” इति लुङस्ते “ल्लि लुङि” इति ल्लौ, “चिण् भावकर्मणोः” इति ल्लेः चिणि, चस्य णस्य चेत्संज्ञायां लोपे च “अचो ङिति” इति वृद्धौ “एचोऽव-वायावः” इत्यावि, “चिणो लुक्” इति तशब्दस्य लुकि, “लुङ्लङ्लुङ्श्चडुदात्तः” इति अडागमे यणि च कृते ‘अन्वभावि’ इति रूपम् । अन्वभाविषाताम् । अनुपूर्वक-भूधातोः कर्मणि लुङि, “भावकर्मणोः” इति आत्मनेपदे, द्विवचने आतामि, “ल्लि-लुङि” इति ल्लौ, “ल्लेः सिच” इति सिचि, इचि गते “स्यसिचसीयुट्तासिषु भाव-कर्मणोः” इति चिण्वद्भावात् वृद्धौ, अनेनेव सूत्रेण इडागमे “एचोऽववायावः” इति आवा-देशे सिचः पत्वे अङ्गस्याडागमे अनोरुकारस्य यणि च कृते ‘अन्वभाविषाताम्’ इति । अन्व-भविषाताम् । चिण्वद्भावाभावपक्षे वृद्धयभावे, “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे “आर्ध-धातुकस्येड्वलदेः” इति इडागमे, शेषे पूर्ववत् । अग्रे रूपाणि-अन्वभाविषत, अन्वभविषत । अन्वभाविष्ठाः, अन्वभविष्ठाः, अन्वभाविषायाम्-अन्वभविषायाम् । अन्वभाविड्वम्, अन्व-भाविष्वम्, अन्वभाविड्वम्-अन्वभविष्वम् । अन्वभाविषि अन्वभविषि, अन्वभाविष्वहि, अन्वभविष्वहि, अन्वभाविष्महि-अन्वभविष्महि । इति । लुङि-अन्वभाविष्यत-अन्व-भविष्यत । भाव्यते । भूधातोः “हेतुमति च” इति णिचि, णस्य चस्य चेत्संज्ञायां लोपे च “अचो ङिति” इति वृद्धौ, “एचोऽववायावः” इत्यावादेशे, ‘भावि’ इति आते “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायाम् “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति कर्मणि “वर्तमाने लट्” इति लटि, “भावकर्मणोः” इत्यात्मनेपदे ते “तिङ्श्चि-त्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकत्वे “सार्वधातुके यक्” इति यकि, कस्येत्संज्ञार्थां लोपे च “आर्धधातुके शेषः” इत्यार्धधातुकसंज्ञायाम् “गेरनिटि” इति णिलोपे, “दित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च कृते ‘भाव्यते’ इति । भाव्यते, भाव्येते, भाव्यन्ते । भाव्यसे, भाव्येथे, भाव्यध्वे । भाव्ये, भाव्यावहे, भाव्यामहे । भावयाध्क्के । भूधातोः “हेतुमति च” इति णिचि, णस्य चस्य चेत्संज्ञायां लोपे च “अचो ङिति” इति वृद्धौ, “एचोऽववायावः” इत्यावादेशे “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायाम्



भावयामासे । चिष्वदिट्, भाविता । आभीयत्वेनासिद्धत्वाणिलोपः । भावयिता । भाव-

“परोचे लिट्” इति कर्मणि लिटि, “कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः” इत्यामि, आम्: “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकत्वात् “गेरनिटि” इति णिलोपे प्राप्ते तम्बाधित्वा “अयामन्ताल्वाद्येन्विष्णुषु” इति गेरयादेशे ‘भावयाम् लिट्’ इति जाते, “आम्:” इति लिटो लुकि, “कृञ्जानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्परकृञोऽनुप्रयोगे कृते ‘भाव-याम् कृ लिट्’ इति भूते लिटो लः स्थाने “भावकर्मणोः” इत्यात्मनेपदे ते “लिटस्त-क्षयोरेशिरेच्” इति एशि शगते “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे, अभ्यासत्वे, उरदत्वे, रपरि, हलादिशिष्टे, चुत्वे, यणि, मस्यानुस्वारे, परसवर्णे च कृते ‘भावयाञ्चक्रे’ इति । भावयाञ्चक्रे, भावयाञ्चक्राते, भावयाञ्चक्रिरे । भावयाञ्चकृषे, भावयाञ्चक्राथे, भावयाञ्चकृद्वे । भावयाञ्चक्रे, भावयाञ्चकृवहे, भावयाञ्चकृमहे । इति । भावयाम्ब-भूवे । भूधातोर्णिचि, अनुबन्धलोपे, वृद्धौ, आवादेशे, धातुसंज्ञायाम्, कर्मणि लिटि, आमि, लिटो लुकि, लिट्परभुवोऽनुप्रयोगे, लिटः स्थाने “भावकर्मणोः” इति ते तस्य एसादेशे, द्वित्वे अभ्यासकार्ये च कृते तत्सिद्धिः । भावयाम्बभूवे, भावयाम्बभूवाते, भावयाम्बभूविरे । भावयाम्बभूविषे, भावयाम्बभूवाथे, भावयाम्बभूविध्वे । भावया-म्बभूवे, भावयाम्बभूविबहे, भावयाम्बभूविमहे । भावयामासे । ‘भावि’ इति णिजन्ता-त्कर्मणि लिटि, आमि, लिटो लुकि, लिट्परासोऽनुप्रयोगे, लिटस्ते, तस्य एसादेशे, द्वित्वे, अभ्यासकार्ये, च तत्सिद्धिः । भावयामासे, भावयामासाते, भावयामासिरे । भावयामासिषे, भावयामासाथे, भावयामासिध्वे । भावयामासे, भावयामासिबहे, भावयामासिमहे । भाविता । भूधातोः “हेतुमति च” इति णिचि, णचयोरित्सन्ज्ञायां लोपे च “अचो ङ्गिति” इति वृद्धौ, आवादेशे, “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसं-ज्ञायां “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति कर्मणि, “अनद्यतने लुट्” इति लुटि, लुटो लः स्थाने “भावकर्मणोः” इति ते, “स्यतासी लृलुटोः” इति तासि, “स्यसिष्सीयुट् तासिषु भावकर्मणोः” इति चिष्वन्नावे, तास इडागमे च कृते ‘भावि इ तास्’ इति जाते, “असिद्धवदन्नाभात्” इति इटोऽसिद्धत्वात् “गेरनिटि” इति णिलोपे, “लुटः प्रथमस्य डारौरसः” इति तस्य डात्वे, अनुबन्धलोपे, द्वित्वसा-मर्थ्यादभस्यापि टेलोपे, ‘भाविता’ इति रूपम् । भाविता, भावितारौ, भावितारः, भावितासे, इत्यादि । भावयिता । भूधातोर्णिजन्तात्कर्मणि लुटि, ‘भावि ता’ इति स्थिते, अत्र चिष्वन्नावाभावपक्षे “आर्धधातुकस्येड्वल्लादेः” इति इटि, तस्य सिद्धत्वात् णिलु-गाभावे जाते, णिच इकारस्य गुणे, अयादेशे च तत्सिद्धिः । भावयिता, भावयितारौ, भावयितारः, भावयितासे, इत्यादि । लुटि—भाविष्यते—भाविष्यते । लोटि—भा-व्यताम् । लङि—अभाव्यत । लिङि—भाव्येत । आशिषि—भाविषीष्ट । ‘भावि’ इति णिजन्तात्कर्मणि अर्थे “आशिषि लिङ्लोटौ” इति लिङि, “भावकर्मणोः” इति लिङस्ते-

यिषीष्ट । अभावि । अभाविषाताम्-अभावयिषाताम् । बुभूष्यते । बुभूषाञ्चके । बुभूषिता ।

“लिङः सीयुट्” इति सीयुटागमे, उटि गते, टित्वादाद्यावयवे जाते, “सुट् तिथोः” इति सुटि, उटि गते, टित्वात् तकारस्याद्यावयवे जाते, “स्यसिच्सीयुट् तासिषु भावकर्मणोः” इति चिण्वद्भावे, अनेनैव इडागमे, अस्य इडागमस्य आभीयत्वेन असिद्धत्वात् “गेरनिटि” इति णिलोपे, उभयत्र सकारद्वयस्य षत्वे, तकारस्य षट्त्वे च ‘भाविषीष्ट’ इति रूपम् । भाविषीष्ट, भाविषीयास्ताम्, भाविषीरन् । इत्यादि । भावयिषीष्ट । चिण्वद्भावाभावपक्षे “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इडागमे, तस्य सिद्धत्वात् णिलुगभावे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गेरिकारस्य गुणे अयादेशः, शेषं पूर्ववत् । भावयिषीष्ट, भावयिषीयास्ताम्, भावयिषीरन् । भावयिषीष्टाः, इत्यादि । अभावि । भूधातोः “हेतुमति च” इति णिचि, अनुबन्धलोपे, “अचो ङिति” इति षट्द्वौ, आवादेशे ‘भावि’ इति जाते, तस्य “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायां “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति कर्मणि “लुङ्” इति लुङि, अनुबन्धलोपे लः स्थाने “भावकर्मणोः” इति ते, “च्लि लुङि” इति च्लौ, “चिण्भावकर्मणोः” इति च्लेश्चिणि, अनुबन्धलोपे, “गेरनिटि” इति णिलोपे, “चिणो लुक्” इति तशब्दस्य लोपे “लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः” इति अङ्गस्याडागमे, ‘अभावि’ इति रूपम् । अभाविषाताम् । भूधातोः “हेतुमति च” इति णिचि, अनुबन्धलोपे, षट्द्वौ, आवादेशे, “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वात् कर्मणि लुङि, लुङो लः स्थाने प्रथमपुरुषद्विवचनविवक्षायां “भावकर्मणोः” इत्यात्मनेपदे आतामि, “च्लि लुङि” इति च्लौ, “च्लेः सिच्” इति सिचि, इचि गते, “स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोः” इति चिण्वद्भावे इटि च कृते, इट आभीयत्वेन असिद्धत्वात् “गेरनिटि” इति णिलोपे, सिचः सस्य षत्वे अङ्गस्याडागमे च कृते मिलित्वा ‘अभाविषाताम्’ इति रूपम् । अभावयिषाताम् । चिण्वद्भावाभावपक्षे—“आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इटि, गेरयादेशे शेषं पूर्ववत् विधाय ‘अभावयिषाताम्’ इति रूपम् । लुङो झौ-अभाविषत, अभावयिषत । अभाविष्टाः, अभावयिष्टाः, अभावयिषाथाम्, अभावयिषाथाम्, अभाविष्वम्-अभावयिष्वम् । अभाविषि, अभावयिषि, अभाविष्वहि, अभावयिष्वहि, अभाविष्महि, अभावयिष्महि । लुङि-अभाविष्यत, अभावयिष्यत । इत्यादि । बुभूष्यते । भूधातोः “धातोः कर्मणः समानकर्तृकात्” इति सनि, नृगते, सनः “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकत्वादिति प्राप्ते “अञ्जनगमां सनि” इति इटो निषेधे, “इको झल्” इति सनः क्तिवाद् “ङिति च” इति गुणाभावे “सन्यङोः” इति द्वित्वे अभ्यासत्वे “ह्रस्वः” इति ह्रस्वत्वे “अभ्यासे चर्च” इति भस्य बत्वे “आदेशप्रत्यययोः” इति सनः षत्वे, ‘बुभूष’ इति जाते “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुत्वात् कर्मणि लटि, लः स्थाने “भावकर्मणोः” इति आत्मनेपदे प्रथमपुरुषविवक्षायां ते “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकसंज्ञायां “सार्वधातुके यक्” इति यकि, कगते “अतो लोपः” इति सनोऽकारस्य

बुभूषिष्यते । बोभूय्यते । बोभूयते । “अकृत्सार्वधातुकयोर्दोधः” । स्तूयते विष्णुः ।

लोपे “दित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च कृते ‘बुभूष्यते’ इति रूपम् । बुभूष्यते, बुभूष्येते, बुभूष्यन्ते । बुभूष्यसे, बुभूष्येये, बुभूष्यध्वे । बुभूष्ये, बुभूष्यावहे, बुभूष्यामहे । इति । बुभूषाञ्चके । ‘बुभूष’ इति पूर्ववत् सन्नन्तं प्रसाध्य “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायां “परोच्चे लिट्” इति लिटि, “कास्यनेकाच् आम्बक्तव्यः” इति आभि, “आमः” इति लिटो लुकि, “कृञ्जानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्परकृजोऽनुप्रयोगे, लिटो लः स्थाने ते, तस्य स्थाने एषि “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे, अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये च कृते आमो मस्य अनुस्वारे परसवर्णे च कृते, यणि च कृते ‘बुभूषाञ्चके’ इति रूपम् । बुभूषाञ्चक्राते, बुभूषाञ्चक्रिरे । इत्यादि । बुभूषिता । ‘बुभूष’ इति सन्नन्तप्रसाध्य “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायाम्, तस्मात् कर्मणि लुटि, “भावकर्मणोः” इति लुटस्ते, तासि, तास इटि, तस्य ङात्वे ङगते, ङित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपे “अतो लोपः” इति सनोऽकारस्य लोपे, मिलित्वा ‘बुभूषिता’ इति रूपम् । बुभूषितारौ, बुभूषितारः । बुभूषितासे, बुभूषितासाथे, बुभूषिताध्वे । बुभूषिताहे, बुभूषितास्वहे, बुभूषितास्महे । इति । बुभूषिष्यते । ‘बुभूष’ इति सन्नन्तप्रसाध्य धातुसंज्ञायां कर्मणि लटि, “भावकर्मणोः” इति लटस्ते, स्ये, इटि, “अतो लोपः” इति सनोऽकारस्य लोपे, षत्वे, टेरेत्वे च रूपम् । लोटि—बोभूष्यताम् । लङि—अबोभूष्यत । विधौ—बोभूष्येत । आशिषि—बोभूष्यात् । लुङि—अबोभूषि । लङि—अबोभूषिष्यत । बोभूय्यते । भूधातोः “धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्” इति यङि, ङलोपे “सन्त्यङोः” इति द्वित्वे, अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये “गुणो यङ्लुकोः” इति अभ्यासस्य गुणे, ‘बोभूय’ इति जाते, “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायां “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति कर्मणि, “वर्तमाने लट्” इति वर्तमानेऽर्थे लटि, “भावकर्मणोः” इत्यात्मनेपदे प्रथमपुरुषैकवचनविवक्षायां ते, तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति तस्य सार्वधातुकसंज्ञायां “सार्वधातुके यक्” इति यकि, कगते, “अतो लोपः” इति यङोऽकारस्य लोपे, “दित आत्मनेपदानां टेरे” इति टेरेत्वे च कृते ‘बोभूष्यते’ रूपम् । लिटि—बोभूष्याञ्चके । लुटि—बोभूष्यताम् । लृटि—बोभूष्यिष्यते । लोटि—बोभूष्यताम् । लङि—अबोभूष्यत । लङि—बोभूष्येत । आशिषि—बोभूष्यिषीष्ट । लुङि—अबोभूष्यिष्ट । लङि—अबोभूष्यिष्यत । बोभूयते । भूधातोः “धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्” इति यङि, “यङोऽचि च” इति यङो लुकि, प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात् “सन्त्यङोः” इति द्वित्वे, अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये “गुणो यङ्लुकोः” इति अभ्यासस्य गुणे ‘बोभू’ इति जाते, “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायां कर्मणि लटि, “भावकर्मणोः” इति लटस्ते, “सार्वधातुके यक्” इति यकि, टेरेत्वे ‘बोभूयते’ इति । लिङादौ—बोभवाञ्चके, बोभविता, बोभविष्यते, बोभूयताम् ।

स्ताविता-स्तौता । स्ताविष्यती-स्तोष्यते । अस्तावि । अस्ताविषाताम्-अस्तोषाताम् ।  
ऋ गतौ । “गुणोर्ति” इति गुणः । अर्यते । उपदेशग्रहणाच्चिष्वदिट् । आरिता-  
अर्ता । स्मृ स्मरणे । स्मर्यते । संस्मरे । स्मारिता-स्मर्ता । “अनिदिताम्” इति

अबोभूयत् । बोभूयत् । अबोमावि । अबोभविष्यत् । इत्यादि । स्तूयते विष्णुः । स्तुञ्  
स्तुतौ, धातोः कर्मणि लुटि, “धात्वादेः षः सः” इति षस्य सत्वे, “निमित्तापाये नैमि-  
त्तिकस्याप्यपायः” इति न्यायेन षट्त्वे गते, “भावकर्मणोः” इति लट्स्ते “सार्वधातुकं  
यक्” इति यकि, कगते, “अकृत्सार्वधातुकयोः” इति स्तु इत्यस्य दीर्घे “टित आत्मने-  
पदानां टेरे” इति टेरेत्वे च कृते ‘स्तूयते’ इति रूपम् । लोटि-तुष्टुवे, तुष्टुवाते, तुष्टु-  
विरे । तुष्टुविषे, इत्यादि । स्ताविता । स्तुधातोः कर्मणि लुटि, “भावकर्मणोः” इति  
लुट्स्ते, “स्यतासी लुलुटोः” इति तासि, “लुटः प्रथमस्य डारौरसः” इति तस्य  
डात्वे, कगते द्वित्वसामर्थ्यात् तास्येलोपे, “स्यसिच् सीयुट्तासिषु भावकर्मणोः”  
इति तासः चिष्वद्भावे इडागमे च कृते, चिष्वद्भावात् “अचो ङिति” इति  
बृद्धौ, आवादेशे च ‘स्ताविता’ इति रूपम् । स्तौता । पूर्ववत् लुटि कृते, चिष्वद्-  
भावाभावे वृद्धेरिडागमस्य चाभावे गुणे च कृते तत्सिद्धिः । स्ताविष्यते । स्तु-  
धातोः कर्मणि लुटि “भावकर्मणोः” इति लुट्स्ते, ‘स्यतासी लुलुटोः’ इति  
स्ये, “स्यसिच् सीयुट्तासिषु भावकर्मणोः” इति चिष्वद्भावे, इडागमे च, चिष्वद्भा-  
वाद्वृद्धौ, आवादेशे, षत्वे टेरेत्वे च कृते ‘स्ताविष्यते’ इति । स्तोष्यते । चिष्वद्भावा-  
भावपक्षे—कर्मणिलुट्स्ते, स्ये, गुणे, षत्वे टेरेत्वे च तत्सिद्धिः । लोटि-स्तूयताम् ।  
लुङि-अस्तूयत । विधौ-स्तूयेत । आशिषि-स्ताविषीष्ट, स्तोषीष्ट । अस्तावि ।  
स्तुधातोः कर्मणि लुङि, “भावकर्मणोः” इति लुङ्स्ते, “छि लुङि” इति छौ, “चिण्-  
भावकर्मणोः” इति छ्लेश्रिणि, अनुबन्धलोपे, वृद्धौ, आवादेशे “चिणो लुक्” इति  
तच्चन्द्रस्य लोपे, अङ्गस्य अडागमे, ‘अस्तावि’ इति रूपम् । अस्ताविषाताम् । स्तुधातोः  
कर्मणि लुङः स्थाने आतामि, छौ, छ्लेः सिचि, इचि गते, “स्यसिच् सीयुट् तासिषु  
भावकर्मणोः” इति चिष्वद्भावे, इडागमे च, चिष्वद्भावात् वृद्धौ, आवादेशे, सिचः सस्य  
षत्वे, अङ्गस्वाडागमे, ‘अस्ताविषाताम्’ इति । चिष्वद्भावाभावपक्षे—अस्तोषाताम् ।  
स्तुधातोः कर्मणि लुङः स्थाने आतामि, छौ, छ्लेः सिचि, इचि गते, गुणे, षत्वे, अडा-  
गमे च ‘अस्तोषाताम्’ इति रूपम् । अर्यते । ऋ गतौ, इत्यस्माद् धातोः कर्मणि लुङ्स्ते  
“सार्वधातुकं यक्” इति यकि, कगते “आर्धधातुकं शेषः” इति यक आर्धधातुकसम्प्रसार्या  
“सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे प्राप्ते, “विठिति च” इत्यनेन तस्य निषेधे,  
“गुणोर्तिसंयोगाद्योः” इति गुणे अकारे “उरण् रपरः” इति रपरत्वे टेरेत्वे च ‘अर्थते’  
इति । लोटि-आरे, लुटि-आरिता, अर्ता । लुटि-आरिष्यते, लोटि-अर्यताम्,  
लुङि-आर्यत, लुङि-अर्येत, आशिषि-आरिषीष्ट, ऋषीष्ट, लुङि-आरि, लुङि-आरि-

नलोपः, सस्यते । इदितस्तु नन्यते । सम्प्रसारणम् । इज्यते ॥ तनोतेर्यकि  
 ६।४।४४। आकारान्तादेशो वा स्यात् । तायते-तन्यते ॥ तपोऽनुतापे च  
 ३।१।६५। तपश्च्लेष्ठिण् न स्यात्कर्मकर्तर्यनुतापे च । अन्वतप्त पापेन । “धुमा-

प्यत । स्मर्यते । स्मृधातोः कर्मणि लटि, “भावकर्मणोः” इति लटस्ते “सार्वधातुके  
 यक्” इति यकि, कगते “गुणोर्तिसंयोगाद्योः” इति गुणे अकारे “उरण् रपरः” इति  
 रपरे च जाते टेरेत्वे च “स्मर्यते” इति रूपम् । सस्मरे । स्मृधातोः कर्मणि लिटि,  
 “भावकर्मणोः” इति लिटस्ते, तस्य स्थाने “लिटस्तद्धयोरेशिरेच” इति एशि, शगते,  
 “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे, “पूर्वोऽभ्यासः” इति अभ्यासत्वे, “उरत्” इति  
 अत्वे विहिते “उरण् रपरः” इति रपरत्वे कृते “हलादिः शेषः” इत्यादिहलः  
 शेषे ‘सस्मृ ए’ इति जाते “गुणोर्तिसंयोगाद्योः” ति गुणे रपरे च जाते मिलित्वा ‘सस्म-  
 रे’ इति रूपम् । स्मारिता । स्मृधातोः कर्मणि लुटस्ते तस्य डात्वे तासि डिबिसामर्थ्या-  
 द्विलोपे च कृते “स्यसिचसीयुत्तासिषु भावकर्मणोः” इति चिण्वद्भावे इडागमे च कृते,  
 ष्टद्धौ ‘स्मारिता’ इति । स्मर्ता । चिण्वद्भावाभावपक्षे रुणः, शेषं पूर्ववत् । लुटि—स्मा-  
 रिष्यते—स्मारिष्यते, लोटि—स्मर्यताम्, लङि—अस्मर्यत । लङि—स्मर्यत । आशिषि-  
 स्मारिषीष्ट—स्मृषीष्ट, लुङि—अस्मारि, लृङि—अस्मारिष्यत । सस्यते । संस्धातोः  
 कर्मणि लटि, “भावकर्मणोः” इति लटस्ते “सार्वधातुके यक्” इति यकि, कगते,  
 “अनिदितां हल उपधायाः षिङिति” इति उपधास्थनकारस्य लोपे, टेरेत्वे च कृते ‘सस्य-  
 ते’ इति रूपम् । नन्यते । अनुबन्धविनिर्मुक्तात् द्वनदि समृद्धौ, इति धातोः कर्मणि  
 लटि, लटस्ते यकि, कगते, “इदितो नुम् धातोः” इति नुमि, अनुबन्धलोपे, मित्वाद्-  
 न्त्यादचः परे, नस्य अनुस्वारे परसवर्णे टेरेत्वे च कृते तत्सिद्धिः । इज्यते । यजदेवपूजा-  
 सङ्गति करणदानेषु इति धातोः कर्मणि लटि, लटस्ते यकि, कगते, कित्वात् “वचिस्व-  
 पियजादीनां किति” इति सम्प्रसारणेन यकारस्य इत्वे “सम्प्रसारणाच्च” इति  
 पूर्वरूपे टेरेत्वे च कृते ‘इज्यते’ इति रूपम् । तनोतेर्यकि । “विड्वनोः” इत्यतः आदिति  
 “ये विभाषा” इत्यतो विभाषेति चानुवर्तते । तदाह—आकारोऽन्तादेशो वा स्यादिति ।  
 तायते, तन्यते । तनु विस्तारे धातोः कर्मणि लटि, लटस्ते, “सार्वधातुके यक्” इति  
 यकि, कगते, टेरेत्वे, “तनोतेर्यकि” इति आकारान्तादेशो च सति ‘तायते’ इति रूपम् ।  
 आकारान्तादेशाभावे ‘तन्यते’ इति रूपम् । तपोऽनुतापे चेति । “च्लेः सिच्” इत्यतः  
 च्लेरिति “चिण् ते पदः” इत्यतः चिण् इति “न रुधः” इत्यतो नेति चानुवर्तते ।  
 चकारात् “अचः कर्मकर्तरि” इत्यतः कर्मकर्तरीति समुच्चीयते । तदाह—तपश्च्लेरित्या-  
 दि । अन्वतप्त पापेन । अनुपूर्वकतपधातोः कर्मणि लुङि, “भावकर्मणोः” इति लुङस्ते,  
 “ल्लि लुङि” इति च्लौ, “चिण् भावकर्मणोः” इति च्लेःस्थाने चिणि प्राप्ते, “तपोऽनु-  
 तापे च” इति तस्य निषेधे, “च्लेः सिच्” इति सिचि इचि गते, “झलो झलि” इति

स्था" इतीत्वम् । दीयते । धीयते । ददे ॥ अतो युक् चिणकृतोः ७।३।३३।  
आदन्तानां युगागमः स्याच्चिणि ङिांते कृति च । दायिता-दाता । दायिषीष्ट-दा-  
सीष्ट । अदायि । अदायिषाताम् । भज्यते ॥ भञ्जेश्च चिणि ६।४।३३। नलोपो

सिचः सस्य लोपे, अङ्गस्याडागमे अनोस्कारस्य यणि च कृते 'अन्वतप्त' इति । दीयते ।  
अनुबन्धविनिर्मुक्तात् हुधाञ् दाने धातोः कर्मणि लटस्ते यकि, कगते, "दाधाध्वदाप्"  
इति दाधातोर्धुसंज्ञायां "स्थाध्वोरिच्च" इत्यनेन दाधातोराकारस्य ईत्वे टेरेत्वे च कृते  
रूपम् । धीयते । अत्रापि अनुबन्धविनिर्मुक्तात् हुधाञ् धारणपोषणयोरेस्थस्माद्धातोः  
कर्मणि लटस्ते यकि, कगते, "दाधाध्वदाप्" इति धुसंज्ञायां "स्थाध्वोरिच्च"  
इत्यनेन अकारस्य ईत्वे टेरेत्वे च कृते रूपम् । ददे । दाधातोः कर्मणि लिटस्ते, "लिट-  
स्तन्नयोरेशिरेच्" इति तस्य एशि, शगते, "लिटि धातोरनभ्यासस्य" इति द्वित्वे,  
अभ्यासत्वे अभ्यासकार्ये विशेषतश्च "ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वे, "असंयोगालिट् कित्" इति  
कित्त्वात् "आतो लोप इटि च" इति आलोपे, मिलित्वा 'ददे' इति रूपम् । ददे,  
ददाते, ददिरे । ददिषे, ददाथे, ददिध्वे । ददे, ददिवहे, ददिमहे । इति । एवं धाधातो-  
रपि बोध्यम् । आतो युगिति । 'अङ्गस्य' इत्यधिकृतम् आता विशेषितम् । तदन्तविधिः ।  
'अचो ङिति' इत्यतो "ङिति" इत्यनुवृत्तं कृत एव विशेषणम्, न तु चिणः,  
तस्य णित्वाव्यभिचारात् । तदाह—आदन्तानामिति । दायिता । दाधातोः कर्मणि  
लुटस्ते, तासि, तस्य डात्वे, डगते, डित्वसामर्थ्यात् तासष्टेलोपे, "स्यसिचसीयुट्-  
तासिषु भावकर्मणोः" इति चिण्वद्भावे, इडागमे च कृते, चिण्वद्भावात् "आतो युक्  
चिणकृतोः" इति युगागमे, कगते, कित्वादन्यावयवे जाते मिलित्वा 'दायिता' इति  
रूपम् । दाता । चिण्वद्भावाभावे इदं रूपम् । लुटि—दायिष्यते, दास्यते । लोटि—  
दीयताम् । लुङि—अदीयत । विधिलिङि—दीयेत । अशिषि—दायिषीष्ट । दाधातोः  
कर्मणि आशिषि लिङस्ते, लिङः सीयुटि, तस्य सुटि, अनुबन्धलोपे, "स्यसिचसीयुट्-  
तासिषु भावकर्मणोः" इति चिण्वद्भावे, इडागमे च कृते, चिण्वद्भावाद् "आतो युक्  
चिणकृतोः" इति युकि कगते कित्वादन्यावयवे जाते, षत्वे, ष्टुत्वे च रूपम् । चिण्व-  
द्भावाभावपक्षे—दासीष्ट इति । अदायि । दाधातोः कर्मणि लुङि, "भावकर्मणोः" इति  
लुङस्ते, "चिल लुङि" इति च्लौ "चिणभावकर्मणोः" इति च्लेः चिणि, अनुबन्ध-  
लोपे, "आतो युक् चिणकृतोः" इति युकि, कगते, "लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः" इति  
अङ्गस्य अडागमे, "चिणो लुक्" इति तत्रन्दस्य लुकि, 'अदायि, इति रूपम् । अदा-  
यिषाताम् । दाधातोः कर्मणि लुङि, "भावकर्मणोः" इति आत्मनेपदे, द्विवचनविवक्षायां  
लुङः स्थाने आतामि, "चिल लुङि" इति च्लौ, "च्लेः सिच्" इति सिचि, इचि गते,  
"स्यसिच्" इति चिण्वद्भावे इडागमे, चिण्वद्भावात् "आतो युक् चिणकृतोः" इति  
युगागमे, कगते, सिचः सस्य षत्वे अङ्गस्याडागमे च कृते 'अदायिषाताम्' इति रूपम् ।

वा स्यात् । अभाजि-अभजि । लभ्यते । विभाषाचिण्णमुलोः ७।१।६६। लभेर्नु-  
मागमो वा स्यात् । अलम्भि-अलाभि ॥ इति भावकर्मप्रक्रिया ॥

### अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया ।

यदा कर्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्मकाणामप्यकर्मकत्वात्कर्तरि भावे च  
लकारः । कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः ३।१।८७। कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः

चिण्वज्ञावाभावपक्षे—‘अदिषाताम्’ इति । भज्यते । भञ्जधातोः कर्मणि लटि, लट्स्ते,  
सार्वधातुसञ्ज्ञायां “सार्वधातुके यक्” इति यकि, कगते, “अनिदितां हल उपधायाः  
विडति” इति नलोपे, टेरेत्वे च “भज्यते” इति रूपम् । भञ्जेश्च चिणि । “शनान्नलोपः”  
इत्यतो नेति लुसषष्ठीकम्, लोप इति चानुवर्तते । “जान्तनशां विभाषा” इत्यतो  
विभाषेति मत्वा शेषं पूरयति—नलापो वा स्यादिति । अभाजि । भञ्जधातोः कर्मणि  
लुङि, “भावकर्मणोः” इति लुङ्स्ते, “च्लि लुङि” इति च्लौ, “चिण् भावकर्मणोः”  
इति च्लेशचिणि, अनुबन्धलोपे “भञ्जेश्च चिणि” इति वा नलोपे, “अत उपधायाः”  
इति वृद्धौ, “चिणो लुक्” इति तशब्दस्य लोपे, अङ्गस्य अडागमे ‘अभाजि’ इति  
रूपम् सिद्धम् । नलोपाभावे—अभजि । लभ्यते । लभधातोः कर्मणि लटि, लटो  
लः स्थाने “भावकर्मणोः” इति आत्मनेपदे ते, “तिङ्शित्” इति सार्वधातुकसं-  
ज्ञायां “सार्वधातुके यक्” इति यकि, कगते, “टित आत्मनेपदानां टेरे” इति  
टेरेत्वे “लभ्यते” इति रूपम् । विभाषा चिण्णमुलोरिति । “लभेश्च” इत्यतो लभेरिति,  
“इदितो नुम् धातोः” इत्यतो नुम् इति मत्वा शेषं पूरयति—लभेर्नुमागमो वेति ।  
अलम्भि । लभधातोः “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति कर्मणि, “लुङ्” इत्य-  
नेन भूतार्थे लुङि, उङि गते, “भावकर्मणोः” इति आत्मनेपदे प्रथमपुरुषैकवचनवि-  
वक्षायां लुङो लः स्थाने ते, तस्य “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकसंज्ञायां  
“सार्वधातुके यक्” इति यकि प्राप्ते, तच्चाधित्वा “च्लि लुङि” इति च्लौ, “च्ले-  
सिच” इति सिचि प्राप्ते तच्चाधित्वा “चिण् भावकर्मणोः” इति च्लेः स्थाने चिणि,  
चण्योरित्सञ्ज्ञायां लोपे “लुङ्लुङ्स्वहुदात्तः” इत्यङ्गस्याडागमे, “विभाषा चिण्ण-  
मुलोः” इति चिणि परे लभेर्नुमि, उमि गते, भित्वादत्यावयवे जाते, नस्य अनुस्वारे  
परसवर्णे च “अलम्भि” इति रूपम् । नुमागमाभावे—“अत उपधायाः” इति वृद्धौ  
‘अलाभि’ इति रूपम् । इति भावकर्मप्रक्रिया ।

सकर्मकाणामप्यकर्मकत्वादिति । वे छिदिमिदिप्रभृतय एककर्मकाः, तत्र कर्मणः  
कर्तृत्वविवक्षायां वृचः छिनत्ति इत्यादौ प्राक् सकर्मकत्वेऽपि सम्प्रति कर्मणः कर्तृत्व-  
विवक्षायासकर्मका एते इत्यर्थः । कर्तरि भावे च लकार इति । न तु कर्मणि, असम्भ-  
वम् । अत एव अकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च ल इत्युक्तमिति भावः । कर्मकर्तृत्वमिति ।

कर्ता कर्मवत्स्यात् । कार्यातिदेशोऽयम् । तेन यगात्मनेपदचिण्चिष्वदिष्टः स्युः ।  
पच्यते फलम् । मिद्यते काष्ठम् । अगचि । अमेदि । भावे-मिद्यते काष्ठेन ।

इति कर्मकर्तृप्रक्रिया ॥

“कर्तरि शप्” इत्यतः कर्तरीत्यनुवृत्तं प्रथमया विपरिणम्यते । तुल्या क्रिया यस्य सः,  
तुल्यक्रियः कर्ता । कर्मणा इत्यनेन कर्मकारकत्वा क्रिया विवक्षिता, क्रियायाः कर्म-  
कारकेण तुल्यत्वस्य तत्क्रियामादायैव उपपाद्यत्वात् । तदाह-कर्मस्थयेत्यादिना । कर्मणः  
कर्तृत्वेन विवक्षायां कर्ता कर्मवदिति यावत् । कार्यातिदेशोऽयमिति । यद्यपि शास्त्रातिदेशे  
कार्यातिदेशे वा न फलभेदः । तथापि शास्त्रातिदेशस्यापि कार्यातिदेशाश्रित्वान्मुक्तत्वात्  
कार्यातिदेश एवाश्रयणीय इत्यर्थः । तेनेति । स्युरित्यन्त्रान्वेति । कर्मक्त्ववचनेन कर्म-  
कार्याणि “सार्वधातुके यक्”, इति यक्, “भावकर्मणोः” इति आत्मनेपदस्य, “चिण्  
भावकर्मणोः” इति चिण्, “स्वसिच्यसीयुट्तासिषु” इति चिण्वत्वम्, तत्संनियोग-  
सिष्टः इट् च स्युरित्यर्थः । कर्मणः कर्तृत्वविवक्षायां कर्तरि विहितानि शास्त्राप्येव न  
स्युरित्यर्थः । पच्यते फलमिति । ‘कालः फलं पचति’ इत्यत्र यदा सौकर्यातिशयं द्योत-  
यितुं कर्तृव्यापारो न विवक्ष्यते, तदा कर्मण एव कर्तृत्वात् पच्धातुरकर्मकः । तस्मात्  
“लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति कर्तृरूपेऽयं वर्तमानक्रियायां “वर्तमाने  
लट्” इति लटि, “कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः” इति कर्मवद्भावात् आत्मनेपदे ते, “सार्व-  
धातुके यक्” इति यकि, कस्येत्सज्ञायां लोपे च जाते “टित आत्मनेपदानां ढेरे” इति  
ढेरेत्वे च ‘पच्यते’ इति रूपम् । कर्तरि लकारे कर्तृरुक्त्वात् कर्तृवाचकफलशब्दात्  
प्रथमा । मिद्यते काष्ठमिति । ‘काष्ठानि भिनत्ति’ अत्र यदा कर्तृव्यापारो न विवक्ष्यते,  
तदा ‘काष्ठानि’ इति कर्मणः कर्तृत्वात् भिदातोरकर्मकत्वम् । तस्मात् कर्तरि लटि,  
“कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः” इति कर्मवद्भावात् लटः स्थाने आत्मनेपदे ते यकि, ढेरेत्वे  
च तत्सिद्धिः । कर्तृरुक्त्वात्प्रथमा । अपाचि । पच् धातोः कर्तृव्यापारस्याविवक्षितत्वेन  
अकर्मकत्वात् कर्तरि लुङि, “कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः” इति कर्मवद्भावात् “भाव-  
कर्मणोः” इति लुङो लः स्थाने आत्मनेपदे ते, तस्य सार्वधातुकत्वात् यकि प्राप्ते,  
तस्माद्विस्वा “च्लि लुङि” इति च्लौ, “चिण् भावकर्मणो” इति च्लेः चिणि, चिणो-  
ऽनुबन्धलोपे, “अत उपधायाः” इति वृद्धौ, “चिणो लुक्” इति चिणः परस्य तस्यन्दस्य  
लुकि, अङ्गस्याडागमे च ‘अपाचि’ इति रूपम् । अमेदि । भिदातोः कर्तरि लुङि  
“कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः” इति कर्मवद्भावात् लुङः स्थाने आत्मनेपदे ते च्लौ, च्लेः  
स्थाने “चिण् भावकर्मणोः” इति चिणि, चस्य णस्य चेत्यज्ञायां लोपे च कृते भिदो  
शुणे अडागमे, “चिणो लुक्” इति तस्यन्दस्य लुकि च कृते ‘अमेदि’ इति रूपम् ।  
भावे-मिद्यते काष्ठेनेति । कर्तृव्यापारस्याविवक्षायां भिदोऽकर्मकत्वात्, भिदः “लः  
कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति भावे “वर्तमाने लट्” इति लटि, लः स्थाने



## अथ लकारार्थप्रक्रिया ।

अभिज्ञावचने लट् ३।२।११२। स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने धातोर्लृट् स्यात् । लङोऽपवादः । वस निवासे । स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः । एवं बुध्यसे चेतयसे इत्यादिप्रयोगेऽपि ॥ न यदि ३।२।११३। यद्योगे उक्तं न स्यात् । अभिजानासि कृष्ण यद्वने अभुञ्जमहि ॥ लट् स्मे ३।२।११८। लिटोऽपवादः । यजति स्म युधिष्ठिरः ॥ वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्धा ३।३।१३१। वर्तमाने ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वा स्युः । कदाऽऽगतोऽसि । अयमागच्छामि, अयमागमं वा । कदा गमिष्यसि । एष गच्छामि, गमिष्यामि वा । हेतु-

“भावकर्मणोः” इत्यात्मनेपदे ते, “सार्वधातुके यक्” इति यकि, कस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च यकः कित्वात् “किङिति च” इति गुणाभावे “दित आत्मनेपदानां ढेरे” इति ढेरेत्वे च कृते ‘भिद्यते’ इति रूपम् । अत्र कर्तुरनभिहितत्वात् “कर्तृकरणयौस्तृतीया” इति तृतीयेति भावः । इति कर्मकर्तृप्रक्रिया ।

अभिज्ञावचन इति । अभिज्ञा—स्मृतिः, सा उच्यते बोध्यते, अनेनेति विग्रहः । तदाह—स्मृतिबोधिन्युपपदे इति । स्मृतिबोधकपदे समीपे प्रयुज्यमाने सतीत्यर्थः । “भूते” इत्यधिकृतम् । “अनद्यतने लङ्” इत्यतोऽनद्यतने इत्यनुवर्तते । तदाह—भूतानद्यतने इति । लङोऽपवाद इति । “अनद्यतने लङ्” इत्यस्यापवाद इत्यर्थः । स्मरसीति । हे कृष्ण गोकुले अवसामेति यत् तत् स्मरसि इत्यर्थः । अत्र वाक्यार्थः कर्म । कृतं गोकुलवासं स्मरसीति यावत् । एवमिति । स्मरसि इति पदयोग इव बुध्यसे इत्यादि स्मृतिबोधकपदयोगेऽपि लृडित्यर्थः । न यदि । यदीति सप्तमीं मत्वा आह—यद्योगे इति । उक्तं नेति । “अभिज्ञावचने” इति लृट् न भवतीत्यर्थः । अभिजानासीति । वने अभुञ्जमहीति यत् तत् स्मरसीत्यर्थः । लट् स्मे । स्मेत्यव्ययम् । तद्योगे लिट् विषये लट् स्यादित्यर्थः । यजति स्मेति । स्मशब्दो भूतकालद्योतकः । वर्तमानसामीप्य इति । “वर्तमाने लट्” इत्यारभ्य आपादसमाप्तेः “उणादयो बहुलम्” इति तृतीयपादादिमसूत्रात् प्राक् वर्तमानाधिकारः । तस्मिन्नधिकारे येन विशेषणेन ताभ्यः प्रकृतिभ्यो वर्तमाने प्रत्यया विहिताः ते सर्वे तेनैव विशेषणेन ताभ्यः प्रकृतिभ्यो वर्तमानसमीपकाले भूते भविष्यति च वा भवन्तीत्यर्थः । अत्र भूते भविष्यति चेत्यार्थिकम्, तयोरेव वर्तमानसामीप्यसत्त्वात् । कदा आगतोऽसि—इत्यागतं प्रति प्रश्नः । अयमागच्छामि इत्युत्तरम् । अव्यवहितपूर्वकाले आगतवानस्मीत्यर्थः । वर्तमानसमीपकाले भूते लट् । अव्यवहितेन आगमनकालीनं प्रस्वेदपरिकरबन्धादियुक्तं रूपं निर्दिश्यते इदानीमागमनं सूचयितुम्—आगममिति । वर्तमानवत्त्वाभावे भूते लुङ् । कदा गमिष्यसीति । गमनात्प्राक् प्रश्ने, एष गच्छामि, इत्युत्तरम् । अव्यवहितोत्तरकाले गमिष्यामीत्यर्थः ।

हेतुमतोलिङ् ३।३।१५६। वा स्यात् । कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात् । कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति । भविष्यत्येवेष्यते । नेह, हन्तीति पलायते । “विधिनिमन्त्रणा” इति लिङ् । विधिः—प्रेरणं भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम् । यजेत । निमन्त्रणं—नियोग-करणमावश्यकं श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम् । इह भुञ्जीत । आमन्त्रणं—कामचाराऽनुज्ञा । इहासीत । अधीष्टः—सत्कारपूर्वको व्यापारः । पुत्रमध्यापयेद्भवान् । सम्प्रश्नः—सम्प्रधारणम् । किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम् । प्रार्थनं—याञ्चा । भो भोजनं लभेय । एवं लोट् । इति लकारार्थप्रक्रिया ॥ इति तिङन्तम् ॥

### अथ कृदन्ते त्यप्रकरणम् ।

धातोः ३ । १ । ६१ । आतृतीयाध्यायसमाप्त्यन्तं ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः । “कृदतिङ्” इति कृतसंज्ञा ॥ वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ३।१।६१ अस्मिन्धात्व-

एष इति तु अयमिति वत् व्याख्येयः । वर्तमानकालसमीपे भविष्यति लट् । गमिष्यामि वेति । वर्तमानवत्त्वाभावे भविष्यति लृट् । हेतुहेतुमतोलिङ् । पूर्वसूत्राद्विभाषानुवृत्ति मत्वा आह—वा स्यादिति । पचे लट् । हेतुभूते फलभूते वाऽर्थे वर्तमानादातोलिङ् वा स्यादिति यावत् । भविष्यत्येवेति । लिङित्यनुवर्तमाने पुनर्लिङ्ग्रहणादिति भावः । हन्तीति । इतिहंतौ, वर्तमानकालिकहननाद्धेतोरित्यर्थः । विधिनिमन्त्रणा । ननु विध्या-दयो हि न लिङो वाच्याः । “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति सूत्रेण कर्तृकर्म-भावानां लकारवाच्यत्वबोधनात् । न च “लः कर्मणि च” इति शास्त्रं लिङित्यतिरिक्त-लकाराविषयमेवास्त्विति वाच्यम् । तथा सति यजेत इत्यादौ कर्तृवाचकत्वाभावेन शबाधनापत्तेरित्यत आह—द्योत्येष्विति । “लः कर्मणि च” इति सूत्रं सामान्यविषयं चेदपि “विधिनिमन्त्रणा०” इति विशेषशास्त्रेण न बाध्यते, अविरोधात् । तथाच विध्यादिविशिष्टकर्त्रादिषु लिङिति फलतीति मत्वाह—वाच्येषु वेति । पचद्वयमपीदं भाष्ये स्थितम् । भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनमिति । तद्यथा भृत्यं स्वामी वदति—भवान् वस्त्रं चालयेत् इति । दौहित्रादेः प्रवर्तनमिति । दौहित्रादीन् प्रति इह श्राद्धे भवान् भुञ्जीतेति । “त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलः” इति वचनात् । काम-चारानुज्ञेति । यथेच्छं क्रियतामित्यभ्यनुज्ञानमित्यर्थः । अधीष्टः सत्कारपूर्वको व्यापारः । भाष्यवाक्यमिदम् । सत्कृत्य प्रवर्तनमित्यर्थः । सम्प्रश्नः सम्प्रधारणम् । इदं कार्यं नवेति विचार्य अनिर्धारणम् । एवं लोटिति । “लोट् च” इति विध्यादिषु विहितो लोटप्येव-मुदाहर्तव्य इत्यर्थः । इति लकारार्थप्रक्रिया ।

धातोः । आतृतीयेति । आतृतीयाध्यायपरिसमाप्तेरित्यर्थः, तच्च भाष्ये स्पष्टम् । कृदतिङ् । व्याख्यातम् प्राक् । वासरूपोऽस्त्रियाम् । असरूप इति ष्ठेदः । इयम्परिमा-

विकारेऽसंख्योऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात्, स्व्यविकारोक्तं विना ॥  
 कृत्याः ३।१।६५ ण्वुल्तुच्चावित्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः ॥ कर्तरि कृत् ३।४।६७  
 कृत्यप्रत्ययः कर्तरि स्यात् । इति प्राप्ते ॥ तयोरेव कृत्यत्तत्त्वलार्थाः ३।४।७० एते  
 भावकर्मणोरेव स्युः । तन्व्यत्तव्यानीयरः ३।१।६६ धातोरेते प्रत्ययाः स्युः । एधितव्यं,  
 एधनीयं त्वया । भावे औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वम् । चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मस्त्वया ।

वेति यावत् । ण्वुल्तुच्चावित्सर्गः “इगुपधशाप्रीकिरः कः” इत्यस्यापवादः । तद्विषये  
 ण्वुल्तुच्चावपि भवतः । विषेपकः, विचेसा । विक्षिपः । स्त्रीशब्दः स्वर्यते । तदाह—  
 स्व्यविकारोक्तं विनेति । “स्त्रियां क्तिन्” इति वक्ष्यमाणस्य्यविकारस्थमपवादं विनेत्यर्थः ।  
 स्व्यविकारस्थस्तु असंख्यः प्रत्ययः उत्सर्गस्य नित्यमेव बाधक इति भावः । कृत्याः ।  
 कृत्यसंज्ञका इत्यर्थः । ततश्च “प्राप्तिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च” “अहं कृत्यत्तुचश्च”  
 “शकि लिङ् च” इत्यादिषु प्रवर्तते । ण्वुलः प्रागिति । “ण्वुल्तुचौ” इत्यतः प्रागित्यर्थः ।  
 एतच्च भाष्ये स्पष्टम् । कर्तरि कृत् । अर्थनिर्देशोऽयम् । तयोरेव कृत्यत्तत्त्वलार्थाः । “लः  
 कर्मणि च भावे च” इति सूत्रोपात्ते भावकर्मणी तच्छब्देन परामृश्यते । तदाह—एते  
 भावकर्मणोरेवेति । न तु कर्तरीति भावः । तन्व्यत्तव्यानीयरः । तन्व्यत् तन्व्य अनीयर  
 पूर्णं इन्द्रः । प्रत्ययाः स्युरिति । ते कृत्यसंज्ञकाः कृत्यसंज्ञकाश्च इत्यपि ज्ञेयम् । एधितव्यम् ।  
 एधधृद्वौ धातुतः “धातोः” इत्यनेन धातोः परेऽत्र भवितव्यतां विधाय “कृदतिङ्”  
 इत्यनेन कृत्यसंज्ञायां “कृत्याः” इत्यनेन कृत्यसंज्ञायाम् “कर्तरि कृत्” इति कर्चर्यर्थे  
 भाष्ये “तयोरेव कृत्यत्तत्त्वलार्थाः” इत्यनेन अकर्मकात् धातोर्भावे सकर्मकाच्च धातोः  
 कर्मणि कृत्यत्तत्त्वलार्थानां प्राप्तौ सत्याम् “तन्व्यत्तव्यानीयरः” इत्यकर्मकादेव धातोर्भावे  
 वक्ष्यति कृते, तकारस्य “इलन्वयम्” इतीत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे ‘एध्  
 तन्व्य’ इति जाते “आर्धधातुकं शेषः” इति तव्यत आर्धधातुकसंज्ञायाम् “आर्धधातुक-  
 स्वेङ्लोपः” इति इडागमे ‘एधितव्य’ इति जाते “कृत्तद्धितसमासाश्च” इति प्रातिप-  
 दिकसंज्ञायां “ङ्याप्प्रातिपदिकात्” इति स्वादिप्राप्तौ प्रथमैकवचने सौ समागते  
 “भावे औत्सर्गिकं क्लीबत्वम्” इति क्लीबत्वात् “अतोऽम्” इति सोरमि, “अभि  
 पूर्वः” इति पूर्वरूपत्वे च कृते ‘एधितव्यम्’ इति रूपम् । तव्येऽप्येवमेव । एधनीयम् ।  
 एधधातोर्कर्मकत्वात् “तयोरेव कृत्यत्तत्त्वलार्थाः” इति भावे “तन्व्यत्तव्यानीयरः” इत्य-  
 नेन अनीयरि, तस्येत्संज्ञायां लोपे च झित्त्वा “एधनीय” इति जाते तस्य कृदन्तत्वात्  
 प्रातिपदिकत्वे, औत्सर्गिकमेकवचने क्लीबत्वे च ‘एधनीयम्’ इति । अत्र त्वत्कर्तृका  
 एधनक्रियेत्यर्थः । कर्मण्युदाहरति—चेतव्यः, चयनीय इति । चिधातोः सकर्मकत्वात्  
 कर्मणि, तव्यति अनीयरि वा प्रत्यये कृते, अनुबन्धलोपे, “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्ध-  
 धातुकत्वे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, सौ, स्त्वे  
 झित्त्वा च ‘चेतव्यः’ इति । अनीयरि अयादेशे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे सौ स्त्वे क्लृप्तौ

( केलिम् उपसङ्ख्यानम् ) । पचेलिमा माषाः । पक्तव्या इत्यर्थः । मिदेलिमाः सरलाः । भेत्तव्या इत्यर्थः । कर्मणि प्रत्ययः ॥ कृत्यल्युटो बहुलम् ३।३।११३ क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्भिभाषा क्वचिदन्यदेव । विधेर्विधानं बहुधा समोक्त्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥ स्नात्यनेनेति स्नानीय चूर्णम् । दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः । अचो यत् ३।१।६७ अजन्ताद्गतोर्यत् । चयम् ॥ ईद्यति ६।४।६५ यति परे आत ईत्स्यात् । देयम् । ग्लेयम् । पोरदुपधात् ३।१।६८ पवर्गान्तादुपधायत् स्यात् । ण्यतोऽपवादः । शप्यम् । लभ्यम् । एतिस्तुशास्वृदजुषः क्यप् ३।१।१०६ एभ्यः क्यप् स्यात् ॥ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ६।१।७१ इत्यः । स्तुत्यः । शासु

च 'चयनीयः' इति । केलिम् इति । धातोरित्येव । भावकर्मणोरेवेदम् । पचेलिमा माषा इति । पचधातोः "तयोरेव कृत्यक्तल्लर्थाः" इति कर्मणि, "केलिम् उपसङ्ख्यानम्" इति वार्तिकेन केलिम्प्रत्यये, ककाररेफयोरित्त्वङ्गायां लोपे च 'पच् एलिम्' इति, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, जसि, विभक्तिकार्यं च तस्सिद्धिः । मिदेलिमाः सरलाः । भिद्धातोः कर्मणि केलिम्प्रत्यये, अनुबन्धलोपे, कित्वाद्गुणाभावे प्रातिपदिकत्वात् जसि, विभक्तिकार्यं च तस्सिद्धिः । कृत्यल्युटो बहुलमिति । बाभ्यः प्रकृतिभ्यो येष्वर्थेषु विहिताः ततोऽप्यत्रापि स्युरित्यर्थः । स्नानीयम् । करणे अनीयर् । दानीयः । सम्प्रदाने अनीयर् । अचो यत् । धातोरिति विशेषणत्वात्तदन्तविधिः, तदाह—अजन्ताद्गतोरिति । चयम् । चिञ् चयने धातोः "अचो यत्" इति यति कृते, अनुबन्धलोपे "आर्धधातुकं शेषः" इत्यार्धधातुकत्वे, "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इति गुणे, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे सौ, सोरमि, पूर्वरूपे च तस्सिद्धिः । ईद्यति । आत इति । "आतो लोप इटि च" इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । देयम् । दाधातोः "अचो यत्" इति यति, तगते, "ईद्यति" इत्याकारस्व ईत्वे, "आर्धधातुकं शेषः" इति यत् आर्धधातुकत्वे, "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इति गुणे, 'देव' इति जाते, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, सौ, सोरमि, पूर्वरूपे च तस्सिद्धिः । ग्लेयम् । ग्लै हर्षण्ये धातोः "अचो यत्" इति यति, तगते, "आदेच उपदेशोऽंशिति" इति ग्लैधातोराकारान्तादेशे "ईद्यति" इति ईत्वे, यत् आर्धधातुकत्वात् गुणे, प्रातिपदिकत्वे, सोरमि, पूर्वरूपे च तस्सिद्धिः । पोरदुपधात् । ण्यतोऽपवाद इति । यत् ण्यतोरनुबन्धरहितयोः सारूप्यात् वासरूपविधेरप्रवृत्तेः शप्यमित्यादौ ण्यतोऽपवादोऽयमिति भावः । शप्यम् । शप् धातोः "ऋहलोर्ण्यत्" इति ण्यति प्राप्ते सम्बाधित्वा "पोरदुपधात्" इत्यनेन यति तगते, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे विभक्तिकार्यं च कृते, तस्सिद्धिः । लभ्यम् । लभ् धातोः "पोरदुपधात्" इति यति विभक्तिकार्यं च तस्सिद्धिः । एतिस्तुशास्वृदजुष इति । एति, स्तु, शास्, वृ, इ, जुष् एषां ण्यत् समाहारद्वन्द्वात्पञ्चमी । सुप्यनुपसर्गे भाव इति निवृत्तम् । तदाह—अभ्यः क्यप्स्यादिति । ह्रस्वस्य । स्पृह्यम् । इत्यः । इण्गत्तौ, इत्यस्माद्धातोः "एति स्तुता-

अनुशिष्टौ ॥ शास इदङ्हलोः ६।४।३४ शास उपधाया इत्स्यादङि हलादौ इति ।  
 शिष्यः । वृत्यः । आदृत्यः । जुष्यः ॥ मृजेर्विभाषा ३।१।११३ मृजेः क्यच्चा  
 स्यात् । मृज्यः ॥ ऋहलोर्ण्यत् ३।१।१२४ ऋवर्णान्तादलन्ताच्च धातोर्ण्यत् स्यात् ।  
 कार्यम् । हार्यम् । धार्यम् ॥ चजोः कुधिण्यतोः ७।३।५२ चजोः कुत्वं स्यात्

स्वृहजुषः क्यप्” इति क्यपि, कपयोरित्संज्ञायां लोपे च इणो णगते, ‘इ य’ इति भूते  
 “ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्” इति ह्रस्वस्य इण इकारस्य पिति कृति परे तुगागमे कृते,  
 उकि, गते, कित्वादन्यावयवे जाते विभक्तिकार्ये च कृते ‘इत्यः’ इति रूपम् । स्तुत्यः ।  
 ष्टुज् स्तुतौ इति धातोः “एतिस्तुशास्वृहजुषः क्यप्” इति क्यपि, ष्टुजो जलोपे,  
 “धात्वादेः षः सः” इति षस्य सत्वे, तेन ष्टुत्वेऽपि, ‘स्तु’ इति जाते, क्यपोऽनुबन्ध-  
 लोपे, “ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्” इति तुगागमे, उकि गते, कित्वादन्यावयवे जाते,  
 विभक्तिकार्ये च सति ‘स्तुत्यः’ इति रूपम् । शास इदङ्हलोरिति । “अनिदितां हल  
 उपधायाः विङिति” इत्यत उपधायाः विङिति इत्यनुवर्तते तदाह—शास उपधाया इति ।  
 शिष्यः । शासु अनुशिष्टौ धातुः । अनुबन्धविनिर्मुक्तात् शास् इत्यस्मात् “एतिस्तुशा-  
 स्वृहजुषः क्यप्” इति क्यपि, कपयोरित्संज्ञायां लोपे च कृते ‘शास् य’ इति जाते  
 “शास इदङ्हलोः” इति शास उपधाया इत्वे, “शासिवसिधसीनां च” इति षत्वे,  
 विभक्तिकार्ये च ‘शिष्यः’ इति रूपम् वृत्यः । ष्टुज् वरणे इत्यस्माद्धातोः “एतिस्तुशा-  
 स्वृहजुषः क्यप्” इति क्यपि, कस्य च लोपे, “ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्” इति तुकि,  
 उकि गते, संयोगे विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः । आदृत्यः । आङ्पूर्वकध्यातोः क्यपि,  
 अनुबन्धलोपे, “ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्” इति तुकि उको लोपे, विभक्तिकार्ये च  
 तत्सिद्धिः । जुष्यः । जुषी प्रीतिसेवनयोः इति धातोरनुबन्धलोपे, तस्मात् ‘एतिस्तु-  
 शास्वृहजुषः क्यप्” इति क्यपि, कपयोरित्संज्ञायां लोपे च कृते, कित्वाद्गुणाभावे,  
 कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, विभक्तिकार्ये च कृते ‘जुष्यः’ इति रूपम् । मृजेर्विभाषा ।  
 पूर्वसूत्रात्क्यबनुवर्तते । मृज्यः । मृजू शुद्धौ, इति धातोरनुबन्धलोपे, तस्मात् “मृजेर्वि-  
 भाषा” इति क्यपि, कपयोलोपे, कित्वाद्बृद्ध्यभावे, प्रातिपदिकत्वे विभक्तिकार्ये च  
 तत्सिद्धिः । ऋहलोर्ण्यत् । पञ्चम्यर्थे षष्ठी । तदाह—ऋवर्णान्तादिति । कार्यम् । डुकृज् करणे  
 इति धातोरनुबन्धलोपे, तस्मात् “ऋहलोर्ण्यत्” इति ण्यति, णकारतकार्योलोपे,  
 ‘कृ य’ इति जाते, ‘आर्धधातुकं शेषः’ इति ण्यतो यकारस्य आर्धधातुकसंज्ञायां “सार्व-  
 धातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे प्राप्ते, तम्बाधित्वा “अचोऽङ्गिति” इति षुद्धौ, “उरण्  
 रपरः” इति रपरत्वे, “अचो रहाभ्यां द्वे” इति यस्य द्वित्वे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे,  
 विभक्तिकार्ये च ‘कार्यम्’ इति रूपम् । हार्यम् । हज् हरणे धातोः “ऋहलोर्ण्यत्”  
 इति ण्यति, अनुबन्धलोपे, “अचो ऽङ्गिति” इति षुद्धौ, रपरत्वे च कृते, “अचो रहाभ्यां  
 द्वे” इति यकारस्य द्वित्वे, विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः । धार्यम् । धृज् धारणे धातोः

षिति ष्यति च परे । मृजेवृद्धिः ७।२।१४ मृजेरिको वृद्धिः स्यात् सार्वधातुकार्ध-  
धातुकयोः । मार्ग्यः । भोज्यं भक्ष्ये ७।३।६६ भोग्यमन्यत् । इति कृत्यप्रक्रिया ॥

अथ पूर्वकृदन्तप्रकरणम् ।

ण्वुल्लुचौ ३।१।१३३ धातोरेतौ स्तः कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थे ॥ युवोर-  
नाकौ ७।१।१ युव एतयोरनाकौ स्तः । कारकः । कर्ता ॥ नन्दिग्रहिपचादिभ्यो

“ऋहलोर्ण्यत्” इति ष्यति, णतयोलोपि, वृद्धौ, रपरत्वे, यस्य द्वित्वे, विभक्तिकार्यं च  
तत्सिद्धिः । चजोः कु षिण्यतोः । कु इति अविभक्तिको निर्देशः । चजोः षिण्यतोश्च यथा-  
संख्यं तु न । “तेन रक्तं रागात्” इति घञि जस्य कुत्विर्निर्देशात् मृजेवृद्धिरिति । “इको  
गुणवृद्धिः” इति परिभाषया इक इत्युपस्थितम् । मृजेरित्यवयवषष्ठी । तदाह—मृजेरिको  
वृद्धिरिति । मार्ग्यः । मृजधातोः “मृजेर्विभाषा” इति क्यबभावे, “ऋहलोर्ण्यत्” इति  
ष्यति, णतयोलोपि, ण्यतो यकारस्य “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकसंज्ञायां  
“सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे प्राप्ते तम्बाधित्वा “मृजेवृद्धिः” इति मृजेरुपधा-  
ऋकारस्य वृद्धौ “उरण् रपरः” इति रपरत्वे च ‘मार्ज् य’ इति जाते, “चजोः कु षि-  
ण्यतोः” इति जस्य कृत्वे, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, विभक्तिकार्यं च कृते ‘मार्ग्यः’  
इति रूपम् । भोज्यं भक्ष्ये इति । भक्ष्ये गम्ये ण्ये, भुजेः कृत्वाभावो निपात्यते । तथाहि—  
भुजधातोः “ऋहलोर्ण्यत्” इति ष्यति, णस्य तस्य चेत्संज्ञायां लोपे च “आर्धधातुकं  
शेषः” इति ण्यतो यकारस्य आर्धधातुकसंज्ञायां “पुगान्तलघूपधस्य च” इति लघूपध-  
गुणे ‘भोज् य’ इति जाते, “चजोः कु षिण्यतोः” इति जस्य कृत्वे प्राप्ते, “भोज्यं भक्ष्ये”  
इत्यनेन कृत्वाभावे निपातिते, “कृचद्धितसमासाश्च” इति कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञा-  
याम्, प्रथमैकवचनविचक्षायां सौ, “अतोऽम्” इति सोरमादेशे “अमि पूर्वः” इति  
पूर्वरूपे च ‘भोज्यम्’ इति भक्ष्ये रूपेऽर्थे सम्पन्नम् । भोग्यमन्यत् । भुजधातोः “ऋह-  
लोर्ण्यत्” इति ष्यति, णतयोलोपि, ण्यतो यस्य आर्धधातुकत्वात् “पुगान्तलघूपधस्य  
च” इति लघूपधगुणे, “चजोः कु षिण्यतोः” इति जस्य कृत्वे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे,  
सोरमि, पूर्वरूपे च तत्सिद्धिः । इति कृत्यप्रक्रिया ।

ण्वुल्लुचौ । अनयोर्वर्तमानकालादन्यत्र न प्रयोग इति भाष्यम् । युवोरनाकाविति ।  
युश्च वुश्च युवुः । समाहारद्वन्द्वे सौत्रं पुंस्त्वमेकत्वं च । तदाह—यु वु एतयोरिति । कारकः ।  
करोतीति विग्रहे कृधातोः “कर्तरि कृत्” इति कर्त्रर्थे “ण्वुल्लुचौ” इति ण्वुलि “चुट्”  
इति णस्येत्संज्ञायां लस्य “हलन्त्यम्” इत्यनेनेत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इत्यनेन  
णल्योलोपे, “युवोरनाकौ” इत्यनेन वोः स्थाने अकादेशे, तस्य “आर्धधातुकं शेषः” इत्या-  
र्धधातुकसंज्ञायां ‘सार्वधातुकार्धधातुकयोः’ इति गुणे प्राप्ते, तम्बाधित्वा “अचो ऽपि”  
इति वृद्धौ, आ इति जाते “उरण् रपरः” इति रपरत्वे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे सौ, इत्वे विसर्गे

व्युत्पिन्त्यचः ३।१।१३४ नन्दादेर्ल्युः, प्राद्यादेर्णिनि, पचादेरच् स्यात् । नन्दयतीति नन्दनः । जनमर्दयतीति जनार्दनः । लवणः । ग्राही । स्थायी । मन्त्री । पचादिरा-  
कृतिगणः । इगुपधञ्जाप्रीकिरः कः ३।१।१३५ एभ्यः कः स्यात् । बुधः । कृशः ।

च 'कारकः' इति रूपम् । कर्ता । करोतीति विग्रहे कृधातोः "ण्वुल्चौ" इति वृचि, चगते, वृच आर्धधातुकत्वात् "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इति गुणे रपरे च 'कर्तृ' इति भूते तस्मात् सौ, विभक्तिकायं च 'कर्ता' इति रूपम् । नन्दिग्रहीति । नन्दि ग्रहि पच एषां द्वन्द्वः । नन्दिग्रहिपचाः आदिर्येषामिति विग्रहः । आदिसद्व्यस्य प्रत्येकमन्वयः फलति । ल्यु, णिनि, अच् एषां द्वन्द्वात् प्रथमा । यथासंख्यमन्वयः । तदाह—नन्दादेरिति । नन्दि इति ण्यन्तग्रहणम् । तदाह—नन्दयतीति नन्दनः । हुनदि—समृद्धौ, धातोरनुबन्धलोपे, "इदितो नुमधातोः" इति मित्रादन्त्यादचः परे नुमि, उमि गते, अनुस्वारे, परसवर्णे, 'नन्द' इति जाते, तस्मात् "हेतुमति च" इति णिचि, अनुबन्धलोपे "सनाद्यन्ता धातवः" इति धातुसंज्ञायां तस्मात् 'नन्दि' इति धातोः "कर्तरि कृत्" इति कर्त्रर्थे "नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः" इति स्तुप्रत्यये, लगते, "युवोरनकौ" इति योरनादेशे, तस्य आर्धधातुकत्वात् "भेरनिटि" इति णिलोपे संयोगे विभक्तिकार्यं च कृते तत्सिद्धिः । जनार्दनः । जन उपपदक—अर्ध-  
धातोः नन्दादित्वाल्ल्युप्रत्यये, योरनादेशे, संयोगे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । लवणः । लवणतोर्नन्दादित्वात् ल्युप्रत्यये लगते, योरनादेशे, तस्यार्धधातुकत्वात् गुणे, अवा-  
देशे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । ग्राही । ग्रह—उपादाने धातोः "कर्तरि कृत्" इति कर्त्रर्थे, "नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः" इति ग्रहादित्वात् णिनि, णस्येसंज्ञायां लोपे च "अत उपधायाः" इति उपधापृद्धौ, संयुक्ते कृते, कृते च विभक्तिकार्यं, 'ग्राही' इति रूपम् । स्थायी । घा गतिनिवृत्तौ, इति धातोः "नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणि-  
न्यचः" इति णिनि, णगते, घाधातोः, "धात्वादेः षः सः" इति षस्य सत्वे, षट्त्वे गते, "आतो युक् चिणकृतोः" इति युगागमे, उकि गते, कित्वात् स्थाधातोरन्ताव-  
प्ये जाते, संयुक्ते कृते, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, सौ, तस्य "हल्ङ्याभ्यो दीर्घा-  
स्तुतिस्यपृक्तं हल्" इति लोपे, "सौ च" इति इन्नन्तस्योपधाया दीर्घत्वे "नलोपः  
प्रातिपदिकान्तस्य" इति नलोपे च कृते तत्सिद्धिः । मन्त्री । मन्त्रि गुप्तपरिभाषणे  
धातोः ग्रहादित्वात् णिनि, णगते, मन्त्रिधातोरित्वात् नुमागमे, विभक्तिकार्यं च  
कृते तत्सिद्धिः । पचादिराकृतिगण इति । पच वप इत्यादिकतिपयधातून् पठित्वा आकृ-  
स्तिगण इति गणपाठे वचनादिति आभः । इगुपधञेति । 'क् विक्षेपे' इत्यस्य इत्वे रपरत्वे  
च किर इति रेफान्तम् । इगुपध, जा, प्री, किर, एषां द्वन्द्वात्पञ्चमी । कित्त्वं गुण-  
नित्येधार्यम् । बुधः । बोधतीति विग्रहे बुध् धातोः "कर्तरि कृत्" इति कर्त्रर्थे "इगुप-  
धञाप्रीकिरः कः" इति कप्रत्यये, "लकृत्पठिते" इति कस्येसंज्ञायां "तस्य लोपः"

इः । प्रियः । किरः ॥ आतश्चोपसर्गो ३।१।१३६ प्रज्ञः । सुगलः । गेहे कः ३।१।१४४ गेहे कर्तरि प्रहेः कः स्यात् । गृहम् । कर्मण्यण् ३।२।१ कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात् । कुम्भं करोति कुम्भकारः ॥ आतोऽनुपसर्गो कः ३।२।३

इति लोपे, “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकत्वे “पुगन्तलवूपधस्य च” इति गुणे प्राप्ते, “किञ्चि च” इति निषेधे संयुक्ते च कृते कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे विभक्तिकार्यं च कृते तत्सिद्धिः । कृशः । एवमेव कृशधातोः इगुपधत्वात् के प्रत्यये क्त्वाद् गुणाभावे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । ज्ञः । जानातीति ज्ञः । ज्ञाधातोः “इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः” इति के, कस्येस्संज्ञायां लोपे च “आतो लोप इटि च” इत्यालोपे, संयोगे विभक्तिकार्यं च कृते ‘ज्ञः’ इति भवति । प्रियः । प्रीणातीति प्रियः, इत्यत्र प्रीधातोः “इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः” इति के प्रत्यये, कगते, “अचि श्नुधातुभ्रुवाम्” इति ह्यङि, अङो लोपे, संयोगे, विभक्तिकार्यं च कृते तत्सिद्धम् । किरः । किरतीति किरः इति विग्रहे कधातोः “इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः” इति के, कलोपे, क्त्वाद्गुणाभावे “अत इद्धातोः” इति इत्वे “उरण् रपरः” इति रपरत्वे संयोगे, विभक्तिकार्यं च कृते तत्सिद्धिः । आतश्चोपसर्गो इति । उपसर्गो उपपदे आदन्ताद्धातोः कः स्यादिति फलति । प्रज्ञः । प्रकर्षेण जानातीति प्रज्ञः । प्रोपसर्गात् ज्ञाधातोः “आतश्चोपसर्गो” इति के कगते क्त्वात् आर्धधातुकत्वाच्च “आतो लोप इटि च” इति आलोपे कृते, संयोगे विभक्तिकार्यं च कृते ‘प्रज्ञः’ इति रूपम् । सुगलः । सुष्ठु ग्लायतीति सुगलः इत्यत्र सुपूर्वकम्लैधातोः “आतश्चोपसर्गो” इति के, कलोपे, “आदेच उपदेशेऽस्मिति” इत्यैकारस्य आत्वे “आतो लोप इटि च” इत्याकारलोपे संयोगे विभक्तिकार्यं च कृते, ‘सुगलः’ इति रूपम् । गेहे क इति । “विभाषा ग्रहः” इत्यस्यापवादः । गृहम् । गृह्णाति धान्यादिकम् इति गृहम् । ग्रहधातोः “गेहे कः” इति के, कगते “ग्रहिज्यावयि” इति सम्प्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे, “पुगन्तलवूपधस्य च” इति गुणे प्राप्ते, “किञ्चि च” इति गुणनिषेधे, संयोगे, विभक्तिकार्यं च कृते ‘गृहम्’ इति रूपम् । कर्मण्यण् । कर्मण्युपपदे इति । “तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्” इत्यत्र तत्रेत्यनेनैवं लभ्यत इति भावः । कुम्भं करोतीति । अस्वपदो लौकिकविग्रहोऽयम् । “कुम्भ अस् कार” इत्यलौकिकविग्रहोऽयम् । “कुम्भ अस् कार” इत्यलौकिकविग्रहवाक्ये सुबुत्पत्तेः प्रागेव कारकशब्देन कृदन्तेन कुम्भ अस् इति षष्ठ्यन्तस्य समासः इति वक्ष्यते । कुम्भकारः । अत्र कुम्भ इति कर्मणि उपपदे कृधातोः “कर्मण्यण्” इति अणि, णगते, “अचो ङिति” इति वृद्धौ, “उरण् रपरः” इति रपरत्वे, कार इति जाते, “कुम्भ अस् कार” इत्यत्र “वतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक्सुबुत्पत्तेः” इति सुबुत्पत्तेः प्रागेव “उपपदमतिङ्” इति समासे समासत्वात् “कृत्तदित्समासाश्च” इति “कुम्भ अस् कार” इत्यस्य प्रातिपदिकत्वात् “सुषो धातुप्रातिपदिकयोः” इति असो लोपे, एकदेश-



आदन्ताडातोरनुपसर्गात्कर्मण्युपपदे कः स्यात् । अणोऽपवादः । आतो लोपः । गोदः । धनदः । कम्बलदः । अनुपसर्गे किम् ? गोसंदायः । “मूलविभुजादिभ्यः कः” मूलानि विभुजति मूलविभुजो रथः । आकृतिगणोऽयम् । महीध्रः । कुध्रः । चरेष्टः ३।२।१६ अधिकरणे उपपदे । कुरुचरः ॥ भिक्षासेनादायेषु च ३।२।१७ भिक्षाचरः । सेनाचरः । आदायेति ल्यबन्तम् । आदायचरः । कृजो हेतुताच्छ्रित्यानुलोम्येषु

विकृतन्यायेन समुदायात्सौ, रुत्वे विसर्गे च ‘कुम्भकारः’ इत्यस्य सिद्धिः । आतोऽनुपसर्गे इति । गोदः । गां ददातीति विग्रहे गो इति कर्मणि उपपदे “कर्मण्यण्” इति अणि प्राप्ते, तम्बाधित्वा “आतोऽनुपसर्गे कः” इति के, कलोपे, “उपपदमतिङ्” इति समासे, सुपो लुकि, ‘गोदा अ’ इति स्थिते “आतो लोप इटि च” इति आलोपे, संयोगे, विभक्तिकार्ये च ‘गोदः’ इति रूपम् । एवं धनं ददातीत्यत्र के धनदः । कम्बलं ददातीत्यत्र कम्बलोपपदे दाधातोः के, आतो लोपे च कम्बलदः इति च बोध्यम् । गोसन्दायः । अनुपसर्गे इत्युक्तत्वात् अत्र न कः, किन्तु “कर्मण्यण्” इति अणि, णगते, “आतो युक् चिण्कृतोः” इति युगागमे, उपपदसमासे सुपो लुकि, समुदायात्सौ, रुत्वे, विसर्गे च तत्सिद्धिः । मूलविभुजः । मूल इति कर्मण्युपपदे, समुपसर्गकभुजधातोः “मूलविभुजादिभ्यः कः” इति के, कलोपे, क्त्वात् गुणाभावे, उपपदसमासे, समासावयवकसुपो लुकि, समुदायात्सौ, रुत्वे विसर्गे च तत्सिद्धिः । महीध्रः । महीं धरतीति विग्रहे महीति कर्मण्युपपदे धधातोः “मूलविभुजादिभ्यः कः” इति के, कलोपे, क्त्वाद्गुणाभावे, उपपदसमासे समासावयवकसुपो लुकि, ‘मही धृ + अ’ इति जाते “इको यणचि” इति यणि, विभक्तिकार्ये च ‘महीध्रः’ इति रूपम् । एवमेव ‘कुध्रः’ इत्यत्रापि बोध्यम् । चरेष्ट इति । ट इति छेदः । अधिकरणे उपपदे इति शेषः । “अधिकरणे शेतेः” इत्यतस्तदनुष्ठेतिरिति भावः । कुरुचर इति । कुरुषु चरतीति, कुरुचरः । अत्र अधिकरणे कुरुषु इत्युपपदे चरधातोः “चरेष्टः” इति टप्रत्यये “चुट्” इति टस्थेत्संज्ञायां लोपे च कृते उपपदसमासे सुपो लुकि, समुदायात्सौ, रुत्वे विसर्गे च तत्सिद्धिः । भिक्षा सेनादायेषु चेति । ‘भिक्षा, सेना, आदाय एषु चोपपदेषु चरेष्टः स्यादित्यर्थः । भिक्षाचरः । भिक्षां चरतीति विग्रहः । अत्र भिक्षोपपदे चरधातोः “भिक्षासेनादायेषु च” इति टप्रत्यये, टलोपे, उपपदसमासे सुपो लुकि, समुदायात्सौ, रुत्वे विसर्गे च तत्सिद्धिः । एवं सेनां चरतीति सेनाचरः इत्यत्रापि बोध्यम् । सेनां प्रापयतीति तत्स्यार्थः । ल्यबन्तमिति । अत्र व्याख्यानमेव शरणम् । आदायचरः । आदायेत्युपपदे चरधातोः “भिक्षासेनादायेषु च” इति टप्रत्यये, टलोपे, उपपदसमासे सुपो लुकि, समुदायात्सौ, रुत्वे विसर्गे च तत्सिद्धिः । लब्धं द्रव्यं गृहीत्वा चरतीति तत्स्यार्थः । कृजो हेतुताच्छ्रित्येति । हेतुः—कारणम् । आनुलोम्यम्—आराध्यचित्तानुवर्तनम् । योत्ये ध्विति । कर्तुरेव प्रत्ययवाच्यत्वादिति भावः । व्याख्यानात् हेत्वादिषूपपदे ध्विति नार्हः ।

३।२।२० एषु धोत्येषु करोतेष्टः स्यात् ॥ अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णोष्णव्ययस्य ८।३।४६ अदुत्तरस्यानव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः स्यात् करोत्यादिषु परेषु । यशस्करी विद्या । श्राद्धकरः । वचनकरः ॥ एजेः खश् ३।२।२८ एयन्तादेजेः खश् स्यात् ॥ अरुद्धिषदजन्तस्य मुम् ६।३।६७ अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात् खिदन्ते परे न त्वव्ययस्य । शित्वाच्छवादिः । जनमेजयतीति जनमेजयः ॥ प्रियवशे वदः खच् ३।२।३८ प्रियंवदः । वशंवदः ॥

कर्मण्युपपदे इत्यपि द्रष्टव्यम् । “कुप्चोः” इति जिह्वामूलीयमाशङ्क्य आह—अतः कृकमीति । अतः इति पञ्चमी । “विसर्जनीयस्य सः” इति “नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्यस्य” इति चानुवर्तते । तदाह—अदुत्तरस्येत्यादिना यशस्करी विद्या । यशः करोतीति विग्रहे यश इति कर्मण्युपपदे, हेतुधोत्ये कृधातोः “कृजो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु” इत्यनेन टे प्रत्यये, टस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते, टगताकारस्य आर्धधातुकत्वात् “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे अकारे “उरण् रपरः” इति रपरत्वे च जाते ‘कर’ इति सम्पन्ने, ‘यशस् अस् कर’ इत्यलौकिकविग्रहे “उपपदमतिङ्” इति समासे, “कृत्तद्धितसमासाश्च” इति प्रातिपदिकत्वे “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति असो लुकि, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वस्य सत्वात्समुदायायात्सौ, तस्मिन् परे स्त्रीत्वविवक्षायां “टिड्ढाणञ्द्वयसज्दधनञ्” इत्यादिना टित्वाण्डीपि, अनुबन्धलोपे, “यच्चि भम्” इति भसंज्ञायाम् “यस्येति च” करगतरेफोत्तरवर्तिन अकारस्य लोपे, संयोगे कृते “हल्ङ्थाङ्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक् हल्” इति स् लोपे, यशसः सकारस्य “ससञुषोरुः” इति रुत्वे “खरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति विसर्गे, तस्य विसर्गस्य “कुप्चोः” इति जिह्वामूलीये प्राप्ते, तम्बाधित्वा “अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णोष्णव्ययस्य” इत्यनेन विसर्गस्य नित्यं सत्वे जाते ‘यशस्करी’ इति सिद्धम् । श्राद्धकरः । श्राद्धं करोति तच्छीलः इति विग्रहः । श्राद्धमिति कर्मण्युपपदे ताच्छील्यार्थे धोत्ये “कृजो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु” इति टप्रत्यये, टगते अस्य आर्धधातुकत्वादगुणे रपरे, उपपदसमासे, सुपो लुकि, समुदायात्सौ, रुत्वे विसर्गे च तरिसिद्धिः । एवं वचनं करोतीति विग्रहे आनुलोम्ये धोत्ये, टप्रत्यये कृते साधनिका ऊह्या । एजेः खश् । एजेरिति ण्यन्तस्य एङ्धातोर्ग्रहणम् । नत्विका निर्देशः, व्याख्यानादिति भावः । खकारशकारावितौ । कर्मण्युपपदे इत्यपि ज्ञेयम् । अरुद्धिषदजन्तस्य मुमिति । अरुस्, द्विषत्, अजन्त एषां समाहारद्वन्द्वात् षष्ठी । “अलुगुत्तरपदे” इत्यधिकारात् उत्तरपदे इति लभ्यते । “स्त्रित्यनव्ययस्य” इत्यतः स्त्रित्यनुवृत्तम् । स्त्रितः प्रत्ययस्वात्तदन्तविधिः । तदाह—खिदन्ते उत्तरपदे इति । जनमेजयः । जनमिति कर्मण्युपपदे एजि इति ण्यन्तधातोः “एजेः खश्” इति खशि, खस्य शस्य चेत्संज्ञायां लोपे च “तिङ्श्चिस्सार्वधातुकम्” इति खशोऽकारस्य सार्वधातुकसंज्ञायां तस्मिन् परे “कर्तरि शप्” इति शपि, शपयोरित्संज्ञायां लोपे

आत्ममाने खश्च ३।२।८३ स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात् ।  
चाणिनिः । पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितम्मन्यः । पण्डितमानी । अन्येभ्योऽपि  
दृश्यन्ते ३।२।९५ मनिन् कनिप् वनिप् विच् एते प्रत्यया धातोः स्युः । नेङ् वशि  
कृति ७।२।८ वशादेः कृत इण् न स्यात् । शृ हिंसायाम् । सुशर्मा । प्रातरित्वा ॥

च सप्तोऽकारस्य सार्वधातुकत्वात् एजेरिकारस्य गुणे, आयादेशे, उपपदसमासे, सुपो  
लुकि, 'जन एजय' इति सूते "अरुङ्घिषदजन्तस्य मुम्" इति खिदन्ते एजय इत्युत्त-  
रपदे अजन्तस्य जन इत्यस्य सुमागमे, उमि गते, मस्य अनुस्वारे परसवर्णे च कृते,  
समुदायात् विभक्तिकार्यं च कृते 'जनमेजयः' इति सिद्धम् । प्रियवशे वदः खच् । प्रिये वशे  
च कर्मण्युपपदे वद्धातोः खजित्यर्थः । प्रियम्बदः । प्रियं वदतीति प्रियमिति कर्मण्युपपदे  
वद्धातोः खच्चि, खचयोर्लोपे, उपपदसमासे सुपो लुकि, "अरुङ्घिषदजन्तस्य मुम्" इति  
खिदन्ते वद इत्युत्तरपदे पूर्वपदस्य प्रिय इत्यस्य मुमि, उमि गते, अनुस्वारे, परसवर्णे  
च कृते समुदायस्य विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । एवं वक्षं वदतीति 'वक्षंवदः' इत्यत्रापि  
बोधम् । आत्ममाने खश्चेति । आत्मनः-स्वस्य, मानः-मननम्, आत्ममानः । तदाह—  
स्वकर्मके मनने इति । पण्डितम्मन्यः । पण्डितमिति कर्मण्युपपदे, मन्धातोः "आत्ममाने  
खश्च" इति खच्चि, खचयोर्लिप्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते सप्तोऽकारस्य "तिङ्शित्सार्वधातु-  
कम्" इति सार्वधातुकसञ्ज्ञायां "दिवादिभ्यः श्यन्" इति श्यनि, शकारमकारयोरि-  
त्सञ्ज्ञायां लोपे च जाते, "अतो गुणे" इति पररूपे 'मन्य' इति जाते, "उपपदमतिङ्"  
इत्युपपदसमासे सुपो लुकि, "अरुङ्घिषदजन्तस्य मुम्" इति पूर्वपदस्य सुमागमे, उमि  
गते, मस्यानुस्वारे परसवर्णे च कृते, समुदायस्य विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धम् ।  
पण्डितमानी । आत्मानं पण्डितं मन्यते इत्यत्र कर्मण्युपपदे मन्धातोः "आत्ममाने  
खश्च" इति णिनि, णगते, "अत उपधायाः" इति मनोऽकारस्य वृद्धौ, उपपदसमासे,  
सुपो लुकि, विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते इति । "विजुपे वृन्दसि"  
"आतो मनिन् कनिव्वनिपश्च" इत्यधिकारे इवं सूत्रम् । मनिनि अन्त्यो नकार इत्,  
इकार उच्चारणार्थः । कनिपि वनिपि च पकार इत्, इकार उच्चारणार्थः । नेङ् वशि  
कृति । षष्ठ्यर्थे सप्तमी । वशा कृद्विशेष्यते । तदाह—वशादेरिति । सुशर्मा ।  
सुष्ठु शृणाति सुशर्मा इत्यत्र सुपूर्वकङ्धातोः "अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते" इति मनिनि,  
इनो लोपे, 'शृ मन्' इति जाते, मनिनः "आर्धधातुकं शेषः" इत्यार्धधातुकत्वात्  
"सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इति गुणे, "उरण् रपरः" इति रपरत्वे, "आर्धधातुकस्ये-  
ड्वलादौः" इति इटि प्राप्ते, "नेङ् वशि कृति" इत्यनेन निषिद्धे उपपदसमासे, समासस्वा-  
त्प्रातिपदिकत्वे सावागते, लोपे "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ" इति नान्तस्योपधाया  
कीर्तने, "ह्रस्ववाच्यः" इति सूत्रे, "नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य" इति नलोपे,  
'सुशर्मा' इति कम् । प्रातरित्वा । प्रातरित्युपपदे इण् धातोः "अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते"

विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत् ६।४।४१ अनुनासिकस्याऽऽत्स्यात् ॥ विजायत  
इति विजावा । ओण् अपनयने । अवावा । विच् । रुष रिष हिंसायाम् । रोट् । रेट् ।  
सुगण् ॥ किप् च ३।२।७६। अयमपि दृश्यते । उल्लासत् । पर्णध्वत् । वाहभ्रट् ॥

इति कनिपि, कस्य पस्य चेत्संज्ञायां लोपे च इकारे गते 'प्रातर् इ वन्' इति भूते  
“ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्” इति तुकि, उकि गते, क्त्वादन्त्यावयवे, उपपदसमासे  
सुपो लुकि, 'प्रातरित्वन्' इत्यस्य परे सौ अन उपधादीर्घे, सलोपे नलोपे च 'प्रातरित्वा'  
इति रूपम् । विड्वनोरनुनासिकस्येति । विड्वनोरिति सप्तमी । अनुनासिकस्य आदिति  
छेदः । विजावा । विपूर्वकजन्धातोः “अन्यभ्योऽपि दृश्यन्ते” इति वनिपि, इपि गते  
‘विजन् वन्’ इति भूते “विड्वनोरनुनासिकस्यात्” इति अनुनासिकस्य अनो नकारस्य  
आत्वे सर्वर्णदीर्घे ‘विजावन्’ इति जातेऽस्मात्सौ, “सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ” इति  
दीर्घे, सलोपे च ‘विजावा’ इति रूपम् । अवावा । ओण् अपनयने धातोः “अन्यभ्योऽपि  
दृश्यन्ते” इति वनिपि, धातोः ऋगते, वनिप इपि गते, ‘ओण् वन्’ इति स्थिते,  
‘विड्वनोरनुनासिकस्यात्’ इति ओणो नकारस्य आत्वे ‘ओ आ वन्’ इति जाते  
“एचोऽयवायावः” इत्यवादेने संयोगे ‘अवावन्’ इति कृदन्तप्रातिपदिकत्वात्सौ, उलोपे,  
“सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ” इति दीर्घे, “हल्ङ्याभ्यः” इति सलोपे, “नलोपः  
प्रातिपदिकान्तस्य” इति नलोपे, ‘अवावा’ इति रूपम् । राट् । रुष् हिंसायामिति धातोः  
“अन्यभ्योऽपि दृश्यन्ते” इति विचि, इचो लोपे, वस्य “आर्धधातुके शेषः” इत्यार्धधा-  
तुकसंज्ञायाम् “अपृक्त एकाल् प्रत्ययः” इति वस्य अपृक्तसंज्ञायां ‘वेरपृक्तस्य’ इति  
वलोपे, प्रत्ययलक्षणेन आर्धधातुके परे “पुगान्तलघूपधस्य च” इति लघूपधगुणे  
कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, सौ, उलोपे, “हल्ङ्याभ्यः” इति सलोपे “झल ङश्चोऽन्ते”  
इति वस्य इत्वे, ‘वावसाने’ इति वा टत्वे च कृते ‘रोट्’ इति । एवमेव रिष हिंसाया-  
मिति धातोर्विचि, रेट् । तथैव सुपूर्वकगणसंस्थाने धातोर्विचि—पुगण् । किप् चेति ।  
अयमपीति । सर्वधातुभ्यः सोपपदेभ्यश्च कृन्दसि लोके च किप् दृश्यते इत्यर्थः । उल्लासत् ।  
उल्लायाः कंसते इति विग्रहः । उल्ला इत्युपपदे कंस धातोः “किप् च” इति किपि,  
किपः सर्वापहारे, “अनिदितां हल उपधायाः किति” इति नलोपे, उपपदसमासे,  
समासावयवसुपो लुकि, समासत्वात्प्रातिपदिकत्वे सौ, उलोपे, “हल्ङ्याभ्यः” इति  
सलोपे, “वसुखंसुध्वंस्वनहुहां दः” इति घसः सकारस्य इत्वे, ‘वावसाने’ इति  
चत्वेन तकारे ‘उल्लासत्’ इति रूपम् । पर्णध्वत् । पर्णात् ध्वंसते इति विग्रहः । “किप्  
च” इति किपि, किपः सर्वापहारे, “अनिदितां हल उपधायाः किति” इति नलोपे,  
उपपदसमासे, सुपो लुकि, समुदायात्सौ, तस्य लोपे “वसुखंसुध्वंस्वनहुहां दः” इति  
सस्य इत्वे चत्वे च कृते ‘पर्णध्वत्’ इति रूपम् । वाहभ्रट् । वाहात् अरयते इति  
विग्रहः । वाह इत्युपपदे अभ् धातोः “किप् च” इति किपि, किपः सर्वापहारे, “अनि-

सुष्मज्ञानौ चित्तिस्तच्छरीर्ये ३।२।५५ अनात्मर्णे सुप्ति भक्तोर्षिनिः स्यात्,  
ताच्छरीर्ये वात्ये । उष्णभोजी ॥ मनः ३।२।५६ सुप्ति मन्यतेर्णिनिः स्यात् । दर्शनी-  
यमानी ॥ क्षित्यनन्ययस्य ६।३।६६ क्षिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः स्यात् । ततो  
मुम् । कालिम्न्या ॥ करसे यजः ३।२।५७ करसे उपपदे भूतार्थयजेर्णिनिः स्यात्  
कर्तरि । सोमेनेष्टवान् सोमयाजी । अग्निष्टोमयाजी ॥ दृशेः कनिष् ३।२।६४

द्वितीयं ह्युपधायाः द्विति” इति नलोपे, उपपदसमासे, सुपो लुकि, समुदायात्सौ,  
तस्य लोपे, “वक्ष्यन्नस्त्र०” इत्यादिना शस्य षत्वे तस्य “झलां जशोऽन्ते” इति ह्रस्वे,  
“वावसाने” इति टत्वे च कृते उक्तं रूपम् । सुप्यजाताविति । “सुपि स्थः” इत्यतः  
सुपीत्यनुवृत्तौ पुनः सुब्रह्मणमुपसर्गोऽपि विधानार्थम् । अन्यथा “आतोऽनुपसर्गो”  
इत्यत अनुपसर्गो इत्यनुवर्तते । तदध्वनयन्नुदाहरति-उष्णभोजी । उष्णं भोक्तुं शीलम्-  
स्यास्तीति उष्णमिति जातिभिन्ने कर्मण्युपपदे भुज् धातोः “सुप्यजातौ णिनिस्ता-  
च्छरीर्ये” इति णिनि, णगते आर्धधातुकसंज्ञायां “पुगन्तलधूपधस्य च”  
इति लवूपधगुणे, उपपदसमासे, सुपो लुकि, समुदायात्सौ, उगते, “सर्वनाम-  
स्थाने चासम्बुद्धौ” इत्युपधाया दीर्घत्वे “ह्रस्व्याभ्याम्” इति सलोपे, “नलोपः  
प्रातिपदिकान्तस्य” इति नलोपे, ‘उष्णभोजी’ इति रूपम् । मनः । दैवा-  
दिकस्यैव मनेर्ग्रहणम्, न तु तानादिकस्य बहुलग्रहणानुवृत्तेः । तदाह-सुपि  
मन्यतेरिति । दर्शनीयमानी । दर्शनीयमात्मानं मन्यते इत्यत्र दर्शनीयमिति  
कर्मण्युपपदे मन् धातोः “मनः” इति णिनि, णलोपे, “अत उपधायाः”  
इति उपधाबुद्धौ, उपपदसमासे सुपो लुकि, संयोगे च कृते ‘दर्शनीयमिति’  
इति भूते तस्मात्सौ, सलोपे, “सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ” इति नान्तस्योपधाया  
दीर्घत्वे “ह्रस्व्याभ्याम्” इति सलोपे, “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति नलोपे  
च कृते तत्सिद्धिः । क्षित्यनन्ययस्य । ह्रस्वः स्यादिति । “इको ह्रस्वोऽङ्यो गाल्  
वस्य” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । अत्र ह्रस्वश्रुत्या अच् इत्युपस्थितं दृष्टव्यम् ।  
उतो मुमिति । पूर्वं ह्रस्वे कृते ततो मुमित्त्वर्थः । कालिम्न्या । आत्मानं काली-  
मन्यते इत्यत्र कालीमिति कर्मण्युपपदे मन् धातोः “आत्माने सञ्च” इति खडि-  
कयोश्चिदंज्ञायां लोपे च कृते, “तिङ्शित्सार्वधनुकम्” इति सञ्चोऽङ्यस्य सार्ध-  
धातुकसंज्ञायाम् “दिवादिभ्यः स्यन्” इति स्यनि, शनयोश्चिदंज्ञायां लोपे च कृते,  
“अतो गुणे” इति पररूपत्वे उपपदसमासे सुपो लुकि, “स्त्वानन्ययस्य” इति पूर्व-  
पदस्य कालीत्यस्य ह्रस्वत्वे, “अर्धर्षिषद्वजन्तस्य मुम्” इति मुमि उमि गते, मन्मा-  
नुस्वारे परसर्गो च कृते, “कालिम्न्या” इति जाते, स्त्रीत्वविवक्षायाम् “अन्तर्गतज्ञा”  
इति टापि, टप्रयोगश्चिदंज्ञायां लोपे च कृते “अक्कः सर्वर्णे, दीर्घः” इति सर्वर्णोर्दी-  
र्घत्वात्सौ, उगते, “ह्रस्व्याभ्याम्” इति सलोपे च तत्सिद्धिः । करसे यज इति । सोमे-

कर्मणि भूते । पारं दृष्ट्वान् पारदृष्ट्वा ॥ राजनि युधिकृञः ३।२।६५ कनिष्यात् ।  
युधिरन्तर्भावित्त्वर्थः । राजानं योधितवान् राजयुध्वा । राजकृत्वा ॥ सह च ३।  
२।६६ कर्मणोति निवृत्तम् । सह योधितवान् सहयुध्वा । सहकृत्वा ॥ सप्तम्यां  
जनेर्ङः ३।२।६७ तत्पुरुषे कृति बहुलम् ६।३।१४ ङेरलुक् स्यात् । सरसिजम्,

नेति । सोमाख्यलताविशेषरसेन यागं कृतवानित्यर्थः । सोमयाजी । सोमेनेति करणे  
उपपदे भूतार्थे कर्तर्यर्थं यज्धातोर्णिनि प्रत्यये, णगते “अत उपधायाः” इति वृद्धौ,  
उपपदसमासे सुपो लुकि, ‘सोमयाजिन्’ इति भूते तस्मात्सौ, उलोपे, “सौ च” इति  
नान्तस्योपधाया दीर्घत्वे, “हल्ङ्याढभ्यः” इति सलोपे, “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य”  
इति नलोपे च कृते “सोमयाजी” इति सिद्धम् । एवमेव-‘अग्निष्टोमयाजी’ इत्यत्र  
कोष्यम् । अग्निष्टोमाख्ययागेन अपूर्वं भावितवानित्यर्थः । दृशेः कनिषिति । “आतो  
मनिन्वकनिव्वनिपश्च” “अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते” इत्येवं कनिपि सिद्धे तत्सहचरितं-  
मनिनादिन्यावृत्त्यर्थमिदं, सोपपदाणादिबाधनार्थञ्च । निष्ठा तु भवत्येव, सोपपदप्रत्यय-  
स्येवात्र पुनः किङ्ग्रहणेन निवृत्तेः । पारदृष्ट्वा । पारमिति कर्मण्युपपदे दृशधातोः “दृशेः  
कनिप्” इति कनिपि, कस्य पस्य इकारस्य चेत्यंजायां लोपे च कृते कित्वाद्गुणाभावे,  
‘दृश्वन्’ इति भूते, कर्मणा-पारमित्यनेन सह उपपदसमासे सुपो लुकि, समुदायात्सौ  
उलोपे “सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ” इति उपधादीर्घे, सलोपे, नलोपे च “पारदृश्वान्”  
इति रूपम् । राजनि युधिकृञ इति । युधि कृञ् अनयोः समाहारद्वन्द्वत्वात्प्रथमी । कनिप्  
स्यादिति । राजनि कर्मण्युपपदे भूतार्थाद्युधेः कृञश्च कनिप् स्यादित्यर्थः । राजयुध्वा ।  
राजानमिति कर्मण्युपपदे युध् धातोः “राजनि युधिकृञः” इति कनिपि, अनुबन्धलोपे,  
कित्वाद्गुणाभावे उपपदसमासे सुपो लुकि, “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति नलोपे,  
समुदायात्सौ, विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः । राजकृत्वा । राजानं कृतवानित्यर्थः । अत्र  
कृञ्धातोः कनिपि, अनुबन्धलोपे, “ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्” इति तुगागमे कृत्वञ्  
इति जाते, राजानमिति कर्मणा उपपदसमासे सुपो लुकि विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः ।  
सहे चेति । सह उपपदे युधिकृञ्म्यां कनिषित्यर्थः । सहयुध्वा । सहोपपदे युध्धातोः  
“सहे च” इति कनिपि, अनुबन्धलोपे, कित्वाद्गुणाभावे, उपपदसमासे, समुदायात्सौ,  
उलोपे, “सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ” इति उपधादीर्घे, “हल्ङ्याढभ्यः” इति सलोपे,  
“नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति नलोपे, ‘सहयुध्वा’ इति रूपम् । सहकृत्वा । सह  
कृतवान् इति ‘सहकृत्वा’ अत्र सहोपपदे कृधातोः “सहे च” इति कनिपि, अनुबन्ध-  
लोपे, “ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्” इति तुगागमे, उकि गते, ‘सहकृत्वञ्’ इति भूते  
तस्मात्सौ, विभक्तिकार्ये च कृते उक्तरूपस्य सिद्धिः । सप्तम्यां जनेर्ङ इति । सप्तम्यन्ते  
उपपदे जनेः भूतार्थादि इत्यर्थः । तत्पुरुषे कृतीति । तत्पुरुषे सप्तम्यां बहुलमलुक् स्यात्  
कृदन्ते उत्तरपदे संज्ञायामित्यर्थः । सरसिजम् । सरसि जातम् । सरसिजम्, अत्र सप्तम्य-

सरोजम् ॥ उपसर्गे च संज्ञायाम् ३।२।६६ 'प्रजा स्यात्सन्ततौ जने' ॥ क्त-  
वत् निष्ठा १।१।२६ एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः ॥ निष्ठा ३।१।१०२ भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठः  
स्यात् । तत्र "तयोरेव" इति भावकर्मणोः कः । "कर्तारि कृत्" इति कर्तरि क्वतुः ।  
उक्तावितौ । स्नातं मया । स्तुतस्त्वया विष्णुः । विश्वं कृतवान् विष्णुः ॥ रदाभ्यां  
निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ८।२।४२ रदाभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात् निष्ठा-

न्ते सरसि इत्युपपदे जनूधातोः "सप्तम्यां जनेर्दः" इति डे, "चुट्" इति डस्येत्संज्ञायां  
लोपे च कृते अइत्यवशिष्टे, द्वित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपे, उपपदसमासे, "कृत्तद्धित-  
समासाश्च" इति प्रातिपदिकसंज्ञायां "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" इति सप्तम्याः-डेलोपे  
प्राप्ते, "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" इति डेरलुकि, एकदेशविकृतन्यायेन समुदायस्य प्रातिप-  
दिकत्वासौ, "अतोऽम्" इति सोरमि, "अभि पूर्वः" इति पूर्वरूपे 'सरसिजम्' इति रूपम् ।  
"तत्पुरुषे कृति बहुलम्" इति बहुलग्रहणात् "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" इति सप्त-  
म्याः-डेलुकि च, सरस शब्दावयवस्य सस्य रूपे, उत्वे, गुणे च 'सरोजम्' इति । उपस-  
र्गे च संज्ञायामिति । "जनेर्दः" इति शेषः, संज्ञायामिति समुदायोपाधिः । प्रजा । प्रोपसर्ग-  
कजनूधातोर्दप्रत्यये, "चुट्" इति डस्येत्संज्ञायां "तस्य लोपः" इति लोपे च कृते  
द्वित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपे, "अजाद्यतष्टाप्" इति टापि, टस्य पस्य चेत्संज्ञायां  
लोपे च "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घे, सौ, उलोपे, "हल्ङ्याभ्यः" इति सलोपे  
च कृते 'प्रजा' इति रूपम् । क्तवत् निष्ठा । क्त, क्वतु अनयोर्द्वन्द्वः । निष्ठेति  
प्रत्येकाभिप्रायमेकवचनम् । निष्ठा । "भूते" इति "धातोः" इति चाधिकृतम् । तदा-  
ह-भूतार्थेत्यादि । भावकर्मणोः क इति । तथा च कप्रत्ययविषये कर्तरीति न सम्ब-  
ध्यते इति भावः । कर्तरि क्वतुरिति । कृत्यक्तखलर्थानामेव भावकर्मणोर्विधानादिति  
भावः । स्नातं मया । स्नाधातोः "निष्ठा" इति निष्ठाप्रत्यये प्राप्ते, का नाम निष्ठा  
इति जिज्ञासायां "क्तवत् निष्ठा" इति निष्ठासंज्ञा क्तवत्वोरिति उभयोः प्राप्तौ,  
"तयोरेव कृत्यक्तखलार्थाः" इति भावे कप्रत्यये कृते, कस्येत्संज्ञायां लोपे च औत्सर्गिक-  
मेकवचने क्लीबत्वे च तत्सिद्धिः । मया इत्यत्र कर्त्रनभिहितत्वात्तृतीया । स्तुतस्त्वया  
विष्णुः । स्तुधातोः "तयोरेव कृत्यक्तखलार्थाः" इति कर्मणि, "निष्ठा" इत्यनेन क्ते,  
कलोपे, क्तिवाद्गुणामावे, "स्तुतः" इति । विश्वं कृतवान् विष्णुः । अत्र कृधातोः "कर्तरि  
कृत्" इति कर्तरि, "निष्ठा" इत्यनेन क्वतुप्रत्यये, कस्येत्संज्ञायां लोपे च क्वतुग-  
तोकारस्यापि लोपे, 'तवत्' इत्यवशिष्टे तस्यार्धधातुक्त्वात् गुणे प्राप्ते "क्विति च"  
इति तस्य निषेधे, 'कृतवत्' इति भूते "कृत्तद्धितसमासाश्च" इति प्रातिपदिकसंज्ञायां  
सौ, उलोपे, "उगिदचां सर्वनामस्थाने धातोः" इति लुमि, उमि गते, मित्वादन्याच-  
परे, "अवसन्तस्य चाधातोः" इत्युपधाया दीर्घे, "हल्ङ्याभ्यः" इति सलोपे,  
"संयोगान्तस्य लोपः" इति तलोपे 'कृतवान्' इति सम्प्रजम् । रदाभ्यां निष्ठातो नः

पेक्षया पूर्वस्य धातोर्दृश्य च । शृ हिसायाम् । ऋत इत् । रपरः । णत्वंम् । शीर्णः ।  
मिन्नः । छिन्नः । संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ८।२।४३ निष्ठातस्य नः स्यात् ।  
द्राणः । ग्लानः ॥ त्वादिभ्यः ८।२।४४ एकविंशतेर्लूञादिभ्यः प्राग्वत् । लूनः ।  
ज्या धातुः । “ग्रहिज्या” इति सम्प्रसारणम् ॥ हलः ६।४।२ अङ्गावयवाद्बलः परं  
यत्सम्प्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः स्यात् । जीनः ॥ ओदितश्च ८।२।४५ भुजो भुग्नः ।

इति । रदाभ्यामित्यकारावुच्चारणार्थौ । तदाह—रेफदकाराभ्यामिति । निष्ठायाः त्,  
निष्ठात्, तस्य निष्ठातः इति विग्रहः । तदाह—निष्ठातस्येति । निष्ठातकारस्येत्यर्थः ।  
नः स्यादिति । नकारः स्यादित्यर्थः । सूत्रे न इति प्रथमान्तम् । अकार उच्चारणार्थः ।  
दकारस्य चेति । नकार इत्यनुषज्यते । शीर्णः । शृहिसायामिति धातोः “तयोरेव कृत्य-  
क्त्वल्लयाः” इति कर्मणि, “निष्ठा” इत्यनेन क्ते, कलोपे, किद्वागुणाभावे, “ऋत  
इद्धातोः” इति ऋकारस्य इत्वे “उरण् रपरः” इति रपरत्वे “हलि च” इति दीर्घं  
‘शीर्त’ इति जाते, “रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः” इति तकारस्य नकारे  
“अट्कुप्वाङ्नुम्व्यावायेऽपि” इति नस्य णत्वे, विभक्तिकार्यं च कृते तस्सिद्धिः । मिन्नः ।  
मिद्धातोः “निष्ठा” इति क्ते, कलोपे, “रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः” इति निष्ठा-  
तस्य मिदो दस्य च नत्वे, किद्वागुणाभावे विभक्तिकार्यं च तस्सिद्धिः । एवं छिद्धातोः  
क्ते, कलोपे, उभयत्र नकारे च ‘छिन्नः’ इति बोध्यम् । संयोगादेः । निष्ठातस्य नः स्या-  
दिति । शेषपूरणमिदम् । द्राणः । द्राधातोः “निष्ठा” इति क्ते, कलोपे, “संयोगादेरातो-  
धातोर्यण्वतः” इति निष्ठातस्य नत्वे, नस्य णत्वे, विभक्तिकार्यं च कृते ‘द्राणः’ इति  
रूपम् । ग्लानः । ग्लंघातोः “निष्ठा” इति क्ते, कलोपे, “आदेच उपदेशेऽशिति” इति  
ग्लैधातोरेच आत्वे, “संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः” इति तस्य नत्वे, विभक्तिकार्यं च  
कृते ‘ग्लानः’ इति रूपम् । त्वादिभ्यः । एकविंशतेरिति । ऋयादिषु प्वादयो द्वाविंशतिः,  
तेषु आद्यं पूजं विहाय त्वादिभ्य एकविंशरित्यर्थः । लूनः । लूञ् छेदने धातोः “निष्ठा”  
इति क्ते, कलोपे, “त्वादिभ्यः” इति निष्ठातकारस्य नत्वे, विभक्तिकार्यं च तस्सिद्धिः ।  
हलः । दिग्योगे पञ्चम्येषा । हलः परस्यैति लभ्यते । “सम्प्रसारणस्य” इति सुत्रमनु-  
वर्तते । अहस्येति कृतमिहानुवृत्तमावर्त्यते । एकमवयवपष्ठयन्तं हल इत्यत्रान्वेति,  
अङ्गावयवाद्बल इति लभ्यते । द्वितीयन्तु स्थानपष्ठयन्तं सम्प्रसारणेन विशेष्यते ।  
तदन्तविधिः । “ढ्रलोपे” इत्यतो दीर्घ इत्यनुवर्तते । तदाह—पञ्चावयवादित्यादिना ।  
जीनः । ज्या वयोहानौ, इति धातोः “निष्ठा” इति क्ते प्रत्यये कलोपे, “ग्रहिज्याव-  
यिव्यधि” इति सम्प्रसारणे, “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे “हलः” इति जातसम्प्र-  
सारणस्य इकारस्य दीर्घं “त्वादिभ्यः” इति निष्ठातस्य नत्वे, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे,  
सौ, उगते, सस्य रूढे, रेफस्य विसर्गत्वे च ‘जीनः’ इति रूपम् । ओदितश्च । ओकारेतो  
धातोः परस्य निष्ठातस्य नत्वमित्यर्थः । भुग्नः । भुजो धातोरोकारस्येत्यंशायां लोपे



दुष्प्रेषिव । उच्छ्रूतः ॥ शुषः कः ५२।५१ निष्ठातस्य कः स्यात् । शुष्कः ॥  
पचो वः ५२।५२ पकः । ज्ञै हर्षक्षये । क्षायो मः ५२।५३ क्षामः ॥ निष्ठायां  
सेटि ६।४।५२ खेर्लोपः । भावितः । भावितवान् । दृढ हिंसायाम् ॥ दृढः स्थूल-  
बलयोः ७।२।२० स्थूले बलवति च निपात्यते ॥ दधातेर्हिः ७।४।४२ तादौ

च, तस्मात् “निष्ठा” इति क्तकवतोः प्राप्तयोः “तयोरेव कृत्यक्तखलर्याः” इति कर्मणि  
क्तप्रत्यये, कलोपे, “ओदितश्च” इति निष्ठातकारस्य नत्वे, “पूर्वत्रासिद्धम्” इति  
तस्यासिद्धत्वात् “चोः कुः” इति जकारस्य कुत्वेन गकारे कृत्वे, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिक-  
कत्वेन सौ, उलोपे, सस्य रुत्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च तस्सिद्धिः । उच्छ्रूतः । उदुपसर्गकट्ट-  
ओशिवधातोः “निष्ठा” इति क्तप्रत्यये, कलोपे, “आदिर्भिदुश्चः” इति टोरिस्सञ्ज्ञायां  
लोपे च “उपदेशेऽजनुनासिक इत्” इति ओकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च “शिव त” इति  
स्थिते “ओदितश्च” इति तकारस्य नत्वे, “पूर्वत्रासिद्धम्” इति तस्यासिद्धत्वात्  
“वचिस्त्वपियज्ञादीनां किति” इति सम्प्रसारणे, “सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपे “शु  
न” इति भूते “हलः” इति सम्प्रसारणस्य दीर्घे “श्वीदितः” इति ह्रस्वगमाभावे,  
“क्षश्छोटि” इति छत्वे, उदः तकारस्य रुच्छ्वेन चकारे, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, सौ,  
उलोपे, सस्य रुत्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च “उच्छ्रूतः” इति रूपम् । शुषः क इति । शुषः  
परस्य निष्ठातस्य कः स्यादिति फलितम् । शुष्कः । शुषधातोः “निष्ठा” इति क्ते,  
कलोपे, “शुषः कः” इति तस्य क आदेशे विभक्तिकार्यं च तस्सिद्धिः । पचो व इति ।  
पचेः परस्य निष्ठातस्य वः स्यादित्यर्थः । पक्वः । पचधातोः “निष्ठा” इति क्तप्रत्यये,  
कलोपे, “पचो वः” इति पचः परस्य निष्ठातस्य वादेशे “पूर्वत्रासिद्धम्” इति वादेश-  
स्यासिद्धत्वेन श्लपरत्वात् “चोः कुः” इति चस्य कत्वे, विभक्तिकार्यं च “पकः” इति ।  
क्षामो म इति । क्षै.वये इत्यस्मात्परस्य निष्ठातस्य मः स्यादित्यर्थः । क्षामः । क्षै.वये इत्यस्मा-  
द्भातोः “निष्ठा” इत्यनेन क्ते प्रत्यये, कलोपे, “आदेच उपदेशेऽजिति” इति क्षे धातोरेचः  
आत्वे, “क्षायो मः” इति निष्ठातस्य आदेशे, विभक्तिकार्यं च कृते “क्षामः” इति रूपम् ।  
निष्ठायां सेटि । खेर्लोपः । शेषपूरणमिदम् । “जेरिति” इत्यतो णेरिति “आतो लोपः”  
इत्यस्माल्लोप इति चानुवर्तते इति भावः । ‘अनिटि’ इति निषेधादप्राप्ते आरम्भः ।  
भावितः, भावितवान् । भूधातोः “हेतुमति च” इति णौ, णलोपे, “अचो ङिति”  
इति भूधातोर्ह्रस्वौ, “एञोऽयवायावः” इत्यावादेशे, “भावि” इति जाते, “सनाद्यन्ता  
धातवः” इति धातुसंज्ञायाम्, तस्मात् “निष्ठा” इति कर्मणि क्ते, कर्तरि च क्तवतौ  
कृते, कलोपे, “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकसंज्ञायाम् “आर्धधातुकस्येड्वलदेः”  
इति ह्रस्वगमे, ङगते, “निष्ठायां सेटि” इति णिलोपे, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे विभ-  
क्तिकार्यं च कृते तस्सिद्धिः । दृढः स्थूलबलयोरिति । बलशब्दः अर्शभाष्यजन्तः बलवत्पक्षः  
बलवत्त्ववति चेति । दृढः । दृढ धातोः “निष्ठा” इति क्ते, कलोपे, अत्र ह्रस्वधातो

किति । हितम् ॥ दो दद्वोः ॥ ३।२।१०६ कसुश्च ३।२।१०७ लिटः कानच् कसुश्च वा स्तः । “तङानावात्मनेपदम्” । चक्राणः । म्वोश्च ३।२।१०८ । मान्तस्य धातोर्नत्वं स्यात् म्वोः परतः । जगन्वान् ॥ लिटः शतृशानच्चावप्रथमा-समानाधिकरणौ ३।२।१०९ अप्रथमान्तेन समानाधिकरणौ लट एतौ वा स्तः ।

निष्ठातकारस्य इत्वं हलोपश्च निपात्यते, तेन इड इति जाते, कृदन्तत्वाध्यातिपदिकत्वे सौ, उलोपे, सस्य रुत्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च ‘इडः’ इति । दधातेहिः । तादौ कितीति । शेषपूरणमिदम् । “धातिस्वति” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । हितम् । कुधाञ्—धारणशेषणयोः, इति धातोरनुबन्धलोपे, धाद्व्यवशिष्टे, तस्मात् “निष्ठा” इति क्ते, कलोपे, ‘धा त’ इति भूते, “दधातेहिः” इत्यनेन धा इत्यस्य स्थाने हि आदेशे, कृदन्तत्वाध्यातिपदिकत्वे, सौ, “अतोऽम्” इति सोरमि, “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपे, “हितम्” इति सिद्धम् । दो दद्वोः । द इति षष्ठ्यन्तम् । तदाह—रा इत्यस्येति । दश् इति षष्ठ्यदः । तदाह—रश्च स्यादिति । तवर्गद्वितीयान्तोऽयमादेशः । तादौ कितीति । ति कितीत्यनुवृत्तेरिति भावः । चर्त्वमिति । “स्वरि च” इति यकारस्य तकार इत्यर्थः । दत्तः । कुदाञ् दाने धातुः, तस्यानुबन्धलोपे कृते, तस्मात्—दा इत्यस्मात्, “निष्ठा” इति क्तप्रत्यये, कस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते, “दो दद्वोः” इति दा इत्यस्य स्थाने दश् इत्यादेशे कृते “स्वरि च” इति यस्य चर्त्वेन तकारे ‘दत्त’ इति जाते तस्मात्सौ, उगते, सस्य रुत्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च कृते ‘दत्तः’ इति रूपम् । लिटः कामज्वेति । “छन्दसि लिट्” “लिटः कानज्वा” “कसुश्च” ग्रीणि इमानि सूत्राणि छन्दसि भूते च । चक्राणः । कृधातोः लिटि, “लिटः कानज्वा” इति लिटो लः स्थाने कानचि, कस्य चस्य चेत्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते ‘कृ आन’ इति जाते “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे, “पूर्वोऽभ्यासः” इति अभ्याससञ्ज्ञायां “उरत्” इति अभ्यासऋवर्णस्य अत्वे, “उरण् रपरः” इति रप-रत्वे, ‘कर् कृ आन’ इति जाते, “हलादिः शेषः” इति रलोपे, “कुहोरश्चुः” इति अभ्याससञ्ज्ञकस्य चत्वे “इको यणचि” इति षणि, कृदन्तत्वाध्यातिपदिकत्वे, सौ, उलोपे, रुत्वे विसर्गे च तत्सिद्धिः । जगन्वान् । गम् धातोः लिटि, “कसुश्च” इति लिटो लः स्थाने कसौ, कस्य उकारस्य चेत्सञ्ज्ञायां लोपे च कृते ‘गम् वस्’ इति भूते “लिटि धातोरनभ्यासस्य” इति द्वित्वे, अभ्याससञ्ज्ञायां “हलादिः शेषः” इति गलोपे, “कुहोरश्चुः” इति गस्य जकारे ‘जगम् वस्’ इति जाते, “म्वोश्च” इति मस्य नत्वे, कृदन्तत्वाध्यातिपदिकत्वे तस्मात्सौ, उलोपे, “उगिद्वां सर्वनामस्थानेऽधातोः” इति जुमि, उमि गते, मिद्वादन्त्यादयः परे जाते ‘जगन्वनस्’ इति भूते, “सान्तमहतः संवीगस्य” इति सान्तसंयोगस्योपधाया दीर्घे “हलङ्वाभ्यासः” इति सलोपे, “संयोगान्तस्य लोपः” इति सलोपे, संवीगान्तस्य लोपस्य वसिद्धत्वात् नलोपौभावे ‘जगन्वान्’ इति

शंवादिः । पचन्तं चैत्रं पश्य ॥ आने मुक् ७।२।८२ अदन्ताङ्गस्य मुगागमः स्या-  
दाने परे ॥ पचमानं चैत्रं पश्य । लङित्यनुवर्तमाने पुनर्लङ्ग्रहणात्प्रथमासमानाधिक-  
रणेऽपि क्वचित् । सन् द्विजः ॥ विदेः शतुर्वसुः ७।१। ६ वेतेः परस्य शतुर्वसु-

रूपम् । लटः शतृशानचाविति । “वर्तमाने लट्” इति पूर्वसूत्रविहितस्यैव एतौ शतृशा-  
नचौ । “अनन्तरस्य” इति न्यायादिति “वर्तमानसामीप्ये” इत्यादिभाष्ये स्पष्टम् ।  
शतृप्रत्यये शकारश्चकारावितौ । पचन्तं चैत्रं पश्येति । पच् धातोः “वर्तमाने लट्” इति  
लटि, “लटः शतृशानचावप्रथमाऽसमानाधिकरणे” इति लटो लः स्थाने शतृ आदेशे  
शकारस्य ऋकारस्य चेत्संज्ञायां लोपे च “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति शित्वात्सार्व-  
धातुकसंज्ञायां “कर्तरि शप्” इति शपि, शपयोरित्संज्ञायां लोपे च कृते, ‘पच् अ अत्’  
इति भूते, “अतो गुणे” इति पररूपे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे द्वितीयैकवचनविवचा-  
याम् अमि, “उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः” इति नुमि, उमि गते, मित्वादन्याचः  
परे जाते, तस्यानुस्वारे परसवर्णे च कृते, मिलित्वा ‘पचन्तम्’ इति रूपम् । आने  
मुगिति । “अङ्गस्य” इत्यधिकृतम् । “अतो येयः” इति पूर्वसूत्रादनुवृत्तेन षष्ठ्या विपरि-  
णतेन अता विशेष्यते । तदन्तविधिः । तदाह—अदन्तस्येति । मुकि ककारः इत्, उकार  
उच्चारणार्थः, कित्वादन्यावयवः । पचमानं चैत्रं पश्य । पच् धातोः “वर्तमाने लट्”  
इति लटि, “लटः शतृशानचावप्रथमाऽसमानाधिकरणे” इति लटो लः स्थाने शानचि,  
शचयोरित्संज्ञायां लोपे च कृते, शित्वात् “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकसंज्ञायां  
“कर्तरि शप्” इति शपि, शपयोरित्संज्ञायां लोपे च कृते ‘पच् अ आन’ इति भूते  
“आने मुक्” इति ‘पच्’ इत्यदन्ताङ्गस्य मुगागमे उकि गते, कित्वादन्यावयवे जाते  
संयोगे विभक्तिकार्ये च कृते ‘पचमानम्’ इति रूपम् । अनुवर्तमाने इति । “वर्तमाने  
लट्” इति पूर्वसूत्रादनुवृत्तस्य लङित्यस्य षष्ठ्या विपरिणामेन उक्तार्थलाभे सतीत्यर्थः ।  
अप्रथमेति । सूत्राच्चरानारूढस्यापि लाभार्थमित्यर्थः । सन् द्विजः । अस्—मुवि धातोः  
“वर्तमाने लट्” इति लटि, “लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे” इत्यनेन  
प्रथमासमानाधिकरणेऽपि लटो लः स्थाने शतृप्रत्यये, शपि, “अदिप्रभृतिभ्यः  
शपः” इति शपो लुकि, ‘अस्—अत्’ इति जाते “सार्वधातुकमपित्” इति अतः सा-  
र्वधातुकस्य शित्वात् “रनसोरल्लोपः” इति असोऽकारस्य लोपे, कृदन्तत्वात्प्रातिप-  
दिकत्वे सौ, उलोपे, “उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः” इति नुमि, उमि गते, मित्वा-  
दन्यादचः परे जाते ‘सन्त् स्’ इति भूते “हल्ङ्याभ्यः” इति सलोपे, “संयोगा-  
न्तस्य लोपः” इति तलोपे ‘सन्’ इति रूपम् । विदेः शतुर्वसुः । वेतेरिति । ‘विद् ज्ञाने’  
इति लुग्विकरणस्यैव ग्रहणम्, शतुः परस्मैपदित्वात् विद्यतेर्विन्शेऽस्त्रामनेपदित्वात् ।  
वा स्यादिति । “तुकोस्तातङ्” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । विद्वान् । विद् धातो-  
र्यङः क्षतरि, तस्थाने “विदेः शतुर्वसुः” इति शतृस्थाने वसुरादेशे उगते, ‘विद्स्’ इति

सदेशो वा स्नात् । विदन्, विद्वान् ॥ तौ सत् ३।२।१२७ तौ शतृशानचौ सत्संज्ञौ  
स्तः ॥ लृटः सद्वा ३।३।१४ व्यवस्थितविभाषेयम् । तेनाप्रथमासामानाधिकरण्ये  
प्रत्ययोत्तरपदयोः सम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम् । करिष्यन्तम् । करिष्यमाणं पश्य ॥  
आक्रेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ३।२।१३४ क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः  
प्रत्ययास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः ॥ तृन् ३।२।१३५ कर्ता कटान् ॥ जल्पमि-  
जाते, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे सौ, उलोपे, “उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः” इति  
नुमि, उमि गते, मित्वादन्याचः परे “अस्वसन्तस्य चाऽधातोः” इत्युपधाया दीर्घे  
“हल्ङ्याभ्यः” इति सुलोपे, “संयोगान्तस्य लोपः” इति सलोपे ‘विद्वान्’ इति  
रूपम् । विदन् । विदो लटि, लटः शतरि, अनुबन्धलोपे, शपि, शपो लुकि, ‘विदत्’  
इति भूते तस्मात्सौ उलोपे, “उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः” इति नुमि, उमि गते,  
मित्वादन्याचः परे “हल्ङ्याभ्यः” इति सलोपे, “संयोगान्तस्य लोपः” इति द्वि-  
तीयसकारस्य लोपे ‘विदन्’ इति रूपम् । तौ सत् । “लटः शतृशानचौ” इति सूत्रो-  
पाचौ शतृशानचौ तच्छब्दः परामृशति तदाह—तौ शतृशानचाविति । लटः सद्वा ।  
लृटः शतृशानचौ वा स्त इत्यर्थः । व्यवस्थितेति । व्याख्यानादिति भावः । करिष्यन्तम् ।  
कृधातोः “लृट् शेषे च” इति लृटि, लृटो लः स्थाने “लृटः सद्वा” इति “तौ सत्”  
इति सत्संज्ञकौ, शतृशानचौ प्राप्तौ, तयोर्मध्ये शतरि कृते, अनुबन्धलोपे, ‘कृ अत्’  
इति भूते “स्यतासी लृटोः” इति स्ये, “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकसंज्ञायाम्  
“आर्धधातुकस्येद्वलादेः” इति इडागमे, कृ इत्यस्य गुणे रपरि, पत्वे, “अतो गुणे”  
इति पररूपे ‘करिष्यत्’ इति भूते, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, अमि तस्य सर्वनामस्थान-  
त्वात् अङ्गस्य नुमि उमि गते मित्वादन्याचः परे तस्यानुस्वारे, परसवर्णे च कृते,  
‘करिष्यन्तम्’ इति रूपम् । करिष्यमाणम् । कृधातोः लृटि, लृटो लः स्थाने “तौ सत्”  
इति शानचि, शचयोलोपि, स्ये, इटि, गुणे, रपरि, पत्वे, ‘करिष्य—आन’ इति भूते  
“आने मुक्” इति मुगागमे, कित्वादन्यावयवे, मिलित्वा ‘करिष्यमाण’ इति जाते  
नस्य णत्वे विभक्तिकार्यं च कृते “करिष्यमाणम्” इति रूपम् । आक्रेस्तच्छीलतद्धर्म-  
तत्साधुकारिषु । आङ्—अभिविधौ । तदाह—क्विपमभिव्याप्येति । “आजभासधुर्विधु-  
तोर्जिपृजुप्रावस्तुवः क्विप्” इति सूत्रमभिव्याप्येति यावत् । तत्र ताच्छीलिक्काः  
प्रत्ययाः प्रायेण सोपसर्गभ्यो नेति “आढ्यसुभग” इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । तच्छी-  
लः—तत्स्वभावः, फलमनपेक्ष्य स्वभावादेव प्रवर्तमान इति यावत् । सः धर्मः यस्य  
सः तद्धर्मा । स्वधर्मोऽयमिति प्रवर्तमानः । तस्य धात्वर्थस्य साधुकर्ता—तत्साधु-  
कारी । तृन् । धातोस्तृन् प्रत्ययः स्यात् तच्छीलादिषु कर्तृषु । कर्ता कटान् । करोति  
तच्छील इत्यस्मिन्नर्थे कृधातोः “तृन्” इति तृनि, नलोपे, “आर्धधातुकं शेषः”  
इत्यार्धधातुकत्वे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे अकारे, “उरम् रपरः” इति

कुट्टुष्टवृद्धः षाकन् ३।२।१२५ षः प्रत्ययस्य १।३।६ प्रत्ययस्यादिः ष  
इत्सङ्गः स्यात् । जल्पाकः । मिश्राकः । कुट्टाकः । लुण्ठाकः । वराकः । वराकी ॥  
सनाशंसमिच्छ उः ३।२।१६८ विकीर्षुः । आशंसुः । भित्तुः ॥ आजमासु-

रपरत्वे, 'कर्तु' इति भूते "कृच्छ्रितसमासाश्च" इति प्रातिपदिकत्वे सौ, उलोपे,  
"सुदनपुंसकस्य" इति सः सर्वनामस्थानसंज्ञायां "ऋदुश्चनस्कुलदंसोऽनेहसाश्च"  
इत्यनङि, अङो लोपे, "ङिच्च" इत्यनेन ऋस्थाने जाते "सर्वनामस्थाने चाऽस-  
म्बुद्धौ" इति उपधायाः दीर्घे "हल्ङ्याभ्यः" इति सलोपे, "नलोपः प्रातिपदिका-  
न्तस्य" इति नलोपे 'कर्ता' इति रूपम् । जल्पमिच्छकुट्टेति । एभ्यः पञ्चभ्यः षाकन्  
स्यात् तच्छ्रीलादिष्वित्यर्थः । षः प्रत्ययस्य । "आदिर्जिह्वः" इत्यतः आदिरित्यनुव-  
र्तते । "उपदेशेऽजनुनासिक इत्" इत्यतः इदिति च । तदाह—प्रत्ययस्यादिरिति ।  
षकारस्य इत्संज्ञायाम् "तस्य लोपः" इति लोपः । जल्पाकः । जल्पति तच्छ्रीलः  
इत्यस्मिन्नर्थे "जल्पमिच्छकुट्टलुण्ठवृद्धः षाकन्" इति षाकनि, "षः प्रत्ययस्य" इति  
प्रत्ययस्यादिषकारस्येत्संज्ञायां "तस्य लोपः" इति षलोपे नलोपे च कृते मिलित्वा  
'जल्पाक' इति भूते कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे सौ, उलोपे, सस्य सत्वे रेफस्य विस-  
र्गत्वे च 'जल्पाकः' इति रूपम् । मिश्राकः । मिश्रधातोः "जल्पमिच्छकुट्टलुण्ठवृद्धः  
षाकन्" इत्यनेन षाकनि "षः प्रत्ययस्य" इति षस्येत्संज्ञायां "हलन्त्यम्" इति नस्य  
चेत्संज्ञायां "तस्य लोपः" इत्युभयोलोपे संयोगे कृते, विभक्तिकार्यं च 'मिश्राकः' इति  
रूपम् । एवमेव कुट्टाकादयः शब्दा अप्रुद्धाः । वराकी । अत्र वृ धातोः प्रकृतसूत्रेण षाकनि  
कृते वराक इति भूते "षिद्वौरादिभ्यश्च" इत्यनेन ङीष्, उपयोलोपे भसंज्ञायां "यस्येति  
च" इत्यकारलोपे "ङ्यापप्रातिपदिकात्" इति सौ, उलोपे "हल्ङ्याभ्यः" इति सलोपे  
च कृते 'वराकी' इति रूपम् । सनाशंसमिच्छ उः । सन्, आशंस, भिच्छ एषां प्रयाणां  
द्वन्द्वात्पञ्चम्येकवचनम् । सनिति सम्प्रत्ययान्तं गृह्यते । 'षणु दाने, षण सम्भक्तौ'  
इत्यनयोस्तु न ग्रहणम्, गार्गादिषु विजिगीषुशब्दपाठास्तिज्ञात् । एभ्यः उप्रत्ययः  
स्यात् तच्छ्रीलादिष्वित्यर्थः । विकीर्षुः । कर्तुमिच्छतीति विप्रदे कृधातोः "धातोः कर्मणः  
समानकर्तृकादिच्छायां वा" इति सनि, नलोपे "इको शल्" इति सनः कित्वादगुणा-  
भावे "अज्ज्ञान्गमां सनि" इति दीर्घे "ऋत इद्वातोः" इतीत्वे रपरत्वे च "हलि च"  
इति दीर्घे 'कीर्स' इति भूते "सन्वङोः" इति द्वित्वे अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्यं च कृते  
सगः सस्य षत्वे, 'षिकीर्' इति जाते "सनाशंसमिच्छ उः" इति सञ्चन्तात् उप्रत्यये  
तस्यार्धधातुकत्वात् "अतो लोपः" इत्यकारलोपे संयोगे कृते विभक्तिकार्यं च कृते  
'विकीर्षुः' इति रूपम् । आशंसुः । आशपूर्वकशसधातोः "सनाशंसमिच्छ उः" इति  
उप्रत्यये विभक्तिकार्यं च कृते तत्सिद्धिः । एवं भिच्छ धातोः उप्रत्यये कृते 'भित्तु' इति  
रूपम् । आजमासुधुविधुतेति । आस, भास, धुषि, धुत, अर्षि, पृ, उ, आससु, पृष्यो-

विद्युतोऽन्विष्युः प्रावस्तुवः क्विप् शन् १७७ विभ्राट् । भाः ॥ राहोषः ६।४।२१  
रेफश्चलोऽन्विष्युः स्यात् कौ भलादौ किति । धूः । विद्युत् । उक् । पूः । इतिग्रह-  
णस्यापकर्षाज्जवतेर्दीर्घः । जूः । प्रावस्तुत् ( क्विच्चिप्रच्छयायतस्तुकटप्रजु-  
श्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च ) । वक्तीति वाक् ॥ च्छ्वोः शूडनुनासिके च ६।

५४भ्यः क्विप्स्यात् तच्छीलादिषु कर्तृष्वित्यर्थः । विभ्राट् । विशेषेण आजते तच्छीला-  
इत्यर्थे व्युपसर्गपूर्वकप्राजधातोः क्विपि, इकारे गते “लशक्तदिते” इति कस्य  
“हल्ङ्यन्वम्” इति पस्य च ह्रस्वज्ञानं लोपे च कृते “वेरपृक्तस्य” इत्यनेन वस्येत्स-  
न्वायां “तस्य लोपः” इति लोपे च कृते “विभ्राज्” इति भूते कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे,  
सौ उमवे सस्य “हल्ङ्यन्वा” इति लोपे “व्रश्चश्चसृजसृजयजराजभ्राजश्चक्षां चः”  
इति जश्च ऋत्वे “क्षलां जशोऽन्ते” इति शस्य ऋत्वे “वावसन्ते” इति वा ऋत्वे “विभ्राज्”  
इति । भाः । भ्रसृजधातोः “भ्राजभास०” इत्यादिना क्विपि, क्विपः सर्वस्यापहारे कृदन्त-  
त्वात्प्रातिपदिकत्वे सौ, उलोपे हल्ङ्यन्वादिना सलोपे भासः सस्य ऋत्वे रेफस्य विस-  
र्गत्वे च ‘भः’ इति रूपम् । रल्लाप इति । “च्छ्वोः शूडनुनासिके च” इति सूत्रं  
शूडवर्जमनुवर्तते । “अनुनासिकस्य क्विष्णोः” इत्यतः विष्णुलोरिति च तद्वाह—रेफा-  
च्छ्वोरिति । धूः । ध्रुव धातोः क्विपि, क्विपो लोपे, “राहोषः” इति व्लोपे, “धुर्” इति  
कृदन्तत्वात् सौ, उलोपे, हल्ङ्यन्वादिना सलोपे “वोरूपधाया दीर्घ इकः” इति दीर्घे,  
रेफस्य विसर्गत्वे च तत्सिद्धिः । विद्युत् । विपूर्वकद्युत्धातोः क्विपि, तस्य लोपे विभक्ति-  
कार्यं च तत्सिद्धिः । उक् । उर्जधातोः क्विपि, क्विपो लोपे, सौ, उगते, सलोपे  
“शात्सस्य” इति निबमात् जलोपाभावे, ‘चोः कुः’ इति कुत्वे च तत्सिद्धिः । पूः ।  
पृधातोः “भ्राजभास०” इत्यादिना क्विपि, क्विपो लोपे, “उदोष्ठ्यपूर्वस्य” इति उत्त्वे  
“उरण रपरः” इति रपरत्वे तस्मात् सौ, तस्य लोपे, “वोरूपधाया दीर्घ इकः” इति  
दीर्घे रेफस्य विसर्गत्वे च तत्सिद्धिः । इतिग्रहणस्यापकर्षादिति । उत्तरसूत्रादिति भावः ।  
अत्र व्याख्यानमेव शरणम् । जूः । जु इति सौत्रो धातुः, तस्मात् क्विपि, क्विपो लोपे,  
इतिग्रहणस्यापकर्षाज्जवतेर्दीर्घे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे तस्मात्सौ, उगते, सस्य ऋत्वे  
रेफस्य विसर्गत्वे च तत्सिद्धिः । प्रावस्तुत् । प्रावाणं स्तौति इति प्रावस्तुत् अत्र प्राव-  
र्कस्तुधातोः क्विपि, क्विपो लोपे, क्विपः पित्वात् “इस्वस्य पिति कृति तुक्” इति  
तुकि, उकि गते, क्त्वादन्यावयवे जाते तस्मात् सौ, उगते, हल्ङ्यन्वादिना च तस्य  
लोपे, ‘प्रावस्तुत्’ इति रूपम् । निबबन्वीति । उणादिसूत्रमिदम् । वाक् । वच् धातोः  
क्विपि, क्विपो लोपे, “क्विच्चिप्रच्छयायतस्तुकटप्रजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणः”  
इत्यनेन दीर्घे, असम्प्रसारणे च, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे तस्मात्सौ, उलोपे, हल्ङ्यन्वा-  
दिना सलोपे “चोः कुः” इति कुत्वे च तत्सिद्धिः । च्छ्वोः शूडनुनासिके च । च्छ्वो व-  
क्ष्यतेर्दीर्घात् पक्षीह्रिवचनम् । उकारात्वात् तुक्ः स्फुटत्वेन उकारस्य निर्देशः । शूड-

ॐ१६ सतुकस्य छस्य वस्य च क्रमात् श ऊट् इत्यादेशौ स्तोऽनुनासिके कौ  
भलादौ च विवृति । पृच्छतीति प्राट् । आयतं स्तौति आयतस्तुः । कटं प्रवते कटप्रूः ।  
जुरुक्तः । श्रयति हरिं श्रीः ॥ दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः  
करणे ३३१२२ दाबादेः ष्टन् स्यात्करणेऽर्थे । दात्यनेन दात्रम् । नेत्रम् ॥  
तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च ७२१६ एषां दशानां कृतप्रत्ययानामिणं न स्यात् ।  
शस्त्रम् । योत्रम् । योक्त्रम् । स्तोत्रम् । तोत्रम् । सेत्रम् । सेक्त्रम् । मेद्रम् । पत्रम् ।

इति छेदः । श् ऊट् अनयोः समाहारद्वन्द्वात् प्रथमा । चकारेण किञ्चलोः द्वितीत्यनुव-  
र्तते । तदाह—सतुकस्य इत्यादि । प्राट् । प्रच्छधातोः क्षिपि, क्विपो लोपे, “क्विचि-  
प्रच्छि०” इति प्रच्छधातोः दीर्घे असम्प्रसारणे च जाते “च्छवोः शुद्धनुनासिके च” इति  
सतुकस्य छस्य शस्त्रे तस्मात् सौ, उलोपे, सस्य हल्छयादिना लोपे “ब्रश्चस्त्रसृज-  
सृजयजराजआजशृक्षां षः” इत्यनेन शस्य षत्वे “शलां जशोऽन्ते” इति षस्य ङत्वे  
“वावसाने” इति वा ङत्वे, “प्राट्” इति रूपम् । आयतस्तुः । आयतं स्तौति इति विग्रहे  
“क्विचिप्रच्छयावतस्तु०” इत्यनेन क्षिपि, स्तुधातोर्दीर्घत्वे प्रकृतसूत्रे निपातनादेव  
समासे, समासत्वात्प्रातिपदिकत्वे, तस्मात् सौ, उलोपे, सस्य रुत्वे, रेफस्य विसर्गत्वे  
च तत्सिद्धिः । कटप्रूः । कटपूर्वकप्रधातोः “क्विचिप्रच्छयावतस्तुकटप्रु०” इत्यादिना  
प्रच्छधातोर्दीर्घत्वे च कृते क्षिपो लोपे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । जुरुक्त इति । “आज-  
मास” इत्यत्रेति शेषः । अतोऽत्र तद्ग्रहणं मास्तिवति भाषः । श्रीः । श्रिजः । क्षिपि  
दीर्घः । दाम्नी । दाप्, नी, शस, यु, युज, स्तु, तुद, सि, सिच, मिह, पत, दश, नह्,  
एषां त्रयोदशानां द्वन्द्वः । ‘दाप् लवने’ इत्यस्य पकारस्य स्थाने “यरोऽनुनासिकेऽ-  
नुनासिको वा” इति कृतमकारस्य निर्देशः । दात्रम् । दाप्धातोः “दाम्नीशसयुयुजस्तु-  
तुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे” इति ष्टनि नलोपे, “षः प्रत्ययस्य” इति षस्येत्सञ्ज्ञा-  
याम्, “तस्य लोपः” इति षलोपे, दात्र इत्यवशिष्टे विभक्तिकार्यं च कृते, तत्सिद्धम् ।  
नेत्रम् । नयति अनेन इति निधातोः “दाम्नीशसयु०” इत्यनेन ष्टनि, अनुबन्धलोपे  
‘त्र’ इत्यवशिष्टे तस्यार्धधातुकसंज्ञायां “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे सौ,  
सोरमि, पूर्वरूपे च तत्सिद्धिः । तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च । ति, तु, त्र, त, थ, सि, सु,  
सर, क, स एषां दशानां द्वन्द्वः । अत्र सरेत्येकम् । ति—तन्ति, “स्त्रियाम्” इति किन्,  
तु—सक्तु, “तनिगमि” इत्यादिना तुप्रत्ययः । त्र—शस्त्रम्, पत्रम्, “दाम्नी” इत्यादिना  
ष्टन् प्रत्ययः । त—हस्तः । औणादिकः तप्रत्ययः । कप्रत्यये तु हसितमित्येव । थ—कुष्ठम् ।  
औणादिकः कथप्रत्ययः । सि—कुचिः, कुषेरोणादिकः क्विसप्रत्ययः । सु—इक्षुः, इषेरो-  
णादिकः क्सु प्रत्ययः । सर—अचरम्, अशोः सरन् । क—शक्कः शलेः कः । स—वत्सः  
‘वदेः सः’ । शस्त्रम् । शसधातोः ष्टनि, अनुबन्धलोपे ‘शस्+त्र’ इति स्थिते “आर्ध-  
धातुकं शेषः” इति आर्धधातुकसंज्ञायाम् “आर्धधातुकस्येड्वल्लादेः” इति इक्षामने

दंष्ट्रा । नग्री ॥ अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः ३।२।१८४ अरित्रम् । लवित्रम् ।  
धवित्रम् । सवित्रम् । खनित्रम् । सहित्रम् । चरित्रम् ॥ पुत्रः संज्ञायाम् ३।२।  
१८५ पवित्रम् । इति पूर्वकृदन्तम् ।

प्राप्ते “तितुत्रतथसिसुरकसेषु च” इति तस्य निषेधे संयोगे कृते विभक्तिकार्यं च  
कृते तत्सिद्धिः । योत्रम् । युधातोः “दाम्नीशसयुयुज” इत्यनेन ऋनि, अनुबन्धलोपे  
आर्धधातुकत्वादिति प्राप्ते “तितुत्रतथसि” इति तस्य निषेधे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः”  
इति गुणे कृते विभक्तिकार्यं च कृते तत्सिद्धिः । योत्रम् । युजधातोः “दाम्नीशसयुयुज”  
इति ष्टनि, अनुबन्धलोपे आर्धधातुकत्वात् “पुगन्तलघूपधस्य च” इत्यनेन गुणे  
“तितुत्रतथसिसुरकसेषु च” इति इडभावे “चो कुः” इति जस्य कुत्वे विभक्तिकायं च  
तत्सिद्धिः । स्तोत्रम् । स्तुधातोः प्रकृतसूत्रेण ऋनि, “तितुत्रतथसिसुरकसेषु च” इति  
इडभावे गुणे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । वोत्रम् । तुद् धातोः ष्टनि इडभावे “पुगन्त-  
लघूपधस्य च” इति गुणे “खरि च” इति दस्य चत्वेन तकारे विभक्तिकार्यं च तत्सि-  
द्धम् । सेत्रम् । सिधातोः ष्टनि रूपम् । सेत्रम् । सिच् धातोः ष्टनि, लघूपधगुणे कुत्वे  
विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । मेढ्रम् । मिद्-सेचने धातोः “दाम्नीशसयुयुजस्तुदसिसि-  
चमिहपतदशनहः करणे” इति ऋनि, अनुबन्धलोपे, “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातु-  
कत्वे “पुगन्तलघूपधस्य च” इति लघूपधगुणे ‘मेह्+त्र’ इति भूते “हो ङः” इति  
हस्य ङत्वे “क्षपस्तयोर्धोऽधः” इति तस्य धत्वे “ष्टुना ष्टुः” इति धस्य ङत्वे “ढो ङे  
लोपः” इति पूर्वङस्य लोपे विभक्तिकार्यं च कृते तत्सिद्धिः । पत्रम् । पद् धातोः  
ष्टनि, षस्य नस्य चेत्संज्ञायां लोपे च “निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः” इति  
ष्टुत्वे गते ‘पद्—त्र’ इति भूते “खरि च” इति दस्य तत्वे, विभक्तिकार्यं च कृते  
‘पत्रम्’ इति रूपम् । दंष्ट्रा । दंश् धातोः “दाम्नीशसयुयुजस्तुदसिसिचमिहपतदशनहः-  
करणे” इति ष्टनि, षनयोर्लोपे, षुत्वे च गते किङ्त्वाभावाच्चलोपाभावे, “ब्रश्चभ्रस्जसृज-  
मृजयजराजभाजक्षरां षः” इति शस्य षत्वे तस्य षुत्वे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे टाप्,  
विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । नग्री । नङ्गये अनया इति विग्रहः । चर्मरज्जुः । ‘नह  
बन्धने त्रः । “नहो धः” इति हस्य धत्वे “क्षपस्तयोर्धोऽधः” इति तस्य धत्वे षित्वात्  
“षिद्गौरादिभ्यश्च” इति ङीष् कृते तत्सिद्धिः । अर्तिलूधू । अर्ति, लू, धू, सु, खन,  
सह, चर एषां सप्तानां द्वन्द्वात्पञ्चमी । अरित्रम् । ऋधातोः “अर्तिलूधूसूखनसहचर  
इत्रः” इति इत्रप्रत्यये “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकत्वे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः”  
इति गुणे “ढरण् रपरः” इति रपरत्वे सयुक्ते च कृते, कृते च विभक्तिकार्यं ‘अरित्रम्’  
इति रूपम् । लवित्रम् । लृधातोः “अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः” इति इत्रे आर्धधातु-  
कत्वे गुणे, अवादेशे संयोगे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । धवित्रम् । धृधातोः इत्रे गुणे  
अवादेशे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धम् । सवित्रम् । सूधातोः इत्रे गुणे अवादेशे विभक्ति-



## अथोपादयः ।

“कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्” । करोतीति कारुः । वातीति वायुः । पायुर्गुदम् । जायुरौषधम् । मायुः पित्तम् । स्वादुः । साध्नोति परकार्यमिति साधुः । आशु स्त्रीप्रम् । इत्युणादयः ।

कार्ये च कृते तत्सिद्धिः । खनित्रम् । खन्धातोः इत्रे कृते संयोगे विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धम् । एवम्—“सहित्रम्” “चरित्रम्” इत्यपि बोध्यम् । पुवः संज्ञायाम् । इत्र इति शेषः । करणे इत्येव । पवित्रम् । पूयतेऽनेनाज्यम् इति विग्रहे पूधातोः इत्रे, तस्य आर्धधातुकसंज्ञायां गुणेऽवादेशे विभक्तिकार्ये च कृते, तत्सिद्धिः । इति पूर्वकृदन्तम् ।

कृवापाजि । इ कृञ्-करणे, वा गतिगन्धनयोः, पा-पाने, जि-अभिभवः, डमिञ्-प्रवेपणे, स्वद-आस्वादने, साध-संसिद्धौ, अशू-व्याप्तौ, एषां इन्द्रात्पञ्चमी । एभ्य उणप्रत्ययः स्यात्कर्त्रर्थे इत्यर्थः । कारुः । कृधातोः “कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्” इति उणि, “हलन्त्यम्” इति णस्येत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे, “कृ+उ” इति स्थिते “अचो ञ्णिणिति” इति ऋकारस्य वृद्धौ “उस्ण् रपरः” इति रपरत्वे “क् आर् उ” इति जाते, संयोगे च कृते कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे सौ, उलोपे सस्य स्त्वे रेफस्य विसर्गत्वे च “कारुः” इति रूपम् । वायुः । वाधातोः “कृवापाजि०” इति उणि, णगते “आतो युक् चिण्कृतोः” इति युगागमे, क्माते क्तिवादन्यावयवे जाते, संयोगे कृते कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे सौ, उगते, सस्य स्त्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च “वायुः” इति रूपं सिद्धम् । पायुः । पाधातोः उणि, णगते “आतो युक् चिण्कृतोः” इति युगागमे, क्माते क्तिवादन्यावयवे जाते, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे सौ, उलोपे, सस्य स्त्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च तत्सिद्धिः । गुदमिति । ‘गुदं त्वपानं पायुर्ना’ इत्यमरः । जायुः । जिधातोः “कृवापाजिमिस्वदि०” इति उणि, णगते, “अचो ञ्णिणिति” इति वृद्धौ, “एचोऽयवा-यावः” इत्याद्यादेशे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, सौ, उलोपे, सस्य स्त्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च, तत्सिद्धिः । ‘अगदो जायुः’ इत्यमरः । मायुः । मिञ् प्रवेपणे इत्यस्मात् “कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्” इति उणि, णलोपे, “अचो ञ्णिणिति” इति प्रासां वृद्धिं वञ्चित्वा “मीनातिमिनोति दीक्षां त्यपि च” इति आत्वे, “आतो युक् चिण्कृतोः” इति युगागमे, कस्येत्संज्ञायां लोपे च, क्तिवादन्यावयवे जाते, संयोगे कृते, विभक्तिकार्ये च तत्साधुः । ‘मायुः पित्तं कफं श्लेष्मा’ इत्यमरः । स्वादुः । स्वदते रोचते इति स्वादु पठः । विरोष्यनिघ्नोऽयम् । स्वादुफलमित्यादि । स्वद आस्वादने इत्यस्माद्धातोः “कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्” इति उणि प्रत्यये, “हलन्त्यम्” इति णस्येत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इति लोपे, “अत् उपधायाः” इति स्वद उपधाया वृद्धौ कृते संयोगे च कृते, “कृतदित्तसमासम्” इति प्रातिपदिकत्वे तस्मात्सौ उलोपे, सस्य स्त्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च “स्वादुः” इति रूपम् । साध्नोति परकार्यमिति सिद्धिः ।

## अथोत्तरकृदन्तम् ।

उणादयो बहुलम् ३।३।१ एते वर्तमाने संज्ञायां च बहुलं स्युः । केचिदविहिता अप्यूह्याः । “संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे । कार्याद्विधादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु” ॥ तुमुन्णुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३।३।१० क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थं धातोरेतौ स्तः । मान्तत्वादव्ययत्वम् । कृष्णं द्रष्टुं याति ।

साध्यातोः “कृवाफजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्” इति कर्तहि उणि, णगते “अत उपधावाः” इति वृद्धौ कृते, संबोधे च कृते, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, तस्मात्सौ, उभक्ते, सस्य स्त्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च “साधुः” इति रूपम् । आशु । अन्धातोः उणि, णगते, “अत उपधावाः” इति उपधावृद्धौ, विभक्तिकार्यं च “आशु” इति । शप्रम् । विलम्बाभावमात्रपरत्वे क्लीबत्वम् । तद्विशिष्टद्वयपरत्वे तु त्रिलिङ्गमिति बोध्यम् । “उणादयो बहुलम्” इति बहुलवचनात्क्यानुसारेण व्यवस्था । रहत्यागे इत्यस्मादुणि, उपधावृद्धौ “राहुः” इति भवति । एवं कस्निवासे इत्यस्मादुण् । कसति अस्मिन् सर्वमिति वासुः । वासुश्चासौ देवश्च “वासुदेवः” इत्यादयो बोध्याः । इति उणादयः ।

उणादयो बहुलम् । तृतीयेऽध्याये तृतीयपादस्येदमादिमं सूत्रम् । उण् आदिर्बैषान्ते उणादयः । बहून् अर्थान् लातीति बहुलम् । “वर्तमाने लट्” इत्यतो वर्तमान इति “पुवः संज्ञायाम्” इत्यतः संज्ञायामिति चानुवर्तते तदाह—एते वर्तमाने संज्ञायां चेति । अपरिपूर्णानामुणादीनां परिपूर्णार्थस्य बहुलग्रहणस्य फलमाह—केचिदविहिता अपीति । संज्ञास्विति । संज्ञासु-अनादिसंज्ञासु न तु सर्वासु । धातुरूपाणि उच्यन्ते इति श्लोकः, यथा—“द्वेषेलच” इति विहितमुल्लाप्यत्ययं दृष्ट्वा शङ्किः प्रकृतिरुच्यते तेन शङ्कुष्वेति सिद्धयति । कार्याद्विधादिति । अर्धफट् इत्यादौ गुणप्रतिषेधादिकार्यानुरोधात् अनुबन्धं ककारादिकं विधादिरवश्यः । एतच्छास्त्रमुणादिष्विति । एतत् सर्वमुणादिषु शास्त्रं भासितव्यमित्यर्थः । तुमुन्णुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् । क्रियार्थः प्रयोजनं यस्याः सा क्रियार्ता तस्याम् । “भविष्यति गम्यादयः” इत्यतो भविष्यतीत्यनुवर्तते । तस्माद्-भविष्यत्यर्थः इति । मान्तत्वादिति । तुमुनो मान्तकृत्वात् “कृन्मेजन्तः” इत्यव्ययत्वमित्यर्थः । तस्मात् “अभ्यस्तकृतो भावे” इति वचनात् भावे तुमुन् । णुल् तु कर्तव्यम् । कृष्णं द्रष्टुं याति । दृष्टातोः “तुमुन्णुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्” इति तुमुनि, उभे लोपे “सृजिह्वोर्लोपप्रकृतिः” इत्यमि, मलोपे मित्वाद् “मिदचोन्त्वात्परः” इत्यन्त्वादयः परे जाते “ह वः श्रुत्वा” इति भूते “इक्ते यज्जिवा” इति यणि, “प्रज्जम्बज्जम्ब” इति जस्य भावे “दृष्ट्वा श्रुः” इति टत्वे “द्रष्टुम्” इति जाते कृदन्तत्वात्प्रकृतिरुच्यते सौ, “कृन्मेजन्तः” इति । मान्तत्वादव्ययभावे, “अभ्ययाकाप् सुप” इति सुपो शङ्किः कविहितो “कृष्णं द्रष्टुं यातीति” ॥ कृष्णं च दर्शको याति । दृष्टातोः “तुमुन्णुलौ

कृष्णं दर्शको याति ॥ कालसमयवेलासु तुमुन् ३।३।१६७ कालार्थेषूपदेशु तुमुन् स्यात् । कालः समयो वेला वा भोक्तुम् ॥ भावे ३।३।१८ सिद्धावस्थापने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्धञ् स्यात् । पाकः ॥ अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ३।३।१९ कर्तृ-भिन्ने कारके घञ् स्यात् । घञि च भावकरणयोः ६।४।२७ रज्जेर्नलोपः स्यात् । रागः । अनयोः किम् १ रज्यत्यस्मिन्निति रज्जः ॥ निवासचित्तिशरीरोपसमाधानेष्व्वादेशश्च कः ३।३।४१ एषु चित्तोर्धञ् आदेशश्च ककारः । उपसमाधानं राशीकरणम् । निकायः । कायः । गोमयनिकायः । एरच् ३।३।५६ इवर्णान्तादच् स्यात् ।

क्रियायां क्रियार्थाम्” इति ण्वुलि, णल्योलोपे, ‘इश् वु’ इति स्थिते “युवोरनाकौ” इति वोरकादेशे, “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे, विभक्तिकार्ये च कृते ‘कृष्णं दर्शको याति’ इति । कालसमयवेलासु । अक्रियोपपदेशि प्रवृत्त्यर्थं भदम् । भोक्तुम् । भुज्धातोः “कालसमयवेलासु तुमुन्” इति तुमुनि, उनि गते, तुम आर्धधातुकत्वात् “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे “चोः कुः” इति जस्य कुत्वेन गत्वे “लरि च” इति कत्वे, “कृन्मे-जन्तः” इत्यव्ययत्वाद् सुपो लुकि च तत्सिद्धिः । भावे । घञ् स्यादिति । “पदरज्ज” इत्यतस्तदनुष्ठेति भावः । पाकः । पच्धातोः “भावे” इति घञि, “लञ्कतद्धिते” इति घस्य “हलन्त्यम्” इति जस्य चेत्संज्ञायां लोपे च ‘पच्+अ’ इति जाते, “अत उपधायाः” इति अकारस्य वृद्धौ, “चजोः कुधिण्यतोः” इति चस्य कुत्वे, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, सौ, उगते, सस्य रुत्वे च ‘पाकः’ इति रूपम् । अकर्तरि च कारके । कारके इति प्रत्ययार्थनिर्देशः, नतूपपदम्, व्याख्यानात् । संज्ञाशब्देन रूढिर्विवक्षिता । तेन रागः इति वक्ष्यमाणमुदाहरणं सङ्गच्छते । घञि चेति । “अनिदिताम्” इति नलोपप्रकरणे “रज्जेश्च” इत्युत्तरसूत्रमिदम् । तदाह—रज्जेर्नलोपः स्यादिति । रागः । रज्ज्धातोः “अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्” इति घञि घकारजकारयोलोपे, “घञि च भावकरणयोः” इति नलोपे “अत उपधायाः” इति वृद्धौ, “चजोः कुधिण्यतोः” इति जस्य कुत्वे, विभक्तिकार्ये च ‘रागः’ इति रूपम् । रज्जः । अत्र भावकरणार्थाभावेन नलोपाभावे “चजोः कुधिण्यतोः” इति विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धम् । निवासचित्ति । “अकर्तरि च कारके” “भावे” इति चानुवर्तते एव । निपूर्वकचिधातोः “निवासचित्तिशरीरोपसमाधानेष्व्वादेशश्च कः” इति घञि, आदेः—चेश्चकारस्य कुत्वे, घकारजकारयोलोपे ‘नि कि+अ’ इति भूते अस्य आर्धधातुकत्वात् “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे, “एचोऽयवायावः” इति अयादेशे ‘निक्य+अ’ इति जाते “अत उपधायाः” इति वृद्धौ, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, सौ, उलोपे, रुत्वे विसर्गे च, ‘निकायः’ इति जायते । कायः, गोमयनिकायः । अत्रापि अहृतसूत्रेण घञि, चेश्चकारस्य कुत्वे वृद्धौ, अयादेशे, विभक्तिकार्ये च पूर्ववदेव बोध्यम् ।

चयः । जयः ॥ ऋदोरप् ३३।१७ ऋवर्णान्ताहुवर्णान्तादप् स्यात् । करः । गरः ।  
यवः । लवः । स्तवः । पवः । ( घञर्थे कविज्ञानम् ) प्रस्थः । विघ्नः । ड्वितः  
वित्रः ३३।२८ कत्रेर्मन् नित्यम् ४।४।२० वित्रप्रत्ययान्तात् मम् निवृत्तेऽर्थे ।  
पात्रेन निवृत्तं पवित्रमम् । हुवप्, उपत्रिमम् । टवितोऽप्युच ३३।२९ ड्वेष्ट

परच् । इवर्णान्ताद्वातोः अच् स्यात् भावे अकर्तरि च कारके इत्यर्थः । घञपवादः ।  
चयः, जयः । जिघातोः जिघातोश्च “एरच्” इत्यनेन अघि कृते, चलोपे, “आर्धधातुकं  
शेषः” इत्यार्धधातुकत्वे, “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे, अभादेशे विभक्तिकार्ये  
च ते रूपे सिद्ध्यतः । ऋदोरप् । पञ्चमर्थे षष्ठी । ऋत्, उ, अनयोः समाहारे सौत्रं  
पुंस्त्वम् । ऋदन्ताहुवर्णान्ताच्च अप् स्याद्भावे अकर्तरि च कारके इत्यर्थः । घञप-  
वादः । करः । कृधातोः “ऋदोरप्” इत्यपि, पगते, आर्धधातुकसंज्ञायां, “सार्वधातु-  
कार्धधातुकयोः” इति गुणे अकारे, “उरण् रपरः” इति रपरे च जाते, संयोगे कृते,  
विभक्तिकार्ये च ‘करः’ इति रूपम् । एवमेव गृधातोः “ऋदोरप्” इत्यपि कृते बो-  
ध्यम् । यवः । युधातोः “ऋदोरप्” इत्यपि, पगते, आर्धधातुकत्वे, “सार्वधातुक-  
कार्धधातुकयोः” इति गुणे, “एचोऽयचायावः” इत्यभादेशे, विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः ।  
एवमेव लवः, स्तवः, पवः, इत्यत्रापि । घञर्थे कविज्ञानमिति । वार्तिकमिदम् । ‘स्था-  
स्नापाञ्चविहनिषुष्यर्थम्’ इति वार्तिकशेषो भाष्ये पठितः । प्रस्थः । प्रतिष्ठन्तेऽस्मिन्  
धान्यानि इति प्रस्थः । प्रोपसर्गपूर्वकात् स्थाधातोः “घञर्थे कविज्ञानम्” इति अघि-  
करणेऽर्थे के, कलोपे आर्धधातुकसंज्ञायाम् “आतो लोप इटि च” इत्यालोपे विभक्ति-  
कार्ये च कृते ‘प्रस्थः’ इति रूपम् । विघ्नः । विपूर्वकहन्धातोः “घञर्थे कविज्ञानम्”  
इति के, कलोपे, आर्धधातुकसंज्ञायां, “गमहनजनसनक्सां लोपः किति” इत्युपधा-  
कारस्य लोपे, “होहन्तेऽभिन्नेषु” इति हस्य कुत्वेन ऋत्वे, विभक्तिकार्ये च कृते,  
‘विघ्नः’ इति रूपम् । द्वितः वित्रः । हुः इत् यस्य सः द्वित्व तस्मात् वित्रप्रत्ययः  
स्यादित्यर्थः । ककार इत् । अयं स्वभावाद्भावे एव । कत्रेर्मन् नित्यम् । मप् नित्यमिति  
छेदः । पवित्रमम् । ‘हुपचच्—पाके’ इति धातोः “आदिर्बिभृद्वक्” इति डोरित्त्व-  
ज्ञायां षस्व “हलन्त्यम्” इतीत्संज्ञायां “तस्य लोपः” इत्युभयोलोपे, अकारे च गते,  
पच् इत्यबशिष्टे तस्मात् “द्वितः वित्रः” इति वित्रप्रत्यये, कलोपे, पचेन्नकास्त्व  
“चोः कुः” इति कुत्वे, ‘पवित्र’ इति जाते तस्मात् “कत्रेर्मन्नित्यम्” इति नित्यं मपि,  
पगते, ‘पवित्रम्’ इति भूते विभक्तिकार्ये च कृते ‘पवित्रमम्’ इति रूपम् । उपत्रिमम् ।  
हुवप्—बीजसन्ताने धातोः अनुबन्धलोपे कृते, “ड्वितः वित्रः” इति वित्रप्रत्यये  
कलोपे, कित्वात् “वचिस्वपियजादीनां किति” इति सग्नसारणे, ‘उ अप् त्रि’ इति  
भूते “सम्भसारणान्न” इति पूर्वरूपे, “कत्रेर्मन् नित्यम्” इति मपि, पगते, विभक्ति-  
कार्ये च कृते, “उपत्रिमम्” इति रूपम् । ट्वितोऽप्युच । अडुजिति छेदः । हु इत् यस्येति

कम्पने, वेपथुः ॥ यजयाचयतविच्छप्रच्छरदो नङ् ३।३।६० यञ्जः । याञ्चा ।  
 यत्नः । विरनः । प्रश्नः । रक्षणः ॥ स्वपो नन् ३।३।६१ स्वानः । उपसर्गे घोः  
 किः ३।३।६२ प्रधिः । उपाधिः ॥ स्त्रियां क्तिन् ३।३।६४ स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् स्यात् ।  
 घञोऽपवादः । कृतिः । स्तुतिः । ( ऋत्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्भाच्यः ) तेन  
 नत्वम् । कीर्णिः । लूनिः । धूनिः । पूनिः । ( सम्पदादिभ्यः क्तिप् ) सम्पत् ।

विग्रहः अयमपि स्वभावाद्भावे एव । वेपथुः । ड्वेपृ—कम्पने धातोः “आदिर्जिडुडवः”  
 इति टोरित्संज्ञायां लोपे च, ऋगते, टित्वात् “ट्वितोऽथुच्” इति अथुचि, चगते संयोगे  
 विभक्तिकार्यं च कृते ‘वेपथुः’ इति रूपम् । यजयाचयतेति । “अकर्तरि च कारके” इति  
 “भावे” इति चानुवर्तते । यञ्जः । यजधातोः “यजयाचयतविच्छप्रच्छरदो नङ्” इति  
 नङि प्रत्यये, कलोपे, “स्तोः रचुना रचुः” इति रचुत्वेन नस्य जत्वे ज्ञोः संयोगेन  
 ज्ञे जाते, विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । याञ्चा । याच्धातोः “यजयाचयतविच्छप्रच्छ-  
 रदो नङ्” इति नङि, कलोपे, रचुत्वे टापि, विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । एवं सर्वत्र ।  
 तत्र—‘विरनः, प्रश्नः’ इत्यत्र “च्छ्वोः शुद्धनुनासिके च” इति सतुक्कस्य छस्य ‘शकारः’  
 इति विशेषः । रक्षणः । अत्र रक्ष् धातोः प्रकृतसूत्रेण नङि, णत्वे च शेषं पूर्ववत् । स्वपो  
 नन् । नकारो निस्स्वरार्थः । स्वप्नः । स्वपधातोः “स्वपो नन्” इति ननि, नृगते विभ-  
 क्तिकार्यं च कृते तत्सिद्धिः । उपसर्गे घोः किः । भावे अकर्तरि च कारके । क्तिन्मातो  
 लोपार्थम् । प्रधिः । प्रोपसर्गाद् धाधातोः “दाधाध्वदाप्” इति घुसञ्ज्ञायाम् “उपसर्गे  
 घोः किः” इति क्तिप्रत्यये, कलोपे, आर्धधातुकसञ्ज्ञायाम्, “आतो लोप इटि च”  
 इत्याकारलोपे, संयोगे च कृते, कृते च विभक्तिकार्यं ‘प्रधिः’ इति रूपम् । एवमेव  
 ‘उपाधिः’ इत्यत्रापि बोध्यम् । स्त्रियां क्तिन् । “कृत्यल्युटो बहुलम्” इत्यतः प्राक्  
 स्त्रियामित्यधिक्रियते । स्त्रीलिङ्गे इति । स्त्रीत्वविशिष्टभावे अकर्तरि च कारके इत्यर्थः ।  
 धातुमानादयं क्तिन् । घञोऽपवाद इति । “हलश्च” इति वक्ष्यमाणघञोऽपवाद इत्यर्थः ।  
 एवञ्च स्त्रीत्वविशिष्टे भावादौ क्तिनेव । घञ् तु पुंस्त्वविशिष्टभावादाविति लभ्यते । वास-  
 रूपविघिनां प्रवर्तते, अस्त्रियामित्युक्तेः । कृतिः । करणं कृतिः, इत्यत्र कृधातोः “स्त्रियां  
 क्तिन्” इति क्तिनि, कस्य नस्य च लोपे, क्तिन्मातृगुणाभावे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः ।  
 एवं ‘स्तुतिः’ इत्यत्रापि । ऋत्वादिभ्य इति । ऋकारान्तात्स्वादिभ्यश्च पर इत्यर्थः । तेनेति ।  
 निष्ठावद्भावेनेत्यर्थः । नत्वमिति । “रदाभ्यां निष्ठातः” इति नत्वस्य प्रकृतत्वादिति  
 भावः । कीर्णिः । कृधातोः “स्त्रियां क्तिन्” इति क्तिनि कनयोर्लोपे, क्तिन्मातृगुणाभावे,  
 “कृत इदातोः” इति इत्वे, “उरण् रपरः” इति रपरत्वे “हलि च” इति दीर्घे “कीर्ति”  
 इति जाते, “ऋत्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्भाच्यः” इति निष्ठावद्भावेन “रदाभ्यां निष्ठा-  
 दो नः पूर्वस्य च दः” इति तस्य नत्वे, “रदाभ्यां णो नः समानपदे” इति नस्य णत्वे,

विपत् । आपत् । क्तिन्पीष्यते । सम्पत्तिः । विपत्तिः । आपत्तिः ॥ ऊतियूतिजू-  
तिसातिहेतिकोर्त्यश्च ३।३।६७ एते निपात्यन्ते ॥ ज्वरत्वरस्त्रिव्यविमवामुप-  
धायाश्च ६।४।२१ एषामुपधावकारयोरुठ स्यादनुनासिके कौ मलादौ क्ति ॥ अतः  
क्लिप् । जूः । तूः । सूः । ऊः । मूः ॥ इच्छा ३।३।१०१ इषेर्निपातोऽयम् ॥ अ प्र-  
त्ययात् ३।३।१०२ प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात् । चिकीर्षा ।

विभक्तिकार्ये च कृते 'कीर्णिः' इति रूपम् । एव गृधातोः गीर्णिः । लूनिः । लृधातोः  
“स्त्रियां क्तिन्” इति क्तिनि, कनयोर्लोपे, ‘लृति’ इति भूते “ऋत्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठाव-  
द्वाच्यः” इति निष्ठावद्भावेन “त्वादिभ्यश्च” इति तस्य नत्वे, विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः ।  
एवं ‘धूनिः, पूनिः’ इत्यत्रापि बोध्यम् । “सम्पदादिभ्यः क्लिप्” इति वार्तिकम् । भावे  
अकर्तरि च कारके स्त्रियाम् इति शेषः । सम्पत् । सम्पूर्वकपद्धातोः “सम्पदादिभ्यः  
क्लिप्” इति क्लिपि, विवपो लोपे, विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धिः । एवमेव विपत् ।  
ननु ‘अस्त्रियाम्’ इति निषेधेन वाऽऽसरूपविधेरभावात् क्विपाऽनेन क्तिनो बाधात्  
सम्पत्तिरित्यादिकथमित्यत आह—क्तिन्पीष्यते इति । “कृत्यस्युटो बहुलम्” इति  
बहुलग्रहणेन सिद्धमित्याहुः । भाष्ये तु नैवं दृश्यते । सम्पत्तिः । सम्पूर्वकपद्धातोः  
क्तिनि, अनुबन्धलोपे दस्य चत्वेन तकारे विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः । एवमेव विप-  
त्तिः, आपत्तिः’ इत्यत्रापि । ऊतियूति । एते स्त्रियां क्तिन्नन्ताः निपात्यन्त इत्यर्थः ।  
तथाहि—अव्धातोः क्तिनि, “ज्वरत्वरस्त्रिव्यविमवामुपधायाश्च” इति ऊठ्, कतिः ।  
यूतिः, जूतिः । अत्र अनयोर्दीर्घत्वं च निपात्यते । स्यतेः—सातिः । अत्र “घति-  
स्यति०” इतीत्वे प्राप्ते इह इत्वाभावो निपात्यते । सातिः । अत्र सनोतेर्वा “जन-  
सन०” इत्यात्वे कृते स्वरार्थं निपातनम् । हेतिः । हनः क्तिनि, नकारस्य निपातना-  
दित्वे आदुगुणे हेतिरिति रूपम् । हिनोतेस्तु क्तिनि कृते “विहति च” इति निषेधं बाधित्वा  
निपातनात् गुणे रूपमित्यर्थः । कीर्तिः । कृतं संशब्दने । स्वार्थिकण्यन्तात्  
“ण्यासश्चन्यो युच्” इति युचं बाधित्वा क्तिन्निपात्यते । उदात्तश्च सः । ज्वरत्वरस्त्रिव्य-  
विमवामिति । ज्वर, स्वर, स्त्रिवि, अवि, मव् एषां इन्द्रः । “च्छ्वोः शूठ्” इत्यतो वकार-  
ग्रहणम्, ऊठ्ग्रहणम्, अनुनासिके इति चानुवर्तते । छस्य श इति नानुवर्तते, ज्वरा-  
दिषु छस्य अभावेन असम्भवात् । “अनुनासिकस्य क्तिमलोः क्ति” इत्यतः क्तिमलोरिति  
चानुवर्तते । चकारो वकारसमुच्चयार्थः । तदाह—एषामुपधावकारयोरिति । जूः । ज्वर् धा-  
तोः क्लिपि, क्लिपो लोपे, प्रत्ययलक्षणेन क्लिपः सत्वात् “ज्वरत्वरस्त्रिव्यविमवामुपधायाश्च”  
इत्युपधावकारयोरुठि, ‘ज् ऊठ् २’ इति जाते ठस्येत्संज्ञायां लोपे संयोगे च कृते, ‘जू र्’ इति  
भूते प्रातिपदिकत्वात्सौ, उलोपे, हलङ्ख्यादिना सलोपे, रस्य विसर्गत्वे च ‘जूः’ इति । एवम्-  
स्वर् धातोः ‘तूः’ । स्त्रिविधातोः ‘सूः’ । अव्धातोः ‘ऊः’ । मव्धातोः ‘मूः’ । इच्छा । भावेश्च  
इति । नत्वाकर्तरि कारके चेत्पर्यः, निपातनसामर्थ्यादिति भावः । अ प्रत्ययात् । अ इति

पुत्रकाम्या ॥ गुरोश्च हलः ३३११०३ गुरुमतो हलन्तात्स्त्रियामप्रत्ययः स्यात् । ईहा ॥ ण्यासश्रन्थो युच् ३३११०७ अकारस्यापवादः । कारणा । हारणा ॥ नपुंसके भावे क्तः ३३१११४ ल्युट् च ३३१११५ हसितम् । हसनम् ॥ पुंस्ति संज्ञायां घः प्रायेण ३३१११८ छादेर्ध्वव्युपसर्गस्य ६।४।१६ द्विप्रभृत्युपसर्ग-

लुप्तप्रथमाकम् । भावे अकर्तरि च कारके इत्येव । चिकीर्षा । कृधातोः सनि, नगते, “इको झल्” इति सनः कित्वे, “अञ्जनगमां सनि” इति दीर्घे, “कृत इद्धातोः” इति इत्वे, “उरण् रपरः” इति रपरत्वे, “हलि च” इति दीर्घे “सन्त्यङोः” इति द्वित्वे, अभ्यासत्वे, अभ्यासकार्ये सनः सस्य षत्वे च जाते, ‘चिकीर्ष’ इति भूते “सनाद्यन्ताधातवः” इति धातुसंज्ञायाम् तस्मात् चिकीर्षधातोः “अप्रत्ययात्” इति अप्रत्यये, “अतो लोपः” इति सनोऽकारलोपे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे टापि, अनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे, तस्मात् सौ, उलोपे, “हल्ङ्याभ्यो दीर्घात्” इति सलोपे कृते ‘चिकीर्षा’ इति रूपम् । ‘पुत्र-काम्या’ आत्मानं पुत्रमिच्छति इत्यर्थे “काम्यच्च” इति काम्यचि, चलोपे, ‘पुत्रकाम्य’ इति भूते, “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायाम्, तस्मात् पुत्रकाम्य इति धातोः “अप्रत्ययात्” इति अप्रत्यये, “अतो लोपः” इति काम्यगताकारलोपे अप्रत्ययेन संयोगे कृते, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, टापि, अनुबन्धलोपे, सवर्णदीर्घे विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः । गुरोश्च हलः । धातोर्ल्युप्तं हला विशेष्यते । तदन्तविधिः । हलन्तधा-तोर्गुत्त्वासम्भवात् गुरुमान् लक्ष्यते । तदाह—गुरुमत इति । भावे अकर्तरि च कारके इत्येव । ईहा । ईह चेष्टायां धातोः “गुरोश्च हलः” इति अप्रत्यये, कृदन्तत्वात्प्रातिपदि-कत्वे टापि, सवर्णदीर्घे विभक्तिकार्ये च कृते ‘ईहा’ इति रूपम् । ण्यासश्रन्थो युच् । णि, आस, श्रन्थ्, एभ्यः स्त्रियां भावादिषु युच् स्यादित्यर्थः । अकारस्येति । “अ प्रत्ययात्” इति विहितस्येत्यर्थः । कारणा । कृधातोः “हेतुमति च” इति णिचि, णचयोर्लोपे, “अचो ङिति” इति ष्ट्वौ, रपरे च ‘कारि’ इति जाते, “ण्यासश्रन्थो युच्” इति युचि, चलोपे, “युवोरनाकौ” इति अनादेशे, ‘कारि+अन’ इति भूते, “जेरजिति” इति णिलोपे, ‘कार्+अन’ इति भूते संयोगे णत्वे, टापि, विभक्तिकार्ये च कृते ‘कारणा’ इति रूपम् । हारणा । एवमेव इधातोर्णिचि युचि अनादेशे णिलोपे, टापि, विभक्ति-कार्यं च तत्सिद्धिर्ज्ञेया । नपुंसके भावे क्तः । वलीबत्वविशिष्टे भावे कालसामान्ये क्तः स्यात् । ल्युट् च । घात् क्तः । नपुंसके भावे इत्येव । हसितम् । हस्धातोः “नपुंसके भावे क्तः” इति क्ते, कलोपे, “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकत्वे, “आर्धधातुकत्वे-ड्वलादेः” इति इडागमे, प्रातिपदिकत्वे, सौ, सोरमि, पूर्वरूपे च, तत्सिद्धिः । हसनम् । हस्धातोः “ल्युट् च” इति ल्युटि, अनुबन्धलोपे ‘हु’ इत्यबसिप्ते, “युवोरनाकौ” इत्यनादेशे, ‘हसन’ इति जाते, प्रातिपदिकत्वे, विभक्तिकार्यं च कृते तत्सिद्धिः । पुंस्ति संज्ञाप्रति । कर्त्तव्यकारणोत्पत्तिश्च नपुंसकसंज्ञाप्रवादः । अर्धधातुसंज्ञा इति

होत्वैव छान्देस्वः स्यात् चे परे । दन्तरक्षयन्तेऽनेन दन्तच्छदः । आकुर्वन्त्यस्मि-  
नित्याकारः । अवे तृस्रोर्धञ् ३।३।१२० अवतारः कृपादेः । अवस्तारो जवमिका ॥  
हलश्च ३।३।११ धापवादः । हलन्तात् घञ् स्यात् । रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति  
रामः । अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरित्यपामार्गः । ईषद्दुस्सुषु कृच्छाकृच्छार्थेषु  
खल् ३।३।१२६ “करणाधिकरणयोः” इति निवृत्तम् । एषु दुःखमुखायैषूपदेषु  
खलः । “तयोरेव” इति भावे कर्मणि च । कृच्छ्रे-दुष्करः कटी भवता । अकृष्टे

छेदः । ह्रस्वः स्यादिति । “खचि ह्रस्वः” इत्यतस्तदनुवृत्तेः । दन्तच्छदः । छद् धातोर्णिचि,  
अनुबन्धलोपे उपधावृद्धौ, ‘छादि’ इति “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायाम्,  
तस्मात् “पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण” इति घे, “लशक्तद्धिते” इति घस्येत्संज्ञायां लोपे  
च “गेरनिटि” इति णिलोपे, छान्देर्वङ्युपसर्गस्य” इति उपधाह्रस्वे, संयोगे कृते, विभ-  
क्तिकार्ये समासे च कृते तत्सिद्धिः । आकरः । आङ्पूर्वककृधातोः “पुंसि संज्ञायां घः  
प्रायेण” इति घे, घलोपे “आर्धधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे रपरं संयोगे विभक्ति-  
कार्यं च कृते तत्सिद्धिः । अवे तृस्रोर्धञ् । अवेत्युपसर्ग उपपदे तृस्तु आभ्यां घञ्  
स्यात् पुंसि संज्ञायां प्रायेणेत्यर्थः । अवतारः । अवोपसर्गपूर्वकं तृ धातोः “अवे  
तृस्रोर्धञ्” इति घञि, घस्य जस्य चेतपञ्चायां लोपे च अस्य “आर्धधातुकं शेषः”  
इत्यार्धधातुकत्वे “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणे रपरं, “अत उपधायाः”  
इति वृद्धौ, विभक्तिकार्यं च “अवतारः” इति सिद्धम् । अवस्तारः । अवोपसर्गपूर्व-  
कात् तृधातोः “अवे तृस्रोर्धञ्” इति घञि, घस्य जस्य च लोपे, आर्धधातुकत्वे  
गुणे रपरं “अत उपधायाः” इति वृद्धौ, संयोगे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । हलश्च ।  
स्पष्टम् । धापवाद इति । “पुंसि संज्ञायां घः” इति विहितस्य घस्यापवाद इत्यर्थः ।  
रामः । रस्यधातोः “हलश्च” इति घञि, अनुबन्धलोपे, “अत उपधायाः” इति वृद्धौ,  
कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे सौ, उलोपे, सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च रामः” इति  
रूपम् । अपामार्गः । अपोपसर्गकमृज् धातोः “हलश्च” इति घञि, अनुबन्धलोपे  
“भृजेवृद्धिः” इति वृद्धौ, “उरण् रपरः” इति रपरत्वे, “चजोः कुधिग्यतोः” इति  
जस्य कुत्वेन गत्वे, “उपसर्गस्य घञमनुष्ये बहुलम्” इति उपाकारस्य दीर्घे, कृद-  
न्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, सौ, उलोपे, सस्य रुत्वे, रेफस्य विसर्गत्वे च “अपामार्गः” इति  
सिद्धम् । ईषद्दुस्सुषुभिति । निवृत्तमिति । व्याख्यानादिति भावः । तर्हि “कर्तरि कृत्”  
इति कर्तरि स्थाविशत आह—तयोरेवेति । इह दुरिति कृच्छार्थ एवान्वेति, अकृ-  
च्छार्थं तु ईषदिति सु इति चान्वेति । सोऽन्ताबलात् । तदेतदाह—कृच्छ्रे दुष्कर  
इत्यादिना । दुसपूर्वककृधातोः “ईषद्दुस्सुषु कृच्छाकृच्छार्थेषु खल्” इति खलि, खल-  
लोपे, “आर्धधातुकं शेषः” इति आर्धधातुकत्वे, “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति



ईषत्करः । सुकरः ॥ आतो युच् ३३।१२८ खलोऽपवादः । ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः ॥ अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ३।४।१८ प्रतिषेधार्थयोरलंखल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात् । प्राचां ग्रहणं पूजार्थम् । “अमेवाव्ययेन” इति नियमान्नोपपदसमासः । “दो दद्घोः” । अलं दत्त्वा । “धुमास्था” इतीत्वम् । पीत्वा खलु । अलंखल्वोः किम् ? मा कार्षीत् । प्रतिषेधयोः किम् ? अलंकारः । समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३।४।२१ समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्वातोः क्त्वा स्यात् । भुक्त्वा व्रजति । द्वित्वमतन्त्रम् । स्नात्वा भुक्त्वा पीत्वा व्रजति । न क्त्वा सेट् १।२।१८ सेट् क्त्वा किञ्च स्यात् । शयित्वा । सेट् किम् ?

गुणे, “उरण् रपरः” इति रपरत्वे सस्य षत्वे विभक्तिकार्यं च कृते ‘दुष्करः’ इति रूपम् । एवमेव । ईषत्करः । सुकरः इत्यादौ बोध्यम् । आतो युजिति । कर्तृकर्मणोरिति नानुवर्तते, अस्वरितत्वात् । ईषदादिषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषूपपदेषु आदन्ताद्वातो-युच् स्यादित्यर्थः । तयोरेवेति भावे कर्मणि च । खलोऽपवाद इति । वाऽसरूपविधिसु न भवति, “क्ल्युट्मुमुन्खल्वेषु वाऽसरूपविधिर्न” इत्युक्तेः । ईषत्पानः । ईषत्पूर्वकपाधातोः “आतो युच्” इति युचि, चलोपे, “युवोरनाकौ” इति योरनादेशे, विभक्तिकार्यं च कृते, ‘ईषत्पानः’ इति । एवमेव—दुष्पानः । अत्र “इदुदुपध०” इति षः । अलंखल्वोरिति । क्त्वा स्यादिति । भावार्थकोऽयम् । “अव्ययकृतो भावे” इति वचनात् । एतच्च “तुमर्थे सेसेन” इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । ननु “उदीचां माङो व्यतीहारे” इत्युत्तरसूत्रे उदीचां ग्रहणादस्य नित्यत्वावश्यकत्वात् प्राचां ग्रहणं व्यर्थमित्यत आह—प्राचां ग्रहणं पूजार्थमिति । न च वाऽसरूपविधिराशङ्क्यः । तस्य “क्षियां किन्” इत्यतः प्रागेव प्रवृत्तेरुक्तत्वात् । उपपदसमासे ल्यपमाशङ्क्य आह—अमेवाव्ययेनेति । अलं दत्त्वेति । दानेन किञ्चिदपि साध्यं नास्तीत्यर्थः । अत्र साध्यते—अलं पूर्वकदा-धातोः “अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा” इति क्त्वाप्रत्यये कलोपे “दोदद्घोः” इति दाधातोर्दथादेशे “खरि च” इति दस्य तत्वे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे सौ समागते “क्त्वातोऽनुकसुनः” इति अव्ययसंज्ञायाम् “अव्ययादाप्सुपः” इति सोर्लुकि च कृते ‘अलं दत्त्वा’ इति । पीत्वा खलु । पानेन साध्यं नास्तीत्यर्थः । खल्वन्तात्पाधातोः क्त्वाप्रत्यये कलोपे, “धुमास्था” इति पकाराकारस्य ईत्वे ‘पीत्वा खलु’ इति । समानेति । समानकर्तृकयोरिति निर्धारणे षष्ठी । पूर्वकाल इत्यस्य पूर्वकालके धात्वर्थे इत्यर्थः, विद्यमानादिति शेषः । क्त्वा स्यादिति । अव्ययकृत्वान्नावार्थकोऽयम् । भुक्त्वा व्रजति । पूर्वकालिकान्नोपपत्त्या उत्तरकालिकं व्रजनमित्यर्थः । भुज-धातोः क्त्वाप्रत्यये कलोपे “चोः कुः” इति जस्य गत्वे, गस्य क्त्वे च कृते तत्सिद्धिः । द्वित्वमदन्त्रमिति । समानकर्तृकयोरिति द्वित्वमविवक्षितमिति भावः । न क्त्वा सेट् । किन्नेति । “असंयोगाद्दिक् किन्” इत्यतः किदित्यनुवृत्तेरिति भावः । शयित्वेति । क्त्वा

कृत्वा । रलो व्युपधाद्वलादेः संश्र १।२।२६ इवर्णोवर्णोपधाद्वलादे रलन्तात्परौ  
क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः । धुत्वा, योत्वा । लिखित्वा, लेखित्वा । व्युपधा-  
त्किम् ? वर्तित्वा । रलः किम् ? सेवित्वा । हलादेः किम् ? एषित्वा । सेट् किम् ?  
भुक्त्वा ॥ उदितो वा ७।२।५६ उदितः परस्य क्त्वा इ वा स्यात् । शमित्वा,  
शान्तत्वा । देवित्वा, शूत्वा । “दधातेर्हिः” । हित्वा ॥ जहातेश्च क्त्वा ७।४।४३  
हित्वा । हाडस्तु हात्वा ॥ समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७।१।३७ अन्ययपूर्वपदे-

भावात् न गुणनिषेधः । रलो । क्त्वासनाविति । चकारेण “पूढः क्त्वा च” इत्यतः क्त्वाया  
अनुकर्षादिति भावः । सेयविति । “न क्त्वा सेट्” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः ।  
वा कितविति । “नोपधात्पान्ताद्वा” इत्यतः “असंयोगाद्भिट् क्त्वा” इत्यतश्च तदनु-  
वृत्तेरिति भावः । धुत्वा, योत्वा । धुत् धातोः “समानकर्तृकयोः पूर्वकाले” इति  
क्त्वाप्रत्यये कलोपे, “आर्धधातुकं शेषः” इत्यार्धधातुकत्वे, “आर्धधातुकस्येड्वलादेः”  
इति इडागमे, “न क्त्वा सेट्” इति क्त्वनिषेधे प्राप्ते, “रलो व्युपधाद्वलादेः संश्र”  
इति क्त्वाप्रत्ययस्य वैकल्पिके क्त्वे, “किञ्चित् च” इति गुणनिषेधे च जाते, ‘धुत्वा’  
इति । क्त्वाभावपक्षे—“पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे कृते ‘योत्वा’ । एवमेव  
‘लिखित्वा, लेखित्वा’ इत्यत्र बोध्यम् । वर्तित्वा । अत्र इवर्णोवर्णोपधात्वाऽभावात् “न  
क्त्वा सेट्” इति नित्यं क्त्वनिषेधत्वात् “पुगन्तलघूपधस्य च” इति गुणे च कृते  
तस्मिन् । सेवित्वा । अत्र रलन्तत्वाऽभावात् “न क्त्वा सेट्” इति क्त्वाभावे “पुग-  
न्तलघूपधस्य च” इति गुणे च कृते ‘सेवित्वा’ इति । एवमेव हलाद्यभावात् ‘एषित्वा’  
भुक्त्वा । सेडभावपक्षेन क्त्वाद् गुणभावः । उदितो वेति । क्त्वा इति । “जृप्रश्च्योः” इति  
पूर्वसूत्रात्तदनुवृत्तेरिति भावः । शमित्वा, शान्तत्वा । शमधातोः “समानकर्तृकयोः पूर्वकाले”  
इति क्त्वाप्रत्यये “उदितो वा” इति वा इडागमे ‘शमित्वा’ इति । इडभावे “अनुना-  
सिकस्य ङिभलोः किञ्चित्” इति दीर्घत्वे, “नश्चापदान्तस्य झलि” इति मस्य अनुस्वारे,  
“अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः” इति परसवर्णत्वे च कृते ‘शान्तत्वा’ इति । देवित्वा, द्यू-  
त्वा । दिवधातोः क्त्वाप्रत्यये कलोपे, “उदितो वा” इति वेदि, “पुगन्तलघूपधस्य च”  
इति गुणे च कृते ‘देवित्वा’ । इडभावपक्षे—“ङ्वोः शूडनुनासिके च” इत्यृटि, ठलोपे,  
“ङ्को यणचि” इति यणि च कृते ‘शूत्वा’ इति । हित्वा । धाधातोः क्त्वाप्रत्यये कलोपे,  
“दधातेर्हिः” इति धास्थाने हित्वे कृते ‘हित्वा’ इति रूपम् । ‘ओ हाक् त्यागो’ इत्यस्य  
क्त्वायां हिभावं दर्शयति—जहातेश्च क्त्वा । हित्वेति । त्यक्त्वेत्यर्थः । हाडस्त्विति । “जहातेश्च  
क्त्वा” इति हिभावविधौ जहातेरिति निर्देशात् ‘ओहाक् त्यागो’ इत्यस्य ग्रहणम्, न तु  
‘ओहाङ् गतौ’ इत्यस्य । तस्य “भृशामिद्” इति इत्वे जिहातेरिति निर्देशापघेः ।  
समासे । “अनञ्पूर्व” इति पर्युदासात् अन्ययपूर्वपद इति लभ्यते इति मत्वा आह—

अन्यसमासे क्तो ल्यवादेशः स्यात् । तुक् । प्रकृत्य । अनवकिम् ? अकृत्वा ॥  
 आभीक्ष्ये णमुल् च ३४२२ आभीक्ष्ये योत्ये पूर्वविष्ये णमुल् स्यात् क्त्वा  
 च ॥ नित्यवीप्सयोः ८११४ आभीक्ष्ये कीप्सायां च योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात् ।  
 आभीक्ष्यं तिङन्तेष्वव्ययसंज्ञकेषु कृदन्तेषु । स्मारं स्मारं नमति शिवम् । स्मृत्वा  
 स्मृत्वा । पायं पायम् । भोजं भोजम् । श्रावं श्रावम् । अन्यथैवंकथमित्यंशु सिद्धा-  
 प्रयोगश्चेत् ३४२७ एषु कृनोणमुल् स्यात् । सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवं भूतश्चेत् कृन् ।  
 व्यर्थत्वात्प्रयोगानर्ह इत्यर्थः । अन्यथाकारम् । एवंकारम् । इत्थंकारं भुङ्क्ते ॥ सिद्धेति  
 किम् ? शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते । इत्युत्तरकृदन्तम् । इति कृदन्तप्रकरणम् ॥

अन्यथेत्यादि । तुमिति । “ह्रस्वस्य पिति” इत्यनेनेति भावः । प्रकृत्येति । कृधातोः “समा-  
 नकर्तृकयोः पूर्वकाले” इति क्त्वाप्रत्यये अनुबन्धलोपे, क्त्वाद्गुणाभावे, ‘कृत्वा’ इति  
 निष्पन्ने, प्रशब्दः प्रकर्षं, तस्य “कुगति” इति क्त्वान्तेन नित्यसमासे “समासेऽनव्यु-  
 क्तो ल्यप्” इति व्यपि, अनुबन्धलोपे, “ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्” इति तुकि, उको  
 लोपे च कृते ‘प्रकृत्य’ इति रूपम् । अकृत्वा । नञ्पूर्वककृधातोः क्त्वा, नञ्समासत्वात्  
 ल्यबभावे ‘अकृत्वा’ इति रूपम् । आभीक्ष्ये णमुल् च । “समानकर्तृकयोः पूर्वकाले”  
 इत्युत्तरमिदं सूत्रम् । तदाह—पूर्वविषये इति । नित्यवीप्सयोरिति । नित्यमिह पौन-  
 पुन्यमित्याह—आभीक्ष्य इति । योत्य इति । “नपुंसकमनपुंसकेन” इत्येकशेषः, एक-  
 ज्ञावश्च बोध्यः । स्मारं स्मारम् । स्मृधातोः “आभीक्ष्ये णमुल् च” इति णमुलि, णक-  
 रोकारलकारलोपे ‘स्मृजम्’ इत्यवशिष्टे, “अचो ङिति” इति वृद्धौ, रपरे च ‘स्मारम्’  
 इति जाते, “नित्यवीप्सयोः” इति द्वित्वे, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वात्सौ, “कृन्मेजन्तः”  
 इत्यव्ययत्वे, “अन्ययादाप्सुपः” इति सुपो लुकि, मस्यानुस्वारे च ‘स्मारं स्मारं नमति  
 शिवम्’ इति सिद्धम् । स्मृत्वा स्मृत्वा । स्मृधातोः “आभीक्ष्ये णमुल् च” इति क्त्वाप्र-  
 त्यये कलोपे, गुणाभावे, “नित्यवीप्सयोः” इति द्वित्वे च ‘स्मृत्वा स्मृत्वा’ इति । पायं  
 पायम् । पाधातोः “आभीक्ष्ये णमुल् च” इति णमुलि, अनुबन्धलोपे, “जातो तुक्  
 चिपकृतोः” इति युकि, उको लोपे, “नित्यवीप्सयोः” इति द्वित्वे च कृते, पायंपाव-  
 मिति । भोजंभोजम् । भुजधातोः णमुलि, अनुबन्धलोपे, “पुगान्तलवृषधस्य च” इति गुणे  
 “नित्यवीप्सयोः” इति द्वित्वे च कृते, भोजंभोजमिति । श्रावं श्रावमिति । श्रुधातोः  
 “आभीक्ष्ये णमुल् च” इति णमुलि, अनुबन्धलोपे, “अचो ङिति” इति वृद्धौ, “एचो-  
 ऽयवायावः” इत्यादि, “नित्यवीप्सयोः” इति द्वित्वे, मस्यानुस्वारे च कृते, श्रावंश्राव-  
 मिति । अन्यथैवम् । अन्यथा, एवम्, कथम्, इत्थम्, एवामव्ययानां इन्द्रात्समसिच-  
 द्ब्यचनम् । सिद्धः अप्रयोगः—प्रयोगोऽयम् यस्य कृजः स सिद्धाप्रयोग इति विग्रहः ।  
 अकृत्वा—एषु कृन् प्रत्ययि । अनु कृत्वा क्त्वाप्रयोगे क्त्वं तदुक्तमिति । अर्थावगात्वाभावे

## अथ विमर्शयथाः ।

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २।३।४६ नियतोपस्थितिकः  
प्रातिपदिकार्थः । मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः । प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्रायाधिक्ये  
परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात् ॥ प्रातिपदिकार्थमात्रे-उच्चैः । नीचैः ।  
कृष्णः । श्रीः । ज्ञानम् । लिङ्गमात्रे-तटः । तटी । तटम् । परिमाणमात्रे-द्रोणो  
व्रीहिः । वचनं संख्या-एकः । द्वौ । बहवः ॥ सम्बोधने च २।३।४७ प्रथमा  
स्यात् । हे राम । इति प्रथमा । कर्तुरोप्सिततमं कर्म १।४।४६ कर्तुः क्रियया

तत्प्रयोगो वा किमर्थं इत्यत आह—व्यर्थत्वादिति । निष्फलत्वादिति भावः । अन्यथाका-  
रम् । अन्यथापूर्वककृधातोः “अन्यथैवंकथमित्यसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्” इति णमुळि,  
अनुबन्धलोपे, “अथो न्यति” इति कृद्भौ, अन्यत्वात्सुपो लुकि ‘अन्यथाकारम्’ इति  
रूपम् । एवमेव ‘एवङ्कारम्’ इत्यादि । इति कृदन्तप्रकरणम् ।

प्रातिपदिकार्थलिङ्गेति । पदम्पदमिति प्रतिपदम्, प्रतिपदं भवं प्रातिपदिकम्,  
तत्त्वार्थः प्रातिपदिकार्थः । स च लिङ्गञ्च परिमाणं च वचनं च प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरि-  
माणवचनानि । तान्येवेति प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रं तस्मिन् । “इन्द्रादौ  
इन्द्रमध्ये इन्द्रान्ते च अयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते” इति भाष्योक्त्वा इन्द्रान्ते  
अयमाणमात्रपदस्य प्रत्येकमन्वयात्प्रातिपदिकार्थमात्रं इत्याद्यर्थः सम्पद्यते । नियतो-  
पस्थितिक इति । नियता-व्यापिका उपस्थितिर्यस्य स नियतोपस्थितिकः । यस्मिन्प्राति-  
पदिके उच्चारिते सति वस्तुार्थस्य नियमेनोपस्थितिः स प्रातिपदिकार्थः । मात्रशब्दत्वेति ।  
“इन्द्रान्ते अयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते” इति न्यायादिति भावः । उच्चैः, नीचैः,  
कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम् । अत्र “प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा” इत्यनेन  
सूत्रेण प्रातिपदिकार्थमात्रे प्रथमा विभक्तिर्भवति । तटः, तटी, तटम् । अत्र प्रातिपदि-  
कार्थत्वेऽपि लिङ्गाधिक्ये प्रथमा । परिमाणमात्रे द्रोणो व्रीहिः । द्रोणो व्रीहिरित्यत्र द्रोण-  
शब्दात्प्रातिपदिकार्थमात्रे प्रथमाविधानेऽभेदान्वयो दुर्वारः स्यात् । स च अत्र बाधितः  
स्यात् । द्रोणव्रीहोर्भिन्नत्वादतः परिमाणमात्रे प्रथमाविधानम् । तेन द्रोणरूपं यत्परि-  
माणम्; तत्परिच्छिन्नो व्रीहिरित्यर्थस्य लाभः । वचनं संख्या । ननु एकादिशब्दादेव-  
कत्वादिसंख्याबोधसिद्धौ तदर्थं संख्यायामेकवचनादिविधानं विफलमिति चेद् ? न ।  
‘अपदं न प्रयुज्यते’ इति वचनेन तस्य विधानस्य सार्थक्यात् । न चैवं तर्हि  
एकशब्दाद्द्विवचनबहुवचनापत्तिरिति वाच्यम् । अनन्वितायैविभक्तिरूपनापेक्षया  
ऽनुवादकविभक्तिर्न्यायेति वचनात् । एकः, द्वौ, बहवः । अत्र वचनाधिक्यात्  
“प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा” इत्यनेन प्रथमा । सम्बोधने चेति ।  
सम्बोधने अधिके तन्मेऽपि प्रथमा स्यादित्यर्थः । सम्बोधनमभिमुखीकृत्य ज्ञापकम् ।

आमुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् । कर्मणि द्वितीया २।३।२ अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात् । हरि भजति । अभिहितेतु कर्मादौ प्रथमा । हरिः सेव्यते । लक्ष्म्या हरिः सेवितः ॥ अकथितं च १।४।११ अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् । “दुह्याच्चपचूदण्डरुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथमुषाम् । कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्” ॥१॥ गां दोग्धि पयः । बलिं याचते वसुधाम् । तण्डुलानोदनं पचति । गर्गान् शतं दण्डयति । व्रजमवरुणद्धि गाम् । माणवकं पन्थानं पृच्छति । माणवकं धर्मं ब्रूते, शास्ति वा । शतं जयति देवदत्तम् । सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति । देवदत्तं शतं मुष्णाति । ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा । अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा । बलिं मिलते वसुधाम् । माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते.

हे राम । अत्र “सम्बोधने च” इति सम्बोधनाधिक्ये प्रथमा । कर्तुरीप्सिततमं कर्मेति । कर्तुरिति “क्तस्य च वर्तमाने” इति कर्तरि षष्ठी । आप्नोतेः सन् । द्वित्वम् । कर्त्राऽऽप्तु-  
मिष्यमाणतमं कर्मेत्यर्थः । कर्ता च धातूपात्तव्यापाराश्रयः । स च केनाप्तुमिच्छतीति  
करणाकाङ्क्षायां विशेषणीभूतेन व्यापारेणेत्यर्थाद्भव्यते । तदाह—क्रिययेति । कारक-  
मिति । एतच्च “कारके” इत्यधिकाराद्भव्यते । तत्र हि व्यत्ययेन प्रथमार्थं सप्तमी ।  
प्रतिस्मृत्वा वाक्यं मित्वा कारकसंज्ञाऽनेन विधीयते । तद्यथा अपाये ध्रुवं कारकसंज्ञं  
स्यादित्यादि । कर्मणि द्वितीया । द्वितीयादयः शब्दाः पूर्वाचार्यैः सुपां त्रिकेषु स्मर्यन्ते  
तरेवात्र व्यवहारः । हरिं भजतीति । अत्र “कर्तुरीप्सिततमं कर्म” इति कर्मसंज्ञायाम्  
“कर्मणि द्वितीया” इति द्वितीया विभक्तिर्जाता । हरिः सेव्यते । अत्र तिङ्प्रत्ययेन  
उक्तकर्मत्वाच्च द्वितीया । लक्ष्म्या हरिः सेवितः । अत्र कृतप्रत्ययेन उक्तकर्मत्वाच्च द्वितीया ।  
अकथितञ्चेति । अत्र अविवक्षा द्विधा प्राप्तिपूर्विका अप्राप्तिपूर्विका च । दुह्याच् पच इति ।  
दुह प्रपूरणे । दुयाच् याञ्चायाम् । हुपचष् पाके । दण्ड दण्डनिपातने । रुधिर् आवरणे ।  
प्रच्छ जीप्सायाम् । चिञ् चयने । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि । शासु अनुशिष्टौ । जि जये ।  
मथ्य विलोढने । मुष् स्तेये । णीञ् प्रापणे । हृञ् हरणे । कृष् विलेखने । वह प्रापणे ।  
एषां कर्मणा युक्तं कर्माकथितं कर्म इत्युच्यते । गां दोग्धि पयः । अत्र ‘गोः पयो  
दोग्धि’ इति अपादानस्याविवक्षितत्वात् “अकथितञ्च” इति कर्मसंज्ञायां “कर्मणि  
द्वितीया” इति द्वितीयायां कृतायां ‘गां पयो दोग्धि’ इति । बलिं शब्दे अपादानत्व-  
स्याविवक्षितत्वात् “अकथितञ्च” इति कर्मसंज्ञायाम् “कर्मणि द्वितीया” इति द्विती-  
यायां कृतायां बलिं याचते वसुधाम् । तण्डुलैरोदनमपचति इत्यत्र करणस्याविवक्षितत्वात्  
“अकथितञ्च” इति कर्मसंज्ञायाम् “कर्मणि द्वितीया” इति द्वितीयायाम् ‘तण्डुलानोदनं  
पचति’ इति । गर्गान् शतं दण्डयति । अत्र गर्गोऽर्थः इति अपादानस्याविवक्षितत्वात् कर्म-  
संज्ञायां द्वितीया । व्रजमवरुणद्धि गाम् । अत्र अधिकरणस्याऽविवक्षितत्वात् कर्म । माणवकं

वक्षीत्यादि ॥ इति द्वितीया । स्वतन्त्रः कर्ता १।४।१४ क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् । साधकतमं करणम् १।४।४२ क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोप-  
कारकं करणसंज्ञं स्यात् ॥ कर्तृकरणयोस्तृतीया २।३।१८ अनभिहिते कर्तरि  
करणे च तृतीया स्यात् । रामेण बाणेन हतो वाली ॥ इति तृतीया । कर्मणा यम-  
मिप्रैति स सम्प्रदानम् १।४।३२ दानस्य कर्मणा यममिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः ॥  
चतुर्थी सम्प्रदाने २।३।१३ विप्राय गां ददाति ॥ नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालं-  
वषड्योगाच्च २।३।१६ एभिर्योगे चतुर्थी स्यात् । हरये नमः । प्रजाभ्यः स्वस्ति ।  
अग्नये स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा । अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम् । तेन दैत्येभ्यो हरिरलं  
प्रभुः, समर्थः, शक्त इत्यादि ॥ इति चतुर्थी । ध्रुवमपायेऽपादानम् १।४।२४ अपायो-

पन्थानं पृच्छति । अत्र अपादानस्याविवक्षितत्वात्कर्म । एवमग्रेऽप्युक्तम् । स्वतन्त्रः  
कर्ता । स्वतन्त्र इति प्रधानीभूत उच्यते । अगुणीभूतो यः । स्वात्त्यादीनां वस्तुतः  
स्वातन्त्र्याभावेऽपि स्थाली पचति, काष्ठानि पचन्ति इत्यादि प्रयोगोऽपि साधुरेवेति  
ध्वनयति—विवक्षितोऽर्थ इति । साधकतमम् । प्रकृष्येति । यद्व्यापारादनन्तरं फलनिष्प-  
त्तिस्तत्प्रकृष्टम् । उक्तञ्च—‘क्रियायाः परिनिष्पत्तिर्यद्व्यापारादनन्तरम् । विवक्ष्यते यदा  
यत्र करणं तत्तदा स्मृतम्’ इति । कर्तृकरणयोस्तृतीया । “अनभिहिते” इत्यधिकारा-  
दाह—अनभिहिते इति । रामेण बाणेन हतो वाली । अत्र “साधकतमं करणम्” इति  
करणसंज्ञायाम् “कर्तृकरणयोस्तृतीया” इति रामशब्दात् कर्तरि तृतीया, बाणशब्दाच्च  
करणे तृतीया ज्ञेया । कर्मणायमभिप्रैति । अन्वर्थसंज्ञाविज्ञानाददातिकर्मणोति विज्ञा-  
यते । सम्यक्प्रदीयतेऽस्मै तत्सम्प्रदानमिति । अत एवाह—दानस्येति । दानक्रियाक-  
र्मणा कर्ता यममिप्रैति सम्बन्धनाति सम्बन्धुमीप्सति वा तत्कारकं सम्प्रदानसंज्ञकमि-  
त्यर्थः । चतुर्थी सम्प्रदाने । सम्प्रदाने कारके चतुर्थी विभक्तिर्मवति । विप्राय गां ददाति ।  
अत्र “कर्मणा यममिप्रैति” इति सम्प्रदानसंज्ञायाम् “सम्प्रदाने चतुर्थी” इति  
चतुर्थी । नमः स्वस्तीति । युज्यते इति योगः, कर्मणि घञ् । नमस् इत्यादिभिर्युक्तादि-  
त्यर्थः । फलितमाह—एभिर्योगे इति । हरये नमः । अत्र सर्वत्र “नमःस्वस्तिस्वाहास्वधा-  
लवषड्योगाच्च” इति चतुर्थी । प्रजाभ्यः स्वस्तीति । प्रजासम्बन्धिकुशलमित्यर्थः ।  
अग्नये स्वाहेति । अग्न्युद्देश्यकं द्रव्यदानमित्यर्थः । पितृभ्यः स्वधेति । पितृद्देश्यकं  
द्रव्यदानमित्यर्थः । अलमिति । वार्तिकमेतत् । अलमित्यनेन पर्याप्त्यर्थकशब्दानां  
ग्रहणमित्यर्थः । तेनेति । पर्याप्त्यर्थकग्रहणेनेत्यर्थः । ध्रुवमपाये । ध्रुगतिस्थैर्यथोः ।  
अस्मात्पचाद्यचि, कुटादित्वान्निस्त्वे, उवङ् । ध्रुवस्थैर्ये इति केचित् । तत्रेगुपधेति कः ।  
ध्रुवं स्थिरम् । अपायशब्देन विवक्षितमाह—विश्लेष इति । एवं च प्रकृतधात्वर्थानाम-  
श्लेषे सति तज्जन्यविभागाश्रयो ध्रुवमिति फलितम् । तच्चार्याद्वचिरेवेत्याह—अवधि-

विस्लेषस्तस्मिन्मध्ये यत् प्रवचनविभूतं चारकं तदपादानं स्यात् ॥ अपादाने पञ्चमी  
 २।३।३८ ग्रामादायाति । धावतोऽश्वात्पततीत्यदि ॥ इति पञ्चमी । षष्ठी शेषे २।  
 ३।५० कारकप्रतिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वाभिभावादिसम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी स्यात् ।  
 राज्ञः पुरुषः । कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव । सततं गतम् । सर्पिषो  
 जानीते । मातुः स्मरति । एधोदकस्योपस्कुरुते । भजे शम्भोश्चरणयोः ॥ इति षष्ठी ।  
 आधरोऽधिकरणम् १।४।४५ कर्तृकर्मद्वारा तच्चिष्टक्रियाया आधारः कारकमधि-  
 करणं स्यात् ॥ सप्तम्यधिकरणे च २।३।३६ अनभिहिते अधिकरणे सप्तमी  
 स्यात् । चकारादूरान्तिकार्थेभ्यः । औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधार-

भूतमिति । अपादाने । स्पष्टत्वाच्च व्याख्यातम् । ग्रामादायातीति । आगच्छतीत्यर्थः ।  
 कस्मादित्याकाङ्क्षाविषयत्वात् ग्रामोऽवधिरिति अपादानत्वात् पञ्चमी । धावत इति । इह  
 धावनक्रियाविशिष्टस्याश्वस्य प्रकृतपत्पत्पाचक्रियां प्रत्यवधिरवं न विरुध्यते । षष्ठी  
 शेषे । उक्तादन्यः शेषः । “कर्मणि द्वितीया” इत्यादिसूत्रेषु द्वितीयादिविधिषु हि कर्तृ-  
 कर्तृकरणसम्प्रदानापादानाधिकरणकारकाण्यनुक्रान्तानि । प्रथमाविधौ प्रातिपदिका-  
 र्योऽनुक्रान्तः । एतेभ्योऽन्यः स्वस्वाभिभावादिसम्बन्धः शेषपदार्थ इत्यर्थः । राज्ञः  
 पुरुषः । अत्र सम्बन्धविवक्षायां “षष्ठी शेषे” इति षष्ठी । कर्मादीनामिति । कर्मत्व-  
 कर्तृत्वादीनामपि सम्बन्धस्य सामान्यात्मना विवक्षायां षष्ठ्येव । न तु कार-  
 कविभक्तव इत्यर्थः । सतां गतमिति । सत्पुरुषसम्बन्धि गमनमित्यर्थः । अत्र  
 कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठी । सर्पिषो जानीते इति । करणवत्  
 सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठी । सर्पिःसम्बन्धि प्रवर्तनमित्यर्थः । मातुः स्मरतीति । कर्मत्व-  
 स्व शेषत्वविवक्षायां मातुसम्बन्धिस्मरणमित्यर्थः । एधो दकस्योपस्कुरुते । एधः—काष्ठं,  
 दकस्य = उदकस्य, उपस्कुरुते गुणमाधत्ते इति तदर्थः । एधशब्द अकारान्तः पुल्लिङ्गः,  
 “कारके” इति सूत्रे ‘एधाः पठ्यन्ते’ इति भाष्यप्रयोगात् । सान्तः क्लीबोऽपि । यजे  
 शम्भोश्चरणयोरिति । अत्र चरणयोः कर्मत्वस्य शेषत्वविवक्षायां षष्ठी । शम्भुचरणसम्बन्धि  
 भजनमित्यर्थः । आधरोऽधिकरणम् । आध्रियतेऽस्मिन्नित्याधारः, आहपूर्वकाद्वरतेरधि-  
 करणे घञ् । अधिक्रियतेऽस्मिन्नित्यधिकरणञ् । अधिपूर्वकात्करोतेर्लुट् । आधारोऽधि-  
 करणसंज्ञः इत्यर्थं कस्याधार इत्याकाङ्क्षोदये क्रियाधारो गृह्यते, तत्र साक्षात्क्रियाया  
 आधारभावात् कर्तृकर्मद्वारा कर्तृकर्मनिष्ठक्रियाया आधारो गृह्यते, तदाह—कर्तृकर्मद्वारा  
 तच्चिष्टक्रियाया इति । कर्तृकर्मव्यवहितामसाक्षाद्धारयत्क्रियाम् । उपकुर्वन्तिवातिहौ  
 घास्त्रेऽधिकरणं स्मृतमिति । सप्तम्यधिकरणे च । “अनभिहिते” इत्यधिकरात् चकारात्  
 “दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च” इत्यस्याप्यनुकर्षणत्वाद्—अनभिहिते इत्यादिना ।  
 औपश्लेषिकः । उप-सर्पिषे, शेषे—सम्बन्ध उपश्लेषः, तत्र कृतसौपश्लेषिकः । अत्र

स्त्रिया । कटे आस्ते । स्थात्यां पचति । मोक्षे इच्छाऽस्ति । सर्वस्मिन्मात्राऽस्ति ।  
 क्तस्य दूरे अन्तिके वा ॥ इति सप्तमी । इति विभक्त्यर्थाः ॥

### अथ समासाः ।

समासः पञ्चधा । तत्र समसनं समासः । स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलस-  
 मासः प्रथमः । प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः । प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधान-  
 स्तत्पुरुषस्तृतीयः । तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः, कर्मधारयभेदो द्विगुः । प्रायेणान्यपदा-

प्रथम आधारः । अस्योदाहरणम्—कटे आस्ते । अत्र “आधारोऽधिकरणम्” इत्यधिक-  
 रणसंज्ञायाम् “सप्तम्यधिकरणे च” इति सप्तमी । एवमेव—“स्थात्यां पचति” इत्यत्रापि  
 सप्तमी । वैषयिकः—विषये भवो वैषयिकः । अस्योदाहरणम्—मोक्षे इच्छा अस्ति ।  
 अत्र कर्तृभूतेच्छागतं सत्ताक्रियां प्रति मोक्षस्य विषयतासम्बन्धपुरस्कारेण इच्छाद्वारा-  
 चारत्वाद्धिकरणम् । अभिव्यापकः । अभि—सर्वतो भावेन व्याप्नोतीति अभिव्यापकः ।  
 चः आचरतः सर्वमभिव्याप्नोति सोऽभिव्यापक इत्युच्यते । अस्योदाहरणम्—सर्व-  
 स्मिन्मात्राऽस्ति । सर्वस्मिन्मात्राभिव्याप्य आत्मा वर्तत इत्यर्थः । अत्र आत्मरूपकर्तृगतं  
 सत्ताक्रियां प्रति कृत्स्नव्याप्तिं पुरस्कृत्य आत्मद्वारा सत्ताधारत्वात्सर्वस्याधिकरणत्वम् ।  
 क्तस्य दूरे अन्तिके वेति । अत्र चकारात् “दूराऽन्तिकार्थेभ्यः” इत्यनुवर्त्य सप्तमी विधी-  
 यते । प्रातिपदिकार्थे विधिरयम् । दूरम्—अन्तिकमित्यर्थः । इति विभक्त्यर्थः ।

तत्रेति । पञ्चविधेषु समासेष्वित्यर्थः । समसनम् । इत्यस्य मिलनमित्यर्थः । तच्च  
 पृथगर्थपदानामेकार्थोपस्थितिजनकत्वरूपमित्यर्थः । विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्त इति । विशेष-  
 बाध ताः संज्ञाविशेषसंज्ञाः, अव्ययीभावादयस्तामिविनिर्मुक्तो रहितो विशेषसंज्ञा-  
 विनिर्मुक्तः । अव्ययीभावादिविशेषसंज्ञारहितः केवलसमास इत्यभिधीयते । प्रायेण  
 पूर्वपदार्थप्रधानः । पूर्वपदार्थः पदार्थः, स प्रधानो यस्मिन् स पूर्वपदार्थप्र-  
 धानः । यस्मिन् समासे पूर्वपदार्थस्य प्राधान्यं सोऽव्ययीभावसंज्ञक इत्यर्थः । रूप-  
 प्रति, उन्मत्तगङ्गामित्याद्यव्ययीभावेऽपि सुपोन्मत्तयोः पूर्वपदार्थयोरेप्राधान्यात्सप्तम्य-  
 भिचारविनिर्मुक्त्यर्थकमुक्तलक्षणे प्रायेणेति पदम् । प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानः । उत्तरपदार्थ-  
 प्रधानो यस्मिन् स उत्तरपदार्थप्रधानः । यस्मिन्समासे उत्तरपदार्थस्य प्राधान्यं सः ।  
 तत्पुरुषसमासेऽपि अतिमात्रादौ अतिक्रमणकर्तृत्वरूपपूर्वपदार्थस्यैव प्राधान्येन मालादि-  
 रूपोत्तरपदार्थस्याप्राधान्यादुक्तलक्षणे प्राप्त्यभिचारमिदृशे प्रायेणेति पदम् । प्रायेणान्य-  
 पदार्थप्रधानः । अन्यः पदार्थः प्रधानो यस्मिन् सोऽन्यपदार्थप्रधानः । यस्मिन् समासे  
 अन्यपदार्थस्य वर्तिपदार्थतिरिक्तस्य प्राधान्यं स बहुव्रीहिसम्भक्त इत्यर्थः । बहुव्रीह-  
 ष्वपि द्वित्रा इत्यादयस्तत्पदार्थस्य प्राधान्यात्सप्तम्यर्थकम् । प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानः ।



र्थप्रधानो बहुव्रीहिवर्तुर्धः । प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः ॥ समर्थः पद-  
विधिः २।१।१ पदसम्बन्धी यो विधिः स समार्थाश्रितो बोध्यः ॥ प्राक्कडारा-  
त्समासः २।१।३ कडाराः कर्मधारये इत्यतः प्राक्समास इत्यधिक्रियते ॥ सह  
सुपा २।१।४ सुप् सुपा सह वा समस्यते । समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक् ।  
परार्थाभिधानं वृत्तिः । कृतद्धितसमासैकशेषसनायन्तधातुरूपाः पञ्चवृत्तयः । वृत्त्यर्था-  
वबोधकं वाक्यं विग्रहः । स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा । तत्र पूर्वं भूतो भूतपूर्व  
इति लौकिकः । पूर्वं अम् भूत सु इत्यलौकिकः । “भूतपूर्वं चरट्” इति निर्देशाद्भू-  
तशब्दस्य पूर्वनिपातः । ( इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च ) वागर्थो इव, वागर्थ-  
विव । इति केवलसमासः प्रथमः ॥

उभयः पदार्थः प्रधानो यस्मिन् स उभयपदार्थप्रधानः । यस्मिन् समासे उभयपदार्थस्य  
प्राधान्यं स द्वन्द्वसञ्ज्ञक इत्यर्थः । पाणिपादमित्यादिद्वन्द्वेऽप्युभयपदार्थस्याऽप्राधान्या-  
दुक्तं प्रायेणेति । समर्थः पदविधिः । सामर्थ्यं द्विविधम् । व्यपेक्षारूपम्, एकार्थीभाव-  
रूपञ्च । तत्र स्वार्थपर्यवसायिनां पदानाम् आकाङ्क्षादिवशात्परस्परसम्बन्धरूपा व्य-  
पेक्षा । सा च राज्ञः पुरुषः इत्यादिवाक्ये एव । स्वार्थपर्यवसायिनां पदानां विशेषण-  
विशेष्यभावावगाहेकोपस्थितिजनकत्वमेकार्थीभावत्वम् । तच्च ‘राजपुरुष’ इत्यादि-  
श्रुचावेव । प्राक्कडारात् । ‘आकडारात्’ इत्येव प्रागिति सिद्धे प्राग्ग्रहणमेकसञ्ज्ञाऽधि-  
कारेऽपि अव्ययीभावादिसञ्ज्ञासमुच्चयार्थमिति भाष्ये स्पष्टम् । समासः । सम्पूर्वकस्य  
अस्यतेरेकीकरणात्मकः संश्लेषोऽर्थः । समस्यते अनेकं पदमिति समासः । “अकर्तारि च  
कारके सञ्ज्ञायाम्” इति कर्मणि घञ् । अत एव मूले समस्यते इति वक्ष्यते । तथाच  
अन्वयैयं सञ्ज्ञा । सह सुपा । “सुबामन्त्रिते” इत्यतः सुबित्यनुवर्तते । सुबन्तं सुब-  
न्तेन सहोच्चारितं समाससञ्ज्ञं भवतीति फलति । पदार्थाऽभिधानं वृत्तिरिति । प्रत्यया-  
न्तर्भावेणाऽपरपदार्थान्तर्भावेण वा यो विशिष्टोऽर्थः स परार्थः, सोऽभिधीयते येन तत्प-  
रार्थाभिधानमित्यर्थः । वृत्त्यर्थावबोधकमिति । वृत्तीनां पञ्चविधानामर्थस्यावबोधकं वाक्यं  
विग्रह इत्यर्थः । लौकिकोऽलौकिकश्चेति । लोके प्रयोगाहो लौकिकः । लोके प्रयोगानहो-  
लौकिक इत्यर्थः । भूतपूर्वः । पूर्वं + अम्, भूत + सु इत्यलौकिकविग्रहे “सह सुपा” इति  
समासे जाते समासत्वात् “कृतद्धितसमासाश्च” इति प्रातिपदिकसंज्ञायाम् “सुपो धातु-  
प्रातिपदिकयोः” इति सुपो लुकि, ‘पूर्वं + भूत’ इत्यवशिष्टे अत्र ‘प्रथमानिदिष्टं समास  
उपसर्जनम्’ इति द्वयोरप्युपसर्जनसञ्ज्ञायाम् “उपसर्जनं पूर्वम्” इति विनिगमका  
ऽभावात् उभयोरपि पूर्वनिपाते प्राप्ते “भूतपूर्वं चरट्” इति निर्देशात् भूतशब्दस्य  
पूर्वनिपाते “एकदेशविकृत” न्यायेन प्रातिपदिकत्वात्सौ, शब्दे विसर्गो च तत्सिद्धिः ।  
इवेनेति । इवेत्यव्ययेन सुबन्तस्य समासः । “सुपो धातु” इति लुगभावः । पूर्वपदस्य

## अथाव्ययीभावः ।

अव्ययीभावः २।१।५। अधिकारोऽयं प्राक् तत्पुरुषात् ॥ अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्युद्ध्यर्थाभावात्प्रत्ययसम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययोगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु २।१।५ विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह कृत्यं समस्यते । प्रायेणाविग्रहो नित्यसमासः, प्रायेणास्वपदविग्रहो वा । विभक्तौ-हरि ङि अधि इति स्थिते ॥ प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् १।२।४३ समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात् ॥ उपसर्जनं पूर्वम् २।२।३० समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम् । इत्यधेः प्राक् प्रयोगः । सुपो लुक । एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः । “अव्ययीभावश्च” इत्यव्ययत्वात्सुपो लुक । अधिहरि ॥ अव्ययीभावश्च २।४।१८ अयं नपुंसकं

प्रकृतिसिद्धस्वरश्च भवति, न तु समासस्वर इति वक्तव्यमित्यर्थः । “सह सुपा” इति सिद्धे समासविधानमिवशब्दस्य पूर्वनिपातनिवृत्त्यर्थम् । अन्यथा अत्र इवशब्दस्यापि सुबन्तत्वाविशेषात् समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टत्वेनोपसर्जनत्वात् पूर्वनिपातः स्यात् । वागर्थाविव । अत्र “इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च” इति समासे विभक्त्यलोपे च कृते “एचोऽयवायावः” इत्यावादेशे च तत्सिद्धिः । इति केवलसमासविवरणम् ।

अव्ययीभावः । अधिकारोऽयमिति । एकसंज्ञाऽधिकारेऽपि अनया संज्ञया समाससंज्ञा न बाध्यते इति “प्राक्कारात्” इत्यत्रोक्तम् । अव्ययं विभक्तौत्यादि । अव्ययमिति शब्दनिर्देशः । विभक्त्यादिरर्थनिर्देशः । उच्यन्ते इति वचनाः । कर्मणि क्युट् । विभक्ति, समीप, समृद्धि, व्युद्भि, अर्थाभाव, अत्यय, असम्प्रति, शब्दप्रादुर्भाव, पश्चात्, यथा, आनुपूर्व्य, योगपद्य, सादृश्य, सम्पत्ति, साकल्य, अन्त, एतेषां षोडशानां इन्द्रः । ते च ते वचनाश्च इति विग्रहः । विभक्त्यर्थादिषु वाच्येष्वित्यर्थः । अव्ययीभावः, समासः, इति चाधिकृतम् । तदाह—विभक्त्यर्थादिष्विति । हरि ङि इति । सन्धिकार्या-स्यागलौकिकविग्रहवाक्य एव समासप्रवृत्तेः । “प्रत्ययोत्तरपदयोश्च” इति भाष्यसम्मतत्वादिति भावः । प्रथमानिर्दिष्टमिति । अत्र समासपदं लङ्घयया समासविधायकशास्त्रपरम् । तथा च समासविधायकशास्त्रे प्रथमान्ततयोच्चरितं यत्पदं तदुपसर्जनसंज्ञमिति निष्कृष्टोऽर्थः । उपसर्जनं पूर्वमिति । अत्र सूत्रे लौकिकोपसर्जनं शास्त्रीयोपसर्जनं च गृह्यते । पूर्वमित्यस्य पूर्वं प्रयोज्यमित्यर्थ इति भावः । एकदेशविकृतस्येति । छिन्नपुच्छे शुनि यथा श्वत्वव्यवहारो न विहन्यते, तथा सुब्विशिष्टस्य प्रातिपदिकत्वे सुपो निवृत्तावपि प्रातिपदिकत्वं न विहन्यते इत्यर्थः । अधिहरि । हरो इत्यधिहरि, अत्र ‘हरि ङि अधि’ इति स्थिते “अव्ययं विभक्तिः” इति समासे “प्रथमानिर्दिष्टं समास उप-

स्यात् । गाः पातीति गोपस्तस्मिन्नित्यधिगोपम् । नाव्ययीभावादतोऽमृत्वपञ्च-  
म्याः २।४।८३ अदन्तादव्ययीभावात्सुपो न लुक् तस्य तु पञ्चमीं विना अमादेशश्च  
स्यात् । तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् २।४।८४ अदन्तादव्ययीभावात्तृतीयासप्तम्योर्बहुल-  
मम्भावः स्यात् । उपकृष्णम् , उपकृष्णेन । मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम् । यवनानां व्यृद्धिः

सर्जनम्” इत्यधीत्यस्योपसर्जनसंज्ञायाम् “उपसर्जनं पूर्वम्” इत्यधीत्यस्य पूर्वनिपातत्वे  
‘अधिहरि ङि’ इति जाते समासत्वात्प्रातिपदिकत्वे “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति  
हेर्लुकि, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात्समुदायात्सौ, “अव्ययीभावश्च” इत्यने-  
न सूत्रेणान्वयत्वात् “अव्ययादाप्सुपः” इति सोर्लुकि च कृते ‘अधिहरि’ इति  
रूपम् । अव्ययीभावश्च । अयं नपुंसकं स्यादिति । “स नपुंसकम्” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति  
भ्रमः । अधिगोपम् । गोपि, इत्यधिगोपम्—इत्यत्र ‘गोपा ङि अधि’ इति स्थिते  
“अव्ययं विभक्तिः” इति समासे, “कृतद्धितसमासाश्च” इति प्रातिपदिकसंज्ञायाम्  
“सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति हेर्लुकि, “प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्” इति  
अधीत्यस्योपसर्जनसंज्ञायाम्, “उपसर्जनं पूर्वम्” इति तस्य पूर्वनिपाते, एकदेशविकृ-  
तन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सौ, “अव्ययीभावश्च” इत्यनेन क्लीबत्वात् “इत्स्वो नपुंसके  
प्रतिपदिकस्य” इति ‘गोपा’ इत्यस्य इत्स्वत्वे, “अव्ययीभावश्च” इत्यनेनान्वयत्वात्  
“अव्ययादाप्सुपः” इति सोर्लोपे प्राप्ते, तस्माद्वित्वा “नाव्ययीभावादतोऽमृत्वपञ्चम्याः”  
इति सोरमि, “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपे च ‘अधिगोपम्’ इति रूपम् । नाव्ययीभावा-  
दिति । अम् तु अपञ्चम्या इति छेदः । नाव्ययीभावादतः इत्येकं वाक्यम् । “व्यञ्जि-  
याचै” इत्यतो लुगित्यनुवर्तते । “अव्ययादाप्सुपः” इत्यतः सुप इति च । अता अव्य-  
यीभावो विशेष्यते । तदन्तविधिः । तद्वाह—अदन्तादव्ययीभावादित्यादिना । अम् तु  
अपञ्चम्याः इति वाक्यान्तरम् । पञ्चमीभिन्नस्य तु सुपः अमादेशः स्यात् । पञ्चम्यास्तु  
अम् न भवतीति लभ्यते । तद्वाह—तस्य पञ्चमीं विनेति । तृतीयासप्तम्योरिति । “नाव्य-  
यीभावाद” इत्यस्मात् अत इत्यनुवर्तते, तद्वाह—अदन्तादिति । अमादेशाभावे तु  
“नाव्ययीभावात्” इत्यलुक् । उपकृष्णम् । उपकृष्णेन । कृष्णस्य समीपे ‘उपकृष्णम्’  
इत्यत्र ‘अव्ययं विभक्तिसमीप’ इत्यादिना समासे, प्रातिपदिकत्वे सुपो लुकि, “व्य-  
मानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्” इति समीपार्थक—उप इत्यस्य उपसर्जनसंज्ञायाम् “उप-  
सर्जनम्पूर्वम्” इति पूर्वनिपाते, समुदायात् टाविभक्तौ, “तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्” इत्य-  
मादेशे “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपे च ‘उपकृष्णम्’ इति । अम्भावाभावे “टाडसिङ-  
सामिनात्स्याः” इति इनादेशे गुणे च ‘उपकृष्णेन’ इति सिद्धम् । सुमद्रम् । अत्र  
“अव्ययं विभक्तिः” इत्यादिना समुद्रमर्थक ‘सु’ इत्यव्ययेन सह समासे, प्रातिपदिकत्वे,  
सुपो लुकि, सोरमसर्वपसंज्ञायाम्, तस्य पूर्वनिपाते, समुदायात्सौ, “अव्ययीभावश्च”  
इत्यादात्सुपः” इति सुपो लुकि जाते, “नाव्ययीभावादतोऽमृत्वपञ्चम्याः”

दुर्बलम् । मक्षिकाणामभावो निर्मलिकम् । हिमन्यात्ययोऽतिहिमम् । निद्रा सम्प्रति न युज्यते इत्यतिनिद्रम् । हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि । विष्णोः पश्चादनुविष्णु । योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः । रूपस्य योग्यमनुरूपम् । अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम् । शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति ॥ अव्ययीभावे चाकाले दाशन् सहस्य सः स्यादव्ययीभावे न तु काले । हरेः सादृश्यं सहरि । ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येण-  
त्यनुज्येष्ठम् । चक्रेण युगपत्सचक्रम् । सदृशः सख्या सखि । क्षत्राणां सम्पत्तिः

पञ्चम्याः” इति सोरमि, “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपे च कृते ‘सुमद्रम्’ इति सिद्धम् । दुर्बलम् । व्यर्थार्थकदुरित्यव्ययेन सह समासोऽत्र बोध्यः । साधनिका पूर्ववत् । निर्मलिकम् । अभावार्थकनिरित्यव्ययेन सह “अव्ययं विभक्ति” इत्यादिना समासे निरित्यस्य पूर्वनिपाते, सोरमि च कृते, शेषं पूर्ववत् । अतिहिमम् । अत्ययार्थक-अति इत्यव्ययेन सह “अव्ययं विभक्तिसमीप” इत्यादिना समासे प्रातिपदिकत्वे, सुपो लुकि, अतेरुपसर्जनसंज्ञायां तस्य पूर्वनिपाते समुदायात्सौ, “अव्ययीभावश्च” इत्यव्ययत्वात् सोर्लुकि प्राप्ते, “नाव्ययीभावादतोऽप्यपञ्चम्याः” इत्यमि, “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपे च ‘अतिहिमम्’ इति । अतिनिद्रम् । असम्प्रति—सम्प्रति न युज्यते, इत्यर्थका-  
तोत्यव्ययेन सह “अव्ययं विभक्तिसमीप” इत्यादिना समासः, शेषं पूर्ववत् । इति-  
हरि । इतीत्यव्ययम् शब्दप्रकाशे वर्तते । तस्य हरिशब्देन स्वरूपपरेण षष्ठ्यन्तेन समास इति भावः । विष्णोः पश्चादनुविष्णु । अनु इत्यव्ययं पश्चादर्थे वर्तते इत्यर्थः । सूत्रे यथाशब्देन तदर्थो लक्ष्यते । यथार्थं विद्यमानमव्ययं समस्यते इति लभ्यते, इत्य-  
मिप्रेत्याह—योग्यतेति । अनुरूपमिति । अत्रानु इत्यव्ययं योग्यतायाम्, अतो यथार्थं वर्तते इति भावः । अर्थमर्थं प्रतीति । लौकिकविग्रहवाक्यम् । अत्र वीप्सायां द्विवचनम् । यथाशक्ति । अत्र यथेत्यव्ययं पदार्थानतिक्रमे वर्तते इत्यर्थः । तेन सह “अव्ययं विभक्ति” इत्यादिना समासे, प्रातिपदिकत्वे, “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति सुपो लुकि “प्रथ-  
मानिदिष्टं समास उपसर्जनम्” इति उपसर्जनसंज्ञायाम् “उपसर्जनं पूर्वम्” इति पूर्वनिपाते, समुदायात् सौ, “अव्ययीभावश्च” इत्यव्ययत्वात् “अव्ययादाप्सुपः” इति सोर्लुकि च तस्सिद्धिः । अव्ययीभावे । सहस्येति । “सहस्य सः संज्ञायाम्” इत्यतः तदनुवृत्तेरिति भावः । न तु काले । कालवाचके परे सहस्य सो नेत्यर्थः । सचक्रमिति । अत्र “अव्ययं विभक्तिसमीप” इति यौगपच्चवाचिना सहेत्यव्ययेन सह समासे पूर्व-  
निपातत्वे “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति टालुकि, “अव्ययीभावे चाकाले” इति सहस्य सादेशे प्रातिपदिकत्वे सौ, सोरमि, पूर्वरूपत्वे च विहिते ‘सचक्रम्’ इति । सखि । अत्र “अव्ययं विभक्ति” इति सादृश्यवाचिना सहेत्यव्ययेन सह समासे पूर्व-  
निपातत्वे, “अव्ययीभावे चाकाले” इति सहस्य सादेशे “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति टालुकि समासत्वात् प्रातिपदिकत्वे, सौ, “अव्ययीभावश्च” इत्यव्ययसंज्ञायाम्

सक्षत्रम् । तृणमप्यपरित्यज्य सत्तृणमिति । अग्निप्रन्थपर्यन्तमधीते साग्नि ॥ नदी-  
भिश्च २।१।२० नदीभिः सह सङ्ख्या समस्यते । समाहारे चायमिष्यते । पञ्चगङ्गम् ।  
द्वियमुनम् ॥ तद्धिताः ४।१।७६ आपञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम् ॥ अव्ययीभावे  
शरत्प्रभृतिभ्यः ५।४।१०७ शरदादिभ्यश्च स्यात्समासान्तोऽव्ययीभावे । शरदः  
समीपमुपशरदम् । प्रतिविपाशम् । जराया जरश्च । उपजरसमित्यादि ।

“अव्ययादाप्सुपः” इति सोर्लुकि च कृते ‘ससस्त्रि’ इति । सनक्षत्रम् । अत्र “अव्ययं  
विभक्तिसमीप०” इति सम्प्रत्यर्थवाचिना सहेत्यव्ययेन सह समासे समासत्वाच्चाति-  
पदिकत्वे “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति सुपो लुकि, सहस्य पूर्वनिपातत्वे, “अव्य-  
यीभावे चाकाले” इति सहस्य सादेशे, समुदायात् सौ, विभक्तिकार्यं च कृते तस्सिद्धिः ।  
सत्तृणम् । साकल्यवाचिना सहेत्यव्ययेन सह “अव्ययं विभक्ति०” इति समासे पूर्वव-  
त्समासकार्यं, अव्ययीभावे चाकाले” इति सहस्य सादेशे विभक्तिकार्यं च कृते तस्सि-  
द्धिः । साग्नि । अन्तवाचिना सहेत्यव्ययेन सह समासे, पूर्वनिपाते, सहस्य सादेशे,  
“अव्ययीभावश्च” इत्यव्ययत्वात् “अव्ययादाप्सुपः” इति सोर्लुकि च ‘साग्नि’ इति  
रूपम् । नदीभिश्चेति । “संख्या वंशयेन” इत्यतः संख्येत्यनुवर्तते, तदाह—संख्या  
समस्यत इति । पञ्चगङ्गम् । पञ्चानां गङ्गानां समाहारः पञ्चगङ्गम्, इत्यत्र पञ्चन् + आम् +  
गङ्गा—आम् इति अलौकिकविग्रहे “नदीभिश्च” इति समासे, “सुपो धातुप्रातिपदि-  
कयोः” इति सुपो लुकि, “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति नलोपे, ‘पञ्चगङ्गा’ इति  
जाते, “अव्ययीभावश्च” इत्यनेन नपुंसकत्वे “ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य” इति  
ह्रस्वत्वे प्रातिपदिकत्वात्सौ, “अव्ययीभावश्च” इत्यव्ययत्वात् “अव्ययादाप्सुपः” इति  
लुकि प्राप्ते, “नान्वयीभावादतोऽस्वपञ्चम्याः” इत्यमि, “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपे च  
कृते ‘पञ्चगङ्गम्’ इति । द्वियमुनम् । द्वयोर्यमुनयोः समाहारः इति विग्रहः । अत्र नदी-  
शब्दविशेषस्य नदीवाचकानां च ग्रहणम् इति संख्यासंज्ञासूत्रे भाष्ये स्पष्टम् । तेन  
पञ्चनदम्, सप्तगोदावरमित्यादि सिद्धयति । साधनिका तु पूर्ववदवगन्तव्या । अव्ययी-  
भावे । “राजाहस्सस्त्रिभ्यश्च” इत्यतः टजित्यनुवर्तते । तदाह—शरदादिभ्य इति । अव्य-  
यीभावे उत्तरपदं यत् शरदादिप्रकृतिकं सुबन्त तदन्तात् टच् स्यात् । स च अलौकि-  
कविग्रहवाक्यान्तावयव इत्यर्थः । उपशरदमिति । अत्र “अव्ययं विभक्ति” इति समासे  
पूर्वनिपाते, “अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः” इति टचि, टचयोरुपे, सौ, “नान्वयी-  
भावात्” इति सोरमि, “अमि पूर्वः” इति पूर्वरूपत्वे च कृते ‘उपशरदम्’ इति ।  
विपाशां प्रतीति—प्रतिविपाशम् । जराया । “जराया जरश्च” इति शरदादिगणसूत्रम् ।  
जराशब्दस्य जरसादेशश्चास्मिन् गणे वाच्य इत्यर्थः । उपजरसमिति । जरायाः समीप-  
मित्यर्थः । समीपे उपेत्यशब्दस्य जरायाः इति षष्ठ्यन्तेन अव्ययीभावसमासे कृते

अनश्च ५।४।१०८ अन्नन्तादव्ययीभावाद् न स्यात् ॥ नस्तद्धिते ६।४।१४४ नान्तस्य  
भस्य टेलोपः स्यात् तद्धिते । उपराजम् । अध्यात्मम् ॥ नपुंसकादन्यतरस्याम्  
५।४।१०६ अनन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावाद् न स्यात् । उपचर्मम् , उपचर्म ॥  
भयः ५।४।१११ भयन्तादव्ययीभावाद् न स्यात् । उपसमिधम् , उपसमित् ॥

इत्यव्ययीभावः ।

अथ तत्पुरुषः ।

तत्पुरुषः २।१।२२ अधिकारोऽयम् प्राग्बहुव्रीहेः ॥ द्विगुश्च २।१।२३ द्विगु-  
रपि तत्पुरुषसंज्ञकः स्यात् ॥ द्वितीया श्रितातातपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः २।

टच् , सुब्लुक् , उपेत्यस्य पूर्वनिपातः टचो विभक्तित्वाभावात् तस्मिन् परेऽप्राप्ते  
जरसि, अनेन जरस् । टजन्ताद्यथायथं सुपः अग्भाव इति भावः । अनश्चेति । अव्ययी-  
भावे इत्यनुवृत्तं पञ्चम्या विपरिणम्यते । अन इति तद्विशेषणम् । तदन्तविधिः ।  
तदाह—अन्नन्तादिति । नस्तद्धित इति । न इति षष्ठ्यन्तम् पदम् । तेन भस्येत्य-  
धिकृतं विशेष्यते । तदन्तविधिः । टेरिति सूत्रमनुवर्तते । “अलोपोऽनः” इत्यस्माज्जोष  
इति च । तदाह—नान्तस्येति । उपराजमिति । राज्ञः समीपमित्यर्थः । सामीप्ये उपेत्य-  
स्याव्ययीभावः । “अनश्च” इति टच् । सुब्लुक् , टिलोपः । उपगजशब्दाद्यथायथं सुप ,  
अग्भावः । टचि परे “अव्ययानां भमात्रे टिलोपः” इत्यस्याप्रवृत्तिः, टजन्तस्यैवाव्ययी-  
भावसमासत्वेन अव्ययत्वात् । अतो “नस्तद्धिते” इत्यारम्भः । अध्यात्ममिति । आत्म-  
नीत्यर्थः । विभक्त्यर्थे अव्ययीभावः । शेषं पूर्ववत् । नपुंसकादन्यतरस्याम् । अन इत्यनु-  
वृत्तं नपुंसकादित्यस्य विशेषणम् । तदन्तविधिः । अन्नन्तात्कलीबादिति लब्धम् । तेना-  
व्ययीभावे इत्यनुवृत्तं पञ्चम्या विपरिणतं विशेष्यते । तदन्तविधिः । तदाह—अन्नन्ता-  
दिति । उपचर्मम् । उपचर्म इति । चर्मणः समीपमित्यर्थः । सामीप्ये उपेत्यव्ययस्याव्ययी-  
भावः । टचि टिलोपः । अयग्भावः—टजभावे उपचर्ममिति रूपम् । भयः । भया अव्य-  
यीभावे इत्यनुवृत्तं पञ्चम्या विपरिणतं विशेष्यते । तदन्तविधिः । अन्यतरस्यामिति  
टजिति चानुवर्तते । तदाह—भयन्तादिति । उपसमिधम् । अत्र “अव्ययं विभक्ति” इति  
समासे, पूर्वनिपाते “भयः” इति टचि, विभक्तिकार्यं च कृते ‘उपसमिधम्’ इति ।  
टजभावपक्षे—‘उपसमित्’ इति । इति अव्ययीभावः ।

तत्पुरुषः । प्रागिति । “शेषो बहुव्रीहिः” इत्यतः प्रागित्यर्थः । द्विगुश्च । द्विगुरपीति  
“तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च” इति वक्ष्यमाणसमासस्य “सव्यापूर्वो द्विगुः” इति  
द्विगुसंज्ञा विधास्यते । स द्विगुसमासोऽपि तत्पुरुषसंज्ञक इति यावत् । एत.सूत्राभावे  
युक्तसंज्ञाधिकारात् द्विगुसंज्ञया तत्पुरुषसंज्ञा बाध्यतेति । भावः । द्वितीयाभित । द्वितीया-  
न्तमिति । “प्राक्कारात्समासः” इत्यतः समास इत्यधिक्रियते, “सह सुपा” इत्यनुवर्तते,

१।२४ द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते स च तत्पुरुषः ।  
 कृष्णं श्रितः कृष्णश्रित इत्यादि ॥ तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन २।१।३०  
 तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थेन च सह वा प्राग्वत् । शङ्कुलाखण्डः  
 शङ्कुलाखण्डः । धान्येनार्थः धान्यार्थः । तत्कृतेति किम् ? अदृष्टा काणः ॥ कर्तृ-  
 करणे कृता बहुलम् २।१।३२ कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत् ।  
 हरिणा त्रातो हरित्रातः । नखैर्भिन्नो नखभिन्नः । “कृद्ग्रहणे गतकारकपूर्व-

“तत्पुरुषः” इत्यधिक्रियते, “विभाषा” इति च, केवलस्य द्वितीयासुपः प्रयोगाभावा-  
 त्तदन्तविधिः । श्रितादिशब्दानां स्वतः सुप्वाभावेन लक्षण्या श्रितादिप्रकृतिकत्वप-  
 रता । तदाह—श्रितादिप्रकृतिकैरित्यादि । द्वितीयान्तम् । कृष्णश्रितः । ‘कृष्ण अम् श्रित-  
 सु’ इत्यलौकिकविग्रहे “द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः” इति समासे  
 “कृत्तद्धितसमासाश्च” इति प्रातिपदिकत्वे, “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति सुपो  
 लुकि, “प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्” इति द्वितीयान्तस्य कृष्णमित्यस्योपसर्जन-  
 संज्ञायाम्, “उपसर्जनं पूर्वम्” इति पूर्वनिपाते, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक-  
 त्वात्सौ, रत्वे, विसर्गे च तत्सिद्धिः । श्रितादीति । दुःखातीतः । गतं पतितो गतपतितः ।  
 ग्रामं गतो, ग्रामगतः । ग्राममत्यस्तः—अतिक्रान्तः, ग्रामात्यस्तः । ग्रामं प्राप्तः ग्रामप्राप्तः ।  
 संशयमापन्नः । इति । तृतीया तत्कृत । तत्कृतेत्यस्याव्यवहितमप्यर्थेनेति परित्यज्य गुण-  
 वचनेनेत्यत्रान्वयं वक्तुमाह—तत्कृतेति लुप्ततृतीयाकमिति । तत्र तृतीयेत्यनेन तृतीयान्तं  
 विवक्षितम् । तत्कृतेति लुप्ततृतीयाकं भिन्नं पदम् । तच्छब्देन तृतीयान्तपरामर्शना  
 तदर्थो लभ्यते । तत्कृतेत्येतच्च गुणद्वारा गुणवचनेऽन्वेति । ततश्च तृतीयान्तं तृतीया-  
 न्तार्थकृतो यो गुणः तद्वाचिना समस्यते । अर्थशब्देन च तृतीयान्तं समस्यत इति  
 वाक्यद्वयं संपद्यते इति भाष्ये स्थितम् । तदाह—तृतीयान्तमित्यादिना । शङ्कुलाखण्डः ।  
 ‘शङ्कुला टा खण्ड सु’ अत्र “तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन” इति समासे प्रातिपदि-  
 कत्वे, सुपो लुकि, तृतीयान्तस्य प्रथमानिर्दिष्टत्वात्पूर्वनिपाते, समुदायात्सौ, सस्य रत्वे,  
 रेफस्य विसर्गत्वे च तत्सिद्धिः । धान्यार्थः । ‘धान्य टा अर्थ सु’ इत्यलौकिकविग्रहवाक्ये,  
 “तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन” इति समासे, प्रातिपदिकत्वे, सुपो लुकि, तृतीयान्तस्य  
 पूर्वनिपाते समुदायात्सौ, रत्वे, विसर्गे च तत्सिद्धिः । अदृष्टा काण इति । नहि अदृष्टा  
 काणत्वं कृतम्, किन्तु रोगादिनेति भावः । कर्तृकरणे । कर्ता च करणं चेति समाहारद्व-  
 न्द्वात्सप्तमी । तृतीयेत्यनुवर्तते । प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तदन्तग्रहणम् । कृतेत्यपि  
 तथैव । तदाह—कर्तरि करणे चेति । हरित्रातः । ‘हरि टा त्रात सु’ इत्यलौकिकविग्रहे  
 “कर्तृकरणे कृता बहुलम्” इति समासे, समासत्वात्प्रातिपदिकत्वे “सुपो धातुप्रातिपदि-  
 कयोः” इति सुपो लुकि, तृतीयान्तस्य प्रथमानिर्दिष्टत्वात्पूर्वनिपाते, समुदायात्सौ,  
 रत्वे विसर्गे च तत्सिद्धिः । एवमेव ‘नखभिन्नः’ इत्यत्रापि बोध्यम् । ननु कृदन्तस्य

स्याऽपि ग्रहणम्" नखनिर्मिन्नः ॥ चतुर्थो तदर्थार्थबलिहितसुखरचितैः २।  
१।३६ चतुर्थ्यन्तार्थाय यत् तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत् । यूपाम  
दारु यूपदारु । तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः । तेनेह न । रन्धनाय स्थाली ।  
( अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम् ) द्विजायायं द्विजार्थः  
सूपः । द्विजार्था यवागूः । द्विजार्थं वयः । भूतबलिः । गोहितम् । गोसुखम् । गोर-

समर्थविशेषणत्वेऽपि समासप्रत्ययविधौ तदन्तविधिप्रतिषेधाच्चनखनिभिश्च इत्यत्र  
न स्यादित्यत आह—कृद्ग्रहणे इति । परिभाषेयम् "गतिरनन्तरः" इति सूत्रे भाष्ये  
स्थिता । नखनिर्मिन्नः । नखैर्निर्मिन्नः—नखनिभिश्चः इत्यत्र कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्व-  
स्यापि ग्रहणात् "कर्तृकरणे कृता बहुलम्" इति समासे, प्रातिपदिकसंज्ञायाम् "सुपो  
धातुप्रातिपदिकयोः" इति सुपो लुकि, नखस्य पूर्वनिपाते विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः ।  
चतुर्थी तदर्थार्थ । प्रत्ययग्रहणपरिभाषया चतुर्थीत्वनेन चतुर्थ्यन्तं गृह्यते । तदर्थ, अर्थ,  
बलि, हित, सुख, रचित एषां द्वन्द्वः । चतुर्थ्यन्तम् एतैः षड्भिः समस्यते, स तत्पुरुष  
इति फलितम् । तदर्थेत्यत्र तच्छब्देन चतुर्थ्यन्तार्था विवक्षितः । तस्मै चतुर्थ्यन्तार्थाम्  
इदं तदर्थम् । "अर्थेन नित्यसमासः" इति वक्ष्यमाणः समासः । चतुर्थ्यन्तवाच्यप्रयो-  
जकं यत् तत् तदर्थमिति पर्यवस्यति । तदाह—चतुर्थ्यन्तार्थायेत्यादिना । यूपदारु । 'यूप  
के दारु सु' इत्यत्र "चतुर्थो तदर्थार्थबलिहितसुखरचितैः" इति समासे, "कृतद्धितसमा-  
साश्च" इति प्रातिपदिकसंज्ञायाम् "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" इति सुपो लुकि, "प्रथ-  
मानिदिष्टं समास उपसर्जनम्" इति चतुर्थ्यन्तस्य उपसर्जनसंज्ञायाम् "उपसर्जनं पूर्वम्"  
इति पूर्वनिपाते, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकस्वात्सौ "स्वमोर्नपुंसकात्"  
इति सोर्लुकि च तत्सिद्धम् । तदर्थेनेति । तदर्थेन समास इति यदुक्तं तत्प्रकृतिविकृ-  
तिभाव एव भवति, न स्वन्यत्रेत्यर्थः । सूत्रे 'बलिहितसुखरचितात्' ज्ञापकात् । अथ  
प्रकृतिविकृतिभावग्रहणस्य प्रयोजनमाह—नेहेति । रन्धनायेति । पाकायेत्यर्थः । स्यात्स्या-  
श्चतुर्थ्यन्तवाच्यपाकार्थत्वेऽपि प्रकृतिविकृतिभावविरहान्न समासः । अयेदानीमर्थशब्देन  
चतुर्थ्यन्तस्य समासे विशेषमाह—अर्थेनेति । अर्थशब्देन चतुर्थ्यन्तस्य नित्यसमास  
इति वक्तव्यम् । अन्यथा विभाषाधिकाराद्विकल्पः स्यात् । विशेषस्य प्रधानस्य यद्विज्ञ-  
तलिङ्गमित्यपि वक्तव्यम् । अन्यथा अर्थशब्दस्य नित्यपुलिङ्गत्वात् "परवल्लिङ्गम्"  
इति सर्वत्र पुल्लिङ्गत्वेन स्यादित्यर्थः । द्विजायायं द्विजार्थः सूप इति । तत्र द्विजायाय-  
मित्यस्वपदविग्रहः । तत्र अर्थशब्दस्थाने अयमिति शब्दः, नित्यसमासत्वेनास्वपदविग्र-  
होचित्वात् । द्विजायेति तादर्थ्ये चतुर्थी । तदन्तस्य अर्थशब्देन समासः, विशेष्यसूप-  
शब्दस्य पुल्लिङ्गत्वात् समस्तस्यद्विजार्थशब्दस्य पुल्लिङ्गता च । द्विजस्य उपका-  
रकः सूप इत्यर्थः । द्विजार्था यवागूरिति । द्विजायेत्यमिति विग्रहः । अर्थशब्दस्य नित्य-  
पुलिङ्गत्वेऽपि "परवल्लिङ्गम्" इति पुल्लिङ्गं कश्चित्वा अनेन विशेष्यलिङ्गानुसारेण क्रीडि-



क्षितम् ॥ पञ्चमी भयेन २।१।३७ चोराद्भयम्, चोरभयम् ॥ स्तोकान्तिकदू-  
रार्थकृच्छ्राणि क्तेन २।१।३६ पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ६।३।२ “अलुगुत्तर-  
पदे” । स्तोकान्मुक्तः । अन्तिकादागतः । अभ्याशादागतः । दूरादागतः । कृच्छ्रादा-  
गतः ॥ षष्ठी २।२।८ सुबन्तेन सह प्राग्वत् । राजपुरुषः ॥ पूर्वापराधरोत्तरमे-  
कदेशिनैकाधिकरणे २।२।१ अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते एकत्वसङ्ख्या-  
विशिष्टश्चेदवयवी । षष्ठीसमासापवादः । पूर्वं कायस्य पूर्वकायः । अपरकायः ।

ज्ञता । द्विजार्थं पय इति । द्विजायेदमिति विग्रहः । अत्र विशेष्यलिङ्गानुसाराच्चपुंसकत्व-  
म् । भूतबलिः । भूतेभ्यो बलिरिति विग्रहः । तादर्थ्यचतुर्थ्यन्तस्य बलिशब्देन समासः ।  
गोहितम् । गोभ्यो हितमिति विग्रहः । गवामनुकूलमित्यर्थः । गोरक्षितम् । तृणादिकमिति  
शेषः । गोभ्यो रक्षितमिति विग्रहः । तादर्थ्यचतुर्थ्यन्तस्य रक्षितशब्देन समासः ।  
पञ्चमी भयेन । पञ्चम्यन्तं भयशब्देन सुबन्तेन समस्यत इत्यर्थः । चोरभयम् । ‘चोर  
ऊसि भय सु’ इत्यत्र “पञ्चमी भयेन” इति समासे सुपो लुकि, पञ्चम्यन्तस्य पूर्वनि-  
पाते समुदायात्सौ, विभक्तिकायं च तत्सिद्धिः । स्तोकान्तिक । स्तोक, अन्तिक, दूर,  
एतदर्थकानि, कृद्, एतानि पञ्चम्यन्तानि क्तप्रत्ययान्तेन समस्यन्त इत्यर्थः । अर्थग्र-  
हणं स्तोकान्तिकदूरेषु सम्बध्यते । पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः । स्तोकादिभ्यः परा या पञ्चमी  
तस्याः “सुपो धातु” इति लुङ् न स्यादित्यर्थः । उत्तरपदे इति । उत्तरशब्दः समासच-  
रमात्रयवे रूढः । पदे इत्येव सिद्धे उत्तरग्रहणात् । स्तोकान्मुक्तः । ‘स्तोक ऊसि, मुक्त  
सु’ इत्यत्र “स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन” इति समासे, प्रातिपदिकत्वात्सुपो  
लुकि प्राप्ते, “पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः” इति पञ्चम्या अलुकि, “टाऊसिऊसामिनात्स्याः”  
इति ङसेरादादेशे सवर्णदीर्घे, समुदायात्सौ, स्तुवे विसर्गे च तत्सिद्धिः । एवमेव ‘अन्ति-  
कादागतः’ इत्यादौ बोध्यम् । अभ्याशादागतः । अन्तिकपर्यायस्योदाहरणम् । षष्ठी ।  
षष्ठ्यन्तं सुबन्तेन समस्यते, स तत्पुरुष इत्यर्थः । राजपुरुषः । ‘राजन् अस्य पुरुष स्’  
इत्यलौकिकविग्रहवाक्ये “षष्ठी” इत्यनेन समासे सति “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः”  
इति सुबलुकि अन्तर्वातर्नीं विभक्तिप्रत्ययलक्षणेनाश्रित्य “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य”  
इति नलोपे, विभक्तिर्कायं च कृते ‘राजपुरुषः’ इति सिद्धम् । पूर्वापर । “पूर्वापराधरो-  
त्तरम्” इति समाहारद्वन्द्वात् प्रथमैकवचनम् । एकदेशशब्दोऽवयवे रूढः । एकदेशः  
अस्यास्तीत्येकदेशी अवयवी, तेनेति लभ्यते । अधिकरणं द्रव्यम् । एकमधिकरणम्,  
एकाधिकरणम् । इति विग्रहः । एकत्वविशिष्टद्वये वर्तमानेन अवयवविवाचकसुबन्तेन  
पूर्वापराधरोत्तरशब्दाः सुबन्ताः समस्यन्ते, स तत्पुरुष इत्यर्थः । फलितमाह—अव-  
यविना सहेत्यादिना । षष्ठीसमासापवाद इति । पूर्वं कायस्येति विग्रहे “षष्ठी” इति सूत्रेण  
समासे सति षष्ठ्यन्तस्य समासविधानात् प्रथमानिर्दिष्टत्वात् पूर्वनिपातः स्यात् ।  
तत्सिद्धत्वं भिदं वचनमित्यर्थः । पूर्वं कायस्येति । अत्र पूर्वं कायस्येति विग्रहवाक्यम् ।

एकाधिकरणे किम् ? पूर्वश्चात्राणाम् । अर्धं नपुंसकम् २।२।२। समाशवाच्यर्थ-  
शब्दो नित्यं क्लीबे प्राग्वत् । अर्धं पिप्पल्या अर्धपिप्पली ॥ सप्तमी शौण्डैः २।  
१।४०। सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत् । अक्षेषु शौण्डः अक्षशौण्ड इत्यादि ।  
“द्वितीया तृतीया” इत्यादियोगविभागादन्यत्रापि तृतीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात्स-  
मासो ज्ञेयः । दिक्संख्ये सञ्ज्ञायाम् २।१।५०। सञ्ज्ञायामेवेति नियमार्थं सूत्र-  
म् । पूर्वेषुकामशमी । सप्तर्षयः । तेनेह न, उत्तरा वृक्षाः । पञ्च ब्राह्मणाः । तद्धि-

अर्धमिति गम्यम् । विशेष्याभिप्रायाच्चपुंसकत्वम् । पूर्वकाय इति । पूर्वशब्दस्य समास-  
विधौ प्रथमानिर्दिष्टत्वात् पूर्वनिपातः । “परवस्त्रिङ्गम्” इति पुंस्त्वमिति भावः ।  
अपरकाय इति । अपरं कायस्येति विग्रहः । अधरकायः । उत्तरकायः । पूर्वच्छात्राणाम् ।  
अत्र छात्रशब्दः छात्रसमुदायपरः । उद्भूतावयवसमुदायापेक्षं बहुवचनम् । अवयवा-  
वयविभावसम्बन्धे षष्ठी । तत्तश्चात्राणामेकदेशित्वे सत्यपि एकत्वबंशिष्ठथाभावाच्च  
समासः । अर्धं नपुंसकम् । अर्धमिति नपुंसकलिङ्गनिर्देशादेव नपुंसकत्वे लब्धे पुनर्नपुंस-  
कग्रहणं नित्यनपुंसकलिङ्गस्य ग्रहणार्थमित्यभिप्रेत्याह—समाशवाच्यर्थशब्दो नित्यं क्लीबे  
इति । वर्तते इति शेषः । “वा पुंस्यर्धोऽर्धं समेऽशके” इति कोशादिति भावः । प्राग्व-  
दिति । एकत्वविशिष्टेनावयविना समस्यत इत्यर्थः । अर्धपिप्पली । ‘अर्धं सु पिप्पली  
कस्’ इत्यत्र “अर्धं नपुंसकम्” इति समासे समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुकि,  
“प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्” इत्युपसर्जनसंज्ञायाम् “उपसर्जनम्पूर्वम्” इति अर्ध-  
शब्दस्य पूर्वनिपाते समुदायात्सौ विभक्तिकार्यं च तस्सिद्धिः । अत्र पिप्पलीशब्दस्य विग्रहे  
नियतविभक्तिकत्वेऽपि “एकविभक्तावषष्ठ्यन्तवचनम्” इति निषेधादुपसर्जनत्वाभा-  
वाच्च ह्रस्व इति भावः । सप्तमी शौण्डैः । बहुवचननिर्देशाद् गणपाठसामर्थ्याच्च आद्य-  
र्धावगतिरित्यभिप्रेत्याह—शौण्डादिभिरिति । अक्षेषु शौण्डः इति । शौण्डः क्रियाकुशलः ।  
वैषयिकाधिकरणत्वे सप्तमी । अद्यविषयकक्रीडाकुशल इत्यर्थः । अक्षशौण्डः । अद्य सु  
शौण्ड सु इत्यत्र “सप्तमी शौण्डैः” इति समासे सप्तम्यन्तस्य प्रथमानिर्दिष्टत्वात्पूर्व-  
निपाते सुपो लुकि, विभक्तिकार्यं च कृते तस्सिद्धिः । दिक्संख्ये संज्ञायाम् । दिक्संख्ये  
समानाधिकरणेन सुबन्तेन समस्येते, स तत्पुरुष इत्यर्थः । ननु “विशेषणं विशेष्येण  
बहुलम्” इत्येव सिद्धे किमर्थमिदं वचनमित्यत आह—सञ्ज्ञायामेवेति । पूर्वेषुकामशमीति ।  
पूर्वशब्दस्य इषुकामशमीशब्देन सह समासः । देशविशेषस्य संज्ञेयम् । सप्तर्षय  
इति । मरीच्यत्रिप्रभृतीनां सप्तानामृषीणां संज्ञेयम् । ‘सप्तन् जस् ऋषि जस्’ इति  
विग्रहे सुपो लुकि, नलोपे गुणे विभक्तिकार्यं च कृते तस्सिद्धिः । इह नेति ।  
असंज्ञत्वादिति भावः । तद्वितार्थः । एकापि सप्तमी विषयभेदात् मिथ्यते । तत्र तद्वित-  
र्थापक्षो वैषयिकाधारत्वे वर्तते । उत्तरपदेत्यंशे सामीपिकमाधारत्वमादाय परसप्तमी  
अर्थवत्यति । समाहारांशे तु वाच्यतया आधारत्वे सप्तमी । पूर्वसूत्रात् दिक्संख्ये इत्य-

तार्थोत्तरपदसमाहारे च २।१।५१। तद्वितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्सङ्ख्ये प्राग्वत् । पूर्वस्यां शालायां भवः पूर्वा-शाला इति समासे जाते । ( सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः ) ॥ दिक्पूर्वपदादसञ्ज्ञायां अः ४।२। १०७ । अस्माद्भावार्थे अः स्यादसञ्ज्ञायाम् ॥ तद्वितेष्वचामादेः ७।२।११७। ञिति णिति च तद्वितेष्वचामादेरचो वृद्धिः स्यात् । “यस्येति च” । पौर्वशालः । पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ ( द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम् ) ॥ गोरतद्वितलुकि ५।४।६२ गोन्तात्तत्पुरुषादृच् स्यात् समासान्तो न तु तद्वितलुकि । पञ्चगवधनः । तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः १।२। ४२ सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः २।१।५२ तद्वितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविधः सङ्ख्यापूर्वो द्विगुसञ्ज्ञः

नुवर्तते । तदाह—तद्वितार्थे विषये इति । तद्वितार्थे भविष्यत्तद्वितजन्यज्ञानविषये सतीत्यर्थः । तद्विते भविष्यतीति यावत् । प्राग्वदिति । समानाधिकरणेन समस्यते स तत्पुरुष इत्यर्थः । सर्वनाम्न इति । मात्रशब्दः कात्स्न्यं । समासतद्वितादिवृत्तिगतसर्वनाम्नां पुंवत्वमिति तदर्थः । दिक्पूर्वपदात् । पञ्चम्यर्थं सप्तमी । असंज्ञाभूतात् दिक्पूर्वपदात् अः स्यादित्यर्थः । तद्वितेष्वचामादेः । “अचो ञ्णिति” इत्यनुवर्तते । “मृजेवृद्धिः” इत्यतो वृद्धिरिति च । अचामिति निर्धारणे षष्ठी । तदाह—ञिति णिति चेति । पौर्वशालः । पूर्वस्यां शालायां भव इत्यर्थे “तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारे च” इति समासे कृते “दिक्पूर्वपदात्” इति अप्रत्यये कृते “यस्येति च” इत्याकारलोपे “तद्वितेष्वचामादेः” इति आदिबृद्धौ, “सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः” इति ‘पूर्वा’ इत्यस्य पुंवत्वे, समुदायस्य एकदेशविक्रान्त्यायेन प्रातिपदिकत्वात्सौ, सत्वे विसर्गं च “पौर्वशालः” इति । अथ उत्तरपदे परत उदाहरति—पञ्च गाव इति । द्वन्द्वतत्पुरुषयोरिति । उत्तरपदे परतः यौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ तयोनित्यत्वं वक्तव्यमित्यर्थः । गोरतद्वितलुकीति । “तत्पुरुषस्याङ्गुलेः” इत्यतस्तत्पुरुषस्येत्यनुवृत्तं पञ्चम्या विपरिणतं गोरित्यनेन विशेष्यते । तदन्तर्विधिः । “राजाहस्सस्त्रिभ्यः” इत्यतष्टित्यनुवर्तते । “समासान्त” इत्यधिकृतम् । तदाह—गोऽन्तादित्यादिना । पञ्चगवधनः । पञ्च गावो धनं यस्य स पञ्चगवधनः—इत्यत्र ‘पञ्चन्-जस्, गो-जस्, धनं सु’ इति त्रिपदे बहुव्रीहौ अवान्तरपञ्चगोशब्दयोः “तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारे च” इति वा समासे प्राप्ते “द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्” इति नित्ये समासे कृते “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति सुपो लुकि, पञ्चशब्दस्य नकारस्य “नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य” इति लोपे ‘पञ्चगो’ इत्यस्मात् “गोरतद्वितलुकि” इति टचि, अनुबन्धलोपे अवादेशे ‘पञ्चगव’ इति बहुव्रीह्यावन्तरे जाते बहुव्रीहिसमासस्यापि प्रातिपदिकत्वात् सोल्लोपे, समुदायात् सौ, सत्वे विसर्गं च तत्सिद्धिः । तत्पुरुषः समानः । समानाधिकरणः सत्यर्थः अर्थाभावः । समानाधिकरणाच्चेत्यत्र

स्यात् । द्विगुरेकवचनम् २।४।१ द्विगुर्यः समाहार एकवत् स्यात् ॥ स नपुंस-  
कम् २।४।१७ समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् । पञ्चानां गवां समाहारः पञ्च-  
गवम् ॥ विशेषणं विशेष्येण बहुलम् २।१।५७ मेदकं मेदेन समानाधिकरणेन  
बहुलं प्राग्वत् । नीलमुत्पलं नीलोत्पलम् । बहुलप्रहणात् क्वचित्पत्यम् । कृष्णसर्पः ।  
क्वचिन्न । रामो जामदग्न्यः ॥ उपमानानि सामान्यवचनैः २।१।५५ घन इव  
श्यामो घनश्यामः । ( शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपस-  
ङ्गयानम् ) । शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः । देवपूजको ब्राह्मणो देवब्राह्मणः ॥

यवकस्तत्पुरुषः कर्मधारयसंज्ञको भवतीत्यर्थः । संख्यापूर्वो द्विगुरिति । संख्या पूर्वोऽव-  
यवो यस्येति बहुवीहिः । “तद्वितार्थ” इति पूर्वसूत्रविहितसमासः अन्यपदार्थः, प्रत्या-  
सत्तेः । तदाह—तद्वितार्थेत्यत्रो ज्ञप्तिविधि इति । तद्वितार्थे विषये, उत्तरपदे च परतः समा-  
हारे च वाच्ये इत्येवं त्रिप्रकारो ऋः संख्यापूर्वः समासः उक्तः स द्विगुरिति यावत् ।  
द्विगुरेकवचनम् । अत्र “समाहारप्रहणं कर्तव्यम्” इति वार्तिकात् समाहार इति लभ्यते ।  
वक्ष्यतीति वचनम् । बाहुलकात् कर्तरि ल्युट् । सामान्ये नपुंसकम् । समाहारे द्विगुः  
एकार्थप्रतिपादकः स्यादिति लभ्यते । स नपुंसकश्च । अनन्तरस्येति न्यायोऽत्र नास्ती-  
यते । तथात्वे द्विगुसङ्ग्रहो न स्यादित्याशयेनाह—द्विगुर्द्वन्द्वश्चेति । अत्र व्याचक्षते ।  
प्रकरणादेवानुवाद्यलाभे सप्रहणमेतत्प्रकरणानुपात्तस्यापि समाहारद्वन्द्वस्य सप्रहार्थमिति  
भावः । पञ्चगवम् । पञ्चानां गवां समाहारः इत्यत्र “तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारे च” इति  
समासे सुपो लुकि, पञ्चनशब्दस्य नलोपे “गोरत्तद्वितलुकि” इति टचि, टच्योलोपे, “पञ्च गो  
अ” इति भूते “एचोऽववायावः” इत्यवादेशे, “संख्यापूर्वो द्विगुः” इति द्विगुसंज्ञायां, “द्विगु-  
रेकवचनम्” इति एकवचने सौ, “स नपुंसकम्” इति नपुंसकत्वात्सोरमि, पूर्वरूपत्वे च  
विहिते “पञ्चगवम्” इति सिद्धम् । विशेषणं विशेष्येण बहुलम् । विक्षिप्यते अनेनेति  
विशेषणम् । इतरस्मान्वावर्तकम् । व्याचक्ष्य तु विशेष्यं भिन्नत्वेन ज्ञायमानम् ।  
समानाधिकरणेनेत्यधिकृतम् । तदाह—मेदकमिति । प्राग्वदिति । समस्यते स तत्पुरुष  
इत्यर्थः । नीलोत्पलम् । “नील सु उत्पल सु” इत्यत्र “विशेषणं विशेष्येण बहुलम्” इति  
समासे, समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति सुपो लुकि,  
एकदेशविकृतन्यायेन समुदायात्सौ, सोरमि, पूर्वरूपे च तत्सिद्धम् । उपमानानि ।  
सामान्यम्—समानो धर्मः तं वदन्तीति । सामान्यवचनानि समानधर्मवाचकाः शब्दा  
इत्यर्थः । तादृशैः समर्थसुबन्तैः सह उपमानवाचकाः शब्दाः समस्यन्ते इति सूत्र-  
स्यार्थः । उपमानवाचकस्य पूर्वनिपातार्थं सूत्रम् । घनश्यामः । अत्र घनशब्दो घनस-  
ङ्गो लक्षणिकः । “घन सु श्याम सु” अत्र “उपमानानि सामान्यवचनैः” इति समासे,  
सुपो लुकि, उपमानवाचकस्य घनशब्दस्य पूर्वनिपाते, विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः ।  
शाकपार्थिवादीनामिति । “वर्णो धर्मोऽव” इति सूत्रभाष्ये इदं वार्तिकं पठितम् । शाकप्रियः

नञ् २।२।६ नञ् सुपा सह समस्यते ॥ न लोपो नञः ६।३।५३ नञो नस्य लोपः  
स्यादुत्तरपदे । न ब्राह्मणः अब्राह्मणः ॥ तस्मान्नुडचि ६।३।४७ लुप्तनकाराज्ज  
उत्तरपदस्याजादेर्नुडागमः स्यात् । अनश्चः । नैकधेत्यादौ तु नशब्देन सह “सुपु  
सुपा” इति समासः ॥ कुगतिप्रादयः २।२।१८ एते समर्थेन नित्ये समस्यन्ते ।  
कुत्सितः पुरुषः कुरुषः । ऊर्यादिच्चिडाचञ्च १।४।६१ ऊर्यादयः च्यन्ता डाज-  
न्ताश्च क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञाः स्युः । ऊरीकृत्य । शुक्लीकृत्य । पटपटाकृत्य । सुपुरुषः ।

पार्थिवः शाकपार्थिवः । शाकः प्रियः यस्य स शाकप्रियः । “वा प्रियस्य” इति प्रियशब्द-  
स्य परनिपातः । शाकप्रियश्चासौ पार्थिवश्च इति विग्रहे बहुव्रीहिगर्भो विशेषणसमासः ।  
तत्र पूर्वखण्डे बहुव्रीहौ उत्तरपदस्य प्रियशब्दस्य लोपः । देवब्राह्मण इति । देवाः प्रियाः  
यस्य स देवप्रियः । स चासौ ब्राह्मणश्चेति विग्रहः । पूर्ववदुत्तरपदलोपः । नञ् ।  
इदं समानाधिकरणाधिकारस्थ नैत्यभिप्रेत्याह—सुपा समस्यत इति । नलोपो नञः ।  
नेति लुप्तषष्ठीकं पदम् । तदाह—नञो नस्येति । उत्तरपदे इति । “अलुगुत्तरपदे” इत्यतस्त-  
दनुवृत्तेरिति भावः । अब्राह्मणः । ‘न ब्राह्मण सु’ इत्यत्र “नञ्” इति समासे “सुपो  
धातुप्रातिपदिकयोः” इति सुपो लुकि, नञः पूर्वनिपाते “नलोपो नञः” इति नलोपे  
‘अब्राह्मण’ इति जाते तस्मान्नुडचित्कार्ये च तत्सिद्धम् । तस्मान्नुडचि । तच्छब्देन  
पूर्वसूत्रावगतो लुप्तनकारो नञ् परामृश्यते । उत्तरपद इत्यनुवृत्तम् अवीत्यनेन विशेष-  
यते । तदादिविधिः । उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान् परत्वात् इति परिभा-  
षया सप्तमी षष्ठौ प्रकल्पयति । तदाह—लुप्तनकारादिति । अनश्चः । ‘न अश्व सु’  
इत्यत्र “नञ्” इति समासे सुपो लुकि, नञः पूर्वनिपाते, “नलोपो नञः” इति  
नकारस्य लोपे ‘अ अश्व’ इति जाते “तस्मान्नुडचि” इति अश्वगताकारस्य नुटि,  
उटि गते, टित्वादाद्यावयवे भूते ‘अ न् अश्व’ इति जाते, संयोगे कृते, कृते च  
विभक्तिकार्ये तत्सिद्धिः । ननु ‘नैकधा’ इत्यत्रापि नन्वसमासे “नलोपो नञः” इति  
नकारस्य लोपे “तस्मान्नुडचि” इति नुटि, अनेकधेत्येव स्यादित्यत आह—नैकधे-  
त्यादौ त्विति । एतदर्थमेव “नञ्” इति सूत्रे “नलोपो नञः” इति सूत्रे च  
अकारानुबन्धग्रहणमिति भावः । कुगति । नित्यमिति वर्तते । कुशब्दोऽभ्यय गृह्यते,  
गत्यादिसाहचर्यात् । न द्रव्यवचनः । कुः पापार्थे । कुत्सितः पुरुष इति । नित्यसमासत्वा-  
दस्वपदविग्रहः । कुरुषः । ‘कु सु पुरुष सु’ इत्यत्र “कुगतिप्रादयः” इति नित्यसमासे,  
सुपो लुकि, ‘कु’ इत्यस्य पूर्वनिपाते विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धम् । ऊर्यादि । च्वि-  
डाचौ प्रत्ययौ । ऊरीकृत्य । ऊरीत्यभ्ययमङ्गीकारे, तस्य “ऊर्यादिच्चिडाचञ्च” इति  
गतिसंज्ञायाम् “कुगतिप्रादयः” इति ‘कृत्वा’ इत्यनेन सह गतिसमासे “समासेऽन-  
भ्यपूर्वे क्त्वो ल्यप्” इति ‘क्त्वा’ इत्यस्य स्थाने ल्यपि, ल्यप्पोरित्संज्ञायां लोपे च  
‘ऊरीकृ च’ इति भूते “इत्स्वस्य पिति कृति मुक्” इति कुगागमे उकि गते, कित्वाच्-

( प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया ) प्रगत आचार्यः । प्राचार्यः (अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया ) अतिक्रान्तो मालामिति विग्रहे ॥ एकविभक्ति चापूर्वनिपाते १।२।४४ विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनसञ्ज्ञं स्यान्न तु तस्य पूर्वनिपातः ॥ गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य १।२।४८ उपसर्जनं यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात् । अतिमालः । (अवादयः कृष्णद्यर्थे तृतीयया) अव-

न्यावयवे जाते, तस्मात्सौ, “अव्ययादाप्सुपः” इति सुपो लोपे च तस्मिद्धम् । शुद्धीकृत्येति । अशुक्लं शुक्लं कृत्वेत्यर्थः । “कृभ्वस्तियोगे” इत्यभूततद्भावेच्चिः । गतिसमासे सति क्त्वो ल्यप्, “वेरपृक्तस्य” इति वलोपः । “अस्य च्वौ” इति ईत्वम् । पटपटाकृत्येति । पटपटा इति शब्दं कृत्वेत्यर्थः । “अव्यक्तानुकरणात् इयजवरार्धादनितौ ङाच्” इति पटत् शब्दाङ्गाच्चि द्वित्वम्, टिलोपः । “नित्यमात्रेडिते ङाच्चि” इति तकारपकायोः पकार एकादेशः । गतिसमासे क्त्वो ल्यप् । सुपुरुष इति । अत्र क्रियायोगाभावादगतित्वेऽपि समासः । सोः पूजार्थकत्वेऽपि घातुवाच्यक्रियायोगाभावाच्च गतित्वम् । अत्र “कुगतिप्रादयः” इति प्रादिवात्समासे विभक्तिकार्यं च तस्मिद्धिः । प्रादय इति । गताद्यर्थे विद्यमानाः प्रादयः समस्यन्त इत्यर्थः । प्र गत आचार्य इति । प्रेत्यस्य विवरणं गत इति, गत आचार्य इत्येव अस्वपदविग्रहः, नित्यसमासत्वात् । प्राचार्यः । ‘प्र आचार्य सु’ इत्यत्र “कुगतिप्रादयः” इति समासे “प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया” इति प्रथमान्तेन सह समासे जाते सुपो लुकि, प्रेत्यस्य पूर्वनिपाते विभक्तिकार्यं च तस्मिद्धम् । अत्यादय इति । क्रान्ताद्यर्थे अत्यादयः समस्यन्त इत्यर्थः । अतिक्रान्तो मालामिति । अतिसम्बद्धः क्रान्ते वर्तते । क्रान्तो मालामित्यस्वपदविग्रहः । तत्र क्रमधातोरतिक्रमणमर्थः । एकविभक्ति । “प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्” इत्यतः समास इति उपसर्जनमिति चानुवर्तते । समास इत्यनेन विग्रहवाक्यं लभ्यते । एकैव विभक्तिर्यस्य तदेकविभक्तिः, नियतविभक्तिकमिति यावत् । एवञ्च विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तत्पूर्वनिपातमिहकार्यं कर्तव्ये उपसर्जनं स्यादित्यर्थः । फलितमाह—विग्रहे यन्नियतेति । गोस्त्रियोरिति । “ह्रस्वो नपुसके प्रातिपदिकस्य” इत्यतो ह्रस्व इति प्रातिपदिकस्येति चानुवर्तते । उपसर्जनस्येति गोस्त्रियोर्विशेषणम् । प्रत्येकाभिप्रायमेकवचनम् । स्त्रीशब्देन स्त्रीप्रत्ययो गृह्यते । प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तदन्तविधिः । उपसर्जनभूतस्य गोशब्दस्य स्त्रीप्रत्ययान्तस्य चेति लभ्यते । तदुभयं प्रातिपदिकस्य विशेषणम् । तदन्तविधिः । तदाह—उपसर्जनमित्यादिना । अतिमालः । ‘अति माला अम्’ इत्यत्र “कुगतिप्रादयः” इति सूत्रेण “अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया” इति वार्तिकव्यवस्थया च समासे कृते, सुपो लुकि, अतीत्यस्य पूर्वनिपाते “एकविभक्तिचापूर्वनिपाते” इति मालेत्यस्य उपसर्जनसंज्ञायाम् “गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य” इति मालेत्यस्य ह्रस्वे, समुदायात्सौ, कृते

कुष्ठः कोकिल्या अवकोकिलः । ( पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या ) परिग्लानोऽध्ययनाय पर्यध्ययनः । ( निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या ) निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः निष्कौशाम्बिः ॥ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ३।१।६२ सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसञ्ज्ञं स्यात् । उपपदमतिङ् २।२। १६ । उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते । अतिङन्तश्चायं समासः । कुम्भं करोतीति कुम्भकारः । अतिङ् किम् ? मा भवान् भूत् । “माङि लुङ्” इति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम् । “गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तः” । व्याघ्री । अश्वक्रीती । कच्छपोत्यादि ॥ तत्पुरुषस्याङुलः सङ्ख्यान्व-

विसर्गं च तत्सिद्धिः । अवादयः कृष्टाद्यर्थे इति । कृष्टाद्यर्थे अवादयः समस्यन्ते इत्यर्थः । अवकोकिलः । कोकिल्या आहूत इत्यर्थः । ‘अव कोकिला टा’ इत्यलौकिकविग्रहे “कुगतिप्रादयः” इति सूत्रेण “अवादयः कृष्टाद्यर्थे तृतीयया” इति वार्तिकव्यवस्थया च समासे, सुपो लुकि, अवैत्यस्य पूर्वनिपाते “एकविभक्तिचापूर्वनिपाते” इत्युपसर्जनसंज्ञायाम् “गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य” इति कोकिलेत्यस्य ह्रस्वत्वे सौ, रुत्वे विसर्गं च तत्सिद्धिः । पर्यादय इति । ग्लानाद्यर्थे पर्यादयः समस्यन्ते इत्यर्थः । पर्यध्ययनः । अत्र “पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे” इत्यनेन समासः । निरादय इति । क्रान्ताद्यर्थे निरादयः समस्यन्त इत्यर्थः । निष्कौशाम्बिः । अत्र “निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या” इति समासे सुपो लुकि, “एकविभक्तिचापूर्वनिपाते” इत्युपसर्जनसंज्ञायाम्, “गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य” इति ह्रस्वत्वे विभक्तिकाये च कृते ‘निष्कौशाम्बिः’ इति रूपम् । तत्रोपपदम् । सप्तमीस्थमित्येतद्वाचक्ये—सप्तम्यन्त इत्यादिना । तद्वाचकं पदमिति । एतच्चोपपदमित्यन्वर्थसंज्ञाबलाद्भव्यते । उपपदमतिङ् । सुबन्तमिति । “सुबामन्त्रिते” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । समर्थेनेति । प्रथमान्तं समर्थग्रहणं तृतीयान्ततया विपरिणम्यत इति भावः । अतिङन्तश्चायं समास इति । सूत्रे ऽतिङिति तदन्तग्रहणमिति भावः । समासः तिङन्तवदितो न भवतीत्यर्थः । कुम्भकारः । कुम्भं करोतीत्यर्थे “कर्मण्यण्” इत्यणि “कुम्भ अम् कृ अण्” इत्यलौकिकविग्रहे “अचो ष्णिप्ति” इति वृद्धौ “तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्” इति कुम्भशब्दस्योपपदसंज्ञायाम् “उपपदमतिङ्” इति समासे सुपो लुकि, ‘कुम्भकार’ इति भूते समासत्वात्प्रातिपदिकत्वे विभक्तिकार्ये च कृते, ‘कुम्भकारः’ इति रूपम् । मा भवान् भूदिति । अत्र भूदिति तिङन्तेन माङः समासनिवृत्त्यर्थमतिङग्रहणमिति भावः । व्याघ्री । विशेषेष्व आसमन्ताजिघ्रसीतीति “व्याघ्री” इत्यत्र “गतिश्च” इति गतित्वात् सुबुत्पत्तेः पूर्वं “कुमतिप्रादयः” इति समासे ‘व्याघ्र’ इति जाते “जातेरस्त्रीविषयादचोपपन्नः” इति कश्चि, क्यबोर्लोपे ‘व्याघ्र ई’ इति भूते “वचि अम्” इति असंज्ञायाम् “यस्तेष्वि च” इति अलोपे, शिष्यकिकार्ये च कृते ‘व्याघ्री’ इति । अश्वक्रीती । अश्वेन क्रीता इति

यदेः ५।४।८६ सङ्ख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य समासान्तोऽच् स्यात् । द्वे अङ्गुली प्रमाणस्य द्व्यङ्गुलम् । निर्गतमङ्गुलिभ्यो निरङ्गुलम् ॥ अहः सर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः ५।४।८७ एभ्यो रात्रेरच् स्यात्सङ्ख्याव्ययादेः । अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम् ॥ रात्राद्वाहाः पुंसि २।४।२६ एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्वेव । अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रः । सर्वरात्रः । पूर्वरात्रः । सङ्ख्यातरात्रः । सङ्ख्यापूर्व रात्रं क्लीबम् ।

विग्रहे “गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनम्, प्राक् सुबुत्पत्तेः” इति परिभाषया सुबुत्पत्तेः प्राक् “कर्तृकरणे कृता बहुलम्” इति समासे, सुपो लुकि, “क्रीतात्करणपूर्वात्” इति ङीषि ङ्यलोपे “अश्चक्रीत-ई” इति जाते भसंज्ञायां यस्येति लोपे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । सुबन्तेन समासे तु टाप् स्यादिति कच्छपो । कच्छेन पिबतीति कच्छपी इत्यत्र “आतोऽनुपसर्गे कः” इति के, कलोपे “आतो लोप इटि च” इति आकारलोपे “गतिकारकोपपदानां कृद्भिः” इति सुबुत्पत्तेः प्राक् “उपपदमतिङ्” इति समासे सुपो लुकि “जातेरङ्गीविषयादथोपधात्” इति ङीषि, ङ्यलोपे भसंज्ञायाम् अकारलोपे संयोगे विभक्तिकार्यं च कृते ‘कच्छपी’ इति सिद्धयति । तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः । “अच्प्रत्यन्ववपूर्वात्” इत्यतः अजित्यनुवर्तते, “समासान्तः” इत्यधिकृतम् । तेन समासस्य अन्तावयव इति लभ्यते । प्रत्ययः परश्च इत्यधिकारात् अच्प्रत्ययस्य तत्पुरुषापरत्वेऽपि तस्य तदवयवत्वात् । अङ्गुलेरिति अवयवपद्धी । अङ्गुलेरिति तत्पुरुषविशेषणं, तदन्तविधिः । तदाह—संख्याव्ययादेरिति । संख्या च अव्ययं च संख्याव्यये, ते आदी यस्येति विग्रहः । द्व्यङ्गुलमिति । “तद्वितार्थ” इति द्विगुः । “प्रमाणे लः” “द्विगोर्नित्यम्” इति लुक् । द्व्यङ्गुलिशब्दादचि तस्य तद्वितत्वात्तस्मिन् परे “यस्येति च” इति इकारलोपः । निरङ्गुलमिति । “निराद्यः क्रान्ताद्ययः” इति समासः “तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः” इति अच् इलोपः । अहस्सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च । एभ्यो रात्रेरिति । अहन्, सर्व, एकदेश, संख्यात, पुण्य, एभ्यः परस्य रात्रिस्तदस्येत्यर्थः । अहश्चादिपूर्वकस्य रात्र्यन्तस्य तत्पुरुषस्येति यावत् । अहो रात्रिरिति वा अहश्चासी रात्रिरचेति वा असम्मवादिष्यत आह—अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थमिति । रात्राद्वाहाः । द्वन्द्वतत्पुरुषयोरित्यनुष्ठुपं प्रथमाबहुवचनेन विपरिणतं रात्रादिभिर्विशेष्यते, तदन्तविधिः । रात्राद्वाहान्तद्वन्द्वतत्पुरुषाः पुंसीत्यर्थः । फलितमाह—एतदन्तविधिः । परवह्नि-ज्ञप्तापवादः । अहोरात्र इति । अहश्च रात्रिश्च तयोस्समाहारः इति द्वन्द्वे परत्वाच्चपुंसकत्वं प्राप्तम् अपवादत्वात् परवह्निज्ञमपि बाधित्वा अनेन पुंस्त्वम् । “अहस्सर्वैकदेश” इत्यच । सर्वरात्रः । सर्वा चासौ रात्रिरचेति “विशेषणं विशेष्येण बहुलम्” इति समासे, सुपो लुकि, “अहस्सर्वैकदेशः” इत्यचि, भसंज्ञायाम् यस्येति लोपे “रात्राद्वाहाः पुंसि” इति पुंस्त्वे ली, ह्त्वे विसर्गे च तत्सिद्धिः । पूर्वरात्रः । रात्रेः पूर्वः (भागः) पूर्वरात्रः । “पूर्वरात्रोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे” इति समासे, “अहस्सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च



द्विरात्रम् । त्रिरात्रम् ॥ राजाहःसखिभ्यष्टच् १।४।११ एतदन्तात्तत्पुरुषाद्वच्  
 स्यात् । परमराजः ॥ आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ६।३।४६ महत्  
 आकारोऽन्तादेशः स्यात्समानाधिकरणो उत्तरपदे जातीये च परे । महाराजः । प्रका-  
 रवचने जातीयर्, महाप्रकारो महाजातीयः ॥ द्यष्टनः सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशी-  
 त्योः ६।३।४७ आत्स्यात् । द्वौ च दश च द्वादश । अष्टाविंशतिः ॥ त्रेख्यः ६।  
 ३।४८ त्रयोदश । त्रयोविंशतिः । त्रयस्त्रिंशत् ॥ परवलिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः २।  
 ३।२६ एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात् । कुक्कुटमयूर्याविमे, मयूरीकुक्कुटाविमौ ।

रात्रेः” इत्यच् । “रात्रा ाहाः पुंसि” इति पुंस्त्वम् । संख्यापूर्वमिति । लिङ्गानुशासनसू-  
 त्रमिदम् । न त्वष्टाध्यायीस्थं नापि वार्तिकम् । भाष्येऽदर्शनात् । “रात्रान्हाहाः पुंसि”  
 इत्यस्यायमपवादः । द्विरात्रमिति । द्वयोः रात्र्योः समाहारः इति समाहारद्विगुः । “अह-  
 स्सर्वकदेश” इत्यच् । “संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्” इति क्लीबत्वम् । एवं ‘त्रिरात्रम्’  
 इति । राजाहः सखिभ्यष्टच् । “तत्पुरुषस्याङ्गुलेः” इत्यतः तत्पुरुषस्येत्यनुवृत्तं पञ्चमीब-  
 हुवचनत्वेन विपरिणतं राजाहस्सखिभ्य इत्यनेन विशेष्यते । तदन्तविधिः, तदाह—  
 एतदन्तादिति । परमराजः । परमश्चासौ राजा चेति विग्रहः । “विशेषणं विशेष्येण बहु-  
 लम्” इति समासः । “राजाहःसखिभ्यष्टच्” इति समासान्तष्टच् । “नस्तद्धिते” इति  
 टिलोपः । आन्महतः । “अलुगुत्तरपदे” इत्युत्तरपदाधिकारस्थमिदं सूत्रम् । उत्तरपदे  
 इत्यनुवृत्तं समानाधिकरणपदे अन्वेति, न तु जातीय इति, तस्य प्रत्ययत्वात् । तदाह—  
 महत् आकार इत्यादिना । महाराजः । महांश्चासौ राजा ‘महाराजः’ इत्यत्र “सन्महत्पर-  
 मोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः” इति समासे, सुपो लुकि, “राजाहःसखिभ्यष्टच्” इति टचि,  
 टच्योलोपे “नस्तद्धिते” इति टेलोपे संयोगे कृते ‘महत् राज’ इति जाते “आन्महतः  
 समानाधिकरणजातीययोः” इति समानाधिकरणे राज इत्युत्तरपदे महत्स्तकारस्यात्वे  
 “अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घत्वे विभक्तिकार्ये च कृते ‘महाराजः’ इति । महाजातीयः।  
 महत्सहस्र इत्यर्थः । प्रकारवचने जातीयर्, आत्वम्, सवर्णदीर्घः । द्व्यष्टनः । संख्याया-  
 मिति । शेषपूरणेन सूत्रं व्याचष्टे—आत्स्यादिति । द्विशब्दस्य अष्टन्शब्दस्य च संख्या-  
 वाचके उत्तरपदे परे आत्स्यात्, न तु बहुव्रीह्यशित्योरित्यर्थः । द्वादश । द्वौ च दश च  
 द्वादश इत्यत्र “चार्थे द्वन्द्वः” इति समासे, सुपो लुकि, ‘द्विदश’ इति जाते “द्व्यष्टनः  
 संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः” इति द्विशब्दस्याकारान्तादेशे विभक्तिकार्ये च कृते ‘द्वादश’  
 इति । एवमेव ‘अष्टाविंशतिः’ इत्यत्राप्यात्वम्बोध्यम् । परवलिङ्गमिति । परवदिति षष्ठ्य-  
 न्तादिति । तदाह—एतयोः परपदस्येवेति । द्वन्द्वपदमत्र इतरेतरयोगद्वन्द्वपरम्, समाहार-  
 द्वन्द्वे “स नपुंसकम्” इत्यस्य तदपवादत्वात् । कुक्कुटमयूर्याविमे । अत्र द्वन्द्वे अवयव-  
 किञ्चनानिवसे प्राप्ते नियमार्थमिदम् । अर्धपिप्पलीति । “अर्धं नपुंसकम्” इति तत्प-

अर्धपिप्पली । ( द्विगुप्राप्तापञ्चालम्पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः )  
पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः तुरोबाशः ॥ प्राप्तापन्ने च द्वितीयया २।४।४  
समस्येते, अकारश्चानयोरन्तादेशः । प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः । आपन्नजीविकः ।  
अलङ्कुमार्यै अलङ्कुमारिः । अत एव शापकात्समासः । निष्कौशाम्बिः ॥ अर्धर्चाः  
पुंसि च २।४।३१ अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि क्रीवे च स्युः । अर्धर्चम्, अर्धर्चः ।  
एवं—ध्वज तीर्थं शरीर मण्ड पीयूष देह अङ्कुश पात्र सूत्रादयः ? “सामान्ये नपुंस-  
कम्” । मृदु पचति । प्रातः कमनीयम् ॥ इति तत्पुरुषः ।

### अथ बहुव्रीहिः ।

शेषो बहुव्रीहिः २।२।२३ अधिकारोऽयं प्राग् द्वन्द्वात् । अनेकमन्यपदार्थे  
२।२।२४ अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः ॥

रुषः । अत्र “परवलिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः” इति परपदस्य लिङ्गम् । द्विगुप्राप्तेति । द्विगु,  
प्राप्त, आपन्न, अलङ्पूर्व, गतिसमास एतेषु परवलिङ्गस्य प्रतिषेधो वक्तव्य इत्यर्थः ।  
पञ्चकपालः । अत्र “तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारे च” इति समासे, सुपो लुकि, “द्विगो-  
र्लुङनपत्ये” इति प्राग्दीन्यतीयप्रत्ययस्य लुकि, “परवलिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः” इति  
परवलिङ्गत्वे प्राप्ते परं “द्विगुप्राप्तापञ्चालम्पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः” इति  
परवलिङ्गत्वप्रतिषेधे, विभक्तिकार्यं च कृते तरिसङ्घिः । प्राप्तजीविकः । “प्राप्तापन्ने च  
द्वितीयया” इति समासः । अत्र परवलिङ्गता प्राप्ता, सा “द्विगुप्राप्तापञ्चालम्पूर्वगतिस-  
मासेषु प्रतिषेधो वाच्यः” इत्यनेन निषिद्धते । आपन्नजीविकः । अत्र उत्तरपदस्य जीवि-  
काशब्दस्य यल्लिङ्गं तत्समासस्य न भवति । अलङ्कुमारिरिति । अत्र उत्तरपदकुमारी-  
लिङ्गं समासस्य न भवति । “एकविभक्तिं च” इति कुमारीशब्दस्योपसर्जनत्वाद्भवत्वं  
गतिसमासमुदाहरति—निष्कौशाम्बिरिति । अत्र कौशाम्बीशब्दलिङ्गं समासस्य न भवति  
अर्धर्चाः । बहुवचनान्तदादीनां ग्रहणमित्याह—अर्धर्चादय इति । अर्धर्चमिति । ऋचोऽ-  
र्धमिति विग्रहे “अर्धं नपुंसकम्” इति समासः । “ऋक्पूः” इति अच् । परवलिङ्गं  
स्त्रीत्वं बाधित्वा पुनपुंसकत्वविकल्पः । सामान्ये नपुंसकमिति । न्यायसिद्धमेतत् । विज्ञे-  
यविशेषणसञ्चिधाने सति स्त्रीत्वपुंस्त्वयोरनभिन्न्यक्तौ ‘उभयोरन्तरं यच्च तदभावे  
नपुंसकम्’ इति लक्षणलक्षितनपुंसकत्वस्यैव न्याय्यत्वात् । मृदु पचतीति । क्रियाविशेष-  
णमिदं द्वितीयान्तम् । मृदु पाकं करोतीत्यर्थः । प्रातः कमनीयमिति । रमणीयमित्यर्थः ।  
इति तत्पुरुषसमासः ।

शेषो बहुव्रीहिरिति । उक्तादन्यः शेषः । “द्वितीया भित” इत्यादिना ( शास्त्रेण )  
यस्य त्रिकस्य ( विभक्तेः ) विशिष्यसमासो नोक्तः, स शेषः प्रथमान्त इत्यर्थः ।

सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ २।२।३५ सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् ।  
अत एव ज्ञापकाध्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः ॥ हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम् ६।  
३।६ हलन्ताददन्तात्सप्तम्या अलुक् । कण्ठेकालः । प्राप्तमुदकं यं प्राप्तोदको ग्रामः ।  
ऊढरथोऽनङ्वान् । उपहृतपशू रुद्रः । उद्धृतौदना स्थाली । पीताम्बरो हरिः । वीर-  
पुरुषको ग्रामः । ( प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः ) प्रपति-  
तपर्णः प्रपर्णः । ( नजोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः ) अविविद्यमानः

अनेकमन्यपदार्थे । प्रथमान्तमिति । शेषग्रहणानुवृत्तिलभ्यमिदम् । अन्यस्येति । उपस्थि-  
तप्रथमान्तातिरिक्तस्येत्यर्थः । सप्तमी विशेषणे । “उपसर्जनं पूर्वम्” इत्यतः पूर्वमित्य-  
नुवर्तते । प्रत्ययग्रहणपरिभाषया सप्तमीति तदन्तग्रहणम् । तद्वाह—सप्तम्यन्तमिति ।  
अत एव ज्ञापकादिति । प्रथमान्तानामेव बहुव्रीहिरिति सप्तम्यन्तस्य तत्र सम्भव एव  
नास्ति इति सप्तम्यन्तस्य “सप्तमी विशेषणे” इति सूत्रे पूर्वनिपातविधानं व्यर्थं सद्  
ज्ञापयति “भवति व्यधिकरणपदोऽपि बहुव्रीहिः क्वचित्” इति । यथा—कण्ठेकालः,  
शरेभ्यो जन्म यस्य स शरजन्मा—षडाननः । हलदन्तात् । अलुगिति । “अलुगुत्तरपदे”  
इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । कण्ठेकालः । कण्ठे कालः इत्यत्र “अनेकमन्यपदार्थे”  
इत्यनेन ( ज्ञापकात् ) बहुव्रीहिसमासे, “सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ” इति सप्तम्यन्तस्य  
पूर्वनिपाते, समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां “हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्” इति  
सप्तम्याः अलुकि, सुपो लुकि, समुदायात्सौ, रुत्वे विसर्गे च तत्सिद्धिः । एवमेव  
‘त्वचि सारः’ इत्यत्रापि बोध्यम् । प्राप्तोदकः । ‘प्राप्तं सु उदकं सु’ इत्यलौकिकविग्रहे  
“अनेकमन्यपदार्थे” इति बहुव्रीहिसमासे, प्रातिपदिकत्वे सुपो लुकि, गुणे, विभक्ति-  
कार्थं च तत्सिद्धिः । ऊढरथः । उढो रथो येनेति विग्रहः । साधनिका पूर्ववत् । उपहृत-  
पशू रुद्रः । उपहृतः पशुः यस्मै इति विग्रहः । उद्धृतौदना स्थाली । उद्धृतः ओदनो  
यस्याः इति बहुव्रीहिः । पीताम्बरो हरिः । पीतम् अम्बरं यस्येति विग्रहः । वीरपुरुषको  
ग्रामः । वीराः पुरुषाः यस्मिन् इति विग्रहः । अत्र “अनेकमन्यपदार्थे” इति समासे,  
सुपो लुकि, “शेषाद्विभाषा” इति कपि, समुदायात्सौ, रुत्वे, विसर्गे च तत्सिद्धिः ।  
प्रादिभ्यः । प्रादिभ्यः परं यद्भातुजप्रकृतिकप्रथमान्तं तस्य अन्येन प्रथमान्तेन बहुव्रीहि-  
र्वाच्यः, तत्र बहुव्रीहौ प्रादिभ्यः परस्य उत्तरपदस्य धातुजस्य लोपश्च विकल्पेन वाच्य  
इत्यर्थः । प्रपतितपर्ण इति । प्रकृष्टं पतितं प्रपतितम् । “प्रादयो गताद्यर्थे” इति समासः ।  
प्रपतितं पर्णं यस्मादिति बहुव्रीहिः । प्रपर्ण इति । प्रपतितेति पूर्वपदे धातुजस्य उत्त-  
रपदस्य लोपे रूपम् । नजोऽस्त्यर्थानाम् । नजः परेषामस्त्यर्थवाचिनां सुबन्तानां  
बहुव्रीहिर्वाच्यः । तत्रास्त्यर्थवाचिनामुत्तरपदभूतानां लोपश्च वा वक्तव्य इत्यर्थः ।  
अविविद्यमानपुन इति । न विविद्यमान इति नव्यसमासः । नजो नलोपः । अविविद्यमानः पुनो

पुत्रोऽपुत्रः ॥ स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ६।३।३४ उक्तपुंस्कादनूङ् ऊङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहिनिपातनात्पञ्चम्या अलुक् षष्ठ्याश्च लुक् । तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे न तु पूरण्यां प्रियादौ च परतः । “गोस्त्रियोः” इति ह्रस्वः । चित्रगुः । रूपवद्भार्यः । अनूङ् किम् ? वामोरुभार्यः ॥ अप्पूरणीप्रमाणयोः ५।४।११६ पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत्स्त्रीलिङ्गं तदन्तात्प्रमाभ्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप्यस्यात् । कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः कल्याणीपञ्चमा रात्रयः । स्त्री प्रमाणी यस्य सः स्त्रीप्रमाणः । अप्रि-

यस्येति बहुव्रीहिः । अपुत्र इति । अस्स्यर्थकविद्यमानशब्दस्य लोपे रूपम् । स्त्रियाः पुंवत् । भाषितः पुमान् यस्मिन्नर्थे प्रवृत्तिनिमित्ते स भाषितपुंस्कशब्देनोच्यते । तस्य प्रतिपादको यः शब्दः सोऽपि भाषितपुंस्कः । ऊङोऽभावोऽनूङ् । भाषितपुंस्कादनूङ् यस्मिन् स्त्रीशब्दे स भाषितपुंस्कादनूङ् स्त्रीशब्दः । स्त्रियामिति सप्तम्यन्तमपि न स्त्रीप्रत्ययपरं किन्तु स्त्रीलिङ्गपरम् । तच्च “अलुगुत्तरपदे” इत्यधिकृते उत्तरपदेऽन्वेति । तदाह—स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे इति । ह्रस्व इति । चित्रा गावो यस्येति विग्रहे बहुव्रीहिसमासे सुष्ठुकि सति अनेकमिति प्रथमान्तनिर्दिष्टतया, विग्रहे नियतविभक्तिकतया वा उपसर्जनत्वे सति चित्रगोशब्दे ओकारस्य “गोस्त्रियोः” इत्युकारो ह्रस्व इत्यर्थः । चित्रगुः । चित्रा गौर्यस्य इति विग्रहे “अनेकमन्यपदार्थ” इति समासे सुपो लुकि, “स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ्समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु” इति “चित्रा” इत्यस्य पुंवद्भावे गोशब्दस्य “गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य” इति ह्रस्वत्वे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । रूपवद्भार्यः । रूपवती भार्या यस्य इति विग्रहे “अनेकमन्यपदार्थ” इति बहुव्रीहिसमासे सुपो लुकि, “स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ्” इति पूर्वपदस्य पुंवद्भावे, उत्तरपदस्य “गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य” इति ह्रस्वत्वे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । वामोरुभार्यः । अत्र अनूङ् इति निषेधाच्च पुंवद्भावः । अप्पूरणी । अबिति छेदः । “बहुव्रीहौ सवध्यङ्गोः” इत्यतो बहुव्रीहावित्यनुवृत्तं पूरणीप्रमाणीभ्यां विशेष्यते, तदन्तविधिः । स्त्रीलिङ्गनिर्देशात् पूरणप्रत्ययान्तं स्त्रीलिङ्गमिह गृह्यते । तदाह—पूरणार्थेत्यादिना । अप् स्यादिति । सुभासान्तस्तद्धित इत्यपि बोध्यम् । कल्याणीपञ्चमाः । कल्याणी पञ्चमी यासामिति विग्रहे “अनेकमन्यपदार्थ” इति बहुव्रीहौ कृते, पञ्चमीशब्दे पूरणार्थप्रत्ययान्ते परे कल्याणीशब्दस्य पुंवत्त्वनिषेधे “अप्पूरणीप्रमाणयोः” इति समासान्ते अप्प्रत्यये च कृते “यस्येति च” इतीकारलोपे विभक्तिकार्यं च कृते तत्सिद्धिः । स्त्रीप्रमाणः । इह बहुव्रीहौ कृते भाषितपुंस्कत्वाभावात् अपुंवद्भावे “अप्पूरणीप्रमाणयोः” इति अप्प्रत्यये “यस्येति च” इतीकारलोपे “स्त्रीप्रमाण” इति रूपम् ।

यदिषु किम् ? कल्पाणीप्रियः, इत्यादि ॥ बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्  
 ५।४।११३ स्वाङ्गावचिसक्थ्यक्ष्यन्ताद्बहुव्रीहेः षच् स्यात् । दीर्घसक्थः । जलजाक्षी ।  
 स्वाङ्गात्किम् ? दीर्घसक्थि शकटम् । स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः । “अक्ष्णोऽदर्शनात्” इति  
 वक्ष्यमाणोऽच् ॥ द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ५।४।११५ आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद्बहुव्रीहौ ।  
 द्विमूर्धः । त्रिमूर्धः ॥ अन्तर्बहिर्भ्यां च लोमनः ५।४।११७ आभ्यां लोमोऽप्स्या-  
 द्बहुव्रीहौ । अन्तर्लोमः ॥ बहिर्लोमः । पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ५।४।१३८  
 हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोपः स्याद्बहुव्रीहौ । व्याघ्रस्येव पादा-

बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः । ‘बहुव्रीहौ’ इति सप्तमी व्यत्ययेन पञ्चम्यर्थे । तदाह—स्वाङ्गावाची-  
 ति । सक्थ्यक्ष्यन्तादिति । बहुव्रीहिविशेषणत्वात् तदन्तर्विधिरिति भावः । षच् स्यादिति ।  
 समासान्तस्तद्धितश्चेति ज्ञेयम् । दीर्घसक्थ इति । दीर्घे सक्थिनी यस्य स दीर्घसक्थः  
 इत्यत्र “अनेकमन्यपदार्थे” इति समासे कृते सुपो लुकि, “बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः  
 स्वाङ्गात्षच्” इति षचि, “यस्येति च” इति इकारलोपे विभक्तिकार्यं च कृते  
 तत्सिद्धिः । जलजाक्षी । जलजे इव अक्षिणी यस्याः सा, इति बहुव्रीहिसमासे “बहुव्रीहौ  
 सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्” इद्भि समासान्ते षचि, षच्योलोपे, भसंज्ञायाम् “नस्तद्धिते”  
 इति टिलोपे “षिद्वीरादिभ्यश्च” इति षित्वान्ङोषि, अनुबन्धलोपे “यस्येति च” इति  
 अलोपे विभक्तिकार्यं च कृते ‘जलजाक्षी’ इति रूपम् । दीर्घसक्थि शकटमिति । दीर्घे  
 सक्थिनी—सक्थिसदृशावीषादण्डौ यस्येति विग्रहः । अत्र स्वाङ्गत्वाभावात् न षच्  
 इति भावः । स्थूलाक्षेति । स्थूलानि अक्षाणि पर्वप्रन्थयो यस्या इति बहुव्रीहिः ।  
 अस्वाङ्गत्वादिह न षजिति भावः । ननु षजभावेऽपि नान्तलक्षणङीपि स्थूलाक्षिणीति  
 स्यादित्यत आह—अक्ष्णोऽदर्शनादिति । षचि तु षित्वलक्षणादङीष स्यादिति भावः ।  
 द्वित्रिभ्याम् । षेति लुप्तप्रथमाकं पदम् । द्विमूर्धं इति । द्वौ मूर्धानौ यस्येति विग्रहः ।  
 अत्र “द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः” इति षचि, षच्योलोपे टिलोपे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः ।  
 त्रिमूर्धं इति । त्रयो मूर्धानो यस्येति विग्रहः । “द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः” इति समासान्तः  
 षच् । “नस्तद्धिते” इति टिलोपः । अन्तर्बहिर्भ्याञ्च । अप्स्यादिति । “अप्पूरणीप्रमाण्योः”  
 इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । अन्तर्लोम इति । अन्तर्लोमानि यस्य इति “अनेकमन्यप-  
 दार्थे” इति बहुव्रीहिसमासे, सुपो लुकि, “अन्तर्बहिर्भ्याञ्च लोमनः” इति अप्रत्यये  
 समासान्ते कृते भसंज्ञायां टिलोपे च कृते तत्सिद्धिः । एवं बहिर्लोमः । पादस्य लोपः ।  
 अहस्त्यादिभ्य इति ऋद्धेः । उपमानादित्यनुवर्तते । तदाह—हस्त्यादिवर्जितादि । व्याघ्र-  
 पाद । व्याघ्रस्येव पादौ यस्यासौ व्याघ्रपात् इत्यत्र “अनेकमन्यपदार्थे” इति समासे,  
 सुपो लुकि ‘व्याघ्रपाद’ इति जाते “पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः” इति ढकारोत्तरव-  
 र्त्त्यङ्कारलोपे, विभक्तिकार्यं “वावसाने” इति दस्य तत्वे च कृते ‘व्याघ्रपात्’ इति ।

नस्या व्याघ्रपात् । अहस्तादिभ्यः किम् ? हस्तिपादः । कुसूलपादः । संह्यासुपूर्-  
वस्य १।४।१४० पादस्य लोपः स्यात् समासान्तो बहुव्रीहौ । द्विपात् । सुपात् ॥  
उद्विभ्यां काकुदस्य १।४।१४८ लोपः स्यात् । उत्काकुत् । विककुत् ॥ पूर्णा-  
दिभाषा १।४।१४६ पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः ॥ सुहृदुहृदौ मित्रामित्रयोः  
१।४।१५० सुदुभ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते । सुहृन्मित्रम् । दुहृदमित्रः ॥ उरः-  
प्रभृतिभ्यः कप् १।४।१५१ सोऽपदादौ ८।३।३८ पाशकल्पककाम्येषु विसर्गस्य  
सः । कस्कादिषु च ८।३।४८ एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षः स्यादन्यत्र तु सः ।  
इति सः । व्यूढोरस्कः । इणः षः ८।३।३६ इण उत्तरस्य विसर्गस्य षः स्यात् पाश-  
कल्पककाम्येषु परेषु । प्रियसर्पिष्कः ॥ निष्ठा २।२।३६ निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्व

हस्तिपादः, कुसूलपादः । अत्र पादशब्दस्य लोपो न, हस्यादित्वादिति भावः । संह्या-  
सुपूर्वस्य । शेषपूरणेन सूत्रं व्याचष्टे—पादस्येति । उपमानात् परत्वाभावाद्भासौ  
वचनम् । निपादिति । द्वौ पादौ अस्येति विग्रहः । सुपादिति । शोभनौ पादावस्येति विग्रहः ।  
अत्र “संह्यासुपूर्वस्य” इति समासान्तलोपः । उद्विभ्यां काकुदस्य । लोपः स्यादिति ।  
उद्विभ्यां परस्य काकुदस्य लोपः स्याद् बहुव्रीह्यावित्यर्थः । उत्काकुत् । उन्नतं काकुदं  
यस्य उत्काकुत्, विगतं काकुदं यस्येति विककुत्, इत्यत्र बहुव्रीहिसमासे सुपो लुकि,  
“उद्विभ्यां काकुदस्य” इति दकारोत्तरवर्त्यकारलोपे विभक्तिकार्यं च ‘उत्काकुत्’  
‘विककुत्’ इति रूपे स्तः । पूर्णादिभाषा । पूर्णात्परस्य काकुदस्य लोपो वा स्यादित्यर्थः ।  
पूर्णं काकुदं यस्येति विग्रहः । सुहृद् दुहृदौ । यथासंख्यमभिप्रेत्योदाहरति—सुहृन्मित्र  
मिति । सु शोभन हृदयं यस्येति विग्रहः । अत्र “अनेकमन्यपदार्थे” इति समासे  
सुपो लुकि, “सुहृदुहृदौ मित्रामित्रयोः” इति हृदयशब्दस्य स्थाने हृद् आदेशे कृते  
विभक्तिकार्यं च कृते ‘सुहृद्’ इति रूपम् । एवम् ‘दुहृद्’ इत्यत्रापि बोध्यम् । उरः-  
प्रभृतिभ्यः कप् । बहुव्रीहौ समासान्तः तद्धित इति विशेषः । तद्धितत्वात् ककारस्य  
नेस्संज्ञा । कस्यादिषु च । इण इत्यनुवर्तते । इण इति पञ्चम्यन्तम् । “विसर्जनीयस्य  
सः” इत्यतो विसर्जनीयस्येत्यनुवर्तते । कस्कादिष्विति विषयसप्तमी । कस्कादिगणे  
इणः परस्य विसर्गस्य षः स्यादित्यर्थः । “सोऽपदादौ” इत्यतः स इति प्रथमान्तमनु-  
वर्तते । कस्कादिषु अनिणः परस्य विसर्गस्य सत्वं स्यादित्यर्थः । तदेवं वाक्यद्वयं  
सम्पद्यते । कस्कादिषु तथाविधानामेव कृतपत्वसत्वानां निर्देशादयं विषयविभागः ।  
व्यूढोरस्कः । व्यूढम्—विशालम्, उरः—वक्षः यस्य इत्यत्र “अनेकमन्यपदार्थे” इति  
समासे, सुपो लुकि ‘व्यूढ उरस्’ इति जाते “उरः प्रभृतिभ्यः कप्” इति कपि,  
पलोपे “खरवसानयोः” इति रस्य विसर्गत्वे “कस्कादिषु च” इति विसर्गस्य सत्वे  
विभक्तिकार्यं च विहिते ‘व्यूढोरस्कः’ इति सिद्धयति । प्रियसर्पिष्कः । प्रियं सर्पिर्वस्येति

स्यात् । युक्तयोगः ॥ शेषादिभाषा ५।४।१५४ अनुक्तसमासान्ताच्छेषाद्बहुव्रीहिः कप्  
वा स्यात् । महायशस्कः, महायशः । इति बहुव्रीहिः ।

अथ द्वन्द्वः ।

चार्थे द्वन्द्वः २।२।२६ अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते स द्वन्द्वः ।  
समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः । तत्र 'ईश्वरं गुरुं च भजस्व' इति परस्पर-  
निरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः । भिक्षामटं गां चानय, इति अन्यतरस्यानु-  
षङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः । अनयोरसामर्थ्यात्समासो न । धवखदिरौ छिन्धि इति  
मिलितानामन्वयः-इतरेतरयोगः । संज्ञापरिभाषम् । समूहः समाहारः । राजदन्ता-

विग्रहः । कप् । "कस्कादिषु च" इति षत्वम् । निष्ठा । निष्ठान्तमिति । "कृकवत्  
निष्ठा" इति कृदन्ते उक्तम्, तदन्तमित्यर्थः । युक्तयोगः । युक्तो योगो येन स 'युक्त-  
योगः' इत्यत्र "अनेकमन्यपदार्थे" इति बहुव्रीहिसमासे, समासत्वात्प्रातिपदिकत्वे  
सुपो लुकि, "निष्ठा" इति निष्ठान्तस्य युक्त, इत्यस्य पूर्वनिपाते विभक्तिकार्यं च तत्सि-  
द्धिः । शेषादिभाषा । इतः पूर्वं येभ्यः समासान्ता विहिताः तेभ्योऽन्यः । तदाह-अनुक्त-  
समासान्तादिति । महायशस्कः । महत् यशो यस्येति च विग्रहः । "आन्महतः" इत्यात्वे,  
कपि, "कस्कादिषु च" इति सत्वे विभक्तिकार्यं च 'महायशस्कः' इति रूपम् । इति  
बहुव्रीहिः ।

चार्थे द्वन्द्वः । "सुबामन्त्रिते" इत्यतः सुबिति, "अनेकमन्यपदार्थे" इत्यतोऽनेक-  
मिति चानुवर्तते । "समास" इति, "विभाषा" इति चाधिकृतम् । तदाह—  
अनेकमित्यादिना । समुच्चयेति । 'चान्वाचयसमाहारेतरेतरसमुच्चये' इत्यमरः ।  
एकस्मिन्निति । एकस्मिन् क्रियापदे आबृत्ते एकस्य असमस्यमानपदस्य प्रथम-  
मन्वयः, तदनन्तरमन्यस्यान्वयो यत्र, तत्र समुच्चयः चार्थे हरयर्थः ।  
अन्यतरस्येति । यत्रान्यतरस्य पदस्य एकस्मिन् क्रियापदे आनुषङ्गिकत्वेन  
परार्थप्रकृतिविषयत्वेनान्वयः, इतरस्य तु पदस्यान्यस्मिन् क्रियापदे उद्देश्यत्वेनान्वय-  
श्चार्थ इत्यर्थः । धवखदिरौ छिन्धीति । धवश्च खदिरश्च 'धवखदिरौ' इत्यत्र इतरेतरयो-  
गत्वात् "चार्थे द्वन्द्वः" इति द्वन्द्वसमासे सुपो लुकि, विभक्तिकार्यं च कृते 'धवखदिरौ'  
इति सिद्धम् । मिलितानामिति । परस्परापेक्षितानां समुदितानामेकस्मिन् क्रियापदे-  
ऽन्वयो यत्र, तत्रेतरेतरयोगः परस्परसाहचर्यं चार्थः प्रत्येतस्य इत्यर्थः । समूहः समाहार  
इति । परस्परसाहित्यमित्यर्थः । संज्ञापरिभाषम् । संज्ञा च परिभाषा च अनयोः  
समाहारः संज्ञापरिभाषम्, इत्यत्र समाहारत्वात् "चार्थे द्वन्द्वः" इति द्वन्द्वसमासे,  
समासत्वात्प्रातिपदिकत्वे, सुपो लुकि, "स नपुंसकम्" इति नपुंसकत्वे, "हस्यो-

दिषु परम् २।२।३१ एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात् । दन्तानां राजा राजदन्तः ।  
( धर्मादिष्वनियमः ) अर्थधर्मौ, धर्मार्थावित्यादि ॥ द्वन्द्वे धि २।२।३२ द्वन्द्वे  
धिसंज्ञं पूर्वं स्यात् । हरिश्च हरश्च हरिहरौ ॥ अजाद्यदन्तम् २।२।३३ इदं द्वन्द्वे  
पूर्वं स्यात् । ईशकृष्णौ ॥ अल्पाक्षरम् २।२।३४ शिवकेशवौ ॥ पिता मात्रा  
१।२।७० मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते । माता च पिता च पितरौ, मातापितरौ  
वा ॥ द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् २।४।२ एषां द्वन्द्व एकवत् । पाणिपादम् ।

नपुंसके प्रातिपदिकस्य" इति ह्रस्वे, प्रथमैकवचनस्य सोरमि, "अमि पूर्वः" इति  
पूर्वरूपत्वे च कृते 'संज्ञापरिभाषम्' इति सिद्धम् । राजदन्तादिषु परम् । "उपसर्जनं  
पूर्वम्" इत्यनुवर्तते । तदाह—एष्विति । राजदन्तादिष्वित्यर्थः । पूर्वप्रयोगार्हमित्यतः  
प्राक् उपसर्जनमिति शेषः । राजदन्त इति । दन्तशब्दस्य षष्ठीतत्पुरुषेऽप्रधानतयोपस-  
र्जनत्वेऽपि परनिपातः । धर्मादिष्वनियम इति । गणसुत्रमिदम् । अन्यतरस्य पूर्वनिपात  
इत्यर्थः । अर्थधर्मौ । धर्मश्चार्थश्च धर्मार्थौ इत्यत्र "चार्थे द्वन्द्वः" इति द्वन्द्वसमासे समा-  
सत्वात्प्रातिपदिकत्वे सुपो लुकि, "धर्मादिष्वनियमः" इत्यनेन नियमाऽभावाद् 'अर्थ-  
धर्मौ, धर्मार्था वा । द्वन्द्वे धि । पूर्वमित्यनुवर्तते । तदाह—पूर्वं स्यादिति । हरिश्च हरश्च हरि-  
हरौ इत्यत्र "चार्थे द्वन्द्वः" इति द्वन्द्वसमासे सुपो लुकि, "द्वन्द्वे धि" इति विसंज्ञावति  
हरिश्चन्द्रे पूर्वप्रयुक्ते विभक्तिकार्यं च कृते 'हरिहरौ' इति । अजाद्यदन्तम् । अजादित्वे  
सति अदन्तमित्यर्थः । ईशकृष्णौ । ईशश्च कृष्णश्च 'ईशकृष्णौ' इत्यत्र "चार्थे द्वन्द्वः" इति  
द्वन्द्वसमासे, सुपो लुकि, "अजाद्यदन्तम्" इति ईशस्य पूर्वनिपाते, विभक्तिकार्यं च  
कृते, 'ईशकृष्णौ' इति रूपम् । अल्पाक्षरम् । अल्पः—अल्पसंख्यः अच यस्य तदल्पाक्ष-  
रम्, तदेवाल्पाक्षरम् । अल्पसंख्याच्छं पदं द्वन्द्वे पूर्वं प्रयोज्यमित्यर्थः । शिवकेशवौ । शिवश्च  
केशवश्च 'शिवकेशवौ' इत्यत्र "चार्थे द्वन्द्वः" इति द्वन्द्वसमासे सुपो लुकि, "अल्पाक्ष-  
रम्" इति अल्पाक्षरमिति शिवशब्दे पूर्वप्रयुक्ते विभक्तिकार्यं च कृते 'शिवकेशवौ' इति  
रूपम् । पिता मात्रा । "पुमान् स्त्रिया" इत्यत्र सरूपाणामित्यनुष्टुप्तरप्राप्ताविद्धं  
वचनम्, विकल्पार्थं च । पितरौ । अत्र "पिता मात्रा" इत्यनेन पितुरेकशेषे कृते विभ-  
क्तिकार्यं च कृते तत्सिद्धिः । एकशेषाभावे—मातापितरौ । अत्र "चार्थे द्वन्द्वः" इति द्वन्द्व-  
समासे, सुपो लुकि, "पितुर्दशगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते" इति स्मृत्या मातुरभ्य-  
हितत्वात्पूर्वनिपाते, "आनङ् ऋतः" इति मातृशब्दस्य ऋदन्तस्य पितृशब्दे उत्तरपदे  
आनङ् कृते अकारहकारयोरित्संज्ञायां लोपे च कृते, ह्रित्वात् "ङिच्च" इत्यन्तावयवे  
जाते नलोपे च कृते "मातापितृ" इति भूते तस्माद् औ "ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः"  
इति गुणे रपरे सयोगे च कृते 'मातापितरौ' इति । द्वन्द्वश्च प्राणि । प्राणितूर्यसेनाङ्ग-  
नीति द्वन्द्वगर्भषष्ठेऽसमासः । द्वन्द्वान्ते अयमाणः अङ्गशब्दः प्रत्येकं सम्बध्यते इत्यभि-  
प्रेत्य आह—एषामिति । प्राण्यङ्गानां तूर्याङ्गानां सेनाङ्गानां चेत्यर्थः । द्वन्द्व इति । समा-



मार्दङ्गिकवैणविकम् । रथिकाश्वारोहम् ॥ द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे १।४१  
१०६ चवर्गान्तादृषहान्ताच्च द्वन्द्वाट् च स्यात्समाहारे । वाक् च त्वक् च वाक्त्वचम् ।  
त्वक्सजम् , शमीदृषदम् । वाक्त्वचम् । छत्रोपानहम् । समाहारे किम् ? प्रावृट्शर-  
दौ । इति द्वन्द्वः ।

### अथ समासान्ताः ।

ऋक्पूरब्धूःपथामानचे १।४।७४ अ अनचे इति छेदः । ऋगाद्यन्तस्य  
समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयवः । अचे या धूस्तदन्तस्य तु न । अर्धर्चः । विष्णुपुरम् ।

हारद्वन्द्व इत्यर्थः । एकवदिति । एकवचनमित्यनुवर्तते । पाणिपादम् । पाण्योः पादयो-  
श्च समाहार इति विग्रहः । अत्र “द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्” इति समाहारद्वन्द्वे,  
एकत्वे “स नपुंसकम्” इति नपुंसकत्वे सौ, सोरमि, पूर्वरूपे, च तत्सिद्धिः ।  
मार्दङ्गिकवैणविकम् । मार्दङ्गिकश्च वैणविकश्च अनयोः समाहार इति विग्रहः । तूर्याङ्गत्वात्  
“द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्” इति एकत्वे, “स नपुंसकम्” इति नपुंसकत्वे, सौ,  
सोरमि, पूर्वरूपे च तत्सिद्धिः । रथिकाश्वारोहम् । रथिकाश्च अश्वारोहाश्च, एषां समाहारः  
इति विग्रहः । सेनाङ्गत्वात् “द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्” इति एकत्वे, “स नपुंस-  
कम्” इति नपुंसकत्वे, सौ, सोरमि, पूर्वरूपे च कृते तत्सिद्धिः । द्वन्द्वाच्चुदष । समासा-  
न्ताधिकारस्थं तद्धिताधिकारस्थ चेदं सूत्रम् । ट्स्यादिति । “राजाहस्सस्त्रिभ्यष्टच्” इत्य-  
तस्तदनुबुद्धेरिति भावः । वाक्त्वचमिति । वाक्च त्वक् च इति समाहारद्वन्द्वः । कुत्वस्या-  
सिद्धत्वाच्चवर्गान्तात्वाट् । एवं त्वक्छजमित्यत्रापि त्वक् च सक् चेति विग्रहः ।  
शमीदृषदमिति । शमी च दृषच्चेति विग्रहः । अत्र दान्तत्वाट्जिति भावः । वाक्त्वचम् ।  
वाक् च त्विट् चेति विग्रहः । पान्तत्वाट्च, जस्त्वस्यासिद्धत्वादिति भावः । छत्रोपानह-  
मिति । छत्रं च उपानच्चेति विग्रहः । हान्तत्वाट्च । प्रावृट्शरदौ । प्रावृट् च शरच्चेति  
विग्रहः । इतरतरयोगाद्वन्द्वत्वाच्च ट्जिति भावः । इति द्वन्द्वसमासः ।

ऋक्पूरब्धूः । छेद इति । सूत्रे अ इति लुप्तप्रथमान्तनिर्देश इति भावः । “समा-  
सान्ताः” इत्यधिकृतम् । ऋगादिभिः समासो विशेष्यते । तदन्तविधिः । तदाह—  
ऋगाद्यन्तरयेति । ऋक्, पुर, अप्, धुर्, पथिन् एतदन्तस्येत्यर्थः । अप्रत्यय इति । अका-  
रात्मकप्रत्यय इत्यर्थः । ऋक्षे या धूरिति । अक्षसम्बन्धिनी या धूरित्यर्थः । अर्धर्च इति ।  
ऋचोऽर्धमिति विग्रहः । “अर्धं नपुंसकम्” इति समासः । “ऋक्पूरब्धूःपथामानचे”  
इति अकारः समासान्तः । “अर्धर्चाः पुंसि च” इति पुंस्त्वम् । विष्णुपुरम् । विष्णो-  
ः, विष्णुपुरम् इति षष्ठीतत्पुरुषः, “ऋक्पूरब्धूःपथामानचे” इति अप्रत्यये, विभक्ति-  
कार्त्तव्यं च तत्सिद्धम् । विमलापम् । विमलाः आपः यस्मिन् इति विग्रहः । प्रकृतसूत्रेण

विमलापं सरः । राजधुरा । अक्षे तु अक्षधूः । दृढधूरक्षः । सखिपथः । रम्यपथो देशः ।  
अक्ष्णोऽदर्शनात् ५।४।७६ अक्ष्णोऽर्पायादक्ष्णोऽच् स्यात्समासान्तः । गवामक्षीव  
गवाक्षः ॥ उपसर्गादध्वनः ५।४।८५ प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः ॥ न पूजनात्  
५।४।६६ पूजनार्थात् परेभ्यः समासान्ता न स्युः । ( स्वतिभ्यामेव ) सुराजा ।  
अतिराजा ॥ इति समासान्ताः ॥

## अथ तद्धिताः ।

तत्रादौ साधारणप्रत्ययाः ।

समर्थानां प्रथमाद्वा ४।१।८२ इदं पदत्रयमधिक्रियते प्राग्दिश इति यावत् ।  
अश्वपत्यादिभ्यश्च ४।१।८४ एभ्योऽण् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु । अश्वपतेरप-

समासान्तोऽप्रत्ययः । राजधुरा । राज्ञो धुरिति विग्रहः । धूर शब्दोऽत्र राज्ये लाञ्छ-  
निकः । “अक्ष्णोऽर्पायमानचे” इति अप्रत्ययः । “परवस्त्रिङ्गम्” इति स्त्रीत्वम् ।  
टाप् । अक्षे त्विति । अत्र अक्षसंबन्धिनी या धूस्तदन्तात् अकारप्रत्ययो न । अक्षधूरिति ।  
अक्षो नाम रथावयवदण्डविशेषः । दृढधूरश्च इति । दृढा धूर्यस्येति विग्रहः । सखिपथः ।  
सखा च पन्थाश्चेति द्वन्द्वः । अकारप्रत्ययः । “नस्तद्धिते” इति टिलोपः । रम्यपथ  
इति । रम्यः पन्था यस्येति विग्रहः । अक्ष्णोऽदर्शनात् । अदर्शनादिति छेदः । गवाम-  
क्षीवेति । अत्र “अक्ष्णोऽदर्शनात्” इति अच्प्रत्यये, भसंज्ञायाम्, टिलोपे, संयोगे,  
अर्वाङ्, विभक्तिकार्यं च कृते ‘गवाक्षः’ इति सिद्धम् । उपसर्गादध्वनः । उपसर्गात्परो  
योऽध्वन्शब्दः तस्मादच् स्यादित्यर्थः । प्राध्वो रथ इति । “अत्याद्य” इति समासः ।  
“उपसर्गादध्वनः” इति अचि, “नस्तद्धिते” इति टिलोपः । न पूजनात् । परेभ्य इत्य-  
ध्याहार्यम् । “समासान्ताः” इति पूर्वसूत्रमनुवर्तते । तदाह—पूजनार्थादिति । सुराजा ।  
सुं शोभनो राजा इति विग्रहः । अतिराजा । पूज्यो राजेत्यर्थः । उभयत्रापि “राजाहस्स-  
स्त्रिभ्यष्टच्” इति टच् न भवति ॥ इति समासान्ताः ।

समर्थानां प्रथमाद्वा । विधेयस्यादर्शनाच्चायं स्वतन्त्रविधिरिति मत्वाह—इदं पदत्र-  
यमधिक्रियत इति । स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलादिति भावः । प्राग्दिश इति यावदिति ।  
“प्राग्दिशो विभक्तिः” इति सूत्रम् उत्तरावधिरित्यर्थः । “समर्थानाम्” इति निर्धारणे  
शङ्की । सामर्थ्यं परिनिष्ठितत्वम् । कृतसामर्थ्यकार्यत्वमिति यावत् । प्राथम्यञ्च—“तस्या-  
पत्यम्” इत्यादितत्तत्सूत्रेषु प्रथमोच्चारितत्वम् । समर्थानां मध्ये प्रथमोच्चारितादि-  
त्यर्थः । अश्वपत्यादिभ्यश्च । चकारात् “प्राग्दीव्यतोऽण्” इत्यनुकृष्यते । तदाह—  
एभ्योऽण् स्यादिति । अश्वपतम् । अश्वपतेरपत्यम् इत्यर्थे “तस्यापत्यम्” इत्यपत्यार्थे  
“अश्वपत्यादिभ्यश्च” इति अणि, ‘अश्वपति ऋस् अण्’ इति जाते “कृत्तद्धितसमासान्ताः”

त्यादि आश्वपतम् । गाणपतम् ॥ दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्यः ४।१।८५  
 दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ष्यः स्यात् । अणोऽपवादः । दितेर-  
 पत्यं दैत्यः । अदितेरादित्यस्य वा ( अपत्यम् ) ॥ हलो यमां यमि लोपः ८।  
 ४।६४ हलः परस्य यमो लोपः स्याद्वा यमि । इति यलोपः । आदित्यः । प्राजापत्यः ।  
 ( देवाद्यमजौ ) दैव्यम् । दैवम् । ( बहिषष्टिलोपो यञ्च ) बाह्यः । ( ईकक्  
 च ) किति च ७।२।११८ किति तद्धिते चाचामादेरचो वृद्धिः स्यात् । बाहीकः ।  
 ( गोरजादिप्रसङ्ग यत् ) गोरपत्यादि गव्यम् ॥ उत्सादिभ्योऽञ् ४।१।८६  
 औत्सः । इत्यपत्यादिविकारान्तार्थाः साधारणाः प्रत्ययाः ॥

इति तद्धितान्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति सुपो लुकि, णलोपे,  
 “यचि भम्” इति भत्वे, “यस्येति च” इति इकारलोपे, तद्धितेष्वचामादेः” इत्या-  
 दिबृद्धौ कृते, ‘आश्वपत’ इति जाते, ततः सौ, सोरमि, पूर्वरूपे च ‘आश्वपतम्’ इति  
 सिद्धम् । गाणपतम् । गणपतेरपत्यादि इत्यत्र “अश्वपत्यादिभ्यश्च” इत्यणि, सुपो लुकि,  
 “यचि भम्” इति भत्वे, “यस्येति च” इति इकारलोपे, “तद्धितेष्वचामादेः” इत्या-  
 द्यचो बृद्धौ, “कृत्तद्धितसमासाश्च” इति प्रातिपदिकत्वे, विभक्तिकार्यं च कृते ‘गाण-  
 पतम्’ इति । दित्यदित्यादित्य । दित्यादित्य इति । दिति, अदिति, आदित्य एतेभ्य  
 इत्यर्थः । पत्युत्तरपदादिति । पतिः उत्तरपदं यस्य तस्मादिति विग्रहः । प्राग्दीव्यतीये-  
 ष्वर्थेष्विति । प्राग्दीव्यत इत्यनुबृत्तेरिति भावः । अणोऽपवाद इति । विशेषविहितत्वा-  
 दिति भावः । दैत्य इति । दितेरपत्यमिति विग्रहः । दितेर्ण्यप्रत्ययः । “चुट्” इति  
 णकार इत्, आदिबृद्धिः, “यस्येति च” इति इकारलोपः । अदितेरादित्यस्य वेति ।  
 अपत्यादीतिशेषः । हलो यमामिति । “अयो होऽन्यतरस्याम्” इत्यतोऽन्यतरस्यामित्य-  
 नुवर्तते । आदित्य इति । अदितिशब्दात् जाताद्यर्थं “दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्यः”  
 इति ण्ये प्रत्यये, णगते, आदिबृद्धौ, “यस्येति च” इति इकारलोपे, ततः सौ  
 ‘आदित्यः’ इति रूपम् । आदित्यशब्दात् ण्ये, आदिबृद्धौ, “यस्येति च” इति अलोपे,  
 “हलो यमां यमि लोपः” इति मकारस्य लोपे विभक्तिकार्यं च ‘आदित्यः’ इति रूपम् ।  
 प्राजापत्य इति । पत्युत्तरपदात् प्रजापतिशब्दात् ण्ये, आदिबृद्धौ, “यस्येति च” इति  
 अलोपः । देवादिति । देवशब्दात् यञ् अञ् च प्रत्ययौ प्राग्दीव्यतायेष्वर्थेषु वक्तव्या-  
 वित्यर्थः । दैव्यम्, दैवमिति । देवस्यापत्यादीति विग्रहः । यजि अजि च आदिबृद्धौ,  
 “यस्येति च” इति अकारलोपः । बहिष इति । बहिस् इति सकारान्तमव्ययम् ।  
 तस्मात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु यञ्, प्रकृतेः टिलोपश्चेति वक्तव्यमित्यर्थः । बाह्य इति ।  
 बहिर्भवः इत्यादिविग्रहः । यजि टिलोपे आदिबृद्धिः । ईकक् चेति । बहिष ईकक् च  
 स्यात् प्रकृतेः टिलोपश्चेति वक्तव्यमित्यर्थः । किति चेति । “तद्धितेष्वचामादेः” इति

## अथापत्याधिकारः ।

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्वनञौ भवनात् ४।१।८७ धान्यानां भवने इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां कमाञ्जस्नञौ स्तः । छैनः । पौंसः ॥ तस्यापत्यम् ४।१।६२ षष्ठ्यन्तात्कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः । ओर्गुणः ६। ४।१४६ उवर्णान्तस्य भस्य गुणः स्यात् तद्धिते । उपगोरपत्यमौपगवः । आश्वपतः । दैत्यः । औत्सः । छैनः । पौंसः ॥ अपत्यं पोत्रप्रभृति गोत्रम् ४।१।१६२ अप-

सूत्रमनुवर्तते । तदाह—तद्धिते चाचामादेरिति । बाहीक इति । बहिष ईककि, टिलोपे, “किति च” इत्यादिबृद्धिः । गोरजादिप्रसङ्गे इति । अपत्ये तदन्येषु च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु गोशब्दादजादिप्रत्ययप्रसङ्गे सति यत्प्रत्ययो वाच्य इत्यर्थः । गव्यम् । गवि भवं गोरगतमित्यादि विग्रहः । अणपवादो यत् । “वान्तो यि प्रत्यये” इति अवादेशः । उत्सादिभ्योऽञ् । प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेष्विति शेषः । अणिजाद्यपवादः । औत्सः । उत्सः शब्दात् षष्ठ्यन्तात् अपत्याद्यर्थे “उत्सादिभ्योऽञ्” इत्यञि, जलोपे, आदिबृद्धौ, “यस्येति च” इति अलोपे, विभक्तिकार्ये च कृते “औत्सः” इति रूपम् । इति अपत्यादिविकारान्ताभ्यांसाधारणप्रत्ययाः ।

स्त्रीपुंसाभ्याम् । भवनशब्देन धान्यानां भवने चेन्ने स्त्रज्” इति सूत्रं विवक्षितम् । प्राग्दीव्यतः इत्यतः प्रागित्यनुबृत्तम् । तदाह—धान्यानामिति । स्त्रीपुंसाभ्यामिति । “अचतुर” इत्यच् । स्त्रीशब्दात् पुंसाब्दाच्चेत्यर्थः । छैनः । स्त्रिया अपत्यम्, स्त्रीषु भवः स्त्रीणां समूहः इत्यादिविग्रहः । स्त्री ङस् इत्यस्मात् “स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्वनञौ भवनात्” इति सूत्रेण नञि, सुपो लुकि, नञो जगते, “तद्धितेष्वचामादेः” इत्यादिबृद्धौ, “अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽणि” इति णत्वे विभक्तिकार्ये च ‘स्त्रैणः’ इति रूपम् । पौंसः । पुंसोऽपत्यम्, पुंसि भवः, पुसां समूहः, इत्यादि विग्रहः । पुंसाब्दात् स्नञि, “स्वादिष्वसर्वनामस्थाने” इति पदत्वात्संयोगान्तलोपः, आदिबृद्धिः । तस्यापत्यम् । “समर्थानां प्रथमाद्वा” इत्यधिक्रियते, तत्र प्रथमादित्यस्यार्थमाह—षष्ठ्यन्तादिति । समर्थानामित्यत्र सामर्थ्यपरिनिष्ठितत्वं तच्च कृतसन्धिकार्यमित्याह—कृतसन्धेरिति । ओर्गुण इति । ओः इत्युकारात् षष्ठ्येकवचनम् । तेन भस्येत्यधिकृतं विशेष्यते । तदन्तविधिः । “नस्तद्धिते” इत्यनुवर्तते । तदाह—उवर्णान्तस्येति । औपगव इति । उपगोरणि, आदिबृद्धिः । ओर्गुणः । अवादेशः । अत्र प्रकृत्यैव उपगोर्लोभात् अपत्यमेव प्रत्ययार्थ इति स्थितिः । आश्वपत इति । अश्वपतेरपत्यमिति विग्रहः । पत्युत्तरपदलक्षणं ण्यं बाधित्वा “अश्वपत्यादिभ्यश्च” इत्यणिमिति भावः । दैत्य इति । दितेरपत्यमिति विग्रहः । “दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्यः” इति ण्यः, अणपवादः । औत्स इति । उत्सः कश्चित्, तस्यापत्यमिति विग्रहः । “उत्सादिभ्योऽञ्” इत्यञ्, इजाद्यपवादः । स्वरे विशेषः । छैनः ।

त्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात् ॥ एको गोत्रे ४।१।६३ गोत्रे एक एवा-  
पत्यप्रत्ययः स्यात् । उपगोगोत्रापत्यमौपगवः ॥ गर्गादिभ्यो यञ् ४।१।१०५  
गोत्रापत्ये । गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः । वात्स्यः ॥ यञ्ओश्च २।४।६४ गोत्रे यञ-  
मन्तमजन्तं च तदवयवयोरेतयोर्लुक् स्यात्तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् । गर्गाः ।  
वत्साः । जीवति तु वंश्ये युवा ४।१।६३ वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यद-  
पत्यं चतुर्थादि तथुवसञ्ज्ञमेव स्यात् । गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ४।१।६४ यून्यपत्ये  
गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः स्यात् । स्त्रियां तु न युवसञ्ज्ञा ॥ यञ्ओश्च ४।१।

पौनश्च इति । स्त्रिया अपत्यं, पुंसोऽपत्यमिति विग्रहः । “स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्सनञौ भव-  
ञ्छात्” एति नञ्सनञौ, अणोऽपवादः । अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् । पौत्रप्रभृति अपत्यं  
गोत्र गोत्रसंज्ञकमित्यथे पौत्रप्रभृतिषु साक्षादपत्यत्वाभावादाह—अपत्यत्वेन विवक्षित-  
मिति । एका गोत्रे । पौत्रादौ प्रत्येकपुरुषं प्रत्ययप्राप्त्या शततमे सन्ताने एकोनशत-  
प्रत्ययानामापत्तिरतो नियमार्थं सूत्रम् । तदाह—एक एव अपत्यप्रत्यय इति । एकोनशत-  
प्रत्यया नेष्टाः, किन्त्वेक एव प्रत्यय इष्ट इति भावः । औपगव इति । उपगोगोत्रापत्ये  
“तस्यापत्यम्” इत्यण् । गर्गादिभ्यो यञ् । गार्ग्यः । वात्स्य इति । गर्गस्य गोत्रापत्य-  
मिति, वत्सस्य गोत्रापत्यमिति, च विग्रहः । यञञोश्च । द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थ-  
पादे इदं सूत्रम् । न त्विदं चातुथिकमपत्याधिकारस्थम् । तत्र प्रत्ययग्रहणपरि-  
भाषया तदन्तग्रहणम् । “तद्राजस्य बहुषु तेनेवास्त्रियाम्” इति सूत्रं तद्राजस्येतिवर्ज-  
मनुवर्तते । “ण्यञ्चत्रिय” इत्यतो लुगिति “यस्कादिभ्यो गोत्रे” इत्यतो गोत्रे इति  
च । तदाह—गोत्रे यदिति । एतयोरिति । यञञोरित्यर्थः । प्रत्यादर्शनस्यैव लुक्वादिति  
भावः । तत्कृते इति । यञ्प्रत्ययार्थगतबहुत्वे इति यावत् । गर्गा इति । गर्गस्य गोत्रा-  
पत्यानि गर्गा इत्यत्र “गर्गादिभ्यो यञ्” इति यञि, सुपो लुकि, भत्वे, अलोपे, आद्यचो  
बृद्धौ, गार्ग्या इति जाते “यञञोश्च” इति गकारोत्तरवर्तित्यकारलोपे, “निमित्तापाये  
निमित्तकस्याप्यपायः” इति यकारनिमित्तबृद्धभावे विभक्तिकार्ये च कृते ‘गर्गाः’  
इति । एवमेव वत्साः । जीवति तु वंश्ये युवा । वंशः उत्पादकपित्रादिपरम्परा तत्र  
भवो वंश्यः । दिगादित्वाद्यत् । तदाह—वश्ये पित्रादौ जीवतीति । जीवतीति सप्तम्य-  
न्तम् । पौत्रादेरिति । पूर्वसूत्रात्पौत्रप्रभृति इत्यनुवृत्तं षष्ठ्या विपरिणम्यत इति भावः ।  
यदपत्यमिति । “तस्यापत्यम्” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । तुः—अवधारणे, युवेत्यन-  
न्तरं द्रष्टव्यः । तदाह—युवसञ्ज्ञमेवेति । गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् । अपत्यमपत्यप्रतिप्रत्ययो-  
त्पन्नौ प्राप्तद्वयूनानिष्टप्रत्ययपरम्पराव्यावृत्तये नियमार्थं सूत्रतदाह—गोत्रप्रत्ययान्तादेव  
प्रत्यय इति । सति सूत्रस्य नियमार्थत्वे युवापत्यविवक्षणेऽप्येक एव प्रत्ययो भवतीत्य-  
नुमीयते । यञञोश्च । “गोत्रे कुञ्जादिभ्यः” इत्यतो गोत्रे इति “नञादिभ्यः”

१०१ गोत्रे यौ यजिजौ तदन्तात्फक् स्यात् ॥ आयनेयीनीयियः फढखछृधां  
प्रत्ययादीनाम् ७।१।२ प्रत्ययादेः फस्य आयन्, ढस्य एय्, खस्य ईन् छस्य  
ईय्, घस्य इय् एते स्युः । गर्गस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः । दाक्षायणः । अत इज्  
७।१।६५ अदन्तं यत्प्रातिपदिकं तस्मादिज् स्यात् अपत्येऽर्थे । दाक्षिः । बाह्वादि-  
भ्यश्च ७।१।६६ बाह्विः । औडुलोभिः । ( लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो  
वक्तव्यः ) उडुलोमाः । आकृतिगणोऽयम् । अनृष्यानन्तर्यं विदादि-  
भ्योऽज् ७।१।१०४ ये त्वत्रानृष्यस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रे ॥ विदस्य गोत्रं  
वैदः । वैदौ । विदाः । पुत्रस्यापत्यं पौत्रः । पौत्रौ । पौत्राः । एवं दौहित्रादयः ॥

इत्थतः फगनुवर्तते, तदाह—गोत्रे यावित्यादि । आयनेयीनीयियः । आयन्, एय्, ईन्,  
ईय्, इय्, एषां द्वन्द्वात् प्रथमाबहुवचनम् । फ, ढ, ख, छ, घ एषां द्वन्द्वात्षष्ठीबहुवच-  
नम् । फादिष्वकार उच्चारणार्थः । यथासल्यपरिभाषया क्रमेणान्वयः । तदाह—प्रत्य-  
यादेरिति । गार्ग्यायणः । गर्गस्य युवापत्यं, गार्ग्यस्य गोत्रापत्यमित्यत्र “जीवति तु वंरथे  
युवा” इति युवसंज्ञायाम् “यजिजौश्च” इति यजन्ताद् गार्ग्यशब्दात्फकि, कलोपे,  
“आयनेयीनीयियः फढखछृधां प्रत्ययादीनाम्” इति फस्य स्थाने आयनि कृते, “गार्ग्यं  
आयन् अ” इति जाते, “यचि भम्” इति भत्वे, “यस्येति च” इति गकारोत्तरवर्त्यका-  
रलोपे सयोने, “अट्कुप्वाङुनम् व्यवायेऽपि” इति नस्य णत्वे, विभक्तिकार्यं च कृते  
“गार्ग्यायणः” इति रूपम् । एवमेव दक्षस्य युवापत्यम्, दाक्षेर्गोत्रापत्यम्—दाक्षायणः ।  
अत इज् । प्रातिपदिकादित्यधिकृतम् अता विज्ञेयते, तदन्तविधिः । तदाह—अदन्तं  
यत्प्रातिपदिकमिति । दाक्षिरिति । दक्षस्यापत्यमिति विग्रहः । इज्, आदिबृद्धिः, “यस्येति  
च” इत्यकारलोपः । बाह्वादिभ्यश्च । अपत्ये इजिति शेषः । बाह्वावरिति । बाहुनाभि कश्चि-  
दपि, अथ ‘ऋषयः’ इत्यधिकृत्य ‘बाह्विर्गार्ग्यगौतमौ’ इत्याश्रयायनसूत्रे दर्शनात् ।  
बाहोरपत्यमिति विग्रहः । इभि ‘ओगुणः’ इति उकारस्य ओकारे, अवादेशे विभक्ति-  
कार्यं च ‘बाह्विः’ इति सिद्धम् । औडुलोमिरिति । उडुलोम्नोऽपत्यमिति विग्रहः । इभि,  
“नस्तद्धिते” इति टिलोपः । आदिबृद्धिः । उडुलोमाः । उडुलोम्नोऽपत्यानि पुमांसः  
इति विग्रहः । अत्र उडुलोमन्शब्दात् बहुत्वे “लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः”  
इति अप्रत्यये, “नस्तद्धिते” इति टिलोपे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । अनृष्यानन्तर्यं ।  
अनृषीति लुसपञ्चमीकम् । “विदादिभ्योऽज्” इति द्विरावर्तते । तथाच “अनृष्यान-  
न्तर्यं विदादिभ्योऽज्” इति कृत्स्नमेकं वाक्यम् । “विदादिभ्योऽज्” इति वाक्यान्त-  
रम् । तत्र द्वितीयं वाक्यं व्याचष्टे—एभ्योऽज् गोत्रे इति । गोत्रे विवक्षिते विदादिभ्योऽज्  
स्यादित्यर्थः । अत्र प्रथमं वाक्यं कृत्स्नसूत्रं व्याचष्टे—ये त्विति । अनृषिभ्यो विदादिभ्यः  
अनन्तरापत्ये अथ स्यादित्युच्यते । विदादौ हि ऋषयः अनृषयश्च पठिताः । तयो

शिवादिभ्योऽण् ४।१।११२ अत्ये । शैवः । गाङ्गः ॥ ऋष्यन्धकवृष्णिकुरु-  
भ्यश्च ४।१।११४ ऋषिभ्यः—वासिष्ठः । वैश्वामित्रः । अन्धकेभ्यः—श्वाफल्कः ।  
वृष्णिभ्यः—वासुदेवः । कुरुभ्यः—नाकुलः । साहदेवः ॥ मातुरुत्सङ्ख्यासंभ-  
द्रपूर्वायाः ४।१।११५ सङ्ख्यादिपूर्वस्यमातृशब्दस्य उदादेशः स्यादण् प्रत्ययश्च ।  
द्वैमातुरः । षण्मातुरः । सांमातुरः । भाद्रमातुरः । स्त्रीभ्यो ढक् ४।१।१२० स्त्रीप्र-  
त्ययान्तेभ्यो ढक् स्यात् । वैनतेयः ॥ कन्यायाः कनीन च ४।१।११६ चादण् ।

अनृषयः तेभ्योऽनन्तरापत्ये अभिति फलितमिति भावः । वैदः । विदस्य गोत्रापत्यम्  
वैदः इत्यत्र “अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽण्” इत्यणि, भत्वे, अकारलोपे, आद्यचो वृद्धौ,  
विभक्तिकार्ये च कृते ‘वैदः’ इति । एवमेव पुत्रस्यापत्यम् ‘पौत्रः’ । दुहितुरपत्यम्  
‘दौहित्रः’ इत्यादौ विदादिभ्योऽण् बोध्यः । शिवादिभ्योऽण् । गोत्र इति निष्पत्तम् । अतः  
प्रभृति सामान्येन प्रत्यया विज्ञायन्ते । यथायथमिजादीनामपवादः । शैवः । शिवस्या-  
पत्यम् शैवः इत्यत्र “शिवादिभ्योऽण्” इत्यणि, भसंज्ञायाम् “यस्येति च” इति, अका-  
रलोपे, आद्यचो वृद्धौ, विभक्तिकार्ये च कृते ‘शैवः’ इति । एवं गङ्गायाः अपत्यम् ‘गाङ्गः’  
इत्यत्रापि बोध्यम् । ऋष्यन्धक । ‘ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः’ । ऋषिविशेषवाचिभ्यः अन्धका-  
दिवंश्यवाचिभ्यश्चापत्ये अण् स्यादित्यर्थः । इजोऽपवादः । वासिष्ठः । वसिष्ठस्यापत्यम्  
वासिष्ठः इत्यत्र “ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च” इत्यणि, णगते, सुपो लुकि, आदिवृद्धौ,  
भत्वे, अलोपे, विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धिः । एवं वैश्वामित्रः । श्वाफल्कः । श्वफल्क-  
स्याऽपत्यम् ‘श्वाफल्कः’ इत्यत्र “ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च” इत्यन्धकत्वादिणि, सुपो  
लुकि, णगते, आद्यचो वृद्धौ, भत्वे, अलोपे, विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः । वासुदेवः । वसु-  
देवस्यापत्यम् इत्यत्र वृष्णिवंश्यवाचित्वादिणि, सुपो लुकि, आद्यचो वृद्धौ, भत्वे, अलोपे,  
विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धम् । नाकुलः । नाकुलस्यापत्यम् ‘नाकुलः’ कुरुत्वादण् ।  
एवं साहदेवः । मातुरुत्संख्या । “शिवादिभ्योऽण्” इत्यतोऽणित्यनुवर्तते । तदाह—अण्  
प्रत्ययश्चेति । द्वैमातुरः । द्वयोर्मात्रोरपत्यम् ‘द्वैमातुरः’ इत्यत्र “तद्विधितार्थोत्तरपदसमा-  
हारे च” इति समासे सुपो लुकि, “मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः” इति मातुरुदादेशे  
अणि च ‘द्वि मातुर अ’ इति जाते “तद्विधितेष्वचामादेः” इत्याद्यचो वृद्धौ संयोगे विभ-  
क्तिकार्ये च कृते ‘द्वैमातुरः’ इति सिद्धम् । एवं षण्णाम्मातृणामपत्यम् ‘षण्मातुरः’ इति ।  
भाद्रमातुरपत्यम् ‘भाद्रमातुरः’ इति । स्त्रीभ्यो ढगिति । स्त्रीशब्देन टाबादयः स्त्रीप्रत्यया-  
न्तातुर्यिकगृह्यन्ते, न त्वन्येऽपि स्त्रीवाचकाः, व्याख्यानादिस्थाह—स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्य इति ।  
वैनतेयः । विनता नाम गरुडमाता, तस्याः अपत्यमिति विग्रहः । विनताशब्दात् “स्त्री-  
भ्यो ढक्” इति ढकि, कगले, “आयनेयीनीथियः षढस्त्रुघां प्रत्ययादीनाम्” इति  
ढस्य स्थाने एयादेशे भत्वे “यस्येति च” इति आकारलोपे, “किति च” इत्याद्यचो  
वृद्धौ, विभक्तिकार्ये च ‘वैनतेयः’ इति रूपम् । कन्यायाः कनीन चेति । कनीनेति लुप्तम्-

कानीनो व्यासः कर्णश्च ॥ राजश्वशुराद्यत् ४।१।१३७ ( राज्ञो जातावेवेति वाच्यम् ) ये चाभावकर्मणोः ६।४।१६८ यादौ तद्धिते परेऽन् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः । राजन्यः । श्वशुर्यः । जातावेवेति किम् ? अन् ६।४।१६७ अन् प्रकृत्या स्यादणि परे । राजनः । क्षत्राद् घः ४।१।१३८ क्षत्रियः । जातावित्येव । क्षत्रिरन्यत्र ॥ रेवत्यादिभ्यष्ठक् ४।१।१४६ ठस्येकः ७।३।५० अङ्गात्परस्य ठस्येकादेशः स्यात् । रैवतिकः । जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् ४।१।१६८ जनपदक्षत्रियवाचकाच्छब्दादञ् स्यादपत्ये । पाञ्चालः ॥ ( क्षत्रियसमानशब्दाज्ज-

यमाकम् । कन्याशब्दात् अण् भवति, कन्यायाः स्थाने कनीनादेशश्चेत्यर्थः । कानीनः । कन्यायाः अपत्यम् 'कानीनः' इत्यत्र "कन्यायाः कनीन च" इति अण्प्रत्यये, कन्यास्थाने कनीनादेशे, भत्वे "यस्येति च" इत्यलोपे, आद्यचो वृद्धौ, विभक्तिकार्ये च 'कानीनः' इति रूपम् । राजश्वशुराद्यत् । राजन्मशब्दात् श्वशुरशब्दाच्चापत्ये यत्प्रत्ययः स्यादित्यर्थः । क्रमेण अणिञोरपवादः । राज्ञो जातावेवेति । जातिः समुदायवृत्त्या चेदित्यर्थः । ये चाभावकर्मणोः । "अन्" इति पूर्वसूत्रमनुवर्तते । "प्रकृत्यैकाच्" इत्यतः प्रकृत्येति । अङ्गाधिकारलब्धप्रत्ययो यकारेण विशेष्यते । तदादिविधिः । तदाह—यादाविति । क्षत्रियात् क्षत्रियायां स्वभार्यायामुत्पन्नो 'राजन्यः' इति । यत्प्रत्यये प्रकृतिभावाच्च टिलोपः । जातिमात्राभावे राज्ञोऽपत्यम् इत्यत्र "तस्यापत्यम्" इत्यणि णलोपे "अन्" इत्यनः प्रकृतिभावे विभक्तिकार्ये च कृते 'राजनः' इति । श्वशुर्यः । श्वशुरस्यापत्यम् इत्यत्र "राजश्वशुराद्यत्" इति यति तलोपे भत्वे अलोपे, विभक्तिकार्ये 'श्वशुर्यः' इति । अन् । "इण्यनपत्ये" इत्यतः अणीत्यनुवर्तते । "प्रकृत्यैकाच्" इत्यतः प्रकृत्येति च । तदाह—अणीति । राजनः । जातिमात्राभावे "राज्ञोऽपत्यम्" इत्यत्र "तस्यापत्यम्" इत्यणि, णलोपे "अन्" इत्यनः प्रकृति भावे विभक्तिकार्ये 'राजनः' इति सिद्धम् । क्षत्राद् घः । अपत्ये इति शेषः । क्षत्रिय इति । क्षत्रस्यापत्यम् 'क्षत्रियः' इत्यत्र "क्षत्राद् घः" इति घे, 'क्षत्र घ' इति जाते "आयनेयीनीयियः" इति घस्य ह्यादेशे, भत्वे, अलोपे, विभक्तिकार्ये च कृते तस्सिद्धिः । क्षत्रिरन्यत्रेति । जात्यभावे क्षत्रस्यापत्यम् 'क्षत्रिः' इत्यत्र "अत इञ्" इति इञि, णलोपे, भत्वे, अलोपे, आद्यचो वृद्धौ, विभक्तिकार्ये च तस्सिद्धिः । रेवत्यादिभ्यष्ठक् । अपत्ये इति शेषः । ङगाद्यपवादः । ठस्येकः । "अङ्गस्य" इत्यधिकृतं पञ्चम्या विपरिणम्यते । तदाह—अङ्गात्परस्य ठस्येति । ठकारस्येत्यर्थः । रैवतिकः । रेवत्याः अपत्यमिति विग्रहः । ठकि ककार इत् अकार उच्चारणार्थः । ठकारस्य ह्रस्वः अदन्त आदेशः । जनपदशब्दात् । जनपदो देशः, तद्वाचकशब्दो जनपदशब्दः, तथाभूतो यः क्षत्रियवाचकशब्दः, तस्मादित्यर्थः । फलितमाह—जनपदक्षत्रिययोरिति । पाञ्चालः ।



नपदात्तस्य राजन्यपत्यवत् ) पञ्चालानां राजा पाञ्चालः । ( पूरोरण वक्तव्यः ) पौरवः । ( पाण्डोर्द्वयः ) पाण्डवः । कुरुनादिभ्यो ण्यः ४।१।१७२ कौरव्यः । नैषध्यः ॥ ते तद्राजाः ४।१।१७४ अजादयस्तद्राजसंज्ञाः स्युः ॥ तद्राजस्य बहुषु तेनैवाऽस्त्रियाम् २।४।६२ बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक् स्यात्, तदर्थकृते बहुत्वे न तु क्रियाम् । इच्चाकवः । पञ्चालाः । इत्यादि ॥ कम्बोजाल्लुक् ४।१।१७५ अस्मात्तद्राजस्य लुक् स्यात् । कम्बोजः । कम्बोजौ । ( कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम् ) चोलः । शकः । केरलः । यवनः ॥ इत्यपत्याधिकारः ॥

### अथ रक्ताधिकारः ।

तेन रक्तं रागात् ४।२।१ अण् स्यात् । रज्यतेऽनेनेति रागः । कषायेण रक्तं

पञ्चालो नाम देशः, राजा च । तस्य राज्ञोऽपत्यमिति विग्रहे “जनपदशब्दात् क्षत्रियादण्” इत्यणि अलोपे, भत्वे, अलोपे, आद्यचो वृद्धौ, विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । क्षत्रियसमाप्तेति । क्षत्रियवाचकशब्देन समानशब्दो जनपदवाचकः, तस्मात् षष्ठ्यन्तात् राजन्यर्थे अपत्यवत्प्रत्यया भवन्तीत्यर्थः । पाञ्चालः । पञ्चालानां राजा इत्यत्र “क्षत्रियसमानशब्दात्” इति वार्तिकेनाण् । पूरोरणिति । पूरुशब्दस्य जनपदवाचित्वाभावात्प्राग्दीव्यतीये अणि सिद्धे तद्राजसंज्ञार्थं वचनम् । पौरवः । पूरोरपत्यमिति विग्रहः । “पूरोरण्” इत्यणि, भत्वे, ओर्गुणे, आद्यचो वृद्धौ, विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धम् । पाण्डोर्द्वयणिति । वाच्य इति शेषः । पाण्डवः । पाण्डोरपत्यम्, पाण्डुदेशस्य राजा वेत्यर्थः । कुरुनादिभ्यो ण्यः । कुरुशब्दात् नकारादिभ्यश्च जनपदक्षत्रियवाचकेभ्योऽपत्ये राजानि च ण्यः स्यादित्यर्थः । कौरव्यः । कुरोरपत्यं कुरुणां राजेति वा विग्रहः । कुरुशब्दात् षष्ठ्यन्तात् “कुरुनादिभ्यो ण्यः” इति ण्ये, सुपो लुकि, णलोपे भत्वे, ओर्गुणे, “वान्तो यि” इति वान्तादेशे, आद्यचो वृद्धौ विभक्तिकार्यं च कृते ‘कौरव्यः’ इति । नैषध्यः । निषधशब्दो देशे राजानि च । ते तद्राजाः । ते इत्यनेन जनपदशब्दादित्यारभ्य विहिता अजादयः परामृश्यन्ते । तदाह—अजादय इति । तद्राजस्य । “ण्यक्षत्रियार्थः” इत्यतो लुगित्यनुवर्तते । तेनेत्यनन्तरं कृते बहुत्वे इत्यभ्याहार्यम् । तदाह—बहुष्विति । तदर्थकृत-बहुत्वे इति । अजादिप्रत्ययान्तमात्रार्थगतबहुत्वे सतीत्यर्थः । इच्चाकवः । पञ्चालाः । “जनपदशब्दात्” इति विहितस्य अणो लुकि, आदिषुद्धिनिघृत्तिः । इत्यादीति । अङ्गाः, वङ्गाः इत्यादि बोध्यम् । कम्बोजाल्लुक् । तद्राजा इत्यनुवृत्तं षष्ठ्या विपरिणम्यते । कम्बोजाल्लुक् तद्राजस्य लुक् स्यादित्यर्थः । अबहुत्वार्यं सूत्रम् । कम्बोजः, कम्बोजौ । जनपदशब्दादिति विहितस्य अणो लुक् । चोलः शक इति । चोलशकौ देशविशेषौ राजविशेषौ च । केरल इति । केरलयवनशब्दौ देशराजोभयवाचिनौ । इति अपत्याधिकारः । तेन रक्तं रागात् । “प्राग्दीव्यतोऽण्” इत्यधिक्रियते । रागवाचकात् तृतीयान्त-

वक्षं काषायम् । नक्षत्रेण युक्तः कालः ४।२।३ अण् स्यात् । ( तिष्यपुष्ययो-  
र्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम् ) पुष्येण युक्तं पौषमहः ॥ लुबविशेषे ४।२।४  
पूर्वेण विहितस्य लुप् स्यात् । षष्टिदण्डात्मकस्य कालस्यावान्तरविशेषश्च गम्यते ।  
अथ पुष्यः ॥ दृष्टं साम ४।१।७ तेनेत्येव । वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं साम ॥ वामदे-  
वाङ्गुयङ्गुयौ ४।२।६ वामदेवेन दृष्टं साम वामदेव्यम् । परिवृत्तो रथः ४।२।१०  
अस्मिन्नर्थेऽण्प्रत्ययो भवति । वक्षेण परिवृत्तो वाक्षो रथः ॥ तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः  
४।२।१४ शरावे उद्धृतः शाराव ओदनः ॥ संस्कृतं भक्षाः ४।२।१६ सप्तम्य-

सप्तम्यात् रक्तमित्यस्मिन्नर्थे अण् प्रत्ययः स्यादित्यर्थः । काषायमिति । काषायेण रक्तं  
वस्त्रं काषायम् , इत्यत्र “तेन रक्तं रागात्” इत्यणि, सुपो लुकि, आद्यचो वृद्धौ, भत्वे,  
अलोपे, संयोगे विभक्तिकार्यं च कृते “काषायम्” इति रूपम् । नक्षत्रेण युक्तः कालः ।  
“प्राग्दीव्यतोऽण्” इत्यधिक्रियते । नक्षत्रवाचकात् तृतीयान्तात् समर्थात् युक्त इत्यर्थे  
अण् स्यादित्यर्थः । तिष्येति । “नक्षत्रेण युक्तः कालः” “संधिवेलाधनुनक्षत्रेभ्योऽण्” इति  
च विहिते नक्षत्रसम्बन्धिनि अणि परत तिष्यपुष्ययोर्यलोप इत्यर्थः । पौषमहः । पुष्येण  
युक्तम् पौषम् इत्यत्र “नक्षत्रेण युक्तः कालः” इत्यणि, सुपो लुकि, ‘पुष्य अ’ इति जाते,  
“यचि भम्” इति भत्वे “यस्येति च” इति अकारलोपे, “तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि  
यलोप इति वाच्यम्” इति वार्तिकेन यलोपे, संयोगे, आद्यचो वृद्धौ, विभक्तिकार्य  
च तस्मिद्धम् । लुबविशेषे । षष्टिदण्डेति । षष्टिदण्डिकापरिच्छिन्ने काले एकैकस्मिन्  
एकैकेन चन्द्रमा युज्यते इति स्थितिः । तस्य षष्टिदण्डस्य कालस्य अवान्तरविशेषः  
अहर्वा रात्रिर्वेति न गम्यते चेदित्यर्थः । अथ पुष्य इति । अद्येत्यव्ययम् । अहोरात्रवाचि  
अधिकरणशक्तिप्रधानम्, इह तु अधिकरणशक्तिविनिर्मुक्तः अहोरात्रः कालो विवक्षितः ।  
तथा च अयमहोरात्रः पुष्ययुक्तचन्द्रमसा युक्त इत्यर्थः । अहर्वा रात्रिर्वेति विशेषानव-  
गमादणो लुप् । दृष्टं साम । तृतीयान्तात्समर्थात् दृष्टमित्यर्थे अण् स्यात् दृष्टं साम चेदि-  
त्यर्थः । वसिष्ठम् । वसिष्ठेन दृष्टं ‘वासिष्ठम्’ इत्यत्र “दृष्टं साम” इत्यणि, भत्वे, अलोपे,  
आद्यचो वृद्धौ, विभक्तिकार्यं च कृते ‘वासिष्ठं साम’ इति । वामदेवाङ्गुयङ्गुयौ । तृतीया-  
न्तात् वामदेवशब्दात् दृष्टमित्यर्थे ङ्यत्, ङ्य एतौ प्रत्ययौ स्याताम्, दृष्टसामर्चेदित्यर्थः  
वामदेव्यम् । वामदेवशब्दात् प्रकृतसूत्रेण ङ्यत्, इत्यलोपः, द्विवाहिलोपः । परिवृत्तो  
रथः । तेनेत्यनुवर्तते । तृतीयान्तात् परिवृत्त इत्यर्थेऽण् स्यादित्यर्थः । वाक्षः । वस्त्रेण  
परिवृत्त इत्यर्थे “परिवृत्तो रथः” इत्यणि सुपो लुकि, भत्वे, अलोपे, आद्यचो वृद्धौ,  
विभक्तिकार्यं रूपं सिद्धम् । तत्रोद्धृतम् । तत्रोद्धृतमित्यर्थे अमत्रवाचकशब्दात् सप्त-  
म्यन्तात् अण् प्रत्ययः स्यादित्यर्थः । अमत्रं भाजनं शरावादि । शारावः । शारावशब्दात्  
सप्तम्यन्तात्, “तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः” इत्यणि, सुपो लुकि, णगते, भत्वे, अलोपे,  
आद्यचो वृद्धौ, विभक्तिकार्यं तस्मिद्धिः । संस्कृतं भक्षाः । तत्रेभ्यनुवर्तते । भ्राष्ट्राः यवाः ।

न्तादण् स्यात्संस्कृतं भक्षावेते स्युः । आष्ट्रेषु संस्कृता आष्ट्राः यवाः ॥ साऽस्य  
 देवता धा२।२४ इन्द्रो देवता अस्येति ऐन्द्रं हविः । पाशुपतम् । बाहस्पत्यम् ॥  
 शुक्राद् घन् धा२।२६ शुक्रियम् ॥ सोमादृष्यण् धा२।३० सौम्यम् ॥ वाय्वृतु-  
 पित्रुषसो यत् धा२।३१ वायव्यम् । ऋतव्यम् ॥ रीङ् ऋतुः ७।४।२७ अकृष-  
 कारे असार्वधातुके यकारे च्चौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः स्यात् । “यस्येति  
 च” । पित्र्यम् । उषस्यम् ॥ पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः धा२।३६ एते  
 निपात्यन्ते । पितुर्भाता पितृव्यः । मातुर्भाता मातुलः । मातुः पिता मातामहः ।

सप्तम्यन्तात् आष्ट्रशब्दाद् “संस्कृतं भक्षाः” इत्यणि, णगते सुपो लुकि, भत्वे, अलोपे  
 आषचो वृद्धौ, विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धम् । सास्य देवता । प्रथमान्तात् देवताऽस्येत्यर्थे  
 यथायथमणादयो भवन्तीति सूत्रार्थः । ऐन्द्रं हविः । इन्द्रशब्दात्प्रथमान्तात् “सास्य दे-  
 वता” इत्यण्, सुपो लुकि, आषचो वृद्धौ, भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः ।  
 पाशुपतम् । पशुपतिर्देवताऽस्येत्यर्थः । अत्र “अश्वपत्यादिभ्यश्च” इत्यण् । बाहस्पत्यम् ।  
 बृहस्पतिर्देवताऽस्येति विग्रहः । अत्र “दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्यः” इति ण्यः ।  
 साधनिका पूर्ववत् । शुक्रादघन् । “साऽस्यदेवता” इत्यर्थे इति शेषः । शुक्रियम् । शुक्रो  
 देवताऽस्येति विग्रहः । “शुक्रादघन्” इति घनि, सुपो लुकि, नगते “आयनेयीनीयियः  
 ऋतुसङ्घर्षा प्रत्ययादीनाम्” इति घस्य ह्यादेशे भत्वे, अलोपे, विभक्तिकार्ये च ‘शुक्रि-  
 यम्’ इति । सोमादृष्यण् । णोऽपवादः । णकारो वृद्धयर्थः । टकारो ङीवर्थः । सौम्यम् ।  
 सोमो देवताऽस्य इत्यत्र “सोमादृष्यण्” इति ट्यणि, टण्योर्लोपे, भत्वे, अलोपे आषचो  
 वृद्धौ, विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः । वाय्वृतुपित्रुषसो यत् । वायु, ऋतु, पितृ, उषस् एभ्यो  
 यदित्यर्थः । वायव्यमिति । वायुर्देवताऽस्येति विग्रहः । यति ओर्गुणः । “वान्तो यि  
 प्रत्यये” इत्यवादेशः । एवं ऋतव्यमिति । ऋतुः देवताऽस्येति विग्रहः । रीङ्-ऋतुः ।  
 “अङ्गस्य” इत्यधिकृतम् ऋता विशेष्यते । तदन्तर्विधिः । “अयङ् यि षिङिति” इत्यतः  
 यि इत्यनुवर्तते । “अङ्गत्सार्वधातुकयोः” इत्यतः अङ्गत्सार्वधातुकयोरिति “च्चौ च”  
 इति सूत्रं च । तदाह—अकृदित्यादिना । पित्र्यम् । पिता देवताऽस्येति विग्रहः । अतः  
 प्रथमान्तात् पितृशब्दाद् “वाय्वृतुपित्रुषसो यत्” इति यति, तगते सुपो लुकि, ‘पितृ  
 य’ इति जाते, “रीङ् ऋतुः” इति रीङादेशे “ङिच्च” इत्यन्ते जाते ‘पित्रि य’ इति  
 भूते भत्वे “यस्येति च” इतीकारलोपे, संबोगे विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धम् । उषस्यम् ।  
 उषः देवता अस्येति विग्रहः । भत्वेन पदत्वाभावात् सकारस्य न रुत्वादि । पितृव्यमा-  
 तुल । समर्थविभक्तिः, प्रत्ययः प्रत्ययार्थोऽनुबन्ध इति सर्वं निपातनाद्विज्ञेयम् । पितृव्यः ।  
 पितुर्भाता ‘पितृव्यः’ इत्यत्र षष्ठ्यन्तात् पितृशब्दात् आतर्क्यं “पितृव्यमातुलमातामह-  
 पितामहाः” इति व्यति, तगते, सुपो लुकि, विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धम् । मातुल इति ।

विष्णुः पिता पितामहः । तस्य समूहः प्रोक्तः कानाम् समूहः कानम् ॥ मित्रादिभ्योऽण् धाराश्च मित्रानां समूहो मैत्रम् । गर्भिणीनां समूहो गर्भिणम् । इह "मन्त्रादे तद्धिते" इति पुंनञ्ज्ञाने कृते । इनपञ्चमपरये ६३२१६४ आसत्त्वान्नोऽणि पूर्व इन्द्रादयः सन्त । तेन "नस्तद्धिते" इति द्विगोपनम् । युवतीनां समूहो यौवनम् । यौवतम् । गजसहाय्याभ्यां चेति वक्तव्यम् गजता । सहायता । ( अण् ) बन्धुता । ( गजसहाय्याभ्यां चेति वक्तव्यम् ) गजता । सहायता । ( अण् )

मनुसम्बाद् दुष्टाणि शैः इति टिलोपः । मातामह इति । मातृसम्बाद् डामहयि, टिलोपः । एवं पितामहः । तस्य समूहः । तस्येति षष्ठीसमर्थात्समूह इत्येतस्मिन्नर्थे यन्निहितं प्रत्ययो भवति । "हविप्रकटवचनम्" इति यावत्समूहाधिकारः । कानम् । कानसम्बाद् षष्ठ्यन्तात् समूह इत्यस्मिन्नर्थे "तस्य समूहः" इत्यणि, गणते सुपो लुकि, मत्वे अलोपे, आचक्षो वृद्धौ, विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धम् । एवं कानां समूहः 'कानम्' इत्यत्रापि बोध्यम् । समूहप्रत्ययान्तामां नपुंसकत्वं लोकात् । मित्रादिभ्योऽण् । तस्य समूहः इत्येव । मैत्रम् । मित्राणां समूहः मैत्रम् इत्यत्र "तस्य समूहः" इत्यणि प्राप्ते "अचिपतइस्तियेनोऽण्" इत्यपि क्त्वाद्धकि च प्राप्ते तु प्रवाच्य "मित्रादिभ्योऽण्" इत्यणि सुपो लुकि मत्वे अलोपे, आचक्षो वृद्धौ विभक्तिकार्ये च "मैत्रम्" इति । गर्भिणम् । गर्भिणीनां समूहः 'गर्भिणम्' इत्यत्र "क्षीभ्यो ङक्" इति ङकि प्राप्ते तु प्रवाच्य "मित्रादिभ्योऽण्" इत्यणि सुपो लुकि, मत्वे, भव्यात् "मन्त्रादे तद्धिते" इति पुंनञ्ज्ञाने कृते 'गर्भिणम्' इति प्राप्ते "नस्तद्धिते" इति नान्तद्विगोपे प्राप्ते "इनपञ्चमपरये" इत्यणि इयः प्रकृतिभावे वृद्धौ विभक्तिकार्ये च कृते तत्सिद्धिः । इनपञ्चमपरये । इन् अलोपि ङेः । प्रकृतेति । "महृलौकात्" इत्यत्रास्तत्पुनरुपेक्षित्यर्थः । टिलोपो नेति । अपि तु प्रकृतिभावाज्जहृषेः टिलोपः स्वादिति भावः । यौवनम् । युवतीनां समूहः 'यौवनम्' इत्यत्र मित्रादित्वादिभि, सुपो लुकि, मत्वे पुंनञ्ज्ञाने वृद्धौ विभक्तिकार्ये च 'यौवनम्' इति । सत्रन्तादनुदात्तादिरपि 'यौवतम्' इति । आसत्जनः । समूह इत्येव । आसत्त्वान्नोऽण् । आसत्तामां जनानां कम्पूनां च समूह इति विग्रहः । तद्धितानां कानां लोकात् । "तद्धितं मित्रम्" इति लिङ्गानुसाराभावात् । गजसहाय्याभ्यां चेति । आचक्षो अपि समूहे ललिति वक्तव्यमित्यर्थः । गजता, सहायता । गजानां सहाय्याणां च समूहः इत्यत्र "गजसहाय्याभ्यां चेति वक्तव्यम्" इति वार्तिकेन तल्लि, लकार लोपे, लुकि, टपि, विभक्तिकार्ये च 'गजता' 'सहायता' इति रूपे । अहः सः क्रतौ । मत्वा अहसम्बाद् समूह इत्यर्थे सः प्रत्ययः स्यात्, समूहः अनुसाम्यन्त्येव । महीनाः । अहः समूहः 'महीनाः' इत्यत्र "अहः सः क्रतौ" इति से, सुपो 'अहम्' सः इति जाते "आचक्षोषीनीभियः षष्ठ्यन्तामां प्रत्ययानुसारात्" इति भा

कः प्रती ) अहीनः ॥ अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ४।२।४७ इसुसुक्तान्तात्कः  
 ७।३।५१ इसुसुक्तान्तात्परस्य ठस्य कः स्वात् । साक्तुकम् । हास्तिकम् । वैनुकम् ।  
 तदधीते तद्देद ४।२।५६ न व्याभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच ७।३।  
 ३। पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः, किं तु ताभ्यां पूर्वौ क्रमादौजागमौ  
 स्तः । व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः ॥ क्रमादिभ्यो वुन् ४।२।६१ क्रमकः ।  
 पदकः । शिक्षकः । मीमांसकः ॥ इति रक्ताधिकारः ।

ईनादेशे 'अहन् ईन् अ' इति जाते भस्वे, "नस्तद्धिते" इति टिलोपे, संयोगे विभक्तिकार्ये च कृते 'अहीनः' इति रूपम् । अचित्तहस्ति । अचिताः—अप्राणिनः, तद्वाचिभ्यः, हस्तिशब्दात् धेनुशब्दाच्च समूहे ठक् स्यादित्यर्थः । इसुसुक्तान्तात्कः । इसुसुक्ताः भन्ता भस्येति विग्रहः । तकारादकार उच्चारणार्थः । ठस्य कः स्यादिति । ठकि ककार इत्, अकार उच्चारणार्थः, ठकारस्य सिष्टस्य ककार आदेश इत्यर्थः । साक्तुकम् । सक्तुनां समूहः 'साक्तुकम्' इत्यत्र "अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्" इति ठकि, कलोपे सुपो लुकि, 'सक्तु ठ' इति भूते "इसुसुक्तान्तात् कः" इति ठस्य कादेशे "किति च" इत्याशये वृद्धौ, विभक्तिकार्ये च कृते 'साक्तुकम्' इति । हास्तिकम् । हस्तिनां समूह इति विग्रहः । "इसुसुक्तान्तात्" इत्युक्तः परत्वात् ठस्य कः । आदिबुद्धिः । वैनुकमिति । वेनुनां समूह इति विग्रहः । उक्तः परत्वात् ठस्येकः । आदिबुद्धिः । तदधीते, तद्देद । द्वितीयान्तात् समर्थात् अधीते इत्यर्थे वेद इत्यर्थे वा उक्ता अणादयो वक्ष्यमाणान्तात्प्रत्यया वा स्युरित्यर्थः । न व्याभ्यामिति । अ् च वरच व्याविति विग्रहः । यकारादकार उच्चारणार्थः । तदाह—यकारवकाराभ्यामिति । परस्येत्यभ्याहारलभ्यम् । न वृद्धिरिति । "तुल्येवृद्धिः" इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । तुल्यबन्धो विशेषप्रदर्शनार्थ इत्याह—किन्त्विति । ताभ्यामिति । यकारवकाराभ्यामित्यर्थः । पूर्वाविति । पूर्वविषयवाचित्यर्थः । तेन जागमत्त्वं लभ्यते । तदाह—ऐजागमाविति । ऐच् प्रत्याहारः । ययासंख्यं यकारात्पूर्वम् ऐकारः, वकारात्पूर्वम् औकारः । वैयाकरणः । व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः इत्यत्र "तदधीते तद्देद" इत्यभि, सुपो लुकि, भस्वे, अलोपे, 'व्याकरण् अ' इति भूते "तद्धितेष्वचामादेः" इति प्राप्तां वृद्धिं वाधित्वा "नव्याभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच" इति वकारादुत्तरं यकारात्पूर्वम् ऐकारे जाते विभक्तिकार्यं च कृते 'वैयाकरणः' इति सिद्धम् । क्रमादिभ्यो वुन् । द्वितीयान्तेभ्यः क्रमादिभ्योऽधीते वेद इत्यर्थे वुन् स्यादित्यर्थः । क्रमकः । क्रममधीते वेद वा इत्यत्र "क्रमादिभ्यो वुन्" इति वुवि, सलोपे, सुपो लुकि, 'क्रम वु' इति जाते "युवोरनाकौ" इति वुस्थाने अकादेशे भस्वे अलोपे, विभक्तिकार्ये च कृते 'क्रमकः' इति सिद्धम् । एव पदकः, शिक्षकः, मीमांसकः, इत्यादि । इति रक्ताधिकारः ।

## अथ चातुर्यिकाः ।

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ४।२।६७ उदुम्बराः सन्त्यस्मिन्देसो औदुम्बरो देशः ॥ तेन निर्वृत्तम् ४।२।६८ कुशाम्बेन निर्वृता नगरी कौशाम्बी ॥ तस्य निवासः ६।२।६६ शिवीनां निवासो देशः शैवः ॥ अदूरभवश्च ४।२।७० विदिशाया अदूरभव नगरं वैदिशम् ॥ जनपदे लुप ४।२।८१ जनपदे वाचो चातुर्यिकस्य लुप् स्यात् ॥ लुपि युक्तवच्चक्तिवचने १।२।५१ लुपि सति प्रकृतिवच्चिक्त्वचने स्तः । पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः । कुरवः । अङ्गाः । वङ्गाः । कलिङ्गाः ॥ वरणादिभ्यश्च ४।२।८२ अजनपदार्थ आरम्भः । वरणानामदूरभवः

तदस्मिन्नस्तीति । तदस्मिन्नस्तीत्यर्थे प्रथमोच्चारिताप्रथमाम्नादणादयः स्युः । प्रत्ययान्तेन प्रकृतिनामके देशे गम्ये इत्यर्थः । प्रसिद्धदेशग्रहणार्थ इति शब्दः । मनुष्योऽपवादः । औदुम्बरो देशः । उदुम्बराः सन्त्यत्र देशे औदुम्बरः इत्यत्र “तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि” इत्यणि, भत्वे भत्वादलोपे वृद्धौ, विभक्तिकार्यं च “औदुम्बरो देशः” इति । तेन निर्वृत्तम् । तेनेति तृतीयासमर्थान्निर्वृत्तमस्मिन् विषये यथाविहितं प्रत्ययो भवति, देशनामधेये गम्यमाने । देशे तन्नाम्नीति चतुर्विपि योगेषु सम्बध्यते । कौशाम्बी । कुशाम्बेन निर्वृता ‘कौशाम्बी’ इत्यत्र “तेन निर्वृत्तम्” इत्यणि, वृद्धौ, भत्वे अलोपे, ‘कौशाम्ब’ इति जाते “टिट्ठाणञ्” इत्यणन्तत्वाद् ङोपि, रूपभोर्लोपे, भत्वे अलोपे संयोगे, विभक्तिकार्यं च कृते ‘कौशाम्बी नगरी’ इति सिद्धम् । तस्य निवासः । तस्येति षष्ठीसमर्थान्निवास इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, देशनामधेये गम्यमाने । निवासत्वस्मिन्निति निवासः । शैवः । अत्र “तस्य निवासः” इति षष्ठ्यन्तादणि, सुपो लुकि, अलोपे, आद्यचो वृद्धौ विभक्तिकार्यं च तस्सिद्धिः । अदूरभवश्च । तस्येति तन्नाम्नि देशे, इति चानुवर्तते । तस्य अदूरभव इत्यर्थं षष्ठ्यन्तादणादयः स्युः, तन्नाम्नि देशे इत्यर्थः । चकारेण ‘अदूरभवः’ इति विध्यनन्तरं प्रागुक्तान्वयोऽर्थाः पुनरुपस्थाप्यन्ते इत्यर्थः । वैदिशम् । अत्र “अदूरभवश्च” इत्यणि, वृद्धौ, अलोपे, विभक्तिकार्यं च । जनपद इति । देशस्तु जनपदैर्वासाः, जनपदव्याप्यनगरादिश्च जनपदस्तु बहुनगरग्रामग्रामासमण्डलाधिकरणस्थानम् इति विग्रहः । लुपि युक्तवच्चक्तिवचने । युक्तशब्दः प्रकृतिवाची, व्यक्तिशब्दो लिङ्गवाची तदाह—प्रकृतिवत् वचने स्त इति । लुबिति प्रत्ययादर्शनमुच्यते । लुपः प्रवृत्तेः प्राक् प्रत्ययप्रकृतेर्यङि वचनं ते एव लुपि सति भवतः । न तु प्रत्ययार्थविशेष्यमनुसृत्येत्यर्थः । आलानानिति । पञ्चालसंज्ञकानां राज्ञामित्यर्थः । पञ्चाला इति । “तस्य निवासः” इति विहितस्याप्यर्थः “जनपदे लुप्” इति लुपि, प्रकृतिवत् बहुवचनमिति भावः । कुरव इत्यादि । कुरुणाया अङ्गानां वङ्गानां कलिङ्गानां च निवासो जनपद इति । वरणादिभ्यश्च । “जनपदे

नगरं वरणाः ॥ कुमुदनद्वेतसेभ्यो द्भृतुप् अशान् अयः ॥ २११० मय-  
न्तामृतोर्मस्य वः । कुमुद्वान् । नद्वान् ॥ मादुपचावाञ्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः  
॥ २११६ मधर्णावर्णान्तामन्त्रणावर्णोपधाच्च अवादिर्वजितात्परस्य मतोर्मस्य वः । वेत-  
स्वान् ॥ नद्वशादाड्डवत्त्व ॥ २११८ व वलः । शाद्वलः ॥ शिखाया वलत्त्व  
॥ २१२० शिखावत्त्वः ॥ इति चातुरर्थिकाः ॥

द्वप्" इत्युत्तरमिदं सूत्रम् । वरणादिभ्यः परस्य चातुरर्थिकप्रत्ययस्य लुप् स्यादि-  
त्यर्थः । पूर्वणैव सिद्धे किमर्थमिदमन्त आह—अजनपदार्थं आरम्भ इति । वरणानामिति ।  
वरणा नाम नदी कारवा उत्तरतः प्रसिद्धा । अवयवाभिप्रायं पूजार्थं वा बहुवचनम् ।  
वरणानामदूरमर्षं नगरं वरणाः । अत्र सुप्रत्ययान्तरस्य वरणावद्वत्त्व नगरे चाप्ये-  
प्रकृतिवत्स्त्रीकृत् बहुवचनं च । कुमुदनड । कुमुद्व नद्वेतस द्वेतसेभ्यः द्भृतुप् स्मादि-  
त्यर्थः । डः उपौ च इतः । अर्षं मत्वर्थं एवेति "नपदान्त" इति सूत्रे भाग्यकैयटयोः  
स्थितम् । मयः । "वदात्" इत्यधिक्रियते, तस्य द्वितोषः, अथ इति द्वितोषः ततस्त-  
द्वन्तविधिः । "मादुपचावाञ्च मतोर्वः" इत्यतो मतोर्वः इत्यनुवर्तते । तदाह—अय-  
न्तामृतोर्मस्य व इति । कुमुद्वानिति । कुमुद्वः अस्मिन् सम्प्रीति विग्रहः । द्भृतुप्,  
द्विवात् द्वितोषः । "कुमुद्वान् कुमुद्वान्" इत्यन्तः । नद्वानिति । नदाः अस्मिन्  
सम्प्रीति विग्रहः । "कुमुदनद्वेतसेभ्यः" इति द्भृतुप् द्वितोषः । मादुपचावाञ्चेति ।  
माद्व उपचावाञ्चेति छेदः । मादित्वावर्तते । अ च अस्मिन् समाहारइत्यापञ्चमेक-  
वचनम् । सुप्रत्ययान्तरातिपदिकविधिविधेयत्वाच्चद्वन्तविधिः । अकर्णान्ताद्वर्णा-  
न्ताम्रातिपदिकात्परस्य मतोर्मस्य वः स्यादित्येकोऽर्थः । मादित्वुपचावित्येकम् ।  
अकारात्मिका अकारात्मिका च वा उपचा ततः परस्य मतोर्मस्य वः स्यादित्यन्वो-  
क्तः । अक्षित्वाह—अवर्णेत्यादिना । वेतस्वान् । वेतसाः अस्मिन् सम्प्रीति विग्रहे वेतस-  
कव्यप्रथमान्तात् । "कुमुदनद्वेतसेभ्यो द्भृतुप्" इति द्भृतुप्, द्वितोषे, कुचो कुञ्चि-  
च, वेतस अत्" इति स्थिते, द्विवाट्द्वितोषे "मादुपचावाञ्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः" इति  
अयव अये "वेतस्वान्" इति जाते तस्मात्सौ, "अगिदचां सर्वनामस्थाने" इति तुमि,  
अलि मते, मित्वाद्भन्वाद्धः परे, "हल्बलाभ्याः" इत्यनेन सुलोपे, "अस्मत्प्रत्यय-  
भातोः" इत्युपचादीन् "संबोणान्तरस्य कोपः" इति तलोपे च कृते "वेतस्वान्" इति  
कव्यम् । नद्वशादाड्डवत्त्वम् । नद्वशादाड्डवत्त्वात् ड्वलच् प्रत्ययो भवति चातुरर्थिकः ।  
नद्वलः । नदाः सन्निधौ अस्मिन् इत्यत्र "नद्वशादाड्डवत्त्वम्" इति ड्वलधि, सुलोपे कुञ्चि,  
अये, द्वितोपे विभक्तिकार्यं च कृते "नद्वलः" इति । शाद्वलः । शादाः अस्मिन्  
सम्प्रीति विग्रहः । शिखाया वलत्त्वम् । शिखीचावर्षं सूत्रं द्वेते तस्मात्त्रि अतो वाचवार्थं च ।  
"शिखावत्त्वान्तरादात्" इति वलत्त्वे वलत्वमात्रं नु अदेवेऽपि शिखावत्त्वम् इति वलत्त्वम्

## अथ शेषाधिक रः ।

शेषे धाराद्वय अत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषः, तत्राणादयः चतुष्पा गृह्यते चातुषं रूपम् । श्रावणः शब्दः । श्रौतनिषदः पुरुषः । इषदि विप्र-  
दार्षदाः सक्तवः । चतुर्भिरुच्यते चातुरं शकटम् । चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्तम् ।  
“तस्य विकारः” इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः ॥ राष्ट्राऽवारपाराद् घञौ  
आभ्यां क्रमाद् घञौ स्तः शेषे । राष्ट्रे जातादिः राष्ट्रियः । अवारपारीणः । ( अवार-  
पाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम् ) अवारीणः । पारीणः  
पारावारीणः । इह प्रकृतिविशेषात् घादयष्टुलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते, तेषां जाताद-

र्चम् । शिखावल्गुः । शिखाभ्यास्तीत्यत्र “शिखाया वल्गुः” इति वल्गुश्च, अलोपे, सुपो  
लुकि, विभक्तिकार्ये च कृते ‘शिखावल्गुः’ इति सिद्धम् । इति चातुरथिकाः ।

शेषे । अथादय इति । “प्राग्दीप्पतोऽण्” इत्यादिशाचारणाः प्रत्ययाः । चातुषं रूप-  
मिति । चातुषा गृह्यते चातुषम् इत्यत्र “शेषे” इत्यभि, सुपो लुकि, “तद्वितेष्वच-  
साङ्गे” इत्याद्यन्ते कृदौ विभक्तिकार्ये च ‘चातुषम्’ इति रूपम् । श्रावणः शब्दः । श्रा-  
वणेन गृह्यते इति विग्रहः । अभि, भावको कृदौ, अलोपे, विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः । श्रौत-  
निषदः । छपनिषदा गृह्यते इति विग्रहः । “शेषे” इत्यभि भावको कृदौ, विभक्तिकार्ये  
च तत्सिद्धिः । राष्ट्रावारपारादञौ । आभ्यामिति । राष्ट्रस्य वाद्वारपारादञ्चोत्पत्त्यर्थः । राष्ट्रिय  
इति । राष्ट्रे जातः, राष्ट्रे भवः, इत्यादिरर्थो यथाकोशं बोध्यः । सप्तम्यन्तात् राष्ट्राब्दात्  
पे, सुपो लुकि, “आभ्येवोमीधिवः” इति कस्य इनादेशे, भत्वे, अलोपे, विभक्तिकार्ये  
च तत्सिद्धिः । अवारपारीणः । अवारपारे जातः इत्यर्थे “राष्ट्रावारपारादञौ” इति से-  
“आभ्येवोमीधिवः कटसङ्घर्षां प्रत्ययादीनाम्” इति कस्य इनादेशे भत्वे अलोपे  
विभक्तिकार्ये च ‘अवारपारीणः’ इति सिद्धम् । अवारपाराद्विगृहीतादपीति । अवारपाराद्वि-  
स्वारपाराद्विगृह्यते इत्यर्थः । विपरीताच्चेति । पारावारपाराद्वि-  
गीत्यर्थः । अवारीणः । अवारे जातः ‘अवारीणः’ इत्यत्र “अवारपाराद्  
विपरीताच्चेति वक्तव्यम्” इति से कस्याने इनादेशे भत्वे अलोपे नस्य भत्वे  
कार्ये च तत्सिद्धिः । एवं पारे जातः ‘पारीणः’ इत्यत्रापि बोध्यम् । पारावारीणः  
पारावारे जातः ‘पारावारीणः’ इत्यत्र विपरीतत्वात्से, कस्य इनादेशे सेषं पूर्वपदम् ।  
इह प्रकृतित्यादिना । “राष्ट्रावारपार” इत्यादिसूत्राणां प्रकृतिविशेषेभ्यः केवलस्य  
विधीनाम् अर्थविशेषविभक्तियितेषाकाङ्क्षायां “तत्र जातः” इत्यादिसूत्राणां च केवल-  
अर्थविशेषविधीनाम् “समर्पणम्” इति सूत्रस्य च विभक्तिप्रकृतियितेषां  
विशेषप्रत्ययविशेषाकाङ्क्षायां परस्परमेकवाक्यत्वे सति “तत्र जातः”  
तत्रान्वयस्तत्र विभक्तिप्रकृतयेभ्यः राष्ट्रादिवर्ज्यो वादयः आतुषकणाः प्रत्य-







स्तः खनिअणि च । बोधमाकीणः । आत्माकीणः । बोधमाकः । आत्माकः । तस्य-  
काममकावेकवचने ७३।३ एकार्थवाचिनोर्बुधदस्मदोस्तवकममकौ स्तः खनि  
अणि च । तावकीनः, तवकः । मामकीनः, मामकः । छे तु-प्रत्ययोत्तरपदयोश्च  
७३।२।२ अपर्यन्तयोरेतयोरेकार्थवाचिनोस्त्वमौ स्तः प्रत्यये उत्तरपदे च परतः ।  
त्वदीयः । मदीयः । त्वत्पुत्रः । मत्पुत्रः ॥ ग्रन्थान्तः ७३।२ ग्रन्थः ॥ कालादुत्तर

इति व्यस्तनिर्देशात् । बोधमाकीणः । बुधबोर्बुधमाकं वा अवयवमिति विग्रहः । सन्, ईना-  
देसः, बुधमाकावेसः, आदिबुद्धिः, जत्वम् । आत्माकीणः । आचबोरस्माकं वा अवयवमिति  
विग्रहः । सन्, ईनादेसः, आत्माकावेसः आदिबुद्धिः । बोधमाकः । आत्माकः । बुधबो-  
र्बुधमाकं वा, आचबोरस्माकं वा अवयवमिति विग्रहः । अत्र “बुधदस्मदोरन्वतरस्यां सञ्ज्ञ”  
इति जणि, अलोपे, सुपो लुकि “तस्मिन्मणि च बुधमाकास्माकौ” इति ‘बुधमाक’  
‘आत्माक’ आदेशे मत्वे अलोपे आचबो बृहौ विभक्तिकार्यं च सति ते रूपे स्तः ।  
तवकममकौ । एकवचने इति बुधदस्मदोः प्रकृत्योर्विशेषणम् । एकस्य वचनस्य, एक-  
वचनम् । एकस्योक्तौ व्याप्तिवर्माणयोरिति उच्यते । तदाह—एकार्थवाचिनोरिति । तव-  
कीनः । तव अर्थ ‘तावकीनः’ इत्यत्र “बुधदस्मदोरन्वतरस्यां सञ्ज्ञ” इति जणि, सुपो  
लुकि, “तवकममकमेकवचने” इति बुधद् स्थाने तवकादेशे सत्य ईनादेशे मत्वे  
अलोपे संयोगे विभक्तिकार्यं च कृते ‘तावकीनः’ इति । अमपचे “तवकममकावेक-  
क” इति बुधदस्मदस्मदोः मत्वे अलोपे बृहौ संयोगे विभक्तिकार्यं च ‘तवकः’ इति  
। मामकीनः । “बुधदस्मदोरन्वतरस्यां सञ्ज्ञ” इति जणि, “तवकममकावेक-  
क” इति ममकादेशे सत्य ईनादेशे मत्वे अलोपे, विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । पक्षे  
जणि ममकादेशे च ‘मामकः’ इति । छे त्विति । एकार्थबृत्तयोर्विशेषो वचनस्य इति शेषः ।  
सत्योत्तरपदयोश्च । समप्रतिपत्तिवत् । “त्वमावेकवचने” इत्यनुवर्तते । “बुधदस्म-  
दोरन्वदोः” इत्यतो बुधदस्मदोस्त्वित्यनुवर्तते । अपर्यन्तस्येत्यधिकृतम् । तदाह—  
अपर्यन्तयोस्त्यादि । त्वदीयः, मदीयः । तव अवयव त्वदीया, मम अर्थ मदीयः इत्यत्र  
“बुधदस्मदोरन्वतरस्यां सञ्ज्ञ” इति चालोपे, सुपो लुकि सत्य ईनादेशे “प्रत्ययोत्तर-  
पदयोश्च” इति बुधदो अपर्यन्तस्य त्वादेशे, अस्मदो अपर्यन्तस्य च मादेशे ‘त्व अद्  
ईव’ ‘म अद् ईव’ इति आते “अतो गुणे” इति परकस्ये संयोगे विभक्तिकार्यं च कृते  
‘त्वदीयः’ ‘मदीयः’ इति सिद्धम् । त्वत्पुत्रः, मत्पुत्रः । तव पुत्रः त्वत्पुत्रः, मम पुत्रः  
मत्पुत्र इति बृहतीतुल्यसमासे कृते सुपो लुकि, अत्र “प्रत्ययोत्तरपदयोश्च” इति  
बुधमाक्ये उत्तरपदे त्वादेशे मादेशे च ‘त्व अद् पुत्र’ इति ‘म अद् पुत्र’ इति च आते  
“अतो गुणे” इति परकस्ये ‘स्वरि च’ इति वृत्त तकारे च कृते ‘त्वत्पुत्रः’ ‘मत्पुत्रः’  
इति स्तः । ग्रन्थान्तः । स्पष्टम् । ग्रन्थः । मत्वे आतः ‘ममममः’ इत्यत्र “ममम-  
म” इति ममममे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धम् । कालादुत्तर । “कालादुत्तरस्येव न मममम”

४१३।११ कालवाचिभ्यष्टुप् स्वाय । कालिकम् । मासिकम् । सांवत्सरिकम् ( अथ-  
यानां ममात्रे टिलोपः ) सावंप्रतिकः । पौचःपुनिकः ॥ प्रावृष षण्णः ४१३।१२  
प्रावृषेण्यः ॥ सायंविर्प्राह्णप्रगेऽव्ययेभ्यष्टुट्पुलौ तुट् च ४१३।१३ साय-  
मित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्टुट्पुलौ स्तत्तयोस्तुट् च । सामन्त-  
नम् । विरन्तनम् । प्राह्णप्रगेऽनवोरेदन्तत्वं विपात्यते । प्राह्णतनम् । प्रगेतनम् ।  
दोषातनम् ॥ तत्र जातः ४१३।२५ सप्तमीसमर्भाजात इत्यर्थेऽणादयो पादमन्त्र-  
स्तुः ॥ सुप्ते जातः सौमः । उत्से जात औत्सः । राष्ट्रे जातो राष्ट्रियः । अक्षरपारे

किमु कालवाचस्य कालविशेषवाचकानां च ग्रहणम् इति "तदस्य परिमाणम्"  
"संख्यायाः" इति सूत्रभाष्ये स्पष्टम् । तदाह—कालवाचिभ्य इति । कालिकम् । काले  
जातम् 'कालिकम्' इत्यत्र "कालाट्ठम्" इति ठञि, भास्ते "ठस्येकः" इति ठस्येकादेशे  
सुप्ते लुकि, 'कल इक' इति जाते अथे अछोपे संयोगे विभक्तिकार्यं च कृते 'कल-  
इक' इति । एवं 'मासिकम्' 'सांवत्सरिकम्' इति । सायंप्रातिकः । सायंप्रातर्यम्  
'सायंप्रातिकः' इत्यत्र "कालाट्ठम्" इति ठञि, ठस्य इकादेशे 'सायंप्रात् इक' इति  
जाते अथे "अव्ययानां ममात्रे टिलोपः" इति टिलोपे संयोगे विभक्तिकार्यं च कृते  
'सायंप्रातिकः' इति । एवं पुनःपुनः भवः—'पौचःपुनिकः' इति षोडशम् । प्रावृष षण्णः ।  
अव्ययोऽपवाहः । प्रावृषेण्य इति । प्रावृट् कर्षर्तुः । तत्र भवादिरित्यर्थः । 'प्रावृ-  
कि षण्य' इति स्थिते सुप्ते लुकि, अथे अछोपे संयोगे विभक्तिकार्यं च कृते  
सप्तसिद्धिः । सायंविर्प्राह्णप्रगेऽव्ययेभ्यष्टुट्पुलौ तुट् च इत्येवम्  
इत्यर्थः । कालवाचिभ्य इति । "कालाट्ठम्" इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । तयोरिति ।  
तुट्पुलौ इत्यर्थः । सायन्तनम् । इत्यत्र "सायंविर्प्राह्णप्रगेऽव्ययेभ्यष्टुट्पुलौ तुट् च"  
इति टुट्पुलौप्रत्यये तुष्टान्ते उभयोः अनुबन्धछोपे, टिलवादाद्यवक्ये जाते, 'सायन्त-  
नु' इति जाते "तुकोरनाकौ" इति कोरनादेशे प्रकृतेर्मान्तत्वे विपातिते संयोगे विभ-  
क्तिकार्यं च कृते 'सायन्तनम्' इति रूपम् । विरन्तनम् । अत्रापि प्रकृतेर्मान्तत्वं वि-  
पाते । तेषां पूर्वकम् । प्राहेतनम् । प्राहः सोढोऽस्येति विग्रहः । सायनिका पूर्वकम् ।  
प्रगेतनम् । प्रगच्छतीति प्रग, तस्मिन् जातादिरित्यर्थः । दोषातनमिति । दोषेस्वात्म-  
न्तमात्रेण सौमः । तत्र जातः । सप्तमीसमर्भादिति । सप्तम्यन्तात्प्राह्णतस्येतिरित्यर्थः ।  
येन सप्तम्यन्तस्यैव अथमानिर्दिष्टत्वमिति भावः । अत्रादय इति । अव्ययादिविकारमन्त्र-  
वैकल्यादय इत्यर्थः । वादमन्त्रेति । "सद्राक्षरपादसौ" इत्यादिभिः विशेष्यैर्वि-  
शेष्यैः । सोमः । अत्र "तत्र जातः" इत्यन् । इकम्—'ओत्सः' इत्यत्रापि ।  
अत्र "तत्र जातः" इति सूत्रेकार्थे "सद्राक्षरपादसौ" इति चे "अव्ययेकीनीतिना अत्र  
सद्राक्षरं प्राग्वहानीत्यर्थः" इति कल इकादेशे सुप्ते लुकि, अथे अछोपे विभक्तिकार्यं ।

जातः अवारपारीणः । इत्यादि ॥ प्रावृषष्टप् ४३१२६ एण्यापवादः । प्रावृषिकः ॥  
 प्रायभवः ४३१३६ तत्रेत्येव । सुप्ते प्रायेण बाहुत्येन भवति सौम्रः ॥ सम्भूते ४३  
 ३४१ सुप्ते सम्भवति सौम्रः ॥ कोशाद्वज् ४३१४२ कौशेयं वक्षम् ॥ तत्र भवः  
 ४३१५३ सुप्ते भवः सौम्रः । औत्सः । राष्ट्रियः ॥ दिगादिभ्यो यत् ४३१५४  
 दिश्यम् । बर्ग्यम् । शरीरावयवाच्च ४३१५५ दन्त्यम् । कण्ठ्यम् । ( अध्या-  
 त्मादेष्टजिष्यते ) अध्यात्मं भवमाध्यात्मिकम् ॥ अनुशक्तिकादानां च ४३१  
 २७१ एषामुभयपदबुद्धिः स्यात् बिति णिति किति च । आधिदैविकम् । आधिभौति-

तत्सिद्धिः । अवारपारीणः । अवारपारे जातः 'अवारपारीणः' इत्यत्र "तत्र जातः" इति  
 सूत्रोक्तार्थे "राष्ट्रावारपारादसौ" इति स्वे "आयनेयीनीयियः" इति सस्य ईनादेशे  
 सुपो लुकि, मत्वे अलोपे विभक्तिकार्यं च कृते तत्सिद्धिः । प्रावृषष्टप् । ठपः पितृत्वम्  
 "अनुदात्तौ सुप्तिता" इति स्वरार्थम् । एण्यापवाद इति । "प्रावृष एण्यः" इति विहित-  
 स्वेत्यर्थः । प्रावृषिकः । प्रावृषि जातः 'प्रावृषिकः' इत्यत्र "तत्र जातः" इति सूत्रो-  
 क्तार्थे "प्रावृषष्टप्" इति ठपि पलोपे सुपो लुकि, "ठस्येकः" इति ठस्य इकादेशे  
 विभक्तिकार्यं च कृते 'प्रावृषिकः' इति सिद्धम् । प्रायभवः । तत्रेत्येवेति । प्रायभवः  
 इत्यर्थे ससम्भन्तादणादयो षादयश्च यथायथं स्युरित्यर्थः । प्रायशब्दस्य व्याख्यानम्—  
 बाहुत्येनेति । सौध्नः । "प्रायभवः" इति सूत्रोक्तार्थे अनेनैव सूत्रेण अण् । सम्भूते ।  
 तत्रेत्येव । ससम्भन्तात्सम्भूतेऽर्थे अणादयो षादयश्च यथायथं स्युरित्यर्थः । सौध्नः ।  
 सुप्तेष्वशब्दात्ससम्भन्तात्सम्भूतेऽर्थे "सम्भूते" इति सूत्रेण अण् । कोशाद् वज् । कौशेयं  
 वक्षामिति । कृमिविशेषकोशस्य विकार इत्यर्थः । "विकारे कोशाद्वज्" इति वाति-  
 कत्वात् 'कोश इस् वज्' इति स्थिते सुपो लुकि, अगते "आयनेयीनीयियः" इति  
 ऋस्य ण्यादेशे, मत्वे अलोपे आद्यचो वृद्धौ संयोगे विभक्तिकार्यं च 'कौशेयम्' इति  
 सिद्धम् । तत्र भवः । कालादिति निवृत्तम् । अस्मिन्मध्ये ससम्भन्ताद्यथाविहितं प्रत्ययाः  
 स्युरित्यर्थः । भवनं सत्ता, जननमुत्पत्तिरिति भेदः । सौध्न इति । औत्सर्गिकोऽण् ।  
 राष्ट्रिय इति । "राष्ट्रावार" इति घः । दिगादिभ्यो यत् । भवः इत्यर्थे ससम्भन्तेभ्य इति  
 शेषः । दिश्यमिति । दिशि भवमित्यर्थः । शरीरावयवाच्च । भव इत्यर्थे ससम्भन्तेभ्य इति  
 शेषः । दन्त्यमिति । दन्ते भवमित्यर्थः । "यस्येति च" इत्यकारलोपः । एवं कण्ठ्यम् ।  
 आध्यात्मिकम् । आत्मनि इत्याध्यात्मम् । अध्यात्मं भवम् 'आध्यात्मिकम्' इत्यत्र "तत्र  
 भवः" इति सूत्रोक्तार्थे "अध्यात्मादेष्टजिष्यते" इति ठजि ठस्येकादेशे आद्यचो वृद्धौ  
 विभक्तिकार्यं च 'आध्यात्मिकम्' इति सिद्धम् । अनुशक्तिकादीनाञ्च । आदिबुद्धिप्रकरणे  
 उपरपदस्य, पूर्वपदस्येत्यधिकारे इदं सूत्रम् । तदाह—एषामिति । आधिदैविकम् ।  
 आधिभौतिकम् । तत्र भवमित्यर्थः । "अध्यात्मादेष्टजिष्यते" इति २७ । उभयपद-

कम् । ऐहलौकिकम् । पारलौकिकम् । आकृतिगणोऽयम् ॥ जिह्वामूलाङ्गुलेश्च-  
 ४।३।६२ जिह्वामूलीयम् । अङ्गुलीयम् ॥ वर्गान्ताच्च ४।३।६३ कवर्गीयम् ॥ तत्  
 आगतः ४।३।७४ सुप्तादागतः सौप्तः ॥ ठगायस्थानेभ्यः ४।३।७५ शुल्कशा-  
 लाया आगतः शौल्कशालिकः ॥ विद्यायोनिस्मन्धेभ्यो वुञ् ४।३।७७ औपा-  
 ध्यायकः । पैतामहकः ॥ हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ४।३।८१ समादा-  
 गतं समरूप्यम् । पच्चे गहादित्वाच्छः । समीयम् । विषमीयम् । देवदत्तरूप्यम् ।  
 देवदत्तम् ॥ मयट् च ४।३।८२ सममयम् । देवदत्तमयम् ॥ प्रभवति ४।३।८३

बुद्धिः । आधिभौतिकमिति । भूतेष्वधिभूतम् । तत्र भवमित्यर्थः । “अध्यात्मादेष्टुं  
 इष्यते” इति ठञि, ठस्येकादेशे, उभयपदबुद्धिः । ऐहलौकिकम् । इह लोके भवमित्यर्थः ।  
 ठञ्, उभयपदबुद्धिः । पारलौकिकमिति । परलोके भवमित्यर्थः । ठञ्, उभयपदबुद्धिः ।  
 जिह्वामूलाङ्गुलेश्चः । “शरीरावयवाच्च” इति यतोऽपवादः । जिह्वामूलीयम् । जिह्वामूले  
 भवम् “जिह्वामूलीयम्” इत्यत्र “जिह्वामूलाङ्गुलेश्चः” इति छे, “आयनेयीनीभियः”  
 इति छस्य ईयादेशे भवे अलोपे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । एवम् अङ्गुल्यां भवम्  
 ‘अङ्गुलीयम्’ इति । वर्गान्ताच्च । कवर्गीयम् । कवर्गो भवमिति विग्रहः । अत्र “वर्गा-  
 न्ताच्च” इति छप्रत्यये, सुपो लुकि, छकारस्य स्थाने ईयादेशे भवे अलोपे  
 विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । तत् आगतः । अस्मिन्धे पञ्चम्यन्ताद्यथाविहितं प्रत्ययाः  
 स्युरित्यर्थः । सौप्त इति । औत्सर्गिकोऽण् । ठगायस्थानेभ्यः । तत् आगतः इत्यर्थे इति  
 शेषः । इष्टादिषु स्वामिप्राप्तो भागः आयः । स अस्मिन् गृह्यते तदायस्थानम्, तदा-  
 यिभ्य इत्यर्थः । शौल्कशालिकः । शुल्कशालाया आगतः ‘शौल्कशालिकः’ इत्यत्र “ठगा-  
 यस्थानेभ्यः” इति ठकि कलोपे “ठस्येकः” इति ठस्येकादेशे भवे अलोपे “किति च”  
 इत्याद्यचो बृद्धौ विभक्तिकार्यं च कृते ‘शौल्कशालिकः’ इति रूपम् । विद्यायोनि ।  
 तत् आगत इत्येव । औपाध्यायकः । उपाध्यायादागतः ‘औपाध्यायकः’ इत्यत्र  
 “विद्यायोनिस्मन्धेभ्यो वुञ्” इति वुञि अलोपे सुपो लुकि, “युवोरनाकौ” इति  
 वुस्थाने अकादेशे भवे अलोपे आद्यचो बृद्धौ विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । एव-  
 पितामहादागतः ‘पैतामहकः’ इत्यत्रापि बोध्यम् । हेतुमनुष्येभ्यः । तत् आगत  
 इत्येव । हेतुभ्य उदाहरति—समरूप्यमिति । अत्र “हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां  
 रूप्यः” इति रूप्ये, सुपो लुकि, विभक्तिकार्यम् । समीयम् । पच्चे “गहादिभ्यश्च”  
 इति छे, छस्य ईयादेशः । एवं विषमादागतम्—‘विषमरूप्यम्’ ‘विषमीयम्’ इति ।  
 मनुष्यवाचिन उदाहरति—देवदत्तरूप्यम् । पच्चे “तत् आगतः” इत्यणि, सुपो लुकि,  
 भवे अलोपे, बृद्धौ विभक्तिकार्यं च ‘देवदत्तम्’ इति । मयट् च । उक्तविषये इति शेषः ।  
 सममयम् । समादागतम् सममयम् इत्यत्र “मयट् च” इति मयटि टलोपे सुपो लुकि

हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा । तद्गच्छति पथिदूतयोः ४।३।२२ सुप्तं गच्छति  
सौमः पन्था दूतो वा ॥ अग्निनिष्कामति द्वारम् ४।३।२६ सुषुप्तमग्निच्छति सौमः  
क्रान्तकुब्जद्वारम् । अधिष्ठत्य कृते ग्रन्थे ४।३।२७ शारीरकमधिकृत्य कृते ग्रन्थः  
शारीरकीयः ॥ सोऽस्य निवासः ४।३।२८ सुप्तो निवासोऽस्य सौमः । तेन प्रो-  
क्तम् ४।३।१०१ पाणिनिवा प्रोक्तं पाणिनीयम् ॥ तस्येदम् ४।३।१२० उपनोरिदम्  
प्रोपगवम् ॥ इति शैबिकाः ।

विमर्शिकायै च 'सममयम्' इति । एवं 'देवदत्तमयम्' इत्यत्रापि । प्रभवति । तत् इत्येव ।  
आगत इति तु निवृत्तम् । प्रवर्तित्वयै पञ्चम्यन्तात्प्राविहितं प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः ।  
ग्रन्थः प्रथमप्रकाशः । हिमवतः प्रभवतीति । हिमवति प्रथमं प्रकाशत इत्यर्थः । "सुप्त-  
मेवचामादेः" इत्याद्यो कृदौ संयोगे हैमवत इति जाते "टिब्बाम्" इति छवि,  
उपचोछोपै भवे अछोपे संयोगे विमर्शिकायै च कृते 'हैमवती गङ्गा' इति सिद्धम् ।  
तद्वृत्ति पथिदूतयोः । गच्छतीत्यर्थे द्वितीयान्तात्प्रत्ययाः स्युः, स चेदन्ता यन्थाः इत्यो  
वा, इत्यर्थः । सौमः । अत्र द्वितीयान्तात् "तद्वृत्ति पथिदूतयोः" इत्यम् । अग्निनि-  
ष्कामति । तदित्येव । द्वितीयास्तमर्थाद्भिनिष्कामतीत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो  
भवति यच्चदभिनिष्कामति द्वारं चेद्वति । सौममिति । अत्र द्वितीयान्तात् कृत्यञ्चान्तात्  
विमर्शमिति इत्येतस्मिन्नर्थे "अभिनिष्कामति द्वारम्" इत्यनेन सूत्रेण व्यम् । कान्येति ।  
क्रान्तकुब्जद्वारमपदस्य द्वारमित्यर्थः । अधिष्ठत्य । अधिष्ठेति । अधिष्ठत्य कृते ग्रन्थः  
इत्यर्थे द्वितीयान्तात्प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । शारीरकमिति । शारीरक्यायं शारीरः जीवायाम्,  
अनित्यार्थः । "तस्येद्" भिन्नमन्तात् स्थार्थे कः । शारीरकीय इति । अत्र "अधिष्ठत्य कृते  
ग्रन्थे" इति सूत्रोक्त्याद् द्वितीयान्तात् शारीरकस्येद्वारम् "कृदाच्छः" इति छे, सुप्ते  
लुकि, "आयवेयीनीथिया" इति कृत्स्न ईवादेशो मसंज्ञायाम् अछोपे संयोगे विमर्श-  
िकायै च कृते 'शारीरकीयः' इति सिद्धम् । सोऽस्य निवासः । स इति प्रथमास्तमर्थाद्-  
स्येति बहुवर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत्रचसास्तमर्थं निवासश्चेत्त भवति । निव-  
सत्यस्मिन्निवासो देव उच्यते । सुप्तो निवास इति । निवासाधिकरणमित्यर्थः ।  
सौमः । "सोऽस्य निवासः" इति व्यम् । तेन प्रोक्तम् । तेन इति द्वितीयास्तमर्थात्प्रोक्त-  
स्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । पाणिनीयम् । अत्र "तेन प्रोक्तम्" इति सूत्रो-  
क्त्याद् द्वितीयान्तात् पाणिनीयस्येद्वारम् प्रोक्तमित्येतस्मिन्नर्थे "कृदाच्छः" इति छे, कृत्स्न  
ईवादेशो सुपो लुकि, भवे अछोपे विमर्शिकायै च कृते 'पाणिनीयम्' इति सिद्धम् ।  
तस्येदमिति । इदमित्यर्थे बहुवन्ताद्वादायः साधारणप्रत्ययाः राट्वावरेत्यादिभिर्भिन्न-  
विहितः पादवत् प्रथया यथाविहितं स्युरित्यर्थः । औपगममिति । उपगम्यमान-  
मपि इदमित्यर्थे "तस्येद्" इति सूत्रेण व्यम्, अछोपे सुप्ते लुकि, यथावत्

**अथ शार्ङ्गदीर्घ्यतीयाः ।**

तस्य विकारः ॥३१३४ ( अग्नौ विकारे तिलोपो वक्तव्यः ) अग्नि-  
नो विकार आरमः । भास्मनः । मार्तिकः ॥ अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ॥  
३१३५ चाद्विकारे । मयूरस्मावयो विकारो वा मायूरः । मौर्व काष्ठं भस्म वा  
पैण्ड्रम् । मयूरैतयोर्भाषयामभक्ष्यान्मृदयोः ॥३१३६ प्रकृतिमान्म-  
यह वा स्यात्, विकारावयवयोः । अग्नमयम्, अग्निमन् । अग्नौत्वादि हिम् ।

“अनेतुमः” इति उक्तान्ति-उपपुत्रवदस्य पुत्रे अवादेते भाग्यो पुत्रौ संशये विभक्ति-  
 त्वात् न पुत्रे तत्सिद्धिः । इति शैषिकप्रवचनम् ।

तस्य विकारः । विविधते इति विकाराः, कर्मणि च । अन्तेऽप्यन्तराश्रित्य  
विभिन्ना, तस्याभितर्कः । तथेति बहुवचसात् विकारेऽर्थे अत्राद्यः साधारणा वचनमा-  
त्रात् वेत्तेतिहा वधाविहितं स्तुरित्यर्थः । अयमनो विकार इति । विकारार्थमात्रत्वे च  
वचनम् साव्यस्य टिप्पणे वक्तव्य इत्यर्थः । “अन्” इति प्रकृतिभावावसादः । अयम-  
अयमनो विकारः—आरमः इत्यत्र “तस्य विकारः” इत्यभि “नस्तद्विधे” इति टिप्पणे  
आप्ते “अन्” इति टिप्पेयाभावे “अयमनो विकारे टिप्पेयो वक्तव्यः” इति वार्तिकेन  
टिप्पणे संयोगे “तद्विधेऽवयवमात्रे” इति वृद्धौ विभक्तिकार्ये च कृते ‘आरमः’ इति  
सिद्धम् । आरमनः । अयमनो विकारः—आरमनः इत्यत्र “तस्य विकारः” इत्यभि,  
वचने अत्वे “नस्तद्विधे” इति टिप्पेये आप्ते “अन्” इति टिप्पेयाभावे वृद्धौ विभक्ति-  
कार्ये च कृते ‘आरमनः’ इति सिद्धम् । मारिकः । मृष्टिकाया विकारः ‘मारिकः’  
इत्यत्र “तस्य विकारः” इति अभि, सुपो लुकि अत्वे आख्येये आस्यो वृद्धौ विभक्ति-  
कार्ये च कृते ‘मारिकः’ इति सिद्धम् । जयदे च प्राण्योपधि । प्राणिवचिन ओषधि-  
काचितो वृक्षमाश्रित्य बहुवचनेऽवयवे विकारे च वचनादयः साधारणा उच्यः  
वचनमात्रात् प्रत्ययाः वधाविहितं स्तुः । अन्तेऽप्यन्तराश्रित्य विकारमात्र इत्यर्थः । आर-  
मन् प्रकृत्युच्चेन अन् । मोर्धमिति । मूर्ध्नि ओषधिविशेषः । तस्या अवयवो विकारो  
वेत्यर्थः । औसर्गिकोऽन् । वैपलम् । विष्पका—अवयवः, तस्यावयवो विकारो वेत्यर्थः ।  
विष्पक्यवसात् बहुवचसात् “अयमने च प्राण्योपधिवृत्तेभ्यः” इत्यभि, सुपो लुकि  
अत्वे अलोपे अवयवो वृद्धौ, विभक्तिकार्ये च कृते सिद्धिः । मन् इत्येतयोः ।  
विकारवचनपोरिति सिद्धेरेतयोरेति वचनम् उक्तवचनमात्रापवादविषयेऽपि ।  
मन् इत्यत्र, इति आत्मे स्पष्टम् । तेन विवचनार्थं वैवर्धित्वादि सिद्धकरीत्यभिने-  
त्वात्—प्रकृतिभावादिति । कार्यत्वाः प्रकृतोक्त्यर्थः । अयमवयवः । अयमनो  
‘अयमवयवः’ इत्यत्र “अयमनेतयोर्भावात्तदवयवमात्रादवयोः” इति मपरि, सुपो  
लुकि, अन्तेऽपि नै विभक्तिभावात् बहुवचसात् “नलोपः प्राणिपदिकाम्बुयः” इति च



मौद्रः सूपः । कार्पासमाच्छादनम् ॥ नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ४।३।१४४ आन्नम-  
यम् ॥ गोश्च पुरीषे ४।३।१४५ गोः पुरीषं गोमयम् ॥ गोपयसोर्यत् ४।३।१६०  
गव्यम् । पयस्यम् ॥ इति विकारार्थाः ( प्राग्दीव्यतीयाः ) ।

### अथ ढगधिकारः ।

प्राग्बहतेष्टक ४।४।१ तद्वहतीत्यतः प्राक् ढगधिक्रियते ॥ तेन दीव्यतिखन-  
तिजयतिजितम् ४।४।२ अक्षैर्दीव्यति खनति जयति जितं वा आक्षिकः ॥ संस्कृतम्

विभक्तिकार्यं च कृते 'अश्ममयम्' इति सिद्धम् । अश्मनम् । अश्मनो विकारोऽव-  
चनो वेत्यर्थः । "अन्" इति प्रकृतिभावाच्च टिलोपः । मौद्रः सूपः । मुद्गानां विकारः  
इत्यत्र भक्ष्यत्वान्मयडभावे "तस्य विकारः" इत्यणि वृद्धौ च सत्यां शेषं पूर्ववत् ।  
कार्पासम् । कार्पासानां विकारः इत्यत्र आच्छादनत्वान्मयडभावे "तस्य विकारः"  
इत्यणि वृद्धौ, विभक्तिकार्यं च पूर्ववत् । नित्यं वृद्धशर । मयडिति शेषः । उक्तविकार-  
स्यापवादः । आन्नमयम् । आन्नाणां विकारोऽवचनो वा 'आन्नमयम्' इत्यत्र "वृद्धिर्ब-  
स्याचामादिस्तद्वृद्धम्" इत्याप्रशब्दस्य वृद्धसंज्ञत्वे "नित्यं वृद्धशरादिभ्यः" इति  
मयटि टलोपे सुपो लुकि विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । गोश्च पुरीषे । नित्यं मयडित्यनु-  
वर्तते । गोमयमिति । गोः पुरीषम् 'गोमयम्' इत्यत्र गोशब्दात् षष्ठ्यन्तात् पुरीष  
इत्यस्मिन्नर्थे मयटि सुपो लुकि, ढगते विभक्तिकार्यं च 'गोमयम्' इति रूपम् । यद्यपि  
पुरीषं न गोर्विकारो नाप्यवचनः । तथापि तस्येदमित्यर्थस्य प्रत्ययः । गोपयसोर्यत् ।  
गव्यमिति । गोर्विकारोऽवचनो वेत्यर्थः । "वान्तो यि" इत्यवादेशः । पयस्यम् । पयसो  
विकारः 'पयस्यम्' इत्यत्र "गोपयसोर्यत्" इति यति विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः ।

इति प्राग्दीव्यतीयाः ।

प्राग्बहतेष्टक । वहतीत्येकदेशेन "तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्" इति सूत्रं परामृश्यते  
इत्यभिप्रेत्याह-उद्वहतीत्यत इति । तेन दीव्यति । तेनेति वृतीयासमर्थाद्दीव्यति खनति जय-  
तिजितमित्येतेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति । आक्षिकः । अक्षशब्दात् वृतीयान्तात् दीव्यति,  
खनति, जयति, जितम्, इत्येतेषु अर्थेषु "तेन दीव्यतिखनतिजयतिजितम्" इति ठकि  
कृते 'अक्ष मिस्र ठक्' इति जाते कलोपे "सुपो घातुप्रातिपदिकयोः" इति मिस्रो लुकि,  
"ठस्येकः" इति ठस्य इकादेशे "यचि भम्" इति भसंज्ञायां "यस्येति च" इति अलोपे  
संयोगे च कृते "किति च" इति आद्यचो वृद्धौ "कृत्तद्धितसमासाश्च" इति प्रातिपदि-  
कसंज्ञायां तस्मात्सौ, सस्य रुवे रेफस्य विसर्गत्वे च 'आक्षिकः' इति सिद्धम् । संस्कृतम् ।  
तेनेति वृतीयासमर्थात्संस्कृतमित्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । दाक्षिकम् । 'दधि टा'  
इत्यस्मात् "संस्कृतम्" इति सूत्रेण ठकि, कलोपे सुपो लुकि, ठस्येकादेशे भवे "यस्ये-  
ति च" इति इलोपे, "किति च" इति आद्यचो वृद्धौ, संयोगे विभक्तिकार्यं च

धा३ दद्या संसृष्टं दाधिकम् । मारीचिकम् । तरति धा३ तेनेत्येव । उडुपेन  
तरति औडुपिकः ॥ चरति धा३ चृतीयान्ताद्गच्छति भक्षयतीत्यर्थयोष्ठक् स्यात् ।  
हस्तिना चरति हास्तिकः । दद्या चरति दाधिकः ॥ संसृष्टे धा३ संसृष्टं  
दाधिकम् ॥ उञ्छति धा३ उञ्छति वादरिकः ॥ रक्षति धा३ रक्ष  
समाजं रक्षति सामाजिकः ॥ शब्ददुर्दुरं करोति धा३ शब्दं करोति शाब्दि-  
कः । दुर्दुरं करोति दादुरिकः ॥ धर्मं चरति धा३ धर्मिकः ( अघर्माच्चेति  
वक्तव्यम् ) आधर्मिकः ॥ शिल्पम् धा३ शिल्पं मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः ॥

तस्सिद्धिः । एषं मरीचेन संसृष्टम् 'मारीचिकम्' इति । तरति । तेनेति चृतीयासमर्थात्  
चरति इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । औडुपिकः । "तरति" इत्यनेन ठकि, "उडुप  
या ठक्" इति स्थिते पूर्ववत्साधनिका । चरति । गच्छति-भक्षयतीति । 'चर गतिमक-  
णयोः' इति चरघातोत्तरार्थे हृत्तेरिति भावः । हास्तिक इति । ठकि इके "नस्तद्धिते"  
इति टिलोपः । दाधिकः । दद्या चरति-भक्षयति इत्यर्थे, ठकि, इके, इलोपे वृद्धिः ।  
संसृष्टे । संसृष्टमित्यर्थे चृतीयान्तात् ठक् इत्यर्थः । दाधिकम् । "संसृष्टे" इति ठकि पूर्व-  
वत् साधनिका । उञ्छति । "तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमशूलम्" इत्यतस्तत् इत्यनुवर्तते । तत्  
इति द्वितीयान्तात् उञ्छतीत्यर्थे ठगित्यर्थः । वादरिकः । अत्र द्वितीयान्तात् बदरक-  
ब्दात् "उञ्छति" इति ठकि, कगते, सुपो लुकि, ठस्येकादेशे भवे अलोपे "किति च"  
इति आद्यचो वृद्धौ विभक्तिकार्यं च तस्सिद्धिः । रक्षति । तद्विति द्वितीयासमर्थात् रक्ष-  
तीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । सामाजिकः । 'समाज अस्' इत्यस्मात् "रक्षति"  
इत्यनेन ठकि, शेषं पूर्ववत् । शब्ददुर्दुरं करोति । शब्दं करोति दुर्दुरं करोतीति विग्रहे  
द्वितीयान्ताट्ठगित्यर्थः । इह शब्दविषये प्रकृतिप्रत्ययविभागपूर्वकज्ञाने करोतिवर्तते,  
व्याख्यानात् । तेनेह न, शब्दं करोति खरः । शाब्दिकः । शब्दं करोतीत्यर्थे ठक् । दादु-  
रिकः । दुर्दुरं करोति इत्यर्थे प्रकृतसूत्रेण ठक् शेषं पूर्ववत् । धर्मं चरति । धर्मशब्दात्त-  
द्विति द्वितीयासमर्थाच्चरतीत्येनस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । धार्मिकः । धर्मं चरतीति  
धार्मिकः इति विग्रहः । अत्र प्रकृतसूत्रेण ठक् । शेषं पूर्ववत् । अघर्माच्चेति । 'अहणवत्ता  
प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति' इति तदन्ताग्रहणादप्राप्ते आरम्भः । आधर्मिकः ।  
अधर्ममाचरति आधर्मिकः इत्यत्र 'अधर्माच्चेति वक्तव्यम्' इति वार्तिकेन ठकि,  
ठस्येकादेशे भवे, अलोपे वृद्धौ संयोगे विभक्तिकार्यं च 'आधर्मिकः' इति सिद्धम् ।  
शिल्पम् तद्विति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति, यत्तत्प्रथमासमर्थं  
शिल्पं चेत्तद्वति । मार्दङ्गिकः । मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः इत्यत्र "शिल्पम्"  
इति ठकि कलोपे, सुपो लुकि, ठस्येकादेशे भवे, अलोपे, संयोगे वृद्धौ, विभक्तिकार्यं  
च 'मार्दङ्गिकः' इति सिद्धम् । प्रहरणम् । तदस्वेत्येव । तद्विति प्रथमासमर्थादस्येति

प्रह्वयम् ४।४।७ तदस्येत्येव । अतिः प्रहरणमस्य अतिव्ययः । आनुष्कः ॥ प्रह्वयम् ४।४।७१ अपूपमस्य शीलमस्य आपूपिका ॥ निकटे वसति ४।४।७२ नैक-  
ष्टिको भिक्षुकः । इति ठगधिकारः ॥ ( प्राप्त्वहतीयाः ) ।

### अथ यदधिकारः ।

प्राग्निताद्यत् ४।४।७५ तस्मै हितमित्यतः प्राग् यदधिक्रियते ॥ तद्वदति  
रथयुगप्रासङ्गम् ४।४।७६ रथं वहति रथ्यः । दुग्धः । प्रासङ्ग्यः ॥ पुरो यद्-  
कौ ४।४।७७ “हलि च” इति दीर्घे प्राप्ते । न भकुर्हुराम् ८।२।७६ मस्य कुर्ह-  
व्ये

चतुर्थे ठ् प्रत्ययो भवति, यत्तत्प्राप्तमासमर्थं प्रहर्षं वेत्तन्नवति । प्रह्वयेत्येतेति  
प्रहरणमप्युच्यते । अतिः । अतिः प्रहरणमस्य ‘आसिकः’ इत्यत्र “प्रहरणम्” इति  
ठकि, ठस्येकादेशे सुपो लुकि, भवे, अलोपे, संयोगे, वृद्धौ विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः ।  
आनुष्कः । अनुः प्रहरणमस्य ‘आनुष्कः’ इत्यत्र “प्रहरणम्” इति ठकि, कगते, सुपो  
लुकि, “इसुसुक्तान्तात्” इति ठस्य क आदेशे “हृणः कः” इति विसर्गस्य पूर्व  
“किंति च” इत्याद्यप्यो वृद्धौ, संयोगे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । शीलम् । तदस्येत्येव ।  
तदिति प्रथमासमर्थान्दस्येति चतुर्थे ठक् प्रत्ययो भवति, यत्तत्प्राप्तमासमर्थं शीलं  
वेत्तन्नवति । शीलं स्वभावः । भक्षणक्रिया तद्विशेषणं च शीलं तद्विस्तृप्ता-  
कसर्जयति । आपूपिकः । अत्र अपूपकवाच्यमान्तात् “शीलम्” इति ठकि,  
ठस्येकादेशे, आद्यप्यो वृद्धिः, शेषं पूर्ववत् । निकटे वसति । निकटस्य वात्सल्यमीसमर्थ-  
तस्य शीलस्येत्येति अत्र ठक् प्रत्ययो भवति । यस्य शाश्वतो भिक्षुवासो निश्चितस्तथा  
विधिः । आरभ्यकेन भिक्षुना ग्रामात्कीले वस्तव्यमिति शास्त्रम् । नैकष्टिको भिक्षुः ।  
अत्र “निकटे वसति” इति ठकि, ठस्येकादेशे, आद्यप्यो वृद्धिः, शेषं पूर्ववत् ।  
इति ठगधिकारः ॥ ( प्राप्त्वहतीयाः ) ।

प्राग्निताद्यत् । हितस्य हितः तद्वदित्युत्तरः । तदाह—तस्मै हितमिति । तद्वदति रथ ।  
रथादिप्रह्वयस्य द्वितीयान्तात् रथ युग प्रासङ्ग इति त्रयात् वत्स्यादित्यर्थः । रथ्यः ।  
रथं वहति इत्यत्र “तद्वदति रथयुगप्रासङ्गम्” इति वति, तलोपे सुपो लुकि “वधि  
अम्” इति भवे “वस्येति च” इति अकारलोपे विभक्तिकार्यं च कृते ‘रथ्यः’ इति  
सिद्धम् । एवं युगं वहति ‘दुग्धः’ । प्रासङ्गं वहति ‘प्रासङ्ग्यः’ इत्यत्र बोध्यम् । पुरो  
यद्कौ । पुरं शब्दाद्द्वितीयान्तात् वहतीत्यर्थे यत् ठक् च स्यादित्यर्थः । न भकुर्हुराम् ।  
“बोध्यधायाः” इत्यतः उपधाया इति दीर्घ इति आनुवर्तते । तदाह—प्रत्येत्यादिना ।  
पुर्यः । पुरं वहति ‘पुर्यः’ इत्यत्र “पुरो यद्कौ” इति वति, “हलि च” इत्याद्य-  
धीर्घत्वे प्राप्ते “न भकुर्हुराम्” इति भवत् दीर्घाभावे विभक्तिकार्यं च कृते ‘पुर्यः’  
इति सिद्धम् । ठकि, “आद्यप्येतीति” इति ठस्य स्थाने इकादेशे “किंति च” इति

रोषीयवाया इको दीर्घो न स्यात् । कुर्वः, धौरेकः ॥ नौवयोधर्मविषमूलमूल-  
सीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाभ्यसमसमितस्समितेषु ४।४।१ नान्य  
तार्य नान्यं जलम् । वयसा तुल्यो वयस्यः । धर्मेण प्राप्यं धर्मम् । निषेण बन्धो  
विष्यः । मूलेन आनाभ्यं मूल्यम् । मूलेन समो मूल्यः । सीतया समितं सीत्वं सेत्रम् ।  
तुलया समितं तुल्यम् ॥ तत्र साधुः ४।४।६ अग्रे साधुः अग्रयः । सामसु साधुः  
सामन्यः । 'ये चाभावकर्मणोः' इति प्रकृतिभावः । कर्मण्यः । शरण्यः । सभाया  
यः ४।४।१०५ सभ्यः । इति यतोऽवधिः । ( प्राग्बितीयाः ) ।

### अथ छयतोरधिकारः ।

प्राक् क्रीताच्छुः ५।१।१ तेन क्रीतमित्वतः प्राक् छोऽधिक्रियते ॥ उगवा-  
दिभ्यो यत् ५।१।२। प्राक् क्रीतादित्येव । उवर्णान्ताद्वादिभ्यश्च यत् स्याच्छस्या-

बृद्धौ विभक्तिकार्यं च 'धौरेकः' इति सिद्धम् । नौवयोधर्मं । नौ, वयस्, धर्म, विष, मूल,  
मूल, सीता, तुला एभ्योऽष्टम्यः क्रमात् तार्यं, तुल्ये, प्राप्ये, वध्या, आनाभ्ये, समे,  
समिते, समिते चार्यं यत्स्यादित्यर्थः । नान्यम् । नावा तार्यं 'नान्यम्' इत्यत्र 'नौवयो-  
धर्मविषमूल' इत्यादिना वति "वान्तो षि प्रत्यये" इत्यावादेशे विभक्तिकार्यं च  
'नान्यम्'—जलम् । वयस्यः । अत्र तुल्येऽर्थे प्रकृतसूत्रेण चत् । शेषं सुगमम् । तत्र  
साधुः । तत्रेति सप्तमीसमर्थोत्साधुरित्येतस्मिन्नर्थे यत्प्रत्ययो भवति । साधुरिह प्रथमो  
योग्यो वा गृह्यते, नोपकारकः । अग्रयः । अग्रे साधुः 'अग्र्यः' इत्यत्र "तत्र साधुः"  
इति वति, 'अत्वे, अलोपे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । सामन्यः । सामसु साधुः 'सामन्यः'  
इत्यत्र "तत्र साधुः" इति वति, तलोपे सुपो लुकि, अत्वे "नस्तद्धिते" इति छिद्ये  
प्राप्ते "ये चाभावकर्मणोः" इति प्रकृतिभावे संयोगे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः ।  
एवं कर्मणि साधुः—'कर्मण्यः' शरण्ये साधुः 'शरण्यः' इति बोध्यम् । सभाया य इति ।  
सभासब्दाद् यः प्रत्ययो भवति "तत्र साधुः" इत्येतस्मिन्नर्थे । यतोऽपवादः । स्वो  
विशेषः । सभ्यः सभायां साधुः 'सभ्यः' इत्यत्र "सभाया यः" इति यत्प्रत्यये सुपो  
लुकि, अत्वे अलोपे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । इति यतोऽवधिः । ( प्राग्बितीयाः ) ।

प्राक्क्रीताच्छुः । क्रीतशब्दस्तद्धितसूत्रपरः । तदाह—तेन क्रीतमिति । "तेन क्रीतम्"  
इत्यतः प्राक् येषु सूत्रेषु अर्था एव निर्देक्ष्यन्ते न तु प्रत्ययाः, तेषु छ इत्युपस्थितं भव-  
तीति यावत् । उगवादिभ्यो यत् । उग्व गवाद्यश्च इति द्वन्द्वात्पञ्चमी । उवर्णान्तादिति ।  
प्रातिपदिकविशेषणत्वात् तदन्तविधिः । "उगिद्वर्णग्रहणवर्जम्" इत्युक्तेः प्रत्ययविधा-  
वपि तदन्तविधिरिति भावः । शङ्क्यम् । शङ्क्ये हितं 'शङ्क्यम्' इत्यत्र "प्राक् क्रीता-  
च्छुः" इति छे प्राप्तेः तं सम्बाध्य "उगवादिभ्यो यत्" इति वति, तगते सुपो लुकि,

पवादः । शङ्खे हितं शङ्ख्यं दाह । गव्यम् । ( नामि नमं च ) । नम्योऽहः ।  
 नम्यमजनम् ॥ तस्मै हितम् ५।१।५। वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोषुक् ॥ शरीरा-  
 वयवाद्यत् ५।१।६। दन्त्यम् । कण्ठ्यम् । नस्यम् ॥ आत्मन्विश्वजनभोगोत्तर-  
 पदात् खः ५।१।६। आत्माध्वानौ खे ६।४।१६६। एतौ खे प्रकृत्या स्तः । आत्मने  
 हितम् आत्मनीनम् । विशजनीनम् ॥ मातृभोगीणः । छयतोः पूर्णोऽवधिः ।  
 ( प्राग्घतीयाः ) ॥

“वचि भम्” इति भस्वे भस्वात् “ओर्गुणः” इति गुणे “वान्तो वि प्रत्यये” इत्यवादेशे  
 विभक्तिकार्यं च कृते ‘सङ्ख्यम्’ इति । एवं गवे हि ‘गव्यम्’ इति । अत्र यति परे  
 “वान्तो वि प्रत्यये” इति वान्तादेशो बोध्यः । नामि नमं चेति । नामिसब्दो यत्  
 कृते नमादेशं चेत्यर्थः । नम्योऽहः । नामये हितम् ‘नम्यः’ इत्यत्र “उगवादिभ्यो  
 ऋत्” इति यति, सुपो लुकि, “नामिनमं च” इति नामेर्नमादेशे भस्वे, अलोपे विभ-  
 क्तिकार्यं च ‘नम्योऽहः’ इति । एवं नम्यम्-अजनम् । तस्मै हितम् । तस्मै इति चतुर्थी-  
 सम्बन्धोदितमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । वत्सीयो गोषुक् । वत्सेभ्यो  
 हितम् ‘वत्सीयः’ इत्यत्र “तस्मै हितम्” इति छे सुपो लुकि, “आयनेयीनीयिभः” इति  
 अस्व स्थाने ईनादेशे, भस्वे अलोपे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । शरीरावयवाद्यत् । शरीरं  
 आभिकायः । शरीरावयववाचिनः प्रातिपदिकाद्यप्रत्ययो भवति तस्मै हितमित्येतस्मिन्  
 विषये । छस्यापवादः । दन्त्यम् । दन्तेभ्यो हितम् ‘दन्त्यम्’ इत्यत्र “शरीरावयवाद्यत्”  
 इति यति तलोपे भस्वे अलोपे विभक्तिकार्यं च ‘दन्त्यम्’ इति भवति । एवं कण्ठ्यम् ।  
 नस्यम् । नासिकार्यं हितम् ‘नस्यम्’ इत्यत्र “शरीरावयवाद्यत्” इति यति “पदञ्चोमास्”  
 इति नासिकायाः स्थाने नसादेशे शेषं पूर्ववत् । आत्मन्विश्वजन । आत्मन्, विश्वजन,  
 भोगोत्तरपद एभ्यो हितमित्यर्थः खः स्यादित्यर्थः । छस्यापवादः । आत्माध्वानौ खे । प्रक-  
 र्त्वा स्त इति । “प्रकृत्यैकाच्” इत्यतस्तदनुष्टुप्चेरिति भावः । आत्मनीनम् । आत्मने हितम्  
 ‘आत्मनीनम्’ इत्यत्र “आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदास्तः” इति खे, “आयनेयीनीयिभः”  
 इति अस्व स्थाने ईनादेशे भस्वे, भस्वाद् “नस्तद्धिते” इति टेलोपे प्राप्ते “आत्माध्वानौ  
 खे” इति प्रकृतिभावे संयोगे विभक्तिकार्यं च कृते तत्सिद्धिः । विशजनाय हितम् विश-  
 जनीनम्, अत्र प्रकृतसूत्रेण खे, स्वस्य ईनादेशः । मातृभोगीणः । मातृभोगः शरीरं तस्मै  
 हितम्—मातृभोगाय हितम् इत्यत्र “आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः” इति खे  
 “आयनेयीनीयिभः फडसङ्घां प्रत्ययादीनाम्” इति स्वस्य ईनादेशे भस्वे अलोपे संयोगे  
 तस्य भस्वे विभक्तिकार्यं च कृते ‘मातृभोगीणः’ इति सिद्धम् ।

इति छयतोः पूर्णोऽवधिः । ( प्राग्घतीयाः ) ।

## अथ ठञचिकारः ।

प्राग्वतेष्टञ् ५१११८ तेन तुल्यमिति वति वक्ष्यति, ततः प्राक् ठञचिक्रियते ॥  
तेन क्रीतम् ५११३७ सप्तत्या क्रीतं साप्ततिकम् । प्रास्थिकम् ॥ तस्येश्वरः  
५११४२। सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणभौ स्तः । अनुशक्तिकादीनां च ७११२७  
सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः । पार्थिवः ॥ पङ्क्तिर्विंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाश-  
त्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् ५११५६। एते रुदिशब्दा निपात्यन्ते ॥ तदर्हति

प्राग्वतेष्टञ् । वतिशब्दस्तद्वदितसूत्रपरः । तदाह—तेन तुल्यमिति । “तेन तुल्यम्”  
इत्यतः प्राक् येषु सूत्रेषु अर्था एव निर्दिश्यन्ते न तु प्रत्ययाः, तत्र ठञित्युपतिष्ठत इति  
चाकत् । तेन क्रीतम् । ठञादयस्त्रयोदश प्रत्ययाः प्रकृतास्तेषामितः प्रभृति समर्थविभ-  
क्तयः, अर्थाश्च निर्दिश्यन्ते । तेनेति तृतीयासमर्थात् क्रीतमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं  
प्रत्ययो भवति । साप्ततिकम् । अत्र “तेन क्रीतम्” इति ठञि, जलोपे सुपो लुकि “ठस्ये-  
कः” इति ठस्येकादेशे भवे “यस्येति च” इति इकारलोपे, “तद्धितेष्वचामादेः” इति  
बृहौ विभक्तिकार्यं च कृते ‘साप्ततिकम्’ इति सिद्धम् । प्रास्थिकम् । प्रस्थेन क्रीतमिति  
विग्रहः । प्रकृतसूत्रेण ठञि शेषं पूर्ववत् । तस्येश्वरः । तस्येश्वरः इत्यर्थे षष्ठ्यन्तात् तत्र  
विदितः इत्यर्थे तु सप्तम्यन्तात् अणञौ स्त इत्यर्थः । अत्र “सर्वभूमिपृथिवीभ्याम्”  
इत्यनेनेति भावः । अनुशक्तिकादीनाञ्च । शैषिके व्याख्यातम् । सार्वभौमः । सर्वभूमेरी-  
श्वरः ‘सार्वभौमः’ इत्यत्र “तस्येश्वरः” इत्यणि जगते सुपो लुकि भवे इलोपे “अनु-  
शक्तिकादीनाञ्च” इत्युभयपदबृहौ, संयोगे विभक्तिकार्यं च कृते “सार्वभौमः” इति  
सिध्यति । एवं पृथिव्याः ईश्वरः ‘पार्थिव’ इत्यत्र बोध्यम् । पङ्क्तिर्विंशति । रुदिशब्दा  
निपात्यन्ते इति । तदस्य परिमाणमित्यर्थे इति शेषः । पञ्च पादाः परिमाणमस्येत्य-  
यञ्चानुशब्दात् तिप्रत्ययः प्रकृतेष्टिलोपः, चकारस्य कुत्वम्, अनुस्वारपरसवर्णौ, पङ्क्तिरिति  
रूपम् । दशानां वर्गः दशत् । “पञ्चदशतौ वर्गौ वा” इति वक्ष्यते । द्वौ दशतः परिमा-  
णमस्य सङ्घस्य इति ‘विंशतिः’ शक्तिप्रत्ययः प्रकृतेर्विन् भावः अनुस्वारश्च । त्रयो  
परिमाणमस्य ‘त्रिंशत्’ । त्रयाणां दशतां त्रिन् भावः शब्द प्रत्ययः । चत्वारो दशतः  
परिमाणमस्य सङ्घस्येति ‘चत्वारिंशत्’ । सप्तत्ययः प्रकृतेः चत्वारिंशद्भावश्च । पञ्च दशतः  
परिमाणमस्य सङ्घस्य ‘पञ्चाशत्’ शप्तत्ययः प्रकृतेः पञ्चादेशः । षट् दशतः परिमाणम-  
स्य सङ्घस्य ‘षष्टिः’ । तिप्रत्ययः प्रकृतेः षष् अश्वाभावश्च । सप्त दशतः परिमाणमस्य  
सङ्घस्य ‘सप्ततिः’ तिप्रत्ययः, प्रकृतेः सप्तादेशः । अष्टौ दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य  
‘अशीतिः’ तिप्रत्ययः, प्रकृतेः अशी इत्यादेशः । नव दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य  
‘नवतिः’ तिप्रत्ययः प्रकृतेः नवादेशः । दश दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य ‘शतम्’  
सप्तत्ययः प्रकृतेः श्लादेशश्च । एतत्सर्वं भाष्ये स्पष्टम् । ‘एतान्यन्युत्पन्नप्रातिपदिकानि’  
इति तु भाष्यनिष्कर्षः । तदर्हति । अर्हतीत्यस्य बोधो भवतीत्यर्थे अकर्मकत्वात् ।

५।१।६३। लब्धं योग्यो भवतीत्यर्थे द्वितीयान्ताद्भादवः स्युः । श्वेतच्छत्रम-  
 र्हति श्वेतच्छत्रिकः । दण्डादिभ्यो यत् ५।१।६६। एभ्यो वत् स्यात् । दण्डमर्हति  
 दण्डयः । अर्थः । वध्यः । तेन निर्वृत्तम् ५।१।७६। अहो निर्वृत्तम् आहि-  
 कम् ॥ इति ठवोऽवधिः ॥ ( प्राग्वतीयाः ) ।

### अथ नञ्स्नानधिकारः ।

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५।१।११५। ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवत् अधीते ।  
 क्रिया चेदिति किम् ! गुणतुल्ये माभूत्, पुत्रेण तुल्यः स्थूलः । तत्र तस्येव ५।१।  
 ११६। मथुरायामिव मथुरावत् झुप्ने प्राकारः । चैत्रस्येव चैत्रवन्मैत्रस्य गावः ॥  
 तस्य भावस्त्वतलौ ५।१।११६ प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः । गोर्भावो गोत्वम्,

द्वितीया न स्यात् । इष्यते तु द्वितीयान्तादेव प्रत्ययः । तत्राह—त्रयुमिति । श्वेतच्छत्रि-  
 कः । श्वेतच्छत्रमर्हति 'श्वेतच्छत्रिकः' इत्यत्र "तदर्हति" इति ठञि, जगते सुपो लुकि,  
 ठस्येकादेशे भवे अलोपे आद्यचो घृदौ विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । दण्डादिभ्यः । अर्ह-  
 तीत्यर्थे द्वितीयान्तादण्डादिगणपठिताद्यत् स्यादित्यर्थः । दण्डयः । दण्डमर्हति 'दण्डयः'  
 इत्यत्र "दण्डादिभ्यो यत्" इति यति तगते सुपो लुकि, भवे अलोपे विभक्तिकार्यं  
 च तत्सिद्धिः । अर्थ इति । मूल्यं पूजाविधिं वार्हतीत्यर्थः । 'मूल्ये पूजाविधादर्थः' इत्य-  
 भावः । वध्य इति । वध्यमर्हतीत्यर्थः । तेन निर्वृत्तम् । तेनेति तृतीयासमर्थात्कालवाचिनः  
 प्रातिपदिकाभिर्धुत्तमित्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । आहिकम् । अहो निर्वृत्तम्  
 'आहिकम्' इत्यत्र "तेन निर्वृत्तम्" इति ठञि, अलोपे, "ठस्येकः" इति ठस्येकादेशे  
 सत्वे "नस्तद्धिते" इति टिलोपे प्राप्ते "अहट्खोरेव" इति नियमात् टिलोपे वारिते  
 ङलोपे आद्यचो घृदौ विभक्तिकार्यं च कृते 'आहिकम्' इति सिद्धम् ।

इति ठवोऽवधिः । ( प्राग्वतीयाः ) ।

तेन तुल्यम् । तेनेति तृतीयासमर्थात्तुल्यमित्यर्थे वतिः प्रत्ययो भवति । यत्तुल्यं  
 क्रिया चेत्सा भवति । ब्राह्मणवत् । ब्राह्मणेन तुल्यं 'ब्राह्मणवत्' इत्यत्र "तेन तुल्यं  
 क्रिया चेद्वतिः" इति वतौ, इलोपे, सुपो लुकि, "कृत्तद्धितसमासाच्च" इति प्रातिप-  
 दिकत्वे सौ समागते "तसिद्धादिष्वाङ्त्वसुचः" इति अव्ययत्वे "अव्ययादाप्सुपः"  
 इति सोर्लुकि च 'ब्राह्मणवत्' इति भवति । तत्र तस्येवेति । तत्रेवेति तस्येवेति चार्थे  
 तत्सम्यन्तात् षष्ठ्यन्ताच्च वतिः स्यादित्यर्थः । मथुरावत् । मथुरायामिव 'मथुरावत्'  
 अत्र "तत्र तस्येव" इति वतौ इलोपे सुपो लुकि विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । चैत्रवत् ।  
 चैत्र षष्ठ्यन्ताद्वतिर्बोधा । तस्य भावः । षष्ठ्यन्ताद्भावं इत्यर्थं स्वतलौ स्त इत्यर्थः ।  
 प्रकृतिजन्यबोधे इति । स्वतलभावनौ भव उत्पत्त्येते तस्मात्प्रकृतिभूतस्यैव व्यापित्वेति

गोता । त्वान्तं क्लीबम् । तत्तन्तं त्रिवाम् ॥ आ च स्वात् ५१११२०। वृद्धणस्त्व  
इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियेते । आवादैः सह समावेशार्थमिदम् । चकारो नञ्स्वन्-  
भ्यामपि समावेशार्थः । द्विधाः भावः स्त्रैणम्, स्त्रीत्वम्, स्त्रीता । पौंसम्, पुंस्त्वम्,  
पुंस्ता ॥ पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५१११२२। वावचनमणादिसमावेशार्थम् । र  
ऋतो हलादेर्लघोः ६।४।१६१ हलादेर्लघोर्ऋकारस्य रः स्यात् इष्टमेयस्सु परतः ॥  
टेः ६।४।१५५। भस्व टेलोपः स्यात् इष्टमेयस्सु । पृथुमृदुभृशकृशदृढगरिवृढानभे  
रत्वम् । पृथोर्भावः प्रथिमा, पार्थवम् । अदिमा, मार्दवम् ॥ वर्णदृढादिभ्यः व्यञ्ज

जायमाने यत् जात्यादिकं विशेषणतया भासते तद्व्यक्तिविशेषण भावसम्बन्धेन विवचि-  
तमित्यर्थः । गोत्वम् । गोता । गोर्भावः इत्यर्थे “तस्य भावस्त्वतलौ” इति त्वे विभक्ति-  
कार्ये च ‘गोत्वम्’ इति । तल्लि “अजाघतष्टाप” इति टापि, विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः ।  
अत्र त्वात् । त्वतलावित्यनुवर्तते । आङ्मर्यादायाम् । तदाह—वृद्धणस्त्व इत्यतः  
प्रामिति । ननु “तस्य भावस्त्वतलौ” इत्यतः त्वतलोक्ततरसूत्रेष्वनुवृत्त्यैव सिद्धे  
अधिकारोऽयं व्यर्थ इत्यत आह—अत्रादेरिति । “पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा” इत्यादिबिम्बि-  
तैर्मिन्नज्वादिभिरपवादैः समुच्चयार्थमित्यर्थः । स्त्रैणम् । स्त्रियो भावः ‘स्त्रेणम्’ इत्यत्र  
“तस्य भावस्त्वतलौ” इति त्वतलो प्राप्तौ तौ सम्बाध्य “स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्वन्ञौ”  
इति नञि वृद्धौ विभक्तिकार्ये च ‘स्त्रैणम्’ इति । पदे “आ चत्वात्” इति त्वतलो  
प्राप्तौ—क्लीबम् । क्लीता । एवमेव—गौस्त्वम्, पुंस्त्वम्, पुंस्ता इति । पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ।  
“तस्य भावः” इत्यनुवर्तते । पृथ्वादिभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्यो भावे इमनिज्वा स्यादित्यर्थः ।  
वावचनमणादिसमावेशार्थमिति । पृथुमृदुभृशकृशदिषु “इमन्तात्च लघुपूर्वात्” इत्यत्र,  
चण्डलसृष्टादिषु गुणवचनलघुव्यञ्जः, बालकस्तादिषु वयोवचनलघुव्यञ्जः अत्र भौत-  
मिन्नस्य समावेशार्थमित्यर्थः । र कता इत्यादेः । र इति अवगमन्तम् । इष्टमेयस्त्विति  
सैकपूरणम् । “पुरिष्टमेयस्सु” इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । “अङ्गस्य” इत्यधिकृतम् ।  
हलादेरङ्गस्य लघोः ऋकारस्य र इति रेफाकारसंज्ञात् आदेशः स्यात्, इष्टनि इमनि  
ईदृशे च परे इत्यर्थः । टेः । इष्टमेयस्सु इत्यनुवर्तते “अल्लोरोऽयः” इत्यतः लोपः  
इति च । तदाह—टेर्लोपः स्यादिष्टमेयस्त्विति । प्रथिमा । अत्र “पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा”  
इतीमनिचि, इचो लोपे ‘पृथु इमन्’ इति जाते “रऋतो हलादेर्लघोः” इति ऋका-  
रस्य स्थाने रेफादेशे भत्वे भत्वात् “टेः” इति यकारोच्चरवर्णुकाङ्गलोपे संयोगे ‘प्रथि-  
मन्’ इति जाते, तद्विधान्तस्त्रोत्प्रातिपदिकत्वे सौ, सोर्लोपे, उपधादीर्घे नलोपे च वृद्धौ  
‘प्रथिमा’ इति रूपम् । पदे—अणि सुचो हुकि, आचचो वृद्धौ, रपरे च भत्वात् “अथि-  
मन्” इति गुणे अवादेशे विभक्तिकार्ये च ‘पार्थवम्’ इति । एवम् मृदोर्भावः—अदिमा,  
मार्दवम् । इत्यपि बोध्यम् । वर्णदृढादिभ्यः व्यञ्ज । षष्ठ्यन्तेभ्यो वर्णव्यञ्जिभ्यो हलादि-  
व्यञ्ज भावे व्यञ्ज च स्यादित्यर्थः । गुणवचनवादेन सिद्धे इमनिज्वा वचनम् । लो



५।१।१२३। चादिमनिच् । शौक्यम्, शुभिलम् । दाढ्यम्, द्रढिम् ॥ मुखवच-  
नब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५।१।१२४। चात् भावे । जडस्य भावः कर्म वा  
जाड्यम् । मूढस्य भावः कर्म वा मौढ्यम् । ब्राह्मण्यम् । आकृतिगणोऽयम् ॥ सख्यु-  
र्यः ५।१।१२६। सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम् ॥ कपिज्ञात्योर्ढक् ५।१।१२७।  
कापेयम् । ज्ञातेयम् ॥ पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ५।१।१२८। सैनपत्यम् ।  
पौरोहित्यम् । इति त्वत्तोरधिकारः । इति नञ्स्नञोरधिकारः ॥

### अथ भवनाद्यर्थकाः ।

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ५।२।१। भवन्त्यस्मिन्निति भवनम् । मुद्राणां  
भवनं क्षेत्रं मौद्गीनम् ॥ व्रीहिशाख्योर्ढक् ५।२।२। व्रहेयम् । शाखेयम् ॥ हैय-

क्षीपर्थः । शौक्यम् । शुक्लस्य भावः शौक्यम् इत्यत्र “वर्णवृद्धादिभ्यः ष्यञ्” इति  
प्यञि “चः प्रत्ययस्य” इति पत्येत्संज्ञायां लोपे च अलोपे भत्वे अलोपे आद्यचो वृद्धौ  
विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । एवं इमनिचि—शुभिलम् । एवं दाढ्यम्, द्रढिम् । इत्य-  
त्रापि क्षेत्रम् । गुणवचन । गुणोपसर्जनद्रव्यवाचिभ्यो ब्राह्मणादिभ्यश्च षष्ठ्यन्तेभ्यो  
भावे कर्मणि च अर्थे ष्यञित्यर्थः । जाड्यम् । जडस्य भावः कर्म वा ‘जाड्यम्’ इत्यत्र  
“मुखवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च” इति प्यञि षष्ठ्यलोपे भत्वे अलोपे वृद्धौ विभ-  
क्तिकार्यं च ‘जाड्यम्’ इति । एवं मौढ्यम्, ब्राह्मण्यम् । सख्युर्ः । सखिसन्दात्  
भवनन्तात् भावकर्मणोर्यत्स्यादित्यर्थः । सख्यम् । प्रकृतसूत्रेण यः । कपिज्ञात्योर्ढक् ।  
कापेयर्थे षष्ठी । आभ्यां षष्ठ्यन्ताभ्यां भावकर्मणोः ढगित्यर्थः । कापेयम् । कपेर्भावः  
कर्म वा ‘कापेयम्’ अत्र षष्ठ्यन्तात् प्रकृतसूत्रेण ढकि सुपो लुकि, कगते “आयनेयी-  
नीनिचः” इति ढस्य स्थाने एयादेशे भत्वे अलोपे “किति च” इति आद्यचो वृद्धौ  
विभक्तिकार्यं च कृते ‘कापेयम्’ इति सिद्धम् । एवम्—ज्ञातेयम् । पत्यन्त । पत्यन्तेभ्यः  
पुरोहितादिभ्यश्च षष्ठ्यन्तेभ्यो भावकर्मणोर्यत्स्यादित्यर्थः । सैनपत्यम् । सेनापतेर्भावः  
कर्म वा ‘सैनपत्यम्’ इत्यत्र “पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्” इति यकि, भत्वे ङलोपे  
“किति च” इति वृद्धौ संयोगे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धम् । एवं, पौरोहित्यम् ।

इति नञ्स्नञोरधिकारः ।

धान्यानां भवने । धान्यवाचिभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्यो भवने क्षेत्रेऽर्थे खञित्यर्थः ।  
मौद्गीनम् । मुद्रासन्दात्षष्ठ्यन्तात् खञि, खस्य ईनादेशे, आद्यचो वृद्धिः । व्रीहिशा-  
ख्योर्ढक् । व्रीहिशाखात् खालिसन्दाच्च षष्ठ्यन्ताद्भवने क्षेत्रेऽर्थे ढगित्यर्थः । खञोऽ-  
पवादः । व्रहेयम् । व्रीहिणां भवनं क्षेत्रम् ‘व्रहेयम्’ इत्यत्र “व्रीहिशाख्योर्ढक्” इति ढकि,  
“आयनेयीनी०” इति ढस्य स्थाने एयादेशे भत्वे अकारलोपे ‘किति च’ इति वृद्धौ  
विभक्तिकार्यं च कृते तत्सिद्धिः । एवं शाखीनां भवनं क्षेत्रम् ‘शाखेयम्’ इत्यत्र षोडशम् ।

ज्ञवीनं संज्ञायाम् ५।२।२ः। ह्योगोदोहशब्दस्य ह्रियङ्गुदेशः स्यात् विकारार्थे खञ्  
निपात्यते । दुह्यत इति दोहः क्षीरम् । ह्योगोदोहस्य विकारः ह्यङ्गवीनं नवनीतम् ।  
तदस्य सञ्ज्ञातं तारकादिभ्य इतच् ५।२।३६। तारकाः सञ्ज्ञाता अस्य तारकितं  
नमः । पण्डितः । आकृतिगणोऽयम् ॥ प्रमाणे द्वयसज्जदध्वजमात्रचः ५।२।३७-  
तदस्येत्यनुवर्तते । ऊरु प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम् । ऊरुदध्वजम् । ऊरुमात्रम् । यत्तदेतेभ्यः  
परिमाणे वतुप् ५।२।३६। यत् परिमाणमस्य यावान् । तावान् । एतावान् ॥ किमि-  
दंभ्यां वो घः ५।२।४०। आभ्यां वतुप् स्यात् वकारस्य घञ् । इदं किमोरोशुकी  
६।३।१६०। इदं वतुप् इदम् ईशु किमः की । कियान् । इयान् ॥ सङ्ख्यायां अवयवे

ह्यङ्गवीनम् । ह्यङ्गु इत्यङ्गव्यर्थः पूर्वेष्वित्यर्थः । तत्रोत्पन्नो गोदोहः—गोपयः, ह्योगोदोहः ।  
तस्मात् पृथ्वन्तात् विकारार्थे खञि ईनादेशे प्रकृतेः ह्रियङ्गु इत्यादेशे ओर्गुणे अवयवे  
आदिबृद्धौ ह्यङ्गवीनमिति भवति, संज्ञायाम् इति भाष्यम् । तदाह—ह्योगोदोहस्येत्य-  
दिना । तदस्य । प्रथमान्तेभ्यस्तारकादिभ्यः अस्य तत्सञ्ज्ञातमित्यर्थः इतच् स्यादित्यर्थः ।  
तारकितं नमः । तारका अस्य सञ्ज्ञाताः इति विग्रहे तारकाशब्दात् प्रथमान्तात्  
“तदस्य सञ्ज्ञातं तारकादिभ्य इतच्” इति इतचि, चगते सुपो लुकि, भत्वे अलोपे  
संयोगे विभक्तिकार्यं च तरिसङ्घिः । एवं पण्डा—बुद्धिः अस्य सञ्ज्ञाता असौ ‘पण्डितः’  
इत्यत्र बोध्यम् । प्रमाणे । अनुवर्तत इति । ततश्च अस्य प्रमेयस्य तत्परिमाणमित्यर्थः-  
प्रमाणे, विद्यमानात्प्रथमान्तात् द्वयसच्, दध्वज्, मात्रच् एते प्रत्ययाः स्युः । ऊरुद्व-  
यसम् । ऊरु प्रमाणमस्य ‘ऊरुद्वयसम्’ इत्यत्र “प्रमाणे द्वयसज्जदध्वजमात्रचः” इति द्व-  
यसचि, चगते सुपो लुकि, विभक्तिकार्यं च कृते “ऊरुद्वयसम्” इति । एवं दध्वजि-  
कदध्वजम् । मात्रचि—ऊरुमात्रम्, इति बोध्यम् । यत्तदेतेभ्यः । तदस्येत्यनुवर्तते । अस्य  
तत्परिमाणमित्यर्थः परिमाणवाचिभ्यः प्रथमान्तेभ्यः यद् तद् एतद् एभ्यः वतुप्  
स्यादित्यर्थः । यावान् । यत् परिमाणमस्य ‘यावान्’ इत्यत्र “यत्तदेतेभ्यः  
वतुप्” इति वतुपि उपो लोपे सुपो लुकि, ‘वत् वत्’ इति जाते “आ सर्वनाम्नः” इति  
तस्य आत्वे सर्वर्णदीर्घत्वे प्रातिपदिकत्वात्सौ “अत्वसन्तस्य चाधातोः” इत्युप-  
दीर्घत्वे “उगिदचासु” इति जुमि, उमि गते सोल्लोपि, “संयोगान्तस्य” इति तल्लोपे च  
कृते ‘यावान्’ इति रूपम् । एवं तत्परिमाणमस्येति तावान् । एतत्परिमाणमस्येति  
‘एतावान्’ इत्यपि बोध्यम् । किमिदंभ्यां वो घः । तदस्य इति, परिमाणे वतुबिति च-  
वर्तते । तदाह—आभ्यां वतुप् स्यादिति । आभ्यां प्रथमान्ताभ्याम् अस्य तत्परिमाण-  
मित्यर्थः वतुप् स्यादित्यर्थः । वस्य च घ इति । वकारस्य वकार इत्यर्थः । इदं किमोरोशुकी  
इदं की इति हे पदे । “इदं वतुप्” इति पूर्वसूत्रमनुवर्तते । तदाह—इदं वतुप्  
कियान् । किमपरिमाणमस्य ‘कियान्’ इत्यत्र “किमिदंभ्यां वो घः” इति वतुपि, वत्



अस्य तिशब्दस्य लोपः स्यात् इति परे । विंशः । असंख्यादेः किम् ? एकादशः । षट्कतिकतिपयचतुरां शुक् १।२।११। एषां थुगामः स्यादुटि । षणां पूरणः षष्ठः । कतिथः । कतिपयशब्दस्यासंख्यात्वेऽप्यत एव ज्ञापकादुट् । कतिपयथः । चतुर्यः । द्वेस्तीयः १।२।१४। द्योऽपवादः । द्वयोः पूरणो द्वितीयः ॥ त्रेः सम्प्रसारणं च १।२।१५। तृतीयः ॥ ओत्रियंश्छन्दोऽधीते १।२।८४। ओत्रियः । वेत्यनुद्वेष्टेऽन्तदसः ॥ पूर्वादिनिः १।२।८६। पूर्वं कृतमनेनेति पूर्वी । सपूर्वाच्च १।२।८७। कृतपूर्वी ।

स्माद्धोप इत्यनुवर्तते । तदाह—विंशतेर्भवेति । विंशः । विंशतीनां पूरणः विंशः इत्यत्र “तस्य पूरणे दट्” इति दटि, दट्बोलोपे सुपो लुकि, “विंशति अ” इति जाते “ति विंशतेर्दिति” इति तिलोपे भत्वादलोपे संयोगे विभक्तिकार्ये च “विंश” इति सिद्धम् । असंख्यादेः किमिति । एकादश इत्यत्र नान्तत्वेऽपि संख्यादित्वाच्च दट् । षट्कति । शुकि ककार इत् । उकार उच्चारणार्थः । कित्वादिन्त्यावयवः । षष्ठः । षणां पूरणः ‘षष्ठः’ इत्यत्र “तस्य पूरणे दट्” इति दटि, अनुबन्धलोपे सुपो लुकि, ‘षष् अ’ इति मूते “षट्कतिकतिपयचतुरां शुक्” इति शुकि, उक् लोपे कित्वात् “आद्यन्तौ टकि-सौ” इत्यनेन अन्तावयवे जाते ‘षष् अ’ इति जाते ह्रस्वे संयोगे विभक्तिकार्ये च तस्मि-न्निः । कतिथः । कतीनां पूरणः ‘कतिथः’ इत्यत्र “तस्य पूरणे दट्” इति दटि, “षट्कति-कतिपयचतुरां शुक्” इत्यादि पूर्ववत् । एवं कतिपयानां पूरणः । कतिपयथः । चतुर्यः पूरणः—चतुर्यः, इति बोध्यम् । अत्र अपदान्तत्वाच्च रेफस्य विसर्गः । द्वेस्तीयः । द्वि-शब्दात् षष्ठ्यन्तात् पूरणे तीव्यप्रत्ययः स्यादित्यर्थः । द्वितीयः । अत्र दटं बाधित्वा तीव्य-प्रत्ययः । त्रेः सम्प्रसारणञ्च । त्रेस्तीयः स्यात् प्रकृतेः सम्प्रसारणञ्चेत्यर्थः । तृतीयः । त्रयणां पूरणः ‘तृतीयः’ इत्यत्र “त्रेः सम्प्रसारणञ्च” इति तीव्यप्रत्यये कृते त्रेदित्यस्य सम्प्रसारणेन ऋकारे जाते “सम्प्रसारणाच्च” इति हकारस्य पूर्वरूपत्वेन ऋकारे मूले विभक्तिकार्ये च कृते ‘तृतीयः’ इति सिद्धम् । ओत्रियंश्छन्दोऽधीते । द्वितीयान्ताच्च-शब्दात् अधीते इत्यर्थे घञ्, प्रकृतेः ओत्रादेशश्च निपात्यते । ओत्रियः । छन्दोऽधीते इत्यर्थे “ओत्रियंश्छन्दोऽधीते” इति सूत्रेण घञ्प्रत्यये छन्दस्थाने ओत्रादेशे अलोपे विभक्तिकार्ये च ‘ओत्रियः’ इति रूपम् । पूर्वादिनिः । अनेनेति प्रत्ययार्थः कर्ताऽनुवर्तते । न च क्रियामन्तरेण कर्ता सम्भवतीति यां काञ्चित् क्रियामन्त्यादौ प्रत्ययो विधेयः । पूर्वाद्नेन इत्यस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति । पूर्वी । पूर्वं ‘पूर्वी’ इत्यत्र “पूर्वादिनिः” इति इनि कृते ह्रलोपे सुपो लुकि, भवे अलोपे इति मूते तस्मात्सौ, ‘सौ च’ इत्युपधादीर्घत्वे हलङ्यादिना सलोपे नलोपे च तस्मिन् सपूर्वाच्च । विद्यमानं पूर्वं तस्मादिति सपूर्वं प्रातिपदिकम् । तस्य पूर्वशब्देन तद्वत्त्व-विधिः । सपूर्वात्प्रातिपदिकत्वं पूर्वशब्दान्ताद्भवेनेत्यस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति ।

इष्टादिभ्यश्च १।२।११ इष्टमनेन इष्टी। अचीती ॥ इति भवनायर्थकाः ।

### अथ मत्वर्थीयाः ।

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मनुष्य १।२।१४। गावोऽस्यास्मिन्वा सन्ति गोमान् ॥ तसौ मत्वर्थे १।४।१६ तान्तसान्तौ भसंज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे । “वसोः सम्प्रसारणम्” । विदुष्मान् । ( गुणवचनेभ्यो मनुषो लुगिष्ठः ) । शुक्लो गुणोऽस्या-

कृतपूर्वा । कृतं पूर्वमनेनेत्यत्र “सपूर्वाच्च” इति इनिः, शेषं पूर्ववत् । इष्टादिभ्यश्च । अने-  
नेत्येव । इष्टादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽनेनेत्यस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति । इष्टी । इष्ट-  
मनेन ‘इष्टी’ इत्यत्र “इष्टादिभ्यश्च” इति इनिः, शेषं पूर्ववत् । एवम् अधीतमनेन इति  
‘अचीती’ इत्यत्र बोध्यम् । इति भवनायर्थकाः ।

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मनुष्य । तदिति प्रथमासमर्थविभाक्तिः । अस्यास्मिन्निति प्रत्य-  
यार्थः । अस्तीति प्रकृतिक्रियेक्षणम् । इतिकरणो विवचार्यः । तदिति प्रथमासमर्थोद्-  
स्वेति षष्ठ्यर्थे अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे वा मनुष्य प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थमस्ति  
चेत्तद्वदिति । अस्त्वर्थोपाधिकं चेत्तद्वदतीत्यर्थः । “भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽस्ति-  
शायने । संसर्गेऽस्तिविवचारां भवन्ति मनुवादयः ।” भूम्नि तावत्-गोमान्, निन्दा-  
याम्-कुष्टी । प्रशंसायां रूपवती कन्या । नित्ययोगे-चीरिणो वृद्धाः । अतिशायने-  
उर्ध्वरिणी कन्या । संसर्गे-दण्डी । अस्तिविवचार्याम्-अस्तिमान् । गोमान् । गावोऽस्या-  
स्मिन्वा सन्ति ‘गोमान्’ इत्यत्र “तदस्यास्त्यस्मिन्निति मनुष्य” इति मनुषि, उपो लोपे  
‘मनुषो लुकि सौ च ‘गोमत् सु’ इति जाते “अत्वसन्तस्य” इत्युपधादीर्घत्वे “उमि-  
द्वयम्” इति नुमि उमो लोपे ‘गोमान् त सु’ इति जाते सोल्लोपे “संयोगान्तस्य लोपः”  
इति तलोपे च कृते ‘गोमान्’ इति सिद्धम् । तसौ मत्वर्थे । भमिति वर्तते । मत्वर्थप्र-  
त्ययचिसप्रातिपदिकविशेषणत्वात्तदन्तविधिमभिप्रेत्याह—तान्तसान्ताविति । तकार-  
सकारान्तावित्यर्थः । विदुष्मान् । विद्वांसः सन्ति अस्य अस्मिन् वा देशे ‘विदुष्मान्’  
इत्यत्र “तदस्यास्त्यस्मिन्निति मनुष्य” इति मनुषि उपो लोपे सुपो लुकि ‘विद्वस् मत्’  
इति जाते “तसौ मत्वर्थे” इति भत्वे भत्वाद् “वसोः सम्प्रसारणम्” इति सम्प्रसारणे  
“सम्प्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपत्वे ‘विदुस् मत्’ इति भूते प्रातिपदिकत्वात्सौ “उमि-  
द्वयम्” इति नुमि, उमो लोपे “अत्वसन्तस्य चाऽधातोः” इत्युपधादीर्घत्वे सोल्लोपे  
“आदेशप्रत्यययोः” इति सत्य भत्वे “संयोगान्तस्य लोपः” इति तलोपे च कृते ‘विदु-  
ष्मान्’ इति रूपम् । गुणवचनेभ्य इति । वार्तिकमिदम् । गुणे गुणवति च ये प्रसिद्धाः  
शुक्लादिशब्दाः त एव गृह्यन्ते, न तु रूपादिशब्दा अपि । तेन रूपं वक्षामित्यादि च  
भवति । शुक्रः पटः । शुक्रो गुणोऽस्यास्तीति ‘शुक्रः’ पटः इत्यत्र “तदस्यास्त्यस्मिन्”  
इति मनुषि, उपो लोपे “गुणवचनेभ्यो मनुषो लुगिष्ठः” इति मनुषो लुकि विवचि-

तीति शुक्लः पटः । कृष्णः । प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ५।२।१६। चूडवान्, चूडावान् । प्राणिस्थात्किम् ? शिखावान् दीपः । प्राण्यज्ञादेव । नेह, मेधावान् ॥ लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ५।२।१००। लोमादिभ्यः शः । लोमशः, लोमवान् । रोमशः, रोमवान् । पामादिभ्यो नः । पामनः । अङ्गात्कल्याणे । अङ्गना । लक्ष्म्या अच्च । लक्ष्मणः । पिच्छादिभ्य इलच् । पिच्छिलः, पिच्छवान् ॥ दन्त उन्नत उरच् ५।२।१०६। उन्नता दन्ताः सन्त्यस्य दन्तुरः ॥ केशाद्गोऽन्यतरस्याम् ५।२।१०६। केशवः, केशी, केशिकः, केशवान् । ( अन्येभ्योऽपि दृश्यते ) ।

कार्ये च 'शुक्लः पटः' इति सिद्धम् । एवं कृष्णः पटः । प्राणिस्थात् । आदन्तात्प्राणिस्थ-  
वाचिनः शब्दात् मत्वर्थे लच् वा स्यादित्यर्थः । चूडालः । चूडास्यास्तीति "प्राणिस्था-  
दातो लजन्यतरस्याम्" इति लचि चलोपे, सुपो लुकि, विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः ।  
पक्षे मनुपि "मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः" इति मस्य स्थाने वत्वे "अत्वसन्त-  
स्य" इत्युपधादीर्घत्वे सौ "उर्गादचाम्" इति नुमि उमो लोपे सोर्लोपे तलोपे च कृते  
'चूडावान्' इति सिद्धम् । शिखावान् दीपः । अत्र प्राणिस्थत्वाभावात् न लच्, किन्तु  
मनुप् । मेधावान् । अत्र प्राण्यङ्गत्वाभावात् न लच् । लोमादि । लोमादिभ्यः, पामा-  
दिभ्यः, पिच्छादिभ्यश्च त्रिभ्यो गणेश्वो यथासंख्यं क्ष, न, इलच्, इत्येते प्रत्ययो  
भवन्ति, मत्वर्थे मनुप् च । लोमशः । लोमवान् । लोमान्यस्य सन्ति 'लोमशः' इत्यत्र  
'लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः" इति शे, विभक्तिकार्ये च कृते 'लोमशः'  
इति, पक्षे मनुपि लोमवान् । एवं रोमशः, रोमवान् । पामनः । पामाऽस्यास्ति इति  
'पामनः' इत्यत्र "लोमादिपामादि" इति पामादित्वाच्चे विभक्तिकार्ये च 'पामनः' इति ।  
अङ्गात्कल्याणे । पामादिगणसूत्रम् । कल्याणं सुन्दरं तादृशेषणकादङ्गशब्दात् मत्वर्थे  
न प्रत्यय इत्यर्थः । अङ्गनति । कल्याणानि अङ्गानि अस्याः इति विग्रहः । लक्ष्म्या अच्चति ।  
इत्यपि पामादिगणसूत्रम् । लक्ष्मीशब्दात् मत्वर्थे न प्रत्ययः स्यात्, प्रकृतेरकारोऽन्ता-  
देशश्च । लक्ष्मण इति । लक्ष्मीरस्यास्तीति विग्रहः । नप्रत्यये प्रकृतेरकारे अन्तादेशे  
म् । पिच्छिलः । पिच्छान्यस्य सन्ति 'पिच्छिलः' इत्यत्र "लोमादिपामादि" इति पिच्छा-  
दित्वादिलचि भत्वे भत्वादलोपे विभक्तिकार्ये च कृते 'पिच्छिलः' इति रूपम् । मनुपि-  
'पिच्छावान्' इति । दन्त उन्नत उरच् । उन्नत इति प्रकृतिविशेषणम् । दन्तशब्दाच्च  
उन्नतोपाधिकादुरच् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे । दन्तुरः । उन्नता दन्ताः सन्ति यस्य  
'दन्तुरः' इत्यत्र "दन्त उन्नत उरच्" इत्युरचि, चलोपे, भत्वे, भत्वादलोपे, विभक्तिकार्ये  
च 'दन्तुरः' इति सिद्धम् । केशाद् इति । केशशब्दाद्द्वः प्रत्ययो भवति मत्वर्थेऽन्यतर-  
स्याम् । केशवः । केशाः सन्त्यस्य 'केशवः' इत्यत्र "केशाद्गोऽन्यतरस्याम्" इति वे वि-  
भक्तिकार्ये च कृते 'केशवः' । पक्षे मनुपि 'केशवान्' इति । "अत इनिठनौ" इति  
इति 'केशी' इति । ठनि ठत्येकादेशे भत्वे भत्वादलोपे संयोगे विभक्तिकार्ये च कृते

मणिकः । (अर्णसो लोपश्च) अर्णवः ॥ अत इनिठनौ ५।२।११५। दण्डी,  
दण्डिकः ॥ व्रीह्यादिभ्यश्च ५।२।११६। व्रीही, व्रीहिकः ॥ अस्मायामेवास्त्रजो  
विनिः ५।२।१२१। यशस्वी, यशस्वान् । मायावी । व्रीह्यादिपाठदिनिठनौ । मायी,  
मायिकः, मायावान् । मेधावी । स्रग्वी ॥ वाचो गिमनिः ५।२।१२४। वाग्मी । अर्ण-  
आदिभ्योऽच् ५।२।१२५। अर्णोऽस्य विद्यते अर्णसः । आकृतिगणोऽयम् । अहं-  
शुभमोर्युस् ५।२।१३०। अहंयुः, अहंकारवान् । शुभंदुस्तु शुभान्वितः ॥ इति  
मत्वर्थीयाः ॥

‘केशिकः’ इति । दृश्यन्त इति । व इत्यनुवर्तते । मणिव इति । मणिरस्यास्ति ‘मणिकः’  
इत्यत्र “अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते” इति वे ‘मणिवः’ इति । अर्णव इति । अर्णास्ति—  
जलानि सन्त्यस्मिन् सः ‘अर्णवः’ इत्यत्र “अन्येभ्योऽपि दृश्यते” इति । वे “अर्ण-  
सो लोपश्च” इति सलोपे विभक्तिकार्यं च कृते ‘अर्णवः’ इति रूपम् । अत  
इति । अकारान्तात्प्रातिपदिकादिनिठनौ प्रत्ययौ भवतः । दण्डी, दण्डिक इति ।  
दण्डोऽस्यास्ति ‘दण्डी’ इत्यत्र “अत इनिठनौ” इति इनि भत्वे अलोपे विभक्ति-  
कार्यं च कृते ‘दण्डी’ इति । ठनि, ठस्येकादेशे भत्वे अलोपे संयोगे विभक्तिकार्यं  
च कृते ‘दण्डिकः’ इति । व्रीह्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इनिठनौ प्रत्ययौ  
भवतो मत्वर्थे । व्रीही । व्रीहिकः । व्रीहयः सन्त्यस्वासौ ‘व्रीही’ इत्यत्र “व्रीह्यादिभ्यश्च”  
इति इनि, इलोपे भत्वे, भत्वादिलोपे संयोगे उपधादीर्घत्वे नलोपे च कृते ‘व्रीही’  
इति । ठनि—व्रीहिकः । अस्मायामेवा । असन्तात्प्रातिपदिकान्मायामेवास्त्रजोऽस्येतेभ्यश्च  
विनिः प्रत्ययो भवति मत्वर्थे । मनुप् सर्वत्र समुच्चीयत एव । मायाशब्दाद् व्रीह्या-  
दिषु पाठदिनिठनापि भवतः । यशस्वी, यशस्वान् । यशोऽस्वास्तीत्यत्र “अस्मायामे-  
वास्त्रजो विनिः” इति विनिप्रत्यये इलोपे, सौ, “सौ च” इति दीर्घत्वे सोर्लोपे नलोपे  
च कृते ‘यशस्वी’ इति । पचे—“तदस्यास्यस्मिन्निति मनुप्” इति मनुपि उपो लोपे  
“मनुपचाबाभ मतोर्वोऽववादिभ्यः” इति मस्य कवे सौ “अवसन्तस्व” इति  
दीर्घत्वे “उगिदचाम्” इति तुमि, उमो लोपे सोर्लोपे “संयोगान्त्वस्व लोपः” इति  
नलोपे च कृते ‘यशस्वान्’ इति । एवं ‘मायावी’ इत्यादौ बोध्यम् । वाचो गिमनिः ।  
वाचश्चब्दात् मत्वर्थे गिमनिप्रत्ययः स्यादित्यर्थः । नकारादिकार उच्चारणार्थः । अत-  
स्मिन्निति पर्युदासात् मकारस्य नेत्संज्ञा । वाग्मी । वागस्यास्ति ‘वाग्मी’ इत्यत्र  
“वाचो गिमनिः” इति गिमनिप्रत्यये “स्कोः संयोगाद्योरन्ते च” इति कलोपे सौ,  
उपधादीर्घे लोपे नलोपे च ‘वाग्मी’ इति सिद्धम् । अर्णोऽस्यास्ति । अर्णोऽस्यास्ति  
“अर्णोऽस्यास्ति” इत्यत्र “अर्णोऽस्यास्ति” इत्यत्र, कलोपे संयोगे विभक्तिकार्यं च कृते

## अथ प्राग्निदशीराः ।

प्राग्निदशो विभक्तिः १।३।१। दिक्शब्देभ्य इत्यतः प्राग्वक्ष्यमाणाः प्रत्ययान्ताः विभक्तिसंज्ञाः स्युः ॥ किं सर्वनामबहुभ्योऽब्र्यादिभ्यः १।३।२। किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्निदशोऽधिक्रियते ॥ पञ्चम्यास्तसिल् १।३।७। पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल् वा स्यात् ॥ कु तिहोः ७।२।१०४। किमः कुः स्यात्तादौ षादौ च विभक्तौ परतः । कुतः, कस्मात् ॥ इदम् इश् १।३।३। प्राग्निदशीये परे । इतः । एतदोऽन १।३।५। प्राग्निदशीये । अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः । अतः । अमुतः । यतः । ततः । बहुतः । द्रथादेस्तु-द्राभ्याम् ॥ पर्यभि-

‘अहंसः’ इति । अहंशुभमोयुंस् । अहमिति भाग्यमव्ययमहङ्कारे । शुभमिति शुभे । अहंयुः । अहमहङ्कारोऽस्यास्तीति ‘अहंयुः’ इत्यत्र “अहंशुभमोयुंस्” इति युक्तिः, विभक्तिकार्यं च ‘अहंयुः’ इति सिद्धम् । इति मत्वर्थायाः ।

प्राग्निदशो विभक्तिः । दिक्शब्देन तद्वद्विहितं सूत्रं विवक्षितमित्यभिप्रेत्याह-दिक्शब्देभ्य इत्यत्र इति । विभक्तिसंज्ञा इति । तत्फलं तु “न विभक्तौ तुस्माः” इति निषेधः, त्यदाद्यस्त्वम्, इदम् : “ऊढिवंपदादि” इति स्वरश्च । स्वार्थिका इति । स्वीयप्रकृत्यर्थे अवा इत्यर्थः । किं सर्वनाम । अहयादिभ्य इति छेदः । प्राग्निदश इत्यनुवर्तते । तदाह—प्राग्निदशोऽधिक्रियते इति । पञ्चम्यास्तसिल् । किमादिभ्य इति । किं सर्वनामबहुभ्य इत्यर्थः । वा स्यादिति । “समर्थानाम्” इत्यतो वाग्रहणस्यानुवृत्तेरिति भावः । कुतिहोः । कु इति लुप्तप्रथमाकम् । “किमः कः” इत्यस्मात् “किमः” इत्यनुवर्तते । “अहन आ” इत्यतो विभक्त्याविति । तिङ् इ च तयोरिति इन्द्रः, इकार उच्चारणार्थः । ताभ्यां विभक्तिर्विज्ञेयते । तदादिभिधिः, तदाह—किमः कुः स्यादित्यादिना । कुतः । कस्मादिति कुतः इत्यत्र “पञ्चम्यास्तसिल्” इति तसिलि इलो लोपे सुपो लुकि, “प्राग्निदशोऽविभक्तिः” इति तसिलो विभक्त्यर्थे “कुतिहोः” इति किमः कु आदेशे कु तस् इति जाते “कृत् द्वितसमासाश्च” इति प्रातिपदिकत्वे प्रातिपदिकत्वात्सुबुत्पत्तौ “तद्विज्ञेयसर्वविभक्तिः” इति अव्ययत्वे “अव्ययादाप्सुपः” इति सुपो लुकि, सस्य सत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च “कुतः” इति सिद्धम् । इदम् इश् । प्राग्निदशीये परे इति शेषपूरणम् । प्रकरणलभ्यमित्यम् । किंत्वात्सर्वादेशः । इतः । अस्मादिति इतः इत्यत्र “पञ्चम्यास्तसिल्” इति इलो लोपे सुपो लुकि ‘इदम् तस्’ इति जाते “इदम् इश्” इत्यनेन शित्वादिभ्यः सर्वस्य स्थाने इषादेशे ञलोपे सस्य सत्वे रस्य विसर्गत्वे च कृते ‘इतः’ इति रूपम् एतदोऽन । प्राग्निदशीये प्रत्यये परे एतद्वत्त्वस्य अन् स्वादित्यर्थः । अतः । एतस्मादिति ‘अतः’ इत्यत्र “पञ्चम्यास्तसिल्” इति तसिलि इलो लोपे सुपो लुकि “एतदोऽन” इत्यनेन एतदः सर्वस्य स्थाने अनादेशे ञलोपे सस्य सत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च कृते



भ्यां च ५।३।४। आभ्यां तसिल् स्यात् । ( सर्वोभयार्थभ्यामेव ) परितः, सर्वतः इत्यर्थः । अमितः, उभयत इत्यर्थः । सप्तम्याखल ५।३।१०। कुत्र । यत्र । तत्र । बहुत्र ॥ इदमो हः ५।३।११। त्रलोऽपवादः । इह ॥ किमोऽत् ५।३।१२। चाग्रहणमपकृष्यते । सप्तम्यन्तात्किमोऽष्टास्यात् । पक्षे त्रल् ॥ काऽति ७।२।१०। किमः कादेशः स्यादिति । क, कुत्र ॥ इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ५।३।१४। पञ्चमी-सप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते । इतिग्रहणाद्भवदादियोग एव । स भवान् । ततो भवान् । तत्र भवान् । तं भवन्तम् । ततो भवन्तम् । तत्र भवन्तम् ।

‘अतः’ इति रूपम् । अमुतः । अमुष्मादिति ‘अमुतः’ इत्यत्र “पञ्चम्यास्त-सिल्” इति तसिलि, इलो लोपे सुपो लुकि, ‘अदस् तस्’ इति जाते “त्यदादी-नामः” इत्यस्वे ‘अद अ तस्’ इति जाते “अतो गुणे” इति पररूपत्वे “अदलो-सेर्दादुदोमः” इति दस्य मत्वे, अस्य उत्वे, सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च ‘अमुतः’ इति । यतः । यस्मादिति ‘यतः’ इत्यत्र “पञ्चम्यास्तसिल्” इति तसिलि “त्यदादीनामः” इति अत्वे “अतो गुणे” इति पररूपत्वे सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गे च कृते ‘यतः’ इति । एवं ‘ततः, बहुतः’ इति । पर्यभिभ्यां च । सर्वोभयार्थं वर्तमानाभ्यां प्रत्यय दृश्यते । परितः । परित्यज्ययात् “पर्यभिभ्यां च” इति तसिलि, परितः । एव-ममितः । सप्तम्याखल । किमादिभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यः अद्वयादिभ्यश्चलित्यर्थः । कुत्र । कस्मिन्निति विग्रहे “सप्तम्याखल” इति त्रलि, ललोपे, “कृतिहोः” इति किमः क-आदेशे विभक्तिकार्यं च कृते ‘कुत्र’ इति । यत्र । यस्मिन्निति विग्रहः । अत्र त्रलि, “त्यदादीनामः” इत्यकारे “अतो गुणे” इति पररूपत्वे च कृते ‘यत्र’ इति । एवं तत्र । बहुषु बहुत्र । इदमो हः । इदं-शब्दात् सप्तम्यन्तात् हप्रत्ययः स्यादित्यर्थः । इह । अस्मिन्निति ‘इह’ अत्र “सप्तम्याखल” इति त्रलि प्राप्ते तन्वाधित्वा “इदमो हः” इति कृते ‘इदम् ह’ इति जाते “इदम् इष्” इति इशादेशे शलोपे शित्वात्सर्वादेशे च कृते रूपम् । किमोऽत् । अपकृष्यत इति । “वा ह च छन्दसि” इत्युत्तरसूत्रादिति शेषः । काऽति । क अतीति छेदः । क्वेति लुप्तप्रथमाकं “किमः कः” इत्यतः किम इत्यनु-वर्तते । तदाह—किमः क्वेति । किंशब्दात् सप्तम्यन्तात् अत्प्रत्ययः, तकार इत्, किमः कादेश इति भावः । क । कस्मिन्निति ‘क’ इत्यत्र “किमोऽत्” इत्यति तलोपे सुपो लुकि ‘किम् अ’ इति जाते “काति” इति किमः कादेशे ‘क अ’ इति जाते अत्वे अलोपे संयोगे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धम् । इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते । पञ्चमीसप्त-मीतरविभक्त्यन्तादपीत्यर्थः । फलितमाह—पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपीति ततोभवान् । स भवानिति ततोभवान् इत्यत्र “इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते” इति तसिलि, सुपो लुकि, तद् तस् भवान् इति जाते “त्यदादीनामः” इत्यस्वे “अतो गुणे” इति पररूपत्वे “अदलो-सेर्दादुदोमः” इति दस्य मत्वे, अस्य उत्वे, सस्य रुत्वे रेफस्य विसर्गत्वे च कृते ‘अतो भवान्’ इति । एवं त्रलि—तत्रभवान् । तत्र

एवं दीर्घायुः । देवानां प्रियः । आयुष्मान् ॥ सर्वैकान्यकिञ्चित्तदः  
 वा ५।३।१५। सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात् । सर्वस्य  
 सोऽन्यतरस्यां दि ५।३।६। दादौ प्राग्दिशीये सर्वस्य सो वा स्यात् । सर्वस्मिन्  
 काले सदा । सर्वदा । अन्यदा । कदा । यदा । तदा । काले किम् ? सर्वत्रदेशे ।  
 इदमोर्हिल् ५।३।१६। सप्तम्यन्तात् काले इत्येव ॥ एतेतौ रथोः ५।३।४।  
 ञ्दस्य एत इत् इत्यादेशौ स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे । अस्मिन्काले  
 एतर्हि । काले किम् ? इह देशे । अनद्यतनेर्हिल्लन्यतरस्याम् ५।३।२१। कर्हि,  
 कदा । यर्हि, यदा । तर्हि, तदा ॥ एतदोऽन् ५।३।५। योगविभागः कर्तव्यः ।  
 एतदः एतेतौ रथोः । अन् । एतद इत्येव । एतस्मिन्काले एतर्हि ॥ प्रकारवचने

भवन्तम् । अत्र द्वितीयान्तात्तसिल् । तत्रभवन्तम् । अत्र द्वितीयान्तात् ऋल् । एवं तलो-  
 दीर्घायुः, तत्रदीर्घायुः । ततोदेवानाम्प्रियः, तत्रदेवानाम्प्रियः । ततायुष्मान्, तत्र-  
 युष्मान् । इत्यत्रापि बोध्यम् । सर्वैकान्य । सप्तम्यन्तेभ्य इति सर्वादिभ्य इति शेषः ।  
 सप्तम्या इत्येवानुवर्तते, न्याख्यानादिति शेषः । सदा । सर्वस्मिन् काले इति सदा  
 इत्यत्र “सर्वैकान्यकिञ्चित्तदः काले दा” इति दाप्रत्यये सुपो लुकि, ‘सर्वदा’ इति जाते  
 “सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि” इति सर्वस्य सादेशे विभक्तिकार्यं च कृते ‘सदा’ इति ।  
 सादेशामावे ‘सर्वदा’ इति । एवंम्-‘अन्यदा’ इत्यादौ बोध्यम् । इदमोर्हिल् । इदमः  
 सप्तम्यन्तात्काले वर्तमानाद् हिल् प्रत्ययो भवति । एतेतौ रथोः । रेफेऽकार उच्चार-  
 णार्थः । एतर्हि । अस्मिन् काले ‘एतर्हि’ इत्यत्र “इदमोर्हिल्” इति हिल्, सुपो लुकि,  
 ‘इदम् हिल्’ इति जाते “एतेतौ रथोः” इति इदम् एतादेशे च कृते रूपम् । अन-  
 द्यतने । छन्दसीति न स्वर्णते, सामान्येन विधानम् । किं सर्वनामबहुभ्यः सप्तम्यन्ते-  
 ष्योऽनद्यतने कालविशेषे वर्तमानेभ्यो हिल् प्रत्ययो भवत्यन्यतरस्याम् । कर्हि  
 कस्मिन् काले ‘कर्हि’ इत्यत्र “अनद्यतनेर्हिल्लन्यतरस्याम्” इति हिल्, ‘किम् हि’  
 इति जाते “किमः कः” इति किमः कादेशे च कृते ‘कर्हि’ इति । पठे दाप्रत्यये  
 कदा । एवं यर्हि, यदा । तर्हि, तदा । इत्यादौ बोध्यम् । एतदोऽन् । प्राग्दिशीये  
 अत्यये परे एतदसब्दस्य अन् स्यादित्यर्थः । योगविभाग इति । एतद इति । प्रथमसप्त-  
 म्यदम् । तस्य शेषपूरणम् “एतेतौ रथोः” इति । एतच्छब्दस्य एतेतौ स्तो रेफादौ  
 थकारादौ प्रत्यये परे इत्यर्थः । अन् । एतद इत्येवंति । रथोः इति तु नानुवर्तते इति भावः ।  
 तथा च एतद इत्यस्य अन् स्यात्प्राग्दिशीये परे इति फलति । अस्म ‘अतः,  
 इत्युदाहरणम् । एतर्हि । एतस्मिन् काले ‘एतर्हि’ इत्यत्र “अनद्यतनेर्हिल्लन्यतरस्याम्”  
 इति हिल्, ललोपे सुपो लुकि, “एतदोऽन्” इत्येतद् एतादेशे च कृते ‘एतर्हि’  
 रूपम् । प्रकारवचने । किं सर्वनामबहुभ्याञ्च्वादिभ्य इति वर्तते । सप्तम्यन्ते, काले

आल् ५।१।२३। प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्याल् स्यात् स्वार्थे । तेन प्रकारेण तथा । यथा ॥ इदमस्थमुः ५।३।२४। थालोऽपवादः । ( एतदोऽपि वाच्यः ) अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्यम् ॥ किमश्च ५।३।२५। केन प्रकारेण कथम् ॥ इति प्राग्दिशीयाः ॥

### अथ प्राग्वीयाः ।

अतिशयने तमविष्टनौ ५।३।२५। अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेः सुबन्तात् स्वार्थे एतौ स्तः । अयमेवामतिशयेनाढ्यः आढ्यतमः । लघुतमः, लघिष्ठः ॥ तिङ्श्च ५।३।२६। तिङ्बन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात् ॥ तर मपौ घः १।१।२२ एतौ चसंज्ञौ स्तः ॥ किमेत्तिङ्बन्धयघादास्वद्रव्यप्रकर्षे ५।४।११ किम एदन्तातिङो-

इति च निवृत्तम् । सामान्यस्य विशेषो भेदकः प्रकारः, प्रकृत्यर्थविशेषणं चैतत् । प्रकारवृत्तिभ्यः किं सर्वनामबहुभ्यः स्वार्थं थाल् प्रत्ययो भवति । तथा । तेन प्रकारेण 'तथा' इत्यत्र "प्रकारवचने थाल्" इति थालि, ललोपे, सुपो लुकि, "त्यदादीनाम्" इत्यत्वे, "अतो गुणे" इति पररूपत्वे च कृते 'तथा' इति रूपम् । एवं येन प्रकारेण इति 'यथा' इत्यत्रापि बोध्यम् । इदमस्थमुः । इदं-शब्दात्प्रकारवृत्तेः यमुप्रत्ययः स्यादित्यर्थः । प्रत्यये उकार उच्चारणार्थः । मकारस्य उपदेशे अन्त्यत्वाभावान्नेत्वम् । इत्यम् । अनेन प्रकारेण 'इत्यम्' इत्यत्र "इदमस्थमुः" इति यमौ, सुपो लुकि, 'इदम् यम्' इति जाते "एतेतौ रथोः" इति थपरत्वादिदम् इतादेशे च कृते 'इत्यम्' इति । एतदोऽपि वाच्य इति । एतेन प्रकारेण इति 'इत्यम्' अत्र प्रकृतवार्तिकेन यमुः "एतेतौ रथोः" इति इतादेशः । किमश्च । प्रकारवृत्तेः स्थमुरिति शेषः । कथम् । केन प्रकारेण 'कथम्' इत्यत्र "किमश्च" इति यमौ, सुपो लुकि, "किमः कः" इति कादेशे च कृते 'कथम्' इति रूपम् । इति प्राग्दिशीयाः ।

अतिशयने । अतिपूर्वकः शीघ्रातुरूपसर्गवशादुत्कर्षं वर्तते । 'बाहुल्यः कर्तारि व्युट्' इति भाष्यम् । अत एव निपातनादीर्घः । अतिशयने इति प्रकृत्यर्थविशेषणम् । अतिशयितरि विद्यमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थं तमप् इष्टम् च स्यादित्यर्थः । फलितमाह—अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेरिति । आढ्यतमः । 'अतिशयेन आढ्यः आढ्यतमः' इत्यत्र "अतिशयने तमविष्टनौ" इति तमपि, पगते सुपो लुकि, विभक्तिकायं च कृते 'आढ्यतमः' इति रूपम् । एवम् अतिशयेन लघुः—लघुतमः । इष्टम् तु भवे "इष्टम्" इति टिलोपे संयोगे विभक्तिकार्षं च कृते 'लघिष्ठः' इति रूपम् । तिङ्श्च । अत्राप्रातिपदिकवादाप्राप्ते वचनम् । तमप् स्यादिति । 'अज्ञादी गुणवचनादेव' इति निबन्धादि-  
शब्दवृत्तये इति भावः । तमपौ घः । स्पष्टम् । किमेत्तिङ्बन्धय । आम् इति केन ।

अथवाच यो वस्तुदन्तदासुः स्वाज तु इव्यप्रकर्षे । किन्तमासु । प्राहेतमासु । पच-  
तितमासु । उच्चैस्तमासु । इव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तमासुः ॥ द्विवचनविमज्ज्योपपदे  
तरणीयसुनौ ५।३।५७ द्वयोरेकस्यातिशये विमज्ज्ये चोपपदे पुतिङन्तादेतौ स्तः ।  
पूर्वबोरपवादः । अयमनयोरतिशयेन लघुर्लघुतरः, लघीयान् । उदीच्याः प्राच्येभ्यः  
पठुतराः, पटीयांसः ॥ प्रशस्त्वस्य श्रः ५।३।६० अत्र भादेसः स्यादवाचोः परतः ।  
प्रकृत्यैकाच् ६।४।१६३ इष्टादिष्वैकाच् प्रकृत्या स्यात् । श्रेष्ठः, श्रेयान् ॥ ज्य च

उकार उच्चारणार्थः । किम्, एत्, तिङ्, अव्यय एषां चतुर्णां द्वन्द्वः । “किमेतिङ्-  
अव्ययप्रकृतिको घः” इति मज्जमपदलोपी समासः । फलितमाह—किम् एदन्तादित्यादिनां ।  
इव्य इत्यर्थः । किन्तमासु । अव्यन्तस्वार्थिकोऽयं तमप् । किम्सङ्घात् “अतिशयने  
तमविष्टनौ” इति तमपि, पलोपे, किम् तम इति जाते “तरसमपौ घः” इति तमपौ  
पसंज्ञायाम् “किमेतिङ्अव्ययवादास्वद्व्यप्रकर्षे” इत्यामौ ‘किम् तम आम्’ इति सूत्रे  
“अकः सक्ते दीर्घः” इति दीर्घत्वे च ‘किन्तमासु’ इति रूपम् । एवं प्राहेतमासु ।  
पचितितमासु । “तिङ्अ” इति तिङन्तात् ‘पचति’ इत्यस्मात् “तिङ्अ” इति तमपि,  
पलोपे “तरसमपौ घः” इति घत्वे “किमेतिङ्अव्ययवादास्वद्व्यप्रकर्षे” इत्यामौ उलोपे  
सक्तेर्दीर्घत्वे च तत्सिद्धिः । एवमेव ‘उच्चैस्तमासु’ इत्यत्रापि । उच्चैस्तमस्तसः । अत्र  
इव्यप्रकर्षत्वाच्च आसुः । द्विवचन । उच्चतेऽनेनेति वचनम् । इयोरर्थबोधप्रधानं द्विवच-  
नम् । इव्यर्थप्रतिपादकमिति वाच्यम् । विमज्ज्यं विमज्ज्यम् । “अहलोः” इति ण्यसं  
वाचित्वा निपातवाच्यम् । द्विवचनं च विमज्ज्यं चेति समाहारद्वन्द्वः । द्विवचनविमज्ज्यं  
च तदुपपदं चेति कर्मधारयः । इव्यर्थप्रतिपादके विमज्ज्यविमज्ज्यके च उपपदे सतीति  
फलितम् । प्रातिपदिकादिति तिङ् इति चातुर्क्येति । सुवन्तावदितोत्पत्तिरिति  
सिद्धान्तात् सुवन्तत्वं प्रातिपदिकविशेषणं लभ्यते । फलितमाह—द्वयोरेकस्येत्यादिनां ।  
इयोर्मध्ये अन्यतरापेक्षया अतिशयवित्तिट्स्वार्थबुद्धेः विभागप्रयोजकीमृतवर्मधार-  
काच्च सङ्घात्स्वार्थे तरणीयसुनौ स्त इति यावत् । लघुतरः । अनयोर्मध्ये अतिशयेन  
लघुः इति लघुतरः इत्यत्र “द्विवचनविमज्ज्योपपदे तरणीयसुनौ” इति तरपि, सुपो  
बुकि पलोपे विमज्जिकार्थे च कृते ‘लघुतरः’ इति । लघीयान् । लघुसङ्घात् ईयसुनि  
यो लोपे सुपो बुकि, ‘लघु ईयस्’ इति जाते “उगिद्वाम्” इति सुभि, सभो  
“टः” इति द्विलोपे संबोधे “अवसन्तस्य” इति दीर्घत्वे सोर्लोपे, “संबोगान्ताच्च  
लोपः” इति सलोपे, विमज्जिकार्थे च कृते ‘लघीयान्’ इति रूपम् । एवमेव ‘पटीयान्’  
इति, तस्य जसि—पटीयांसः । प्रशस्त्वस्य श्रः । अजाबोरिति । इष्टन्नीयसुबोरित्येव ।  
अजादी इत्यनुपपन्नं सप्तमा निपरिणम्यत इति श्रवः । प्रकृत्यैकाच् । एका अच् कर्त्तव्यं  
चतुर्विधम् । स्थादिष्विति । “हुरिष्येयसु” इत्यस्य लघुहुरेति वाच्यः । मेघः । कश्चि

५।३।६१ प्रशस्यस्य ज्यादेशः स्यात् इष्टेयसोः । ज्येष्ठः ॥ ज्यादादीयसः ६।४।१६०  
 ज्यादुत्तरस्येयसुन आकारादेशः । “आदेः परस्य” । ज्यायान् ॥ बहोर्लोपो भू च  
 बहोः ६।४।१५८ बहोः परयोरिमेयसोर्लोपः स्यात् बहोश्च भूरादेशः । भूमा ॥ इष्टस्य चिट्  
 च ६।४।१५६ बहोः परस्य इष्टस्य लोपः स्यादिडागमश्च । भूयिष्ठः ॥ विन्मतोर्लुक् ५।३।  
 ६५ विनो मनुपश्च लुक् स्यादिष्टेयसोः । अयिशयेन सग्वी सजिष्ठः, सजीयान् । अति-

येन प्रशस्यः “अष्टः” इत्यत्र “अतिशायने तमविष्ठनौ” इतीष्टनि, “प्रशस्य—इष्ट” इति  
 जाते “प्रशस्यस्य अः” इति प्रशस्यस्य स्थाने आदेशो “अ इष्ट” इति स्थिते, अत्र “टेः”  
 इति टिलोपे प्राप्ते “आद्गुणः” इति गुणे विभक्तिकार्ये च कृते “अष्टः” इति रूपम् ।  
 श्रेयान् । द्वयोर्मध्ये अतिशयेन प्रशस्यः “श्रेयान्” इत्यत्र “द्विवचनविभज्योपपदे तरवी-  
 वसुनौ” इति ईयसुनि, उनि गते “प्रशस्यस्य अः” इति आदेशो “टेः” इति टिलोपे  
 प्राप्ते “प्रकृत्यैकाच्” इति टिलोपाभावे गुणे श्रेयस् इति जाते ततः सौ, नुमि, “अ-  
 त्वसन्तस्य” इति दीर्घे हल्लुथादिना प्रथमसलोपे, “संयोगान्तस्य” इति द्वितीयसलोपे  
 च तत्सिद्धिः । ज्य च । “ज्य” इति लुप्तप्रथमाकम् । प्रशस्यस्येति अजादी इति  
 चानुवर्तते । तदाह—प्रशस्यस्येति । ज्येष्ठः । “अतिशायने तमविष्ठनौ” इति  
 इष्टनि, “ज्य च” इति प्रशस्यस्य स्थाने “ज्य” इत्यादेशो “प्रकृत्यैकाच्” इति  
 टिलोपाभावे गुणे विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः । ज्यादादीयसः । ज्यात् आत्  
 इति छेदः । ज्यात् परस्य ईयसः आकारः स्यादित्यर्थः । अन्तादेशत्वे प्राप्ते  
 आह—आदेः परस्येति । ज्यायान् । द्वयोर्मध्ये अतिशयेन प्रशस्यः “ज्यायान्”  
 इत्यत्र “द्विवचनविभज्योपपदे तरवीयसुनौ” इति ईयसुनि, उनो लोपे “ज्य च”  
 इति प्रशस्यस्य स्थाने ज्यादेशो “ज्यादादीयसः” इति अन्त्यस्यादादेशे प्राप्ते “आदेः  
 परस्य” इति ईकारस्याकारादेशे कृते सवर्णदीर्घे च कृते “ज्यायस्” इति भूते तद्वि-  
 ता-  
 न्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे, ततः सौ, नुमि, उपधादीर्घे, सकारद्वयस्य लोपे च कृते तत्सि-  
 द्धिः । बहोर्लोप इति । भू इति लुप्तप्रथमाकम् । इष्टेमेयस्त्वित्यनुवृत्तम् । तत्र इष्टन  
 उत्तरसूत्रे कारान्तरविधानादिह तस्य न सम्बन्धः । तदाह—बहोः परयोरिति । “आदेः  
 परस्य” इति प्रत्ययबोरादिलोपः । भूमा । बहुत्वमित्यर्थः । बहुसंख्यात् पृष्ठादित्वादि-  
 मनिधि, प्रकृतेर्भूभावः, प्रत्ययादेरिकारस्य लोपः । विभक्तिकार्यश्च । इष्टस्य चिट् च ।  
 पूर्वसूत्रं सम्पूर्णमनुवर्तते, तदाह—बहोरित्यादि । भूयिष्ठः । अतिशयेन बहुः “भूयिष्ठो”  
 इत्यत्र “अतिशायने तमविष्ठनौ” इति इष्टनि, “इष्टस्य चिट् च” इति इष्टन इकार-  
 लोपे, बहोः स्थाने भू इत्यादेशे चिटि च कृते विभक्तिकार्ये च “भूयिष्ठः” इति रूपम् ।  
 विन्मतोर्लुक् । इष्टेयसोरिति । अजादी इत्यनुवृत्तस्य सप्तम्या विपरिणामादिति भावः ।  
 सजिष्ठः । अतिशयेन सग्वी “सजिष्ठः” इत्यत्र “अतिशायने” इति इष्टनि, नलोपे,  
 “सग्वी + इष्ट” इति जाते । “विन्मतोर्लुक्” इति विनो लोपे संयोगे विभक्तिकार्ये च

शयेन त्वन्वान् त्वचिष्ठः, त्वचीयान् ॥ ईषदसमाप्तौ कल्पपदस्यदेशीयरः ५।३।  
 ६७ ईषदून् विद्वान् विद्वत्कल्पः, विद्वद्देश्यः, विद्वद्देशीयः । पचत्तिकल्पम् ॥  
 विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात् ५।३।६८ ईषदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे सुबन्ताद्वहु-  
 ज्वा स्यात्स च प्रागेव न तु परतः । ईषदून्ः पटुर्बहुपटुः । पटुकल्पः । सुपोः किम् ?  
 यजतिकल्पम् ॥ प्राग्विचित्रः ५।३।७० इवे प्रतिकृतावित्यतः प्राक्काविकारः ॥  
 अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः ५।३।७१ कापवादः । तिङ्श्चेत्यनुवर्तते ।  
 अज्ञाते ५।३।७३ कस्यायमश्वोऽश्वकः । उच्चकैः । नीचकैः । सर्वकैः ॥ कुत्सि-

कृते 'वचिष्ठः' इति रूपम् । पचे—“द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ” इति ईष-  
 सुनि, उनो छोपे “विन्मतोर्लुक्” इति विनो लुकि, विभक्तिकार्यं च कृते ‘वचीयान्’  
 इति । एवं ‘त्वचिष्ठः’ ‘त्वचीयान्’ इति । ईषदसमाप्तौ । सम्पूर्णता पदार्थानां समाप्तिः ।  
 स्तोकेनासम्पूर्णता ईषदसमाप्तिः । प्रकृत्यर्थविशेषणं चैतत् । ईषदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे  
 वर्तमानात् प्रातिपदिकात् कल्पपदस्यदेशीयर इत्येते प्रत्यया भवन्ति । विद्वत्कल्पः ।  
 ईषदून् विद्वान् ‘विद्वत्कल्पः’ इत्यत्र “ईषदसमाप्तौ कल्पपदस्यदेशीयरः” इति कल्पपि,  
 पछोपे, सुपो लुकि, ‘विद्वत्कल्पः’ इति जाते “वसुधं सुध्वंस्वनहुहां दः” इति सस्व  
 कृते “छरि च” इति दस्य तत्वे विभक्तिकार्यं च कृते रूपम् । एवं देश्यप्रत्यये—  
 विद्वद्देश्यः । देशीयरि—विद्वद्देशीयः । एवं किञ्चिदून पचतीत्यत्र कल्पपि—“पचति-  
 कल्पम्” इति । विभाषा सुपो । ईषदसमाप्तावित्यनुवर्तते । तद्वाह—ईषदसमाप्तिविशिष्ट  
 इति । बहुपटुः । ईषदून्ः पटुः ‘बहुपटुः’ इत्यत्र “विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्” इति  
 पटुर्बहुपटुस्तत् बहुचि कृते ‘बहुपटुः’ इति । पचे—कल्पपि—पटुकल्पः । यजति-  
 कल्पमिति । अत्र सुबन्तत्वाभावाच्च बहुच् । प्राग्विचित्रः । इवसब्दस्तद्वर्णितसूत्रपरः  
 इति मत्वा आह—इवे प्रतीति । अव्ययसर्व । अव्ययानां सर्वनाम्नां तिङन्तानां च  
 प्राग्विचित्रेष्वर्थेष्वकच प्रत्ययो भवति, स च प्राग्टेः, न परतः । तत्राभिधानतो व्यव-  
 स्था भवति । क्वचित्प्रातिपदिकस्य प्राक्टेः प्रत्ययो भवति, क्वचित्सुबन्तस्य ।  
 युष्मकाभिः, अस्मकाभिः । युष्मकासु, अस्मकासु । युवकयोः, आवकयोः इत्यत्र  
 प्रातिपदिकस्य । त्वयका, मयका । त्वयकि, मयकि, इत्यत्र सुबन्तस्य । अज्ञाते ।  
 अज्ञातविशेषोऽज्ञातः । अज्ञातत्वोपाधिकेऽर्थे वर्तमानाप्रातिपदिकात्तिङन्ताच्च स्वार्थे  
 क्वाविहितं प्रत्ययो भवति । स्वेन रूपेण ज्ञाते पदार्थे विशेषरूपेणाज्ञाते प्रत्ययविधा-  
 नमेतत् । अश्वकः । कस्यायमश्वः, अश्वकः इत्यत्र “अज्ञाते” इति कप्रत्यये सुपो  
 लुकि, विभक्तिकार्यं च कृते ‘अश्वकः’ इति । उच्चकैः । नीचकैः । अत्र “अव्ययसर्व-  
 नाम्नामकच् प्राक् टेः” इति टेः पूर्वमकचि, सस्य क्वे, रस्य विसर्गत्वे च कृते  
 उच्चकैः, नीचकैः इति । सर्वकैः । अत्र सर्वनामत्वाद्देः पूर्वमकच् । एवं ‘युष्मकाभिः’

ते ५।३।५४ कुत्सितोऽश्वोऽश्वकः ॥ कियत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य उतरच्  
 ५।३।६२ अनयोः कतरो वैष्णवः । यतरः । ततरः ॥ वा बहुनां जातिपरिग्रहे  
 डतमच् ५।३।६३ बहुनां मध्ये एकस्य निर्धारणे उतमज्वा स्यात् । 'जातिपरिग्रहे'  
 इति प्रत्याख्यातमाकरे । कतमो भक्तां कठः । ततमः । वाग्रहणमकजयम् । यकः ।  
 सकः ॥ इति प्राग्निवीवाः ॥

### अथ तद्राजाः ।

इवे प्रतिकृतौ ५।३।६६ कन्स्यात् । अश्व इव प्रतिकृतिरश्वकः । सर्वप्रति-  
 पदिकेभ्यः स्वार्थे कन् । अश्वकः । तत्प्रकृतवचने मयट् ५।४।२१ प्राचुर्येण प्रसु-

हत्यादौ बोध्यम् । कुत्सिते । कुत्सितो गहिंते निन्दितः । प्रहृत्यवर्धितोऽयं चेत्य-  
 कुत्सितत्वोपाधिकेभ्यं वर्तमानाद्यातिपदिकात् वधाविहितं प्रत्ययो भवति । अश्वकः ।  
 कुत्सितोऽश्वः 'अश्वकः' इत्यत्र "कुत्सिते" इति कः प्रत्ययः । कियत्तदोः । किं क्व तत्  
 ह्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो द्वयोरेकस्य निर्धारणे कश्च प्रत्ययो भवति । निर्धारण-  
 वाचिभ्यः स्वाथे प्रत्ययः । कस्या किञ्चा तुभेन वा संज्ञा वा समुदावादेकदेशस्य  
 पुषक् करणं निर्धारणम् । महाविभाषयाऽत्र प्रत्ययो विकल्प्यते । अनयोः कतरो  
 वैष्णवः । अत्र कियत्तदो निर्धारणे "कियत्तदो निर्धारणे" इति उतरचि, चलोपे सुपो लुकि,  
 कस्येत्संज्ञायां लोपे च भत्वे कित्वाटिलोपे संबोगे विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः । एकम्  
 कतरोर्कः 'यतरः' अनयोः सः 'ततरः' इत्यत्र उतरचि टिलोपः । वा बहुनाम् । कियत्-  
 त् इति वर्तते, निर्धारणे एकस्येति च । बहुनामिति निर्धारणे वही । वा वचनमक-  
 जयम् । तद्वाह—बहुनां मध्ये इति । प्रत्याकथनमाकरे इति । वेवार्थस्य स्वन्मिधानात्  
 बहुनामिति सहास्यः । कतमो भवतां कठः । एषां मध्ये 'कः' इत्यत्र "वा बहुनां जाति-  
 परिग्रहे डतमच्" इति उतमचि, चलोपे डलोपे सुपो लुकि, भत्वाटिलोपे विभक्तिकार्ये  
 च कृते 'कतमः' इति । एकम्—एषां मध्ये कः यतमः । एषां मध्ये सः ततमः । यकः,  
 सकः । "अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः" इति सर्वनामत्वादकच् । इति प्राग्निवीवाः ।

इवे प्रतिकृतौ । कन् स्वादिति । "अव्ययेपणे कन्" इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः ।  
 इवार्थः उपमानस्यम् । सति वर्तमानाद्यातिपदिकान् स्वात्प्रतिकृतिभूते उपमेवे  
 इति फलितम् । सृष्टा विनिर्मिता प्रतिमा प्रतिकृतिः । अश्वकः । अश्व इव प्रतिकृतिः  
 'अश्वकः' इत्यत्र "इवे प्रतिकृतौ" इति कनि चलोपे विभक्तिकार्ये च कृते 'अश्वकः'  
 इति । प्रतिकृतेः स्त्रीत्वेऽपि "स्वार्थिकाः प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यनुवर्तन्ते" इति कुं-  
 इत्यम् । तत्प्रकृतवचने । तदिति प्रथमान्तनिर्देशः । प्राचुर्येणेति । बहुलतया उपरि-  
 कृतत्वमेव विवक्षितमित्यर्थः । उपसर्गबलमिति भावः । प्रतिपादनमिति । बोधना-  
 र्थकः । अने प्रति । कथाच ननुप्रत्यय बोधने सतीत्यर्थः । प्राचुर्यमित्येवमप्युच्यते ।

तं तस्य कचनं कृतं प्रतिपद्यन् । भावे अभिकरणे वा क्वुट् । भावे प्रकृतमन्त्र-  
मन्त्रमयम् । द्वितीये तु अन्ममयो क्वः । अपूपमयं पर्व ॥ प्रज्ञादिभ्यश्च ५।४।३२  
अण् स्यात् । प्रज्ञ एव प्रज्ञः । प्राज्ञी ली । दैवतः । वान्धवः ॥ बहुलपार्थाञ्च-  
स्कारकादन्यतरस्याम् ५।४।३२ बहुन् ददाति बहुशः, अल्पशः ( आद्यादि-  
भ्यस्तसेरुपसङ्ख्यानम् ) आदौ आदितः । मभ्यतः । अन्ततः । पृष्ठतः । पार्व-  
तः । आकृतिगणोऽयम् । स्वरेण स्वरतः । वर्णतः ॥ कृश्चस्तिथौने सम्पद्यकर्तारि-  
त्विः ५।४।५० ( अभूततद्भाव इति वक्तव्यम् ) विकारभूतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ  
वर्तमानाद्विकारशब्दात् स्वार्थे च्चिर्वा स्यात्करोत्यादिभिर्योगे । अस्य च्चौ ७।४।३२  
अचर्चस्य ईत्स्यात् च्चौ । वेलोपे च्च्यन्तत्वादव्ययत्वम् । अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते  
तं करोति कृष्णीकरोति । गङ्गीभवति । गङ्गीस्यात् ( अव्ययस्य च्चावीत्वं नेति

प्रथमान्तस्वार्थे भवमिति फलति । अत्र प्राचुर्यविशिष्टं वस्तु प्रकृतेरर्थः । प्रत्ययस्तु  
तदुच्यते । अभिकरणे वेति । तथाच प्राचुर्यविशेषकं यद्वस्तु यस्मिन्प्रचुर्यते, तद्वि-  
कृत्ये वाच्ये तादृशवस्तुवृत्तेः शब्दात् भवमिति फलितम् । अत्रप्रथमम् । भावे प्रकृतम-  
न्त्रम् अन्त्रमयम् इत्यत्र “तत्प्रकृतकचने मयट्” इति मयटि, उलोपे विभक्तिकार्ये च कृते  
‘अन्त्रमयम्’ इति । एवम् अपूपमयम् । द्वितीये तु प्राचुर्यं अन्नं यस्मिन् सः अन्न-  
मयो यज्ञः, अपूपमयं पर्व । प्रज्ञादिभ्यश्च । स्वार्थेऽभिहितं शेषः । प्राज्ञः । अत्र प्रकृतसूत्रेण  
समिधं शेषं पूर्ववत् । प्राज्ञी ली । अन्मन्तात्वात् “दिङ्गणञ्” इति लोप् । देवतः । देवता  
एव देवतः, “प्रज्ञादिभ्यश्च” इत्यण् । वान्धवः । कन्धुरेव वान्धवः । प्रज्ञादित्यादिभिः  
“लोप्युक्तः” इति गुणः । बहुलपार्थादिति । बहुलपार्थाञ्च कर्माकारिणोऽभिहितः शब्दात्स्वार्थे  
अन्त्रमयमयो वा स्वादिभ्यश्च । बहुशः । बहुन् ददाति ‘बहुशः’ अत्र “बहुलपार्थाञ्चकृ-  
त्कारकादन्यतरस्याम्” इति सति, सत्त्वं लब्धे रेफात् निसर्गत्वे च कृते ‘बहुशः’ इति ।  
बहुशः—अल्पशः । आचर्चदिभ्य इति । अचर्चं सार्वविभक्तिकत्तसिः । अदितः । आदौ ‘अ-  
दितः’ इत्यत्र “आद्यादिभ्यस्तसेरुपसङ्ख्यानम्” इति तसि ‘आदितः’ इति । एवं  
तः प्रज्ञादावपि । कृश्चस्तिथौने । अभूतेति । येन रूपेण प्रागमूलं यद् वस्तु तस्य  
प्रागवित्त्वार्थः । करोत्यादिभिरिति । ‘कृष्णं करोते, कृष्णकचाम्, ‘असं मुक्ति, इति प्रा-  
मिर्भावे सतीत्यर्थः । च्चिप्रत्यये चकार इत्, इकार उपकारवार्त्तः । अत्र चो ।  
दिति । “ईं प्राप्नोते” इत्यतस्तद्वस्तुवृत्तेरिति भावः । वेलोप इति । “वेरवृत्तस्य”  
नेति शेषः । च्च्यन्तत्वादव्ययमिति । “अचर्चदिभ्यश्च” इति विभक्त्यात् “स्वार्थे  
विभक्त्या” नित्यव्ययविभक्त्यर्थः । कृष्णीकरोति । अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तं करोति ‘कृष्णी-  
करोति’ इत्यत्र “कृष्णस्तिथौने सम्पद्यकर्तारि त्विः” इति ञौ, ‘कृष्णं च्चौ’  
एव सार्वस्व लोपे, स्वाभिप्रायेण ञौ परे “अचर्च ञौ” इति ईने लोपे च्च्यन्तत्वात्



वाच्यम्) । दोषाभूतमहः । दिवाभूता रात्रिः । विमाषा साति कात्स्न्ये १।४१  
 ५२ च्विविषये सातिर्वा स्यात्साकल्ये ॥ सात्पदाद्योः ८।३।१११ पदाद्योः सस्य  
 पत्वं न स्यात् । दधि सिञ्चति । कृत्स्नं शस्त्रमग्निः सम्पद्यतेऽग्निसाद्भवति ॥ च्वौ  
 च ७।४।४६ च्वौ च परे पूर्वस्य दीर्घः स्यात् । अग्नीभवति ॥ अव्यक्तानुकरणाद्  
 ब्रह्मजमरार्थादनितौ डाच् ५।४।५७ ब्रह्मजेवावरं न्यूनं ब्रह्मजवरं न तु ततो न्यूनमने-  
 काजिति यावत्तादृशमर्धं यस्य तस्माद्वाच् स्यात् कृम्बस्तिभियोगे । ( डाचि विव-  
 क्षिते द्वे बहुलम् ) डाचि विवक्षिते द्वित्वम् । ( नित्यमात्रेडिते डाचीति वक्त-  
 व्यम् ) डाच् परं यदात्रेडितं तस्मिन्परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूपं स्यात् । इति तका-  
 रपकारयोः प्रकारः । पठपटाकरोति । अव्यक्तानुकरणात्किम् ? ईषत्करोति । दृष्यञ-

दृष्ययत्वे सुपो लुकि 'कृष्णीभवति' इति । एवं ब्रह्मीभवति, गङ्गीस्यात् इत्यत्र बोध्यम् ।  
 दोषाभूतमहः । दोषेत्याकारान्तमव्ययं रात्रावित्यर्थं वर्तते । अदोषा दोषाभूतमहः-बहु-  
 क्मेघावरणान्वकारात् दोषाभूतमित्यर्थः । अत्र अव्ययत्वात् ईत्वं नेत्यर्थः । दिवाभूता  
 रात्रिरिति । दिवेत्याकारान्तमव्ययम् अहनीत्यर्थः । इह तु अहरित्यर्थं वर्तते । चन्द्रि-  
 कीतिशयवशात् अहर्गृतेत्यर्थः । विमाषा साति । सातीति लुप्तप्रथमाकम् । च्विविषये  
 इति । अभूततन्नावे सम्पद्यकर्तारं कृम्बस्तियोगे इत्यर्थः । सात्पदाद्योः । शेषपरणेन सूत्रं  
 व्याचष्टे—सस्य पत्वं न स्यादिति । सातेरवयवस्य पदादेशश्च सस्य पत्वं न स्यादित्यर्थः ।  
 दधि सिञ्चति । पिचि घातोः "घात्वादेः षः सः" इति षस्य सः । तस्य "आदेशप्रत्य-  
 ययोः" इति षत्वे प्राप्ते अनेन निषेधः । अग्निसाद् भवति । कृत्स्नं शस्त्रम् अग्निः सम्प-  
 द्यते 'अग्निसाद्' इत्यत्र "कृम्बस्तियोगे" इति च्वौ, च्वेः सर्वस्य लोपे "विमाषा साति-  
 कात्स्न्ये" इति सात्प्रत्यये, इलोपे विभक्तिकार्ये च कृते 'अग्निसाद्' भवति । पचे च्वौ,  
 "च्वौ च" इति दीर्घत्वे 'अग्नीभवति' इति । च्वौ च । दीर्घः स्यादिति । "अकृतसार्वधा-  
 तुकयोः" इत्यतस्तदनुवृत्तेरिति भावः । अव्यक्तानुकरणात् । यत्र ध्वनौ अकाराद्यो  
 वर्णविशेषाः न व्यज्यन्ते सः अव्यक्तो ध्वनिः । तस्यानुकरणम् अव्यक्तानुकरणम् । दृष्य-  
 जवरार्थशब्दं व्याचष्टे—द्वयजिति । द्वावचौ यस्येति विग्रहः । अवरशब्दं व्याचष्टे—  
 न्यूनमिति । द्वयजेव अवरं न्यूनसङ्ख्याकमिति सामानाधिकरण्यानान्वयः । न तु ततो  
 न्यूनमिति । एकाच्कमित्यर्थः । फलितमाह—अनेकाजिति । यावदिति । तादृशमर्धमिति ।  
 अनेकाच्कम् अर्धं भागो यस्य तत् द्वयजवरार्थम् , तस्मादित्यर्थः । कृम्बस्तिभियोगे इति ।  
 मण्डकप्लुत्या तदनुवृत्तेरिति भावः । तथाच—अनेकाच्कभागयुक्तादव्यक्तानुकरणात्  
 शब्दात् कृम्बस्तियोगे डाच् स्यादिति फलितम् । डाचि विवक्षिते । स्पष्टम् । नित्यमात्रे-  
 डिते डाचीति । "एकः पूर्वपरयोः" इत्यधिकारे पररूपप्रकरणे "नात्रेडितस्यान्यस्य ङ  
 वा" इति सूत्रभाष्ये इदं वार्तिकं पठितम् । डाच्परमिति । डाच्परं यस्मादिति विग्रहः ।

कार्वातिकम् ? श्रुत्करोति । अवरति किम् ? खरटखरटाकरोति । अनितौ किम् ?  
पटितिकरोति ॥ इति तद्राजाः । इति तद्विताः ॥

### अथ स्त्रीप्रत्ययाः ।

स्त्रियाम् ४।१।३ अधिकारोऽयं समर्थानामिति यावत् । अजाद्यतष्टाप् ४।१।४  
अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वं तत्र शोत्ये टाप् स्यात् । अजा । एडका ।  
अम्बा । चटका । मूषिका । बाला । वत्सा । होडा । मन्दा । विलाता । मेधा । इत्यादि ।  
गङ्गा । सर्वा ॥ उगितश्च ४।१।६ उगिदन्तात्प्रातिपदिकास्त्रियां ङीप् स्यात् ॥

पटपटाकरोति । पटत् पटत् करोति-‘पटपटाकरोति’ इत्यत्र “अव्यक्तानुकरणाद्भवजवरा-  
धादनितौ ङाच्” इति ङाचि, ‘पटत् ङाच्’ इति भूते “ङाचि विवचिते द्वे बहुलम्”  
इति द्वित्वे ‘पटत् पटत्’ इति जाते “नित्यमात्रेद्धिते ङाधीति वक्तव्यम्” इति वार्तिकेन  
पूर्वपटत्सम्बन्धिनस्तस्य पररूपत्वं विधाय ‘पट पटत्-ङा’ इत्यवशिष्टे ङचयोरित्स्-  
ज्ञायां लोपे च “यचि भम्” इति भसंज्ञायाम् “ङेः” इति टिलोपे संयोगे विभक्ति-  
कार्ये च कृते ‘पटपटाकरोति’ इति सिद्धम् । इषत्करोति । अत्र अव्यक्तानुकरणत्वाभा-  
वात् न ङाच् । श्रुत्करोति । अत्र एकाच्चाच्च ङाच् । खरटखरटाकरोति । अत्र अवरत्वाच्च  
ङाच् । पटितिकरोति । अत्र इतिपरत्वाच्च ङाच् । इति तद्विताः ।

इति श्रीकौण्डिन्यकुलावतंसजोशीत्युपाह्वदामोदरात्मजसदाशिवशास्त्रिकृतायां

लघुसिद्धान्तकौमुदीव्याख्यायां सुधाख्यायां तद्राजाः ।

स्त्रियाम् । अधिकारोऽयमिति । “अजाद्यतष्टाप्” इत्याद्युत्तरसूत्रेष्वनुष्ठुत्यर्थमिव सूत्रं  
न तु स्वतन्त्रविधिरित्यर्थः । क्रियत्पर्यन्तमधिकार इत्यत आह—समर्थेति । यावत्—इत्य-  
वचौ । “समर्थानां प्रथमात्” इत्यतः प्रागित्यर्थः । अजाद्यतष्टाप् । अजे आदिर्यस्य सो-  
जादिः, अजादिश्च अच्चेत्यनयोः समाहारः अजाद्यत् तस्य । सूत्रेऽत इति षष्ठ्यन्तस्य  
वाच्यवाचकभावोऽर्थः । स्त्रियामिति धर्मप्रधाननिर्देशः । तदाह—अजादीनामकारान्तस्य  
च वाच्यं यत् स्त्रीत्वमिति । अजाद्यकारान्तवाच्ये स्त्रीत्वे शोत्ये सति प्रत्यासत्याऽजाद्यकार-  
रान्तरूपप्रातिपदिकादित्यर्थः । सूत्रेऽजादिभिः स्त्रीत्वस्य विशेषणात् ‘पञ्चाङ्गी’ इत्या-  
टाच् नेति बोध्यम् । अत्र समाहारनिष्ठं स्त्रीत्वं नत्वजानिष्ठम् । अजा । अत्र “अजाद्यत-  
ष्टाप्” इति टापि, टपयोरित्स्ज्ञायां लोपे च ‘अज आ’ इति जाते “अकः सवर्णे दीर्घः”  
इति दीर्घत्वे ‘अजा’ इति जाते “प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्” इति  
सौ, उलोपे “हल्ङाभ्याम्नो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्” इति सलोपे ‘अजा’ इति सिद्धम्  
एवम्—एडका, अम्बा, इत्यादौ । मूषिकात् । अजादीनां मूषिकान्तशब्दानां  
प्राप्तस्य ङीपो वाचनार्थोऽजादिगणे पाठः । विलाता । बालादिविलातान्तशब्दाणां ।

भवती। भवन्ती। पचन्ती। टिड्ढाणञ् इत्यसज्जम्भजमात्रचतुर्थकृत्कृत्कृत्कृत्कृत्  
 ४।१।१५ अनुपसर्जनं यद्विदिदि तदन्तं वदन्तं प्रातिपदिकं ततः स्त्रियां ङीप् स्वात् ।  
 कुरुचरी । नदट् नदी । देवट् देवी । सौपर्णेयी । ऐन्द्री । औत्सी । ऊरुद्वयसी ।  
 ऊरुद्वन्ती । ऊरुमात्री । पञ्चतयी । आक्षिकी । (प्रास्थिकी) । लावणिकी । यादशी ।

लक्ष्मप्राप्तस्य ङीपो बाधनार्थोऽज्ञादिगणे पाठः । उगितश्च । “प्रातिपदिकात्” इत्यधि-  
 कृतं विशेष्यम्, उगिदिति विशेषणं तस्मात्तदन्तविधिः । “स्त्रियाम्” इत्यधिक्रियते ।  
 “ऊरुद्वयो ङीप्” इत्यतो ङीबनुवर्तते । तदाह—उगिदन्तात्प्रातिपदिकादिति । भवती ।  
 “भातेऽङ्वतुः” इति निष्पन्नभवतुशब्दस्य सर्वादिगणे पाठादुगितत्वव्यपदेशः । तथाच  
 भवत् शब्दात् “उगितश्च” इति ङीपि, ऊपयोरित्संज्ञायां ङोपे च कृते, संयोगे, विभ-  
 क्तिकार्ये च कृते ‘भवती’ इति । भवन्ती । भवत् शब्दात् सप्रन्तात् “उगितश्च” इति  
 ङीपि, ऊपयोरित्संज्ञायां ङोपे च “स्यस्यनोर्नित्यम्” इति जुमि, उमि गते, मित्वात्  
 “मिदचोऽन्यत्रपरः” इति अन्यत्राचः परे नस्थानुस्वारे परसर्वेषु च कृते संयोगे विभ-  
 क्तिकार्ये च कृते ‘भवन्ती’ इति । एवं ‘पचन्ती’ इति बोध्यम् । टिड्ढाणञ् । टिड्ढ  
 ङञ् अण्चेत्येवं क्रमेणैतरेतरयोगइन्द्रः । टिड्ढादीनां प्रत्ययत्वात्तेभ्यस्तदन्तग्रहणम् ।  
 इतश्चानुवृत्तस्य प्रातिपदिकस्य विशेष्यम् । “अज्ञाद्यत” इति सूत्रादनुवृत्तमपि अतः  
 इति प्रातिपदिकविशेषणमतः पुनस्तदन्तविधिः । कुरुचरी । कुरुषु चरतीति ‘कुरुचरी’  
 इत्यत्र “चरेष्टः” इति ङे, टित्वात् “टिड्ढाणञ्” इति ङीपि, ऊपयोर्लोपे, भवे अलोपे  
 संयोगे विभक्तिकार्ये च कृते ‘कुरुचरी’ इति । एवं नदट् टित्वाद् ङीपि नदी । देवट्  
 टित्वाद् ङीपि, ‘देवी’ इति । सौपर्णेयी । सुपर्णाया अपत्यं ङीति विग्रहः । तान्तत्वात्  
 सौपर्णेयं शब्दात् प्रकृतस्युत्प्रेण ङीपि, ‘सौपर्णेयी’ इति रूपम् । ऐन्द्री । इन्द्रो देवता  
 अस्या इति विग्रहः । अत्र अण्यन्तरत्वात् ङीप् । औत्सी । उत्से अवेति विग्रहः । “उत्सा-  
 दिभ्योऽञ्” इत्यभ्यन्तत्वात् औत्सक्यत्वात् ङीप् । ऊरुद्वयसी । ऊरु प्रमाणमस्या इति  
 विग्रहः । “प्रमाणे इवसज्जम्भजमात्रश्चः” इति इवसच् । तदभ्यन्तत्वात् ङीप् । एवम्—  
 ऊरुद्वन्ती, ऊरुमात्री इत्यत्र । पञ्चतयी । पञ्च अवयवा अस्या इति विग्रहः । “संज्ञाया  
 अवयवे तयप्” इति तयप्रत्ययान्तात् पञ्चतयशब्दात् “टिड्ढाणञ्” इत्यादिना ङीपि,  
 ऊपयोर्लोपे भवे अलोपे संयोगे विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः । आक्षिकी । अक्षेर्दोष-  
 तीति विग्रहः । “तेन दीप्यति सन्नति अवति जितम्” इति ठक् । ठगन्तत्वात् ङीप् ।  
 लावणिकी । लवणं पण्यमस्या इति विग्रहः । “लवणाट्ठम्” “ठस्येकः” आदिबुद्धिः,  
 “यस्येति च” लावणिकशब्दात् ङीप्, “यस्येति च” । ठहत्वेव सिद्धे ठक्ठयो  
 पृथक्पृथक् तु ठयो गितश्च स्वाकृत्यर्थश्च । यादशी । “स्वादिषु हञ्” इति कथञ्च  
 उपपदे हञ् कञ्, “जा सर्वनाम्नः” इति कञ्ठ्यद्वयत्वात् । ङीप्, “यस्येति च” । इ-  
 तरी । इव कतो । “इवसज्जितसर्विभ्यः कयप्” “इवस्य पिति कृति” इति कृत्, इव-

हत्तरो । ( नञ्स्नजीकक् क्युस्तद्वृत्तलुनानामुपसङ्ख्यानम् ) सौमी । पौत्सी ।  
 शाकीकी । आढ्यंकरणी । तरुणी । तलुनी ॥ यञश्च ४।१।१६ यञन्तात् प्रातिपदि-  
 कात् क्रियां ङीप् स्यात् । अकारलोपे कृते ॥ हलस्तद्धितस्य ६।४।१५० हलः  
 परस्य तद्धित्यकारस्वोपचभूतस्य लोपः स्यात् इति परे । गार्गी ॥ प्राचां ष्फतद्धितः  
 ४।१।१७ यञन्तात् षो वा स्यात् स च तद्धितः ॥ विद्गौरादिभ्यश्च ४।१।४१  
 विद्गो गौरादिभ्यश्च ङीप् स्यात् । गार्ग्यायणी, नर्तकी । गौरी । अनडुही, अनड-

रसब्दात् ङीप्, “यस्येति च” । नञ्स्नजीकक् । नञ् च स्नञ् च ईकक् च क्युन्  
 च तरुणश्च तलुनश्चैतेषामितरेतरङ्गन्तुस्तेषामपि ङीद्विधिवचनं कर्तव्यमित्यर्थः ।  
 सौमी, पौत्सीति । “स्त्रीपुंसाभ्याम्” इति नञ्स्नजौ । तत्र स्त्रीसब्दाच्चञि, आदिवृद्धिः,  
 जत्वम्, ङीप् “यस्येति च” । पुंससब्दात् स्नञि, आदिवृद्धिः, ङीप्, “यस्येति च” ।  
 शाकीकीति । ऋक्तिः आयुधविशेषः ग्रहरथम् अस्या इति विग्रहः । “क्षत्रियद्वयो-  
 कक्” । आदिवृद्धिः, ङीप्, “यस्येति च” । आढ्यंकरणीति । अनङ्क वाङ्मयः क्रियते  
 अनङ्गेति विग्रहः । “आङ्गसुभग” इत्यादिना क्युन् । “युवोः” इत्यनावेशः । “य-  
 द्भिषत्” इति मुम्, जत्वम्, ङीप् । “यस्येति च” । तरुणी । तरुणसब्दात् ङीप्—  
 ‘तरुणी’ इति । एवम् ‘तलुनी’ इति । यञश्च । यञ इति प्रत्ययत्वात्तदन्तग्रहणम् ।  
 “अन्नेभ्यो ङीप्” इत्यसौ ङीद्वित्यनुवर्तते । क्रियामित्यधिकृतं । तदाह—यञन्तादिति ।  
 अकारलोपे कृते इति । “यस्येति च” इत्यनेनेति शेषः । हलस्तद्धितस्य । हल इति वि-  
 द्योने पञ्चमी । परस्येयञ्वाहार्थं च । “यस्येति च” इति सूत्रात् ईतीत्यनुवर्तते, “सु-  
 रैतिष्वागस्त्य” इत्यतः उपधावा इति, ‘य’ इति पष्ठयन्तं च, “हे लोपोऽङ्गत्वाः”  
 इत्यतः लोप इति च । तदाह—एतः परस्येत्यादिना । गार्गी । गार्ग्यसब्दात् “यञञ्”  
 इति ङीप्, उपचोरित्संज्ञायां लोपे च “यचि अम्” इति अत्वे “यस्येति च” इति  
 अकारलोपे “हलस्तद्धितस्य” इति अकारलोपे संयोगे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः ।  
 प्राचां ष्फ तद्धितः । यञ इत्यनुवर्तते, क्रियामित्यधिकृतम् । ष्येति लुप्तप्रथमप्रथमम् ।  
 तदाह—यञन्तादिति । विद्गौरादिभ्यश्च । ष् इत् येषां ते पितः, गौरः आदिवेषामन्ते  
 गौरादयः । पितश्च गौरादयश्चेति द्वन्द्वः । गार्ग्यायणी । गार्ग्यसब्दात् “प्राचां  
 तद्धितः” इति ष्ये, बहुत् तस्य लोपे फस्य “आयनेयीनीचियः फलसङ्घातं अयञञ्  
 दीनाम्” इति आचनमादेशे अत्वे अलोपे अत्वे च “गार्ग्यायण” इति भूते तस्मात् “  
 गौरादिभ्यश्च” इति ङीप्, उपचोरित्पि अत्वे अलोपे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः ।  
 नर्तकी । नुली याञ्चविशेषे, “क्षिदिपनि क्युन्” “कः अययस्य” इति चङ्ग इत् ।  
 अयञ् इति अकारश्च इत्, “पुषोरमाङ्गौ” इति अकारदेशः, कङ्कपययुज्, रयययय ।  
 नर्तक इत्यस्मात् कित्वात् “विद्गौरादिभ्यश्च” इति ङीप्, अनुपपन्नलोपे अत्वे अलोपे  
 विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । गौरीति । अङ्ग गौरादित्वात् ङीप् । अनडुही । अनङ्क

वाही । आकृतिगणोऽयम् ॥ वयसि प्रथमे ४।१।२१ प्रथमवयोवाचिनोऽदन्तात्  
 स्त्रियां ङीप् स्यात् । कुमारी ॥ द्विगोः ४।१।२२ अदन्तात् द्विगोर्ङीप् स्यात् ।  
 त्रिलोकी । अजादित्वात्त्रिफला । त्र्यनीका सेना ॥ वर्णादिनुदात्तात्तोपधात्तो  
 नः ४।१।३६ वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनात् प्रातिपदिकाद्वा  
 ङीप् तकारस्य नकारादेशश्च । एता, एनी । रोहिता, रोहिणी ॥ वीतो गुणवचनात्  
 ४।१।४४ उदन्ताद् गुणवाचिनो वा ङीप् स्यात् । मृद्री, मृदुः ॥ बह्नादिभ्यश्च ४।१।४२

इह्यब्दात् “षिद्गौरादिभ्यश्च” इति ङीषि, अनुबन्धलोपे “आमनडुहः स्त्रियां वा”  
 इति वा आमि, मिस्त्वादन्त्यादश्चः परे यणि, संयोगे विभक्तिकार्ये च कृते ‘अनड्वाही’  
 इति रूपम् । आममावे—‘अनडुही’ इति । वयसि प्रथमे । प्रथमे वयसीत्यनन्तरं वि-  
 धमानादिति शेषः । “अजाद्यत इप्” इत्यतः अत इत्यनुष्टुप्तेन प्रातिपदिकादित्यङि-  
 कृतं विज्ञेयते । तदन्तविधिः । स्त्रियामित्यङिकृतम् । “ऋन्नेभ्यः” इत्यतो ङीबित्य-  
 नुवर्तते । तदाह—प्रथमवयोवाचिन इति । कुमारी । कुमारशब्दात् “वयसि प्रथमे”  
 इति ङीप् । द्विगोः । “स्त्रियाम्” इति ‘अत’ इति ङीबिति चानुवर्तते । तदाह—अद-  
 न्तादिति । त्रिलोकी । त्रयाणालोकानामिति च विग्रहे “तद्वितार्थ” इति द्विगुः । “अका-  
 रान्तोत्तरपदः” इति ङीत्वम्, त्रिलोकशब्दात् टाबपवादो ङीप् । “यस्येति च”  
 इति अकारलोपः । अजादित्वात् त्रिफला, त्र्यनीकेति । भवतीति शेषः । त्रयाणां फलानां  
 समाहारः इति, त्रयाणामनीकानामिति च विग्रहे “तद्वितार्थ” इति द्विगुः । “अका-  
 रान्तोत्तरपदः” इति ङीत्वम्, “द्विगोः” इति ङीपं बाधित्वा अजादित्वाट्टाविति  
 भावः । वर्णादनु । वेति ङीबिति चानुवर्तते । अनुदात्तादिति वर्णादित्यस्य विशेषणम्,  
 तदन्तविधिः । तोपधादित्यपि वर्णादित्यत्रान्वेति, तकारः उपधा यस्येति विग्रहः । तका-  
 रादकार उच्चारणार्थः । वर्णादित्येतत्प्रातिपदिकादित्यस्य विशेषणम् । तदन्तविधिः । त  
 इति षष्ठी, तकारस्येत्यर्थः । न इत्यत्र नकारादकार उच्चारणार्थः, नकार इत्यर्थः । तदाह—  
 वर्णवाचीत्यादिना । तदन्तादनुपसर्जनादिति । अनुपसर्जनादित्यनुष्टुपं वर्णान्तेऽन्वेति, न  
 तु वर्णादित्यत्रेति भावः । एनी, एता । ‘एनी’ इत्यत्र वर्णवाचकात् एतशब्दात् “वर्णाद-  
 नुदात्तात्तोपधात्तो नः” इति ङीपि, तकारस्य नत्वे अस्वाद्लोपे संयोगे विभक्तिकार्ये च  
 कृते ‘एनी’ इति रूपम् । पचे टापि ‘एता’ इति । एवं रोहितशब्दात् ङीपि, तस्य  
 नत्वे, नस्य णत्वे ‘रोहिणी’ इति । पचे टापि ‘रोहिता’ इति । वीतो गुणवचनात् ।  
 प्रातिपदिकादित्यनुष्टुप् । वा उक् इति छेदः । उता गुणवचनस्य प्रातिपदिकस्य  
 विशेषणम् । तदन्तविधिः । तदाह—उदन्तादिति । वा ङीबिति । ङीषिति नात्रानुवर्तते ।  
 मृद्री, मृदुः । मृदुशब्दात् “वीतो गुणवचनात्” इति ङीपि, “इको यणचि” इति यणि  
 विभक्तिकार्ये च ‘मृद्री’ इति । पचे—मृदुः । बह्नादिभ्यश्च । गुणवचनत्वाभावाद्वाच्यम् ।

एभ्यो वा ङीष् स्यात् । बह्वी, बहुः । ( कृदिकारादक्तिनः ) रात्रिः, रात्री-  
( सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके ) शकटी, शकटिः ॥ पुंयोगादाख्यायाम् ४।१।४८  
या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते ततो ङीष् स्यात् । गोपस्य स्त्री गोपी । ( पालका-  
न्तान्न ) गोपालिका । अश्वपालिका ॥ प्रत्ययस्थात्कापूर्वस्यात् इदाप्यसुपः  
७।३। ४८ प्रत्ययस्थात्कारात्पूर्वस्यात्कारस्येकारः स्यादापि स आप् सुपः परो न  
चेत् । सर्विका । कारिका । अतः किम् ? नौका । प्रत्ययस्थात्किम् ? शक्नोतीति  
शका । असुपः किम् ? बहुपरिव्राजका नगरी । ( सूर्यादेवतायां चाप् वाच्यः )  
सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या । देवतायां किम् ? ( सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च )

ङीषो विधानार्थमिति भावः । बह्वी, बहुः । “बह्नादिभ्यश्च” इति वा ङीष्, “इको  
यणचि” इति यण् । कृदिकारादिति । गणसूत्रमिदम् । रात्रिः, रात्रीति । “राक्षदित्यं  
त्रिप्” इति राधातोरौणादिकस्त्रिप् । गुणवचनत्वामावात् उदन्तत्वामावाच्चाप्राप्ते  
वचनम् । सर्वतोऽक्तिन्नर्थादिति । इदमपि गणसूत्रम् । कृदिकारान्तादकृदिकारान्तादपि  
ङीष् वा स्यात्, नतु क्तिन्नर्थकप्रत्ययान्तादित्यर्थः । शकटिः, शकटी । शकटिशब्दात्  
‘सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके’ इति ङीषि, भत्वादिलोपे ‘शकटी’ इति । पञ्चे-शकटिः ।  
पुंयोगादाख्यायाम् । पुंसा योगः पुंयोगः । हेतौ पञ्चमी । आख्यायामिति पञ्चम्यर्थे  
सप्तमी । आख्याशब्दो बोधकपरः । आख्या चोपस्थितत्वात्पुंस एव न स्त्रियाः । स्त्रियां  
वर्तमानस्य स्त्र्याख्यत्वाव्यभिचारादाख्यापदवैयर्थ्यापत्तेः । पुंस्त्वेव यः प्रसिद्धः  
शब्द इत्यर्थः । पुंयोगाद्देतोः प्रवृत्तिनिमित्तारोपेण स्त्रियां वर्तमानात्पुंभोधकाच्चब्दात्  
ङीषित्यर्थः । गोपी । “अत्र पुंयोगादाख्यायाम्” इति गोपशब्दाद् ङीषि भत्वाद्-  
लोपे विभक्तिकार्यं ‘गोपी’ इति । गोपालिका, अश्वपालिका । अत्र “पुंयोगादाख्यायाम्”  
इति ङीषि प्राप्ते “पालकान्तान्न” इति निषेधे “अजाद्यतष्टाप्” इति टापि, टपयो-  
र्लोपे ‘गोपालक आ’ इति जाते “अकः सवर्णे दीर्घः” इति दीर्घत्वे “प्रत्ययस्थात्”  
इति लकारोत्तरवर्त्यकारस्य इत्वे विभक्तिकार्यं च कृते ते रूपे सिद्ध्यतः । प्रत्ययस्थात् ।  
ककारादिति । क् इति वर्णादित्यर्थः । अकार उच्चारणार्थः । स आभिति । इत्वविधौ  
यः परनिमित्तत्वेनोपात्तः स आभित्यर्थः । सुपः परो न चेदिति । सूत्रे असुप इति —  
म्यन्तम्, असमर्थसमासः । आपि सुपः परस्मिन् सति इत्वं न भवतीत्यर्थो विवक्षितः  
इति भावः । सर्विका । सर्वकशब्दात् “अजाद्यतष्टाप्” इति टापि, टपयोर्लोपे सर्वकशब्दात्  
“प्रत्ययस्थात्कापूर्वस्यात् इदाप्यसुपः” इति वकारोत्तरवर्त्यकारस्य इत्वे विभक्तिकार्यं च  
कृते ‘सर्विका’ इति । एवं ‘कारिका’ इत्यत्र । सूर्यादेवतायामिति । देवताभूतायां स्त्रियां  
पुंयोगाद्देवतायां सूर्यशब्दात् चाप् वक्तव्य इत्यर्थः । “पुंयोगात्” इति ङीषोऽप्यस्य  
प्राप्तौ । सूर्या । प्रकृतसूत्रेण चापि, सर्वर्णदीर्घः । सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां चेति ।



आचार्यानी वा आचार्यानी । ( अर्थज्ञप्रियाभ्यां वा स्वार्यं ) अर्वाणी, अर्वाणी  
 सत्रियाणी, सत्रिया ॥ क्रीतात् करणपूर्वात् ४११५० क्रीतादन्तात् करण  
 जिनां ङीप् स्वात् । वक्षक्रीती । कविच-घनक्रीता ॥ स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयो  
 गोपचात् ४११५६ असंयोगोपघमुपसर्जनं यत् स्वाङ्गं तदन्तादन्तात् ङीप्  
 स्वात् । केशानतिक्रान्ता अतिकेशी, अतिकेशा । चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा । असंयोगो  
 चात् किम् ? सुगुल्फः । उपसर्जनात्किम् ? शिखा ॥ न क्रोडादिवह्वः ४११५६  
 क्रोडादेर्वह्वश्च स्वाङ्गाच्च ङीप् । कल्याणक्रोडा । आकृतिगणोऽयम् ॥ नखमुखात्

कृते 'आचार्यानी' इति । अर्थज्ञप्रियाभ्यां वा । इति वार्तिकम् । आनुङ्गीवाविति शेषः ।  
 स्वार्यं इति व्याख्यानलभ्यम् । तेन पुंयोगनिरासः । अर्वाणी । अर्थज्ञप्रियाभ्यां  
 "अर्थज्ञप्रियाभ्यां वा स्वार्यं" इति विकल्पेन ङीपि आनुकि णत्वे च 'अर्वाणी' इति ।  
 पक्षे—अर्वा । एवं सत्रियाणी, सत्रिया इति । क्रीतात्करणपूर्वात् । प्रातिपदिकादित्यनुङ्  
 चम्, अत् इत्यनुङ्चत्वेन क्रीतादित्यनेन च विशेष्यते, तदन्तविधिः । तदाह—क्रीतान्त-  
 दित्यादिना । करणमादिर्यस्येति विग्रहः । प्रातिपदिकशब्दो विशेष्यम्, तेन करण-  
 देरिति पुंसघमुपपन्नम् । वक्षक्रीती । वक्षः क्रीता 'वक्षक्रीती' अत्र "क्रीतात्करणपूर्वात्"  
 इति ङीपि, "वस्येति च" इत्यकारलोपः । क्वचिन्नेति । "कर्तृकरणे कृता बहुलम्"  
 इति बहुलग्रहणेन "गतिकारकोपपदानाम्" इत्यस्य क्वचिदग्रहृत्यवगमादिह सुबन्तेन  
 समासः । तत्र च सुपः प्रागोवान्तरङ्गत्वात् टापि सति ततः सुपि टाबन्तप्रकृतिक-  
 सुबन्तेन समासे सुब्लुकि घनक्रीता शब्दस्य अदन्तत्वाभावाच्च ङीपित्वार्थः ।  
 स्वाङ्गाच्च । उपसर्जनादिति असंयोगोपघादिति च स्वाङ्गादित्यग्राप्तेति । स्वाङ्गादि-  
 तात् अत् इत्यनुङ्चत्वं च प्रातिपदिकादित्यनुङ्चत्वं विशेषणम्, तदन्तविधिः । तदाह—  
 असंयोगोपघमित्यादिना । वा ङीपिति । "अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा" इत्यतो वेति "अन्यतो ङीप्"  
 इत्यतो ङीपित्वस्य चानुङ्चत्वेरिति भावः । अतिकेशी । केशानतिक्रान्ता  
 इत्यत्र अतिकेशशब्दात् "स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपचात्" इति ङीपि सति  
 केशी । पक्षे—अतिकेशा । एवं चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा । सुगुल्फेति । सु क्रान्त-  
 यस्या इति विग्रहः । अत्र संयोगोपघत्वान्न ङीप् । उपसर्जनात् किमिति । केवलकेशा-  
 शब्दानाम् अनुपसर्जनानां स्त्रीत्वविरहादेवाप्राप्तेः प्रश्नः । शिखेति । अत्र  
 त्वात् केवलशिखाशब्दात् ङीप् निष्प्रत्ययमुपसर्जनग्रहणमित्युक्तम् । अन्यथा  
 त्वा पक्षे ङीप्स्वादिति भावः । स्वाङ्गं त्रिजा-अर्धवर्गमृतिमत् स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकृतं  
 अतस्त्वं तत्र दृष्टं च, तेन चैतत्तथायुतम् । इति भाष्ये स्थितम् । न क्रोडादिवह्वः  
 आदिर्यस्येति, वह्वःअचः वस्येति च विग्रहः । क्रोडादिभ्य बह्वश्च इति समास-  
 क्रोडादेरिति । क्रोडादिर्गजः, बह्वश्च अत् स्वाङ्गं तदन्तात् ङीप् नेत्यर्थः ।



ज्ञायाम् ४।१।५८ ङीप् न स्यात् ॥ पूर्वपदात्संज्ञायामगः ८।४।३ पूर्वपदस्थानि-  
मिप्तात्परस्य नस्य णः स्यात् संज्ञायाम्, न तु गकारव्यवधाने । शूर्पणखा । गौर-  
मुखा । संज्ञायां किम् ? ताम्रमुखी कन्या ॥ जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ४।१।६३  
जातिवाचि यच्च च स्त्रियां नियतमयोपधं ततः स्त्रियां ङीप् स्यात् । तटी । वृषली ।  
कठी । बह्वृची । जातेः किम् ? मुण्डा । अस्त्रीविषयात्किम् ? बलाका । अयोपधा-  
त्किम् । क्षत्रिया । ( योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रति-  
षेधः ) हयी । गवयी । मुकयी । “हस्तद्वितस्य” इति यलोपः । मनुषी ( मत्स्य-

कल्याणी क्रोडा यस्या इति विग्रहः । “स्त्रियाः पुंवत्” इति कल्याणीशब्दस्य पुंव-  
ज्ञावः । अत्र कल्याणक्रोडाशब्दात् “स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्” इति ङीषि प्राप्ते “न क्रोडा-  
दिबह्वचः” इति ङीषो निषेधे, टापि च कृते ‘कल्याणक्रोडा’ इति । नखमुखात्संज्ञायाम् ।  
नखमुखादिति समाहारद्वन्द्वः । शेषपूरणेन सूत्रं व्याचष्टे—ङीव् नेति । “स्वाङ्गाच्च”  
इति प्राप्तस्य निषेधोऽयम् । पूर्वपदात् । रषाम्याम् इत्यनुबुधम् । पूर्वपदशब्देन  
पूर्वपदस्य लक्ष्यते । “रषाम्याम्” इत्यनेन लुब्धो रेफः पञ्च प्रत्येकमन्वेति । तदाह—  
पूर्वपदस्थानिमिप्तादिति । शूर्पणखा । अत्र “स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्” इति ङीषि प्राप्ते  
“नखमुखात्संज्ञायाम्” इति ङीषो निषेधे, टापि, सर्वर्षदीर्घे “शूर्पणखा” इति भूते  
“पूर्वपदात्संज्ञायामगः” इति णत्वे विभक्तिकार्यं च “शूर्पणखा” इति रूपम् । एवं “गौर-  
मुखा” इत्यत्रापि । ताम्रमुखी कन्या । अत्र संज्ञाया अभावाच्च ङीषः प्रतिषेधः । जातेरस्त्री ।  
अर्थे कार्यासम्भवाच्छब्दे कार्यं विज्ञायत इत्याह—जातिवाचीति । न च स्त्रियां नियतमिति ।  
ङीषविषयः नियमेन वाच्यो यस्याः इति बहुव्रीहिणा ङीषविषयशब्दो नियतस्त्रीलिङ्गपरः ।  
तथा च अस्त्रीविषयादित्यनेन अनियतस्त्रीलिङ्गादिति विवक्षितम्, नैयत्यलाभायैव विष-  
यग्रहणम् । अन्यथा अस्त्रिया इत्येवावश्यमिति भावः । जातिरुचणम्—“आकृतिग्रहणा  
जातिः, लिङ्गानाञ्च न सर्वमाक् । सकृदाख्यातनिर्ग्राहा, गोत्रं च चरणैः सह” इति ।  
तटी । तटशब्दात् “जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्” इति ङीषि, भत्वादलोपे, संयोगे  
विभक्तिकार्यं च कृते ‘तटी’ इति रूपम् । वृषली । द्वितीयलक्षणघटितत्वात् जातित्वेन  
ङीष्—कठी, बह्वृची । अत्र “गोत्रं च चरणैः सह” इति जातित्वम् । मुण्डा । जातित्वा-  
भावाच्च ङीष् । बलाका । नित्यस्त्रीलिङ्गत्वाच्च ङीष् । क्षत्रिया । योपधत्वाच्च ङीष् । योप-  
धप्रतिषेधे हयगवयेति । वार्तिकमिदम् । हवादीनां योपधत्वेऽपि ङीष् वाच्य इत्यर्थः ।  
इतीति । हयशब्दस्य जातित्वेऽपि योपधत्वादप्राप्ते ङीषि, “हयगवयमुकय” इत्यनेन  
योपधप्रतिषेधाभावे “जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्” इति ङीषि, अनुबन्धलोपे भत्वे  
अलोपे, संयोगे विभक्तिकार्यं च तत्सिद्धिः । इतीति अत्रा प्रसिद्धा । गवयीति । गोस-  
हस्यतुष्पाजातिविशेषः । मुकयी । चतुष्पाजातिविशेषः । हत इति । मनुष्यशब्दात्

स्य ङ्यां ) यलोपः । मत्सी ॥ इतो मनुष्यजातेः ४।१।६५ ङीप् स्यात् -  
दाक्षी ॥ ऊङुतः ४।१।६६ उदन्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः क्रियामूढ् स्यात् ।  
कुरुः । अयोपधात्किम् ? अथ्यर्जुर्बाह्वी ॥ पङ्कोश्च ४।१।६७ पङ्कूः ( श्वशुरस्यो-  
काराकारलोपश्च ) श्वश्रूः ॥ ऊरुत्तरपदादौपम्ये ४।१।६९ उपमानवाचि पूर्व-  
पदमूरुत्तरपदं यत्प्रातिपदिकं तस्मादूढ् स्यात् । करमोरुः ॥ संहितशफलक्षणा-

स्त्रियां ङीषि, 'मनुष्य ई' इति स्थिते "हलस्तद्धितस्य" इति यकारस्य लोपे "यस्ये-  
ति च" इत्यकारलोपे 'मनुषी' इति रूपम् । मत्स्यस्य ङ्यामिति । "सूर्यतिथ्य" इति  
सूत्रे वार्तिकमिदम् । मत्स्यस्यावयवस्य यकारस्य लोपः स्यात् ङ्यामेवेति नित्य-  
मार्थमिदम् । मत्सीति । ङीषि, यकारलोपे "यस्येति च" इत्यलोप इति भावः । इतो  
मनुष्यजातेः । शेषपूरणेन सूत्रं व्याचष्टे—ङीप् स्यादिति । इदन्तान्मनुष्यजातिवा-  
चिनः स्त्रियां ङीप् स्यादित्यर्थः । स्त्रीप्रत्ययविधिषु अत इत्यनुवृत्तेरिदन्तात् "जातेरङी-  
विषयादयोपधात्" इत्यस्मादप्राप्तौ वचनम् । दाक्षीति । दक्षस्यापत्यं स्त्री इत्यर्थे "अत  
इष्" इति इषि, अङ्गोपः, आदिष्टुद्धिः, 'दाक्षि' इति जाते तस्मात् "इतो मनुष्यजातेः"  
इति ङीषि, मत्वे "यस्येति च" इति इकारलोपे, संयोगे विभक्तिकार्यं च कृते 'दाक्षी'  
इति रूपम् । अत्र "गोत्रं च चरणैः सह" इति जातित्वम् । दक्षः—प्रजापतिविशेषः ।  
ऊङुतः । 'अयोपधात्' इति मनुष्यजातेरिति चानुवर्तते, उत इति तद्विशेषणम्, तदन्त-  
विधिः । तदाह—उकारान्तादित्यादिना । कुरुः । कुरुष्वेत्रस्य राजा कुरुः, तस्यापत्यं स्त्रीत्य-  
र्थः । "गोत्रं च चरणैः सह" इति जातित्वम् । कुक्षब्दात् ऊङि सवर्णदीर्घः ।  
अथ्यर्जुः । अत्र चरणत्वाज्जातित्वेऽपि योपधत्वाच्च ऊङ् । पङ्कोश्च । ऊङिति सूत्रशेषः ।  
अग्नपादत्वम्—पङ्कुत्वं न जातिः । अत "ऊङुतः" इत्यप्राप्तौ वचनमिदम् । पङ्कूः ।  
पङ्कुषब्दात् "पङ्कोश्च" इत्युक्तिः, "अकः सवर्णे दीर्घः" इति दीर्घत्वे विभक्तिकार्यं च  
कृते 'पङ्कूः' इति रूपम् । श्वशुरस्येति । यकारात् ऊङनुकृत्यते । श्वशुरस्य स्त्री  
इत्यर्थे पुंयोगलक्षणे ङीषि प्राप्ते तदपवाद ऊङ्, तत्संनियोगेन रेफादकारस्य सकारा-  
दुकारस्य च लोप इत्यर्थः । श्वश्रूः । अत्र श्वशुरशब्दात् "श्वशुरस्योकाराकारलो-  
पश्च" इत्यनेन ऊङि, सकारोत्तरवर्त्युकारस्य अकारस्य च लोपे संयोगे विभक्तिकार्यं  
च कृते 'श्वश्रूः' इति रूपम् । ऊरुत्तर । ऊरुः उत्तरपदं यस्येति बहुव्रीहिः । प्रातिपदि-  
कादित्यनुवर्तते । उत्तरपदस्येत्यनेन पूर्वपदमाचिसम् । औपम्ये इति तत्रान्वेति, उपमी-  
यते अनव्येत्युपमा-उपमानम्, उपमैव औपम्यं स्वार्थं ष्यञ् । तदाह—उपमानवाचीति ।  
करमोरुः । करमोरुशब्दात् "ऊरुत्तरपदादौपम्ये" इत्युक्तिः, "अकः सवर्णे दीर्घः" इति  
दीर्घत्वे विभक्तिकार्यं च कृते 'करमोरुः' इति रूपम् । संहितशफ । संहित, शफ,  
ऊङुत, वाम एतत्पूर्वपदादप्यूरुत्तरपदादूढ् स्वादित्यर्थः । पूर्वमेव सिद्धे किमर्थमिदं  
मित्यत आह—ग्रनौपम्यावमिति । संहितोरुः । संहितौ—संरिलहौ ऊङ् यस्या इति

मादेख ४१।७० अनीपम्यां सूत्रम् । संहितोरुः । सफोरुः । लङ्गणोरुः । वामोरुः ।  
शाङ्गरवाद्यो कोन् ४१।७२ शाङ्गरवादेर्यो योऽकारस्तदन्ताव आतिवाचिनो  
कोन् स्यात् । शाङ्गरवी । वैदी । आङ्गणी । ( नूनरयोर्वृद्धिश्च ) नारी ॥ यूनस्तिः  
४१।७३ युवन् शब्दात् स्त्रियां तिः प्रत्ययः स्यात् । युवतिः ॥ इति स्त्रीप्रत्ययः ॥

शास्त्रान्तरेऽप्रविधानां बालानां चोपकारिका ।

कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥ १ ॥

इति श्रीवरदराजकृता लघुसिद्धान्तकौमुदी समाप्ता ॥

विग्रहः । अत्र संहितोरुशब्दात् “संहितशफलङ्गणवामादेख” इत्युक्ति दीर्घत्वे विभक्ति-  
कार्ये च कृते ‘संहितोरुः’ इति रूपम् । एवं सफोरुः, लङ्गणोरुः, वामोरुः, इत्यत्र  
बोध्यम् । शाङ्गरवाद्यो कोन् । शाङ्गरवादीति लुसपञ्चमीकम् । अज इति षष्ठी । अत  
इत्यनुवृत्तं पञ्चम्यन्ते अन्वेति । जातेरित्यनुवृत्तमतो विशेष्यते । तदन्तविधिः । तदाह-  
शाङ्गरवादेरित्यादिना । शाङ्गरवी । श्रोत्रपत्यं स्त्रीत्यर्थे अण्, आदिवृद्धिः, रपरत्वम्,  
ओर्मुणः, अवादेशः, ‘शाङ्गरव’ इत्यस्मात् “गोत्रं च चरणैः सह” इति जाति-  
त्वात् ङीषि प्राप्ते सम्प्रसाध्य “शाङ्गरवाद्यो कोन्” इति ङीनि, भत्वे अलोपे संचोदे  
च कृते ‘शाङ्गरवी’ इति सिद्धम् । वैदीति । विदित्वापत्यं स्त्रीत्यर्थः । “अनृणा-  
मन्तर्ये विदादिभ्योऽङ्” । गोत्रत्वेन जातित्वात् ङीषि प्राप्ते प्रकृतसूत्रेण कोन् ।  
सर्वं ‘आङ्गणी’ इति । नूनरयोर्वृद्धिश्च । चात् कोन् । नारीति । नूनरशब्दाभ्यां  
“नूनरयोर्वृद्धिश्च” इत्यनेन ङीनि, अनुबन्धलोपे नृशब्दस्व वृद्धौ रपरत्वे संचोदे  
विभक्तिकार्ये च कृते ‘नारी’ इति । नरशब्दात् ङीनि, भत्वे अलोपे पूर्वाकारस्य  
वृद्धौ विभक्तिकार्ये च तत्सिद्धिः । यूनस्तिः । “तद्धिताः” इत्यनुवृत्तमेकवचनेन विप-  
श्चिष्यते । तदाह—युवन्शब्दात् विप्रत्ययः स्यात्स च तद्धित इति । चिचामिति शेषः ।  
“समर्थानाम्” इत्यतः प्राक् तदधिकारस्योक्तत्वादिति भावः । नान्तलङ्गणङीयोऽङ-  
कावः । युवतिः । युवनृशब्दात् “अन्नेभ्यो ङीप्” इति प्राप्तं ङीपं प्रसाध्य “यूनस्तिः”  
इति तिप्रत्यये, “स्वादिभ्यः सर्वनामस्थाने” इति पदसंज्ञायाम् “नलोपः प्रातिपदिका-  
न्तात्” इति नलोपे ‘युवति’ इति भूते “कृचदितसमासाश्च” इति तद्धितान्तत्वाप्राप्ति-  
पदिकत्वे सौ, सत्वे विसर्गे च ‘युवतिः’ इति रूपम् ।

इति श्रीकोण्डिन्यकुलान्तर्गतसोऽश्वत्थपाददामोदरात्मत्रय्याकरणा चार्थपण्डितसदाशिव-

शास्त्रिकृतायां लघुसिद्धान्तकौमुदीन्याख्यायां सुधाख्यायां कीप्रत्ययः ॥

## टीकाकर्तुः परिचयः ।

आसीन्नासिकमण्डलान्तरलसत् श्री 'गाळणे' नामक-

ग्रामे सर्वमनोदरे बुधवरश्रेणीसमाराधितः ।

श्रौतस्मार्तचणः सुधीः किल महादेवाऽभिधानः श्रुतः

तज्जन्मा खलु विश्रुतः श्रुतयुतो दामोदरो मोददः ॥ १ ॥

तस्याऽयं तनयः सदाशिव इति ख्यातो धराभूषणात्

मोकाटे कुलसम्भवात् गणपतेर्विद्याम्बुषेः श्रीगुरोः ।

सानन्दं समधीत्य सद्गुरुकृपाऽऽलम्बाद्विधत्ते विदां

चेतोरब्जनहेतवे बहुविधं लेखात्मकं चापलम् ॥ २ ॥

तेनेयं लघुकौमुद्यां बालानां बोधहेतवे ।

विस्तृता सरला टीका सुधानाम्नी मनोहरा ॥ ३ ॥

सप्ताङ्कनन्दभूवर्षे वैक्रमे दशमीतिथौ ।

ज्येष्ठेऽसिते शुगुदिने काशिकायां समापिता ॥ ४ ॥

सदाशिवकृपादृष्ट्या सदाशिवविनिर्मिता ।

सदा शिवाय बालानां भूयादेशा 'सुधा'ऽन्वहम् ॥ ५ ॥

# धीः #

## अथ पाणिनीयशिक्षा ।

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा ।  
ज्ञात्वा नुपूर्वं तद्विद्याद्यथोक्तं लोकवेदयोः ॥ १ ॥  
प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिमिः ।  
पुनर्यत्कीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम् ॥ २ ॥  
त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः ।  
प्राकृते संस्कृते चापि स्वर्यं प्रोक्ताः स्वर्यम्भुवा ॥ ३ ॥  
स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः ।  
यादयश्च स्मृता द्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः ॥ ४ ॥  
अनुस्वारो विसर्गश्च क पौ चापि पराश्रितौ ।  
दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो ह्रकारः प्लुत एव च ॥ ५ ॥ १ ॥  
आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्यान्मनो युक्ते विवक्षया ।  
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥ ६ ॥  
मारुतस्तूरसि चरन्मन्त्रं जनयति स्वरम् ।  
प्रातःसवनयोगं तं कुन्दो गायत्रमाश्रितम् ॥ ७ ॥  
कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यमे त्रैष्टुभानुगम् ।  
तारं तार्तोयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगम् ॥ ८ ॥  
सोदीर्णो मूर्धन्यमिहृतो वक्त्रमापद्य मारुतः ॥  
वर्णाजनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः ॥ ९ ॥  
स्वरतः कालतः स्थानात्प्रयत्नानुप्रदानतः ।  
इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तद्विबोचत ॥ १० ॥ २ ॥  
उदात्तानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वराक्षयः ।  
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि ॥ ११ ॥  
उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभचैवतौ ।  
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः ॥ १२ ॥  
अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।  
बिद्धामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥ १३ ॥  
ओभावश्च विदुषिश्च क्षपसा रेफ एव च ।  
बिद्धामूलमुपपन्न च गतिरष्टविबोध्यतः ॥ १४ ॥

## पाणिनीयसिद्धा ।

यद्योभावप्रसंगानमुकारादिपरं पदम् ।  
 स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्वयक्तमूष्मणः ॥ ११ ॥ ३ ॥  
 हकारं पञ्चमैर्युक्तमन्तःस्थाभिश्च संयुतम् ।  
 औरस्यं तं विज्ञानीयात्कण्ठ्यमाहुरसंयुतम् ॥ १२ ॥  
 कण्ठ्यावहाविच्युयशास्तालव्या ओष्ठजावुपु ।  
 स्युर्मूर्धन्या ऋद्वरषा दन्त्या लुतुलसाः स्मृताः ॥ १३ ॥  
 जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्त्योष्ठयो वः स्मृतो बुधैः ।  
 एए तु कण्ठतालव्या ओऔ कण्ठोष्ठौ स्मृतौ ॥ १४ ॥  
 अर्धमात्रा तु कण्ठ्या स्यादेकारैकारयोर्भवेत् ।  
 ओकारौकारयोर्मात्रा तयोर्विधृतसंघृतम् ॥ १५ ॥  
 संघृतं मात्रिकं ज्ञेयं विधृतं तु द्विमात्रिकम् ।  
 घोषा वा संघृताः सर्वे अघोषा विधृताः स्मृताः ॥ २० ॥ ४ ॥  
 स्वराणामूष्मणां चैव विधृतं करणं स्मृतम् ।  
 तेभ्योऽपि विधृतावेष्टौ ताम्यामैचो तथैव च ॥ २१ ॥  
 अनुस्वारवमानां च नासिकास्थानमुच्यते ।  
 अयोगवाहा विज्ञेयश्चाश्रयस्थानभागिनः ॥ २२ ॥  
 अलाबुवीणानिर्घोषो दन्त्यमूल्हस्वस्वराननु ।  
 अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यं होः क्षपसेषु च ॥ २३ ॥  
 अनुस्वारे विधृत्यान्तु विरामे चाक्षरद्वये ।  
 द्विरोष्ठौ तु विगृहीयाद्यत्रौकारवकारयोः ॥ २४ ॥  
 व्याघ्री यथा हरेत्सुत्रान्द्वंद्वान्वां न च पीडयेत् ।  
 मीता पतनभेदाम्यां तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत् ॥ २५ ॥ ५ ॥  
 यथा सौराष्ट्रिका नारी तर्ह्येत्यभिभाषते ।  
 एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याः सेअरां द्वव खेद्वया ॥ २६ ॥  
 रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन्नो असेत्पूर्वमक्षरम् ।  
 दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात्पञ्चाशत्स्वमाचरेत् ॥ २७ ॥  
 हृदये चैकमात्रस्वर्धमात्रस्तु मूर्धनि ।  
 नासिकायां तथार्धं च रङ्गस्यैवं द्विमात्रता ॥ २८ ॥  
 हृदयादुत्करे तिष्ठन्कांस्तेन समनुस्वरन् ।  
 मार्दवं च द्विमात्रं च जघन्वां इति निदर्शनम् ॥ २९ ॥  
 मण्ड्ये तु कम्पयेत्कम्पमुमौ पाश्वौ समौ भवेत् ।  
 सरङ्गं कम्पयेत्कम्पं रथीवेति निदर्शनम् ॥ ३० ॥  
 एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च प्रीकृताः ।

सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३१ ॥ ६  
 गीती सीघ्री सिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः ।  
 अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठप्रपञ्चमाः ॥ ३२ ॥  
 माधुर्यमचरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।  
 घैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ॥ ३३ ॥  
 क्षाब्धितं भीतमुत्कृष्टमव्यक्तमनुनासिकम् ।  
 काकस्वरं क्षिरसि नतं तथा स्थानविवर्धितम् ॥ ३४ ॥  
 उपांशु दष्टं स्वरितं निरस्तं विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम् ।  
 निष्पीडितं प्रस्तपदाचरं च वदेच्च दीप्तं न तु सामुनास्यम् ॥ ३५ ॥  
 प्रातः पठेन्नित्यमुरःस्थितेन स्वरेण शार्दूलस्तोषमेन ।  
 मध्यन्दिने कण्ठगतेन चैव चक्राद्भ्रंसं कृतिसञ्चिमेन ॥ ३६ ॥  
 तमरं तु विद्यात्सवनं कृतीन् त्रिरोगतं तच्च सदा प्रयोज्यम् ।  
 मयूरहंसान्यमृतस्वराणां तुल्येन नादेन क्षिरःस्थितेन ॥ ३७ ॥ ७ ॥  
 अचोऽस्पृष्टा वज्रस्वीयन्नेमस्पृष्टाः क्षरः स्मृताः ।  
 क्षेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निबोधानुप्रदानतः ॥ ३८ ॥  
 अमोऽनुनासिका नहौ नादिनो हसपञ्चस्मृताः ।  
 ईषच्चादा यणो जश्च नासिनस्तु स्वप्नद्वयः ॥ ३९ ॥  
 ईषच्छ्वासांश्चरो विद्याप्रोक्तमैतद्यचक्षते ।  
 दाक्षीपुत्रः पाणिनिश्च वेनेदं व्यापितं मुनि ॥ ४० ॥  
 छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।  
 ज्योतिषामयनं चक्षुर्निश्चितं श्रोत्रमुच्यते ॥ ४१ ॥  
 क्षिप्वाघ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।  
 तस्मात्साङ्गमधीत्येव ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४२ ॥ ८ ॥  
 उदात्तमाख्याति वृषोऽङ्गुलीनां प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्ध्ना ।  
 उपान्तमध्ये स्वरितं पृष्ठं च कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव ॥ ४३ ॥  
 उदात्तं प्रदेशिनीं विद्याध्यचयं मध्यतोऽङ्गुलिम् ।  
 निहतं तु कनिष्ठिकया स्वरितोपकनिष्ठिकाम् ॥ ४४ ॥  
 अन्तोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम् ।  
 मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तं त्र्युदात्तमिति नवपदसंख्या ॥ ४५ ॥

अग्निः सोमः प्र वो दीर्घं हविषां स्वर्गहस्पतिरिन्द्रावृहस्पती ।

अग्निरित्यन्तोदात्तं सोम इत्याद्युदात्तं प्रेत्युदात्तं च इत्यनुदात्तं दीर्घं नीचस्वरितम् ।

हविषां मध्योदात्तं स्वरिति स्वरितम् ।

वृहस्पतिरिति द्व्युदात्तमिति त्र्युदात्तमिति इति त्र्युदात्तम् ॥ ४० ॥

अनुदात्तो ह्रस्वो मूर्च्छुदात्त उदात्तः ।

स्वरितः कर्णमूलियः सर्वोऽस्य प्रचयः स्मृतः ॥ ४८ ॥ १ ॥

चापस्तु वदते मात्रां त्रिमात्रं त्वेव वायसः ।

सिन्धो रीति त्रिमात्रं तु नकुलस्वर्णमात्रकम् ॥ ४९ ॥

कुतोऽर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम् ।

न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति पापादेरिव किञ्चिदपत् ॥ ५० ॥

सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नाभ्यं सुभ्यवस्थितम् ।

सुस्वरेण सुचक्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ॥ ५१ ॥

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।

स वाचमग्नौ यजमानं हिनस्ति ययेन्द्रक्षत्रः स्वरतोऽपराधात् ॥ ५२ ॥

अवचरं हतायुष्यं निस्वरं व्याधिपीडितम् ।

अचता अक्षरूपेण वज्रं पतति मस्तके ॥ ५३ ॥

हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णविबलितम् ।

ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो त्रियोनिमधिगच्छति ॥ ५४ ॥

हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम् ।

ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ५५ ॥ १० ॥

संकरः सांकरिं प्रादाद्वाचीपुत्राय भीमते ।

वाल्मीक्यैः समाहृत्य देवीं नाचमिति स्थितिः ॥ ५६ ॥

येनाक्षरसमास्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।

कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥ ५७ ॥

येन धीता गिरः पुंसां त्रिमलैः अक्षरिभिः ।

समश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ॥ ५८ ॥

अज्ञानान्वयस्य लोकस्य ज्ञानाज्ञानसंश्लेषात् ।

अक्षरमूलितं येन तस्मै पाणिनये नमः ॥ ५९ ॥

अज्ञानममिच्छन्निःसृतामिमां च इह पश्यत्यतश्च सदा द्विजः ।

स भवति घनज्ञान्यपश्यपुत्रकीर्तिमानतुल्यं च सुखं समरनुते दिवोति दिवीति ॥ ६० ॥

अथ शिक्षामात्मोदात्तञ्च हकारं स्वराणां

यथागीत्यचोऽस्पृष्टीदार्चं चापस्तु संकर एकादश ॥

इति पाणिनीयशिक्षा समाप्ता ॥



# अथ लघुसिद्धान्तकौमुदीस्यसूत्राणां अकारादिवर्णानुक्रमेण सूची ।

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

अ

१ अङ्गुण म०सू०  
३५४ अकथितं च १।४।५१  
३८४ अकर्तरि च ३।३।१६  
३७३ अकर्मकाच्च १।३।४६  
१२० अकृत्सार्व० ७।४।२६  
१३ अकः सवर्णे ६।१।१०१  
४२३ अक्वोऽद्वयं ५।४।७६  
१२६ अचस्तास्त्व ७।२।६१  
४३४ अचिरहस्ति ७।२।४७  
६३ अचिरश्रुतः ७।२।१००  
५०६ अचि विमा० ८।२।२१  
५०० अचि रनु० ६।४।७७  
१२ अचोऽन्या० १।१।६४  
४४ अचो ङि० ७।२।११५  
३५१ अचो यत् ३।१।९७  
१४ } अचोरहा० ८।४।४६  
७० }  
६६ अचः ६।४।१३८  
३२३ अचः परस्मिन् १।१।२०  
४३ अच चः ७।३।११६  
४५१ अजासद० २।२।३३  
४७१ अजायतष्टाप् ४।१।४  
३२० अजानगमां ६।४।१६  
४६० अजाते ५।३।७३  
४८८ अज्जेःसिचि ७।२।७१  
३२ अङ्कुप्वाच् ८।४।२  
४३ अङ्ग्यास० ६।१।१३५  
५ अङ्गुलिस्त्व० १।१।६६

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

१३१ अत आदेः ७।४।००  
४२७ अत इन् ४।१।९४  
४६० अत इनिट० ५।२।११५  
१४५ अत उप० ७।२।११६  
२१४ } अत उत् ६।४।११०  
२६६ }  
१४६ अत एकहल्ङ् ६।४।१२०  
४६४ अतिसाचने ५।३।२६  
७६ अतो गुणे ६।१।९७  
१२७ अतो दीर्घो ७।३।१०१  
३३ अतो मिस ऐस् ७।१।९  
६७ अतोऽम् ७।१।२४  
२६ अतो रोर० ६।१।११३  
१३६ अतो येयः ७।२।८०  
१२० अतो लोपः ६।४।४८  
१४५ अतो हलादेः ७।२।७  
१३३ अतो हेः ६।४।१०५  
३६७ अतः कृकमि ८।३।४६  
२३ अत्रानुनासिकः ८।३।२  
१०० अत्वसन्तस्य ६।४।१४  
२३४ अदभ्यस्तात् ७।१।४  
३ अदर्शनं लोपः १।१।६०  
१०६ अदस औ ७।२।१०७  
१४ अदसो मात् १।५।१२  
१०६ अदसोऽस्ते ८।२।८०  
२०३ अदिप्रभृति० २।४।७२  
४३५ अदूरमवस्य ४।२।७०  
९ अदेङ्गुणः १।१।२  
२०५ अदः सर्वे ७।३।१००

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

६८ अद्भुतरा० ७।१।२५  
४४४ अधिक्त्व ४।३।८७  
४४ अनङ् सौ ७।१।९३  
८ अनचि च ८।४।४७  
१३० अनद्यतने छुट् ३।३।१२  
१३४ अनद्यतने ३।२।११  
४६३ अनद्यतनेर्हि० ५।३।२१  
४०३ अनश्च ५।४।१०८  
७९ अनाप्यकः ७।२।११२  
९६ अनिदितां ह ६।४।२४  
२०६ अनुदात्तो० ६।४।३७  
१२५ अनुदात्तङि० १।३।१२  
२६७ अनुदात्तस्य० ६।१।९६  
३४० अनुनासिक० ६।४।१५  
२३ अनुनासिकात् ८।३।४  
३४५ अनुपराभ्यां १।३।७९  
४४२ } अनुशतिका ७।३।२०  
४५१ }  
२० अनुस्वारस्य ८।४।५८  
४२७ अनृष्यान् ४।१।१०४  
४१५ अनेकमन्यप २।२।२४  
१३ अनेकास्ति १।१।९५  
४२९ अन् ६।४।१६७  
४६३ अन् ५।३।५  
३८ अन्तरं बहि० १।१।३६  
४१८ अन्तर्बहि० २।४।१७  
१३ अन्तादिवच्च ६।१।८५  
३२२ अन्यथैवक० ३।४।२७  
३६८ अन्येभ्योऽपि ३।२।७५

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

४२५ अपत्यं पौत्र ४१११६२  
४२६ अपहवे ज्ञः ११३१ ४  
४२६ अपादाने २१३१८  
४४ अपृक्त एकात् ११२१४१  
११२ अपो मि ७१४१८  
४३ अपनुत्तुच् ६१४११  
४१७ अप्पूरणी २१४११६  
३८० अ प्रत्ययात् ३१११०२  
३८८ अमिज्ञावः ३२१११२  
४४४ अमिनि ४१३१८६  
३४६ अमिप्रत्य ११३१८०  
२१७ अम्यासस्वा ६१४१०८  
३०० अम्यासाच्च ७१३१५६  
१२६ अम्यासे चर्च ८१४१५४  
३१ अमि पूर्वः ६१११०७  
४६ अम्यार्थ ७१३१०७  
७६ अम्यसंबुद्धौ ७१११९९  
१७७ अयामन्ता ६१४१५२  
३६७ अर्द्धिपद ६१३१६७  
२३८ अर्तिपिप ७१४१०७  
३८१ अर्तिल्लसू ३१२१८४  
३२५ अर्तिदीप्ती ७१३१६६  
२९ अर्थवदधातु ११२१४५  
४१५ अर्धर्चाः पुंसि २१४१६६  
४०० अर्ध नपुंसकम् २१२१२  
८६ अर्धवर्णम् ६१४१२७  
४६० अर्धआदि २१२१२७  
८ अलोऽन्त्य ११११५२  
४४ अलोऽन्त्यात् ११११५२  
३९० अल्लस्योः ३१४११८  
४२५ अल्पान्तर २१२१३४  
७९ अल्लोपोऽन्त्य ६१४१३४

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

१३ अवहस्फो ६१११२३  
४४५ अवयवे च ४१३१३२  
३८५ अवे तृस्रो ३१३१२०  
४०० अव्यक्तानुकर २१४१२७  
४६७ अव्ययसर्वना २१३१७१  
४३८ अव्ययात्पृ ४१२१०४  
१२४ अव्ययादा २१२१८२  
" अव्ययीमा १११४१  
३९९ अव्ययीमा २१४१८  
४०२ अव्ययीमावे ५१४१०७  
४०१ अव्ययीमाव ६१३१८१  
३२६ अव्ययीमावः २१११५  
३२६ अव्ययं विभ २१११६  
४२३ अव्यपत्या ४१११८४  
८० अष्टन आ ७२१८४  
८० अष्टम्य औ ७११२१  
२०८ असिद्धवदन्ना ६१४२२  
१४२ असंयोगाद्विद् ११२१५  
१४० अस्तिसि ७१३१९६  
२१६ अस्तेर्भूः २१३१२२  
७१ अस्थिदधि ७११०५  
१२६ अस्मद्युत्तमः ११४१०७  
४६० अस्माया २१५१२१  
४६९ अस्त्य च्वौ ७१४१३२  
२३१ अस्यतिवक्ति ३१११५२  
११६ अहन् ८१२१६८  
४६० अहंशुभ २१२१४०  
४१३ अहः सर्वैक ५१४१८७  
[ आ ]  
४१ आकारादेका ११४११  
३७० आगवेस्त ३२११३४  
६० आदि चा ७१३१०५

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

४३ आलो ना ७१३१२०  
४२३ आ चत्वात् ५१११३०  
२४१ आ च हौ ६१४११७  
११९ आच्छीनघो ७१११८०  
४९ आट् ६१११२०  
१४० आहजादी ६१४१०२  
१३३ आहुत्तमस्य ३१४१२२  
४९ आपन्नघाः ७१३११२  
१२६ आत औ ७१३१३४  
३६६ आतओप ३१११३६  
" आतोऽनुप ३१२१३  
१६९ आतोऽन्तिः ७२११५  
४१ आतो घा ६१४१३७  
३५५ आतो युक् ७१३१३३  
६६० आतो युच् ३१३११२८  
१६० आतो लो ६१४१६४  
" आतः ३१४१११  
१७६ आत्मनेपदे ७१३१५  
२७० आत्मनेप ३१११५  
३६८ आत्ममाने ३१२१३३  
४२० आत्मन्विष ५१११५  
" आत्मा ६१४१३६  
३ आदिर २१११०३  
१४७ आदिर्जिदुह ११३१५  
१६१ आदेच उ ६१११५  
३४ आदेसप्र ८१३१५  
१८ आदेः परस्य २१११५  
६ आदगुणः  
८० आद्यन्त्य ११११५  
२१ आद्यन्तो ट ११११५  
३२६ आचारोऽ ११११५  
१३४ आनि लोट् ८१११५

पृष्ठाङ्कः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
 ३७६ आने मुक् ७२१८२  
 ३७७ आन्महतः ६३१४६  
 ३७८ आमीकम् ३१४२२  
 ३७९ आमि सर्व ७११५२  
 ३८० आमेतः ३१४१७०  
 ३८१ आमाः २१४१८१  
 ३८२ आम्भस्य १३१६३  
 ३८३ आम्भेनीनी ७११२  
 ३८४ आयादक ३११३१  
 ३८५ आर्घचातुके २१४३५  
 ३८६ आर्घ ३०६३११३४  
 ३८७ आर्घचातुक ७२१३५  
 ३८८ आर्घचिन्ति ३३११७३  
 ३८९ आ सर्वमात्र ३३११३३  
 ३९० आहस्यः २२१३५

[ इ ]

३९१ इकोऽचिन्ति ७१११७३  
 ३९२ इकोऽसर्व ६१११२७  
 ३९३ इको हत् १२१९  
 ३९४ इको कर्षति ६१११७७  
 ३९५ इगुप्यज्ञा ३१११३५  
 ३९६ इगुप्यः सन् ११११७५  
 ३९७ इग्वा ३३११०१  
 ३९८ इजादेवगुह ३१११३६  
 ३९९ इट ईटि ८२१२८  
 ४०० इटोऽत् ३१४१०६  
 ४०१ इटान्ति ७२१६६  
 ४०२ इणो मा सु ०२१४४५  
 ४०३ इणो कम् ३१४१८१  
 ४०४ इणो कीर्ण ८३११८  
 ४०५ इणो क २३१३१  
 ४०६ इणो ३३११३

पृष्ठाङ्कः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
 ३३२ इतश्च ३१४१००  
 ८६ इतोऽसर्व ७११८६  
 ४०७ इतो मनुष्य ०४११६५  
 ४०८ इदम् इत् २१३३  
 ४०९ इदमर्यमुः २३१२४  
 ४१० इदमो म ७२११०८  
 ४११ इदमो हिं ७३११६  
 ४१२ इदमो हः ६३१११  
 ४१३ इदितो मुक् ७१११८  
 ४१४ इदुर्जाम् ७३११७  
 ४१५ इदोऽन् पुं ७२११११  
 ४१६ इदकिमोरी ६३११०  
 ४१७ इदन्मनप ६१११५४  
 ४१८ इन्द्रवल्ग्वज ७१११४४  
 ४१९ इन्द्रे च ६१११२४  
 ४२० इन्द्रमूषा ६१११२  
 ४२१ इरितो वा ३१११५  
 ४२२ इवे प्रतिकृतौ ६३११६  
 ४२३ इषुगामिन् ७३११७  
 ४२४ इष्टादिभ्यश्च ५२१२८  
 ४२५ इष्टस्य चि ६१११२६  
 ४२६ इषुसुक्ता ७३१११

ई ]

३२७ ई च गजः ७४१९७  
 ३२८ ईदूद्विचि १११११  
 ३२९ ईषति ६१११६  
 ३३० ईषदसमाप्तौ ५३११७  
 ३३१ ईषकुसुपु ३३११२६  
 ३३२ ई हस्ययोः ६११११३

[ उ ]

३३३ उभादिभ्यो ५१११२  
 ३३४ उगितश्च ७१११६

पृष्ठाङ्कः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
 ८४ उगितयोः सर्व ७१११७०  
 ३ उच्चैश्चाः १२१२९१  
 ४४७ उच्छ्रति ४११३२  
 ३८३ उपादयो व ३३११  
 ३८४ उत्तश्च ३० ६१११०६  
 २०१ उत्तो वृद्धि ७३१८३  
 ४२४ उत्सादि ७११२५  
 २० उद् ईत् ६१११३५  
 ३४३ उद्भवाः सक ३३११५  
 ३४४ उदितो वा ७२११६  
 २३८ उदोऽन् पुं ७२११०२  
 १८ उद्ः स्वा ८११६१  
 ३१३ उद्भिर्वा ५१११४८  
 ३ उपदेशेऽन्तु १३११  
 १५६ उपदेशेऽन्तु १२११२  
 ४१२ उपपदमति २१११२  
 ४०३ उपमानाभि २१११५  
 ३३३ उपमानादा ३१११३  
 २१६ उपसर्गप्रादु २३१८०  
 १२ उपसर्गादति ६१११४१  
 ॥ उपसर्गाः ११११५५  
 ४२३ उपसर्गाद् २१११२५  
 १४६ उपसर्गाद्स ८१११४  
 १८३ उपसर्गस्वा ७२११७  
 ३०२ उपसर्ग च ३३११५  
 ३८६ उपसर्गो जोः ३३११६  
 ३९१ उपसर्गं पुं ७२११४  
 ३४२ उपाच्च ३३११८  
 ३८२ उपाच्चि ६१११३५  
 ४५६ उपादुदायो ५२११४  
 १०० उमे भव्य ६१११५  
 १० उम्भवाः ३१११३

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

१५० उरत् ७१४६६  
३१५ उरः प्रवृत्तिपदा १११  
३१३ उरः ११२१३२  
२१३ उरविद्वजा ३११३३५  
३११ उरवपदा ६१११९६

[ ऊ ]

३ उरकाव्येऽ ११२१२७  
३०९ उरुतः ४१११६६  
३०७ उरुतियुति ३१३१९७  
३०३ उरुतपरपदा ४१११६६  
२३२ उरुतिविं ७३१३०  
२३३ उरुतिविं ७२१६  
३१० उरुतिविं ११३१६१

[ ऋ ]

१ ऋलृक् म० सू० २  
३२३ ऋलृक्पूरुषः ५४१७४  
२३८ ऋलृक्पूरुषा ७४१११  
२४ ऋत उत् ६१११११  
२६४ ऋतस्य संयो ७२१४३  
१६२ ऋतस्य सं ७४११०  
२३ ऋतो किं ७३१११०  
१५६ ऋतो भारद्वाज १११६३  
१६ ऋतवकः ६१११२८  
८८ ऋतिवद्वृत् ३२१५९  
६३ ऋतुवनस्पु ७१११६४  
१६३ ऋतनोः स्वे ७२१७०  
६६ ऋतुम्यो लीपू ४१११५  
७५८ ऋतुम्यक ४१११४४  
३६२ ऋतुलोर्णवृत् ११११२४  
२०८ ऋतु इदा ७१११००  
३८६ ऋतोरप ३३१५७

[ ए ]

१ एलृक् म० सू० ३

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

९३ एलृक्वनस्प ७१११२२  
३१ एलृक्वनस्प २३१४३  
४११ एलृक्वनस्प ११२१४४  
१५१ एलृक्वनस्प ७२११०  
७४ एलृक्वनस्प ८२१३७  
८३ एलृक्वनस्प ७२११२  
४२६ एलृक्वनस्प ७१११३  
१३ एलृक्वनस्प ६१११०६  
१२ एलृक्वनस्प ६१११३४  
३१ एलृक्वनस्प ६१११६९  
७३ एलृक्वनस्प ११११४८  
८ एलृक्वनस्प ६१११०८  
३६७ एलृक्वनस्प ३२१२८  
१०६ एलृक्वनस्प ८२१८१  
१०४ एलृक्वनस्प ३२११३३  
२८ एलृक्वनस्प ३२११३२

[ ए ]

४६१ } एतदः ५३१५  
४६३ } एतदः ५३१५  
३६१ एतदस्तु ३१११०९  
४६३ एतदस्तु ५३१३४  
२१८ एतदस्तु ७३१२४  
११ एतदस्तु ६११८६  
३८४ एतदस्तु ३३१२६  
२० एतदस्तु ६११८२  
१३२ एतदस्तु ३३१८६  
१६० एतदस्तु ३३१८७

[ ऐ ]

१ ऐलृक् म० सू० ४

[ औ ]

२९१ औतः रवनि ७३१०१  
१५ औतः ११११३२  
३०६ औतः ५२१०५

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

१२ औमात्रे ६१११५  
४२५ और्गुजः ६१११५५  
३४ औसि च  
३२५ औः पुषः  
५६ औः सुषि

[ औ ]

६० औड आपः ७१११८  
५६ औतोऽम्भः ६१११३३  
४५ औत् ७३११३८

[ क ]

३४२ कण्ठवादि ३१११५  
४२८ कण्ठवादि ७११११५  
२ कण्ठ म० सू० १२  
४५४ कण्ठवादि २१११२७  
१७७ कमेजिह्व ३११३०  
४३० कम्बोजा ७१११०५  
३७० कर्णे वज्रः ३२१८५  
३४२ कर्तरि कर्म १३११३  
३६० कर्तरि कृत् ३३११५  
१२६ कर्तरि लप् ३१११८  
३५३ कर्तुरीप्सित  
३२२ कर्तुकरणयोः ३३११५  
४०४ कर्तुकरणे  
३२५ कर्मणा यम ११११३  
३५४ कर्मणि द्वि  
३६५ कर्मण्यण  
३६६ कर्मण्यण  
३४१ कर्ताय क्रमणे ३१  
३१६ कस्कादिषु च  
२४ कानात्रेदिते  
३२९ काम्यण्य  
३८४ काळतम ३३१

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

४४० कालाट्ठञ् ४।३।११

४४४ किति च ७।२।११८

४४७ किदाक्षिणि ३।४।१०४

४६४ किमश्च २।३।२५

४५५ किमिदंम्यां ५।२।४०

४६४ किमेत्तिष्ठ० ५।४।११

४६२ किमोऽय् २।३।१२

४८८ किमः कः ७।२।१०३

४७६ किरतौ ल० ६।१।१४०

४६८ कियत्तदो ५।२।६२

४६१ किसर्वनाम २।३।२

४१० कुरातिप्रादयः २।२।१८

४६१ कुत्तिहोः ७।२।१०४

४६७ कुत्तिस्ते ५।३।७४

२४ कुप्पोः कः ८।३।३७

४३६ कुमुदनढवे० ४।२।८७

४३० कुस्नादि० ४।१।१७२

१४५ कुहोरचुः ७।४।६२

३६६ कुभो हेतु ३।२।२०

१५० कुञ्जानुप्रयु ३।१।४०

२५ कृत्तदित १।२।४६

३६१ कृष्यव्युतो ३।३।११३

३६० कृष्याः ३।१।९५

८८ कृदतिक् ३।१६३

१२३ कृन्मेजन्तः १।१।३९

४६६ कृम्वस्ति० ५।४।५०

१५६ कृष्यव्युत्तु० ७।२।१३

४५५ केसाङ्गो २।२।१०६

४४२ कोषाट्ठञ् ४।३।४२

१३७ कित्ति च १।१।५

४०२ ककवत् १।१।२६

४०२ ककवत् १।१।२६

४०२ ककवत् १।१।२६

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

१२४ क्त्वतोसु० १।१।४०

३३७ क्यचि च ७।४।३३

३३८ क्यस्य वि० ६।४।५०

४३४ क्रमादिभ्यो ४।२।६१

१५८ क्रमः पर० ७।३।७६

४७७ क्रीतात्कर० ४।१।५०

३०४ क्रयादिभ्यः ३।१।८१

३७५ कसुञ्च ३।२।१७७

४६२ क्कति ७।२।१०५

८८ किन्प्रत्य० ८।२।६२

३६९ किप् च ३।२।७६

४२६ क्कत्रादः ४।१।१०८

३७४ क्कयो मः ८।२।५३

३३१ क्षुम्नाविषु च्च० ४।१।४९

२२५ कसस्याचि ७।३।७२

[ ख ]

२ खफ म० सू० १

२३ खरवसान० ८।३।१५१

१५ खरि च ८।४।५५

३७० खित्यनव्य० ६।३।६६

४५ खयत्या० ६।१।११२

[ ग ]

४२ गतिश्च १।४।६०

३४४ गन्धनावचेप १।३।३२

१६७ गमहनजन ६।४।९८

१६८ गमेरिट्पर ७।२।५८

४२६ गर्गादि० ४।१।१०५

४३५ गहादि० ४।२।१३८

२२२ गाङ्गुटादि १।२।१

२२० गाङ् लिटि २।४।४६

१३८ गासिस्थावु २।४।७७

४५४ गुणवचन ५।१।१२४

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

२३३ गुणोऽपृक्ते ७।३।६१

१६३ गुणोऽतिसं० ७।४।२६

३२८ गुणो यङ्कु० ७।४।८२

१५० गुपूधपवि० ३।१।२८

३८८ गुरोश्च हलः ३।३।१०३

३६५ गोहे कः ३।१।१४४

२६ गोतो णिच् ७।१।६०

४२६ गोत्राद्यन्य० ४।१।९४

४४६ गोपयसो० ४।३।१६०

४०८ गोरतद्धित २।४।६२

४४६ गोश्च पुरीषे ४।३।१४५

४११ गोक्षियो० १।२।४८

२५२ ग्रहज्याव० ६।१।१६

३१६ ग्रहोऽजिति ७।२।३७

४३३ ग्रामजनवन्तु ७।२।४३

४३८ ग्रामाद्यल० ४।२।९४

[ घ ]

३८४ घञि च ६।४।२७

२ घटघष् म० सू० ९

२२२ घुमास्था० ६।४।६६

४३ घेर्ङिति ७।३।१११

२१६ घ्वसोरे० ६।४।११६

[ ङ ]

२२ ङमोहस्वा० ८।३।३२

४३ ङसिङ् ६।१।११०

३५ ङसिङयोः ७।१।१५

१३ ङिच १।१।५३

६३ ङिति ह्रस्व० १।४।६

६१ ङेप्रथमयो० ७।१।२

५० ङेराग्न० ७।३।११६

३३ ङेयः ७।१।१६

२१ ङ्योः कुक् ८।३।२८

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
२९ कथाप्या० ४१११

[ च ]

१८२ चक्षि ६११११  
३६२ चजोः कुवि० ७३१६२  
७६ चतुरनहु० ७१११८  
४०५ चतुर्थी तद० २११३६  
३९५ चतुर्थी सं० २१३१३  
४४० चरति ४११८  
३६६ चरेष्टः ३२११६  
१४ चादयोऽ ११४५०  
३२० चार्थे द्वन्द्वः २१२१२  
२५८ चिणो लुक् ६१११०४  
२६९ चिण् ते ३११६०  
३४० चिण्भावक० ३११६६  
३० चुट्ट ११३१७  
८८ चोः कुः ८१२३०  
३७ चौ ६१३१३८

३७९ च्छ्वोः शू० ६१११९  
१३८ च्लि लुकि ३११४३  
॥ च्लेः सिच् ३११४४  
४७० च्वौ च ७११४६

[ छ ]

३८८ छादेर्छञ्झ्यु० ६११९६  
२६ छे च ६११८२

[ ज ]

४०१ जचित्यादयः ६११६  
३२६ जनपदस्य० ४१११६८  
४३५ जनपदे लुप् ७११८१  
५३७ जनसवख० ६११४२  
२६६ जनिवप्योश्च ७१३२५  
२ जन्माकृद्स्म० सू० १०  
३३ जन्मा ज० ७१११०१

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
३७७ जल्पमिच्छ ३१२१५५

६८ जरससोः० ७११२०  
४२ जसि च ७३११०६  
३६ जसः स्त्री ७१११७  
२४० जहातेश्च ६११११६  
३९१ जहातेश्चक्त्वि० ७३१४२  
४७८ जातेरस्त्री० ४११६३  
४४३ जिह्वामूला० ७१३६२  
४२६ जीवति तु ४१११६३  
२३६ जुसि च ७३१८३  
२३४ जुहोत्यादि २११७६  
३१० जृस्तन्मु० ३११५८  
२९७ ज्ञाजनोर्जा ७३१७९  
४६६ ज्य च २१३६१  
४६६ ज्यादादी० ६१११६०  
३८७ ज्वरस्वर ६११२०

[ झ ]

२ झमञ् म० सू० ८  
१६ झयो होऽ० ८११६२  
४०३ झयः ६१११११  
४३६ झयः ८१२१०  
१८ झरो झरि० ८११६६  
८ झलां जश् ८११६३  
१७ मलां जशो० ८१२३९  
१६६ झलो झलि ८१२२६  
१९९ झषस्तथोर्धो ८१२४०  
१७५ झस्य रन् ३१११०६  
१३६ झेर्जुस् ३१११०८  
१२६ झोऽन्तः ७११३

[ झ ]

१ जमकणनम् म० सू० ७  
[ ट ]  
३२ टाकसि० ७१११२

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
४७२ टिङ्हाणम् ४१११६

१६९ टित् आत्म० ३११७९  
६६ टेः ६१११४३  
४५३ टेः ६१११५५  
३८५ टिवतोऽशु० ३११८९

[ ठ ]

४४३ ठगायस्या० ४१३७५  
४२९ ठस्येकः ७३१६०

[ ड ]

४६ इति च १११२६  
२१ डा सि घुट् ८१२२९  
३८६ द्वितः विप्रः ३११८९

[ ढ ]

२०० ढो ढे लोपः ८१३१३  
२७ ढूलोपे पू० ६१३१११

[ ण ]

१४५ णलुत्तमो वा ७११११  
३२२ णिचश्च ११३७४  
२४७ णिजां त्र० ७११७६  
१८१ णिश्रिद्रुमु० ३११४८  
॥ णेरनिटि ६११४१  
१४६ णो नः ६११६५  
१८१ णौ चङ्गुप० ७११११  
३८८ ण्यासश्च० ३१११०७  
३६३ ण्वुल्लुचौ ३१११३३

[ त ]

१२५ तङ्गाना० ११११००  
४४३ तत् आगतः ४१३७४  
३७१ तत्पुरुषे कृ० ६१३१४  
४१२ तत्पुरुष० २११८३  
४०३ तत्पुरुषः २११८३  
४०८ तत्पुरुषः सं० ११२४३  
४६८ तत्पुरुषवचने० ४११११

| पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः |        |
|----------------------------------|--------|
| ३२४ तत्पयोज०                     | ११४२५  |
| ४४१ तत्र आतः                     | ४३१२५  |
| ४५२ तत्र तस्येव                  | ५११११६ |
| ४४२ तत्र भवः                     | ४३१५३  |
| ४४३ तत्र साधुः                   | ४४११८  |
| ४३१ तत्रोद्वृत्तम्               | ४१२१४  |
| ४३२ तत्रोपपदम्                   | ३११३२  |
| ४३३ तदधीते                       | ४१२५९  |
| ४५१ तदर्हति                      | ५११६३  |
| ४३५ तदस्मिन्न०                   | ४१२६७  |
| ४५५ तदस्य सं०                    | ५१२३६  |
| ४५८ तदस्वा०                      | ५१२१४  |
| ६० तदोः सं०                      | ४१२१०६ |
| ४४४ तद्वृत्ति                    | ४३१८५  |
| ४०२ तद्विधाः                     | ४११०६  |
| ४०० तद्विधार्थो०                 | २११५१  |
| ४०८ तद्विधे०                     | ४१२११० |
| ४३० तद्राजस्य                    | २१४६२  |
| ४४८ तद्वृत्ति रथ                 | ४४१०६  |
| २१३ तनादिकृ०                     | ३११०९  |
| २९४ तनादिकृ०                     | ३११०९  |
| २९५ तनादिकृ०                     | २१४०३  |
| ३५४ तनोत्तरादि                   | ६१४४४  |
| ९ तपरस्त०                        | १११००  |
| ३५४ तपोऽनुता०                    | ३११६२  |
| ३६० तयोरेव कृ०                   | ३१४१०  |
| ४४० तरति                         | ४१४१५  |
| ४६४ तरसमपौ घः                    | १११२२  |
| ४४० तत्कममका                     | ४१३३   |
| ९४ तत्कममौ क०                    | ४१२९६  |
| ३६० तत्कममौ                      | ३११९६  |
| ४४० तत्कममौ                      | ११४१९  |
| ४४० तत्कममौ                      | ३११०१  |

| पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः |        |
|----------------------------------|--------|
| ४१० तस्मान्नुब०                  | ६३१०४  |
| ३२ तस्मान्नुब०                   | ६३११०३ |
| १८ तस्मादित्यु०                  | १११६०  |
| १४८ तस्मान्नुब०                  | ४४१०१  |
| ४३९ तस्मिन्नपि च                 | ४३१२   |
| ७ तस्मिन्निति                    | १११६६  |
| ४५० तस्मै हितम्                  | ५११५   |
| ४३६ तस्य निवा०                   | ४१२६९  |
| २४ तस्य परमाज्ञे                 | ८११२   |
| ४५६ तस्य पूरणे०                  | २१२४८  |
| ४५२ तस्य आ०                      | ५११११९ |
| ३ तस्य लोफा                      | १३१९   |
| ४४५ तस्य मि०                     | ४३१३४  |
| ४३३ तस्य समूहः                   | ४१२३७  |
| ४२५ तस्यापत्त्यम्                | ४११३२  |
| ४४४ तस्येदम्                     | ४३१३२० |
| ४५१ तस्येधरः                     | ५११४२  |
| १२६ तान्यकव०                     | ११४१०२ |
| १३० तासस्त्यो०                   | ४११५०  |
| ४६४ तिष्ठश्च                     | ५३१५६  |
| १२५ तिष्ठस्त्रीणि                | ११४१०१ |
| १२६ तिष्ठस्त्री०                 | ३१४११३ |
| ३८० तितुन्नतथ                    | ४१२९   |
| १२५ तिसस्मि                      | ३१४०८  |
| २८५ तिष्यनस्तेः                  | ८१२०३  |
| ६८ तिरसस्ति०                     | ६३३६४  |
| ४५६ ति विधत्तेः                  | ६१४१४२ |
| ३२५ तिष्ठतेरित्                  | ४१४५   |
| २०३ तीषसह                        | ४१२४८  |
| २६५ तुदादिकृ०                    | ३११००  |
| ९३ तुदादिकृ०                     | ४१२६५  |
| ६८५ तुदादिकृ०                    | ३३११०  |

| पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः |        |
|----------------------------------|--------|
| ४ तुल्यास्त्वम्                  | १११३   |
| १३२ तुहोस्तात्                   | ४१३३५  |
| ५३ तुल्यकोष्टः                   | ४११५२  |
| २८४ तुल्य इम्                    | ४३३६२  |
| ७१ तुतीयादियु०                   | ४११०४  |
| ४०० तुतीयासम्                    | २११०४  |
| ४०४ तुतीया त०                    | २११३०  |
| ३०० तुन्                         | ३११३३  |
| १८९ तुफलमज                       | ६३११३  |
| ४३० ते तद्राजाः                  | ४११३०४ |
| ४५१ तेन अतम्                     | ५११३०  |
| ४५२ तेन तुल्यम्                  | २११११५ |
| ४४६ तेन दीप्यति०                 | ४११३२  |
| ४३५ तेन निर्धुतम्                | ४१२६४  |
| ४५२ तेन निर्धुतम्                | ४११३३  |
| ४४४ तेन प्रोक्तम्                | ४३१३०३ |
| ४३० तेन रक्तं रा०                | ४११३३  |
| १३३ ते प्राग्भा०                 | २११८०  |
| ६५ तेमयमेक                       | ८११३१  |
| १८ तोलि                          | ६१२६०  |
| १० तोः वि                        | ८११३३  |
| ३०० ती सत्                       | ३१२३२० |
| १०१ त्यदादियु                    | ३११३०  |
| ४० त्यदादी०                      | ४१२१०३ |
| ४३९ त्यदादीनि                    | ४११३०४ |
| ६३ त्रिषपुरोः                    | ४११३३  |
| ४१४ त्रिषपुरोः                   | ६११३३  |
| ४० त्रिषपुरोः                    | ४११३३  |
| ४९० त्रिः सत्यसा०                | ६१     |
| ९२ त्र्यम्बके                    | ४१     |
| ९२ त्र्यम्बके                    | ४१     |
| ९३ त्र्यम्बके                    | ४१     |





पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
 ४१० नलोपो नञः ६१३७३  
 ४४ नलोपः प्राति० ८१२१७  
 ८२ नलोपः सुप् ८१२१२  
 ३१ न विभक्तौ ११३१४  
 १८७ न वृद्धवश्चतु १२१२६  
 १८७ न सप्तद्व ६१४१२६  
 १०२ न सेर्वा ८१२१६३  
 २२ नञ ११३१३०  
 १९ नरचापदा० ८१३२४  
 २३ नरकुम्भप्र० ८१३१७  
 ६६ न षट्स्व० ४१११०  
 ८५ न सम्प्रसा० ६१२१३७  
 ८२ न संयो० ६१४१३७  
 ४०३ नस्तद्धिते ६१४१४४  
 १०८ नहिष्ठिति० ६१३११६  
 ॥ नहो वा ८१२३४  
 ३८ नाम्न्येः पू० ६१४३०  
 ३० नादिधि ६१११०४  
 ४५६ नान्तादसं० ६१२१४९  
 २४८ नाम्न्यस्त० ७१३१८७  
 १०१ नाम्न्यस्ता० ७११७८  
 ३४ नामि ६१४३३  
 ४०० नाम्न्ययीमा ०२१४८३  
 ४४८ निकटे वसतिश१४७३  
 ३३२ नित्यवीप्सयोः ८१११४  
 २३३ नित्यं क० ६१४१०८  
 ३२३ नित्यं कौ० ३११२३  
 १३४ नित्यं क्षितः ३१४३३  
 ४४६ नित्यं ह्र० ४३१४४  
 १५ निपात पू० ११११४  
 ३८४ निवासधि० ३१३११  
 ३१९ निष्ठा २१२३६

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
 ३७२ निष्ठा ३१२१०२  
 ३७४ निष्ठायां सेटि६१४५२  
 ४ नीचैरनुदात्तः ११२३०  
 १०३ नुम्विसर्ज० ८१३१८  
 ५८ नृ च ६१४६  
 २४ नृन्ये ८१३१०  
 १५४ नेटि ७१२१४  
 ३६८ नेद्वक्षि कृति ७१२१८  
 ८० नेदमदसोर० ७११११  
 ६५ नेयकुवह् ११४१४  
 १४४ नेर्गदनदपत० ८१४१७  
 ३४३ नेर्विशः ११३१७  
 ८० नोपधायाः ६१४७  
 ४४९ नौवयोधर्म० ४१४१९  
 ३३७ नः क्ये ११४१९

[ प ]

४५१ पक्ष्किवि० ५११४३  
 ४७९ पक्षोरच ४११६८  
 ३७४ पचो वा ८१२१९२  
 ४०६ पञ्चमी म० २११३७  
 ३३ पञ्चम्या धत् ७१२३१  
 ४६१ पञ्चम्यास्त० ५१३१७  
 ४०६ पञ्चम्यास्तो० ६१३१२  
 ४५ पतिः समास० ११४१८  
 ४५४ पत्यन्तपु० २१११२८  
 ८६ पथिमव्यसु ७११८५  
 ३२ पदान्तस्य ८१४३७  
 २९ पदान्ताद्वा ६११७६  
 ४१४ परवलिङ्गं २१३१६  
 २३ परञ्च ३११२  
 १२८ परस्मैपदा० ३१४८२  
 ४३१ परिश्रुतो रचः ४१२१०

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
 ३४३ परिष्ववेभ्यः ११३१८८  
 ३४९ परेर्मुचः ११३८२  
 १२८ परोक्षे लिट् ३१२११२  
 ७ परः सञ्चि० ११३१०९  
 ४६१ पर्यभिभ्याश्च ६१३१९  
 १९३ पात्राभ्या० ७१३१८  
 ३६ पादः पत् ६१४१३९  
 ४१८ पादस्य० ६१४१३६  
 ३२१ पिता माम्ना ११२१७  
 ४३२ पितृव्यमा० ४१२३६  
 १४२ पुगन्तलवूप ७१३८६  
 २३ पुमः सञ्च्यम्परे ८१३१६  
 ३८१ पुवः संज्ञा० ३१२१८६  
 १६८ पुषादिष्ठा ३११६६  
 ४७५ पुंयोगादा० ४११४८  
 ३८८ पंसिसंज्ञा० ३१३११८  
 १०२ पंसोऽसुक् ७११८३  
 ३१३ पूर्वाङ्गि० २१४१४५  
 १० पूर्वप्रासिद्धय ८१२११  
 ४०८ पूर्वपदात्सज्ञा ८१४३३  
 ३७ पूर्वपरावर ११३३४  
 ३४४ पूर्ववत्सनः ११३३२  
 ४५७ पूर्वादिनिः ५१२८६  
 ३७ पूर्वादिभ्यो० ७१११६  
 ४०६ पूर्वापराचरो० २१२११  
 १२८ पूर्वोऽभ्यासः ६१३१४  
 ४५३ पुष्पादिभ्य ६१११२३  
 ३६१ पोरदुपधात् ३१२१८  
 ४६३ प्रकलवचने० ६१३१३  
 ४६५ प्रकलवैकाच् ६१४१६३  
 ४६९ प्रकलदिभ्यश्च ५१३१८  
 ४६ प्रत्ययलोपे १११३३

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
 ४०५ प्रत्ययस्यात् ७३१४४  
 ४६ प्रत्ययस्य० १११६१  
 ४४० प्रत्ययोत्तर० ७२१८८  
 २६ प्रत्ययः ३१११  
 ३८ प्रथमचरम १११३३  
 ३० प्रथमबोः ६१११०२  
 ३९९ प्रथमानि० ११२१३३  
 ६१ प्रथमाबाश्च ७२१८८  
 ४४३ प्रभवति ४३१८३  
 ४५५ प्रमाणे द्वय ६२१३७  
 ४६२ प्रगत्यस्यश्चः ६१३१६०  
 ४४८ प्रहरणम् ४१४५७  
 ४४९ प्राक् क्रीता० ५१११  
 ३२८ प्राक्कारात् २११३  
 ४६० प्रागिवाचकः ६१३१००  
 ४४८ प्राग्विता० ४१४०५  
 ४६१ प्राग्विद्वः २१३१  
 ४४६ प्राग्वहतेष्टम् ४१४१  
 ४५१ प्राग्वहेष्टम् २१११८  
 ४४३ प्राचां प्लुत० ४१११७  
 ४५३ प्राणिस्थादा ६२१६६  
 ३९३ प्रातिपदि० २१३१४६  
 १२ प्रादयः ११४१५८  
 ३४५ प्राद्वहः ११३८१  
 ४२५ प्रासापन्ने च २२१४  
 ४४२ प्रायभवः ४३१३९  
 ५ प्रावृषष्टप ४३१२६  
 ४४१ प्रावृष एण्यः ४३११७  
 ३६७ प्रियवसे वदः ३२१३८  
 १४ प्लुतप्रगु० ६१११२५  
 ३११ प्वादीनां० ७३१८०  
 [ व ]  
 ४६ बहुवचनम् १११२३

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
 ३३ बहुवचने ७३११०३  
 २४ बहुवचनस्य ८११२१  
 ४१८ बहुव्रीहौ २११११३  
 ३० बहुषु बहु० ११४२१  
 ४६६ बहोर्लोपो ६१११५८  
 ४६९ बहुलपार्था ५१४४२  
 ४४४ बह्नादिभ्यश्च ४११४५  
 ४२७ बाह्वादि० ४११६६  
 २२६ ब्रुव ईट् ७३१९३  
 २३० ब्रुवो वचिः २१४१६३  
 २२६ ब्रुवः पञ्चाना ३१४८४  
 [ भ ]  
 ३२५ भजेष्ट चिणि ६१४३३  
 १२६ भवतेरः ७१४७३  
 ८६ भस्य टेलोपः ७३१८८  
 ३४६ भावकर्मणोः ११३१३  
 ३८४ भावे ३१३१८  
 ४३३ भिक्षादि० ४१२३८  
 ३६६ भिक्षासेना ३२११७  
 २३२ भियोऽन्व० ६१४११५  
 २३४ भीहीमृदुवां ३११३३  
 २९२ } सुजोऽन० ११३६६  
 ३४५ } सुजोऽन० ११३६६  
 १२८ भुवो वुक् ६१४८८  
 १२ भूवादयो वा० ११३१  
 १३८ भूसुवोस्ति० ७३१८८  
 २४१ भृगामिन् ७१४५६  
 ३६३ भोज्यं भक्ष्ये ७३१६९  
 २६ भोमगोभवो ८३११७  
 ९३ भ्यतोऽभ्यम् ७११३०  
 २६६ भ्रष्टो रोप० ६१४४७  
 ३८८ भ्राजमास ३२११००

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
 [ म ]  
 ८४ मधवाबहु० ६१४१२८  
 ४४० मध्यान्मः ४३१८  
 ३७० मनः ३२१८२  
 १५ मय उजो वोम ३३३३  
 ४४३ मयट् च ४३१८२  
 ४४५ मयद्वेत० ४३११४३  
 २५४ मस्तिजशो० ७११६०  
 १३७ माकि लुक् ३३११७५  
 ४२८ मातुस्तसं० ४११११५  
 ४३६ मादुपधा० ८२१६  
 ३२६ मितं हस्वः ६१४३२  
 ६८ मिदचो० १११४७  
 २५६ मीनातिमि० ६११६०  
 ४१ मुखनासिका १११८  
 ३६२ मृजेर्वि० ३११११३  
 ३६३ मृजेर्वृद्धिः ७२१११३  
 १३३ मेर्निः ३१४८२  
 १९ मोऽनुस्वारः ८३१२३  
 ७८ मो नो घातोः ८२१६७  
 २० मो राजि० ८३१२५  
 २८० म्रियतेर्लुक् १३१७१  
 ३७५ म्र्योश्च ८२१६५  
 [ य ]  
 ३३२ यलोऽचि च २१४०४  
 ५ यलो वा ७३१६४  
 ४१ यचि मम् ११४१८  
 ३८६ यजवाच ३३१५०  
 ४२६ यजगोश्च २१४६४  
 ४७३ यजश्च ४११३६  
 ४२६ यमिगोश्च ११११०१  
 ४६६ यचवेतेभ्यः ५२१३५

पुष्पाङ्गः सूत्राणि सूत्राङ्गः

८ ययासंख्य० १३११०

१६२ } यमरम० ७१२०३  
२५१ }

१७ यरोऽनुना० ८१४४५

३१ यस्मात्पि० ११४१३

३२३ यस्य हलः ६१४४६

६८ यत्येति च ६१४१४८

६१ यादापः ७३११३

१३६ यासुट् पर० ३१४१०३

८८ युजेरसमासे ७११०४

९१ युवावौ द्वि० ७६१९२

३६३ युवोरनाकौ ७१११

९४ युष्मदस्मादोः ८१११२०

६२ युष्मदस्म० ७१२१८६

३४ युष्मदस्म० ७११२७

७३९ युष्मदस्मदोर ४३११

३२६ युष्मद्युपपदे ११४१०५

७८ युनस्तिः ७११०७

६१ युयव्यौ० ७१२१९३

४३ युस्त्र्याक्यौ ११४३

३०० ये च ६१४१०९

४९३ ये चामाव ६१४१६८

६३० ये विमाषा ६१४१४३

६२ योऽचि ७१२१८६

१०९ यः सौ ७१२११०

[ र ]

४२३ र क्तो० ६१४१६१

४७० रक्षति ४१४३३

३२२ रक्षाम्यां नि० ८१२४२

२६४ रक्षादिभ्यश्च ७१२४५

३२३ रलो व्युप० ११२१६

३०० रक्षाम्याम् ८१४३

पुष्पाङ्गः सूत्राणि सूत्राङ्गः

३२० रासदन्तः २१२३१

३७१ राजनि यु० ३१२३६

४२९ राजरव० ४१११३७

४१४ राजाहःस० ५१४११

४१३ राजाहाहाः २१४२६

४४ रात्सस्य ८१२२४

२३ रावो हलि ७१२१८२

३७३ रात्लोपः ६१४२१

४३७ राष्ट्रावार० ४१२१९३

१६३ रिक् सवर्ग० ७१४१८

१३१ रि च ७१४५१

३३० रीगृदुपघस्यच ७१४१९०

४३२ रीक् श्रुतः ७१४१२७

२८१ रक्षादिभ्यः ३११७८

४२६ रेवत्यादि० ४१११४६

२६ रोऽसुपि ८१२६६

२७ रो रि ८१३१४

७८ रोः सुपि ७१३१६

१०३ रोरूपधाया ८१२१७६

[ ल ]

२११ लङः सा० ३१४१११

३७५ लटः सत् ३१२१२४

३५८ लट् स्मे ३१२११८

१ लङ् म० सू०६

३२ लङ्कृतद्विते ११३१८

१३७ लिङाङि० ३१४११६

१७६ लिङः सी० ३१४१०२

१३६ लिङः स० ७१२१७९

१३८ लिङनि० ३१३१३६

२२४ लिङ्स्थि० ११२११

३१३ लिङ्स्थि० ७१२४२

१७० लिङ्स्थि० ३१३१९

पुष्पाङ्गः सूत्राणि सूत्राङ्गः

१२८ लिङि घातो० ६११८

३७५ लिङः का० ३१२१०६

१२६ लिट् च ३१४११५

२०३ लिङ्यन्तर ३१४१००

१९७ लिङ्यम्बा ६१११७

२७० लिपिसिचि ३१११३

२२५ लुक् लुह ७१३१७३

२०८ लुङि च ३१४१३३

१३७ लुक् ३१२११०

१३६ लुक्लुक् ६१३१७१

२०५ लुक्लुक् २१३३७

१३० लुटः प्रथम० २१३१२

४३५ लुपि युक्त० ११२१२१

४३१ लुपिभ्यो ७१३१३

३७० लुटः सहा ३१२१७

१३१ लुट् रोवे च ३१३१३

१३२ लोट् च ३१३१३५

१३३ लोटो लुक् च ३१३१३५

१६४ लोपश्चा ६१४१००

२४१ लोपो पि ६१४११८

१३६ लोपो व्यो० ६१११६६

१० लोपः साक० ८१३११९

४२६ लोमादि० ११२१००

१२६ लः कर्मणि० ३१४१६६

३८ लः परस्मै० ११४१३३

३८८ ल्युट् च ३१३११५

२७३ ल्वादिभ्यः ८१२१३३

[ व ]

२३१ वच उय ७१३१२०

१६७ वचिस्वपि ६१३१३

१४६ वद्वज्जहल्य ७१३१३

३७० वचिस्वपि ६१३१३

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

४३२ वरणादि० ४।२।८२  
 ४३३ कर्णान्ताच्च ४।३।६३  
 ४३४ कर्णद्विधा० ५।१।१२३  
 ४३५ कर्णद्विधा० ४।१।३९  
 ३६८ वर्तमानसा ३।३।१३१  
 १२५ वर्तमानेष्ट ३।२।१२३  
 १० वर्षाभ्यञ्ज ६।४।८४  
 ७७ वसुधंस्तु ८।२।७२  
 १०४ वसोः सम्प्र ६।४।१३१  
 ४६० वाचोगिम० ४।२।१२४  
 २५१ वा जृम्भसु १।३।१२४  
 ७४ वाग्नुहसु ४।२।३३  
 ११८ वा न्युलक० ७।१।७६  
 १ वीन्तो यि० ६।१।७६  
 १६१ वान्वस्य सं० ६।४।६८  
 २० वा पद्मना० ८।४।६३  
 ४६८ वा बहुनाम् ५।३।६३  
 १२८ वा आङ्ग ३।१।७०  
 ४३१ वामदेवाङ्ग ४।२।९  
 ६६ वासि १।४।५  
 ६२ वाग्यसोः ६।४।८०  
 ४३२ वाय्वृष्टिषु ४।२।३१  
 ३४ वावसाने ८।४।५६  
 २५ वा वरि ८।३।३६  
 ४५४ वाजस्यपो ३।१।९४  
 ७६ वाह ऊट् ६।४।१३२  
 ४७१ विज इट् १।२।२  
 ३६३ विह्वनोरनु० ६।४।४१  
 २५३ विदाङ्गुर्व ३।१।४१  
 ३७६ विधेः क्तु ७।१।३६  
 २१५ विदो ल्यो० ३।४।८३  
 ४७३ विद्यामीनि ४।१।७०

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

१३५ विधिनिम्न० ३।३।१६१  
 ४६६ विन्मतोर्लुक् ५।२।६५  
 ३४३ विपराम्यां० १।३।१९  
 २७ विप्रतिषेधे १।४।२  
 ३१ विभक्तिश्च १।४।१०४  
 २५१ विभाषाघ्रात्रे २।४।७८  
 ७१ विभाषा० ६।४।१३६  
 ३६६ विभाषाचिण्ण० १।६।९  
 २६३ विभाषा चेः ७।३।५८  
 ५४ विभाषा तु० ७।१।९७  
 ६२ विभाषा दिक् १।१।२८  
 २२२ विभाषा लु० २।४।५०  
 ४७० विभाषासां० १।४।५२  
 ४६७ विभाषासुपो ५।३।६८  
 १८० विभाषेटः ८।३।७६  
 २३२ विभाषोर्णोः १।२।३  
 ३० विरामो० १।४।११०  
 ४०९ विशेषणंवि २।१।५६  
 ९० विषयस्यसु ६।३।१२८  
 २४ } विसर्जनीय० ८।३।३४  
 २५ }  
 ४३३ वृद्धाङ्कः ४।२।११४  
 १० वृद्धिरादैच् १।१।१  
 ,, वृद्धिरेचि ६।१।८८  
 ४३८ वृद्धिर्यस्याचा १।१।७३  
 १८६ वृत्तयःस्य० १।३।२२  
 २३८ वृत्तो वा ७।२।३८  
 ८८ वरपृक्तस्य ६।१।६७  
 ४७४ वीतो गुण० ४।१।४४  
 ३४५ व्याङ्परि० १।३।८३  
 ८६ व्यञ्जस्त० ८।२।३६  
 ४५४ व्रीहिसावयो १।२।२

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

४६० व्रीह्यादि० ४।२।१३५  
 [ श ]  
 २७८ सदेरिषातः १।३।६७  
 ११९ सपश्यनो०  
 ४४७ सन्दर्दुर्दुरं०  
 ३४१ सन्दर्वैरक० ३।१।१७  
 ४५० सरीरावयवा  
 ४४२ सरीरावयवा० १।१।५  
 ७८ सरोजचि ८।४।३५  
 २६३ सपूर्वाः स्वः ७।४।६१  
 २२५ सल इगुप० ३।१।७५  
 १९ सल्लोऽटि ८।४।६५  
 २ सल्लसर् म० सू० १।१  
 ९२ ससो न ७।१।२३  
 १६ सत् ८।४।४७  
 ४८० साङ्गैरवा० ७।१।७२  
 ३६२ सास इट् ६।४।३३  
 २०३ सासिवसि ८।३।३१  
 ४३६ सास्वावावळ ४।२।७५  
 ५२ सि तुक् ८।३।३१  
 ४४७ शिल्पम् ४।४।५५  
 ४२८ शिवादि० ४।१।११५  
 ६८ सि सर्वना० १।१।७३  
 २१६ शीलो हट् ७।१।७३  
 २१८ शीलः सा० ७।२।११  
 ४४८ शीलम् ४।४।५५  
 ४३२ शुक्राङ्गन्  
 ३७४ शुषः कः  
 २३८ शृदप्राहस्वो  
 ३६६ शो मुचादी० ७।१।५५  
 १२५ शेषात्कर्तारि १।३।७५  
 ३२० शेषादिमा ५।४।१

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

४३७ शेषे ४१११२  
 १२६ शेषे प्रथमः २४११०८  
 ११ शेषे लोपः ७२१९०  
 ४२ शेषो ध्व० ११४७  
 ४१२ शेषो बहु० २१२२३  
 २१६ रनसोर० ६४११११  
 २२२ रनाञ्जलोपः ६४१२३  
 २४० रनाभ्यस्त० ६४१११२  
 १०४ श्रुवः श्रुच ३११७४  
 ४०० श्रोत्रियंरक्ष ६१२८४  
 २६४ श्रुयुक्तः किति ७२१११  
 २३४ रलो ६४११०  
 २२९ श्रुयुवमधो ६४११३३

[ ष ]

४६४ षट्कृत्क० ६१२११  
 ४०० षट्चतुर्भ्यश्च ७१११६६  
 ४६४ षट्भ्यो लुक् ७११२२  
 १२५ षडोः कः ० ८२१४१  
 ४०६ षष्ठी २१२१८  
 ४२६ षष्ठी शेषे २१३१०  
 ४०३ चिद्गौरादि० ४११४१  
 ४०८ षः प्रत्ययस्य ११३१६  
 १६ ष्टुना ष्टुः ८४१४१  
 २० ष्यान्ता षट् १११२४

[ स ]

४४ सञ्चयुरसम्बु ७१११२  
 ४०४ सञ्चयुयः ६१११२६  
 ४२१ सत्त्वापपा० ३११२५  
 ४०६ स नपुंसकम् २४११७  
 १५० सनाद्यन्ताच्चा० ३११३२  
 ३०८ सनाद्यस्य ३१२१६८  
 ३२८ सनि गृह० ७२११२

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

३२७ सन्यतोः ६१११९  
 १८२ सन्यतः ७११७९  
 „ सन्वत्सल्लघु ७११९३  
 ४६७ सपूर्वाच्च ५१२१८७  
 ४०७ सप्तमी शौ० २११४०  
 ४१६ सप्तमीवि० २१२३५  
 ३६६ सप्तम्यधि० २१३३६  
 ४६२ सप्तम्यास्त्रल् ६१३१०  
 ३७१ सप्तम्यां ज० ३१२१७  
 ४४९ सभाया यः ४१११०५  
 ३९८ समर्थः पद० २१२११  
 ४२३ समर्थानां० ४११२२  
 ३४३ समवप्रवि० ३११२२  
 ३०२ समवाये च ६१११३८  
 ३४३ समस्तृती० ११३१५४  
 ३९० समानकर्तुं ३१४२१  
 ३६१ समासेऽनञ् ७११३७  
 ४ समाहारः० ११२३१  
 ९७ समः समि ६१३१६३  
 २३ समः सुटि ८१३१५  
 ३० सरूपाणां० ११२१६४  
 १३ सर्वत्र वि० ६१२१२२  
 ४४ सर्वनामस्थाने ६१४१८  
 ३२ सर्वनाम्नः ७१११४  
 ६१ सर्वनाम्नस्याद् ७१३१५४  
 ४६३ सर्वस्य सो० २१३१६  
 ३९ सर्वादीनि १११२७  
 ४६३ सर्वकान्य० ६१३१२५  
 १७४ सवाभ्याम् ३१४१६१  
 २९ ससञ्चयो कः ८१२१६६  
 ३६८ सह सुपा २१११४  
 ९८ सहस्यसमिः ६१३१६५

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः

२०० सहिवहोरो ६१३११२  
 ३७१ सहे च ३१२१६६  
 ७७ सहेः साहः ८१३१५६  
 ४७० सात्पदा० ८१३१११  
 ३९६ साधकतमं० ११४१४२  
 ९९ सान्तमहतः ६१४१०  
 ९४ साम आ० ६१३३३  
 ४४१ सायचिरं० ७१३१२३  
 १६४ सार्वधातुकम् ११२१४  
 १२६ सार्वधातु ७१३१८४  
 ३४६ सार्वधातुके ३१३१६७  
 ७६ सावनहुहः ७११२२  
 ४३२ सास्य वैव० ४१२१४  
 २४० सिचि च० ७१२१७  
 १५७ सिचि वृद्धिः ७१२११  
 १४१ सिज्जम्यस्त ३१४१०६  
 २८९ सिपि धा० ८१२१७४  
 १७९ सुट्तिथोः ३१४१०७  
 ४० सुडनपुंस० १११४३  
 ३३७ सुप आत्मनः ३१११८  
 ३२ सुपि च ७१३१०२  
 ३३७ सुपो धातु० २१४१७१  
 ३० सुपः ११४१०३  
 ७ सुसिद्धन्तम् ११४११४  
 ३७० सुप्यजातौ ३१२१७८  
 ३१६ सुहृद्दु० ६१३११९०  
 २६० सुजिह्वो० ६१३१५८  
 २५० सोऽसिचि ७१२१५७  
 १३३ सोऽपिचि ३१३१८७  
 २८ सोऽपि ६१११३४  
 ४४४ सोऽस्य नि० ४१३१८९  
 ३१६ सोऽप्यदादौ ८१३१५८

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
 ४३२ सोमाट्टयण् ४।१।३०  
 ८३ सौ च ६।१।१३  
 ४०८ संख्यापूर्वो २।१।५२  
 ४२५ संख्याया० १।२।४२  
 ३१६ संख्यासु० ६।१।१४०  
 ३०१ सम्परि० ६।१।१३७  
 ७६ सम्प्रसार० ६।१।१०८  
 ६० सम्बुद्धौच ७।३।१०६  
 १५ सम्बुद्धौशाक १।१।१६  
 ३६३ सम्बोधने २।३।४७  
 ४४२ सम्भूते १।३।४१  
 ३७३ संयोगा० ८।२।४३  
 ८ संयोगान्त० ८।२।२३  
 १४२ संयोगेगु १।१।११  
 ४४७ संसृष्टे १।१।२२  
 ४४६ संस्कृतम् १।१।३  
 ४३१ संस्कृतं भ० १।२।१६  
 ४०६ संहितशफ० १।१।७०  
 ३२७ सः स्यार्ध० ७।४।४६  
 ६० सकोः संयो० ८।२।२६  
 ३०६ स्तन्मुस्तु० ३।१।८२  
 ३१० स्तन्मोः ८।३।६७  
 २६२ स्तुसुधृज् ७।२।७२  
 ४०६ स्तोका० २।१।३९  
 १६ स्तोः रचुना ८।१।४०  
 ४०१ क्रियाम् १।१।३  
 ३६ क्रियां च ७।१।९६  
 ३८६ क्रियां किन् ३।३।६४  
 ६४ क्रियाः ६।४।७९  
 ४१७ क्रियाः पुंव ६।३।३४

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
 ४२५ स्त्रीपुंसा० १।१।८७  
 ४२८ स्त्रीभ्यो ढक् १।१।१२०  
 २४६ स्थाध्वो० १।२।१७  
 ३३ स्थानिव० १।२।९६  
 ७ स्थानेऽन्त० १।१।९०  
 १०२ स्पृशोऽनु० ३।२।५८  
 २०५ स्फुरतिस्फुल ८।३।७६  
 १३७ स्मोत्तरे० ३।३।१७६  
 १३० स्यतासी ३।१।३३  
 ३४६ स्यसिचसी० ६।४।६२  
 ३२४ } स्वतन्त्रः० १।४।५४  
 ३६५ }  
 ३८६ स्वपो नन् ३।३।९१  
 ३७ स्वमज्ञाति० १।१।३५  
 ६६ स्वमोर्नपुं० ७।१।२६  
 १६३ स्वरतिसू० ७।२।४४  
 १२१ स्वरादिनि० १।१।३७  
 १२५ स्वरितजि० १।३।७२  
 ४७७ स्वाङ्गाच्चो० १।१।९४  
 २६२ स्वादिभ्यः ३।१।७३  
 ४१ स्वादिष्व० १।१।१७  
 २६ स्वौजसमोड् १।१।२  
 १७३ ह एति ७।४।५२  
 २०८ हनो वध २।४।४२  
 " हन्तेर्जः ६।४।३६  
 १ हयवरट् म० सू० ५  
 २ हल् म० सू० १४  
 ४१६ हलदन्ता० ३।३।९  
 ३४४ हलन्ताच्च १।२।१०  
 २ हलन्त्यम् १।३।३  
 ३८६ हलन्त्र ३।३।१११

पृष्ठाङ्काः सूत्राणि सूत्राङ्काः  
 ४७३ हलस्तद्धि० ६।४।१५०  
 १२८ हलादिःशेषः ७।४।६०  
 २३८ हलि च ८।२।७७  
 ७६ हलि लोपः ७।२।११३  
 २६ हलि सर्वे० ८।३।२२  
 ७ हलोऽनन्तराः १।१।७  
 ४२५ हलो यमां० ८।४।६४  
 ३७३ हलः ६।४।२  
 ३१० हलः रन० ३।१।८३  
 ४४ हल्लयाढभ्यो ६।१।६८  
 २६ हशि च ६।१।११४  
 ३०७ हिनुमीना ८।४।१५  
 २७६ हिंसायाम् ६।१।१४१  
 २०४ हुसलभ्यो ६।४।१०१  
 १६४ हुसनुवोः० ६।४।८७  
 ४४३ हेतुमनुष्ये० १।३।८३  
 ३५८ हेतुहेतुम० ३।३।१५६  
 ३२४ हेतुमति च ३।१।२६  
 २० हे मपरे वा ८।३।२६  
 ४५४ ह्यङ्गवी० १।२।२३  
 ७४ हो ढः ८।२।३१  
 ८४ हो हन्ते० ७।३।५४  
 १४६ ह्ययन्तचण ७।२।५  
 ३४ ह्रस्वनद्यापो ७।१।९४  
 ४२ ह्रस्वस्य० ७।३।१०८  
 ३६१ ह्रस्वस्य० ६।१।७१  
 १६४ ह्रस्वादङ्गाव ८।२।२७  
 ६६ ह्रस्वो नपु० १।२।४७  
 १४१ ह्रस्वं लघु १।४।१०  
 १२९ ह्रस्वः ७।४।५५

इति श्रीलघुसिद्धान्तकौमुदीस्थसूत्राणामकारादिवर्णानुक्रमसूची ।

• श्रीः •

# अथ लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थवार्तिकानाम्—

## अकारादिक्रमसूची ।

| विषयः                             | पृष्ठम् | विषयः                             | पृष्ठम् |
|-----------------------------------|---------|-----------------------------------|---------|
| [ अ ]                             |         | [ आ ]                             |         |
| अङ्गत्वादिन्यामुपसंख्यानम्        | ११      | आचार्यादित्वं च                   | ४७६     |
| अवाद्यः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया | ४११     | आद्यादिभ्यस्तसेरुपसंख्यानम्       | ४६६     |
| अवर्माप्तेति वक्तव्यम्            | ४४७     | [ इ ]                             |         |
| अव्ययभादेष्टविध्यते               | ४४८     | इह इत्संज्ञा वाच्या               | २४७     |
| अव्यपरिमाणे च                     | ९       | इवेन समासो विभक्त्यलोपरच          | ३६८     |
| अन्तःशब्दस्वाङ्गिविधिजत्वेष्टूप-  |         | [ ई ]                             |         |
| सप्तत्वं वाच्यम्                  | १३४     | ईकञ् च                            | ४२४     |
| अन्वेष्टोऽपि दृश्यते              | ४५६     | [ ऊ ]                             |         |
| अन्वादेशे नपुंसके एवङ्कन्यः       | ११५     | ऊर्जातिराम्नेति वाच्यम्           | २३२     |
| सः प्रती                          | ४३३     | [ ऋ ]                             |         |
| अनन्वयतिनगरीनामिति वाच्यम्        | १७      | ऋलृवर्णभोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम् | ५       |
| अपुस्तभावा इति वक्तव्यम्          | ४६९     | ऋते च तृतीयासमासे                 | १५      |
| अमेष्टसिन्नेभ्य एव                | ४३८     | ऋस्वादिभ्यः क्तिञ्छिञ्चावङ्गाभ्यः | ३८६     |
| अर्जसो लोपरच                      | ४६०     | ऋवर्णाभ्यस्व णत्वं वाच्यम्        | ५७      |
| अर्धेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता- |         | [ ए ]                             |         |
| वेति वक्तव्यम्                    | ४०५     | एकतरात्प्रतिषेधो वक्तव्यः         | ६९      |
| अर्धचित्रियाम्नां वा स्वायें      | ४७७     | एतदोऽपि वाच्यः                    | ४६४     |
| अवाद्यः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया   | ४११     | एते वाचावाद्य आदेशा अनन्वादेशे    |         |
| अवाद्यपारादिगृहीतादपि विपरीता-    |         | वा वक्तव्याः                      | ९६      |
| प्तेति वक्तव्यम्                  | ४३७     | [ औ ]                             |         |
| अव्ययस्य ज्वावीत्वं नेति वाच्यम्  | ४६९     | औः रयां प्रतिषेधो वाच्यः          | ६८      |
| अव्ययानां ममात्रे टिलोपः          | ४४१     | [ क ]                             |         |
| अवर्मावो विकारे टिलोपो वक्तव्यः   | ४४१     | कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्        | ४३७     |
| अस्व सम्प्रदायौ कञ्क नलोपरच       |         | कमेरुच्छेरचच् वाच्याः             | ४३७     |
| ॥ वाच्यः                          | १०६     |                                   |         |

| विषयः                                  | पृष्ठम् |
|--|---------|
| कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः                | १५०     |
| क्रिञ्चचिप्रच्छुवायतस्तुकटप्रुजुमीणां  |         |
| दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च                   | ३७९     |
| कुदिकारादक्तिनः                        | ४७५     |
| केलिमर उपसंस्थानम्                     | ३६१     |
| कत्रिवसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य           |         |
| राजन्यपत्यवत्                          | ४२६     |
| [ ग ]                                  |         |
| गणसहायाम्यां चेति वक्तव्यम्            | ४३३     |
| गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेच्यते       | ५२      |
| गुणवचनेभ्यो मनुषो लुगिटः               | ४५८     |
| गोरजादिप्रसङ्गे यत्                    | ४२४     |
| [ ङ ]                                  |         |
| ङवुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः          | ८१      |
| [ च ]                                  |         |
| चधो द्वितीयाः शरि पौष्करसादे-          |         |
| रिति वाच्यम्                           | २१      |
| [ छ ]                                  |         |
| छत्वममीति वाच्यम्                      | १९      |
| [ ड ]                                  |         |
| डाचि विवचिते द्वे बहुलम्               | ४७०     |
| [ न ]                                  |         |
| त्यब्नेर्भुव इति वक्तव्यम्             | ४३८     |
| तिष्णपुष्ययोर्नञ्त्राणि यलोप इति       |         |
| वाच्यम्                                | ४३१     |
| तीयस्य लिप्सुवा                        | ३९      |
| तीयस्य वा संज्ञा                       | ६२      |
| [ द ]                                  |         |
| दुरः क्त्वणत्वयोरुपसर्गात्त्वप्रतिषेधो |         |
| वक्तव्यः                               | १३४     |
| दन्तरपुनःपूर्वस्य मुवो यण् वक्तव्यः    | ५७      |

| विषयः                                    | पृष्ठम् |
|--|---------|
| देवाद्यजो                                |         |
| इन्द्रतत्पुरुष्योरुत्तरपदेन नित्यसमा-    |         |
| सवचनम्                                   | ४०६     |
| द्विगुप्राप्तापञ्चालपूर्वगतिसमासेषु      |         |
| प्रतिषेधो वाच्यः                         | ४१६     |
| द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः                  |         |
| [ ध ]                                    |         |
| धर्मादिष्वनियमः                          | ४११     |
| [ न ]                                    |         |
| नजोऽस्त्यर्थानाम्वाच्यो वा चोत्तर-       |         |
| पदलोपस्योपसंस्थानम्                      |         |
| नञ्स्ननीककस्युस्तस्मिन्तलुनाना-          |         |
| मुपसंस्थानम्                             | ४०६     |
| न समासे                                  | १६      |
| नामिनमञ्च                                | ४५०     |
| नित्यमाभेदिते डाचीति वक्तव्यम्           | ४००     |
| निराद्यः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या        | ४१२     |
| नुमचिरवृज्ज्वावेभ्यो नुट् पूर्ववि-       |         |
| प्रतिषेधेन                               |         |
| नृनरयोर्द्विदिश                          |         |
| [ प ]                                    |         |
| परौ व्रजेः षः पदान्ते                    | ४८      |
| पर्यादयो गलानाद्यर्थे चतुर्थ्या          |         |
| पाण्डोर्द्वयण्                           |         |
| पालकान्ताञ्च                             |         |
| पूरोरण् वक्तव्यः                         |         |
| प्रत्यये आषायां नित्यम्                  |         |
| प्रथमलिङ्गग्रहणञ्च                       |         |
| प्रक्त्स्तरकञ्चलवसनार्णद्विज्ञानाद्यर्थे |         |
| प्रातिपदिकादात्त्यर्थे बहुलमिष्टवत्      |         |
| प्रादयो मताद्यर्थे प्रथमया               |         |



| विषयः                              | पृष्ठम् | विषयः                                 | पृष्ठम् |
|------------------------------------|---------|---------------------------------------|---------|
| प्रादिभ्यो घातुजस्य वाच्यो वा      |         | [ श ]                                 |         |
| चोत्तरपदलोपः                       | ४१६     | अकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्           | १२      |
| प्रसूहोढोढ्येष्वेषु                | ११      | श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च               | ४७९     |
| [ ब ]                              |         | शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपद-     |         |
| बहिषष्टिलोपो यञ्च                  | ४२४     | लोपस्योपसंस्थानम्                     | ४०९     |
| [ म ]                              |         | शे तुम्फादीनां नुम्वाच्यः             | २७४     |
| मूलविमुजादिभ्यः कः                 | ३६६     | [ स ]                                 |         |
| मस्यस्य कथां यलोपः                 | ४७८     | सम्पुङ्गानां सो वक्तव्यः              | २३      |
| मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वाच्यः    | २७६     | सम्बुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः  | ११६     |
| मातुलोपाध्याययोरानुम्वा            | ४७६     | समानवाक्ये युष्मदस्मदादेशा            |         |
| [ य ]                              |         | वक्तव्याः                             | ९५      |
| यस्यः प्रतिषेधो वाच्यः             | ८       | सर्वतोऽक्तिन्नर्यादित्येके            | ४७५     |
| यवनास्त्रिप्याम्                   | ४७६     | सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः    | ४७८     |
| यवाद्दोषे                          | "       | सम्प्रदादिभ्यः क्तिप्                 | ३८६     |
| यवकल्परे यवला वा                   | २०      | सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्तिन्वा वक्तव्यः | ३३६     |
| योपधप्रतिषेधे ह्यगवयमुकयमनुष्य-    |         | सिज्जलोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः        | १४१     |
| जस्यानामप्रतिषेधः                  | ४७८     | सुट्कात्पूर्वं इति वक्तव्यम्          | २७९     |
| [ र ]                              |         | सूर्यागस्ययोश्छेच कथाञ्च              | ४७५     |
| राज्ञो ज्ञातावेवेति वाच्यम्        | ४२६     | सूर्यादेवतार्यां चाग्राच्यः           | "       |
| [ ल ]                              |         | स्पृशमृशकृषतृपहपां प्लेः सिज्वा       |         |
| लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः | ४२७     | वाच्यः                                | २६८     |
| [ व ]                              |         | स्थाध्वोरित्वे दीङः प्रतिषेधः         | २५६     |
| वा नामधेयस्य घृद्धसंज्ञा वक्तव्या  | ४३६     | स्वतिभ्यामेव                          | ४२३     |
| वृणुटानुवङ्ग्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ  | २५६     | हिमारण्ययामर्हत्वे                    | ४७६     |
| वृद्धधौचतृज्वन्नावगुणेभ्यो नुम्    | ७०      |                                       |         |
| पूर्वविप्रतिषेधेन                  |         |                                       |         |

## परिभाषा सूची

|                         |    |                               |    |
|-------------------------|----|-------------------------------|----|
| एकदेशविकृतमभन्यक्त      | ३९ | निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति   | ३९ |
| लोपयोऽलोप्यविधिरनभ्यास- |    | पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य |    |
| कारे                    | ८० | च                             |    |

## अथ गणपाठः ।

### अजन्तपुंलिङ्गे-

पृ० अं० ३५ ॥ सर्वादीनि सर्वनामानि ॥ १।१।२७ सर्वं विश्व उभ उभय इतर इतम् अन्य अन्यतर इतर स्वत् स्व नेम सम सिम ( पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् ) ( स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ) ( अन्तरं बहिर्योगोपसंख्या-  
नयोः ) त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि शुष्मद् अस्मद् भवतु किम् । इति सर्वादिः ।

### अग्ययीमा० स०

पृ० अं० ४०२ ॥ अग्ययीभावे क्षरत्प्रमृतिभ्यः ॥ १।१।१०७ क्षरद् विपाश् अनस्  
मनस् उपानद् अनहुद् दिव् हिमवत् हिस्क् विद् दिश दश् विस् चतुर् त्यद् तद् यद्  
क्रियत् ( जराया जरस् ) ( प्रतिपरसमनुभ्योऽच्चः ) पथिन् । इति क्षरदादिः ।

### तत्पु० स०

पृ० अं० ४०७ ॥ सप्तमी शौण्डेः ॥ २।१।४० शौण्ड धूर्त कितव व्याड प्रवीण  
संबीन अन्तर अधि पट्ट पण्डित कुशल चपल निपुण इति शौण्डादिः ॥

पृ० अं० ४१० ॥ ऊर्यादिच्चिदाचश्च ॥ १।१।६१ ऊरी ऊररी कन्थी ताली आताली  
वेताली धूली धूरी झकला संकला ध्वसकला अंसकला गुल्गुधा सज्जः फलफली विह्वी  
आवली आलोष्टी केवाली कवासी सेवासी पयाली शेवाली अत्यूमनसा वरमसा  
मरमसा मरमसा औषट् चौषट् वषट् स्वाहा स्वधा वन्धा प्रादुस् एते ऊर्यादयः ।

### तद्धिते

पृ० अं० ४२३ ॥ अश्वपत्यादिभ्यश्च ॥ ४।१।८४ अश्वपति स्थानपति ज्ञानपति  
बज्रपति बन्धुपति शतपति धनपति राष्ट्रपति कुलपति गृहपति पशुपति भान्यपति  
धर्मपति धन्वपति समापति प्राणपति क्षेत्रपति इत्यश्वपत्यादिः ।

पृ० अं० ४२४ ॥ उत्सादिभ्योऽङ्क् ॥ ४।१।८६ उत्स उदपान विकिर विनद महानद  
महानस् महाप्राण तरुण तलुन वष्क्यास धेनु पृथ्वी पंक्ति जगती त्रिष्टुप् अनुष्टुप्  
जनपद भरत उक्षीनर ग्रीष्मपल्लु कुण पृषदंश मल्लकीय रथन्तर मध्यन्दिन इह  
हत् सत्क् कुरुपञ्चाल इन्द्रावरुण उष्णीह ककुभसवर्ण देवग्रीष्माद् अनुष्टुप् ।  
इत्युत्सादिः ।

पृ० अं० ४२६ ऋगादिभ्यो ञञ् ४१।१०५ यगं, वत्स । वाज्रासे । संस्तुति  
अत्र व्याघ्रपातं विदधृतं प्राचीनयोग (अगस्ति) पुलस्ति चमस रेभ अग्निवेद्य  
सङ्गु सट शक एक धूम अवट मनस् धनजय धृच विश्वासु चरमाण लोहित संस्तुत  
वञ्जु वग्गु मण्डु गण्डु सङ्गु लिगु गुहलु मन्नु मरुचु अलिगु जिगीधु मनु तन्नु इत्यादि ।

पृ० अं० ४२७ ऋगृष्याऽनन्तर्ये विदादिभ्योऽञ् ४१।१०३ बिद ऊर्ध्व करवप  
कुशिक भरद्वाज उपमन्यु किलात किंदर्म विश्वानर ऋषिवेण ऋतमाग हर्षरव प्रियक  
अपिस्तम्भ कृचवार शरद्वत् शुनक वेनु गोपवन इत्यादि ।

पृ० अं० ४२८ ऋषिवादिभ्योऽञ् ४१।११२ शिव प्रौढ प्रौष्ठिक चण्ड जम्म सूरि  
दण्ड कुठार ककुभ (ककुभा) अनभिम्बान लोहित मुख सुख संचि मुनि ककुभ  
कोहड कोहड कयहु कहयं रोच कपिअल (कुपिअल) वतण्ड वृण कर्ण चौरहद जलहद  
परिल (पयिक) पिष्ट हैहय (पापकिं) गोपिका कपिलिका जटिलिका इत्यादि ।

पृ० अं० ४२९ रेवत्यादिभ्यश्चक् ४१।११६ रेवती अश्वपाली मणिपाली इतर-  
पात्री धृकपाली चक्रग्राह दण्डग्राह कर्णग्राह चामरग्राह । इति रेवत्यादिः ।

पृ० अं० ४३३ ऋषिवादिभ्योऽञ् ४१।३८ मिच्छा गर्भिणी क्षेत्र करीष अक्षर  
चर्मिन् धर्मिन् सहस्र युवति पद्मति पद्मति अयवत् दक्षिणाभूत विषय भोत इति  
मिच्छादिः ।

पृ० अं० ४३४ क्रमादिभ्यो जुञ् ४१।६१ क्रमक पदक शिचक मीमांसक । इति  
क्रमादिः ।

पृ० अं० ४३५ ऋषिवादिभ्यश्चक् ४१।२२ चरणा श्यही शास्त्रालि शुण्डी शुवाण्डी  
ताम्रपर्णी गोदा अलिङ्गयायनी जालपदी जम्बू पुष्कर चम्पा पम्पा वग्गु उज्जयिनी  
मन्वा मथुरा तच्चक्षिला उरसा गोमती बलभी । इति चरणादिः ।

पृ० अं० ४३६ ऋमादुपचायात्र मतोर्वोऽयवादिभ्यः ८।१९ यव इल्मि कर्मि  
भूमि कृमि कुञ्जा वक्ता द्राचा ध्राचा भ्राज (त्रजि) ध्वजि निजि सिजि सजि हरिय  
ककुद मरुत् सरुत् इचुद्रु मधु । आकृतीगणोऽयं यवादिः ।

पृ० अं० ४३८ ऋनद्यादिभ्यो ढक् ४१।९७ नदी मही वाराणसी आवस्ती कौसा-  
म्बी वनकौशाम्बी काशपरी काशफरी खादिरी पूर्वनगरा पाठा माया शक्वा! दार्वा  
सेतकी (बहवाया धृषे) इति नद्यादिः ।

पृ० अं० ४३९ ऋत्यादीनि चक् १।१७४ त्यादादिः सर्वाद्यन्तराणः ।

पृ० अं० ४३९ ऋगादिभ्यश्चक् ४१।१३८ गृह अन्तस्थ सम विषम (मध्यमार्ग  
विषयार्थे) उत्तम गर्वग भूगर्भ पूर्वपक्ष अपरपक्ष अधमस्त्रास समानप्राप्त एकद्वय  
अवस्थान्दन कामप्रस्थ सौमित्रि व्यादि इत्यादि । अकृतियनोऽयम् ।  
इति ऋगादिः ।

पृ० अं० ४४२ ऋद्यादिभ्यो यक् ४।३५४ दिक् वर्ग पूग गण पक्ष पक्षि ।

मेधा अन्तर पथिन् रहम् अलील बला साधिन् देस आदि अन्तनुल जवन मेध वृक्  
( उदकास्त्रायाम् ) म्याय वंस वेस काल आकाश इति दिगादिः ।

पृ० अं० ४४२ ॥ अनुसक्तिकादीनां च ॥ ७३२० अनुसक्तिक अक्षरवेणु असिहस्य  
वज्रोण पुष्करसत् कुक्षत् उवकशुद्ध इहलोक सर्वपुरुष प्रयोग परधी राजपुरुष  
स्वभि सुत्रनद आकृतिगणोऽयम् । तेन अनुहोद अनुसंवरण इत्यादयोऽन्येऽपि इत्ये  
नुसक्तिकादिः ।

पृ० अं० ४४६ ॥ उगवादिभ्यो यत् ॥ १११२ गो हविस् अचर विल विष बहिष्  
अष्टका रसदा युग मेधा क्षुच ( नाभिनमं ) ( शुनः सम्प्रसारणं वा च दीर्घत्वं तत्स-  
न्निभोगेन चान्तोदात्तत्वम् ) ( ऊक्सोऽनलृच् ) कुम् खद दर खुर असुर अध्वनचरवेदः ।  
इति गवादिः ।

पृ० अं० ४४२ ॥ दण्डादिभ्यो यत् ॥ ५११६ दण्ड मुसल मधु कसा अर्थ मेघ मेघा  
सुवर्ण उदक वच युगागुहा भाग इम भङ्ग इति दण्डादिः ।

पृ० अं० ४५३ ॥ पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ॥ १११२२ पृथु मृदु महत् पटु तनु लघु  
बहु साधु आशु उरु बहुल खण्ड दण्ड चण्ड अकिंचन बाल वत्स होद पाक मन्द  
स्वादु इत्वं दीर्घं प्रिय वृष ऋजु चिप्र क्षुद्र अणु । इति पृथ्वादिः ।

पृ० अं० ४५३ ॥ वर्णदृढादिभ्यः प्यञ्ज ॥ १११२३ दृढ बृढ परिष्टुद मृश कृश वक्  
शुक चुक आन्न कृष्ट लवण ताम्र शति उष्ण जड बधिर पण्डित मधुर मूर्ख मूक  
स्थिर 'वैर्यातलातमतिमनःसारदानाम्' 'समो मतिमनसोः' जघन इति दृढादिः ।

पृ० अं० ४४४ ॥ गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ॥ १११२४ ब्राह्मण वाहव  
माणव 'अर्हतो जुम् च' चोर धूर्त अराधय विराधय अपराधय उपराधय एकमात्र  
दिभाय त्रिभाय अन्यभाव इत्यादिः ।

पृ० अं० ४५५ ॥ तदस्य सञ्ज्ञातं तारकादिभ्य इतच् ॥ १२१३६ तारका पुष्प कर्मक  
मज्जरी ऋजीष चण सूत्र मूत्र निष्क्रमण पुरीष उचार प्रचार विचार कुड्मल कण्ठक  
मुसल मुकुल कुसुम कुतूहल स्तवक किसलय पङ्खव खण्ड वेग निद्रा मुद्रा उडुच  
इत्यादि ।

पृ० अं० ४५८ ॥ हृष्टादिभ्यश्च ॥ १२१८८ हृष्ट पूर्त उपासादित निगदित परिगदित  
पङ्क्तिवादित निकथित निषादित निपठित संकलित परिकलित संरक्षित परिरक्षित  
अक्षित गणित अवकीर्ण आवुक्त गृहीत आम्नात श्रुत अधीत इत्यादि ।

पृ० अं० ४५९ ॥ लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ॥ १२१९०० लोमन्  
वक्त्र अरि गिरि कर्क कपि मुनि तरु इति लोमादिः ।

अथ पामादिः—पामन् वामन् वेमन् हेमन् श्लेष्मन् कद्रुवलि सामन् ऊष्मन् कृमि  
( अङ्गकल्याणे ) ( शाकपलाठी तद्रूपां हस्त्वत्वं च ) ( विष्वगित्पुत्रपदयो-  
रित्पुत्रसंज्ञेः ) ( लक्ष्म्या अप्य् ) इति पामादिः ।

अथ पिच्छादिः—( पिच्छा उरस् ध्रुवक्षुवक जटा घटा कालाक्षेपे ) रण उदक पट्ट  
प्रज्ञा इति पिच्छादिः ।

पृ० अं० ४६० ॐ श्रीह्यादिभ्यश्च ४।२।११६ श्रीहि माया शाला शिखा माला  
मेखला केका अष्टका पताका चर्मन् कर्मन् वर्मन् दंष्ट्रा संज्ञा वट्टा कुमारी नौ वीणा  
बलाका यवखद इति श्रीह्यादिः ।

पृ० अं० ४६० ॐ अर्शवादिभ्योऽच् ५।२।१२० अर्शस् उरस् तुन्द चतुर पलित जटा  
घटा घाटा अघ कर्दम अम्ल लवण ( स्वाङ्गादीनात् ) ( वर्णात् ) अर्शं आदिराकृतिगणः ।

पृ० अं० ४६९ ॐ प्रज्ञादिभ्यश्च ५।१।३८ प्रज्ञ वणिज उशिज उष्णिज प्रत्यक्ष वि-  
ह्वस् विदन् षोडस् विद्या मनस् ( श्रोत्रक्षरीर ) जुहुवत्कृष्णामृगे ) चिकीर्षत् चोर सन्न  
बोध धनुस् वसु एनस् मरुत् क्रुञ्च सत्वत् दशाहे वयस् असुर रक्षस् पिशाच अशनि  
कार्षापण्यम् देवता बन्धु इति प्रज्ञादिः ।

पृ० अं० ४६९ ॐ आद्यादिभ्यः तसउपसंख्यानम् ॐ अयमेव सर्वविभक्तिस्तसिः ।  
आदितः मध्यतः अन्ततः पारवतः पृष्ठतः आकृतिगणोऽयम् स्वरेण स्वरतः ।

पृ० अं० ४७१ ॐ अजाद्यतष्टाप् ४।१।३ अज एडक अरव चटक मूषक बाल वस्त्र  
होह पाक मन्द विलात पूर्वापहाण उत्तरापहाण क्रुञ्चा उष्णिहा देवविशा ज्येष्ठा  
कनिष्ठा मध्यमेति पुंयोगेऽपि कोकिलाजातौ, दंष्ट्रा एतेऽजादयः आकृतिगणोऽयम् ।

पृ० अं० ४७३ ॐ षिट्ठौरादिभ्यश्च ४।१।४१ गौर मत्स्य मनुष्य शृङ्ग पिङ्गल हय  
मवय मुकय ऋष्य ( पूट तूण ) द्रुण हरिण कोकय ( काकण ) पटरउणक ( आमल )  
आमलक कुबल बिम्ब वदरफर्करक ( कर्कर ) तकरि स्करि पुष्पर पिषण्डसलद शष्कण्ड  
सनन्द सुषम सुषव अलन्द गडुल षण्डश आढक आनन्द आरवत्य इति गौरादिः ।

पृ० अं० ४७४ ॐ बह्नादिभ्यश्च ४।१।४२ बहु पदति अञ्ज अङ्कति अहति शक्ति  
शक्ति शास्त्र शारि वारि यराति राधि इत्यादिः, आकृतिगणोऽयम् ।

पृ० अं० ४७८ ॐ नक्रोडादिबह्वचः ४।१।५६ क्रोड नखसुर गोखा उखा शिखा वाक्  
क्षफशुक आकृतिगणोऽयम्, तेन भागगल घोण नाल भुज गुद कर इति क्रोडादिः ।

पृ० अं० ४८० ॐ शाङ्गर्वाद्यजोडीन् ४।१।७३ शाङ्गरव कापटव गाभालव ब्राह्मण  
वेद गौतम कामण्डलेय ब्रह्मणकृतेय आनिचेय आनिषेय आशोकेय वारथ्यन मौञ्जायन  
कैकस काप्य काच्य शैव्य एहि आरमरथ्य औदपान अराल चण्डाल वतण्ड भोगवत्  
गौरमत् एता संज्ञायाम् नृनरयोर्बुद्धिश्च । पुत्र इति शाङ्गर्वादिः ।

इति गणपाठः समाप्तः ।

॥ श्रीः ॥

## धातुनामकारादिकमसूची ।

| धा०     | पृ० | धा०     | पृ० | धा०       | पृ० | धा०     | पृ० |
|---------|-----|---------|-----|-----------|-----|---------|-----|
| अणू     | २८७ | कुष     | ३१८ | जनी       | २५७ | तुद     | २६२ |
| अत      | १३६ | कृती    | २८४ | जुषी      | २८१ | तुम     | १८६ |
| अद्     | २०३ | कृती    | २७१ | ज्ञप      | ३२६ | तृणु    | २९९ |
| अम      | १८३ | कृष     | २६७ | ज्ञा      | ३२० | तृप     | २७४ |
| अर्च    | १४८ | कृ      | २७८ | जिह्न्धी  | २६३ | तृग्न   | "   |
| अक्ष    | ३१९ | कृञ्    | ३१३ | जिष्वदा   | १८६ | तृह     | २८४ |
| अस्     | २१५ | कृञ्    | ३१० | जिमी      | २३५ | त्रपृष् | १८८ |
| इक्     | २२० | कृञ्    | १५८ | जिमिदा    | १८६ | त्रसी   | २५७ |
| इण      | २१७ | कृञ्    | २६८ | जिष्विदा  | "   | दद      | १८७ |
| इष      | २७४ | चि      | १५५ | हुनदि     | १४७ | दाप्    | २१२ |
| उङि     | २७३ | चिणु    | २६८ | हुमस्त्रो | २७५ | दिदु    | २४९ |
| उज्ज    | "   | चि      | २६८ | डीक्      | २५७ | दिह     | २२६ |
| उगृदिर् | २८४ | उदिर्   | २८३ | डूक्      | २९६ | दीक्    | २५६ |
| उगृदिर् | २८३ | कुम     | १८६ | डूकृञ्    | ३०४ | दीपी    | २५८ |
| उन्दी   | २८६ | स्त्रिद | २७१ | डूदाञ्    | २४४ | दुह     | २२२ |
| उगृञ्   | २३२ | ख्या    | २१२ | डूघाञ्    | २४६ | दूक्    | २५६ |
| अ       | ३५३ | गण      | ३२३ | डूपचष्    | १६५ | इञ्     | ३११ |
| अच्छ    | २७३ | गद्     | १४४ | डूभृञ्    | २४३ | दो      | २५२ |
| इष      | १६९ | गम्बु   | १६६ | णद्       | १४६ | द्युत   | १८४ |
| ओमरचू   | २७१ | गुपू    | १५० | णम        | १८६ | द्रा    | २१३ |
| ओमिजी   | २८१ | ग       | २७६ | णक्ष      | २५४ | द्रूञ्  | ३११ |
| ओमिजी   | २८९ | ग्रह    | ३१६ | णह        | २६१ | धूञ्    | २६४ |
| ओहाक्   | २४० | ग्ले    | ३६१ | णिजिर्    | २४७ | धूञ्    | ३१५ |
| ओहाक्   | २४२ | घट      | ३२६ | णीज       | १९५ | ध्वञ्   | १८६ |
| कटे     | १४६ | घुट     | १८६ | णुद्      | २६५ | ध्वञ्   | १८६ |
| कण्डूञ् | ४४२ | चिञ्    | २६२ | णु        | २७५ | ध्वञ्   | १८६ |
| कय      | ३२२ | चिती    | १४३ | तञ्चू     | २८६ | ध्वञ्   | १८६ |
| कय      | १७७ | चुर     | ३२१ | तनु       | २६४ | ध्वञ्   | १८६ |
| कट      | २७४ | चिदिर्  | २८२ | तप        | १५८ | ध्वञ्   | १८६ |
|         |     | छो      | २५२ |           |     |         |     |

| धा०    | पृ० | धा०    | पृ० | धा०    | पृ० | धा०      | पृ० |
|--------|-----|--------|-----|--------|-----|----------|-----|
| पा     | १५९ | माक्   | २५७ | वा     | २११ | विच      | २७० |
| पा     | २१२ | मिळ    | २६९ | विचिर् | २८३ | विज्     | ३०६ |
| पिच    | २७१ | मीज्   | ३०७ | विद्   | २४९ | विघ      | १११ |
| पिचल्  | २६१ | मुचल्  | २६९ | विद    | २६३ | विवु     | २१० |
| पीक्   | २५७ | मुच    | ३१६ | विद    | २१२ | वुज्     | २६२ |
| पु     | २७५ | मुक्   | २८० | विदल्  | २७७ | पृक्     | २५५ |
| मुच    | २५२ | सुट    | २७४ | विष्   | २७७ | वो       | २५५ |
| मुच्   | ३११ | सुस    | २७७ | क्     | ३२० | छा       | २५५ |
| मुक्   | २८१ | सृष    | २६० | वृत्   | १८६ | ण्       | २१२ |
| पृक्   | २७४ | यज     | १६६ | वृज्   | ३१४ | सुज      | २६० |
| पृ     | २३७ | या     | २१० | व्यच   | २७२ | स्कम्मु  | ३०६ |
| प्रच   | २८० | यु     | २०६ | व्यच   | २४२ | स्कृज्   | "   |
| मीज्   | ३०७ | युजिर् | २८३ | व्यच   | १४८ | स्कृम्मु | "   |
| प्या   | २१२ | युज्   | ३१० | व्यच   | २७८ | स्तम्मु  | "   |
| मुच    | २५६ | युच    | २४६ | व्यच   | २८६ | सुम्मु   | "   |
| मुच्   | २२९ | रमु    | ३४२ | शिचल्  | २१८ | सृज्     | २६६ |
| मुक्   | १९६ | रा     | २१२ | शीक्   | १४४ | सृज्     | ३१२ |
| मुजो   | २६१ | रिचिर् | २८३ | शुच    | २७४ | सृट      | २७५ |
| मु     | २१२ | रुच    | १८६ | शुन    | १८६ | सृल      | २७५ |
| मिचिर् | २८२ | रुजो   | २७७ | शुम    | २४४ | सृर      | "   |
| मुज    | २९२ | रुचिर् | २८१ | शुष    | २५१ | सृ       | ३५१ |
| मुजो   | २७७ | छा     | २१२ | शो     | २१२ | कम्मु    | १५५ |
| मु     | १२५ | लिय    | २७० | आ      | १६० | कंसु     | "   |
| मुज्   | १९२ | लिह    | २२६ | अज्    | ३०७ | हन       | २०६ |
| मुच    | २६५ | मुचल्  | २६९ | अज्    | १६४ | हिसि     | २४४ |
| मुसु   | १८६ | लुम    | २७३ | शु     | १८६ | हु       | १४४ |
| मुजु   | ३०३ | लुज्   | ३१२ | विता   | २६६ | हृ       | १४४ |
| माक्   | २४१ | वतु    | ३०२ | वणु    | २६६ | ह्री     | १४४ |
|        |     | वह     | १९९ | वदल्   | २७७ | हृ       | १४४ |

इति आनुनामकारादिक्रमसूची ।

# लघुकौमुदीस्योदाहरणानां सार्थानुक्रमणिका ।

अचसन्धिः ।

पृष्ठः ८-सुदृगुपास्यः-विद्वानों के उपासनीय-

भगवान् विष्णु,

मध्वरिः-‘मधु’ दैत्य के शत्रु भगवान् विष्णु ।

साम्राज्यः-महा का अंश

आकृतिः-‘ल’ यह स्वरूप । भगवा ‘ल’ के

समान टेढ़ी आकृति वाला मनुष्य,

हरये-पापहारी भगवान् के लिये

विष्णवे-विष्णु भगवान् के लिये

नायकः-नेता, प्रधान ।

पावकः-परिवर्तार्थ वा अग्नि

अव्ययम्-गो का विकार दुग्ध, दधि,

घृत, गोमूत्र, गोबर आदि

नायकम्-नौका से तरने योग्य जल

अन्युतिः-दो कोस

उपेन्द्रः-इन्द्र के छोटे भाई वामन भगवान् ।

गङ्गोदकम्-गङ्गा का उदक जल

कुम्भोदकम्-भगवान् श्रीकृष्ण की ससृष्टि

हर हर-हे हरि ! वहाँ लखलकार-तेरा लखल

विष्णु हर-हे विष्णु ! यहाँ

कुम्भोदकम्-भगवान् श्रीकृष्ण की वक्रता

मङ्गोदकम्-गङ्गा का प्रवाह

देवैश्वर्यम्-देवताओं का ऐश्वर्य

कुम्भोदकम्-श्रीकृष्ण भगवान् में ललकटा

उपेति-वास आता है

उपेयते-समीप बढ़ता है

मङ्गोदकम्-उत्खाने के लिये जिस के गले

में काष्ठ बांध देते हैं ऐसे बङ्गड़े को ‘मङ्गवाट्’

कहते हैं, ( उल्ल मङ्गोदः ) प्रहवाट् का

उपेति-समीप आता हुआ, का प्रसङ्ग हुआ

मा भवान् प्रेदिषत्-भाप अधिक न करवा  
अचौहिणी-सेनाविशेष ।

प्रौढः-अधिक तर्क या उत्तम तर्क करने वाला

प्रौढः-पोढ़ा, अघेड़, प्रौढिः-प्रौढता

प्रेषः-प्रेरणा । प्रेष्यः-भौकर

१२-सुखार्तः-सुख से प्राप्त हुआ, सुखी

परमर्तः-परम प्राप्त, मुक्त

प्राणम्-अधिक क्रय ( कर्जा )

वसतरार्यम्-बङ्गड़े का क्रय

कम्बलार्णम्-कम्बल का क्रय

वसनार्णम्-वस्त्र का क्रय

कृणार्णम्-एक क्रय को उतारने के लिये

लिया गया दूसरा क्रय

दक्षार्णः-दस किले जिस देश में हो ऐसा देश

प्राप्ति-अधिक चलता है

प्रेजते-अधिक कांपता है, उपोषति-प्रलता है

सकम्पुः-सक देश का कूप-( कुम्भा )

ककम्पुः-नदरी फल-( बेर )

मनीषा-बुद्धि । मार्तण्डः-सूर्य

१३-शिवायोनमः-शिवजी को नमस्कार

शिवेहि-हे शिवजी ! आर्ये

दैत्यारिः-दैत्यों का शत्रु-विष्णु भगवान्

श्रीसः-त्रयभीषति भगवान् विष्णु

विष्णुद्वयः-भगवान् विष्णु का अश्वमेध

होतृकारः-होता का ककार

हरेऽव-हे हरि ! रचा करो

विष्णोऽव-हे विष्णु ! रचा करो

गो अग्रम्-गो का अग्रभाग

चित्रवयम्-विचित्र गोप है जिसके

पुरुष का अग्रभाग, गो-गो का



१४-गवाम्नाम-गौ का अग्रभाग  
गवि-गौ में । गवेन्द्रः-गोस्वामी  
आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौरवृत्ति- हे  
श्रीकृष्ण ! आइये यहाँ गौ चरती है ।

हरी एतौ-ये दोनों हरि हैं, सिंह हैं  
विष्णू हमौ-ये दोनों विष्णु हैं  
गङ्गे अमू-ये दोनों गङ्गायें हैं  
अमी ईशाः-ये अविपत्ति हैं  
रामकृष्णाम् आसाते-ये बलराम और  
श्रीकृष्णचन्द्र बैठे हैं  
अमुकेऽत्र-ये यहाँ हैं ?

१५-ह इन्द्रः-ओह ! यह इन्द्र है !  
उ उमेकाः-क्या ये महादेवजी हैं ?  
आ एवं नु मन्यसे-क्या तुम ऐसा  
मानते हो ?

आ एवं किं तत्-हां वह बात ऐसी ही है  
ओष्वाय-कुछ गर्म  
कहो ईशाः-महो ये अविपत्ति हैं  
विष्णो इति-हे विष्णु ! ऐसा  
किमुक्तम्-क्या कहा ?  
चक्रि अत्र-विष्णु यहाँ हैं  
१६-गौर्यो-दो गौरी ये हैं  
वाप्यसः-वापी पर छोड़ा  
महापि-महा ऋषि, वसिष्ठ  
आर्चत्-चला गया

इत्येवमन्विष्टः ।

अथ हलसन्धिप्रकरणम् ।

रामरघेते-राम सोते हैं  
रामश्चिनोति-श्रीराम चुनते हैं  
सच्चित्-सत् और ज्ञानस्वरूप  
शक्तिजय-हे शक्तिचतुर्वारी भगवन् !  
आप की जय हो  
विरवा-विचलना या गति विरोध

प्ररनः-पूचना

१७-रामषष्ठः-राम छठा है  
रामष्टीकते-राम जाता है  
पेष्टा-रामने वाला । तट्टीका-वह टीका  
चक्रिण्डौकसे-हे चक्रवारी ! आप जाते हैं  
षट् सन्तः-छः सत्पुरुष  
षट् ते-वेछे । ईष्टे-स्तुति करता है

सर्पष्टमम्-अत्युत्कृष्ट घृत  
षण्णाम्-छै ( पुरुषों ) का  
षण्णवतिः-द्विगुणवै ( १६ )  
षण्णगर्भः-छै नगरीयें

सन् षष्ठः-छठा अष्ट [हे] बागीसः-बुरास्वति

१८-एतन्मुरारिः-ये भगवान् मुरारि हैं  
तन्मात्रम्-केवल वही । चिन्मयम्-ज्ञानस्वरूप  
तत्त्वयः-उसमें लय-लीन होना  
विद्वान्निवृत्ति-पण्डित लिखता है

१९-उत्थानम्-उठना, उन्नति  
उत्सम्भनम्-उठाना, उभारना  
वाग्धरिः-बोलने में श्रेष्ठ  
तच्छिवः-वह शिव ( है )  
तच्छ्लोकेन-उस श्लोक से वा उसकी कीर्ति से  
हरि वन्दे-ऽरि को मैं नमस्कार करता हूँ ।

यक्षांसि-गडुत से यक्ष  
आक्रंस्यते-आक्रमण करेगा

२०-मन्यते-मानता है

शान्तः-शान्त । अङ्कितः-चिह्नित  
अञ्जितः-गूँजित या गत । कुण्डितः-कटा हुआ  
दान्तः-जितेन्द्रिय । गुम्फितः-गुंथा हुआ ।  
त्वङ्करोषि-तुम करते हो  
सँव्वरसरः-वर्ष ( सम्बत् )  
सम्राट्-चक्रवर्ती राजा  
कि हाळयति-क्या चलाया जाता है ?  
कि हाः-कल क्या था ?

किं ह्रस्वयति-क्या चलाया जाता है ?  
किं ह्रादयति-कौन वस्तु प्रसन्न काती है ?

२१-किं ह्रते-क्या छिपाता है ?

वटसन्तः-वै सज्जन

आष्ट पष्ठः-ठठा पूजित है

सुगण् पष्ठः-ठठा अच्छा गणितज्ञ है

२२-सन्तसः-वह सत्पुरुष है

सम्भम्भुः-शम्भु सत्स्वरूप है

प्रस्य छारमा-प्रन्तरात्मा ( जीवात्मा )

२३-सुगण्धीनः-अच्छा गणितज्ञों का ईश्वर

सकृद्युतः-मगवान् अच्युत सत्स्वरूप है

सकृर्चा-सत्कार करने वाला

पुस्कोकिष्ठः-नरकोकिल ( कोयल )

२४-चक्रिण्यत्न-हे चक्रवर्ती, विष्णो !

रक्षा करो । प्रक्षान्तनोति-क्षान्त पुरुष विस्तार

करता है । हन्ति-मारता है

वृत्-वाहि-मनुष्यों की रक्षा करो

२५-कांस्कान्-किन २ को

शिवच्छाया-शिवजी की छाया

कर्मच्छाया-लक्ष्मी की छाया या शोभा

इति हत्सन्धिः ।

अथ विसर्गसन्धिः ।

विष्णुजाता-ओ विष्णु रक्षक है

हरिश्चोते-हरि सोते है

२६-शिवोऽर्च्यः-शिवपूजनीय है

शिवो वन्द्यः-शिवजी वन्दनीय है

देवा इह-देवता यहां

ओ देवाः !-हे देवताओं !

अगो नमस्ते-हे मगवान् ! आपको नमस्कार है

अथो वाहि-पाप दूर हट ( यहाँ से )

अहरहः-पतिदिन

२७-अहर्गन्धः-दिनसमूह,

अवा रमते-फिर खेलता है

हरी रम्भः-हरि रमणीय है

शम्भु राजते-शम्भु विराजते है

अजर्वाः-तुमने बारबार ग्रहण किया

तृढः-दिसित । घृढः-उद्यत, तैम्बास् हुमा

२८-मनोरथः-आच्छा

एष विष्णुः-यह विष्णु भगवान् है

स शम्भुः-वह शम्भु भगवान् है

एषको रुद्रः-वे भगवान् रुद्र है

असः शिवः-शिव वह नहीं है

एषोऽत्र-यह यहां है

२९-सेमामविहृति प्रमृतिम्-रसे देने में

आप समय है वह आप हमें इस

प्रमृति प्रकृष्टचारणा प्राप्त करावे

सैष दाशरथी रामः-ये वे दशरथ के

पुत्र श्रीराम चन्द्रजी हैं

इति विसर्गसन्धिः ।

अथाजन्तपुंलिङ्गप्रकरणम् ।

३०-रामः-भगवान्-श्रीराम

३१-कृष्णः-भगवान्-श्रीकृष्ण

सर्वः-सब । विश्वः-सब

३२-उभौ-दोनों । उभयः-दो अवयववाला

अन्यः-दूसरा, अन्यतरः-दो में से एक

इतरः-इतर, स्वप्-प्रत्य

स्वः-मित्र, नेमाः-भाषा

समः-सब, सिमः-सब

३३-पूर्वः-पहला । परः-दूसरा

अवरः-अधम, दक्षिणः-दक्षिण

उत्तरः-उत्तर, अपरः-दूसरा, अवरः-नीचा

स्वः-आप और अपना

३४-अन्तरः-बाहर वा पहिनेका कपड़ा

३५-प्रथमः-पहला

चरमः-अन्तिम । कतिपयः-कई एक

द्वितयः-दूसरा । अवयवः-बोझ

अर्ध-भावा । निर्बल-देवता

४०-विरक्षा-विषय का पालन करने वाले विष्णु

४१-शङ्खध्मा-शङ्ख गजाने वाला

४२-हाहा-देव गन्धर्व

हरि-भाषितों विष्णु भगवान्

४४-कवि-कविता करने वाला । सखा-मित्र

४५-पति-पति या मालिक

४६-भूपति-राजा

४७-कति-कितने ? । अश्व-जीव

मित्र-जिसको तीन प्यारे हैं वह

४८-हो-शे । पपी-मूल । वातप्रमी-शृण

४९-बहुश्रेयसी-बहुत कल्याण चाहने वाली

स्त्रियों वाला पुरुष

५०-अतिलक्ष्मी-लक्ष्मी को अति क्रमश

करने वाला, लक्ष्मी से भेष्ट

अमी-पट्ट ध्यानवाला

५१-ग्रामणी-मुखिया

मी-लेजाने वाला

५२-सुमी-सुन्दर श्री वाला

श्वमी-शे खरीदने वाला

शुद्धमी-पवित्र बुद्धिवाला । सुवी-पण्डित

सुखी-सुख चाहने वाला

सुती-पुत्र चाहने वाला ।

५३-सम्भु-शिव । मानु-सूर्य

श्रोष्टा-गीदह

५५-दुह-गन्धर्व

अतिथम्-सेना को अतिक्रमण करने वाला ।

५६-कलपू-खलिहान को भार्जन करने वाला

५७-सुल-मच्छा काटने वाला

स्वम्-स्वयम् भ्राता । कर्षाम्-मेढक

हम्-सर्प, कपि वज्र और स्व

करम्-हथ से पैदा हुआ, (लक्ष) । अक्षा-मया

५८-वसा-वोदित वा पौन

पिता-पिता । आमासा-अमास । आ-अनु

५९-गौ-गौ । रा-वन । रौ-कन्दमा

इत्यजन्ताः पुंलिङ्गाः ।

अथाजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।

६०-रमा-लक्ष्मीजी

६१-दुर्गा-दुर्गा । अम्बिका-दुर्गा

सर्वा-सब स्त्रियां । विद्या-अव ली

६२-उत्तर पूर्व-ईशान कोष

द्वितीया-दूसरी । तृतीया-तीसरी

अम्बा-माता या दुर्गा । अक्षा-माता

अक्षा-माता । जरा-वृद्धावस्था ( बुढ़ापा )

गोपा-गोपी । मति-बुद्धि

६३-बुद्धि-बुद्धि । तिष्ठ-जीन स्त्रियों

अतस्त-चार स्त्रियां

६४-हो-शे स्त्रियों । गौरी-गवंती वा गौर की

नदी-नदी । कक्षी-लक्ष्मी

तरी-नौका । स्त्री-स्त्री

६५-मी-लक्ष्मी

६६-धेनु-नई व्यारे गौ । अ-प्रकृति

स्वयम्भू-माया प्रकृति ।

स्वसा-वहिन । ननान्दा-ननन्द । दुहिता-पुत्री

याता-देवराषी, जेअनी । माता-माया

षी-प्राकाश । रा-वन । गौ-नौका

इत्यजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।

अथाजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ।

६७-ज्ञानम्-ज्ञान

६८-धन-धन । वनम्-वन । कलम्-कल

६९-कतर-शे में से कौन सा ?

कतम्-बहुओं वा तीनों में से कौन सा ?

इतर-तर वा दूसरा । अन्य-और

अन्यतर-शे में से एक

अन्यतमम्-इन सब में से एक

एकतर-दोनों में से एक ( कुत्र )

श्रीराम-वनरक्षक ( कुल )

हो-दो कुल । श्रीराम-तीनो ( नक्षत्र )

वारि-जल

७१-दधि-दही । अस्थि-हड्डी

सन्धि-कर, संयत्त-जाँव

महि-माँस, मुचि-मुदिमान् कुल

७२-मधु-शहद, मदिरा

मुक्क-मक्का कटने वाला ( मक्का )

पाम्-पारस या पोषक करने वाला ( कुल )

७३-माद-मानी कुल ।

मल-सुन्दर भाकाशुचुल दिन

मरि-मनिक कुल

मुह-सुन्दर नौका वाता कुल

स्वयन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ॥

अथ हस्तन्तपुंस्लिङ्गप्रकरणम् ॥

७४-डिड-पाटने वाला । डुड-दूहने वाला

७५-डुड-द्रोह करने वाला

डुड-मुग्ध या मोहित करने वाला

डुड-वमन करी । स्निग्-स्नेहकरनेवाला

७६-विषपाट-विषमर । अमकवान्-नैल

७७-विह्व-काष्ठक ( पण्डित )

वस्तव-गिरा हुआ । अवस्तव-नष्ट हुआ

वृषपाट-रुद्र

वृषो-सुन्दर भाकाश वाला दिवस

वृषारि-चार

७८-वृषान्-वान्तः । कः-कौन ?

७९-वृष-वह सन्निवृष्ट

८०-वृषा-रावा

८१-वृषविष्ट-मद्य में जिस की निष्ठा हो

वृषा-वृष करने वाला । वृषा-मक्का

८२-वृषा-रुद्र

८३-वृष-वृषानुगारी निष्ठ

वृषा-वृष वाला

८४-कौ०

वृषा-वृष वा देवविशेष

वृषा-वृष । मववान्-रुद्र

८५-वृषा-कुत्ता । वृषा-जवान युवक

८६-वृषा-बोहा । पृषा-मार्ग, रास्ता

मृषा-दही मयन का दण्डा

८७-कमुचा-रुद्र

पञ्च-पाँच । अष्टौ-आठ

८८-कस्त्रि-कस्त्रि ( वस्त्र करनेवाला )

युक्-योगी ।

८९-सुयुक्-सुयोगी

कन्-कंगड़ा । राट्-राजा

विम्राट्-नडा, अत्यन्त शोभा युक्त

देवेट्-देवपूजक । विष्णु-मक्का

९०-परिम्राट्-संभासी

विमाराट्-विशेषर मयवान्, वृष

वृट्-भूजने वाला । स्वा-वह । सा-वह ।

वा-जो, वृषा-वह ( अत्यन्त विकट स्थित )

९१-वृष-रु । अहम्-मैं

९२-सुपाट्-सुन्दर पैर वाला

अग्निमत्-अग्निमन्त्रन करने वाला

वृष-मक्का कटने वाला या पूज्य

९३-वृष-पीछे । उट्-उत्तर

९४-सम्बट्-ठीक करने वाला ।

सम्प्रवृ-साथी, मित्र

तिवृट्-टेढा करने वाले पशु पक्षी

९५-वृट्-क्रोधपक्षी । पृषोयुक्-मेघ

९६-महान्-बड़ा । वीमान्-मुदिमान्

भवान्-भाप । अवृ-होता हुआ

९७-वृट्-देता हुआ

वृष-खाता व ईसता हुआ

जावृ-जायता हुआ

वासवृ-वासन करता हुआ

वृषावृ-धीन होता हुआ

युवृ-रुद्र । वृष-वृष

- १०२-चिट्-बनिया । बक्-बध होने वाला  
 घृतस्थक्-घृतस्थ सं करने वाला  
 दडक्-तिरस्कृता  
 १०३-रखमुट्-रत्न का चोर । बह्-छे ।  
 पिपठीः-पहने की इच्छा वाला  
 १०४-चिकीः-करने की इच्छा वाला  
 विहान्-पण्डित  
 १०५-पुमान्-पुरुष  
 ठसना-शुकाचार्य । अनेहा-सम  
 १०६-वेवाः-ब्रह्मा । असौ-वह ( पुरुष )  
 इति हलन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणम् ॥

**अथ हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।**

- १०७-उपावत्-जला । उष्मिक्-पगड़ी वा छन्द  
 १०८-सौः-माकाश । गीः-बाणी  
 पूः-पुरी, नगरी । चतस्रः-चार स्त्रियों  
 का-कौन की । ह्वक्-वह की  
 १११-स्वा-वह स्त्री । सा-वह स्त्री  
 एवा-वह की ( अत्यन्तनिकट )  
 ११२-वाक्-वाणी । आपः-जल -  
 दिक्-दिशा । हक्-भास ।  
 स्थिक्-कान्ति । सज्जः-मित्र ।  
 काशीः-माहीनाद । असौ-वह स्त्री  
 इति हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ।

**अथ हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ।**

- ११४-स्ववद्वत्-मण्डे नैलों वाला ( कुल )  
 ११५-वाः-जल । चरवारि-चार  
 किम्-क्या ? इदम्-यह  
 एवम्-वह । अहम्-दिन  
 ११६-दण्डि-दण्ड वाला कुल  
 सुपथि-सुमार्ग वाला वन  
 ११७-उर्क-तेज और बल । तत्-वह ।  
 यत्-वह । एतत्-यह  
 यवाक्-गोपूचक, गौके पीछे आनेवाला

- सकृत्-मल ( टट्टी )  
 ११८-ददत्-देता हुआ ।  
 ११९-तुदत्-दुग्ध देता हुआ  
 पचत्-पाचन करता हुआ ( कुल )  
 दीव्यत्-खेलता हुआ । चनुः-चनुष ।  
 १२०-चजुः-ग्रास । हविः-हवि, वी  
 पयः-दूध वा जल  
 सुपुम्-सुपुषों वाला कुल । अद्-वह कर्तु  
 इति हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ॥

**अथ अव्ययसंग्रहः ।**

- १२१ स्वस्-स्वर्ग । अमर्-बीच में  
 प्रातर्-प्रातः काल  
 पुनर्-फिर । सनुतर्-भन्तर्धान  
 उच्येस्-उचा । नीचेस्-नीचा  
 सनेस्-नीरे पीरे । अचक्-सब कुछ  
 ऋते-विना । पुमपत्-पक्ष साथ  
 आरात्-दूर वा समीप  
 पृथक्-भिन्न ( भलहदा )  
 दास्-बोता हुआ दिन । अस्-भागामी भिन्न  
 दिवा-दिन । रात्रौ-रात  
 सार्यम्-सार्यकाल । शिरस्-देर  
 मनाक्-किन्निर । ईषत्-मोड़ा  
 ओषम्-चुप । तूष्णीम्-चुप  
 बहिस्-बाहर । अक्-बाहर  
 अघस्-नीचे । समया-समीप  
 निकषा-समीप । स्वयम्-प्राप  
 वृथा-व्यर्थ । नक्तम्-रात्रि  
 न-नहीं  
 नज्-नहीं । हेतौ-कारण  
 इहा-प्रकाश । अहा-स्फुट व निश्चय  
 सामि-प्राया । आह्वयवत्-आह्वय के समान  
 क्षत्रियवत्-क्षत्रिय के समान  
 १२२-सवा सवत् सवात्-नित्य

उपचा-भेद वा धूस । तिर्-डाँ  
अन्तरा-मध्य में । अन्तरेय-विना  
उभो-शीघ्र । कम्-जल, सिर, मुँह  
कम्-कल्याण । सहसा-प्रकट्प्रप  
विना-विना । नाना-अनेक  
स्वस्ति-मन्त्र व कल्याण  
स्वाहा-देवदान में । स्वचा-पितृदान में  
अकम्-वस । वषट् औषट् वौषट्-देवदान में  
अन्यत्-और । अस्ति-विद्यमान  
उपांशु-गुप्त । चमा-चमा ( माफ करना )  
विहायसा-भाकाव से । होषा-रात्रि  
मृषा, मिथ्या-मूठ । मुचा-स्पर्ध हो  
पुरा-गहिले । मिषो-भापुस में  
मिषस्-गरस्पर । प्रावस्-प्रावः  
मुहुस्-बार बार  
प्रवाहुकम् प्रवाहिका-एकसाथ  
आक्यहलम्-ज्वरदस्ती  
अनीचम्-नारं बार । साकम् सार्धम्-साथ  
वमस्-नमस्कार । हिकम्-विना  
विकम्-विकार । अथ-अनन्तर, अग्रे  
अथ-शीघ्र । आम्-स्वीकार, हाँ  
प्रताम्-ग्लानि । प्रज्ञात्-समान  
मा मात्-नहीं । च-और  
वा-विकल्प । ह-प्रसिद्ध  
अह-स्पष्ट । एव-अवश्य  
एवम्-ऐसे । नूयम्-अवश्य  
कारवत्-सदा । युगपत्-एकसाथ  
भूयस्-फिर, कृपत् सुपत्-प्रश्न व प्रशंसा  
कुचित-बहुत । जैत्-अच्छ  
जैत् चण्-पाँद । यत्-जिसमें  
कश्चित्-प्रश्न । वह-प्रत्यारम्भ  
हन्ता-दर्श व विवाद में  
माकि माकिम् यकि यकिम्-विना

१२३-नय्-नहीं । यावत्-जितना,  
तावत्-उतना  
स्वै ( नै ) द्वै-वितर्क । रे-दान  
स्वाहा-देवविदान । स्वचा-पितृदान  
वषट्-देवदान । मुस्-तूँ  
तथाहि-जैसे कि— । कञ्-विश्रय  
किल-ऐतिहास में । अथो-अथ अनन्तर  
मुहु-मन्त्रा । स्म-प्रतीत काल  
आदह-निन्दा । अवदत्तम्-दिया  
अहंयु-मईकारी  
अस्तिहीरा-विद्यमानदुग्धवाली गो  
अ-आ-ह-ह-ह-ऊ-सम्बोधन  
ए-ऐ-ओ-ओ-सम्बोधन  
पशु-सम्यक् । शुक्म्-शीघ्र  
यथाकथाच-अनादर में  
षाट्-अज्ञ-है-है-सम्बोधन  
ओ-अवे । पाट्-सम्बोधन  
य-दिसा । विभु-नाना  
एकपदे-सहसा । युत्-निन्दा  
आता-इस कारण । अता-इस कारण  
स्मारं स्मारम्-स्मरण कर २ के  
१२४-जीबसे-जीने के लिये,  
पिबध्मे-पीने के लिये  
कृत्वा-करके । उदेतो-उदक होकर  
विद्युप-द्वैतकर । अभिहरि-हरि में  
वाचा-वाणी । निशा-रात्रि  
दिशा-दिशा । वगाह-स्नान  
पिचानम्-ठकना ।

इत्यव्ययार्थनिर्देशः ।

अथ स्वादिगन्धप्रकरणम् ।

१२५-मू-होना

१२६-अथ-अनन्तर यमज

- १४१-विद्य-जाना  
 १४२-चिती-चेतना  
 १४४-शुच-शोक करना, गद्-स्पष्ट बोलना  
 १४५-खद्-नाद करना  
 १४७-कुनदि-समृद्धि  
 १४८-अर्च-पूजार्थ, ब्रज-जाना  
 १४९-कटे-गरसना और टकना  
 १५०-कुम्-मासन करना  
 १५१-वि-नाश होना  
 १५८-साप-संताप करना । ऋमु-बलना  
 १५९-वा-वीना  
 १६१-अधै-अजानि  
 १६२-हृद्-कुटिलता  
 १६७-अ-मुनना  
 १६९-गम्-जाना- ( गमज )  
 १६९-पृथ-वृद्धि-वदना  
 १७७-कमु-रक्षा करना  
 १८३-अथ-वहना  
 १८४-अत-दीप्त होना  
 १८६-विषता-संकेद करना,  
 विषिद्धा-विदिवद्धा-पिकना होना  
 विषिद्धा-पसीना जाना और छोड़ना  
 अथ-बगमना व अच्छा लगना  
 कुट-बोटना, शुभ-शोभित होना  
 शुभ-कुण्ठ होना, अथ-शुभ-विस्तार  
 कंसु-अंसु-अंसु-गिरना वा नष्ट होना  
 अंसु-बलना, अंसु-विश्वास करना ।  
 कुतु-वर्तना  
 १८७-दद-देना  
 १८८-अदृष्ट-संज्ञित होना  
 १९०-अिम-सेवा करना  
 १९१-अुम्-पालन करना । भरना  
 १९७-हृन्-हरना, घोरना

१९९-हृन्-मारण करना । ह्रीन्-लेखना  
 कुपचक्-पकना

१९६-अज-भजन करना,  
 बज-पूजा करना, संज करना, दान देना

१९९-वह-वहन करना

इति आदिगणप्रकरणम् ॥१॥

अथ अनादिगणप्रकरणम् ।

२०३-अद-खाना

२०६-हन-भारना, चलना

२०९-कु-मिलना वा भलन होना

२१०-वा-पडुचना, जाना

२११-वा-वहना, चुगली करना

२१२-भा-चमकना

अभा-स्नान करना, पवित्र होना

आ-पकना सीजाना, आ-निन्दित कमज

पसा-खाना, रा-देना

का-लेना, हाप्-करना

पा-रखा करना, कवा-करना

विद्-जानना

२१५-अस-होना

२१७-हृन्-जाना

२१८-सीङ्-सेना

२२०-हृन्-पदना

२२२-हुह-दुहना

२२६-विह-वदना । विह-घाटना

२२९-अम्-बोलना

२३२-अर्धुम्-टकना

इत्येतादिगणप्रकरणम् ॥ २ ॥

अथ जुहोत्याख्या ।

२३४-कु-होम करना, खाना वा लेना

२३६-मिमी-हरना

२३७-ह्री-संज्ञित होना

पृ-पालन करना, पूरा करना

२४०-ओहाङ्-ओहना

२४१-माङ्-मापना, माप करना

२४२-ओहाङ्-जाना

२४३-हुम्-भारण करना, पालना पोसना

२४४-हुदाङ्-देना

२४५-हुदाङ्-भारण करना, पालना पोषण करना

२४६-मिळिङ्-साफ करना, पोषण करना

इति जुहोत्यादयः ॥ ३ ॥

अथ दिवादयः ।

२४७-दिङ्-खेदना, जय की श्रद्धा, खेद-

देन का व्यवहार करना, चमकना, खुलना करना, प्रसन्न होना, मदमत्त होना, सोना, श्रद्धा करना, जाना

२४८-विङ्-सीमा । कृती-नाचना

कसी-भरणना, उद्विग्न होना

२४९-ओ-ओतना, तेजकरना

२५०-ओ-ओतना । ओगना

ओ-नाश करना । ओ-ओतना

ओङ्-मारना ( पीटना )

ओङ्-पुट करना

२५१-ओङ्-सूचना । ओङ्-नेह होना

२५२-ओङ्-उपस करना

२५३-ओङ्-ओखी होना । ओङ्-ओख होना

२५४-ओङ्-माकाश में उठना

ओङ्-पीना । माङ्-मापना

ओङ्-जगना प्रादुर्भाव

२५५-ओङ्-चमकना । ओङ्-जलना

२५६-विङ्-होना ओङ्-जावना

ओङ्-जड़ना

२५७-ओङ्-ओहना, त्यागना

ओङ्-सहन करना

२५८-ओङ्-पीटना

इति दिवादयः ॥ ४ ॥

अथ स्वादयः ।

२५९-ओङ्-त्याग करना, ओमलता को

कटना, मध बनाना

विङ्-रकटा करना ( चुनना )

२६०-ओङ्-कटना

२६१-ओङ्-जपना

इति स्वादयः ॥ ५ ॥

अथ तुदादयः ।

२६२-ओङ्-देना

ओङ्-प्रेरणा करना । ओङ्-सूचना

२६३-ओङ्-जोतना

२६४-ओङ्-मिलना । ओङ्-ओहना

ओङ्-कटना । ओपकरना

२६५-विङ्-प्राप्त करना

विङ्-सीचना । विङ्-तोपना

२६६-ओङ्-कटना । विङ्-विष्ट होना

विङ्-पीसना । ओङ्-ओङ्-कटना

२६७-ओङ्-ठगना

२६८-ओङ्-वीनना, चुनना

ओङ्-जाना । ओङ्-ओङ्-कटना

होना । जमना

ओङ्-त्यागना । ओङ्-ओङ्-कटना

२६९-ओङ्-ओङ्-कटना होना

ओङ्-ओङ्-कटना होना

ओङ्-जाना । ओङ्-ओङ्-कटना

ओङ्-कटना करना

२७०-ओङ्-मिलना, ओहना

ओङ्-ओङ्-कटना, विकसित होना

ओङ्-ओङ्-कटना । ओङ्-ओङ्-कटना

ओङ्-ओङ्-कटना, मज्जन

२७१-ओङ्-ओहना, ओङ्-ओहना

ओङ्-ओङ्-कटना । ओङ्-ओङ्-कटना

ओङ्-ओङ्-कटना



२७८-विखरना, जाना, दुःखी होना  
 २७९-सङ्क-झोलना । कृ-विखेरना  
 २८०-गृ-निगतना  
 २८१-प्रकट-पूछना । मृ-मरना  
 २८२-पृ-उद्योग करना  
 जुषी-प्रीती तथा सेवा करना  
 ओषिजी-डरना, कांपना उद्दिग्ध होना  
 इति रुधादयः ॥ ६ ॥

अथ रुधादयः ।

२८३-रुधिर्-रोकना  
 २८४-मिदिर्-भेदन करना । छिदिर्-भेदना  
 २८५-युजिर्-भेदना । रिचिर्-रिक्त होना  
 विचिर्-पृथक् होना । पुविर्-पीसना  
 उच्छुदिर्-चमकना, खेलना  
 २८६-उतुविर्-मारना, भ्रष्टाकर करना  
 कुटी-काटना । तुह हिंसि-हिंसा करना  
 २८७-उन्दी-भिगोना  
 २८८-अङ्गु-प्रकट करना, चिकना करना  
 सुन्दर होना, जाना  
 २८९-तङ्गु-संकुचित होना  
 ओविजी-भय करना, कांपना  
 क्षिण्ट-विशेषित करना  
 २९०-पिण्ट-पीसना । मञ्जो-तोड़ना  
 २९१-भुज-गालना, खाना  
 २९२-मिहन्वी-चमकना, दीप्त होना  
 विह-विचार करना  
 इति रुधादिषात्पर्याः ॥ ७ ॥

अथ तनादयः ।

२९३-तनु-विस्तार करना, फैलाना  
 २९४-पणु-दान देना  
 २९५-पणु-पिणु-मारना  
 २९६-पणु-खाना । मृ-मरना  
 २९७-पणु-मांगना

३०३-मनु-जानना

इति तनादिषात्पर्याः ॥ ८ ॥

अथ क्रयादयः ।

३०४-कुम्भी-अदत्त बदल करना,  
 खरीदना, बेचना  
 ३०५-प्री-तृप्त करना, इच्छा करना  
 श्री-पकाना । मी-मारना ।  
 ३०६-वि-बाधना । स्कु-उत्तलना, उठाना  
 ३०७-स्तम्भ-स्तम्भ-स्तम्भ-स्तम्भ-रोकना  
 यु-नांभना । व-वन्द करना  
 ३०८-वृ-मारना । वृ-विदीर्घकरना ।  
 पू-पवित्र करना  
 ३०९-रु-काटना । स्तु-ठकना  
 ३१०-कृ-मारना  
 ३११-वृ-स्वीकार करना  
 ३१२-पू-कंपाना  
 ३१३-ग्रह-लेना  
 ३१४-कुष-निकालना, खुरचना  
 ३१५-अक्ष-खाना । मुष-चुराना  
 ३१६-ज्ञा-जानना  
 वृ-भजन करना, स्वीकार करना  
 इति क्रयादयः ॥ ९ ॥

अथ चुरादयः ।

३१७-चुर-चोरी करना  
 ३१८-कथ-कहना  
 ३१९-गण-गिनना

इति चुरादयः ॥ १० ॥

अथ पयन्तप्रक्रिया ।

३२०-मावयति-होने के लिये प्रेरणा करता है  
 स्थापयति-उद्वहता है  
 ३२१-वटयति-वेष्टा करता है  
 जययति-पताता है  
 इति पयन्तप्रक्रिया ।

**अथ सञ्जन्तप्रक्रिया ।**

३१०-पिपठिषति-पढ़ने की इच्छा करता है

जिघत्सति-खाना चाहता है

३१८-चिकीर्षति-करना चाहता है

कुपूषति-होना चाहता है

इति सञ्जन्तप्रक्रिया ।

**अथ यङ्जन्तप्रक्रिया ।**

३२९-बोभूषते-बारबार वा अच्छी तरह से होता है । वासज्यते-ठेकाच करता है

३३०-वरीगुह्यते-बार बार वा अच्छी तरह से होता है ।

३३१-वरीगुह्यते-बार बार व अच्छी तरह नाचता है

वरीगुह्यते-बार बार वा अच्छी

तरह से ग्रहण करता है

इति यङ्जन्तप्रक्रिया ।

**अथ यङ्जुगन्तप्रक्रिया ।**

३३२-बोभवीति-बार बार वा अच्छी तरह से होता है

इति यङ्जुगन्तप्रक्रिया ।

**अथ नामधातुप्रकरणम् ।**

३३३-पुत्रीयति-अपने लिए पुत्र चाहता है

राजीयति-अपने लिए राजा चाहता है

वाक्यति-गीर्षति-अपने लिए वाणी चाहता है

पूषति-अपने लिए नमरी चाहता है

जिघत्सति-अपने लिये स्वर्ग चाहता है

३३९ समिज्यति-अपने लिये समिधा ( अच्छी ) चाहता है ।

पुत्रीयति-अपने लिये पुत्र चाहता है

पुत्रकाम्यति-अपने लिये पुत्र चाहता है

विज्यति-अपने लिये विजय को मित्र की तरह मानता है

३४०-स्वति-अपने सम्पन्न व धनी की तरह मानता है

राजावति-राजा के समान मानता है

३४१-पथीनति-मार्ग की तरह मानता है

कष्टायते-पाप करना चाहता है

कष्टायते-कष्ट करता है ।

घटयति-घड़ा बनाता है

इति नामधातुप्रकरणम् ।

**अथ कण्ठ्वाद्यः ।**

३४२-कण्ठयति-खुमलाता है

इति कण्ठ्वाद्यः ।

**अथात्मनेपदप्रक्रिया ।**

३४३-व्यतिष्ठुनीते-अन्य के योग्य काटने को स्वयं काटता है

व्यतिगच्छन्ति-दूसरों के योग्य

गमन को दूसरे करते हैं

व्यतिगच्छन्ति-अन्य के योग्य इनको

अन्य करते हैं

निविशते-प्रविष्ट होता है,

परिग्रीहीते-खरीदता है

विक्रीहीते-बेचता है,

अवग्रीहीते-खरीदता है

विजयते-विजय पाता है, पराजयते-हाराता है

सन्तिष्ठते-ठहरता है,

अवतिष्ठते-ठहरता है । बैठता है

प्रतिष्ठते-पाता है, बैठता है,

बिनिष्ठते-बैठता है

सतमपजानीते-सो रूपों को जिसका है

सर्पिषो जानीते-बो से प्रवृत्त होता है

धर्ममुपचरते-धर्म को उत्तरूपन करता है

३४४-रयेन सञ्चरते-रथ से घूमता है

वाहया संचरते-गाड़ी को देता है

पुदिधिषते-पढ़ना चाहता है

विधिविधते-मन्त्र होना चाहता है  
 हवेनो वसिष्ठाभ्युक्तते-राज चिह्ना पर  
 मन्त्र है, हस्तकृते-चुपुती करता है  
 हरिसुपकृते-हरि की सेवा करता है  
 ३४५-परदारान् प्रकृते-परकी में सहसा  
 प्रवृत्त होता है वलात्कार करता है  
 पृथो वक्रवोपकृते-काष्ठ जल का  
 गुणग्रहण करता है  
 कथाः प्रकृते-कथा कहता है  
 कृतं प्रकृते-सौ रूपवा चर्माय लगाता है  
 कटं करोति-चट्टाई बनाता है  
 कोद्वं भुङ्क्ते-भात खाता है  
 महि मुचकि-पृथ्वी की रचा करता है  
 हस्तभनेपदप्रक्रिया ।

### अथ परस्मैपदप्रक्रिया ।

अमुकरोति-नकल करता है  
 अमाकरोति-दूर करता है  
 अभिचिपति-छेकता है  
 प्रवहति-बहता है । परिचुचति-सहन करता है  
 किरमति-हटता है  
 कञ्चदचमुपरमति-बहुदच को हटाता है  
 इति परस्मैपदप्रक्रिया ।

### अथ भावकर्मप्रक्रिया ।

३४६-भुङ्क्ते-होना  
 अनुभूयते-अनुभव किया जाता है  
 ३४९-आज्यते-आमित्र किया जाता है  
 ३५३-भुङ्क्ते-होने के लिये इच्छा की जाती है  
 ३५५-भोभूयते-बार बार हुआ जाता है  
 एत्यते-स्तुति किया जाता है  
 ३५३-अर्चते-प्राप्त किया जाता है  
 स्मर्यते-स्मरण किया जाता है  
 ३५४-कश्यते-गिरना । कञ्चते-आमन्त्रित होना  
 इज्यते-यज्ञ किया जाता है

तायते-विस्तार किया जाता है  
 अनुपप्यते-पदनाचाप किया जाता है  
 ३५५-दीयते-दिया जाता है  
 धीयते-धारण किया जाता है  
 मज्यते-मजन किया जाता है  
 ३५६-उज्यते-प्राप्त किया जाता है  
 इति भावकर्मप्रक्रिया ।

### अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया ।

३५७-पच्यते-पकता है, मिच्यते-टूटता है  
 इति कर्मकर्तृप्रक्रिया ।

### अथ लकारार्थप्रक्रिया ।

३५८-स्मरसिःकृष्ण ! गोकुले कस्यवासः-दे  
 कृष्ण ! क्या आपको स्मरण है कि हम लोग  
 गोकुल में रहते थे ।

अभिजानासि कृष्ण ! यदनेऽमु-  
 ष्यमहि-दे कृष्ण ! याद है ? कि  
 वनमें हम लोग खाया करते थे  
 वजति स्म बुचिष्ठिरा-बुचिष्ठिर ने कहा  
 किया

कदाऽऽगतोऽसि-कब आये ?

अवभागच्छामि-अवभागमें जा-  
 यह आही रहा हूं

कदा गमिष्यसि-कब जाओगे ?

एष गच्छामि गमिष्यामि वा-यह (गयी)  
 जा रहा हूं

३५९-कृष्ण ! यमेच्छेत्सुखं वाचात्-यदि कृष्ण  
 को नमस्कार करेगा तो सुखी होगा । कृष्ण !  
 'स्वति चेत्सुखं वाच्यति-  
 श्रीकृष्ण को नमस्कार करेगा तो सुख वाक्य  
 इप्सीति पद्यायते-मारता है इस लिये  
 भागता है

वजेत्-बह करे । इह भुजति-बर्ष खाते  
 इहाऽऽसीत् भगवद्-( इच्छा को ले ) भ

वहां बैठे

कुम्भकारः-कुम्भकार-मन मेरे पुत्र को  
बहावे

किं भो ! वेदमधीवीच, उत तर्कम्-

कहिने क्या मैं वेद पढ़ूं वा तर्क !

भो ! मोक्षार्थं कर्मेव-मार्ग ! मोक्षन मिले

इति सकारणप्रक्रिया ।

अथ कृत्यप्रक्रिया ।

३६०-वृक्षितव्यम्-बटने योग्य है

वृक्षणीयम्-बटना चाहिए

वैतण्यः-वचनीयः-सञ्चय करना चाहिए

३६१-ववेष्टिमा-वकाने योग्य

मिष्टैष्टिमा-भेदन करने योग्य

व्यापीयम्-साधन ( चढन )

वासीय-दान देने योग्य ब्राह्मण

वेकम्-चुनने योग्य । वेकम्-देने योग्य ।

वैकम्-गहानि के योग्य ।

वैकम्-बाप देने योग्य

वैकम्-पाने लायक । इत्यः-जाने योग्य

वैकम्-स्तुति योग्य

३६२-विष्वा-विष्वा देने योग्य ( छात्र )

कुम्भः-वर्तने योग्य । आहृत्यः-मादरबाह

कुम्भः-सेवनीय । कुम्भः-साफ करने योग्य

कर्तव्य-कर्तव्य काम । हार्यम्-हरणीय

हार्यम्-धारण के योग्य

३६३-भार्यः-शोचनीय

भौक्यम्-खाने लायक ।

भौक्यम्-भोजने योग्य

इति कृत्यप्रक्रिया ।

अथ पूर्वकृत्यन्तम्

३६४-कारक-करने वाला । कर्ता-कर्ता ।

३६५-कर्म-कर्म करने वाला-

आही-मदक करने वाला । एवाही-रिक्

मन्त्री-मन्त्री, सत्ता देने वाला

मुचः-पण्डित ।

३६६-कुल-कुल । कुल-जाननेवाला

प्रिया-प्यारा । किर-बखरेनेवाला

प्रज्ञः-पण्डित । सुगल-जल्दी बरदानेवाला

गुह्य-घर । कुम्भकार-कुम्भार

३६६-गोदः-गो देनेवाला ।

चमदः-चम देनेवाला

कम्बलदः-कम्बल देनेवाला ।

गोसम्दायः-गो देनेवाला

मूलविमुचः-बटको उखाड़नेवाला रक्

महीमः, कुम्भः-पर्वत

कुम्भरः-कुम्भ देण में धूमनेवाला

मिष्टाचरः-मिष्ट । सेनाचरः-सैनिक

आदाचरः-लेकर धूमनेवाला

३६७-यशस्करी-यशदेनेवाली विष्वा

आह्वकरः-आह्व करनेवाला

वचनकरः-ब्राह्मणारी ।

जनमेजयः-जनमेजय राजा

प्रियंवदः-मीठा बोलनेवाला ।

३६८-वर्षावदः-ब्राह्मणारी

पण्डितम्भः, पण्डितमानी-भयने

को पण्डित मानने वाला

सुशर्मा-भयना मारनेवाला

प्रातरिस्वा-प्रातःकाल जानेवाला

३६९-विजावा-जन्मनेवाला

अवावा-दूर करनेवाली ब्राह्मणी

रोट्, रेट्-हिंसक

सुगम्-गणित का अच्छा ज्ञाता

उखाकट्-बट्ट से गिरा हुआ

पर्वण्य-पर्व से गिरा हुआ

बाहमट्-बोटे पर से गिरा

३७०-उज्जमोली-गर्म गर्म खाने वाला

दर्शनीयमाही-भयने को सुन्दर मानने वाला

काकीमन्वा-मपने को काकी मानने वाली की

सोमयाजी-सोम यज्ञ करने वाला

अग्निटोमयाजी-अग्निटोम यज्ञ करने वाला

३७१ पारहरवा-पारवर्षों, पारव्रत राजपुष्पा-राजा को जिसने युद्ध कराया

राजकृत्वा-राजा बनाने वाला

सहपुष्पा-साथ युद्ध करने वाला

सहकृत्वा-साथ करने वाला

३७२ सरसिजम्, सरोजम्-कमल

प्रजा-सन्तान वा प्रजा

स्नातम्-स्नान किया

स्तुतः-स्तुति किया गया । कृतवान्-किया

३७३ धीर्वा-बखरा गया । मित्रः-मित्र

क्षिप्तः-काटा गया

मीचः-ढेडा मेढा गया । गङ्गाना-गङ्गास

स्रवः-कटा । जीवः-बूढ़ । भुग्नः-ढेडा

३७४ उच्छृणुः-फूला हुआ

शुष्कः-सूखा । पक्वः-पका

सामः-कुछ । आवितः-छोक दिया हुआ

आवितवान्-भावना दिया । इहः-इध

३७५ हितम्-रखा हुआ । दत्तः-दिया

चक्रावः-करने वाला । जगन्वाक्-जाने वाला

३७६ पचन्तः-पचमानम्-पकाते हुए

सन् द्विजः-भेड़ नाशक । विदन् विद्वान्

३७७ करिष्यन्तः करिष्यमायम्-करने वाले को कर्ता-करने वाला

३७८ जघपाकः-अधिक बोलने वाला

मिषाकः-मिथु । कुट्टाकः-कूटने वाला

लुप्टाकः-लूटने वाला, डाकू

वराकः-बेचारा । वराकी-बेचारी

चिकीर्षुः-करने की इच्छा वाला

आर्षमुः-आश करने वाला । निष्ठा-संजोशी

३७९ विभ्रा-अधिक खोयावाला

माः-अन्ति । धृ-धुरी । विष्णु-विष्णु

ऊर्ध्व-उपर वा तेज । पू-पुरी

जुः-रोगी, ज्वरी

३८० आबस्तुष-परर की स्तुति करने वाला

प्राह-प्रश्नकर्ता

आबस्तुः-आबस्त की स्तुति करने वाला

कटप्रः-कटाई बनाने वाला

श्रीः-बन्नी । दात्रम्-दातृ ।

नेत्रम्-नेत्रा, रस्सी, नेत्र । कक्षम्-आकुल

योत्रं योत्रम्-जोता,

स्तोत्रम्-स्तुति का साधन

तोत्रम्-चातुक । सेत्रम्-बाँधने की रस्सी

सेवत्रम्-सेवन पात्र । मेदम्-लिह

पत्रम्-बाहन, पत्ता

३८१ दंष्ट्रा-जाह, दाह, जम्बी-ज्वारलज्जु

अरित्रम्-नौका चलाने का दण्ड

हवित्रम्-काटने का साधन

चवित्रम्-मृगवर्गनिमित्त पंखा

सवित्रम्-प्रसवसाधन यन्त्रविशेष

खनित्रम्-खननसाधन, खनती

सहित्रम्-रस निकालनेका साँचा

चवित्रम्-चरित्र । पवित्रम्-पवित्री

इति पूर्वकुदन्तम् ।

अथोक्तादयः ।

३८२ काकः-शिल्पी, कारीगर । वायु-वायु

पायु-गुदा । जायुः-जीव

मायुः-पित्त । स्वाहुः-स्वाद । आहु-जीव

इत्युक्तादयः ।

अथोत्तरकुदन्तम् ।

३८३ दंष्ट्रम्-देहने के लिये

३८४ दंष्ट्रम्-देहने इत्यने

भोक्तृम्-काने के लिये । कक्ष-कक्ष

राका-रङ्ग । रङ्ग-रङ्गभूमि, स्वेक  
मिषाका-संकात । काका-काकर  
भोमयमिकाका-भोमर की राशि  
३८२-जङ्ग-जिजय । जङ्ग-समूह  
कर-करना, या हाथ । कर-मिगलका, बहर  
जक-मिलना, जो । कक-काटना  
स्तका-स्तुति । पका-पवित्रता  
प्रका-प्रका सेर भर । किका-मित्र ।  
पवित्रमम्-पका हुआ । उच्छिमम्-नोवा हुआ  
३८३ वेपथु-कंपकंपी । यज्ज-यज  
काका-मागना । जङ्ग-प्रयत्न  
विज्ज-विजलना  
प्रका-प्रयत्न । रज्ज-रजा  
स्वप्ना-स्वप्न । प्रधि-रज की नेमि  
उपधि-दम्भ, रोग । कृति-क्रिया  
स्तुति-स्तुति । कीर्ति-खेरेना  
स्तुति-काटना । धूति-काटना  
पुति-पवित्र करना । सम्पत्-सम्पत्ति  
विपत्-विपत्ति । आपत्-आपत्ति  
सम्पत्ति-सम्पत्ति । विपत्ति-विपत्ति  
ज्ज-जरी, रोगी । त्ज-जीवकासी  
ज्ज-जसे बाले । त्ज-रज्ज  
ज्ज-बाधने वाला । इच्छा-इच्छा  
विच्छा-करने की इच्छा  
इप्पन् पुमकाया-अपने लिये पुन की इच्छा  
इहा-वेहा । कारका-यातना, तीव्र पीडा  
हास्ता-हराना । हसितम्-हसना  
३८९ दन्तज्ज-जोड । आकर-खान  
जकार-जकारना, उकार  
जकार-जकार, पदा । राजा-भोराम  
जकार-भोग, विचिता । दुष्कर-कठिन  
३९० ईसकर-सुकर-सरल  
ईसकाका-सरलता से पैद  
दुष्काका-दुष्क से पैद

सुपान-सुखसे पैद । अर्द्धा-अर्द्ध जो  
पीत्वा लब्ध-मत पीओ  
मा कार्वा-मत करो । अर्द्धा-अर्द्ध  
सुक्का-जोड कर । सुक्का-खाकर  
पीत्वा-पीकर । शयित्वा-सो कर  
कृत्वा-करके  
३९१ क्षुत्तिवा-क्षुत्तिवा-प्रकाशित होकर  
क्षित्तिवा-जिह्वकर । वर्तित्वा-होकर  
सेवित्वा-सेवा करके  
पुत्तिवा-रक्षा करके । सुक्का-खाकर  
समित्वा-साम्प्रदा-शान्त होकर  
देवित्वा-देवा-खेलेकर  
हित्वा-धारण करके । हित्वा-हास्ता-जोडकर  
३९२ प्रकृत्य-प्रारम्भ करके  
स्मारं स्मारम्-स्मरण कर करके  
स्मृत्वा स्मृत्वा-स्मरण कर करके  
पायम्पायम्-पी पा कर  
भोजम्भोजम्-खा खा कर  
आवश्रावम्-सुन सुन कर  
अन्यथाकारम्-दूसरी तरह  
एवकारम्-रसप्रकार । कथकारम्-किस प्रकार  
इत्थकारम्-रस प्रकार  
क्षिरोज्यथाकृत्वा मुहु-क्षिरोको टेढ़ा  
करके भोजन करता है

इत्युत्तरकृदन्ताभाः ।

अथ विमलार्थः ।

३९३-उच्चै-ऊँचा । नीचै-नीचा  
कृष्ण-कृष्ण । शी-लक्ष्मी । ज्ञानम्-ज्ञान  
तट, तटी, तटम्-तट, किनारा  
ज्ञोषो ज्ञीहि-ज्ञोष ( १६ सेर ) बान्ध  
एक-एक । द्वौ-दो  
बहव-बहुत से । हे सम- हे सम !  
३९४-हरि भजति-हरि को भजता है

हरिः सेवते-हरि की सेवा करता है  
 लक्ष्मणा सेवितः-लक्ष्मी से सेवित  
 मां दोगिष पयः-गौ से दूध दुरता है  
 बलिं वाचते वसुधाम्-बलि-राजा से पृथ्वी  
 मांगता है  
 सपुत्रकानोद्वं पचति-बाबलों से बात  
 बनाता है  
 सर्वान् धर्मं दण्डयति-गमों को सौ  
 रक्षा दण्ड ( जुर्माना ) देता है  
 वज्रमवधमहि वाम्-वज्र में गौ को  
 रोक्ता है  
 माधवकं पथान् पृच्छति-सड़के से रास्ता  
 पूछता है  
 सुकमवधिचोति फकानि-शृष से फल  
 तोड़ता है  
 माधवकं धर्मं मूले कास्ति वा-बालक को  
 धर्मोपदेष्ट देता है  
 सतं जयति देवदत्तम्-देवदत्त से सौ  
 ( कपवा ) जीतता है  
 सुधां क्षीरनिधिं मध्नाति-क्षीरसागर  
 को मक्कर अमृत निकालता है  
 देवदत्तं सतं मुञ्चाति-देवदत्त से सौ  
 जुराता है  
 अममार्गं मयति हरति कर्षति वा-ग्राम  
 में बकरी को ले जाता है  
 बलिं मिचते वसुधाम्-बलि से पृथ्वी  
 मांगता है  
 माधवकं धर्मं माचते-बालक को धर्मों-  
 पदेष्ट करता है  
 ३११-रामेव बाणेन हतो वाक्यी-राम ने वाक्य  
 से वाक्यी को मारा  
 विमानं वां वदति-माधव को गौ  
 देता है

हरये नमः-हरि को नमस्कार  
 प्रजाभ्यः स्वस्ति-प्रजाओं का कल्याण  
 अभ्ये स्वाहा-मग्नि के लिए ( हवि )  
 पितृभ्यः स्वधा-पितरों के लिये ( हवि )  
 देवैर्यो हरिरिच्छं प्रभुः-देवों के प्रति  
 हरि पर्याप्त है

३१५-ग्रामादावाति-ग्राम से आता है  
 वाचतोऽवापचति-दोहते हुए बोहते से  
 गिरता है

राज्ञः पुत्रः-राजा का सिपाही  
 सर्वां वतम्-सत्पुरुषों की चाल  
 सर्पिणो जानीते-बी के उपाय से प्रवृत्त  
 होता है

मातुः स्मरति-माता को स्मरण  
 करता है

एषो दक्षत्योपसृज्यते-सकड़ी बलमें  
 गुथों को स्थापन करती है  
 मजे सम्मोक्षरथयो-शम्भु के चरकों  
 को मजता हूँ

३१७-कटे आस्ते-कटार पर बैठता है  
 स्वाधर्मा पचति-बटुप में पकाता है  
 मोक्षे हृच्छास्ति-भोचनिवक हृच्छा  
 सर्वस्मिन्नात्मास्ति-सब में आत्मा है  
 वयस्व दूरे अम्भिके वा-वन के दूर  
 वा समीप

इति विमलवर्णाः ।

अथ समाप्ताः ।

३१८-भूतपूर्वा-बहिले हो चुका  
 वागार्थाविष-शब्द और अर्थ के  
 समान

३१९-अधिहरि-हरि में,  
 ३२०-अधिगोपय-गोप में  
 उपपुत्र्यम्-पुत्र के भाव

कल्पवृक्षः-कुशा के आश्रित  
 कलकल-सरोता से किया हुआ डकड़ा  
 कल्य-मानव से मतलब  
 कल कल-बाँव से करना  
 कल-रुति से रहित  
 कल्पवृक्ष-जहाँ से फलदा नव

दूधदाय-दूधदाय के लिए लक्ष्मी  
 रत्ननाथ स्थायी-राजने के लिए बल्लो  
 द्विजार्थः सूर्य-मादाय के लिए दास  
 द्विजार्थः ववागू-मादाय के लिए दास  
 द्विजार्थः पयः-मादाय के लिए दूध  
 मूलवलिः-मूतों के लिए बलि  
 गोहितम्-गौ के लिए हित  
 गोदुसम्-गौनों के लिए दुसप्रद  
 ४०६-गोरक्षितम्-गौनों के लिए रक्षा कृष्ण  
 चोरभयम्-चोर से भय ।  
 स्तोकाग्न्युक्त-बोड़े से दूध  
 अन्तिकादायता-समीप से आना  
 अन्त्यादायता-,,  
 दूरादायता-दूर से आना  
 कुच्छादायता-छा से आना  
 राक्षपुरवः-राजा का पुरुष ( बुद्धि )  
 पूर्वकायः-शरीर का अग्रभाग  
 अग्रकायः-शरीर का पिछला भाग  
 ४०७-पूर्वकाग्रामासम्-धानों में पहिला  
 अर्चपिप्पली-पिप्पली का अग्र भाग  
 अक्षौण्डः-जुवा खेलने में लग्न  
 पूर्वकुक्षामासी-पूर्व कुक्षामासी देख  
 सप्तर्षयः-सात ऋषि ।  
 उत्तरा बुधः-उत्तर बुध  
 पञ्च ब्राह्मणः-पाँच ब्राह्मण  
 ४०८-पौर्वसाकः-पहिली साका ( हवेली )  
 होने वाला  
 पञ्चगवधनः-पाँच गौ जिसका वन  
 है वह पुरुष  
 ४०९-पञ्चमयम्-पाँच गौ  
 वीक्षेपकम्-नील कमल  
 कुण्डलार्थः-साँप की एक जाति  
 रामो आमदुक्त-अमरुति के पुत्र



परशुरामजी

घनरथामः-मेघ के समान इमान

काकपार्थिवः-शाकप्रिय राजा

देवमाहात्म्यः-देवपूजक माहात्म्य, पूजारी

४१०-अभावाद्यः-आकाशमैत्र । अवस्था-गदहा  
नैकवा-अनेक प्रकार से ।

कुपुरुषः-निन्दित मनुष्य

उरीकृत्य-स्वीकार करके

शुद्धीकृत्य-सफेद करके

पटपटाकृत्य-पट पट ऐसा शब्द करके

सुपुरुषः-सज्जन पुरुष

४११-माचार्यः-आचार्य के शिष्य

अतिमाकः-माला को अतिप्रिय करने वाला

अवकोकितः-कोकिलाओं से कृतित

४१२-पर्यन्तवत्-पढ़ने से उदात्त

निष्कोकामिकः-कोकिलोंसे निकला हुआ

कुम्भकारः-कुम्हार । व्याघ्री-वधेरिन

अरवकीर्ती-बोहरे से खरीदी हुई

कच्छपी-कछुपी ।

४१३-अग्रकुलम्-दो अंगुलि भर

विरकुलम्-अंगुलियों से निकला हुआ

सहोरात्रः-दिन रात्र । सार्वरात्रः-सारी रात

संख्यातरात्रः-गिनी हुई रात्रियाँ

४१४-द्विरात्रम्-दो रात ।

त्रिरात्रम्-तीन रात

परमराजः-बड़ा राजा ।

महाराजः-महाराज

महाजातीयः-महान् । द्वादश-बारह

अष्टाविंशतिः-अठ्ठाईस

कुकुटमयूर्यौ-कुकट ( मुर्गा ) और

मयूरी

४१५-पञ्चकपाकः-पाँच खण्डों में संस्कार

किया हुआ चर

प्रासजीविकः-आपन्नजीविकः-वित्तको  
जीविका लग गई है

अलंकुमारिः-कुमारी के लावक

अर्धचर्म-ऊँचा का आधा मान

सुदु पचति-मुलायम पकाता है

प्रातः कमनीयम्-मनोहर प्रभात

इति उत्पुरुषः ।

अथ बहुव्रीहिः ।

४१६-कण्ठेकाका-नीलकण्ठ शिव

प्रासोदकः-जिसमें जल घुस गया है

वह प्राम

उत्तरयः-रथ को जिसने वहन किया है

ऐसा बैल

उपहतपशुः-पशु जिसको भेंट किया गया

है ऐसा रुद्र

उद्धृतौदवा-मात जिसमें से निकाल

लिया है ऐसी बट्टई

पिताम्बरः-पीले वस्त्रों वाला हरि

वीरपुरुषकः-वीर पुरुष वाला रवि

प्रपर्णः-गिरा हुआ पत्ता । अंगुष्ठा-अंगुलि

४१७-वित्रगुः-वित्र विचित्र गौओं वाला

रूपवद्भार्यः-रूपवती पत्नी वाला

वामोरुभार्यः-जिसकी भार्या सुन्दर

ऊँचवाली है

कल्याणीपञ्चमाः-पाँचवीं रात कल्याण

कारिणी है जिनमें

क्षीप्रमासः-क्षी को प्रभाव मानने वाला

४१८-कल्याणीप्रियः-कल्याणकारिणी की

जिसकी प्यारी है

दीर्घसन्धः-लम्बे ऊँच वाला

जलजाही-कमलनयनी

दीर्घसन्धः-लम्बे धुरे वाला सम्मद

स्थूलाका-मोटी भाँखी ( पैरों ) वाली

काठो

त्रिमूर्त्ति-दो सिर वाला

त्रिमूर्त्ति-तीन सिर वाला

अन्तर्कोम-जिसके भीतर बाल हो

बाह्यकोम-जिसके बाहर बाल हो

ऐसा कन्वल

४१९-स्वाध्याय-आत्म की तरह पैरो वाला

हस्तिपाद-हाथी के तरह पैर वाला

कुसुमपाद-मोहरी की तरह पैरो वाला

द्विपाद-दो पैर वाला

सुपाद-सुन्दर पैरो वाला

कल्पाकुल-जिसका ताड़ ऊपर को

ऊँचा हुआ हो

विकाकुल-जिसका ताड़ विकृत हो

पूर्णकाकुल-जिसका ताड़ पूर्ण है

सुहृत्-मित्र । सुहृत्-मित्र

मृदोस्पर्श-मृदुले स्पर्श-स्पर्श वाला

प्रियसर्पिष्क-प्रिय जिसको प्रिय हो

४२०-बुद्धयोग-योगी

महाबलस्क-महान् बल वाला

इति बहुजीहिः ।

अथ दुग्धः ।

४२१-ईश्वरं गुहं च भवस्व-ईश्वर और गुह को

बजो

बबलद्विरो क्षिप्ति-बब और बलद्विरो को काटो

संज्ञपरिमाणम्-संज्ञा और परिमाण

४२२-राजदन्त-प्रागे का ऊपरी दाँत

कर्णवर्मा-कर्ण और वर्मा

हरिहरौ-विष्णु और शिव

ईशकृष्णौ-महादेव और कृष्ण

क्षिप्रकेसवौ-महादेव और क्षिप्र

क्षिप्रौ-गता और विता

बाधिवाम्-बाध वर

४२२-मार्दङ्गिकबैद्यविष्णु-मृदु बलवाने का

और वंशी बजाने वालों का समूह

रथिकारवारोहम्-रथिक और युद्धवाले

का समूह

वाक्त्वचम्-वाक् और त्वचा

त्वक्त्वचम्-त्वचा, माता

समीहपदम्-मौनी और पत्थर

चामित्वचम्-वाक्, और कान्ति

क्षुद्रोपानहम्-क्राता और ज्ञा

प्रावृटसरदौ-प्रां और सरद

इति इन्द्रः ।

अथ समाप्तान्तः ।

४२२-जर्जर्ज-कवा का भाषा भाव

विष्णुपुरम्-विष्णु का पुर

४२३-विमलाकम्-निर्मल जल वाला सरोव

राजपुरा-राज्य का पुर

अक्षय-प्रच में लगी घुरी

छत्र-दृढ़ घुरी वाली नाभि

सन्निपद्य-मित्र का मार्ग

रम्यपथ-रमणीय मार्ग वाला देश

गवाच-सरोव, विट्की

प्राच्य-रास्ते को प्राप्त हुआ रथ

सुराज-शोभन राजा

अतिराजा-सुन्दर जेठ राजा

इति समाप्तान्तः ।

अथ तद्धिताः ।

४२४-आश्वपतम्-अश्वपति का पुत्र

गणपतम्-गणपति का अपत्य अति

दैत्य-दैत के पुत्र

आदित्य-अदिति के अपत्य, व सूर्य

आदित्य-अदित्य के पुत्र

प्राजापत्य-प्राजापति का पुत्र अति

दैत्यम्, दैत्य-देवता का अपत्य अति

बाह्यः बाहीका-बाहर होने वाला  
 नमस्कृत्य-नी का अपत्य आदि  
 औरतः-उत्स का पुत्र आदि  
 ४२५ स्त्रियः-नी का पुत्र आदि  
 पौत्रः-पुत्र का अपत्य आदि  
 औपरायः-उपरा का पुत्र  
 ४२६ मातुर्गर्भः-गर्भ का गोत्रापत्य  
 मातुर्गर्भः-मातुर्गर्भ गोत्रापत्य  
 मातुर्गर्भः-गर्भ गोत्र वाले । वरसाः-वत्स गोत्र वाले  
 ४२७ मातुर्गर्भः-गर्भ का युवापत्य  
 मातुर्गर्भः-दत्त का युवापत्य  
 दाहिः-दत्त का अपत्य । बाह्यः-बाह्य का पुत्र  
 औदुलोभिः-उदुलोभा का अपत्य  
 वैदः-विद का गोत्रापत्य  
 पौत्रः-पुत्र का अपत्य ( पोता )  
 ४२८ पौत्रः-पुत्र का पुत्र  
 मातुर्गर्भः-गर्भ का पुत्र भीष्म  
 पौत्रः-पुत्र का पुत्र । वैदः-विद का पुत्र  
 मित्र का पुत्र  
 मातुर्गर्भः-गर्भ का पुत्र ( भ्रातृ )  
 मातुर्गर्भः-वसुदेवनी के पुत्र भीष्म  
 मातुर्गर्भः-वसुदेव का पुत्र  
 मातुर्गर्भः-सर्वदेव का पुत्र  
 मातुर्गर्भः-दो माताओं के पुत्र गणेशजी  
 मातुर्गर्भः-दो माताओं के पुत्र कर्णदेव  
 मातुर्गर्भः-मातुर्गर्भः-सती पुत्र  
 मातुर्गर्भः-विमल का पुत्र गरुड  
 ४२९ मातुर्गर्भः-माता का पुत्र कर्ण का मातुर्गर्भ  
 मातुर्गर्भः-विमल  
 मातुर्गर्भः-वसुदेव का पुत्र ( साता )  
 मातुर्गर्भः-माता का पुत्र  
 मातुर्गर्भः-विमल का पुत्र  
 मातुर्गर्भः-विमल का मातुर्गर्भ पुत्र

वैदिकः-वैदिक का पुत्र  
 मातुर्गर्भः-मातुर्गर्भ देव के राजा का पुत्र  
 ४३० पौरवः-पुरु का पुत्र  
 पाण्डवः-पाण्डव देवीय राजा का पुत्र  
 कौरवः-कुरु का पुत्र  
 नैषधः-निषध राजा का पुत्र  
 इक्ष्वाकुः-इक्ष्वाकुगोत्रोत्पन्न  
 पञ्चाङ्गः-पञ्चाङ्गदेव का राजा  
 कम्बोजः-कम्बोजदेव का राजा  
 चोकः-चोक देव का राजा व तपुष  
 कः-क ( सीरिया ) देव का राजा व तपुष  
 केरः-केर ( मलयमल्ल ) देव का राजा  
 यवः-यव ( यूनान ) देव का राजा  
 ४३१ कर्णवः-कर्णव रंवा हुआ वरु  
 पौत्रः-पुत्र नक्षत्र वाला दिन  
 मातुर्गर्भः-मातुर्गर्भ है  
 वासिष्ठः-वसिष्ठ से दृष्ट साम  
 वामदेवः-वामदेव से दृष्ट साम  
 मातुर्गर्भः-वक्त्र से दृष्ट हुआ रव  
 मातुर्गर्भः-सर्वदेवों का राजा हुआ जावत  
 ४३२ मातुर्गर्भः-गुण चला  
 ऐन्द्रः-इन्द्रदेवताक हवि  
 पाण्डवः-पण्डितदेवताक हवि  
 बाह्यः-बाह्यदेवताक हवि  
 शुक्रिणः-शुक्रदेवताक हवि  
 वायव्यः-वायु जिसका देवता है  
 अश्विनः-अश्वि जिसका देवता है  
 पित्र्यः-पितृदेवताक  
 उग्रः-उग्र देवता है जिसका  
 पितृः-पिता वा ताक  
 मातुर्गर्भः-माता । मातामहः-माता  
 ४३३ पितामहः-दादा । काकः-काक का समूह  
 मैत्र्यः-मित्राओं का समूह

जेहम्-भिखारों का समूह  
 गामिहम्-गामिणियों का समूह  
 बौधनम्-बुद्धियों का समूह  
 ग्रामिता-ग्रामों का समूह । जनता-जनसमूह  
 कम्बुता-कम्बुओं का समूह  
 मज्जता-भूमियों का समूह  
 सहायता-सहायकों का समूह  
 ४३४ बहोना-नई दिनों में होने वाला यज्ञ  
 साधकम्-सत्तुओं का समूह  
 हास्तिकम्-हस्तियों का समूह  
 मैतुकम्-गोसमूह  
 व्याकरम्-व्याकरण का पढ़ने वाला  
 व्याकरम्-व्याकरण का जानकार  
 कम्पाठी-कम्पाठी । पदका-पदपाठी  
 शिक्षक-शिक्षापाठी  
 भीर्मासका-भीर्मासा पढ़ने वाला  
 ४३५ ओहुम्बर-गुजरवाला देश  
 कौशाम्बी-कुशाब्ज की नगरी ( प्रयाग )  
 सिनी-शिवियों का निवास ( सिनी )  
 वैदिहम्-विदिशा नदी के समीप का नगर  
 ( बिलसा )  
 पञ्चाला-पञ्चाल का देश ( फर्रुखाबाद )  
 कुन्दा-कुन्नों का निवास देश ( कुन्देन )  
 कलिङ्गा-कलिङ्गों का निवास देश  
 ४३६ वरवा-वरवा नदी के समीप ( काशी )  
 कुमुदान्-कुमुद जिस देशमें प्रायः हो  
 नद्वाम्-दंडल जिस देश में हो  
 वेतसाम्-वेत जिसमें अधिक हो वह देश  
 वरवा-वर प्राय देश  
 वास-वास वाला देश  
 विद्यावा-विद्यावाला ( मयूर )  
 वज्रव-वज्रपाद रूप  
 वायव्य-वायव्य स्थल  
 ४४ ल० को०

औपनिषद्-उपनिषदों में कहा गया  
 दार्पदा-दार्प पर पीसे हुए सत्तु  
 चातुरम्-चार बैलों के ले जाने योग्य स्थ  
 चातुर्दशम्-चतुर्दशीको दिखानेवाला राक्षस  
 राष्ट्रीय-राष्ट्र में होने वाला, राजा का शासन  
 अवारपारीणः, अवारीणः, पारीणः,  
 पारावारीणः-भार पार जानेवाला  
 ४३८ ग्राम्वा, ग्रामीणः-ग्राम में होने वाला  
 नादेयम्-नदी में होने वाला  
 माहेयम्-पहा में होने वाला  
 वाराणसेयम्-काशी में होने वाला  
 दाक्षिणात्यः-दक्षिण में होने वाला  
 पाश्चात्यः-पश्चिम से होने वाला  
 पौरस्त्यः-पूर्व में होने वाला  
 दिव्यम्-स्वर्ग में होने वाला  
 प्राच्यम्-पूर्व में होने वाला  
 अपाच्यम्-पश्चिम में होने वाला  
 उदीच्यम्-उत्तर में होने वाला  
 प्रसीच्यम्-पश्चिम में होने वाला  
 अमात्यः-मन्त्री, साची  
 इहत्वा-वहाँ का । अथा-वहाँ का  
 ततस्तः-तत्रतः-वहाँ का । वित्या-विज  
 ४३९ साकीयः-सर में उत्पन्न  
 माहीयः-माला में । लोदीयः-लस  
 देवदत्तीयः, देवदत्त-देवदत्त का  
 गहीयः-गह देश में पैदा हुआ  
 युष्मदीयः-आपका । अस्मदीयः-हमारा  
 ४४० औष्माकीयः-भापका  
 आस्माकीयः-हमारा  
 औष्माकः-भापका । अस्माकः-हमारा  
 औष्माकः-गुहारा । आस्माकः-गुहारा  
 आस्माकः-गौर । आस्माकः-गौर  
 लोदीयः-गुहारा । लोदीयः-गौर ।

अनुक्त-मेरा पुत्र । अनुक्त-मेरा पुत्र  
 मन्वन्तः-मन्वन्त में होने वाला  
 ४४१ कालिकम्-समय पर होने वाला  
 मासिकम्-मास में होने वाला वैष्णव  
 सार्वभौमिकम्-वर्ष में होनेवाला ब्राह्म  
 सामान्यमासिकम्-सर्व प्रातः होने वाला  
 वीर्य-पुनिकम्-बार बार होने वाला  
 मासिकम्-वर्षा कष्ट में होने वाला  
 सार्वभौमिकम्-सर्व होने वाला  
 चिरन्तनम्-पुरातन  
 प्राद्वेत्तनम्-पूर्वाह्न में होने वाला  
 प्रगेत्तनम्-प्रातःकालिक  
 दोषात्तनम्-रात्रि में होने वाला  
 औष्ण्य-सुष्ण ( गर्म ) देश में होने वाला  
 औष्ण्य-भरनेमें हुआ । राष्ट्रिय-राज्यमें हुआ  
 ४४२ प्रादुषिकम्-वर्षा ऋतु में होने वाला  
 औष्ण्य-सुष्ण में प्रातः होने वाला  
 औषधम्-रेखमी वल  
 दिव्यम्-दिशा में होने वाला  
 कर्णम्-रंग में होने वाला  
 कर्णम्-दातों में होने वाला वर्ष स्फुर आदि  
 कर्णम्-कण्ठ में होने वाला अ, इ, आदि  
 जात्यात्मिकम्-भ्रममें होने वाला  
 जातिवैयक्तिकम्-देवों में होने वाला  
 जातिभौतिकम्-जातियों में ,  
 ४४३ वैश्वौषिकम्-सब लोक में होने वाला  
 पारलौकिकम्-परलोक में होने वाला  
 विद्वान्मौलिकम्-विद्वान्के मूल में होने वाला  
 अनुकीयम्-अंगुठी  
 कर्णवीर्यम्-कर्ण में होने वाला  
 औष्ण्य-सुष्ण देश से आया  
 औषधमासिकम्-जुंजी पर से आया  
 औषधमासिकम्-जन्मस्थान से आया

पैतामहिकम्-पितामह से आया  
 समरूप्यम्-समीप्यम्-सम से आया  
 विषमीयम्-विषम से आया  
 देवदत्तकम्-देवदत्त से आया  
 सममयम्-सम से आया  
 देवदत्तमयम्-देवदत्त से आया  
 ४४४ हैमवती-वृद्धा । सार्वती  
 शारीरकी-शरीर व आत्म सम्-  
 नि वर्धन करने वाला ग्रन्थ  
 सौजन्य-सुष्ण देश वासी  
 औषधवत्-व्यथु सम्बन्धी वस्तु  
 ४४५ आरम्भ-प्रारम्भ का विचार  
 आरम्भ-प्रारम्भ का विचार  
 मार्तिकम्-मट्टी का विचार  
 मायूरम्-मोर का अङ्ग वा विचार  
 मौर्वम्-मूर्वा ( ओषधि ) की लट्ठी वा अङ्ग  
 पौष्पिकम्-पिप्पली विचार  
 अरममयम्-अरम का अङ्ग वा विचार  
 ४४६ मौष्ट-मूत्र का विचार  
 आरममयम्-आरम का अङ्ग वा विचार  
 कार्पासम्-कपास ( रई ) का विचार  
 गोमयम्-गोबर  
 अरमयम्-अरमिन् का अङ्ग वा  
 गन्धम्-गोमिन्  
 पञ्चम्-पञ्च विचार छोटा अङ्ग  
 आधिक-प्राप्ति से होने वाला  
 दाधिकम्-दही से संस्कृत  
 ४४७ शारीरिकम्-शरीर से संस्कृत  
 औद्भुतिकम्-जहाज से आने वाला  
 हास्तिकम्-हाथी से आया  
 दाधिकम्-दही से आने वाला  
 दाधिकम्-दही से आने वाला  
 दाधिकम्-दही से आने वाला

प्रायिकम्-समीप की दृष्टि संशय  
 प्रायिकम्-कर्म करने वाला  
 प्रायिकम्-कुमार  
 प्रायिकम्-पर्याया । आवर्तिका-भरती  
 प्रायिकम्-सूदत्र बचाने वाला  
 प्रायिकम्-उलवारिका । घानुष्क-भनुषी  
 प्रायिकम्-पूरी होने वाला  
 प्रायिकम्-श्रम के निवृत्त रहने वाला भिन्न  
 प्रायिकम्-रथ का बहने करने वाला घोड़ा  
 प्रायिकम्-युव ( युवा ) को उठाने वाला बैल  
 प्रायिकम्-काष्ठनिर्देश में जुटा बैल ।  
 प्रायिकम्-चौरिका-चुरी को उठाने वाला  
 प्रायिकम्-चौरा से ठरने योग्य अल  
 प्रायिकम्-समान नजराना वाला भिन्न  
 प्रायिकम्-धर्म से प्राप्त करने योग्य ।  
 प्रायिकम्-विष से मारने योग्य  
 प्रायिकम्-मूल्य । मूल्य-मूल के समान  
 प्रायिकम्-मोटा दुग्ध सेत  
 प्रायिकम्-मोटा दुग्ध । अग्रिका-अग्रणी  
 प्रायिकम्-समवेद में निपुण  
 प्रायिकम्-धर्म में प्रवीण  
 प्रायिकम्-अवसामय संकट । अग्रिका-समाप्त  
 प्रायिकम्-सुख बनाने की लक्ष्मी ।  
 प्रायिकम्-मो के लिये ।  
 प्रायिकम्-अवसामयिक का कर्म  
 प्रायिकम्-आजिके दिन का भय ( की )  
 प्रायिकम्-बहुतों का हितैषी नौपाल  
 प्रायिकम्-अपने के हितकारी  
 प्रायिकम्-अभिव्यक्ति । अवसाम-संतोषी ।  
 प्रायिकम्-करने अनुसृत  
 प्रायिकम्-अपने के अनुसृत  
 प्रायिकम्-आता के अनुसृत  
 प्रायिकम्-अपने के अनुसृत

प्रायिकम्-उत्तर भाग्य से उठाने दुग्ध  
 प्रायिकम्-सर्वभोग-चक्रवर्ती । प्रायिकम्-युवा  
 ४५२-स्वैतच्छत्रिका-स्वैत क्षेत्र के योग्य  
 प्रायिकम्-दण्डनीय, अष्टवी-प्रवर्त योग्य, पूर्व  
 प्रायिकम्-त्रय के योग्य  
 प्रायिकम्-एक दिन में तैयार दुग्ध  
 प्रायिकम्-नादाय के समान ।  
 प्रायिकम्-पुत्रेण पुत्र्याः स्थूलः-पुत्रके समान मोटा  
 प्रायिकम्-मथुरावत्-मथुरा के समान  
 प्रायिकम्-चैत्रवत्-चैत्र की तरह । मोल्यम्-मोलेवा  
 ४५३-स्त्रैयम्-जीववाति । मोल्यम्-पुत्र  
 प्रायिकम्-पार्यवम्-मोटापन  
 प्रायिकम्-मार्दवम्-मृदुता । मोल्यम्-शुद्धिमा-शुद्ध  
 ४५४-दाह्यम्-द्रविमा-दृढता  
 प्रायिकम्-जडता-मूलता । मोल्यम्-मूल  
 प्रायिकम्-नादायत्व, जय तप ।  
 प्रायिकम्-मयता  
 प्रायिकम्-कापेयम्-कपिता-वायव्य ।  
 प्रायिकम्-सातिकर्म  
 प्रायिकम्-सेनापरवम्-सेनापति का काम आदि  
 प्रायिकम्-पूरोहितम्-पुरोहिताई आदि  
 प्रायिकम्-मूढ का क्षेत्र । मोल्यम्-मन का क्षेत्र  
 प्रायिकम्-साठी चावल का क्षेत्र  
 प्रायिकम्-द्वैतव्यम्-मोवी की  
 प्रायिकम्-तारकितम्-तारों से जोड़ित कर्म  
 प्रायिकम्-पुष्टिमा-पुष्टिमान्  
 प्रायिकम्-उत्तमसय-उत्तमसय-उत्तमसय-मय  
 प्रायिकम्-उत्तम, कृतावात्-उत्तम  
 प्रायिकम्-किता, इत्तम्-इत्तम्  
 प्रायिकम्-पञ्चतयम्-पाचों का समूह  
 प्रायिकम्-द्वैतव्यम्-मोवी  
 प्रायिकम्-मोलीवम्-मोलीव-मोलीव-मोलीव  
 प्रायिकम्-मोलीव

४६४-प्रकाशः-प्रकारदर्श, पञ्चमः-पाँचवां  
विज्ञः-वीसर्ग । चष्टः-छठा  
कतिथः-कतिपयथा-कौनसा  
चतुर्थः-चौथा । द्वितीयः-दूसरा  
तृतीयः-तीसरा । श्रोत्रियः-वेदपाठी  
पूर्वः-पहिले करने वाला  
कृतपूर्वः-जिसने पहिले किया हो  
४६५-दृष्टी-जिसने यज्ञ किया हो  
अधीनी-भठित  
गोमान्-गौ वाला । गरुमान्-गरुड  
विदुष्वान्-विद्वानों से श्रोमि  
दुपला-द्वैत ( वक्ष )  
४६६-कुण्डः-काला ( वक्ष )  
पूषला-केश पाश वाला, मुकुट वाला  
जिह्वावान्-चेटी वाला दीपक, मयूर  
मेघावान्-सुखिमान्  
लोमशः-रोमशः-बालों वाला  
पामनः-पाँव रोगी  
अङ्गना-शोभन अङ्गों वाली सुन्दरी  
लक्ष्मणः-लक्ष्मीवान्, लक्ष्मणजी  
पिण्डुलः-पिण्डुवान्-बिकना  
दन्तुरः-ऊँचे दातों वाला  
केशवः-उत्तम केशों वाला  
४६७-मखिणः-जागविशेष । अर्णवः-समुद्र  
दण्डी, दण्डिकः-दण्डवाला  
ग्रीही-ग्रीहिकः-बान्य वाला  
सप्तस्त्री-सोत्तमान्  
मायावी-माया वाला । मेघावी-सुखिमान्  
छम्पी-छाया पहिने हुए  
धाम्नी-मच्छा बोलने वाला  
अर्धसः-अर्धसीर का रोगी  
अर्धसः-अर्धसीर । अर्धसः-अर्धसीर  
अर्धसः-अर्धसीर । अर्धसः-अर्धसीर

अतः-इसलिए । अमुतः-असुरे  
अतः-जिससे । अतः-असुरे । अतः-असुरे  
४६९-परितः-चारों तरफ से  
अमितः-दोनों तरफ से  
कुत्र-कहाँ । यत्र-जहाँ । तत्र-वहाँ  
अतः-अतः अतः । अतः-अतः । अतः-अतः  
ततोभवान्-तत्रभवान्-पूर्व  
४६३-दीर्घायु-दीर्घायु । देवानामिन्द्र-देवों  
आयुष्मान्-चिरजीवी  
सदा-सदा । सर्वदा-सदा । अम्यदा-और समस्त  
कदा-कन । यदा-यत्र । तदा-तत्र  
एतर्हि-यत्र । कर्हि-कन । बर्हि-यत्र । तर्हि-यत्र  
४६४-तथा-उसी तरह । अथा-जिस तरह  
इत्यम्-इस प्रकार । कथम्-किस प्रकार  
आत्मन्तमः-अत्यन्त घनी  
लघुतमः, लघिष्ठः-अत्यन्त छोटा  
४६५-किन्तुमाम्-क्या । प्राज्ञेयमाम्-प्राज्ञेय  
पचतितमाम्-प्रतिष्ठपचता है  
उच्चैस्तमाम्-प्रति ऊँचापन  
उच्चैस्तमः-प्रति ऊँचा ( वृद्ध )  
लघुतरः-लघीवान्-बहुत छोटा ।  
पटुतराः, पटीचांसः-बहुत पटु  
अष्टः-अष्टान्-अत्यन्त प्रबलसीध  
४६६-ज्येष्ठः-ज्यायान्-बड़ा, ज्येष्ठ  
भूमा-भूवान्-बहुत । भूविष्ठः-बहुत  
४६७-स्वचिष्ठः-अधिक कठो स्वचा वाला  
अरवक-कोई छोटा  
अधीवान्-अधीष्ठः-बहुत आत्मकारी  
विद्वत्कल्पः-विद्वत्कल्पः-विद्वत्कल्पः  
विद्वान्-क समान  
पचतितमम्-असमाप्त पचने वाला  
बहुपटुः-बोधा चतुर  
उच्चैः-ऊँचा । अधीष्ठः-अधीष्ठः

४७६ बहुर, बहुरी-बहुर। बहुरी, बहुरी



गोपी-गोप की की । गोपालिका-गोपकी की  
अथपालिका-बोटे पालनेवालेकी की  
सर्विका-सर्व । कारिका-श्लोक  
सूर्य-सूर्य की की । इन्द्राणी-इन्द्र की की  
वरुणानी-वरुण की की । भवानी-भवती  
हिमानी-बर्फ का समूह ।  
वरेण्यानी-भारी अन्न  
नीका-नीका । शका-समर्था  
वह्निपरिभाजका-अग्नि संवासी  
निसर्ग हो ऐसी नगरी (काशी)  
४०६-सुरी-कुन्ती । बवानी-बुद्ध की (भजवारेन)  
बवनावी-युनानी सिद्धि  
सामुदायनी-सामुदायी-मामी  
उपाध्यायानी-उपाध्यायी-गुरु की  
४०७-आचार्यानी-आचार्य की की  
लार्वाणी-लार्वा-वेदवा की  
अतिथानी-अतिथि-अतिथि की  
अचामीति-वर्षों से सरीदी हुई  
अमयिती-अम से सरीदी हुई की  
अतिथेनी-अतिथेनी-अतिथि केर वाली  
अमृताणी-अमृता की तरह सुख वाली  
सुमुखा-सुन्दरमुख (दकषा) वाली  
किष्का-बोली  
कल्याणकोटा-कल्याण कर-रत्न वाली बोली

सुखलया-सुन्दर करम वाली  
४०८-सूर्यसा-रावण की रक्षि  
गौरमुखा-मिथी की रक्षि  
ताम्रमुखा-ताम्र मुख वाली कन्या  
तटी-तट, किनारा । वृषणी-वृषी  
कटी-कठगोत्रोत्पन्ना  
वह्नी-वह्नी कन्या कन्या वाली  
मुण्डा-मुण्डित की । कल्याण-कल्याण  
कल्याण-कल्याण । हवी-होदी  
गवयी-गवय की (जंगली गाय)  
मुकयी-मुकयी ।

४०९-मसी-मसी । दाही-दही-दही  
कुम्भ-कुम्भ की अपत्य की  
अथर्गु-नादाणी । पङ्गु-पङ्गु की  
रवण-रवि की मति, रास  
करमोरु-गोले लम्बी कर वाली

४१०-संहितोरु-मिले हुए जंवा वाली  
कल्याण-मुलक जंवा वाली  
वामोरु-सुन्दर जंवा वाली  
साङ्गरी-शृङ्गरी की पुत्री  
वैदी-विदगोत्रोत्पन्ना की  
ब्राह्मणी-ब्राह्मण जाति की । बारी-बारी  
कुवति-युवा की, इति कीप्रत्ययः ।

इति साम्बहृकीमुदीत्यप्रयोगसूत्रमधिका ।

## प्रयोगलेखनप्रकारः ।

विष्णो इह—

विष्णो × इह इति स्थिते 'सम्बुद्धौ शाकश्यस्वेताद्वयार्थे' इति प्रयुक्तः प्रयुक्तऽचि निवस्य" इति प्रकृतिभावे 'विष्णो इह' इति । प्रयुक्तान्तरात् 'विष्णोऽववायाक' इत्यनेन ओकारस्य यथासंख्यत्वात् अवादेर् 'विष्' अथ इह' इति जाते "लोपः शाकश्यस्य" इत्यनेन अर्जनपूर्वस्य ककारस्य लोपे 'विष्ण इह' इति ते "पूर्वप्राप्तिश्च" इत्यनेन "लोपः शाकश्यस्य" इति सूत्रस्याऽसिद्धत्वात् ककारस्य अर्जानत्वेन तुच्चाप्राप्तौ विष्ण इह' इति । लोपामावपदे 'विष्णविह' इति चसिद्धम् ।

शिवेहि—

'शिव × आ इहि' इत्यवस्थायां "पूर्वं चातुः उपसर्गं च कुञ्चते" इति स्थिते "शिव इह" इत्यनेन युजे ततः "अन्ताद्विषय" इति एकादेशस्य आदिनेन एकादेशत्वात् "ओमाओरच" इति पररूपेकादेशे "शिवेहि" इति ।

सञ्ज्जम्मुः—

सञ्ज् × सञ्ज्मुः इति स्थिते "सि तुक्" इत्यनेन तुगागमे ककारस्य "इह" अथ "उत्तर" उकारस्य "उपदेशेऽजनुनासिक इत्" इत्यनेन च इत्संज्ञायां "तत्त्वं लोपः" लोपे च 'सञ्' ए सञ्ज्मुः' इति जाते "सञ्ज्जोऽटि" इत्यनेन अस्य कृते "स्तो" एत्तुः इत्यनेन उकारस्य चकारे पुनः "स्तो इत्तुना इत्तुः" इति कस्य अन्तः "सञ्ज्जम्मुः" इति । "सरो हरि" इति चकारलोपपक्षे "सञ्ज्जम्मुः" इति । कृते लोपे चाज्जुते कृते च कृते 'सञ्ज्जम्मुः' इति । तुलोभावे कृत्वाभावे च कस्य अकारे च कृते 'सञ्ज्जम्मुः' इति च सिद्धम् ।

उत्थानम्—

उत्थ × उत्थानम् इति स्थिते "उद्ः स्वास्तम्भोः पूर्वस्य" इत्यनेन उद्ः कस्य स्वाद् इति कक्षायां "उत्थानाद्विद्युत्तरस्य" इत्यनेन चर्मात्तरात्कारात् 'स्वा' इत्यस्य आत्मे सति "भादेः परस्य" इत्यनेन परस्य 'स्वा' कृत्वा सकारस्य स्वात्वे पूर्वसर्गे विहिते उत्थाने अचोपमहत्वात् सकारे जाते "उद्भवचाम्" इति कक्षायां "सरो हरि उपसर्ग" इत्यनेन च लोपे "हरि च" इत्यनेन ककारस्य चत्वं "उत्थानम्" इति । कृते "उत्थानम्" इत्यस्य वेदस्थितत्वात् लोपाभावे— "उत्थानम्" इति सिद्धम् ।

अनोरथा—

अनोर × अनोर इति स्थिते "अनोर" इति कस्य अने कृते "अने" इति

इत्युभयोः प्राप्तौ “विप्रतिषेधे परं कार्यम्” इति सूत्रेण वस्तुत्वात् “रो रि” इत्यस्यैव प्राप्ते “पूर्वत्राजसिद्धम्” इति सूत्रेण “रो रि” इत्यस्य त्रिप्रादिस्थत्वेन असिद्धत्वात् “हसि च” इति उक्ते “आद्गुणा” इति गुणे “मनोरया” इति सिद्धम् ।

### संस्कर्ता—

सम् × कर्ता इत्यत्र “सम्परिष्ठां करोती मृषणे” इति सूत्रेण सुदामाये कज्जन्त्रकोपे ‘सम् × कर्ता’ इति जाते “समः सुटि” इत्यनेन सुटि सम्बन्धनि सकारे पदे सर्वस्य समो ह्यवे प्राप्ते “अछोऽन्त्यस्य” इति योगेन अन्त्यस्य मस्य ह्यवे अनुबन्धकोपे ‘सर्स्कर्ता’ इति जाते “अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा” इत्यनेन रोः पूर्वानुनासिके ‘सर्स्कर्ता’ इति जाते “सरवसानयोर्विसर्जनीयः” इति सूत्रेण रेफस्याने विसर्ग ‘सं पुं कानां सो वक्तव्यः’ इति वातिकेन विसर्गस्य सकारे च कृते ‘संस्कर्ता’ इति । पक्षेऽनुनासिकाभावे “अनुनासिकत्परोऽनुस्वारः” इति सूत्रेण अनुस्वारे जाते ‘संस्कर्ता’ इति च सिद्धम् ।

### सर्वेषाम्—

सर्वसन्दात् षष्ठीबहुवचने आभि ‘सर्वं साम्’ इति स्थिते “सर्वादीनि सर्वनामानि” इति सर्वनामसंज्ञायात् “आभि सर्वनाम्नः सुट्” इति सुटि उकारटकारयोः ह्रस्वसंज्ञायां कोपे च कृते ‘सर्वं साम्’ इति स्थिते “बहुवचने षष्ठ्यवेत्” इत्यनेन वक्ता शोचरवति अकारस्य पुरे “आदेशप्रत्यययोः” इत्यनेन पुरे ‘सर्वेषाम्’ इति सिद्धम् ।

### क्रोष्टुः—

क्रोष्टुसन्दात् कसि विभक्तौ उकारेकारयोः ह्रस्वसंज्ञायां कोपे च कृते “विभाज्य एलीबादिष्वचि” इत्यनेन एज्जन्त्रावे “क्रोष्ट अस” इति स्थिते “अत उप” इति सूत्रेण पूर्वपरयोः ऋकाराकारयोः स्थाने उदादेशे रपरत्वे ‘क्रोष्टुस्’ इति जाते “रास्सस्य” इति सकोपे रेफस्य विसर्गे ‘क्रोष्टुः’ इति जातम् ।

### निर्जरसौ—

निर्जरसन्दात् प्रथमाद्विवचने औ समागते “जराबाजरसन्वतरस्याम्” इत्यनेन जरासादेशे “निर्जरसौ” इति । नच सूत्रे जरासन्दात्स्यैव जरासादेशः प्रोक्तो ननु निर्वर्तकस्य, इति कथमत्र जरासादेश इति वाच्यम्, “पदान्ताधिकारे तस्य च न्यस्य च” इति परिभाषया तदन्तस्यापि तत्प्रवृत्तेः । नन्वेमपि “निर्दिश्यमानस्य देसा भवन्ति” इति परिभाषया निर्दिश्यमानस्य जरासन्दात्स्यैव जरासादेशप्रवृत्तिरिति चेन्नैकम्, “एकदेशविकृतमन्यबद्” इति परिभाषया जरासन्दात्स्याऽपि जरासादेशविधानात् ।

### प्राम्याम्—

प्रोक्तो सः सः कर्त्तव्य इति ननु प्रोक्तो प्रत्ययः । तस्य बहुवचनं प्राम्याम् ।

ति । तस्मात् परिश्रब्दात् भ्यामि “एकदेशविकृतमनन्वयत्” इति परिभाषायाः  
“रावो हलि” इत्यनेन आत्वे ‘मराभ्याम्’ इति सिद्धम् ।

सर्वस्याम्—

सर्वाश्रब्दात् छे विभक्तौ “छेराश्रब्दाप्रीभ्यः” इत्यनेन छेरामि ‘सर्वा आम्’  
स्थिते “सर्वनाम्नः स्वद् स्वश्च” इत्यनेन स्याटि आबन्तस्य ह्रस्वत्वे च जाते ‘सर्व  
आम्’ इति स्थिते “अकः सवर्णे दीर्घः” इत्यनेन दीर्घे ‘सर्वस्याम्’ इति सिद्धम् ।

आभ्याम्—

इदम् श्रब्दात् भ्यामि विभक्तौ “त्यदादीनामः” इति अत्वे “अतो गुणे” इति परे  
रूपे ‘इद् भ्याम्’ इति जाते “हलि लोपः” इत्यनेन इद्भागस्य लोपे प्राप्ते “अलो  
प्यन्तस्” इत्यनेनान्तरस्य दस्य लोपे प्राप्ते ‘नानर्थक्यल्लोन्थविधिरनभ्यासधिकारे’  
इति परिभाषया अलोन्थविध्यभावे इद्भागस्यैव लोपे अ+भ्याम्’ इति स्थिते  
“युमि च” इति दीर्घत्वे प्राप्ते परन्त्वत्र विद्यमानस्याकारस्यादन्तत्वं वर्तते नयेति  
कालानाम् “आचान्तवद्देकस्मिन्” इति एकस्मिन्नेवाकारे अन्तवद्भावेन अदन्तत्वं ज्ञायते  
दीर्घे कृते ‘अभ्याम्’ इति सिद्धम् ।

चतसृषाम्—

‘चतस्र आम्’ इति स्थिते “त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ” इत्यनेन चतसरेषु  
‘चतस्र आम्’ इति जाते “अधि र् अतः” इति ऋकारस्य रेफादेशे प्राप्ते “नुम्विद-  
पुन्यज्ञात्वेभ्यो जुट् पूर्वविप्रतिषेधेन” इति पूर्वविप्रतिषेधेन तं बाधित्वा “ह्रस्वनामपो-  
जुट्” इति जुटि उटि टिष्ठादाद्याक्षय्ये जाते ‘चतस्र नाम्’ इति स्थिते “नामि” इत्य-  
नेन दीर्घे प्राप्ते “न तिसृचतसृ” इति निषेधे “अधर्षान्नस्य जलं बाधयते” इति  
निषेधेन अत्वे ‘चतस्रनाम्’ इति सिद्धम् ।

ज्ञानानि—

ज्ञानश्रब्दात् जरसोर्विषये “जरसोः सिः” इत्यनेन अनेकाश्चवाज्जरसोः सिः  
कृते “सि सर्वनामस्थानम्” इत्यनेन ‘सि’ इत्यस्य सर्वनामस्थानसंज्ञायाम् “अनुस-  
रूप ह्रस्वः” इति युमि “मिद्वोऽन्त्यात्परः” इति योगेनान्त्याज्जरस्य नस्थानस्य  
कर्मवीर्यभूते उकारमकारबोत्तिस्तंज्ञायां लोपे च “ज्ञानम् सि” इति स्थिते ऋकारस्यैव  
लोपयोः “सर्वनामस्थाने चाऽप्रभुदौ” इत्यनेन नान्तोपचायाः दीर्घे  
इति सिद्धम् ।

यूनः—

युष्म श्रब्दात् कसि विभक्तौ “नचि भस्” इत्यनेन भसंज्ञायां “अनुवर्त-  
कसि” इत्यनेन ककारस्य सम्प्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इत्यनेन  
‘यून भस्’ इति स्थिते ककारस्यापि “अनुवर्तकयोऽभिमतिदिते” इति च

अथ "न सत्यस्य सत्यस्य" इति विधेये सर्ववर्दीर्घे ककारस्य कृते चित्ते कृते 'यूनः' इति जातम् ।

प्रतीचः—

प्रति—उपपदात् 'अच्' कालोः "अविन्दकमिगुणिमनुमुक्तिमुक्तं च" इति किति सत्य सर्वपदस्य प्रत्ययकृतेन "अनिदितां हल उपधायाः किति" इति उपधा-  
नकारलोपे प्रति × अच् इति स्थिते "इको यचमि" इत्यनेन यचि 'प्रत्यय' इति ।  
तस्मात् सति अकारस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते । प्रत्यच् × अच् इति स्थिते "यचि मयो" इत्यनेन मयोऽपाम् "यचः" इत्यनेन अलोपे "चौ" इत्यनेन पूर्वस्याप्यो दीर्घे सत्य लो मिसर्गे 'प्रतीचः' इति ।

अमुना—

अदच्—सच्यद् यविभक्तौ "त्वयादीनामः" इत्यनेन अत्वे "अतो मुने" इत्यनेन  
अकृते "अदसोऽमेदादुदो यः" इत्यनेन अकारस्य अत्वे इत्य च मत्वे 'अमु × या' इति  
जाते नामात्वे कर्चये "म मुने" इत्यनेन मुत्त्वस्यासिद्धत्वात्मानवबोधनात् ।  
असत्ति" इत्यनेन विसंज्ञानाम् । "आलो नाऽक्षियाय" इत्यनेन ट- इत्यस्य ।  
'अमुया' इति सिद्धम् । नच मुत्त्वस्यासिद्धत्वात् "मुनि च" इति दीर्घः स्यात्  
अथवा "म मुने" इत्यनेन कृते च नामात्वे नासिद्धत्वमित्यस्यापि बोधनात् ।

चनूषि—

चनूष-अच्यद् अस्सलोर्विधेये 'अचुप् अच्' इति स्थिते 'जहल्लोः किति  
कृते अमुच्यलोपे "क्षि सर्वनामस्थानम्" इत्यनेन सर्वनामस्थानसंज्ञायां  
कृते 'चनूषः' इति नुषि अमुच्यलोपे "सान्तमहन्तः संयोगस्य" इत्यनेन संयोगस्य  
उपधाया दीर्घे "नश्चापदान्तस्य ञञि" इत्यनुसारे 'नुम्विसर्वनीयज्ञान  
मेषि" इति सस्य पत्वे संयोगे च कृते 'चनूषि' इति जातम् ।

भवति—

मूलसार्वा चातुः कर्मकाः । तस्मात् 'कः कर्मणि च भावे चात्र  
इति सूत्रेण "ल्लो कपोतम्यावेन" कर्चरि वक्षसु ल्लोरेषु प्राप्तेषु "वर्तः  
इत्यनेन मृषाद्योर्वर्तमानादिवाच्यत्वात् लटि अमुच्यलोपे 'च नूषः' इति ।  
'अदच्' इत्यविभक्त्य "तित्तत्सिद्धिप्यस्वमिन्नसमस्तत्तात्तकासाधार्मिकमिन्न  
दिक्" इत्यनेन एते अष्टादश लटिषाः प्राप्ताः "लपरस्मैपदम्" इत्यनेन अष्टादश  
मन्वेषां परस्मैपदसंज्ञा सहाता, "ल्लानवाधमनेपदम्" इत्यनेन ल्लानवाधमनेपदसंज्ञा-  
पतितायां कथनामाधमनेपदसंज्ञा ज्ञाता, एवं तिवाच्यः परस्मैपदसंज्ञा, ल्लानवाध-  
मनेपदसंज्ञा, एषां मन्वे अत्र परस्मैपदसंज्ञा प्रयुक्ता स्यात् ? किमुपनिषद-  
मन्वे ? इत्यत्राचार्या "नेपदसंज्ञा प्रत्ययेपदम्" इत्यनेन अत्र (१) मन्वे



## आतोत्—

अर्धधातोर्लुकि अजादित्वात् “आडजादिनाम्” इत्यनेन आडागमे “आडम्” इति वृद्धौ वृत्तायां लुकिस्तिपि “इतम्” इतीकारलोपे मध्ये च्छौ तस्य सिचि अनुबन्धलोपे “आत् सूत् इति स्थिते “अस्ति सिचोऽपृक्ते” इतीकारगमे “आर्धधातुकस्येडचलदेः” इत्यनेन सिचः इटि “इट ईटि” इति सिचो लोपे तस्याऽसिद्धत्वात् सवर्णदीर्घाप्रसावपि “सिजलोप इकादेशे सिद्धो वाच्यः” इति लोपस्यासिद्धत्वात् सवर्णदीर्घे “आतीम्” इति जातम् ।

## चिच्चेथ—

चिधातोर्लिटि तत्स्थाने सिपि “परस्मपदानां णलतुसुत्थलथुसणत्वमाः” इत्यनेन सिचः स्थाने ईलादेशे लस्येत्संज्ञायां लोपे च कृते ‘चि य’ इति स्थिते “लिटि धातोर्भस्वात्सस्य” इत्यनेन द्वित्वे भस्वासादिकार्ये ‘चि चिथ’ इति स्थिते, चिधातोर्बन्तत्वात् तासौ नित्यानिट्त्वाच्च “अतो भारद्वाजस्य” इत्यनेन भारद्वाजमते इटि “अचि रनुधातुः” इति इयङि ‘चिचिथि’ इति । पचे इडभावे गुणे ‘चिच्चेथ’ इति ।

## गोपायाञ्चकार—

‘गुप्’ धातोः “परोक्षे लिट्” इति लिटि प्राप्ते सम्भाषित्वा “गुपूवृपनि षड्वचि निम्बः वामः” इति नित्यमात्रप्रत्यये प्राप्ते “आयादय आर्धधातुके वा” इति विकल्पेन आत्रप्रत्यये कृते तत्सार्धधातुकसंज्ञायां लिटि “कास्यनेकाच व्याम् वचस्य” इत्यात्मप्रत्यये तत्सार्धधातुकसंज्ञायां “अतो लोपः” इत्यलोपे “वामः” इति लिटौ लुकिटः कुत्वात्प्रत्ययलक्षणेन गोपायामित्यस्य कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुकुत्वाच्च “कृन्मेजन्तः” इत्यन्यत्वात् “अन्वयाद्वापूषुपः” इति तस्मापि लुकि गोपायामित्यवशिष्टे “कृन्चानुप्रयुज्यते लिटि” इति लिट्परककृमि अनुप्रयुज्यमाने “गोपायाम् कृ लिट् इति जाते अत्र लिटिस्तिपि तिपो णलादेशे अनुबन्धलोपे द्वित्वे भस्वात्संज्ञायाम् “उरत्” इत्यभ्यासश्चर्जनस्य अकारे तस्य रपरत्वे च जाते गोपायाम् कृ कृत् अ” इति भूते “हलादिः शेषः” इति रलोपे “कुहोरनुः” इत्यभ्यासककारस्य भूते भस्वापदान्तात्वादनुस्वारे “अ पदान्तस्य” इति पाङ्क्तोऽनुस्वारस्य परसवर्णे अकारे “अथो म्निति” इति वृद्धिं परत्वाद्वाधित्वा “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति भूते “उरम् रपरः” इति रपरे च जाते “अत उपधायाः” इति वृद्धौ “गोपायाञ्चकार” इति ।

## अतुषेड्—

तृधातोर्लुकि तिपि अनुबन्धलोपे “रुदादिभ्यः रनम्” इत्यनेन रनमि शकारभकारयोरेतत्संज्ञायां लोपे च कृते “अट्कुप्वाङ्नुम्ववावेऽपि” इति मत्वे ‘तृषड् तृ’ इति जाते “लुक्कुल्” इत्यनेन अटि “तृषड् इम्” इत्यनेन इयागमे ‘अ तृ षड् इ’ इति जाते “आट्गुणः” इत्यनेन गुणे “हो हः” इति हले हङ्गुणादित्वात्

“सनातनात्” इत्यनेन पदान्तरात् इत्युक्ते “वाञ्छसने” इत्यनेन च न  
ये इति सिद्धम् ।

### अचूचुरत्—

स्तेष्वर्थक ‘चुर’ धातोः “सत्पापपात्ररूपवीणातुल्यलोकेनालोमचवर्माणां  
चुरादिभ्यो णिच्” इति सूत्रेण णिचि अनुबन्धलोपे “पूगन्तल्लपचस्य च”  
गुणे ‘चोरि’ इति जाते “सनातनात् धातवः” इति धातुसंज्ञायां धातुत्वात्तुकिं ति  
अङ्गानामे “न्धिः लुकि” इति ष्ठी “णिञिद्रुस्यः कर्त्तरि चङ्” इति ष्ठेरचङि चङ्  
चोरित्संज्ञायां लोपे च “इतश्च” इति तिप् इकारलोपे ‘अचोरि अ त्’ इति जाते  
“नेरिति” इति नेर्लोपे “जौ चङ्युपधाया इत्स्वः” इत्युपधाइत्स्वत्वे ‘अचुर’  
इति जाते “चङि” इत्यनेन द्वित्वे “हलादिः शेषः” इति रलोपे “दीर्घो लभोः” इति  
अम्बासस्य दीर्घत्वे ‘अचूचुरत्’ इति ।

### भावयति—

अवन्तं प्रेरयति ‘भावयति’ । अयम्भावः—देवदत्तो यज्वा भवति, तं याजकः प्रेर  
यति, इत्याद्यर्थे भूधात्वर्थस्य भवनस्य मुख्यकर्त्ता यज्वा तस्य यज्जमवने प्रवर्तयित्वा  
योजकमहिः प्रयोजकः, तच्चिह्नायां प्रेरणायां भूधातोः “हेतुमति च” इति णिचि, कृद्  
अर्वादेशे, ‘भावि’ इति निजन्तम् । तस्य “सनातनात् धातवः” इति धातुसंज्ञायां लुकि  
तिपि इपावितौ अपि गुणे अर्वादेशे ‘भावयति’ इति सिद्धम् ।

### नरीनृत्यते—

पुनः पुनः अतिशयेन वा नृत्यतीति विग्रहे नृत्तातो “धातोरेकाचो हलावेः क्रिया-  
सप्तमिद्वारे वङ्” इति सूत्रेण वङि द्वित्वे अम्बासकार्त्वे “सिगुद्रुपचस्य च” इति सूत्रे  
गुणे अनुबन्धकार्त्वे वङन्तस्य धातुसंज्ञायां लट्स्तादेशे णपि अनुबन्धलोपे कस्  
ने ‘नरीनृत्यते’ इति सिद्धम् ।

### अचीकमत—

लकारेत्संज्ञात् ‘कम्’ धातोः “कमेर्णिच्” इति सूत्रेण णिचि अनुबन्धलोपे “  
उपधायाः” इत्यनेन कृदौ “सनातनात् धातवः” इत्यनेन ष्वन्तस्य धातुसंज्ञायां ।  
तस्यानेन आत्मनेपदस्य प्रथमपुरुषैकविवक्षायां तत्प्रत्यये ‘कम् इ त्’ इति जाते “  
ङ्” इति ष्ठी तस्य “णिञिद्रुस्यः कर्त्तरि चङ्” इत्यनेन चङि अनुबन्ध  
कार्त्वे ‘अचूचुरत्’ इति स्थिते “नेरिति” इत्यनेन नेर्लोपे ‘कम् अ त्’ इति स्थिते  
“जौ चङ्युपधाया इत्स्वः” इति प्रत्ययलुक्त्वेन नेर्लोपेत्वात् उपधाया इत्स्वत्वे ‘कम्  
इ त्’ जाते “चङि” इत्यनेन कम् द्वित्वे “पूर्वोऽम्बासः” इत्यनेन अम्बास  
कार्त्वे ‘कम्’ इत्यनेन अम्बोपे ‘कम् अ त्’ इति जाते “कुरोरुज्” इति  
गुणे “सनातनात् धातवः” इत्यनेन अम्बासकार्त्वे “कम् अ त्” इति





### बोमकाप्रकार—

“वातारेकाचो हकादेः क्रियासमिहारे चक” इति चकि “चकौचि  
 ति प्रत्ययकचनेन चकन्तत्वात् ‘सन्वखोः’ इति द्वित्वे अग्न्यासत्वे अग्न्यास  
 चक हकादेः” इत्यग्न्यासत्वाचो गुणे ‘बोमू’ इति जाते प्रत्ययकचनेन ।  
 “अग्न्यासत्वा वासवः” इति चकत्वात् “परोषे छिट्” इति छिटि “कासने  
 हका” इत्यादि सत्वे “आर्षचातुक” सेवेः” इत्यार्षचातुकत्वे “सार्षचा  
 हका” इत्यनेन उपसरस्व गुणे अकारदेशो च कृते “वामः” इति छिट्ये ।  
 “अवचानुप्रयुज्यते छिटि” इति छिट्परकस्य कुञ्जोऽनुप्रयोगे ‘बोमकाय’ क् छिट्  
 यो चिदः स्वात्वे तिपि, तिपः स्थाने “परस्मैपदानां गलतुसुस्वछवुसमस्यमा”  
 । अकि अनुचन्वखोपे “छिटि चातोरनग्न्यासस्य” इति द्वित्वे अग्न्यासत्वे “उर  
 इति छः स्थाने अत्वे परकूपे “हकादिः सेवः” इत्यादिहलः सेवे “कुहोरवु” इत्ये  
 कस्य गुणे ‘बोमकाय’ च क् अ’ इति जाते “अथो भित्ति” इति ‘कु’ इत्यस्य  
 कस्य अग्न्यासत्वादेः परसकने च कृते ‘बोमकाप्रकार’ इति सिद्धय् ।

### अबोमकात्—

“हकादेः” इत्युचि च” इति भित्ति अनुचन्वखोपे “विषयक अदिक्के च हका  
 कौचने” इति विषयक हकाकमाने ‘वृ ह’ इति विषये “सन्वखोः” अग्न्यास  
 अग्न्यास चकत्वाचो छिटि तिपि अनुचन्वखोपे “कुहोरवु” इत्यनेन ।  
 “अभिपुसुम्नः कर्तरे चक” इति चकत्वादि अनुचन्वखोपे “मोरमिति”  
 “अ भू अ व” इति स्थिते हकाकमानेचकत्वाचो प्रत्येन “चकि” इत्यनेन  
 अग्न्यासत्वाचो “हका” इत्यनेन अग्न्यासत्वे हत्वे “अग्न्यास  
 कये ‘अ हू अ व व’ इति स्थिते प्रत्ययकचनेन उपसरस्वत्वे हका  
 प्रयोः “अ चकनुपयमा हका” इति हत्वे ‘अ हू अ व व’ इति अ  
 प्रुनि चकपरेऽन्यकोपे” इति सन्वखाने “वोः पुचन्वखारे” इत्यग्न्यास  
 “दीचो लवोः” इति दीचो ‘अबोमका’ इति सिद्धय् ।

### नरीनुत्यते -

प्रयोः “वातारेकाचो हकादेः क्रियासमिहारे चक” इति चकि च  
 “इति द्वित्वे पूर्वोऽग्न्यासः” इत्यग्न्यासत्वाचो “हकादिः सेवः”  
 “अ व हू अ” इति स्थिते वीहूपयस्व च” इत्यनेन अग्न्यासत्वे  
 “अवचानुप्रयुज्यते” इति अनुचानुप्रयुज्यते चकि ।  
 “अवचानुप्रयुज्यते” इति स्थिते “अवचानुप्रयुज्यते” इति स्थिते  
 “अवचानुप्रयुज्यते” इति स्थिते “अवचानुप्रयुज्यते” इति स्थिते

## चिकीर्षा—

कृधातोः सनि अनुबन्धलोपे “इको झल्” इति सनः क्त्वे “अभ्यासनां सनि” इति धातोर्दीर्घे “अत इहातोः” इति इत्वे रपरत्वे ‘किस्’ इति दशायां “सन्वर्णे” इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां “हलादिः शेषः” इत्यनेन रकास्य लोपे “कुहोस्तु” इति चुत्वे “हलि च” इति दीर्घे सनः सस्य क्त्वे ‘चिकीर्ष’ इति भूते “सनाकृता चातक” इत्यनेन सनन्तस्य धातुसंज्ञायां, तस्मात् चिकीर्षधातोः “अप्रत्यत्वात्” इत्यनेन क्त्वे “अतो लोपः” इति सनोऽकारलोपे कृदन्ताच्चात् प्रातिपदिकत्वे टापि अनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घे तस्मात् सौ “हल्ङ्याम्बः” इति तस्य लोपे ‘चिकीर्षा’ इति सिद्धम् । भूयते—

त्वया, मया, अन्यैश्च ‘भूयते’ । त्वकर्तृकं, मत्कर्तृकम्, अन्यकर्तृकं भवनमित्यर्थः । अत्र भूधातोः “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इत्यनेन भावरूपार्थे “वर्तमाने लट्” इति लटि “भावकर्मणोः” इत्यनेन आत्मनेपदे तत्प्रत्यये “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुकसंज्ञार्थां “सार्वधातुके कक्” इति यकि अनुबन्धलोपे क्त्वादगुणभावे देरेत्वे ‘भूयते’ इति सिद्धम् ।

## कुर्वन्ति—

कृधातोर्लट्कारे शिप्रत्वे “होऽन्तः” इत्यनेन होरन्तादेशे ‘कर्तरि शप्’ इति शप् चानित्वा “तनादि कृन्म्यः उः” इत्युप्रत्यये गुणे रपरे “अत उप सार्वधातुके” इत्यनेन अकारस्य उत्वे “इको यणचि” इत्यनेन यणि “हलि च” इत्यनेन रेफान्तस्य मधाया दीर्घे प्राप्ते “न भङ्गुराम्” इति निषेधे ‘कुर्वन्ति’ इति ।

## एष गच्छामि—

‘कदा गमिष्यसि’ इति गमनात् प्राक् प्रश्ने ‘एष गच्छामि’ इत्युत्तरम् । अन्वयः हितोपरकाले गमिष्यामीत्यर्थः । ‘एष’ गमनकालीनं प्रस्वेदपरिकरवन्धादियुक्तं कदा निर्दिश्यते । ‘गच्छामि’ इत्यत्र “वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा” इति सूत्रेन वर्तमानकालसामीप्ये भविष्ये लट् ।

## अन्यथाकारम्—

अन्यथापूर्वक-कृधातोः “अन्वयैवं कथमित्थं सुसिद्धाप्रयोगश्चेत्” इति अनुक्तिः अनुबन्धलोपे “अचो ङ्गिति” इति वृद्धौ “ङ्गमेजन्तः” इत्यन्वयत्वात् सुपो ङ्गि ‘अन्वयाकारम्’ इति ।

## इदामिति—

इदमिवाचरति इत्यर्थे ‘इदम्’ इति प्रातिपदिकात् “सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्त्वा क्त्वा” इति विधौ तस्य सर्वापहारे प्रत्ययलक्षणेन क्त्वात्वात् “सनाकृता चातक” इति धातुसंज्ञायाम् “अनुबन्धिकास्य क्त्वालोः द्विति” इत्यनेन वृत्त्या योर्ध्वे ‘इदम्’ इति भूते तस्मादन्तरितपि अपि अनुबन्धलोपे ‘इदमिति’ इति ।



कयोः" इति एषो जुक्तिं "जनश्च" इति द्विवि अनुबन्धलोपे भर्तृज्ञायां "नृत्तविने" इति द्विलोपे समासत्वात् सौ "नाभ्यधीभावादुतोऽन्वपञ्चम्या" इति सोरदि पूर्वस्य 'उपराजस्य' इति ।

### भूतपूर्वा-

पूर्व x अम्, भूत x सु इत्यलौकिकविग्रहे "सहसुपा" इत्यनेन समासे सम्प्रसारणम् "कृतद्वितसमासाच्च" इति प्रातिपदिकसंज्ञायां "सुपो चातुप्रातिपदिकयोः" इति सुपो जुक्तिं 'पूर्वभूत' इति स्थिते "प्रथमानिर्दिष्टं समस्त उपसर्जनम्" इत्यनेन द्वयोः अनुसर्जनसंज्ञाभ्याम् "उपसर्जनं पूर्वम्" इति विनियमकामावात् उपसर्गोऽपि पूर्वनिपाते प्राप्ते "भूतपूर्वं चरट्" इति निर्देशात् भूतकम्बुस्य पूर्वनिपाते "पूर्वकं विह्वल" न्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सौ इत्ये विसर्गे च तत्सिद्धिः ।

### प्राथम्यम्—

"एव हृदौ चातुः" "चातोः" इति सूत्रेण चातोः परेऽत्र भक्तिव्यवहारे निमित्तम् । इत्यनेन कृतसंज्ञायां "कृत्वा" इत्यनेन कृत्यसंज्ञायां "कर्तरि कृत्" इति चातोः प्राप्ते 'तयोरेव कृत्यचल्लभाः' इत्यनेन अकर्मकात् चातोर्भावे, सकर्मकाच्च 'कर्माणि कृत्यचल्लब्धानां प्राप्ताः सत्यां' "तस्यत्वात्वीभरः" इत्यकर्मकत्वेन चातं अस्मति कृते अनुबन्धलोपे "एव तस्य" इति जाते "आर्धचातुकं लोकः" इत्यनेन तः आर्धचातुकसंज्ञाभ्याम् "आर्धचातुकस्येद्वल्लभेः" इति इडि 'पञ्चित्वम्' इति चाते लोकात् सौ "भावे औत्सर्गिकं क्लीबत्वम्" इति क्लीबत्वात् "अतोऽम्" इति स 'अभि पूर्वे' इति पूर्वकपे 'पञ्चित्वम्' इति । ( तस्यप्रत्ययेन्येकमेव )

### सोमयाजी—

सोमेनेष्टवान् = सोमाख्यलताविशेषरसेन यागं कृतवान्—सोमयाजी ।  
 कर्त्तुं कर्त्तव्ये उपपदे भूतार्थे कर्तव्ये यज्चातोः "करणे यजा" इति विनिप्रत्यये अनुबन्धलोपे "अत उपधायाः" इति हृदौ उपपदसमासे सुपो 'सोमयाजिन्' इति भूते, तस्मात्सौ अनुबन्धलोपे "सौ च" इत्यनेन चातुस्योऽपि कृते इच्छादिना सुलोपे "सोमयाजी" इति ।

### प्रकृत्यम्—

हृत्चातोः "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" इति क्त्वाप्रत्यये अनुबन्धलोपे क्त्वा गुणभावे 'कृत्वा' इति जाते, प्रसङ्गः प्रकर्षे तस्य "कुगतिप्रादया" इति क्त्वा नित्यसमासे "समासेऽनञ् पूर्वे कयो रयच्" इति रयपि अनुबन्धलोपे कृदन्तत्वात् "क्त्वातोऽनुनूकसुनः" इत्यन्यत्वात् "अन्यवादापसुषा" इति तस्य जुक्तिं 'प्रकृत्यम्' इति ।

### समासः समासम्—

सुधातोः "अजीकपे असुच् च" इति असुर्लङ् अनुबन्धलोपे 'सु प्रथमं' इति अजी-

“अथो निमतिः” इति इदौ स्वरत्वे ‘स्मार्त्तम्’ इति जाते “निस्वर्गीयम्” इति द्विजे  
 इत्यन्तात् सौ “ह्रस्वेजन्तः” इत्यन्वयत्वात् “अध्यवादाद्युपः” इति सुनौ कः  
 ह्रस्वोरे ‘स्मार्त्तं स्मार्त्तं नमति शिवम्’ इति सिद्धम् ।

राजानमिति—

राजेवाचरतीति विग्रहे ‘राजन्’ इति प्रातिपदिकात् “सर्वप्रातिपदिकेभ्यः ङि  
 णः” इति किमपि क्रिपो लुकि, अन्वयकृच्छनेन किवन्तत्वात् “सनापन्ता चातवः”  
 बहुव्रीह्यात् “अनुनासिकस्य निष्पन्नोः विकृतिः” इत्यनेन उपवादीर्घे ‘राजात्’  
 जाते तस्माद्व्यञ्जितपि क्षपि अनुबन्धलोपे ‘राजावति’ इति सिद्धम् ।

द्वयङ्गुलम्—

द्वयङ्गुली प्रमायमस्येति विग्रहे “तद्विद्यार्थे द्विगुसमासे “प्रमाणे लः” “द्विजे  
 ण्यम्” इति लुकि यणि ‘द्वयङ्गुलि’ शब्दात् “तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याभ्यस्य  
 षेच समासान्ते षचि तस्मिन्परे “अस्येति च” इति इकारलोपे समासस्थाने  
 इति ‘द्वयङ्गुलम्’ इति ।

राजन्त्यः—

राजोऽपत्यमिति विग्रहे “राजश्चशुराद्यत्” इति जातिवाचिनो राजन् शब्दात्  
 णे भसंज्ञायां “भस्तद्धिते” इति प्राप्स्य णिलोपस्य “ये चाभावकर्मणोः” इति  
 स्यादे तद्विद्यान्तत्वात् सौ विभक्तिकार्ये ‘राजन्त्यः’ इति सिद्धम् ।

पटपटाकरोति—

पटपट् शब्दम् आचिविषयिते “आचि बहुलं द्वे भवतः” इति द्वित्वे “अन्वयानु-  
 ष्वयवराधोद्विजितौ आच” इति आचि प्रत्यये “निस्वर्गाज्जेडिते आचोति क्त  
 ति” कर्त्तिकेन पूर्वपट्पट् सम्बन्धिनस्तकारस्य पररूपत्वं विचार्य ‘पट-पट्’  
 ण्ते सिनाद्विलोपे प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ विभक्तिकार्ये ‘पटपटाकरोति’ इति

मदीयः—

मम अथ ‘मदीयः’ इत्यत्र “तुष्ठादस्मदोरन्वयतत्वां षञ्च” इति सूत्रेण जाते सुनौ  
 ह्रस्व ईयदेशे “प्रत्ययोच्चरपदयोश्च” इत्यनेन अस्मदोर्मपर्वन्तस्य आदेशे  
 षञ्च ईय इति जाते “असौ गुणे” इति पररूपे विभक्तिकार्ये च कृते ‘मदीयः’ इति ।

अदिमा—

अदीर्घायाः अदिमेत्यत्र “गृथ्वादिभ्य इमनिज्वा” इति इमनिच्प्रत्यये इकारस्य  
 ण्तेर्लोपे “अह इमम्” इति जाते “रञ्जतो हलादेशोः” इति अकारस्थाने रकारे “अदि-  
 मम्” इति भसंज्ञायां “एटः” इति इकारोच्चरवर्त्ति-उकारस्य लोपे ‘अदिन्’ इति जाते  
 अदिमिदमप्यत् सौ “सर्कामस्तथाने चाऽऽङ्गुदौ” इति उपमादीर्घे इकारस्य लोपे  
 णि ‘अदिमा’ इति जायम् ।



संस्कृत-मुद्रा प्रकाश

222

- १ क-क-कर्मणेर्वाह्यान्मन्त्राज्यवन्तः सिद्धिन्ना, “ब्राह्मणिसक-  
संस्य चाप्रत्ययः” इति सूत्रस्य हिन्द्यामर्थं प्रयोजनः सिद्धिः । १०

## अथवा

“गुह्याख्यग्रन्थं लघुर्लम्”, “अष्टादशलघुर्लम्”ति च सूत्रं किं किं कार्यं कुर्यात् ।

२. त्रिण्यो-इति, वाक्-हरिः, घोस-देवाः, हरिस्-राजते, सप्त-  
शम्भुः, अत्र यथेष्टं त्रयाणां सिद्धिः कर्तव्या ।

३. समाय, विश्वः, सखा, तिसृणाम्, प्राम्याम्, यून्ः, प्रतीचः,  
अनुमै, अनुमंसि, अनु स्वेणुषा चतुरः प्रयोक्तु संज्ञाय,  
पिधानम्, उदेतोः, इत्येव किं किं कार्यमिति निश्चयः ।

- ४ त्रि, बहुश्रेयसी-शब्दयोः आमि, मति, दधि, पिपटिष-शब्दानां  
 विभिनसौ, बहु, तदु, श्रेयः, मूय-जातुतः कुटि प्रथमपुनर्य-  
 कवचने रूपसि लेखनम् ।

- ५ मनेत्, पञ्चाङ्गकृते, श्रगौष्म, समस्त कथं, रुक्म, शिवत, अत्र  
कथयत, एषु यद्येष्टं चतुर्णां सिद्धिं प्रदह्य "नेगदे"ति स्यास्त-  
स्यं लिखत ।

अमीमवा, जिघ्रसति, नरीमृत्यो, इवामति, रयेन संवरते,  
अमाजि, यजति स्म युधिष्ठिरः, पशु केषामपि चतुर्षां लब्धं  
इत्वा यशस्करी, सन् जिजः, चिकर्षा, देवित्वा, एषां द्वयोरेव  
लब्धायार्थप्रदानपूर्व सिद्धिः कार्या ।

मत्तुः समरति, अघ्यात्मम्, निष्कौशाम्बिः, राजन्यः, पट्टयान्,  
मत्सो, एषु विशेषकार्याणि, विशेषतः सौम्यतायाणि ।

- ८ कृतित्, यत्तत्, इत्यन्त, आचार्य-सम्मानं इत्येतेषु कयोश्चित्  
स्त्रियां प्रथमैकवचने रूपाणि लिखत ।



## छठुऋषिर्वा प्रज्ञाः ।

११४७

१ (क) च, प-वर्णयोः प्रत्येकं स्थानं बाह्यप्रत्ययम् आन्त्यप्रत्यय-  
लक्ष लिखत ।

(ख) अलोऽन्त्यस्य, किति ह्रस्वश्च, हन्तेर्जः, तस्य समूहः, एषु  
अव्ययाणां सूत्राणां हिन्दीभाषायामर्थान् लिखत ।

२ कृष्णिः, मवाग्रम्, ब्रह्मर्षिः, एतत्तु मुपारिः, सञ्जम्भुः, पुंस्त्वो-  
क्तिः, मनोरथः—एषु केषाञ्चित् पञ्चानां रूपानां सिद्धिं कुरुत ।

३ तमाशाम्, पितरौ, स्त्रीम्, प्राम्याम्, विस्वौहः, अस्तुतः, गिरः,  
कनूषि एषु कानिचित् पञ्च रूपानि साधयत ।

आतीत्, जीयात्, श्रियात्, दुदोह, देहि, जायते, चिकारः,  
गिलति, दृष्टोदि, मुषाण—एषु पञ्च रूपानि साधयत ।

४ अपयति, बुभूषति, वात्रज्यते, पुत्रीयति, निविशते, विरमा-  
ग्रमाजि, शिष्यः, जनमेजयः, शुष्कः, तवः, लिखित्वा,  
आस्ते—एषां मध्ये पञ्चसु प्रयोगेषु विशेषसूत्रैर्विशेषकार्यो  
प्रदर्शयत ।

५ उपकृष्णम्, चेतमयम्, परमराजः, चित्रगुः, शिवकेशवौ, म-  
र्याः, पाशुपतम्, कौशाम्नी, त्वदीयः, कुमारी, युवतिः—  
कानिचित् पञ्च प्रयोगान् साधयत ।

६ युष्मच्छब्दस्य सर्वास्तु विभक्तिषु कृष्यतोर्लुकि च रूपानि  
प्रदर्शयत ।

# का. सु. प्र. प्र. प्र.

१९४८

त-स्वर्चयोः स्थानं चाह्यप्रयत्नमाग्यन्तरप्रयत्नश्च लिखत  
(च) आदिरन्त्येन सहेता, कन्मेजन्तः, ई च गङ्गा, यडोऽन्ति  
च, लट् सो, ज्य च—एषु त्रयाणां सूत्राणामर्थान् लिखत ।

यूतिः, प्राचूर्वति, चक्रयत्र, कृत्यान्म, पटत्सन्तः, नूँ—  
इ, मित्रोऽर्च्यः । एषु केषाञ्चित् पञ्चानां रूपानां सिद्धि

म, सुषाम्, मत्थै, दन्ना, अनड्वान्, मघोनः, उपात्त,   
—एषु कानिचित् पञ्च रूपाणि साधयत ।

नन्, अगमत्, अचीकमत, अवधीत्, पणतुः, नर्तिष्यति,   
, उपस्करति, शिष्टि, कुर्वन्ति—एषु षड् रूपाणि

१, विधीयति, वीमृयते, कष्टयते, विजयते, अनु-  
प्रलामि, वेयम्, मित्रः, जलकः, चयः, भोजं भोजम्,   
नां ददाति—एषां मध्ये पञ्चसु प्रयोगेषु विशेषतः त्रैविध्य-  
प्रदर्शयत ।

दम्, रात्रपुरुषः, अर्चवम्, द्विमूर्धः, पितरो, दादिः,   
आस्माकीनाः, शरण्यः, सुद्वी, चन्द्रमुखी,   
—एषु कानिचित् षट् प्रयोगान् साधयत ।

इत्येव सर्वलिङ्गेषु सर्वाणु विभक्तिषु च रूपाणि प्रदर्श्य  
लिङ्गि रूपाणि च लिखत ।

समुच्चैःपुष्पां पञ्चमः

१९४९

- १ (क) च, इ—अर्धयोः सङ्गानं कर्तव्यमन्तःसङ्गानन्तः  
लिखत । ६
- (ख) तुल्यास्ययन्तं सवर्णम्, अव्ययादापञ्चपः, मितां इत्यः,  
यङो वा, न यदि, तरपतमपौ घः, प्रज्ञादिभ्यश्च—एषु अया-  
णामर्थोल्लिखत । ६
- २ गव्यम्, शिवेहि, विष्णो इति, तल्लयः, तच्छिवः, तत्प्रीचक्रम्,  
मनोरथः एषु केषाञ्चित् पञ्चानां रूपाणां सिद्धिं कुरुत । १२
- ३ रामाणाम्, सख, चित्ररौ, लिखम्, कान्ति, चित्रचैः, चै-  
ना, अमुष्यै, दीव्यन्ती—एषु कानिचित् पञ्च रूपाणि साधयत १२
- ४ भवाणि, जगोषीत्, मेविद्, अवोक्त, मेविज्जति, अविनि,  
अथावीत्, असिचत्, हिनस्ति, अतत, व्यष्टमत्, गणपति—  
एषु षडरूपाणि साधयत ।
- ५ बुभूषति, मरीच्यते, पुत्रीयति, निविशते, प्रवहति, कृषते,  
क्षिप्ति, यन्त्रितं गन्धः, सविष्णुम्, पयः, क्षिप्ति, कटे आसते—  
एषां मध्ये षट्सु प्रयोगेषु विशेषसूत्रैर्विशेषकर्तव्यं अर्द्धयत १२
- ६ पञ्चगङ्गम्, पञ्चयवम्, परमराजः, अन्तर्लोकः, शिवकेशवी, के-  
तेयः, वैद्यकरणः, आधिदैविकम्, सार्वभौमः, कुमारः, इन्द्र-  
श्चन्द्रः एषु काञ्चित् षट् प्रयोगाद् साधयत ।
- ७ 'मधवन्'—शब्दस्य सर्वांस्तु विभक्तिषु रूपानि प्रदर्श्य, यज-  
धातोरर्थं लुङि च रूपाणि लिखत । १०





CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY,  
NEW DELHI

Catalogue No. 3a4V/Par/Sad.

Author— 28640

Title— लघुसिद्धान्तकौमुदी

Borrower No.

Date of Issue

Date of Return

*"A book that is shut is but a block"*

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY  
GOVT. OF INDIA  
Department of Archaeology  
NEW DELHI.

Please help us to keep the book  
clean and moving.